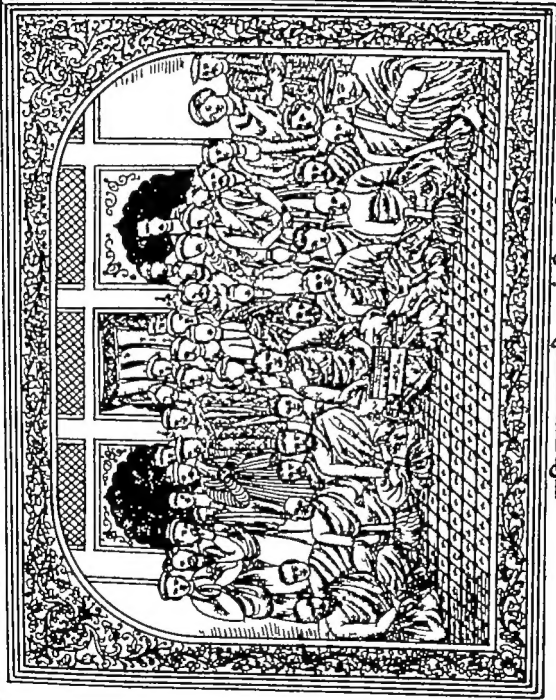
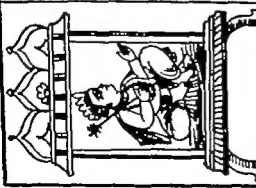
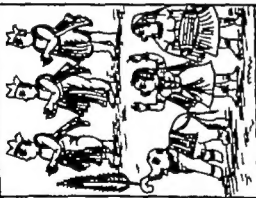
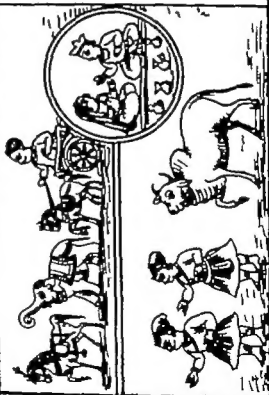




सुनि आत्मारामजी आनंदविजयजी



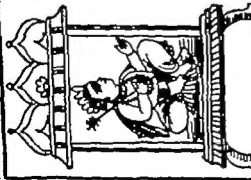
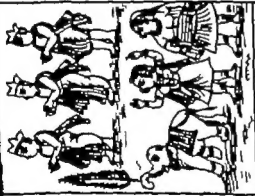
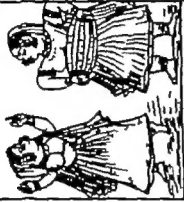
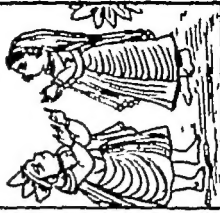


अनेक जैन ग्रंथोंके वेत्ता अरु अन्यमतकेजी बहोत ग्रंथोंके करने वाले महामुनि आत्मारामजी आनन्दविजयजी हैं, इनके तत्त्वज्ञानकी अरु परोपकारबुद्धि तथा यह पंचम कालके वर्तमान समयमें सिद्ध उत्सर्गपवाद पूर्वक यथार्थ जैनमार्गी सुसाधुयोंकी छद्म क्रियामें प्रवर्तित कर पृथ्वीमें विद्वार करने संबंधी प्रख्याती यह चारतवर्षके बहुत रहनेवाले श्रावक ममलमें प्रसिद्ध है अरु इनकी निशामें रहने वाले योंका समुदायजी पूर्व महामुनियोंके सदृश बहोत गुणवान् निमुद्रावाला है, तातें आत्मस्वरूपको जान कर परम पदकों साधने वाले, त्यागिक दशविध यतिधर्मके आराधक यह सत्पुरुष विपे हमारे इहां कुछ शेष प्रशंसा लिखनेकी आवश्यकता नहीं है इनके तीव्रबुद्धि अरु धर्मरुचि आदिक उत्तम गुण जो है, सो इनका बनाया यह ग्रंथ बांचनेसे अदिमान आपही जान जायेंगे ऐसे सर्वदर्शनग्रंथज्ञाता अरु मुनियजनशील महान्पुरुष, यह सांप्रत कालमें थोड़ेही दिखनेमें आते हैं

अब पूर्वाचार्योंके संस्कृत अरु भागधी जापामें रचे दूये ग्रंथोंका शय न जाननेवाले और जैनतत्त्वस्वरूपके अज्ञात जनोके उपर उपबुद्धि करके हालमें पूर्वोक्त महात्माने यह “ जैनतत्त्वादरी ” नामा रचना न्यारे न्यारे बारह परिच्छेदरूपसें करी है सो इस प्रकारसें कि

प्रथम परिच्छेदमें छद्म देवतत्त्वका स्वरूप कथन किया है, दूसरे १२६ कुदेवका स्वरूप वर्णन किया है, तीसरे परिच्छेदमें छद्म गुरुतत्त्वका कथा है, चौथे परिच्छेदमें कुगुरुका स्वरूप कथन करा है, पांचवे छद्म धर्मेतत्त्वका स्वरूप नव तत्त्वरूपसें कथन किया है, छठे परिच्छेदमें कृष्णानका स्वरूप कथन करने वास्ते चौदह गुणस्थानकोंके स्वरूप कहे सातवे परिच्छेदमें सम्यक्सर्वदर्शनका स्वरूप कथन करा है, आठवे परिच्छेदमें सम्यक्चारित्रके स्वरूप कथनमें देशविरतिचारित्र सबधी श्रावकोंके वारतोंके स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन किया है, नववे परिच्छेदमें श्रावकोंक नरुत्थ, आधविधि ग्रंथानुसारसें लिखा है, दशवे परिच्छेदमें श्रावकोंका





## प्रस्तावना.

अनेक जैन ग्रंथोंके वेत्ता अरु अन्यमतकेनी बहोत ग्रंथोंके अवलोकन करने वाले महामुनि आत्मरामजी आनंदविजयजी हैं, इनके तत्त्वज्ञानकी शक्ति अरु परोपकारबुद्धि तथा यह पचम कालके वर्तमान समयमें सिद्धांतोक्त उत्सर्गपवाद पूर्वक यथार्थ जैनमार्गी सुसाधुओंकी छुट्ट क्रियामें प्रवर्त्त हो कर पृथ्वीमें विहार करने संबंधी प्रख्याती यह नारतवर्षके बहुत देशोंके रहनेवाले श्रावक मगलमें प्रसिद्ध है अरु इनकी निश्रामें रहने वाले साधुओंका समुदायजी पूर्व महामुनियोंके सदृश बहोत गुणवान् निर्विकारी मुझवाला है, तातें आत्मस्वरूपको जान कर परम पदकों साधने वाले, ह्यां त्यादिक दशविध यतिधर्मके आराधक यह सत्पुरुष विपे हमारे इहां कुछ विशेष प्रशंसा लिखनेकी आवश्यकता नहीं है इनके तीव्रबुद्धि अरु धर्मानि रुचि आदिक उत्तम गुण जो हैं, सो इनका बनाया यह ग्रंथ बांचनेसें सदबुद्धिमान आपही जान जायंगे ऐसे सर्वदर्शनग्रंथज्ञाता अरु मुनिधर्मपा जनशील महान्पुरुष, यह सांप्रत कालमें थोड़ेही दिखनेमें आते हैं

अब पूर्वाचार्योंके संस्कृत अरु मागधी नाषामें रचे दूये ग्रंथोंका आशय न जाननेवाले और जैनतत्त्वस्वरूपके अज्ञात जनोके उपर उपकार बुद्धि करके हालमें पूर्वोक्त महात्माने यह “ जैनतत्त्वादरी ” नामा ग्रंथकी रचना न्यारे न्यारे बारह परिच्छेदरूपसें करी है सो इस प्रकारसें कि -

प्रथम परिच्छेदमें छुट्ट देवतत्त्वका स्वरूप कथन कीया है, दूसरे परिच्छेदमें कुवेवका स्वरूप वर्णन कीया है, तीसरे परिच्छेदमें छुट्ट गुरुतत्त्वका स्वरूप कहा है, चौथे परिच्छेदमें कुगुरुका स्वरूप कथन करा है, पांचवे परिच्छेदमें छुट्ट धर्मतत्त्वका स्वरूप नव तत्त्वरूपसें कथन कीया है, छठे परिच्छेदमें सम्यक्ज्ञानका स्वरूप कथन करने वास्ते चौदह गुणस्थानकोंके स्वरूप कहे हैं, सातवे परिच्छेदमें सम्यक्सर्वदर्शनका स्वरूप कथन करा है, आठवे परिच्छेदमें सम्यक्चारित्रके स्वरूप कथनमें देशविरतिचारित्र सबधी श्रावकोंके बारह ब्रतोंके स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन कीया है, नववे परिच्छेदमें श्रावकोंका दिनरुत्प, आठविध ग्रंथानुसारसें लिखा है, दशवे परिच्छेदमें श्रावकोंका रात्रि

कृत्य, पाक्षिककृत्य, चौमासीकृत्य, सवत्सरीकृत्य अरु जन्मकृत्य, यह पांचो कृत्यका स्वरूप वर्णन करा है, इग्यारहवें परिच्छेदमें श्रीश्रीदीश्वर नगवान्मे ले कर श्रीमहावीर नगवान् पर्यंतके कितनेक इतिहासोंका वर्णन करके उससे जैनमत आनादि है ऐसा सिद्ध करा है, अरु दूसरा नवीन बौद्धादिक पाखमी धर्मके मतों अमुक अमुक बखतसे निकले हैं यहनी दर्साय दीया है, बारहवें परिच्छेदमें श्रीवर्द्धमान स्वामीके निर्वाण पीछे के किंचित् इतिहास लिखे हैं इससेनी कितनेक नवीन मतों निकलनेका बखत मालुम पड़जाता है

इस प्रकारसे उपर लिखे दूये बारह परिच्छेदों करिकें यह ग्रंथ समाप्त किया है यह ऊपर कहे दूये प्रत्येक परिच्छेदमें मात्र उसमें लिखे नये विषयोंकाही वर्णन किया है, इतनाही नहीं, परंतु उसके साथ मोर्मासकादि अन्यमतवालोंका स्वरूप लिखकें पीछे पूर्वाचार्य रचित सम्मतितर्कादि अनेक जैनशास्त्रोंके अनुसार उन मतोंका खमननी सविस्तर किया है, तातें यह ग्रंथके बांचनेवालोंकू अन्य सांख्यादि दर्शनोंका कबुक स्वरूपनी मालुम हो जावेगा, फेर उसका यथास्थित खमननी जाननेमें आवेगा जैसे मन कल्पनासे निकले दूये नवीन दर्शनोंका उद्घापन करनेमें यह ग्रंथ उपयोगी है तैसेही कितनेक जैनमतमें प्रवर्तनेवाले जैनशास्त्रोंकी अनेकांत शैलीकों न पीढ़ाननेवाले ऐसे विचित्र विकार युक्त अल्पज्ञ जनोंकी अज्ञानता दूर करनेकोनी यह ग्रंथ बहोत उपयोगी है, क्योंकि, इस वर्तमान कालमें कितने एक जैनमती अपनीअपनी मरली माफक अध्यात्मज्ञानी बनकें व्यवहारपद्धतका त्याग करकें आवश्यकतादि क्रियायोंको उद्घापकें एकही निश्चयमार्गको स्वीकार करनेकाही उपदेश लोकोको करते फिरते हैं, ऐसे अल्पवेत्ता एकांतपद्धतके यादक, स्वमतीयोंको नी बहोत जैनशास्त्रोंके अनुसार तिनकी आशकायोंके निवारण पूर्वक क्रियावि शून्यव्यवहारमें प्रवृत्त करनेका बहोत करकें ठठे परिच्छेदमें चौदह गुण स्थानोंके स्वरूपमें जहां ठठे सातमे गुणस्थानकका स्वरूप कथन किया है, उसी जगपर अरु दूसरें परिच्छेदोंमेंनी बहोत स्थलोंमें उपदेश किया है

तथा अबके समयमें कबुक संस्कृतादि शास्त्राज्यास करकें अरु कोइ ग्रंथ देखे न देखे ऐसे कितनेक लोक अपनी मन कल्पित बातों कहते हैं कि जैनमत बौद्धमतमेंहुं निकला है, कितनेक कहते हैं कि गौतमऋषिने जैनमत

चलाया हैं, ऐसी विचित्र प्रकारकी कल्पना अज्ञानी लोक करते हैं, तथा वेदोंको सच्चा करणे वास्ते उनके पुराना अर्थोंको उलटायकें नवीन अर्थ बनाने वाले दयानदजीने तो जैनमतके लक्षावधि ग्रंथों आज मौजूद हैं तिनमेंसू कोइएक ग्रंथके एक पत्तेजी देखे न होवेंगें तोजी विचारे जइक शिष्यों को अपना पांमित्य दर्शावनेके वास्ते आपके बनवाये दूये पुस्तकोंमें जैन अरु चार्वाक ए दोहुं मत एकही करके लिख दीये हैं, ऐसे ऐसे अपनी कपोल कल्पित बातों करकें जोले लोकोंको फसाने वाले कपटी लोकोंका कपट रूप बह्नीका छेदन करणेकोजी यह ग्रंथ कुठार समान है

तथा वर्त्तमान समयमें कितनेक अल्पतर, सांसारिक विद्यामात्रकाही कबुक अन्यास करिकें, ऐसे जान रहे हैं कि, हमही सर्व शास्त्रोंके रहस्यार्थ जान गये हैं, दूसरे धर्माचार्यादिकों तो कुठनी समजते नहिं वो अपनी दुर्बुद्धिके प्राबल्यसे ऐसे जान रहे हैं कि, पुण्यपापादिक, स्वर्ग नरक परजवादिक अरु धर्मकर्मादिक कुठनी नहीं है, सब ढोंग है खाना, पीना और मौज करना यही सच्चा है, इत्यादि चार्वाक दर्शनके न्याई नास्तिक होय बैठने वालोंकोनी अनेक शास्त्रोंका हेतु दृष्टांत दर्सायके कोइ कोइ परिच्छेदके कोइ कोइ स्थलोंमें अष्टी युक्तियों पूर्वक उनका झराग्रह दूर करणेका उपदेश करणेमें आया है

तैसेही मात्र हम जैनमतवाले हैं, ऐसा नाम धराय कें नि केवल अपने अज्ञानसे पराजित दूये इवग्रहित्वकी प्रकर्षतासे श्रीवीतरागनाथित धर्मको उलटाय कें अपनी स्वेच्छासे श्री जिनप्रतिमाको उष्ठाप कें जैनमतकी हेलना करनेवाले ऐसे ढूंढकादि लोकों जो यह पंचमकालके महात्म्यसे बहोत छुट परिणतिकों धारण करकें, जइकजनोंको अधर्मका उपदेश करते फिरते रहते हैं, उन दुर्गतिमें पडनेवाले जनोके विषकों दूर करणे वास्तेजी यह ग्रंथ सुधा तुल्य औपधसदृश दीख पडता है क्योंकि, इन लोकोंकोनी कुमार्गसे दृष्टायकें सन्मार्गमें ल्यावने वास्ते यह ग्रंथके प्रत्येक परिच्छेदोंमें बहोत जगेपर अनेक शास्त्रोंकी साक्षीयों दर्सायकें उपदेश कीया है, इस्से इन लोकोंपरजी यह ग्रंथ बनानेवालेने बड़ा उपकार कीया माजुम होता है

औ इस ग्रंथमें कितनेक इतिहासो ऐसे लिखे हैं कि - जिन इतिहासकों वांचनेसे शास्त्रोंमें कही दुइ बातोंको आजके समयमें अयोग्य माननेवालोंकी शकायों तत्काल दूर होयकें उलटी तिस शास्त्रोंके उपर यथार्थ आस्ता

कृत्य, पाक्षिककृत्य, चौमासीकृत्य, सवत्सरीकृत्य अरु जन्मकृत्य, यह पांचो कृत्यका स्वरूप वर्णन करा है, इग्यारहवे परिच्छेदमें श्रीश्रीश्रीश्रीश्री नगवान्से ले कर श्रीमहावीर नगवान् पर्यंतके कितनेक इतिहासोंका वर्णन करके उससे जैनमत आनादि है ऐसा सिद्ध करा है, अरु दूसरा नवीन बौद्धादिक पाखमी धर्मके मतों अमुक अमुक बखतसे निकले हैं यहनी दर्साय दीया है, बारहवे परिच्छेदमें श्रीवर्द्धमान स्वामीके निर्वाण पीठों के किंचित् इतिहास लिखे हैं इससेजनी कितनेक नवीन मतों निकलनेका बखत मालुम पड़जाता है

इस प्रकारसें उपर लिखे दूये बारह परिच्छेदों करिकें यह ग्रंथ समाप्त कीया है यह ऊपर कहे दूये प्रत्येक परिच्छेदमें मात्र उसमें लिखे नये विषयोंकाही वर्णन कीया है, इतनाही नहीं, परंतु उसके साथ मोमांसकादि अन्यमतवालोंका स्वरूप लिखकें पीठें पूर्वाचार्य रचित सम्मतितर्कादि अनेक जैनशास्त्रोंके अनुसार उन मतोंका खमननी सविस्तर कीया है, ताते यह ग्रंथके बांचनेवालोंकू अन्य सांख्यादि दर्शनोंका कबुक् स्वरूपनी मालुम हो जावेगा, फेर उसका यथास्थित खमननी जाननेमें आवेगा

जैसे मन कल्पनासें निकले दूये नवीन दर्शनोंका उद्घापन करनेमें यह ग्रंथ उपयोगी है तैसेही कितनेक जैनमतमें प्रवर्तनेवाले जैनशास्त्रोंकी अनेकांत शैलीकों न पीठाननेवाले ऐसे विचित्र विकार युक्त अल्पज्ञानोंकी अज्ञानता दूर करनेकोनी यह ग्रंथ बहोत उपयोगी है, क्योंकि, इस वर्तमान कालमें कितने एक जैनमती अपनीअपनी मरजी माफक अध्यात्मज्ञानी बनकें व्यवहारपक्षका त्याग करके आवश्यकतादि क्रियायोंको उद्घापकें एकही निश्चयमार्गको स्वीकार करनेकाही उपदेश लोकोको करते फिरते हैं, ऐसे अव्यवस्था एकांतपक्षके ग्राहक, स्वमतीयोंकोनी बहोत जैनशास्त्रोंके अनुसार तिनकी आशकायोंके निवारण पूर्वक क्रियादि अज्ञानव्यवहारमें प्रवृत्त करनेका बहोत करकें ठठे परिच्छेदमें चौदह गुण स्थानोंके स्वरूपमें जहां ठठे सातमे गुणस्थानकका स्वरूप कथन कीया है, उसी जगपर अरु दूसरे परिच्छेदोंमेंनी बहोत स्थलोंमें उपदेश कीया है

तथा अधके समयमें कबुक् संस्कृतादि शास्त्रान्यास करकें अरु कोइ ग्रंथ देखे न देखे ऐसे कितनेक लोक अपनी मन कल्पित बातों कहते हैं कि जैनमत बौद्धमतमेंसे निकला है, कितनेक कहते हैं कि गौतमशुबिने जैनमत

## ॥ अस्य ग्रन्थस्यानुक्रमणिका प्रारब्धते ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम परिच्छेदमें देव तत्त्वका स्वरूप है तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

अंक	विषय	पृष्ठ
१	अथ करणका प्रयोजन	१
२	देवादिक तीनों तत्त्वोंमें प्रथम देवतत्त्वका स्वरूप तिसके अंतर्गत श्री अरिहंतके वारा गुण कहे हैं, तिस बारह गुणोंमेंनी वचनातिशय नामा जो दूसरा गुण है, तिनका पैत्तीस जेव तथा बारह गुणोंमें तीसरा अपायापगमातिशय गुण, और चौथा पूजातिशय गुण, इन दोनों गुणोंकी विस्तार रूप चौतीस अतिशय होती है, तिनका स्वरूप	१
३	श्री देवाधिदेव अष्टारह दूषणसें रहित होते हैं तिसका नाम	४
४	श्री देवाधिदेवके चौबीस नाम दो श्लोकों करिके कहे हैं	४
५	पीबली वत्सर्पिणीमें जो चौबीस तीर्थकर दूये हैं, तिनका नाम	५
६	वर्त्तमान श्री रूपनादि चौबीस अरिहंतके नाम	१०
७	चौबीस तीर्थकरोंके नाम किस किस कारणसे दूये हैं, सो सा मान्य और विशेष यह दो अर्थ सहित कहे हैं	१०
८	चौबीस तीर्थकरोंके कुल अरु शरीरका वर्ण कहा है	१४
९	चौबीस तीर्थकरोंके वक्षिण पगोंमें जो चिन्ह होते हैं, सो कहे हैं	१५
१०	चौबीस तीर्थकरोंके पिताओंका नाम	१५
११	चौबीस तीर्थकरोंके माताओंका नाम	१७
१२	चौबीस तीर्थकरोंके साथ बावन बोलका संबंध है तिस बावन बोलका नाम तथा स्वरूप संक्षेप लिखा है	१८
१३	जिस तीर्थकरोंके निवारण दूवा पीने तीर्थका व्यवच्छेद दूवा सो	२५
॥	अथ दूसरे परिच्छेदमें कृदेवका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥	
१	कृदेवमें श्रीसेवनादिक धनुत दूषण बताये हैं	२५

हो जावे, इत्यादिक अनेक वार्ता चमत्कृतियुक्त इस ग्रंथमें सूचन कराई है, इसवास्ते यह ग्रंथ, उत्कृष्ट सुबोधकारक अरु कुमार्गकी प्रवृत्तिसे दटाने वाला बहोत मनोरंजक है इन ग्रंथस्थ सब बातके यथार्थ स्वरूप इस जगापर लिखनेसे प्रस्तावनाकी वृद्धि होति है इस वास्ते बांचने वाले सज्जनोंको इस ग्रंथका सूक्ष्म बुद्धिसे विचारपूर्वक संपूर्ण अवलोकन करणेसे यथार्थ स्वरूप समजनेमें आ जावेगा

और यह ग्रंथकी हिंदुस्थानी नापामें रचना करी है तिस्से गुर्जर, मारवाड़, पंजाब, पूर्व अरु दक्षिण, आदिक सर्व देशोंके रहनेवाले, कोइनी देशकी नाषा जाननेवालेकोनी बांचनेमें यह ग्रंथ अत्यंत सुगम पड़ेगा

निष्पक्षपात बुद्धिवाले तथा धर्मतत्त्वकी जिज्ञासा करनेके अजिमानो, सद्धर्म अंगीकार करनेके अधिकारी, विवेकी नव्यजीवोंको इस ग्रंथके बांचने तथा पढ़ने सुननेसे उत्तम प्रकारके सद्बोधका लाभ प्राप्त होवेगा, ऐसा जानिकें श्रीमच्छंदाबाद शहरके रहनेवाले बाबूसाहेब राय धनपति सिद्धजी प्रतापसिद्धजी बादादूर जो अबके समयमें कुमारपालादिकोंकी तरें जैनशास्त्रोंके उद्धार करनेमें आगेवान गिने जाते हैं, तिन साहेबका बड़ा आश्रय लेकें मैंने यह ग्रंथ ठपा कर प्रसिद्ध किया है, औरजी जैनधर्मकी वृद्धि इच्छनेवाले हमारे साधर्मिक नाइयोंको मैं अर्ज करता हूं कि, उद्धार तापूर्वक यह ग्रंथके यथाशक्ति पुस्तकों खरीद करकें शास्त्रान्यासी जनोंको बांट दे कर मुजकों अवश्य आश्रय देना, ये बड़ा उत्तम पुण्यानुबंधी पुण्य उपाजन करनेका हेतु है, और इस ग्रंथकी श्लोक संख्या (१६०००) आशरे हैं

यह ग्रंथके पढ़ने वाले समस्त साहेबोंको मैं बड़ी नम्रतापूर्वक विनति करता हू कि, ये ग्रंथ बनानेवालेने तो यथार्थ जैनशैली पूर्वक लिखाण किया है, परंतु मैंने मेरी बुद्धिकी न्यूनतासे, दृष्टिदोषकी प्रबलतासे तथा शास्त्रोंकी शैलीका परिपूर्ण ज्ञानके अभावसे जो कुछ अपनेमें चूक करी होवे, सो गुणज्ञ जनोंने मेरेको मंद प्रज्ञावाला जानके मेरे पर सुनजरही रक्क कर दोष सुधार लेना चाहियें, यही सत्पुरुषके लक्षणका श्रेष्ठ चिन्ह है कि बद्ध विस्लेखनेन

## ॥ अस्य ग्रन्थस्यानुक्रमणिका प्रारभ्यते ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम परिच्छेदमे देव तत्त्वका स्वरूप है तिसकी अनुक्रमणिका लिखते है ॥

अंक विषय पृष्ठ

१ ग्रन्थ करणका प्रयोजन १

२ देवादिक तीनों तत्त्वोंमें प्रथम देवतत्त्वका स्वरूप तिसके अंतर्गत श्री अरिहत्तके द्वारा गुण कहे है, तिस बारह गुणोंमेंनी वचनातिशय नामा जो दूसरा गुण है, तिनका पैचीस जेद तथा बारह गुणोंमें तीसरा अपायापगमातिशय गुण, और चौथा पूजातिशय गुण, इन दोनों गुणोंकी विस्तार रूप चौतीस अतिशय होती है, तिनका स्वरूप

३ श्री देवाधिदेव अष्टारह दूषणसे रहित होते हैं तिसका नाम ४

४ श्री देवाधिदेवके चौबीस नाम दो श्लोकों करिके कहे हैं ४

५ पीठजी उत्सर्पिणीमें जो चौबीस तीर्थकर दूये हैं, तिनका नाम ५

६ वर्त्तमान श्री रूपजावि चौबीस अरिहत्तके नाम १०

७ चौबीस तीर्थकरोके नाम किस किस कारणसे दूये है, सो सा मान्य और विशेष यह दो अर्थ सहित कहे हैं १०

८ चौबीस तीर्थकरोके कुल अरु शरीरका वर्ण कहा है १४

९ चौबीस तीर्थकरोके दक्षिण पगोंमें जो चिन्ह हाते है, सो कहे हैं १५

१० चौबीस तीर्थकरोके पिताओंका नाम १५

११ चौबीस तीर्थकरोके माताओंका नाम १७

१२ चौबीस तीर्थकरोके साथ बावन बोलका संबंध है तिस बावन बोलका नाम तथा स्वरूप यंत्रवध लिखा है १८

१३ जिस तीर्थकरोके निवारण दूवा पीठें तीर्थका व्यवस्था दूवा सो. २५

॥ अथ दूसरे परिच्छेदमें कुवेवका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

१ कुवेवमें स्त्रीसेवनादिक बहुत दूषण बताये हैं २५



हो जावे, इत्यादिक अनेक वाचाँ चमत्कृतियुक्त इस ग्रंथमे सूचन कराई है, इसवास्ते यह ग्रंथ, उत्कृष्ट सुबोधकारक अरु कुमार्गकी प्रवृत्तिसे हटाने वाला बहोत मनोरंजक है इन ग्रंथस्थ सब बातके यथार्थ स्वरूप इस जगापर लिखनेसें प्रस्तावनाकी वृद्धि होती है इस वास्ते बाँचने वाले सज्जनोंकोँ इस ग्रंथका सूक्ष्म बुद्धिसें विचारपूर्वक संपूर्ण अवलोकन करणेसे यथार्थ स्वरूप समजनेमें आ जावेगा

और यह ग्रंथकी हिंदुस्थानी जापामें रचना करी है तिस्से गुर्जर, मारवाड़, पंजाब, पूर्व अरु वृद्धिण, आदिक सर्व देशोंके रहनेवाले, कोइनी दे सकी जाषा जाननेवालेकोँनी बाँचनेमें यह ग्रंथ अत्यंत सुगम पड़ेगा

निष्पक्षपात बुद्धिवाले तथा धर्मतत्त्वकी जिज्ञासा करनेके अतिमानो, सद्धर्म अंगीकार करनेके अधिकारी, विवेकी जन्मजीवोंकू इस ग्रंथके बाँचने तथा पढ़ने सुननेसें उत्तम प्रकारके सदबोधका लाभ प्राप्त होवेगा, ऐसा जानिकें श्रीमद्गुणदास शर्करेके रहनेवाले बाबूसाहेब राय धनपति सिद्धजी प्रतापसिद्धजी बादादूर जो अबके समयमें कुमारपालादिकोंकी तरें जैनशास्त्रोंके उद्धार करनेमें आगेवान गिने जाते हैं, तिन साहेबका बड़ा आश्रय ले कें मैंने यह ग्रंथ ठपा कर प्रसिद्ध कीया है, औरनी जैनधर्मकी वृद्धि इन्हनेवाले हमारे साधर्मिक नाइयोंकोँ मैं अर्ज करता हूँ कि, उद्धार तापूर्वक यह ग्रंथके यथाशक्ति पुस्तकों खरीद करके शास्त्रान्यासी जनोकोँ बाँट दे कर मुजकोँ अवश्य आश्रय देना, ये बड़ा उत्तम पुण्यानुबधी पुण्य उपाजन करनेका हेतु है, औ इस ग्रंथकी श्लोक संख्या (१६०००) आशरे हैं

यह ग्रंथके पढ़ने वाले समस्त साहेबोंकोँ मैं बड़ी नम्रतापूर्वक विनति करता हूँ कि, ये ग्रंथ बनानेवालेने तो यथार्थ जैनशैली पूर्वक लखाण कीया है, परंतु मैंने मेरी बुद्धिकी न्यूनतासें, दृष्टिदोषकी प्रबलतासें तथा शास्त्रोंकी शैलीका परिपूर्ण ज्ञानके अभावसें जो कुछ अपनेमें चूक करी होवे, सो गुणज्ञ जनोनें मेरेकोँ भव प्रज्ञावाला ज्ञानके मेरे पर सुनजरही रक्क कर दोष सुधार लेना चाहियें, यही सत्पुरुषके लक्षणका श्रेष्ठ चिन्ह है किं बहु विवेचनेन.

॥ श्रावक नीमसिंह माणक ॥

# ॥ अस्य ग्रन्थस्यानुक्रमणिका प्रारब्धते ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम परिच्छेदमें देव तत्त्वका स्वरूप है तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

अंक	विषय	पृष्ठ
१	ग्रन्थ करणका प्रयोजन	१
२	देवादिक तीनों तत्त्वोंमें प्रथम देवतत्त्वका स्वरूप तिसके अंतर्गत श्री अरिहंतके द्वारा गुण कहे हैं, तिस बारह गुणोंमेंची वचनातिशय नामा जो दूसरा गुण है, तिनका पैंतीस जेद तथा बारह गुणोंमें तीसरा अपायापगमातिशय गुण, और चौथा पूजातिशय गुण, इन दोनों गुणोंकी विस्तार रूप चौतीस अतिशय होती है, तिनका स्वरूप	१
३	श्री देवाधिदेव अठारह दूषणसे रहित होते हैं तिसका नाम	४
४	श्री देवाधिदेवके चौबीस नाम दो श्लोकों करिके कहे हैं	७
५	पीठली उत्सर्पिणीमें जो चौबीस तीर्थकर दूये हैं, तिनका नाम	९
६	वर्तमान श्री रूपनादि चौबीस अरिहंतके नाम	१०
७	चौबीस तीर्थकरोंके नाम किस किस कारणसे दूये हैं, सो सा मान्य और विशेष यह दो अर्थ सहित कहे हैं	१०
८	चौबीस तीर्थकरोंके कुल अरु शरीरका वर्ण कहा है	१४
९	चौबीस तीर्थकरोंके दक्षिण पगोंमें जो चिन्ह होते हैं, सो कहे हैं	१५
१०	चौबीस तीर्थकरोंके पिताओंका नाम	१५
११	चौबीस तीर्थकरोंके माताओंका नाम	१७
१२	चौबीस तीर्थकरोंके साथ बावन बोलका संबंध है तिस बावन बोलका नाम तथा स्वरूप यंत्रबध लिखा है	१८
१३	जिस तीर्थकरोंके निवारण दूवा पीठें तीर्थका व्यवहार दूवा सो.	२५

॥ अथ दूसरे परिच्छेदमें कुवेवका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

१ कुवेवमें स्त्रीसेवनाविषय बहुत दूषण बताये हैं

हो जावे, इत्यादिक अनेक वार्त्ता चमत्कृतियुक्त इस ग्रंथमे सूचन कराई है, इसवास्ते यह ग्रंथ, उत्कृष्ट सुबोधकारक अरु कुमार्गकी प्रवृत्तिसे दृढ़ाने वाला बहोत मनोरञ्जक है इन ग्रंथस्थ सब वातके यथार्थ स्वरूप इस जगापर लिखनेसे प्रस्तावनाकी वृद्धि होति है इस वास्ते बांचने वाले सज्जनोंकों इस ग्रंथका सूक्ष्म बुद्धिसे विचारपूर्वक संपूर्ण अवलोकन करणसे यथार्थ स्वरूप समजनेमें आ जावेगा

और यह ग्रंथकी हिंदुस्थानी नाषामें रचना करी है तिस्से गुर्जर, मारवाड़, पंजाब, पूर्व अरु वङ्गिण, आदिक सर्व देशोंके रहनेवाले, कोइनी दे सकी नाषा जाननेवालेकोंनी बांचनेमें यह ग्रंथ अत्यंत सुगम पड़ेगा

निष्पक्षपात बुद्धिवाले तथा धर्मतत्त्वकी जिज्ञासा करनेके अजिमानो, सधर्म अंगीकार करनेके अधिकारी, विवेकी नव्यजीवोंकू इस ग्रंथके बांचने तथा पढ़ने सुननेसे उत्तम प्रकारके सदबोधका लाभ प्राप्त होवेगा, ऐसा जानिकें श्रीमद्गुवाबाद शहरके रहनेवाले बाबूसाहेब राय धनपति सिद्धजी प्रतापसिद्धजी बादादूर जो अबके समयमें कुमारपालादिकोंकी तरें जैनशास्त्रोंके उद्धार करनेमें आगेवान गिने जाते हैं, तिन साहेबका बड़ा आश्रय लेके मैंने यह ग्रंथ ठपा कर प्रसिद्ध किया है, औरनी जैनधर्मकी वृद्धि इष्टनेवाले हमारे साधर्मिक नाइयोंकों में अर्ज करता हूं कि, उद्धार तापूर्वक यह ग्रंथके यथाशक्ति पुस्तकों खरीद करके शास्त्राज्यासी जनोंकों बांट दे कर मुजकों अवश्य आश्रय देना, ये बड़ा उत्तम पुण्यानुबन्धी पुण्य उपाजन करनेका हेतु है, और इस ग्रंथकी श्लोक संख्या (१६०००) आशरे हैं

यह ग्रंथके पढ़ने वाले समस्त साहेबोंकों में बड़ी नम्रतापूर्वक विनति करता हू कि, ये ग्रंथ बनानेवालेने तो यथार्थ जैनशैली पूर्वक लिखाण किया है, परंतु मैंने मेरी बुद्धिकी न्यूनतासे, दृष्टिदोषकी प्रबलतासे तथा शास्त्रोंकी शैलीका परिपूर्ण ज्ञानके अभावसे जो कुछ ठपनेमें चूक करी होवे, सो गुणज्ञ जनोंने मेरेकों मंद प्रज्ञावाला जानके मेरे पर सुनजरदी रख कर दोष सुधार लेना चाहियें, यही सत्पुरुषके लक्षणका श्रेष्ठ चिन्ह है कि बहुत विवेचनेन.

## ॥ अस्य ग्रन्थस्यानुक्रमणिका प्रारब्धते ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम परिच्छेदमें देव तत्त्वका स्वरूप है तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

अंक विषय पृष्ठ

१ ग्रन्थ करणका प्रयोजन १

२ देवादिक तीनों तत्त्वोंमें प्रथम देवतत्त्वका स्वरूप तिसके अंतर्गत श्री अरिहंतके वारा गुण कहे हैं, तिस बारह गुणोंमेंनी वचनातिशय नामा जो दूसरा गुण है, तिनका पैत्तीस जेद तथा बारह गुणोंमें तीसरा अपायापगमातिशय गुण, और चौथा पूजातिशय गुण, इन दोनों गुणोंकी विस्तार रूप चौतीस अतिशय होती है, तिनका स्वरूप

३ श्री देवाधिदेव अष्टारह दूषणसे रहित होते हैं तिसका नाम ४

४ श्री देवाधिदेवके चौबीस नाम दो श्लोकों करिके कहे हैं ४

५ पीठली उत्सर्पिणीमें जो चौबीस तीर्थकर दूये हैं, तिनका नाम ५

६ वर्त्तमान श्री कृपणादि चौबीस अरिहंतके नाम १०

७ चौबीस तीर्थकरोंके नाम किस किस कारणसे दूये हैं, सो सा मान्य और विशेष यह दो अर्थ सहित कहे हैं १०

८ चौबीस तीर्थकरोंके कुल अरु शरीरका वर्ण कहा है १४

९ चौबीस तीर्थकरोंके वक्षिण पगोंमें जो चिन्ह होते हैं, सो कहे हैं १५

१० चौबीस तीर्थकरोंके पिताओंका नाम १५

११ चौबीस तीर्थकरोंके माताओंका नाम १७

१२ चौबीस तीर्थकरोंके साथ बावन बोलका संबंध है तिस बावन बोलका नाम तथा स्वरूप यंत्रबध लिखा है १८

१३ जिस तीर्थकरोंके निवाण दूवा पीठें तीर्थका व्यवच्छेद दूवा सो ३५

॥ अथ दूसरे परिच्छेदमें कृदेवका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

१ कृदेवमें स्त्रीसेवनादिक धद्रुत दूषण बताये हैं ३५

हो जावे, इत्यादिक अनेक वार्त्ता चमत्कृतियुक्त इस ग्रंथमे सूचन कराई है, इसवास्ते यह ग्रंथ, उत्कृष्ट सुबोधकारक अथ कुमार्गकी प्रवृत्तिसे दृष्टाने वाला बहोत मनोरञ्जक है इन ग्रंथस्थ सब बातके यथार्थ स्वरूप इस जगापर लिखनेसे प्रस्तावनाकी वृद्धि होती है इस वास्ते बांचने वाले सज्जनोको इस ग्रंथका सूक्ष्म बुद्धिसे विचारपूर्वक संपूर्ण अवलोकन करणेसे यथार्थ स्वरूप समजनेमें आ जावेगा।

और यह ग्रंथकी हिंङ्गस्थानी जापामें रचना करी है तिस्सें गुर्झर, मारवाड, पंजाब, पूर्व अरु दक्षिण, आदिक सर्व देशोंके रहनेवाले, कोइनी दे शकी जाया जाननेवालेकोनी बांचनेमें यह ग्रंथ अत्यंत सुगम पड़ेगा।

निष्पक्षपात बुद्धिवाले तथा धर्मतत्त्वकी जिज्ञासा करनेके अजिमानो, सद्धर्म अंगीकार करनेके अधिकारी, विवेकी नव्यजीवोंको इस ग्रंथके बांचने तथा पढ़ने सुननेसे उत्तम प्रकारके सदबोधका लाभ प्राप्त होवेगा, औसा जानिकें श्रीमद्गुदाबाव शहरके रहनेवाले बाबूसाहेब राय धनपति सिंदजी प्रतापसिंदजी बाबादूर जो अबके समयमें कुमारपालादिकोंकी तरें जैनशास्त्रोंके उद्धार करनेमें आगेवान गिने जाते हैं, तिन साहेबका बड़ा आश्रय ले कें मैंने यह ग्रंथ ठपा कर प्रतिष् कीया है, औरनी जैनधर्मकी वृद्धि इच्छनेवाले हमारे साधर्मिक नाइयोंको मैं अर्ज करता हूं कि, उद्धार तापूर्वक यह ग्रंथके यथाशक्ति पुस्तकों खरीद करके शास्त्रान्यासी जनोंको बांट दे कर मुजकों अवश्य आश्रय देना, ये बड़ा उत्तम पुण्यानुबन्धी पुण्य उपाजन करनेका हेतु है, औ इस ग्रंथकी श्लोक संख्या (१६०००) आशरे हैं।

यह ग्रंथके पढ़ने वाले समस्त साहेबोंको मैं बड़ी नम्रतापूर्वक विनति करता हू कि, ये ग्रंथ बनानेवालेने तो यथार्थ जैनशैली पूर्वक लिखाण कीया है, परंतु मैंने मेरी बुद्धिकी न्यूनतासे, दृष्टिकोषकी प्रबलतासे तथा शास्त्रोंकी शैलीका परिपूर्ण ज्ञानके अभावसे जो कुछ बपनेमें चूक करी दोवे, सो गुणज्ञ जनोंने मेरेको मंद प्रह्लावाला ज्ञानके मेरे पर सुनजरही रक्क कर दोष सुधार लेना चाहिये, यही सत्पुरुषके लक्षणका श्रेष्ठ चिन्ह है किं बहु विस्लेखनेन.

## ॥ अस्य ग्रन्थस्यानुक्रमणिका प्रारब्धते ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम परिच्छेदमें देव तत्त्वका स्वरूप है तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

श्रृंक	विषय	पृष्ठ
१	ग्रन्थ करणका प्रयोजन	१
२	देवादिक तीनों तत्त्वोंमें प्रथम देवतत्त्वका स्वरूप तिसके अत र्गत श्री अरिहंतके वारा गुण कहे हैं, तिस बारह गुणोंमेंनी वचनातिशय नामा जो दूसरा गुण है, तिनका पैत्तीस जेद तथा बारह गुणोंमें तीसरा अथायापगमातिशय गुण, और चौथा पूजातिशय गुण, इन दोनों गुणोंकी विस्तार रूप चौती स अतिशय होती है, तिनका स्वरूप	१
३	श्री देवाधिदेव अष्टारह दूषणसे रहित होते हैं तिसका नाम	४
४	श्री देवाधिदेवके चौबीस नाम दो श्लोकों करिके कहे हैं.	७
५	पीठली वत्सर्पिणीमें जो चौबीस तीर्थकर दूये हैं, तिनका नाम	९
६	वर्त्तमान श्री कृपनादि चौबीस अरिहंतके नाम	१०
७	चौबीस तीर्थकरोके नाम किस किस कारणसे दूये हैं, सो सा मान्य और विशेष यह दो अर्थ सहित कहे हैं	१०
८	चौबीस तीर्थकरोके कुल अरु शरीरका वर्ण कहा है	१४
९	चौबीस तीर्थकरोके बह्मिण पगोंमें जो चिन्ह होते हैं, सो कहे हैं	१५
१०	चौबीस तीर्थकरोके पिताश्योंका नाम	१५
११	चौबीस तीर्थकरोके मातायोंका नाम	१७
१२	चौबीस तीर्थकरोके साथ बावन बोलका सबध है तिस बावन बोलका नाम तथा स्वरूप यंत्रबध लिखा है	१८
१३	जिस तीर्थकरोके निवारण दूवा पीठें तीर्थका व्यवच्छेद दूवा सो	२५
॥	अथ दूसरे परिच्छेदमें कुदेवका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥	
१	कुदेवमें स्त्रीसेवनादिक बहुत दूषण बताये हैं	३५

- १ जैनमत वाले ईश्वरकों मानते हैं यह बात सिद्ध करी है ३७
- २ जगत्का कर्ता ईश्वर नहीं है यह बातका निर्णय इहामें चला है ४०
- ४ एक तो जगदुत्पत्तिसे पहले जो केवल जगत्का उपादानादिक को इन्ही कारण वा दूसरी वस्तु नहीं थी, एकही पुण्य पुण्य सन्निध नवादि स्वरूप युक्त परमेश्वर था ऐसा ईश्वर जगत् या सर्ग वस्तुका रचने वाला कितनेक मतावलम्बियोंके अनिमित्त है और कितनेक मतावलम्बियोंको तो एक ईश्वर और दूसरी जगत् उत्पन्न करणकी सामग्री, ए दोनो किसीने बणाये नहीं ऐसा सम्मत है, इसी तरफ दो प्रकारके परमेश्वरमें पहले जो केवल एकही ईश्वर था, उसने यह जगत् रचा है इसी तरहके मतावलम्बियोंका खमन ४१
- ५ ईश्वरकी शक्तिही जगत्का उपादानकारन है यह प्रश्नका उत्तर ४२
- ६ ईश्वर उपादान कारण बिनाही जगत् रच सका है तिसका उत्तर ४३
- ७ ईश्वर सृष्टिकर्ता प्रत्यक्ष प्रमाणसे सिद्ध करनेवाले पूर्वपक्षीयोंका खमन ४३
- ८ जगत्के कर्ताबिना जगत् कैसे हो गया इसी प्रकारके प्रश्नका जू दे जू दे है पक्षों करके उत्तर दे कर समाधान कीया है ४४
- ९ ईश्वर जगत्में अपनी ईश्वरता प्रगट करनेकू सृष्टि रचता है, ऐसे मानने वाले मतावलम्बियोंका खमन ४६
- १० ईश्वरने परोपकारके लिये सृष्टि रची है, ऐसे पूर्वपक्षीयोंका खमन ४७
- ११ ईश्वरही पुण्य पापादि कराता है ऐसे पूर्वपक्षीयोंका खमन ४८
- १२ यह जगत् बाजीगरकी बाजीवत् है, नरक स्वर्ग और पुण्य पापा वि कुछ नहीं है ऐसे कहने वाले पूर्वपक्षीयोंका खमन ४८
- १३ एकही परम ब्रह्म पारमार्थिक सधूप मानने वाले पूर्वपक्षीयों का प्रश्नका उत्तर पूर्वक खमन, इसमें अद्वैत मतका जो खमन है ४८
- १४ शंकरस्वामीके शिष्य आनन्दगिरिने शंकरविश्वविजय ग्रन्थके अष्टावनवे प्रकरणमें जो शंकरस्वामीका वृत्तांत लिखा है, तिसमें ऐसा प्रतीत होता है कि वेदांतीयोंका अद्वैत ब्रह्मज्ञान जब तां ६ यह स्थूलवेद रहेगी, तब तां ६ रहेगा तथा शंकरस्वामी आप नी अज्ञानी अरु कामी बनगया है तिसका दास्यकारक कथा पूर्वक अद्वैतमतका खमन ५५

- १५ दूसरा जो जगत्के उपादान कारणवाला एक ईश्वर और दूसरी जगत् उत्पन्न करणकी सामग्री, ये दो पदार्थ अनादि है, इसी तरे कहनेवाले मतवालोंकी पूर्वपक्ष उत्तरपक्ष पूर्वक खमन ६२
- १६ ईश्वरकूँ जगत्का कर्ता सिद्ध करनेवाला अनुमान प्रमाण है इस प्रकारके कथन करनेवाले पूर्वपक्षीयोके प्रश्नोका समाधान ६६
- १७ ईश्वर जगवान् सर्वजीवोंकूँ सृजनकर्म करनेहीमें प्रवृत्त कर्ता है इसीतरे कहनेवाले पूर्वपक्षीयोका खमन ६७
- १८ सृजासृज कर्म करणोंमें जीव आपही प्रवृत्त होता है, और तिस कर्मके फल देनेवाला ईश्वर है इस प्रकारके पूर्वपक्षीयोका खमन ६७
- १९ ईश्वर अपनी क्रीडाके वास्ते किसीकूँ नरकमें मालता है किसीकूँ तिर्यचमें उत्पन्न करता है इत्यादि विरुद्ध वाक्य कहनेवाले मतवादीयोका पूर्वपक्ष उत्तरपक्ष पूर्वक खमन ७०
- २० एक ईश्वर है यह बात सिद्ध करणें वाले मतवादीयोका खमन ७३
- २१ ईश्वरकों देहधारी मानने वाले मतवादीयोका खमन ७४
- २२ जगत्का कर्ता ईश्वर अवश्य होना चाहिये, इसीतरेके खरड झा नीयोंके ईश्वरवादका खमन ७५
- २३ सर्वथा जगत्का कर्ता किसीतरेजी ईश्वर सिद्ध नहीं हो सक्ता है यह बात विशेष करके जाननेकी चाहना रखनेवाले सुझा नोने सम्मतितर्कादि ग्रंथ देखना तिसमेंसे बीस ग्रंथके नाम ७५

तीसरे परिच्छेदमें गुरुतत्त्वका स्वरूप कहा है तिसकी अनुक्रमणिका ॥

- १ शुद्धगुरुके लक्षण जैनमतानुसारे कहा हैं ७३
- २ प्राणातिपातादिक पांच महाव्रतका स्वरूप ७४
- ३ प्राणातिपातादिक पांच महाव्रतमें प्रत्येक व्रतकी पांच पांच जावना ७६
- ४ चरण सित्तरीके सित्तर जेद जैसेकि पांच महाव्रत, दश प्रकारका श्रमणधर्म, सत्तर प्रकारका सयम, दश प्रकारका वैयावृत्त, नव प्रकारें ब्रह्मचर्यकी सुप्ति, ज्ञानादिकत्रिक, बारह प्रकारका तप, क्रोधादि चारका निग्रह, यह सर्व सित्तर जेदके स्वरूप ९१



- ५ करणसित्तरीके सितर नेद जैसेकि चार प्रकारकी विमविशुद्धि, पांच प्रकारकी समिति, बाह्य प्रकारकी जायना, ५५ प्रकारकी पढिमा, पांच प्रकारे इन्द्रियोका निरोध, पञ्चीस प्रतिज्ञेखना, ती न गुप्ति, अरु चार प्रकारका अनियम, यह सितर नेदके स्वरूप. ९४
- ६ जैसा जैनमतके शास्त्रोंमें गुरुका स्वरूप लिखा है, वैसी वृत्ति वाला कोईनी जैनका साधु देखनेमें नही आता है असी आगका करणो वालेका समाधान तथा इस पंचमकालमें कैसी प्रगतिवा लेको समयी कहना अरु बकुशावि पांच चारित्रके स्वरूप. १०९

॥ चतुर्थ परिच्छेदमें कुगुरुका स्वरूप कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

- १ प्रथम क्रियावादीयोंके कालवादी, ईश्वरवादी, आत्मवादी, नियतवादी अरु स्वजाववादी यह पांच विकल्प करके तिसका पृथक् पृथक् नेद मिलायके एकसौ अस्सी मत कहे हैं ११६
- २ दूसरे अक्रियावादीयोंके स्वरूप पूर्वक चौराशीमत दिखलाये हैं ११९
- ३ तीसरा अज्ञानवादीयोंका स्वरूप अरु तिनका सठसठ मत १२०
- ४ चौथा विनयवादीयोंके बत्तीस मत १२५
- ५ क्रियावादीयोंमें प्रथम कालवादीयोंके मतका खमन १२५
- ६ क्रियावादीयोंमें दूसरे ईश्वरवादीयोंके मतका खमन १२४
- ७ क्रियावादीयोंमें तीसरे आत्मवादी (अद्वैत) वादीयोंका खमन १२४
- ८ क्रियावादीयोंमें चौथे नियतवादीयोंके मतका खमन १२४
- ९ क्रियावादीयोंमें पांचमे स्वजाववादीयोंके मतका खमन १२१
- १० दूसरे अक्रियावादीयोंमें यहज्ञावादीयोंके मतका खमन १२२
- ११ तीसरे अज्ञान वादीयोंके मतका खमन १२३
- १२ चौथे विनय वादीयोंके मतका खमन १२६
- १३ जघ्यजीवोंको शीघ्र बोध होने वास्ते षट् दर्शनका किंचित् स्वरूप, तिसमें प्रथम बौद्धदर्शनका स्वरूपमें बौद्धमतके गुरुका लिंग, बौद्ध जगवान्के बत्तीस नाम, सात बुद्धके नाम और सातमें से पीठजा जो शाक्यसिंह वस्त्रके नाम तथा शृण्ववादी बौद्धोंके है नाम गुरुओंका नाम

- तथा तर्क शास्त्रोंके नाम, बौद्धोंकी चार शाखाके नाम तथा बौ  
द्ध मतमें चार वस्तु मानते हैं तिसका नाम इत्यादि १३७
- १४ दूसरा नैयायिक दर्शनका स्वरूपमें नैयायिक मतके गुरुका लिंग,  
इनके देवका अठारह अवतारका नाम, प्रत्यक्षादि चार प्रमाण, अरु  
सोलह पदार्थका नाम तथा इनके तर्क शास्त्रोंके नाम इत्यादि १४०
- १५ तीसरा वैशेषिक मतका सङ्क्षेपसे स्वरूप १४१
- १६ चौथा सांख्यमतका स्वरूप बहोत विस्तारसे १४२
- १७ पांचवा मीमांसकमत इसका अपरनाम जैमिनीय तिसका स्वरूप १४७
- १८ नास्तिक चार्वाक दर्शन इनको लोक वाममार्गी कहते हैं ए ना  
स्तिक दर्शन पद दर्शनमें नहीं गिने जाते हैं, इसका स्वरूप तथा  
यह मत बृहस्पतिनाम पुरुषसे उत्पन्न हुआ तिसकी कथा १५२
- १९ प्रथम बौद्धमतमें पूर्वापर विरोध तथा इस मतका खमन १५९
- २० दूसरे नैयायिक मतमें पूर्वापर विरोध तथा इस मतका खमन  
इसमेंनी सृष्टिका कर्ता ईश्वर न मानना चाहिये तथा ईश्वर सु  
ख दुःखादिके देनेवाला नहीं है, यह बात सिद्ध करी है १६६
- २१ तीसरे वैशेषिक मतका खमन १७९
- २२ चौथे सांख्य मतका खमन १८२
- २३ पांचवे मीमांसक मतका खमनमें वेदांतीयोके ब्रह्म ( अद्वैत )  
का खमन तो पहिलेही ईश्वरवादमें कर चुके हैं परंतु इनका अ  
परनाम जैमिनीय मत है, तिसका स्वरूप तथा खमन १८५
- २४ वेदोंमें जो यज्ञादि करके हिंसा करणी लिखी है तिसका खमन  
इहां प्रसंगसे आधादिक करणोंमें पाप लगता है यदनी कहा है १८६
- २५ चार्वाक ( नास्तिक ) मतका पूर्वपक्ष उत्तर पक्ष करके खमन १९८

॥ पंचम परिच्छेदमें शुद्ध धर्मतत्त्वका स्वरूप कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

- १ नवतत्त्वमें प्रथम जीवतत्त्वका स्वरूप २०४
- २ पृथिवी आदिक पांच स्थावरोंमें जीवत्व सिद्ध करा है २०९
- ३ दूसरे अजीवतत्त्वके स्वरूपमें धर्मास्तिकायादिक इन्द्रियोंका लक्षण २१२

- ४ तीसरे पुण्य तत्त्वके स्वरूपम पुण्य उपाजित कर्मोंका नाम प्रकार  
 अरु पुण्य वैतालीश प्रकार करु नोगनेम आता है, तिसका नाम. २१४
- ५ चौथे पाप तत्त्वके स्वरूपम कर्माजायादी नास्तिक अरु वैश  
 तिक कहते हैं कि पुण्य पाप जो है, सो आकाशके कृत रश्मि  
 श अस्त है अरु इनके फल नोगनेके स्थान जो मार्ग नरक मो  
 नी नही है, इसी प्रकारके कथन करणो तात्रोंका निगमरण क  
 रके पाप अछारह प्रकारमें बंधाता है, सो व्याप्ती प्रकारों करके  
 नोगनेमें आता है तिसका नाम, तदुत्तर्गत २२५ ये छठमे नोव  
 उच्च वर्ण नही मानने वाले नास्तिक लोकों रानों निराकरण है २१५
- ६ पांचवे आश्रव तत्त्वके स्वरूपमें आश्रवके उत्तर जेव जो पांच  
 इडिय, चार कपाय, पांच अव्रत, पञ्चीश अस्त किपा अरु  
 तीन योग, यह वैतालीश जेव कहे हैं, इनमें आठ मदका स्वरूप  
 तथा पांच अव्रत इव्य अरु नाव यह दोनों जेवों करके दीवाये  
 हैं तथा इव्यहिता अरु नावहिताका स्वरूप चतुर्नगी करके कहा  
 है अैसे पांचोही व्रतोंका स्वरूप चतुर्नगी पूर्वक कहे है २२७
- ७ ठेके सवरतत्त्वके स्वरूपमें पांच समिति आदिक सत्तावन जेव  
 कहे हैं, इनका स्वरूप गुरुतत्त्वमें लिखे हैं औ इहां तो तिसमेंसे  
 बावीश परीसहोंका स्वरूप विस्तारसे है २३७
- ८ सातवे निर्झरा तत्त्वके स्वरूप गुरुतत्त्वमें सहेपसे कहे है २४०
- ९ आठवे बध तत्त्वके स्वरूपमें कोइक वाकी कहते हैं कि जीव प्र  
 थम पुण्य पापके बंध करके रहित था, पीछेसे पुण्य पापका बध  
 दूआ है इव्यावि ब विकल्पका समाधान करके पीछे बधके मूल  
 हेतु चार और पांच प्रकारके मिथ्यात्व, वारह प्रकारकी अविरति,  
 पञ्चीश कषाय अरु पंदरा योग, मिल कर सत्तावन उत्तर हेतुके नाम २४०
- १० नवमे तत्त्वमें सत्पदावि नव द्वारों करके सिद्ध जगवानका स्वरूप २५१
- 
- ॥ षष्ठ परिच्छेदमें चौबह गुणस्थानकका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥
- १ प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानकके स्वरूपमें मिथ्यात्वकों गुणस्था

नक किसी रीतिसे कहते है? ऐसी आशंकाका समाधान तथा मिथ्यात्वका कबुक स्वरूपनी कहा है २५५

२ दूसरे सास्वादन गुण स्थानकके स्वरूपमें इसका कारण नूत जो औपशमिक सम्यक्त्व है तिसका स्वरूप २५७

३ तीसरा मिश्रगुणस्थानकका स्वरूप २५८

४ चौथे अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकके स्वरूपमें सम्यक् दृष्टिजीवका लक्षण औ यथा प्रवृत्त्यादि त्रण करणोंका लक्षण २५९

५ पांचवे देशविरति गुणस्थानकके स्वरूपमें श्रावकका पट्कर्मदि. २६१

६ ठेठे प्रमत्तसयत गुणस्थानकके स्वरूपमें किंचित् धर्मध्यानका स्वरूप तथा यह गुणस्थानमें निरालंबन ध्यान होता नहीं है तिसका निश्चय करके, आजके कालमें कितनेक अपनी कल्पनासे औरका और बोलते हैं तिनकों उपदेश दीया है २६४

७ सप्तम अप्रमत्त गुण स्थानकके स्वरूपमें धर्मध्यानका स्वरूप मै त्रयादि अनेक नेद रूप तथा यह गुण स्थानमें सामायिकादि पट् आवश्यक नहीं है तिसका व्याख्यानादि करे हैं २६८

८ आठवा, नववा, दसवा, इग्यारहवा, अरु बारहवा, यह पांच गुण स्थानोंके स्वरूप एकिठे कहे हैं, इसमें उपशम श्रेणि और क्षपक श्रेणिका किंचित् स्वरूप और शुक्लध्यानका स्वरूप अष्टे विस्तार पूर्वक, रेचक, पूरक, कुनकादि ध्यानका व्युत्पत्ति सहित अर्थ करके और स्वरूप कहके निरूपण करा है २७१

९ तेरहवे सयोगी गुण स्थानमें सयोगी केवलीका जाब कहा है, तथा तीर्थंकरनाम कर्म उपार्जन करनेका बीश स्थानक औ तीर्थंकर जगवान्की महिमा तथा तीर्थंकरनाम कर्म वेदनेका स्वरूप, केवली समुद्धातका स्वरूप तथा कौन समुद्धात करता है? अरु कौनसा केवली नहीं करता है? तिसका स्वरूप तथा मना वि योगोंको किसी तरेह सुखा करता है, इत्यादि स्वरूप २७३

१० चौदहवा अयोगी गुण स्थानकका स्वरूप तिसमें कर्मरहित जीवों की जो कर्ध्वगति होती है तिसका हेतु औ सिद्धोंकी स्थिति, सिद्धोंका आठ गुण, सिद्धोंका सुख अरु मुक्तिका स्वरूप २७७

सप्तम परिच्छेदम सम्यग् दर्शनका स्वरूप गिरा दी. तिसरी अनुक्रमणिका ॥

- १ व्यवहार अरु निश्चय यद् दो प्रकारके सम्यक्त्वके स्वरूपमें वेदादि तीन तत्त्वोंपर व्यवहार अरु निश्चय यद् दो प्रकारके श्रद्धान होते है, तिसमें प्रथम व्यवहार श्रद्धानका कथन तथा तीन तत्त्वोंमें प्रथम देवतत्त्वके स्वरूप कथनमें श्री अरि हतजीके नामादि चार निरूपका स्वरूप. २९३
- २ श्री अरिहतजीकी प्रतिमाकों पूजना नमस्कार करणी तिसके स्वरूप प्रतिपादनमें मूर्ति अथवा पुजक लोकोका प्रभान्तर पूर्वक तिनकी कुशुक्तियोंका अच्छी तरेसे खंमन कीया है .. २९३
- ३ गुरुतत्त्वका स्वरूप. २९४
- ४ धर्मतत्त्वके स्वरूपमें दयाका स्वरूप अनेक प्रकारसे कहे है . २९७
- ५ निश्चय धर्मका स्वरूप . ३००
- ६ निश्चय सम्यक्त्वका स्वरूप ३०१
- ७ सम्यक्त्वकी करणी ३०१
- ८ सम्यक्त्वका शका नाम अतिचारमें पचम कालमें एक सौ बीस वर्षके आयुष्यकी शकाका समाधान तथा जरत क्षेत्रके समुद्र अरु जूमिसवधी आशकायोंके समाधान तथा पृथिवीका गोला फिरेते है, एसी आशकाका समाधान तथा वेदोंका प्राचीन अर्थ ढोढके नवीन अर्थ बनानेका कारण तथा जैनमतके ग्रंथ पुस्त कारूढ कबसे हूयें इत्यादि ३०२
- ९ दूसरा आकांक्षा नामा अतिचारका स्वरूप ३१३
- १० तीसरा वितिगिह्वा नामा अतिचारका स्वरूप इसमें पुण्य पापादि का फल जीवकों अवश्य प्राप्त होते हैं, यद् बातका निश्चय तथा कुशुर्वाओंके अनाचार प्रदर्शित करा है. ३१३
- ११ चौथा मिथ्यादृष्टिकी प्रशंसा रूप अतिचारका स्वरूप ३१५
- १२ पांचमा मिथ्यादृष्टिके परिचय करणेका अतिचार ३१६
- १३ रायानियोगेणादि है आगारका स्वरूप ३१६
- १४ अन्नमृणालोगेणादि चार आगारका स्वरूप ३१६

॥ अष्टम परिच्छेदमें चारित्रका स्वरूप कहा है तिसकी अनुक्रमणिका ॥

- १ गृहस्थके देशविरति चारित्रमें इव्य जावसें प्रथम व्रतका स्वरूप ३१८
- २ आकुट्टी आदिक चार प्रकारकी हिंसाका स्वरूप. ३१८
- ३ गृहस्थसें सवा विश्वा दया पल सक्ति है तिसका स्वरूप. ३१९
- ४ प्राणातिपात विरमण व्रतके पांच अतिचारके स्वरूप ३२२
- ५ दूसरा स्थूल मृपावाद विरमण व्रतका स्वरूप ३२३
- ६ तीसरा स्थूल अदत्तादान विरमण व्रतका स्वरूप ३२६
- ७ चौथा मैथुन त्याग व्रतका स्वरूप ३२९
- ८ पांचवा स्थूल परिग्रह परिमाण व्रतका स्वरूप ३३२
- ९ षष्ठा दिक् परिमाण व्रतका स्वरूप .. ३३६
- १० सातमा जोगोपजोग व्रतका स्वरूप ३३८
- ११ मदिरा पान करनेमें एकावन्न दोष दीखलाया है ३३९
- १२ मांस जह्ण करणेमें अनेक प्रकारके दूषण दीखलाया है ३४१
- १३ निर्विवेकी लोक, व्याघ्र काग प्रमुख हिंसक जीवोंको अपना धर्मोपदेशक गुरु मानते हैं तिनोके मतका खंमन ३४२
- १४ मांसादारी आपही आपको अधर्मी बनाते हे तिनका स्वरूप ३४४
- १५ मांस जह्ण करणेवाले महामूढ है यह सिद्ध करा है ३४४
- १६ मांस खानेमें अनुत्तर दूषण बताये है ३४६
- १७ मांस खानां जिनोने कथन करा उन कुशास्त्र बनाने वालोंका नाम ३४६
- १८ जैसे और विचारे निरपराधी पशुयोंका मांस खानां दुष्ट जो कोने अपने बनाये कुशास्त्रोंमें लिख दीया है तैसें मनुष्य का मांस खानां किसी शास्त्रमें नही लिखा है, तिसका हेतु ३४६
- १९ माखन अरु मधुआदिक अजह्य वस्तुके जह्णमें दोषोत्पत्ति ३४७
- २० रात्रि नोजन करणेसें इस लोकमें तो प्रत्यह दूषण अरु परलोकमें अनेक दुखका हेतु होता है इत्यादि रात्रिनोजनका निषेध ३५०
- २१ बद्धबीजादि अजह्य वस्तु खानेका निषेध ३५४
- २२ बत्तीस अनतकाय अजह्यवस्तु है तिसका नाम ३५६
- २३ सच्चित परिमाणादि चौबह नियमका स्वरूप ३५७
- २४ श्वाल कर्म आदिक पंवरह कर्मादानका स्वरूप ३६०

२५ सप्तम जोगोपजोग व्रतके पांच अतिचारका कथन	३६३
२६ अष्टम अनर्थदम विरमणव्रतका स्वरूप	३६४
२७ आर्त्तध्यानके अनिष्टार्थसयोगादि चार चेदोंका स्वरूप	३६४
२८ रौड ध्यानके हिसानंद रौड आदिक चार चेद	३६७
२९ दूसरा पापकर्मोपदेश अनर्थ दम अरु तीसरा हिसप्रदान अनर्थ दम तथा चौथा प्रमादाचरण अनर्थदमका स्वरूप	३६८
३० अनर्थदम विरमणव्रतके पांच अतिचार	३७०
३१ नवमे सामायिक व्रतके स्वरूपमें बचीस दोषादिके नाम	३७१
३२ दशवा देशावकाशिक व्रतका स्वरूप	३७४
३३ झियारहवा पौषधोषवात व्रतका स्वरूप	३७६
३४ बारहवा अतिधिसविजाग व्रतका स्वरूप	३७९

॥नवम परिच्छेदमें श्रावकोंका दिन कृत्य विधि कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका॥

१ श्रावकों निडा स्वरूप लेनी एक प्रहरादि रात्रिमें जागनां ५०	३७२
२ सवेरकों निडा ठेदनेके बखत पृथ्वीआदिकतत्त्वके वदेनेसे मुख डखादिकका कथन अरु पृथ्वीआदिक पांच तत्त्वोंका स्वरूप	३७३
३ किस किस कार्यमें कौनसा कौनसा तत्त्व छुनाछुन है	३७४
४ पंच परमेष्ठी आदिक जाप किसी रीतिसें करना	३७५
५ धर्म जागरणा किसी तरे करणी	३७७
६ स्वप्न नव कारणोंसे आते हैं तिसका छुनाछुन फलादि	३७७
७ प्रजातमें मातापितादिकोंको नमस्कार करनां इत्यादि कृत्य	३७७
८ श्रावकों सवेरे ठठके चौबह नियमादि करणोंका उपदेश अरु ग्रहण करणोंकी विधि तथा सचित्त वस्तुका स्वरूप	३७७
९ मिठाइकी मर्यादा, विबलका निषेध, तथा वैगन टींबरु आदिक वस्तु न खानेका उपदेश	३७८
१० श्रावकों निरवध आहार करणा तिसका तथा नवकारसी आदिक नियमोंका स्वरूप, अरु चार प्रकारके आहारका विजाग	३७५
११ मलोत्सर्ग, दत्तधावन, केशसमारन, स्नान करनां इत्यादि	३७८
१२ जिनपूजादि करणोंमें प्रथम अंगपूजाका विधि	४०१

१३ प्रथम मूलनायककों पूजनां अरु पीठें दूसरें विंवोंकी पूजा करणी यह तो स्वामी सेवक नाव उहारा ऐसी आशकाका समाधान	४०६
१४ दूसरी अग्रपूजाका स्वरूप	४०७
१५ तीसरी नावपूजाका स्वरूप	४०९
१६ पचोपचारादि बहुत प्रकारके पूजाके चेद	४११
१७ पूजा करणेका विधि वत्तीस प्रकारका	४११
१८ पूजाके इक्कीस प्रकारके नाम	४१३
१९ विपमासनादि वैठके पूजा न करनां इत्यादि स्वरूप	४१३
२० स्नात्र करे पीठें जलधारा देनेका विधि	४१४
२१ आरति अरु मंगलदीपक करणेका विधि	४१५
२२ स्नात्रादिकमें समाचारी विशेषसैं विविध प्रकारका विधि देखने सैं व्यामोह न करनां इत्यादि स्वरूप	४१६
२३ जिन प्रतिमाजी अनेक प्रकारकी होती है इत्यादि	४१६
२४ अविधिसैं जिन मंदिर अरु जिन प्रतिमा बनी होय उसकों न पूजनेका विकल्प न करनां इत्यादि स्वरूप	४१७
२५ जिनमंदिरमें मकड़ीका जाला उतारनेका उपदेश	४१७
२६ सामायिक त्यागकें इव्यपूजा करणी उचित नही ऐसी आश काका निराकरण	४१८
२७ विधि न होवे तो न करनांही श्रेष्ठ है यह कहनांजी अयुक्त है	४१८
२८ अग अग्रादि तीनों पूजाके फल	४१८
२९ इव्यपूजामें यद्यपि षट्कायकी किंचित् विराधना होती है तोनी करणी योग्य है, तिसका उदाहरण	४१९
३० प्रतिदिन तीन सध्यामें पूजा करणेका विधि	४२०
३१ हवयमें बहुमान पूर्वक देवपूजादि करणां इहां प्रीति नक्ति आदिक चार प्रकारके अनुष्ठानके स्वरूप कहे हैं	४२१
३२ श्री जिनमंदिरोंका प्रमार्जन अरु समारन प्रमुखका अधिकार	४२२
३३ जिनमंदिरमें जघन्य दश अरु मध्यम चालीश तथा उत्कृष्टसे चौरासी प्रकारकी आशातना वर्जन करनी तिसका नाम	४२३
३४ गुरुकी तेत्तीस आशातना वर्जन करनी तिसका नाम	४२५



- ३५ स्थापनाचार्यकी तीन प्रशस्ती गाजातना. ४२९
- ३६ देवद्वय, हानद्वय, गायामद्वय और मुखे द्वयका विनाश  
करणे गानेकों माधु न दद्याये तो अनंत मंगल ज्ञाने ४३०
- ३७ जिनमरिचकी आमशानीके जंग कणों गाजा तथा तो मुखमें  
कद कर देवद्वय न देये तो मंगल जलन करे विनाश स्वरूप. ४३१
- ३८ जो द्वय, देवके नामका घोषा द्याये, मां तत्काल देना ४३२
- ३९ देवादिककी कोइनी गन्तु अपने काममें न लेनी ४३३
- ४० देवादिकके परादिकनी आचककों जादे लेना न चाहिये ४३४
- ४१ घर बेरासरमें चढ़े हुए अदृतादिककी व्यवस्थाका प्रकार तथा  
देवादि द्वय लेने खरबनेका प्रकार इत्यादि ४३५
- ४२ गुरुवदनाका विधि तथा नियमादिकनी गुरु साठिकरुही करणां ४३६
- ४३ धन उपार्जन करनेकी चित्ताके स्वरूपमें व्यापारादिक सात प्र  
कार करके आजीविका चलानेका स्वरूप ४३७
- ४४ तीन अष्टाद्वयद्विक पर्यतिथिके दिनोमें व्यापार न करणां ४३८
- ४५ देनां होवे तो करार ऊपर विना माग्याही दे देना ४३९
- ४६ आवककों मुख्यवृत्तिते तो धर्मोजनोंमेंही व्यापार करनां ४४०
- ४७ बहोत धन जाता रहे तोनी धर्म करणेमें आलस न करनां ४४०
- ४८ बहोत धनाढ्य हो जावे तोनी अजिमान न करनां ४४०
- ४९ स्वामिइह अरु मित्रइहादि न करना इत्यादि ४४१
- ५० पुण्यानुबधी पुण्य, पापानुबधी पुण्य, पुण्यानुबधी पाप, अरु पापानु  
बधी पाप यह चार प्रकारका किंचित् स्वरूप ४४१
- ५१ यथार्थ कहनेसे मित्रका मनोहरण ४४२
- ५२ साक्षीविना मित्रके घरमेंनी धनादिक न रखनां ४४२
- ५३ मुख्यवृत्तिते तो जिस गाममें रहेणां वहांही व्यापार करणां  
परंतु जो परदेश जाना पड़े तो किसरीतिते जानां तिसका कथन ४४२
- ५४ जलां वस्त्रादि पदिरनेका आम्बर न ठोठनां ४४४
- ५५ धन प्राप्त होवे तब धर्ममें लगाकर मनोरथ सफल करणां ४४४
- ५६ न्यायोपार्जितादिक धन खरबनेका चार जंग ४४५

५४ देशविरुद्ध, कालविरुद्ध, राज्यविरुद्ध, लोकविरुद्ध, अरु धर्म	
विरुद्ध कार्य न करना, तिसका स्वरूप	४४५
५७ पिताके साथ अरु माताके साथ उचिताचरणका स्वरूप.	४४८
५९ सहोदरके साथ अरु स्त्रीके साथ उचिताचरणका स्वरूप	४४९
६० पुत्रके साथ अरु सगोंके साथ उचिताचरणका स्वरूप.	४५१
६१ गुरुके साथ उचिताचरणका स्वरूप	४५३
६२ नगरनिवासी जनोंके साथ उचिताचरणका स्वरूप	४५४
६३ परतीर्थियोंके साथ उचिताचरणका स्वरूप	४५४
६४ औरजी अवसरमें उचित बोलना अरु कुशोभाकारी त्यागना	४५५
६५ सुपात्रकों दानादिक देनेकी युक्ति	४५६
६६ माता पितादिक अरु गुरुप्रमुखकी चिंताका प्रकार.	४५८
६७ नौजन करनेका विधि	४५९

॥दशम परिच्छेदमें रात्रिकृत्य आदिक पाच कृत्य कहे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका॥

१ पौषधशालादिकमें यज्ञपूर्वक प्रतिक्रमणादि करणकी रीति	४६३
२ सकल परिवारकों धन खरचनां आदिक धर्मोपदेश करणकी रीति	४६३
३ निडा लेनेका विधि अरु सूता पीडें रात्रिमें जब जाग जावें, तब	
कदाचित्काम पीडा करे तो स्त्रीके शरीरका अष्टुचि पणा विचारे	४६३
४ कपायजीतनेका उपाय अरु नवस्थितिकोंमहाङ्ग खरूपविचारे	४६५
५ धर्ममनोरथ जावना अरु अष्टमी आदिक पर्वकृत्यका स्वरूप	४६५
६ चातुर्मासिक कृत्यका स्वरूप	४६८
७ वर्षकृत्यका बारह द्वारोंमें प्रथम सधपूजाका स्वरूप	४७१
८ दूसरा साधार्मिक वात्सलका स्वरूप	४७१
९ तीसरा यात्राविधिका स्वरूप अरु चौथा स्नात्रविधिका स्वरूप	४७२
१० पांचवा देवद्वयकी वृद्धिका, उष्ठा सुंदर अग्नीआदिकका, सातवा	
देवकेंआगें विविध प्रकारके गीत नृत्यादिक करणका विधि	४७४
११ आठवा भुतज्ञानकी पूजा कर्पूरादिसें करणका विधि	४७४
१२ नववा पंचपरमेष्टि नमस्कारका तथा तप करणका विधि	४७४

- १३ दशवा तीर्थकी प्रभावना करे तिनका विधि ४७४  
 १४ अग्नीश्वरहवा गुरुके योगमिले दूरे श्राद्धोचना करे तिनका विधि ४७५  
 १५ श्रावकका जन्मकृत्य अष्टारह द्वारों करके फदा है तिसमें प्रथम  
 वसनेका स्थान जो घर घनाना तिनका स्वरूप. .. ४७७  
 १६ दूसरा विद्यान्यास करणेका अरु तीसरा विवाद करणेका स्वरूप ४७८  
 १७ चौथा मित्र करणेका अरु पांचवा जिनमंदिर बनानेका स्वरूप ४७९  
 १८ छठा प्रतिमा बनानेका, सातवा प्रतिमाकी प्रतिष्ठाका, आठवा  
 दूसरेको दीक्षा देनेका, नववा तत्पद स्थापनाका स्वरूप ४८५  
 १९ दशवा पुस्तक लिखानेका द्वार ४८७  
 २० इग्यारहवा पौषधशाला बनानेका द्वार, बारहवा सम्यग्त्व दर्श  
 नका द्वार, तेरहवा व्रतादि पालनेका द्वार, चौदहवा दीक्षा ग्रह  
 णका स्वरूप, इसमें जाव श्रावकके सत्तरह गुण कहे हैं ४८८  
 २१ पदरहवा आरन त्यागका, शोलहवा ब्रह्मचर्य पालनेका, सत्तर  
 हवा प्रतिमादि तप विशेषका अरु अष्टारहवा आराधनाका द्वार ४९०

॥ एकादश परिच्छेदमें श्री रूपजादिसैं महावीर पर्यंत जैनमतादि शास्त्रों ॥

॥ के अनुसार इतिहास कहे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

- १ जैनमत कांहांसैं प्रचलित दूथा ऐसी प्रांतिका समाधान ४९३  
 २ जगतके स्वरूपमें उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल औ सुखम  
 सुखमाविक है आरेका तथा सात कुलकरोंका किंचित् स्वरूप ४९४  
 ३ रूपनदेव स्वामीका किंचित् वृत्तांत अरु तिनके सौ पुत्रोंके नाम  
 तथा दासी घोडादिकके संयदका विधि ४९७  
 ४ आधारका विधि तथा शिष्यका जेद ५००  
 ५ कर्म द्वारमें खेती वाणिज्यादिकका स्वरूप तथा पुरुषकी षडोत्तर  
 कला और स्त्रीकी षोडश कला तथा अष्टारह प्रकारकी लीपी ५०१  
 ६ माता पिताकी बीनी कन्याका विवाह प्रवर्तनेका स्वरूप ५०३  
 ७ कोइ सृष्टिके कर्ता नही है तिनका स्वरूप ५०३  
 ८ ब्रह्मादि शब्दोंसैं ध्यान करणेकी प्रवृत्ति अरु निष्ठा देनेकी रीति ५०४  
 ९ धर्मचक्रतीर्थ विक्रमराजा तक चला, तिसका वृत्तांत ५०४

- १० म्लेच्छ, निर्दयी, अरु अनार्य लोक होनेका वृत्तांत ५०५
- ११ श्री रूपनदेवकाही ब्रह्मा नाम प्रचलित होनेका वृत्तांत ५०५
- १२ श्री शत्रुंजयका पुमस्कगिरि नाम होनेका स्वरूप. ५०५
- १३ परिव्राजकोंका लिंग उत्पन्न होनेका स्वरूप ५०६
- १४ मरीचीसे कापिलादि मत उत्पन्न होनेका स्वरूप ५०६
- १५ ये जरत खंमका नाम जरतखम रखनेका हेतु ५०७
- १६ श्रावकोंका ब्राह्मण नाम कहाँसे प्रचलित हुआ तिसका स्वरूप ५०७
- १७ कुरुवशकी उत्पत्ति, यज्ञोपवीतकी उत्पत्ति, चारों वेदोंका नाम बदलनेका अरु मतलब फिरानेका हेतु, चारों वेदोंकी उत्पत्ति ५१०
- १८ याज्ञवल्क्य, सुलसा, पीपलाव, अरु पर्वत प्रमुखोंसे फेर अ सल वेदोंको फिरायेके हिंसायुक्त वेदोंकी रचना हुई, तिसका स्वरूप पूर्वोक्त पुरुषोंका कथानक सहित. ५११
- १९ इस वर्तमान कालमें जो चार वेद हैं तिनकी उत्पत्ति ५१२
- २० तेत्तीस क्रोड देवतायोंका मुख अग्नि है, यह कथन कहाँसे चला ५१२
- २१ ब्राह्मणोंको आदिताग्रय कहेने लगेका कारण अरु राखकों म स्तक पर त्रिपुद्गाकारसे लगानेका तथा कैलास पर्वतकी उत्पत्ति ५१३
- २२ श्री अजितनाथ और पहिले सगरचक्रवर्तीका अधिकार ५१३
- २३ श्री सज्जनाथसे ले कर नवमे तीर्थकर तक तो सर्व जैनधर्मी ब्राह्मणही श्रावक थे तिनका स्वरूप ५१५
- २४ दशवे तीर्थकरके शासनमें हरिवशकी उत्पत्ति हुई तिनका स्वरूप ५१६
- २५ वेदोंमें प्रजापतिवै स्वां॥ यह श्रुति लिखी गई, तिनका हेतु तथा चक्रवर्ती आदिककी क्रमसे उत्पत्ति अरु परशुरामकी उत्पत्ति ५१७
- २६ ब्राह्मणोंने जो जो राजायोंको अपने शास्त्रोंमें दैत्य अरु राक्षसके नामसे लिख दीया है, तिसका हेतु ५१५
- २७ विष्णुकुमारकी किंचित् कथा अरु ब्राह्मणोंने जो पुराणोंमें लिखा है कि विष्णु जगवानने वामनरूप करके यज्ञ करते दूये बलीराजाको ठेला है, यह बात कहाँसे उत्पन्न हुई है. ५३६
- २८ असली पार्श्वनाथकी मूर्तिका बड़ीनाथ नाम रखनेका हेतु ५३९
- २९ श्री कृष्णको जगवान् कहेनेका हेतु ५३९

॥ बारहवे परिघेदमें श्री महावीर जगवानसें ले कर आजपर्यंत

॥ कितनेक वृत्तांत लिखे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

- १ सत्यकी श्रावकके संग्रहमें महेश्वरकी उत्पत्ति ५४५
- २ मृतकोंको पितृप्रदान आदि प्रवृत्त होनेका हेतु ५४६
- ३ प्रयाग तीर्थकी मानता चलनेका हेतु, ५४७
- ४ श्री महावीरके गौतमादि गणधर्मोंका वृत्तांत कथा सहित, ५४७
- ५ श्री महावीरकी गद्दी उपर श्री सुधर्मास्वामी बैठे तहांसें ले कर  
आठवे श्रीशूलिनइजी तक आठ पाटका संक्षेप वृत्तांत, ५५५
- ६ सुहस्तिस्वरिके वखतमें सप्रति राजा दूआ तिनका वृत्तांत ५५६
- ७ वल्लभनमें शिवका लिंग फट कर पार्श्वनाथकी मूर्ति प्रगट हुई  
तिनका कुमुदचंद्र आचार्यकी कथापूर्वक वृत्तांत, ५६०
- ८ तेरहवा श्री सिंहगिरिजीके पाट उपर श्रीवज्रस्वामी दूये जिसने  
जावड़ शाह शेरके कीये शत्रुजयतीर्थका उद्धारकी प्रतिष्ठा करी ५६८
- ९ श्री महावीरसें ( ५४८ ) में वर्षे त्रैराशिक मत निकला ५६९
- १० चौदहवे श्री वज्रसेनस्वरिके वखतमें नार्गेडादि चार कुज दूये, ५६९
- ११ पंद्रहवे श्री चंद्रस्वरिके पाटसें लेकर एकावन्नवे मुनिछुदर सू  
रि पर्यंत बहोत चमत्कारिक बातोंका किंचित् इतिहास ५६९
- १२ बावनवे श्री रत्नशेखर स्वरिके समयमें जिनप्रतिमाके उद्घाटक  
जुका नामक लोखारिने जुका मत चलाया तिसकी कथा ५७१
- १३ त्रेपनवे श्रीजिष्णीतागरस्वरिसें ले कर सत्तावनवे श्रीविजयदान सू  
रि तक आचार्योंकी कथाउ कहुक इतिहासो युक्त संक्षेप लिखी है ५७३
- १४ अष्टावन्नवे पाटें श्री हीरविजय स्वरि दूआ तिनकी कथा कहु  
क अकब्बर बादशाहके वृत्तांत युक्त संक्षेपसें लिखी है ५७५
- १५ बांशठवे पाटें श्री विजयप्रज स्वरिके समयमें मुद्दबधें ठूँडीयोंका  
पंथ निकला तिसकी उत्पत्तिके कारण अरु ये दिनसें ले कर आ  
ज तक विद्यमान विचरनेवाले ठूँडोंका नाम ५७३
- १६ त्रेशठवे पाटसे लेकर वर्तमान उगणोत्तरमें पाट तक होनेवाले आ  
चार्योंका नाम तथा ये ग्रंथ बनानेवालेके गुर्वावलीका नाम अरु ये  
ग्रंथ बनानेवालेके समयमें जितने नवीन पंथ निकले तिनके नाम ५७४

॥ वै नम स्याद्वादवादिने ॥

॥ अथ तपागच्छीय ॥

॥ मुनिश्री आनंद विजय आत्मरामजी विरचित् ॥

॥ जैनतत्त्वादशी नामक ग्रन्थ प्रारम्भः ॥

॥ तत्र प्रथम परिच्छेद ॥

॥ अनुष्टुप् वृत्तम् ॥

॥ स्यात्कारमुद्धितानेक, सदसन्नाववेदिनम् ॥

॥ प्रमाणरूपमव्यक्त, जगर्वतमुपास्महे ॥ १ ॥

॥ अथ प्रथम देव, गुरु औ धर्म इन तीनों ॥

॥ तत्त्वोंका स्वरूप किंचित् लिख्यते ॥

विदित हो कि जो यह जैनमत है तिसका स्वरूप श्री तीर्थकर, गणधर और पूर्वाचार्यादिकोंने आगम निर्युक्ति नाप्य चूर्म्म टीका औ प्रकरण तर्कादि अनेक ग्रन्थद्वारा स्पष्ट निष्कन कीया है परंतु पूर्वाचार्य रचित सर्व ग्रन्थ प्राकृत वा संस्कृत नापामैं हैं सो अब जैन लोगोंके पढ़णेमें उद्यमके नकर एसें उन अति उत्तम अद्भुत ग्रन्थोंका आशय लुप्त प्राय हो रहा है सोकि तनेक नव्य जीवांकी प्रेरणासें तथा स्वकर्म निर्झराकी आशयसे जिनकू प्राकृत वा संस्कृत पढ़णी कठिन है तिनोके उपकारार्थ देव, गुरु औ धर्मका स्वरूप किंचित् मात्र इस नाषा ग्रंथमें लिखते हैं

सर्वे श्रोतयते नमृता पूर्वेक यह विनती है कि जो इस ग्रन्थकू पढ़े सो जहां मैने जिनमार्गसें विरुद्ध निखाहो तहां यथार्थ लिख दें यह मेरे ऊपर बड़ा अनुग्रह होगा इस ग्रन्थके लिखनेका मेरा मुख्य प्रयोजन तो यह है जो इस कालमें बहुत नविन मत लोकोंने स्वकपोल कल्पित प्रगट करे हैं तथा अगरेजोंकी औ मुसलमानोंकी विद्यापढ़णेसें तथा अनेक प्रकार के मत मतांतरोंकी बातें सुणनेसें अनेक नव्य जीवांकू अनेक प्रकारके संशय उत्पन्न हो रहे हैं तिनके दूर करणेके वास्ते इस ग्रन्थका प्रारम्भ कीया है अब पूर्वोक्त तीनों तत्वोंमें प्रथम देवत्वका स्वरूप लिखते हैं

वेव नाम परमेश्वरकाहे सो परमेश्वरके स्वरूपमें अनैक प्रकारके विकल्प मतांतरिये पुरुष करतेहैं सो जैनमतमें परमेश्वरका क्यास्वरूप मान्या है सो तिस परमेश्वरका स्वरूप नाम रूप श्री विज्ञापण सयुक्त विगतेहैं जैन मतमेंजो परमेश्वर मान्याहैं सो चारों गुण सयुक्त श्री अष्टादश दूषण रहित अर्हत परमेश्वरहैं श्री जो परमेश्वर उक्त चारोंगुण रहित तथा अष्टादश दूषण सहित होगा तिसमें कदापि परमेश्वरता सिद्ध नही होगी यद् कथन आगे चलकर लिखेगे

अब प्रथम चारों गुण लिखतेहैं अशोकवृक्षादि अष्टमहा प्रातिहार्य सर्व जैनजोगोंमें प्रतिहैं तथा चार मूलातिशय एव सर्व चारों गुणहैं तिनमें चार मूलातिशयका नाम कहतेहैं (१) ज्ञानातिशय (२) वागतिशय (३) अथायापगमातिशय (४) पूजातिशय तत्र प्रथम ज्ञानातिशयका स्वरूप कहेंहैं केवलज्ञान केवल दर्शन करी नूत जविष्य वर्तमान कालमें जो सामान्य विशेषात्मक वस्तुहैं तिसकू तथा उत्पाद व्यय धीवयुक्तं सत् त्रिकान्न संबंधि जो सत् वस्तुका जानना तिसका नाम ज्ञानातिशयहैं दूसरी वचनातिशय तिणमें जगवतका वचनपैतीस अतिशय करी सयुक्त होताहैं तिन पैतीस अतिशयका स्वरूप ऐसाहैं (१) सस्कारवत्त्व (संस्कृतादि लक्ष्ण युक्त) (२) औदात्यं (शब्दमें उच्चपणा उपचारपरीतता) (३) अग्राम्यत्व (ग्रामके रहण हारे पुरुषके वचन समान जिनोका वचन नहीं) (४) मेघगनीर घोषत्व (मेघकी तरें गनीर शब्द) (५) प्रतिनाद विधायिता (सर्व वाजित्रोंके साथ मिलता शब्द) (६) वक्षिणत्व (वचनकी सरलता सयुक्त) (७) उपनीतरागत्व (मालव कौशल्यादि ग्राम राग करी युक्तता) ए सात अतिशयतो शब्दकी अपेक्षा सैं जाननी औ अन्य अतिशयजो है सो अर्थाश्रय जाननी (८) महार्थता (बडामोटा जिसमें अनिधेय कहेने योग्य अर्थहैं) (९) अव्यादृतत्व (पूर्वापर विरोध रहित) (१०) शिष्टत्व (अनिमत सिद्धांतोक्तार्थता) एतावता अजिमत सिद्धांतजो कदना सोइ वक्ताके शिष्टपणोका सूचकहैं (११) सशयनाम सजव (जिनोके कदणोमें श्रोताकू सशय नहीं होता) (१२) निराकृताऽन्योत्तरत्व (जिनोके कथनमें कोईबी दूषण नहीं नतो श्रोताकू शका उत्पन्न होवे न जगवान दूसरीवार उत्तर वेवें) (१३) ह्रव्य गमता (ह्रव्य ग्राह्यत्व) ह्रव्यमें ग्रहणे योग्य (१४) मिथ साकोद्धता (परस्पर आपसमें

पद वाक्योंका सापेक्ष पणा) ( १५ ) प्रस्तावौचित्यं (देशकाल करके रहित पणा नहीं) ( १६ ) तत्त्वनिष्ठता (विवक्षित वस्तुके स्वरूपानुसारि पणा) ( १७ ) अप्रकीर्णप्रसृतत्व (सुसंबध होकर प्रसरणा अथवा असंबंधाधिकारका अतिविस्तार नहीं) ( १८ ) अस्वश्लाघाऽन्यनिदता (आत्मोत्कर्ष पर निदा करके वर्जित) ( १९ ) अनिजात्यं (प्रतिपाद्य वस्तुकी नूमिकानुसारि पणा) ( २० ) अतिस्निग्धमधुरत्व (घृत गुडादिवत् सुखकारि) ( २१ ) प्रशस्यता (कहेजो हैं गुण तिनकी योग्यतासे प्राप्तहुइहै श्लाघा) ( २२ ) अमर्म वेधिता (परका मर्म जिसमे उग्याडणा नहींहै) ( २३ ) औदार्य (अनिधेय अर्थका तुल्यपणा नहीं) ( २४ ) धर्मार्थप्रतिबद्धता (धर्म औ अर्थ करके संयुक्त) ( २५ ) कारकाद्यविपर्या सो कारक काल वचन औ लिंगादि जहां विपर्यय नहीं ( २६ ) विभ्रमादि वियुक्तता विभ्रमवक्ताके मनकी भ्रान्ति विक्षेपादि दोष रहित ( २७ ) चित्रकृत्व (उत्पन्न कछाहै चित्र कौतुहल पणा) ( २८ ) अश्रुतत्व (अश्रुत पणा) ( २९ ) अनति विलम्बिता (अतिविलंब रहित) ( ३० ) अनेकजाति वैचित्र्य (जातियां वर्णन करणे योग्य वस्तु स्वरूप उनाका आश्रय) ( ३१ ) आरोपिता विशेषता (वचनांतरकी अपेक्षा करके स्थापन कियाहै विशेषपणा) ( ३२ ) सत्त्वप्रधानता (साहसकरी संयुक्त) ( ३३ ) वर्णपदवाक्य विविक्षता (वर्णादिकोंका विचित्रपणा) ( ३४ ) अव्युच्चिन्ति (विवक्षितार्थकी सम्यक् सिद्धि जहां लग नहोवे तहां तांइ अव्यवचिन्न वचनका प्रमेय पणा) ( ३५ ) अखेदित्व (थकेंवा रहित) एह जगवत की दूसरी वचनातिशयके पैतीस जेदहैं तीजी अपायापगमातिशय एतावता उपऽव निवारक औ चोथी पूजातिशय सो जगवान तीनलोकके पूजनीक हैं इनदोनो अतिशयाकी विस्तार रूप चोतीश अतिशय होतीहैं सो लिखतेहैं

( १ ) तीर्थंकर जगवानकी देहका रूप औ सुगय सर्वोत्कृष्ट औ रोग रहित वेद तथा पसीना औ मल करि वर्जित ( २ ) स्वास नि स्वास पद्म कमलकी तरें सुगंधवाला ( ३ ) रुधिर औ मांस गो घृथ वत् उज्ज्वल ( ४ ) आहार निहारकी विधि चर्मचक्रुवालेकू नहीं दीखे ए चार अतिशय जन्मसे साथ ( १ ) एक योजन प्रमाणही समवसरणका क्षेत्रहै परंतु तिसमें देवता मनुष्य तीर्थचकी कोटाकोटीनि समायसक्तिहै जीह नहीं होती ( २ ) वाणी जापा अर्ध मागधी देवता मनुष्य तीर्थचकू अपणी अपणी



जापापणे परिणमतिहे श्री एरु योजनमे सुणाईतेति ( ५ ) प्रजामंजु  
मस्तकके पीठे सूर्यके विवही मानो पिडवना करताहे आपणी शोना रू  
के ऐसा मनोहर नाममल शोने है ( ४ ) साढे पचीग याजन प्रमाण  
चारो पासें उपद्रुप ज्वरादि रोग नहाये तथा ( ५ ) पैर (परम्पर पिरो  
ध नहोवे) तथा ( ६ ) इति (धान्यागुपद्रुप कारी घणे सुवक्रादि नहाये) ( ७ )  
मारिमरीका उपद्रुप नहाये ( ८ ) अतिवृष्टी (निरंतर वर्षणा नहाये) तथा  
( ९ ) अतिवृष्टी (वर्षणोका अनाव नहाये) ( १० ) डुनिऊ नहाये ( ११ ) स्वचक्र  
परचक्रका जय नहोवे ए इग्यार अतीशय ज्ञानायरणीय आदि चार घाति  
कर्मोके दूय होनेसे उत्पन्न होतीहै अथ ( १ ) आकाशमें धर्म प्रकाशक  
चक्र होताहै ( २ ) आकाशगत चामर ( ३ ) आकाशमें पाद पीठ सहित  
स्फटिक मय निहासन होताहै ( ४ ) आकाशमें तीन ठत्र ( ५ ) आकाश  
में रत्नमय ध्वज ( ६ ) जय जगवान चलातेहै तब पगके हेठ सुवर्ण कमज  
देवता रच देतेहैं ( ७ ) समवसरणमे रत्न सुवर्ण आ रूपामय तीन कोट म  
नोहर होतेहैं ( ८ ) समवसरणमे प्रभुके चार मुख दीखतेहैं ( ९ ) अ  
शोक वृद्ध ठाया करताहै ( १० ) कटि अयोमुख हो जातेहैं ( ११ )  
वृद्ध ऐसे नमृत होतेहे मानो नमस्कार करतेहैं ( १२ ) उज्जनादे डुडुनि  
जुवन व्यापक नाव ध्वनी करतीहैं ( १३ ) पवन सुखदाइ चलतीहै ( १४ )  
पक्षी प्रदक्षणा देतेहैं ( १५ ) सुगम पाणीकि वर्षा होतीहै ( १६ ) गोडे  
प्रमाण पंच वर्षके फूलोकी वर्षा होतीहै ( १७ ) केश माढी मुठ नख अवस्थित  
रहतेहैं ( १८ ) चार प्रकारके देवता जघन्यसे जघन्य जगवतके पास एक कोटी  
होतेहैं ( १९ ) पटक्रतु अनुकूल छन स्पर्श रस गय रूप शब्द ए पांचो बुरेतो  
जुप्त हो जातेहैं और अष्टे प्रगट होजातेहैं ए उगणीश अतीशय देवता करते  
है मतांतर तथा वाचनांतरमें कोइ कोइ अतीशय अन्य प्रकारसेबीहै ए पूर्वोक्त  
चार मूलातिशय और आठ प्रातिहार्य एव बारा गुणा करी विराजमान अ  
र्हंत जगवत परमेश्वरहै श्री अष्टारह दूषण करके रहितहै सो अष्टारह  
दूषणोका नाम दो श्लोक करके लिखीयेहै

अंतरायवानंलान, वीर्यजोगोपजोगगा ॥ हासो रत्यरतीनीति, जुगु  
प्ता शोक एवच ॥ १ ॥ कामो मिय्यात्वमज्ञान, निदा चाविरतिस्तथा ॥  
रागो द्वेषश्च नो दोषा, स्तेषामष्टादशाप्थमी ॥ २ ॥ इन दोनों श्लोकोंका

अर्थ ( १ ) दान देणेमें अंतराय ए प्रथम दोष ( २ ) लाजगत अंतराय ( ३ ) वीर्यगत अंतराय ( ४ ) जो एक वेरी जोगीये सो जोग पुष्पमाला दि तजतो अंतराय सो जोगांतराय ( ५ ) बार बार जोगणेमे आये रुयादि घरादि ककण कुमलादि तजतांतराय सो उपजोगांतराय ( ६ ) हास्य ( हसना ) ( ७ ) पदार्थोंके उपरि प्रीति ( रति ) ( ८ ) रतिसे विपरीत सो अरति ( ९ ) जय सप्त प्रकारका ( १० ) छुगुप्ता ( घृणा ) मलीन वस्तुकू देखकर नाक चढाणा ( ११ ) शोक ( चित्तका वैधूर्यपणा ) विकज पणा ( १२ ) काम ( मन्मथ ) स्त्री पुरुष नपुंसक इन तीनोंका वेद विकार ( १३ ) मिथ्यात्व ( दर्शनमोह ) ( १४ ) अज्ञान ( भूढपणा ) ( १५ ) निडा ( सौनी ) ( १६ ) अविरति ( प्रत्याख्यान रहित ) ( १७ ) राग ( पूर्व सुख तिसके साधनेमे शृद्धि पणा ) ( १८ ) द्वेष ( पूर्व दुखाका स्मरण औ पूर्व दुखमे वा तिसके साधन विषय क्रोध ) येद अछारह दूषण जिनमे नही सो अर्हत जगवत परमेश्वरहै इन अछारह दूषण मेसे एकबी दूषण जिसमे होगा सो कवेजी अर्हत जगवत परमेश्वर नही हो मक्ता ॥ प्रथम पांच विघ्न जिस मे लग रहेहै सो परमेश्वर क्यु कर हो सक्ताहै ?

प्रश्न - दानांतरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर दान वेताहै ? अरु लाजांतरायके नष्ट होनेसे क्या लाज परमेश्वरको होताहै ? तथा वीर्यांतरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर सक्ति दिखलाता है ? तथा जोगांतरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर जोग करताहै ? उप जोगांतरायके नष्ट होनेसे एतावता क्यु होनेसे क्या परमेश्वर उपजोग करतेहै ?

उत्तर पूर्वोक्त पांच विघ्नके ह्य होनेसे जगवतमें पूर्ण पांच शक्तियां प्रगट होतीयाहै जैसे निर्मल चट्टका पटलादिक बाधकोंके नष्ट होनेसे देखनेकी शक्ति प्रगट होतीहै चाहे देखे चाहे नदेखे परंतु शक्ति विद्यमान है तैसेहो अर्हत जगवतके पांच शक्तियां प्रगट होतीयाहै पीछे दानादि चाहे करे चाहे नकरे परंतु शक्ति विद्यमानहै जो पांच शक्तियोंसे रहित होगा सो परमेश्वर कैसे होसक्ताहै ?

४ ठछा दूषण “हसना” हास्यजो आताहैसो अपूर्व वस्तुके देखनेसे वा अपूर्व वस्तुके सुननेसे वा अपूर्व आश्चर्यके अनुभवके स्मरणसे इत्यादिक हास्यके निमित्तहै औ हास्यका मोहकर्मकी प्रकृतिरूप उपादान कारणहै

सो ए दोनोही कारण अर्हत जगवतमे नदीं प्रथम निमित्तकारणका संन व कैसे होवे अर्हत जगवत सर्वज्ञ सों दर्शादे उनके ज्ञानमे काऽ अपूर्व ऐसी वस्तु नही जिसके वेगै सुने अनुजये आभय होये इतने कोऽनो हा स्यका निमित्त कारण नही थो मोह कर्मतो अर्हत जगवतने सोंया रूप कखाहै सो उपादान कारण म्भुकर सनये इस हेतुसे अर्हतमे दाम्य रूप दूषण नही थो जो हसनगीत होगा सो अवश्य अस्पर्श असर्वदर्शी थो मोहकरी सयुक्त होगा सो परमेश्वर कैसे होये ?

७ सातमा दूषण रति जिसकी प्रीति पदार्थों उपर होगी सो अवश्य सुंदर शब्द रूप गंध रस स्पर्श स्त्री आदिके उपर प्रीतिमान होगा जो प्री तिमान होगा सो अवश्य उस पदार्थकी लालसा वाला होगा अरुजों लालसा वाला होगा सो अवश्य उस पदार्थकी अप्राप्तिसे दुखी होगा सो अर्हत परमेश्वर कैसे होसकाहै ?

८ आठमा दूषण अरति जिसकी पदार्थों उपर अप्रीतिहोगी सोतो आपही अप्रीतिरूपोये दुखकरी दुखीयाहै सो अर्हत जगवत कैसे हो सके ?

९ नवमा दूषण “जय” सो जिसने आपणाही जय दूर नही कीया सो अर्हत परमेश्वर कैसे होवे ?

१० दशमा दूषण जुगुप्साहै सो मलीन वस्तुकू देखके घृणा करणी (नाक चढाणी) सो परमेश्वरके ज्ञानमे सर्ववस्तुका जासन होताहै जो पर मेश्वरमे जुगुप्सा होवेतो बडा दुख होवे इस कारणते जुगुप्सामान अर्ह त जगवत कैसे होवे ?

११ इग्यारमा दूषण शोक है सो जो आपही शोक वालाहै सो परमेश्वर नही ?

१२ बारवा दूषण कामहै सो आपही जो विपर्ययहै स्त्रीयोंके साथ जोग करताहै तिस विषयानिलापीकू कोन बुद्धिमान पुरुष परमेश्वर मानताहै ?

१३ तेरवा दूषण मिथ्यात्व है सो जो वर्त्तनमोह करी जिसहै सो जगवतनही

१४ चौदवा दूषण अज्ञान है सो जो आपही मूढहै सो अर्हत जगवत नही

१५ पंद्रवा दूषण निद्रा है सो जो निद्रामे होता है सो निद्रामे कुछ नही जानता थो अर्हत जगवानतो सवा सर्वज्ञ है सो निद्रावान कैसे होवे ?

१६ शोलमां दूषण अप्रत्याख्यान है सो जो प्रत्याख्यान रहित है सो स  
र्वांजिनापी है सो तृष्णा वाला कैसे अर्हंत जगवत होसके ?

१४-१७ सत्तारवा ओ अछारवां ए दोनो दूषण राग अरु वेष हे सो  
राग वेषवान मध्यस्थ नदी होता अरु जो रागी वेषो होता है तिसमें  
क्रोध मान मायाका सनव है जगवान तो वीतराग, सम शत्रु मित्र, सर्वजी  
वो पर समबुद्धि, न किसीकू डुखी अरु न किसीकू सुखी करे, जेकर डुखी  
सुखी करेतो वीतराग करुणा समुद्र कदेइ नहोसका इस कारणतें रागवेष  
वाला अर्हंत जगवत परमेश्वर नही ए पूर्वोक्त अछारह दूषण रहित अर्ह  
त जगवत परमेश्वरहै अपर कोइ परमेश्वर नही

अथ अर्हंतके नाम दो श्लोकों करि लिखतेहै-अर्हन् जिन पारगत  
त्रिकालवित् क्षीणाष्टकर्मा परमेष्ठयऽधीश्वर ॥ शत्रु स्वयन्जगवान् जगत्प्र  
भु, स्तीर्थकरस्तीर्थकरो जिनेश्वर ॥ १ ॥ स्यादायऽजयदसर्वा सर्वज्ञ  
सर्वदर्शि केवलिनौ । देवाधिदेव बोधिद पुरुषोत्तम वीतरागाऽस्त ॥ २ ॥ इन  
दोनो श्लोकोंका अर्थ -( १ ) चौतीश अतीशय करी सबसे अधिक होने  
सैं सुरेंद्र आदिकोंकी करी दुइ अष्ट महा प्रातिहार्या जन्म स्नात्रादि पूजा  
के जो योग्य है सो अर्हन् अथवा ज्ञानावरणीयादि आठ कर्म रूप वैरी ह  
ननेसैं अर्हन् अथवा बध्यमान कर्म रजके इननेसे अर्हन् अथवा नही है  
कोइ पदार्थ ठाना जिनोके ज्ञानमे सो अर्हन् तथा नामांतरमें अरुहन्  
नही उत्पन्न होना नवरूपी अकूर जिनोके सो अरुहन् ए प्रथम नाम ( १ )  
जीते है राग वेष मोहादि अष्टादश दूषण जिसने सो जिन ए द्वितीय  
नाम, ( २ ) सत्तारके अथवा प्रयोजन जातके, ( प्रयोजन मात्रके ) पारंपर्य  
त ठेढ़ढेको गत ( प्राप्त ) हुआ है एतावता सत्तारमे जिनका कोइ प्रयोजन  
नही सो पारगत ए तृतीय नाम ( ४ ) जूत, जविष्य, वर्तमान, इन तीनों  
कालोंकू जो जाणो सो त्रिकालवित् ए चतुर्थ नाम ( ५ ) क्षीणानि क्षय  
हूये हैं आठ ज्ञानावरणीय आदि कर्म जिसके सो क्षीणाष्टकर्मा ए पंचम  
नाम ( ६ ) परमेश्वर पदे तिष्ठतीति परमेष्ठी परम उत्कृष्ट पदमे जो रहे  
है सो परमेष्ठी ए षष्ठ नाम ( ७ ) जगतका ईश्वर ( स्वामी ) सो अधीश्वर ए  
सप्तम नाम ( ८ ) शाश्वतं सुखं तिसमे जो होवे सो शत्रु ए अष्टम नाम  
( ९ ) स्वयं आपही आपणी आत्मा करके तथा नव्यत्वादि सामग्रीके प

रिक्त होणोसे परतु परके उपपन्नसे नदी यत्न तिसरी नगरी अपेक्षाका कथन है ऐसाजो होवे सो सप्तम ए नवम नाम. (१०) नग शब्दके चौदस अर्थ है तिनमेंसे अर्थ श्री यानि ए दो अर्थ वर्जके दोष वारां अर्थ ग्रहण करणा तिसका नाम कहते है (१) ज्ञानवत, (२) माहात्म्यवत, (३) शास्वत बेरीयांके बैर उपगमनेतें यशस्वि, (४) राज्य राज्यांके त्यागणे से बेराग्यवत, (५) मुक्तिवत, (६) रूपवत, (७) अतन्त्रवत् हाणोसे वीर्यवत, (८) तप करनेमे वरणाह वान होनेमे प्रयत्नवत, (९) इच्छावत सो ससार सेती जीयांका ठगार करणेमे इष्टावत, (१०) चांतीग अतिशय रूप लक्ष्यो करो विराजमान होणेसे श्रीमत्, (११) धर्मवत, (१२) अनेक देव कोटि करी सेव्यमान होनेसे ऐश्वर्यवत ए वारां अर्थ करी सयुक्त सो जगवान् ए दशम नाम (११) जगत प्रभु ए एकादशम नाम (१२) तरीये ससार समुद् जित करेके सो तीर्थ प्रपचनका आधा र चार प्रकारका सघ अथवा प्रथम गणधर तिसके करणेका है शीत्र जि सका सो तीर्थकर, एद्वादशम नाम, (१३) रागादिकोंके जीतनेहारे जिन (केवली) तिनका जो ईश्वर सो जिनेश्वर ए त्रयोदशम नाम (१४) स्यात् एहजो अव्यय है सो अनेकातका वाचक है वस्तुको अनेकात पणे अनेक स्वरूपे कहणेका शीत्र है जिनका सो स्यादादि ए चतुर्दशम नाम (१५) अजयद जय जो है सो सात प्रकारका है (१) मनुष्यादिको को मनुष्यादि स्वजातीयसे अर्थात् एक मनुष्यकू अन्य मनुष्य सेति जो जय होवे सो इहलोक जय, (२) विजातीय तिर्यंच देवतादिक सेती जो जय होवे सो परलोक जय, (३) आदान जय सो आदान क हियें धन तिस धनके कारणे चोरादिक सेती जो जय होवे सो आदान जय, (४) बाहिरले निमित्त विना घरादिकों विप्रे बैठेकू रात्रि आदिक विप्रे जो जय होवे सो अकस्मात् जय, (५) आजीविका जय सो में नि र्दनदु कैसे दुर्निष्ठादिकमे अपने आपकू धारण करुगा ऐसाजो जय सो आजीविका जय, (६) मरणसे जो जय सो मरणजय एह प्रसिद्ध है (७) अश्लाघा जय अयशका जय जो मैं ऐसे करुगा तो मेरा बड़ा अ यश होगा अयशके जयसे प्रवर्जे नदी सो अश्लाघा जय, ए सात प्रकार का जय इसका जो विपक्षी सो अजय सो क्या वस्तु है विशिष्ट आत्मा

का स्वास्थ्यपणा निश्रेयस धर्मनिबधन जूमिकानूत तिस गुणके प्रकर्षते  
अचिंत्य शक्ति युक्त होणेसे सर्वथा परहितकारी होणेसे ऐसा अन्नय  
देवे सो अन्नयद ए पचदशम नाम ( १६ ) सार्वा सर्व प्राणीयोके  
तां३ जो दित सो सार्वा ए पोटदशम नाम ( १७ ) सर्वज्ञ सर्वजो जाणे सो  
सर्वज्ञ ए सप्तदशम नाम ( १८ ) सर्वजो देखे सो सर्वदर्शि, ए अष्टादशम  
नाम ( १९ ) सर्वथा प्रकारें कर्मावरणके दूर होनेसे, जो चेतन स्वरूप प्रगट  
नया "केवल" केवलज्ञान है इसके सो केवली ए एकोनविसतिम नाम ( २० )  
देवताओंका जो अधिपति सो देवो देवाधिदेव ए विसतिम नाम ( २१ )  
बोधि जिनप्रणीत धर्मकी प्राप्ति तिसकू जो देवे सो बोधिद ए एकविसति  
म नाम ( २२ ) पुरुषा मांहे उत्तम सहज तथा नव्यत्वादि नव करी  
श्रेष्ठ सो पुरुषोत्तम ए द्विविसतिम नाम. ( २३ ) बीतो गतो रागो अस्मा  
त् इति वीतराग ए त्रयोविसतिम नाम ( २४ ) आप्त हितोपदेशक होणेसे  
आप्त कह्यें ए चतुर्विसतिम नाम इत्यादिक हजारो नाम परमेश्वरके है  
ए पूर्वोक्त सर्व परमेश्वरका स्वरूप श्रीहेमचन्द्राचार्य कृत ग्रंथोके अनुसार  
तथा समवायांग राजप्रश्रीय प्रमुख शास्त्रोंके अनुसार लिखे है अन्यथा जि  
नसहस्रनाम ग्रंथमे तो एकहजार आठ नाम अन्वयार्थ सहित कहे है, सर्व  
नाम व्युत्पत्ति सहित अर्हंत परमेश्वरके है, सो अर्हंत पद तो एक अना  
दि अनंतहै, परंतु इसपदके धारक जीव अनंत अतीत कालमे होगये है  
क्युंके एकैक उत्सर्पिणि अवसर्पिणि कालमे नारत वर्षमे चोवीश चोवी  
श जीव अर्हंत पदकू धारकर पीछे सिद्धपदकू प्राप्त हो गये है

इस वर्त्तमान अवसर्पिणिसे पिछलि उत्सर्पिणीमें जो जीव अर्हंत  
पदके धारक हुये है तिनके नाम ( १ ) केवलज्ञानी ( २ ) नीर्वाणी  
( ३ ) सागर ( ४ ) महायश ( ५ ) बिमल नाथ ( ६ ) सर्वानुनूति ( ७ )  
श्रीधर ( ८ ) वत्त ( ९ ) दामोदर ( १० ) सुतेज ( ११ ) स्वामि ( १२ )  
मुनिसुव्रत ( १३ ) सुमति ( १४ ) शिवगति ( १५ ) अस्ताग ( १६ ) नेमीश्वर  
( १७ ) अनिल ( १८ ) यशोधर ( १९ ) कृतार्थ ( २० ) (जिनेश्वर ( २१ )  
शुद्धमति ( २२ ) शिवकर ( २३ ) स्पदन ( २४ ) सप्रति ॥

अथ वर्तमान चोवीश अर्हंतका नाम. ( १ ) श्री ऋषभनाथ ( २ ) श्री अजितनाथ ( ३ ) श्री संजयनाथ ( ४ ) श्री अनिनन्दननाथ ( ५ ) श्री सुमतिनाथ ( ६ ) श्री पद्मप्रज्ञ ( ७ ) श्री सुपार्श्वनाथ ( ८ ) श्री चन्द्रप्रज्ञ ( ९ ) श्री सुविधिनाथ अथपर नाम पुष्पदत्त ( १० ) श्री शीतलनाथ ( ११ ) श्री श्रयांसनाथ ( १२ ) श्री वासुपूज्यस्वामि ( १३ ) श्री विमलनाथ ( १४ ) श्री अनन्तनाथ ( १५ ) श्री धर्मनाथ ( १६ ) श्री शांतिनाथ ( १७ ) श्री रुद्रनाथ ( १८ ) श्री अरुनाथ ( १९ ) श्री मल्लिनाथ ( २० ) श्री मुनिमुद्रतस्वामि ( २१ ) श्री नमिनाथ ( २२ ) श्री अरिष्टनेमि ( २३ ) श्री पार्श्वनाथ ( २४ ) श्री महावीर

अथ चोवीश तीर्थंकर जगवतोके जो नाम है, सो नाम किस किस कारणसे दिये हैं, तिन नामोका एकतो सामान्यार्थ है, जो सब तीर्थंकरोंमें पाये और दूजा विशेषार्थ है जो एकही तीर्थंकरके नामका निमित्त है सो लिखते हैं

“रूपति गह्वति परमपदमिति रूपन” जावेजो परम पदकू सो रूपन एह अर्थ सब तीर्थंकरोंमें व्यापक है अथ विशेषार्थ “उर्वोर्ध्वपन्नजाठनमनूज गवतो जनन्याचतुर्दशाना स्वप्नानामादौ वृषनोदृष्ट तेन रूपन” जगवानकी दोनो साथलोमें बैलका लाठनथा, अथवा जगवतकी माता मरुदेवीने, चौदह स्वप्नकी आदिमें बैलका स्वप्नदेखाथा, तिस कारणसेति रूपन ऐसा नाम दीया ऐसेही सर्व तीर्थंकरोंका प्रथम सामान्यार्थ और दूसरा विशेषार्थ जानना

२ “परीसदादिर्निर्जित इत्यजित” परीसदे वाचीश आदि शब्दसे चार कषाय, आठकर्म, चार प्रकारका उपसर्ग, इनो करके जो न जीत्या गया सो अजित तथा “यदा गर्जस्थे ऽस्मिन् द्युतेराज्ञाजननी न जितेत्यजित” जब जगवान गर्जमें थे, तब जूआ खेलता राजा राणीकू न जीत सका इस हेतुसे अजित नाम दीया ॥ २ ॥

३ “शसुखं नवत्यस्मिन्स्तुते सज्जनव” श नाम सुखका है, सुखहोवे जिसकी स्तुतिके कक्षां सो सज्जन “यदा गर्जगतेप्यस्मिन्नन्यधिकसस्य सज्जनवात्स जवोपि” अथवा जगवान जब गर्जमें थे तब पृथिवीमें अधिक धान्यका सज्जन होनेसे सज्जन ॥ ३ ॥

४ “अजिनद्यते देवैश्चादि निरित्यजिनन्दन” जिनकी स्तुति करीये है देवैश्चा

ढिकों करी, सो ऽनिनंदन “यद्वागर्जात्प्रनृद्येवाजीक्षण शक्नेणा ऽनिनदनादनिनदन ” अथवा जिसदिन जगवान गर्भमे आये उसदिनसेलैके शक्नेके चार चार स्तुति करनेसें अनिनदन ॥ ४ ॥

५ “शोचनामतिरस्येति सुमति ” जलहै बुद्धि इसके, सो, सुमति, “यद्वा गर्भस्थे जनन्या सुनिश्चितामतिरनूदिति सुमति ” अथवा जगवान्के गर्भमे आये माताकी बहुत निर्मल निश्चित बुद्धि दुइ इस हेतुसें सुमति नाम ॥ ५ ॥

६ “निष्पकतामंगीकृत्य पद्मस्येव प्रनाऽस्य पद्मप्रन ” विषय तृष्णा कर्म कलक रूप कीचड़ करी रहित पद्मकी तरे प्रनाहै इनकी, सो पद्मप्रना “यद्वा पद्मशयनदोहदो मातुर्देवतया पूरित इति पद्मवर्ष्मभ्रजगवानिति पद्मप्रन ” अथवा पद्म शयन दोहदो दोहला माताकूं उत्पन्नहूया सो देवताने पूरण कीया इस कारणसे पद्मप्रन अरु पद्म कमल सरीखा जगवानके शरीरका वर्णथा इस हेतुसेनी पद्मप्रन ॥ ६ ॥

७ “शोचनौपाश्वार्धस्य सुपार्श्व ” शोचनिक हैं दोनो पासे इसके, सो सुपार्श्व तथा “यद्वा गर्भस्थे जगवति जनन्यपि सुपार्श्वानूदिति सुपार्श्व ” गर्भमें स्थितहूयां जगवान्के माताके दोनो पासे बहुत सुंदर होगये, इस कारणसे सुपार्श्व ॥ ७ ॥

८ “चक्ष्वेव प्रनाज्योत्सना सौम्यले श्याविगेपाऽस्य चक्षप्रन ” चक्ष्माकी तरें है सौम्य लेख्या इसकी सो चक्षप्रन तथा “गर्भस्थे देव्या चक्ष्पानदोहदोऽनूत् इति चक्षप्रन ” गर्भमें जद जगवानथे तद माताकू चक्ष्मा पीनेका दोहद उत्पन्न हूयाथा, इस कारणसे चक्षप्रन ॥ ८ ॥

९ “शोचनो विविधविधानमस्य सुविधि ” जली है विधि इसकी सो सुविधि तथा “यद्वा गर्भस्थे जगवति जनन्यप्येवमिति सुविधि ” गर्भमें जगवानके रह एसें, माताजि शोचनिक विधि वाली होती नइ, इस कारणसे सुविधि ॥ ९ ॥

१० “सकलसत्त्वसत्तापहरणात् शीतल ” सर्व जीवोंका सत्ताप हरणसे, शीतल तथा “गर्भस्थे जगवति पितृ पूर्वोत्पन्नाचिकित्स्य पित्तदाहोजननीकरस्प शङ्घिपशंता इति शीतल ” जगवतके गर्भमें आनेसें, जगवतके पित्तके शरीरमें पित्तदाह रोगथा, वैद्योसें शांति नहुइ जगवतकी माताके हाथका स्पर्श होताही राजेका शरीर शीतल हो गया इस कारणसे शीतल ॥ १० ॥



११ “श्रेयान्समस्तसुवनस्यैवहितकर प्राग्तशैत्यानादमत्वाजश्रेयांसः  
 स्पृञ्चते” सर्वे जगतको जो हित करे सो श्रेयांस तथा “यद्वागर्नस्यैग्रस्मिन्  
 केनापिनाक्रांत पूर्वदेवताधिष्ठितशय्याजनन्यायाक्रांततेतिश्रेयांजातमितिश्रे  
 यांस ” जगवान् जब गर्नमेथे, तदा जगवतके पिताके घग्मे देवताधिष्ठित श  
 य्याथी वस वपरि जो वैवताया वसहीकू असमाधि वत्पन्न होतीयो, जग  
 वतकी माताकू वसी शय्या वपरि सोनेका दोहद वत्पन्न दूया, मातावसी  
 शय्या वपरि सूती देवता शांति जया वपइव नकम्पा इत हेतुसे श्रेयांस ११

१२ “तत्रवसूनापूज्य वसुपूज्य वसवोदेवा” वसुश्रोकर जो पूज्यनीक होवे  
 सो वसुपूज्य वसु कहिये देवता “वसुपूज्यनृपतेरपत्प वासुपूज्य ” वसुपूज्य  
 नामा राजेका जो पुत्र सो वासुपूज्य “वासवो देवराया तस्त गप्नगयस्त अ  
 निरक्षण अनिरक्षण जणणीए पूयकरेति तेणवासुपुयोति अहवा वसूणि  
 रयणाणि वासवो वेसमणो सो गप्नगए अनिरक्षण अनिरक्षण तं रायकुल  
 रयणेहिं पूरेयति वासुपुयोति ॥ अस्थार्थ—वासव नाम इइका है सो जग  
 वान् जब गर्नमें आये तदा बार बार इइने जगवतकी माताकू पूज्या, इत कार  
 णसें वासुपूज्य अथवा वसु कहिये रतन अरुवासव नाम है वैश्रमणका सो  
 वैश्रमण यदा जगवान् गर्नमेथे तदा बार बार तिस राजाके कुजकू रत्ना  
 करी पूरण करता जया इत हेतुसे वासुपूज्य ॥ १२ ॥

१३ “विगतोमलोऽस्यविमल विमलज्ञानादियोगाद्वाविमल ” दूरहूआ है  
 अष्ट कर्मरूप मल जिसका सो विमल अथवा निर्मल ज्ञानादि योगसे  
 विमल “यद्वागर्नस्येमातुर्मेतिस्तनुश्चविमलाजातेतिविमल ” तथा जगवा  
 न् यदा गर्नमेंथे, तदा माताकी बुद्धि अरु शरीर ए दोनु निर्मल हो गये  
 इत कारणे “विमल” नाम जानना ॥ १३ ॥

१४ “नविद्यतेगुणानामतोऽस्यअनत अनतकर्मीशजयादानत अनता  
 निवाज्ञानादीनियस्येत्यनत ” नही जाणिये है गुणका अत जिसका सो अ  
 नत, अथवा अनत कर्मीस जीतनेसें अनत, अथवा अनत है ज्ञानादि  
 गुण जिसके सो अनत “रयणविचित्र रयण, खविर्य अणत अतिमह प  
 माण ॥ दाम सुमिणे जणणीए, दिठ तउ अणतोति” रत्न विचित्र रत्नजहि

त अति मोटी दाम माला स्वप्नमे माताने देखी तिस कारणे अनंत ॥ १४ ॥

१५ “दुर्गतौ प्रतर्तं सत्त्व सघातं धारयतीति धर्म ” दुर्गतिमें पडतां जी वांके समूहकू जो धारण करे सो धर्म तथा “गर्जस्थे जननी दानादि धर्म पराजातेति धर्म ” परमेश्वरके गर्जमे आवाणेसे माता दानादिक धर्ममे त त्पर नयी इस कारणे धर्म नाम ॥ १५ ॥

१६ “शान्तियोगात्तदात्मकत्वात्कर्तृकत्वाच्चापशान्ति ” शान्तिके योगसे वा शान्ति रूप होणेसे वा शान्ति करणेसे शान्ति तथा “गर्जस्थे पूर्वोत्पन्नाशिव शान्तिरनूदिति शान्ति ” तथा गर्जमे जगवान्के उत्पन्न होणेसे पूर्वे जो अग्नि व उत्पन्नया, सो शान्ति होगया इस कारणे शान्ति नाम ॥ १६ ॥

१७ “कु पृथ्वी तस्यां स्थितिवानिति कुष्ठु एपोदरादित्वात् ” कु नाम पृथ्वी का है तिस पृथ्वीमे जो स्थित होता नया सो कुष्ठु तथा “गर्जस्थे जगवति जननीरत्नानां कुयुराशिदृष्टवतीति कुष्ठु ” जगवतके गर्जमे स्थित हुआ माता रत्नमयी कुष्ठुआकी राशि देखती नइ इस हेतुसे कुष्ठु ॥ १७ ॥

१८ “सर्वोत्तममहासत्त्व , कुलेय उपजायते तस्यानि वृद्धाय वृद्धै, रसारवरच बाहृत ॥ १॥ इति वचनादर ” सर्वसे उत्तम महासात्विक कुलमे जो उत्पन्न होवे, और तिस कुलकी वृद्धिके ताइ है तिसकु वृद्ध पुरुष, प्रधान अर कहते है तथा “गर्जस्थे जगवति जनन्यास्वप्ने सत्त्वरत्नमयोऽरोहदृष्ट्यपर ” तथा जग वतके गर्जमे स्थित होया माताने स्वप्नमे सर्व रत्न मयी अर देख्या इस कारणसे अर इति नाम ॥ १८ ॥

१९ “परीसादिमल्लजयनाग्निरुक्तान्मल्लि ” परीसहादि मल्लोके जीतनेसे मल्लि तथा “गर्जस्थे जगवति मातु सुरजि कुसुममाख्य शयनीयदोहदो देवतया पूरित इति “मल्लि ” तथा जगवतके गर्जमे स्थित हुआ जगवतकी माताकू सुगंध वाले फूलोकी मालाकी सख्या उपरि सोनेका बोहद उत्पन्न नया, सो देवताने पूरण कीया इस कारणसे मल्लि ॥ १९ ॥

२० “मन्यते जगत्स्त्रिकालावस्थामिति मुनि शोचनानि व्रतान्यस्येति सुव्रत मुनिश्चासौ सुव्रतश्च मुनि सुव्रत ” माने जो जगत्कू तीनोही कालमे सो “मुनि” नजे है व्रत जिसके सो सुव्रत ए दोनो पद एकठे करणेसे मुनि सुव्रत तथा

“गर्भस्थे जननीमुनिवत्सुव्रताजातेति मुनिसुव्रत ” तथा जगत्तके गर्भमे स्थित हूपां माता मुनिकी तरें जन्मे व्रत वाजी दातीन ६५ म दत्तुमे मुनिसुव्रत ॥ २० ॥

२१ “परीसहोपसर्गादीनां नामनात्नमेस्तुपेति त्रिकल्पेनोपायस्येकाराना वपद्नेनमि ” परीसह उपसर्गाकु नमावणोसे नमि तथा “यदागर्भस्थे जग वति परचक्रनृपैरपि प्रणति रुतेति नमि ” जगत्तके गर्भमे स्थित होपा वैरी राजायोनेजी नमस्कार करी ५९ कारणसे नमि ॥ २१ ॥

२२ “धर्मचक्रस्य नेमिवन्नेमि ’ धर्मचक्रकी धारावत् सो नेमि तथा “गम्र गतस्तमायाए, रिद्धयणा मउमहतिमहात्त नेमि ॥ उष्यमाणो मुमिणे, दिहोति तेणसे रिद्धनेमिति नाम कपति ’ तथा जगत्तके गर्भगत हूपा मा ताने थ्रिष्ट रत्नमय बडा मोटा नेमी (चक्रधारा) आकाशमे उत्पत्त मान खप्पमें देख्या तिस कारणे थ्रिष्ट नेमि नाम कहा ॥ २२ ॥

२३ “स्पृशति ज्ञानेन सर्वनावानिति पार्श्व ” स्पर्श जाणे सर्व पदार्थोंक ज्ञान करी सो पार्श्व तथा “गर्भस्थे जनन्यानि शिशुयनोयस्य याऽधकारे सप्यो दृष्ट इति गर्जातुजावोयमिति पश्यतीति रुक्तात्पार्श्व पार्श्वोऽस्य वैयावृत्त्यक रोयद्वस्तस्य नाथ पार्श्वनाथ जीमोजीमसेन इति न्यायादापार्श्व ” तथा न गवत्तके गर्भमे स्थित होणेसे माता निशि रात्रिमे शय्या उपर बैठीने थधे रेमे जाता हूया सर्प देख्या माता पित्ताने विचार्या जो ए गर्भका प्रनाव है देखे सो पार्श्व अथवा पार्श्व नामा वैयावृत्त करणद्वारा देवता तिस का जो नाथ सो पार्श्व नाथ ॥ २३ ॥

२४ “विशेषेण र्हरयति प्रेरयति कर्माणीति वीर ” विशेष करके प्रेरणे जो कर्मों कू सो वीर तथा बडे उग्र परीसह उपसर्ग सदणोसे, देवताने नाम कख्या श्रमण नगवान् महावीर तथा माता पिताका नाम दीया वर्द्धमान ॥ २४ ॥

इस प्रकार यह अवसर्पिणीमे जो तीर्थकर हो गये तिनोके नाम थरु किस देतुसे यह नाम ररेकगये सो समाप्त हूये

यह चौबीश तीर्थकर है इनमें सु बावीश अर्द्धततो इह्वाकु कुलमे उत्पन्न हूये है एतावता कृपण देवकी सतानमे है, इह्वाकु कुल कृपणदेवकी से प्रसिद्ध है, यह स्वरूप आर्गे चलकर लिखेंगे और एक तो वीशमें मुनि

सुव्रत स्वामी तथा दूसरा बावीशमें श्रीअरिष्टनेमि जगवान्, ए दोनो तीर्थ कर हरिविशमे उत्पन्न दूये थे तथा इन चोवीसों तीर्थकरोंमें उष्ण पद्मप्रज और बारहवा वासुपूज्य ए दोनो तीर्थकर रक्तवर्ण शरीर वाले दूये हैं तथा आठवा चङ्प्रज और नवमे सुविधिनाथ ( पुष्पदंत ) ए दोनो तीर्थ कर, स्वेत वर्ण स्फटिक वत् उज्ज्वल शरीर वाले दूये हैं, तथा उन्नीसवा मल्लिनाथ और तेइसवा पार्श्वनाथ ए दोनो तीर्थकर, हरित वर्ण शरीर वाले दूये हैं, तथा बीसवां मुनिसुव्रत स्वामी और बावीसवा अरिष्टनेमि जगवान् ए दोनो तीर्थकर स्यामवर्ण अलसीके फूलवत् रंगवाले शरीरके धारक दूये हैं अरु जेप शोला तीर्थकर सुवर्णवर्ण शरीरवाले दूये हैं

अथ चोवीश तीर्थकरोंके चिन्ह उनके दक्षिण पगोंमें रहे दूये वा उनकी ध्वजामें ए चिन्ह होते हैं अबनी इनकी प्रतिमाके आसनमें ए चिन्ह होते हैं, सो कहते हैं ( १ ) रूपजदेवजीके बैलका चिन्ह ( २ ) अजितनाथ जीके हाथीका चिन्ह ( ३ ) सचननाथजीके घोड़ेका चिन्ह. ( ४ ) अग्निनंदनजीके बंदरका चिन्ह ( ५ ) सुमति नाथजीके क्रौंच पक्षीका चिन्ह ( ६ ) पद्मप्रजजीके कमलका चिन्ह ( ७ ) सुपार्श्वनाथजीके साथीयेका चिन्ह ( ८ ) चङ्प्रजजीके चङ्माका चिन्ह ( ९ ) सुविधिनाथ ( पुष्पदंतजी ) के मकरका चिन्ह ( १० ) शीतलनाथजीके श्रीवत्सका चिन्ह ( ११ ) श्रेयांसनाथजीके गैरेका चिन्ह ( १२ ) श्रीवासुपूज्यजीके महिषका चिन्ह ( १३ ) श्रीविमलनाथजीके सूअरका चिन्ह ( १४ ) अनंत नाथजीके बाजका चिन्ह ( १५ ) धर्मनाथजीके वज्रका चिन्ह ( १६ ) शांति नाथजीके हरिणका चिन्ह ( १७ ) कुण्डुनाथजीके बकरेका चिन्ह ( १८ ) अरुनाथजीके नदावर्तका चिन्ह ( १९ ) श्रीमल्लिनाथजीके कुंज का चिन्ह ( २० ) मुनिसुव्रत स्वामीजीके कछुका चिन्ह ( २१ ) नमी नाथजीके नीले कमलका चिन्ह ( २२ ) अरिष्टनेमिजीके शखका चिन्ह. ( २३ ) श्रीपार्श्वनाथजीके सर्पका चिन्ह ( २४ ) श्रीमहावीरजीके सिंह का चिन्ह यह चिन्ह चोवीश तीर्थकरोंके पगोंमें होते हैं

अथ चोवीश तीर्थकरोंके पितायोंके नाम तथा मतायोंके नाम कहते हैं  
१ नानिहृत्यन्यायिनोदकारादिनिर्नीतिनिरितिनानिरंत्यकुजकर, ( २ )

जिता शत्रवोऽनेन जीतशत्रुः (जीतेन्द्र शत्रु जिसने सो जीतशत्रु) (३)  
जिताश्रयोऽनेन जितारि (जीतेन्द्र पैरी जिसने सो जितारि) (॥) संवृणो  
तींद्रियाणिसवर (वस करीया है इंद्रिया सो सवर, (५) मरुजमत्वसता  
पहरणात् मेघश्चमेघ (सकज जीवांका सताप दरणेमे मेघकी तर मेघ,  
(६) धरतिधात्रीमिति धर (धारण करे जो एष्योक्तु सो धर, (७) प्रतिति  
प्रति धर्मकार्ये प्रतिष्ठ (धर्मके कार्ये कार्यमें जो रत्न सो प्रतिष्ठ, (८) म  
हतोपूज्यासेनाऽस्य महासेन (मोटी पूजने योग्य है सेना जिसकी सो महासे  
न) सचासीनरेश्वरश्च महासेननरेश्वर, (९) शोचननाथीराऽस्य सुग्रीव (नली  
है ग्रीवा जिसकी, सो सुग्रीव, (१०) दृढोरथो, स्पष्टदरथ (टढ (बज्रवान) है  
रथ जिसका सो दृढरथ, (११) विवेष्टिप्रलै एधिग्रीविष्णु (विवेष्टन कीया  
है एधवीकु सेना करी जिसने सो विष्णु, (१२) अर्च्यराजनिर्वसुनिर्घन  
पूज्यते इति वसुपूज्य सचासीराट्च वसुपूज्यगट् (दूसरे राजाउने धन  
करी पूज्या सो वसुपूज्य राजा, (१३) रुतवर्मानेन रुतवर्मा (करो है  
सनाह जिसने सो रुतवर्मा, (१४) सिहवत्पराक्रमवतीसेनास्य सिहसे  
न (सिहकीतरे है पराक्रम वाली सेना जिसकी सो सिहसेन, (१५) जा  
तित्रिवर्गेण जानु सोने है जो अर्थ काम अरु धर्म करके सो जानु, (१६)  
विश्वव्यापिनीसेनाऽस्य विश्वसेन (जगतमे व्यापने वाली सेना है जिसके  
सो विश्वसेन सचासीराट्च विश्वसेनराट् (१७) तेजसासूरश्च सूर (तेज  
करके सूर्यवत् सो सूर, (१८) शोचनदर्शनमस्य सुदर्शन (नला है दर्शन  
जिसका सो सुदर्शन, (१९) गुणपयसामाधारनूतत्वात् कुजश्च कुज (गु  
णरूप पाणीका आधारनूत दोषोसे कुंजकी तरे कुज, (२०) शोचनानि  
मित्राणि अस्य सुमित्र (नले है मित्र जिसके सो सुमित्र, (२१) विजयते  
शत्रुनिति विजय (जीते है शत्रुओंको सो विजय, (२२) गान्धीर्येण समुद्रस्या  
पिविजेता समुद्रविजय (गान्धीर्यता करी समुद्रको जीतने वाला समुद्रविजय,  
(२३) अश्वप्रधानासेनास्य अश्वसेन (घोड़ों करी प्रधान है सेना जिसकी  
सो अश्वसेन, (२४) सिद्धार्था पुरुषार्था अस्य सिद्धार्थ ॥ ए रूपज आदि  
चोवीस तीर्थकरोंके क्रम करके चोवीस पिताओंके नाम कहे

अथ चोवीश तीर्थकरोकी माताओंके नाम लिखते हैं ( १ ) मरुद्भिर्दी  
व्यतेस्तूयतेमरुदेवा पृषोदरादित्वात् तलोप मरुदेव्यपि स्यात् ( देवता करी जो  
स्तवीये सा मरुदेवा मरुदेवी एसाजी नाम है, ( २ ) विजयतेविजया ( ज  
यवतविजया, ( ३ ) सहश्रनेनजितारिस्वामिनावर्त्ततेसेना ( जितारिराजा  
के साथ जो वर्त्त सा सेना, ( ४ ) सिद्धोऽर्थोऽस्या सिद्धार्था ( सिद्धहूया  
है अर्थ जिसका सा सिद्धार्था ( ५ ) मगलहेतुत्वात्मगला ( मगलके हे  
तुनूत होनेसें मगला, ( ६ ) शोचनासीमामर्यादाऽस्या सुसीमा ( नजी है  
मर्यादा जिसकी सा सुसीमा, ( ७ ) स्थेम्नापृथ्वीवपृथ्वी ( स्थिर है पृथ्वी  
की तरे पृथ्वी, ( ८ ) लक्ष्मीशोनाऽस्त्यस्या लक्ष्मणा ( लक्ष्मीकीतरे  
शोना है जिसकी सा लक्ष्मणा, ( ९ ) धर्मरुत्येपुरमतेरामा ( धर्मरुत्यमें जो  
रमे सा रामा, ( १० ) नदतिसुपात्रेणनदा ( वृद्धिवान् होवे जो सुपा  
त्रदान देयेसे सा नदा, ( ११ ) विवेष्टिगुणैर्जगदिति विष्णु ( लपेटे जो गु  
ण करी जगत् सा विष्णु, ( १२ ) जयतिसतीत्वेनजया ( वरुणपृषणेवर्त्त है  
सती पणे करी सा जया, ( १३ ) श्यामवर्णत्वात्श्यामा ( श्यामवर्ण  
होनेसें श्यामा, ( १४ ) शोचनयशोऽस्या सुयशा ( नला है यश जिसका  
सा सुयशा, ( १५ ) शोचनव्रतमस्या सुव्रतापतिव्रतत्वात् ( नला है व्रत  
जिसके सा सुव्रता, ( पतिव्रता होनेसे सुव्रता, ( १६ ) नचिरयतिधर्मका  
र्येष्वाचिरा ( नही चिर करती धर्मकार्यो विपे सा अचिरा, ( १७ ) श्रीरि  
वश्रीदेवीवदेवीप्रजाऽस्त्यस्या श्री ( लक्ष्मीकी तरे प्रजा है जिसकी सा श्री, ( १८ )  
देवीकी तरे प्रजा है जिसकी सा देवी, ( १९ ) प्रजावतीप्रजावती, ( २० )  
पद्मश्वपद्मावती ( पद्मकी तरे पद्मावती, ( २१ ) धर्मबीजमिति वप्रा, ( २२ )  
शिवहेतुत्वात्शिवा ( निरुपश्व होणेके हेतुसें शिवा, ( २३ ) मनोहृत्वा  
दामा पापकार्येषुप्रतिकूल्यादामा ( मनोहृ होणेसें वामा ) अथवा पापकार्यो  
विपे प्रतिकूज होनेसें वामा, ( २४ ) त्रिणिज्ञानदर्शनचार्त्राणिशलयति  
प्राप्नोतीतित्रिशला ( तीन ज्ञान दर्शन औ चारित्रकुं प्राप्ति होवे सा त्रिशला,  
इस क्रम करके रूपनादि चोवीश तीर्थकरोके माताओंका नाम है ॥ अथ  
वा सुगमताके कारण चोवीश तीर्थकरोके साथ बावन बोलका संबंध है  
जिसका स्वरूप यंत्र बंध लिखते हैं प्रथम बावन बोलका नाम लिखे है

वाचन घोलका नाम कहेने द.

१	श्रीतीर्थकरका नाम	१८	गणधर्मोंकी संख्या.
२	चणतिथि.	१९	साधुओंकी संख्या.
३	किस विमानसे आये	२०	साधुओंकी संख्या
४	किस नगरीमें जन्म दृष्टे	२१	गुरुपुत्रोंकी संख्या
५	जन्म तिथि	२२	अग्रि ज्ञानीओंकी संख्या.
६	पिताओंका नाम	२३	कैवल ज्ञानीओंकी संख्या
७	माताओंका नाम	२४	मन पर्यवृत्तज्ञानीओंकी संख्या
८	किस नक्षत्रमें जन्मे	२५	चौदह पूर्वधारियोंकी संख्या
९	जन्मराशि	२६	वादिश्योंकी संख्या
१०	लांठनका नाम	२७	आयकोंकी संख्या
११	शरीरके वस्त्र पणोका मान	२८	आविकायोंकी संख्या
१२	आयुके वर्षका प्रमाण	२९	शासनके यक्षोंका नाम
१३	शरीरका वर्ण	३०	शासनके यक्षणीयोंका नाम
१४	पदवी	३१	प्रथम गणधरका नाम
१५	विवाह के कुमारे ?	३२	प्रथम धार्याका नाम
१६	कितने जनोके साथ दीक्षा लीई	३३	मोक्ष होनेका स्थान
१७	दीक्षा कोनसी नगरीमें लीई	३४	मोक्ष पोहोचनेकी तिथि
१८	दीक्षा दिने कितना तप	३५	मोक्ष दिने तप
१९	प्रथम पारणे क्या आहार मिला	३६	मोक्ष जानेके आसन
२०	प्रथम पारणेका घर	३७	परस्पर अंतरका मान
२१	कितने दिनाका पारणा	३८	गण नाम
२२	दीक्षाकी तिथि	३९	योनि नाम
२३	वसस्थ पणोका कालमान	४०	मोक्ष परिवार
२४	किस नगरीमें केवलज्ञान प्राप्त हुआ	४१	सम्यक्त्वपायां पीठे मढ़ोटे जव
२५	ज्ञानोत्पत्ति दिने क्या तप	४२	किस कुलमें उत्पन्न हुआ
२६	किस वृक्षके देठ दीक्षा लीनी	४३	गर्जवासका कालमान
२७	किस तिथिमें ज्ञान उत्पन्न हुआ		

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहेते हैं

१ श्रीतीर्थकरनाम	१ श्रीरूपनदेव	१ श्रीअजितनाथ	३ श्रीसजवनाथ.
२ चवणतिथि	आपाढवदि४	वैशाखशुदि १३	फाल्गुनशुदि ८
३ विमाननाम	सर्वार्थसिद्धि	विजयविमान	उपरलाग्रैवेयक
४ जन्मनगरी.	विनीतानूमि	अयोध्या	सावन्नी
५ जन्मतिथि.	चैत्रवदि ८	माहशुदि ८	माहशुदि १४
६ पिताका नाम.	नानिकुलकर	जितशत्रु	जितारि
७ माताका नाम	मरुदेवी	विजया	सेना
८ जन्मनक्षत्र	उत्तरापाढा	रोहिणी	मृगशिर
९ जन्मराशि	धन	वृष	मिथुन
१० लांठननाम.	वृषज	हस्ती	अश्व
११ शरीरमान	५००)धनुष	४५०)धनुष	४००)धनुष
१२ आयुमान	८४)लक्षपूर्व	४१)लक्षपूर्व	६०)लक्षपूर्व
१३ शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४ पदवी राजकी	राजपदवी	राजपदवी	राजपदवी
१५ पाणिग्रहण	विवाह दूया	विवाह दूया	विवाह दूया
१६ कितनेसाथ दीक्षा	४०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७ दीक्षानगरी	विनीता	अयोध्या	सावन्नी
१८ दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९ प्रथमपारणेकास्था ०	इक्षुरस	परमान्नक्षीर	परमान्नक्षीर
२० पारनेका स्थान	अयांसके घरे	ब्रह्मदत्तके घरे	सुरेंद्रदत्तके घरे
२१ कितनेदिनकापारणा	एकवर्षपीठे	दो दिन पीठे	दो दिनपीठे
२२ दीक्षातिथि	चैत्रवदि ८	महावदि ९	मगसिरशुदि १५
२३ उग्रस्थकाल	१०००)वर्ष	१२)वर्ष	१४)वर्ष
२४ ज्ञाननगरी	पुरिमताल	अयोध्या	सावन्नी
२५ ज्ञानतप	तीनउपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६ दीक्षावृद्ध	बटवृद्ध	सालवृद्ध	प्रियालवृद्ध
२७ ज्ञानतिथि	फागुणवदि ११	पौषवदि ११	कर्तिकवदि ५



यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या	८४)	९५)	१०२)
२९	साधुश्रीकी संख्या	८४०००)	१०००००)	२०००००)
३०	साधवीयोकीसंख्या	३०००००)	३३००००)	२३८०००)
३१	वेक्रियलब्धिवत	२०६००)	२०४००)	१९८००)
३२	वादिश्रीकीसंख्या	१२६५०)	१२४००)	१२०००)
३३	अरुधिज्ञानीसंख्या	९०००)	९४००)	९६००)
३४	केवलीसंख्या	२००००)	२२०००)	१५०००)
३५	मन पर्यवसंख्या.	१२४५०)	१२५५०)	१२१५०)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	४४५०)	३३२०)	२१५०)
३७	श्रावकसंख्या	३५००००)	२९८०००)	२९३०००)
३८	श्राविकासंख्या	५५४०००)	५४५०००)	६३६०००)
३९	शासनयक्षनाम	गोमुखयक्ष	महायक्ष	त्रिमुखयक्ष
४०	शासनयक्षणी	चक्रेश्वरी	अजितवला	दुरितारि
४१	प्रथमगणधरनाम	पुनरीक	सिंहसेन	चारु
४२	प्रथमआर्यानाम	ब्राह्मी	फाल्गु	श्यामा
४३	मोक्षस्थान	अष्टपद	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि	माघवदि १३	चैत्रशुदि ५	चैत्रशुदि ५
४५	मोक्षसंलेषणा	ठ उपवास्त	एक मास	एक मास
४६	मोक्षआसन	पद्मासन	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग
४७	अंतर मान	५०लाखकोटीसा	३०लाखकोटीसा	१०लाखकोटीसा
४८	गणनाम	मानवगण	मानवगण	देवगण
४९	योनि नाम	नकुलयोनि	सर्पयोनि	सर्पयोनि
५०	मोक्षपरिवार	१०००००)	१०००)	१०००)
५१	नवसंख्या	तेर नव कक्षा	तीन नव कक्षा	तीन नव कक्षा
५२	कुलगोत्रनाम	इक्ष्वाकुज	इक्ष्वाकुज	इक्ष्वाकुज
५३	गर्जकाजमान.	नवमासचारदिन	८मास पञ्चीशुदि	नवमास षडिन

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं

१ श्रीतीर्थकरनाम	४ श्रीअनिनन्दन	५ श्रीसुमतिनाथ	६ श्रीपद्मप्रज
२ चवणतिथि	वैशाखशुदि ४	आवणशुदि १	माघवदि ६
३ विमाननाम	जयतविमान	जयतविमान	उवरिमत्रैवेयक
४ जन्मनगरी	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
५ जन्मतिथि	माघशुदि १	वैशाखशुदि ७	कार्तिकवदि ११
६ पिताका नाम	सवरराजा	मेघराजा	श्रीधरराजा
७ माताका नाम	तिक्षार्था	मंगला	सुसीमा
८ जन्म नक्षत्र	पुनर्वसु	मघा	चित्रा
९ जन्मराशि	मिथुन	सिंह	कन्या
१० लांठनका नाम	वदरका	कौंचपद्मीका	पद्मकमलका
११ शरीरमान	३५०)धनुष	३००)धनुष	२५०)धनुष
१२ आयुमान	५०)लाखपूर्व	४०)लाखपूर्व	३०)लाखपूर्व
१३ शरीरका वर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	रक्तवर्ण
१४ पदवीराजकी	राजा	राजा	राजा
१५ पाणिग्रहण	परण्या	परण्या	परण्या
१६ कितनेसाथदीक्षा	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७ दीक्षानगरी	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
१८ दीक्षातप	दो ठपवात	नित्य नक्त	एक ठपवात
१९ प्रथमपारणोकाआ०	क्षीर	क्षीर	क्षीर
२० पारनेका स्थान	इन्द्रधनु धरें	पद्म धरें	सोमदेव धरें
२१ कितनेदिनकापारणा	दोदिन (१)	दोदिन (१)	दोदिन (१)
२२ दीक्षातिथि	माघशुदि ११	वैशाखशुदि ९	कार्तिकवदि १३
२३ ठगस्थकाल	अठारहवर्ष	वीशवर्ष	८ मास
२४ ज्ञाननगरी	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंबी
२५ ज्ञानतप	दो ठपवात	दो ठपवात	चोथ नक्त
२६ दीक्षावृक्ष	प्रियगु वृक्ष	साल वृक्ष	ठत्र वृक्ष
२७ ज्ञानतिथि	पौषवदि १४	चैत्रशुदि ११	चैत्रशुदि १५

यह वाचन घोट प्रत्येक तीर्थङ्गमें कहते हैं

२८	गणधरसरख्या	११५)	१००)	१००)
२९	साधुश्रीकीसरख्या	३०००००)	३२००००)	२३००००)
३०	साधवीयोकीसरख्या	५३००००)	॥३०००००)	४२००००)
३१	वैक्रियलब्धियत	१९०००)	१८४००)	१५१००)
३२	वादीश्रीकीसरख्या	११०००)	१०४००)	९६००)
३३	श्रवधिज्ञानीसरख्या	९८००)	११०००)	१००००)
३४	केवलीसरख्या.	१४०००)	१३०००)	१२०००)
३५	मन पर्यवसरख्या	११६५०)	१०४५०)	१०३००)
३६	चौदहपूर्वीसरख्या	१५००)	२४००)	२३००)
३७	श्रावकसरख्या	२८८०००)	२८१०००)	२७६०००)
३८	श्राविकासरख्या	५२७०००)	५१६०००)	५०५०००)
३९	शासन यक्ष नाम	नायक यक्ष	तुंगरु यक्ष	कुसुमय यक्ष
४०	शासनयक्षणीनाम	कालिका	महाकाली	श्यामा
४१	प्रथमगणधरनाम	वज्रनाम	चरम	प्रद्योतन
४२	प्रथमश्रार्यानाम	श्रजिता	काश्यपी	रति
४३	मोक्षस्थान	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि	वैशाखशुद्धि	चैत्रशुद्धि	मगसिरवदि ११
४५	मोक्षसंक्षेपणा	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षश्रासन	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग
४७	अंतरमान	एलाखकोडीसा	ए० हजारकोडीसा	ए० हजारकोडीगा
४८	गणनाम	देवगण	राक्षसगण	राक्षसगण
४९	योनिनाम	ठागयोनि	भूपकयोनि	महिषयोनि
५०	मोक्षपरिवार	१०००)	१०००)	३००)
५१	नवसरख्या	तीननवकीया	तीननवकीया	तीननवकीया
५२	कुलगोत्रनाम	इक्ष्वाकुकुल	इक्ष्वाकुकुल	इक्ष्वाकुकुल
५३	गर्जकालमान	८मास ३८ दिन	नवमास ३ दिन	नवमास ३ दिन

यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं

१ श्रीतीर्थकरनाम	७ श्रीसुपार्श्वनाथ	८ श्रीचन्द्रप्रज	९ श्रीसुविधिनाथ
२ चवणतिथि	नाइववदि ८	चैत्रवदि ५	फागणवदि ९
३ विमाननाम	मधिमग्नैवेयक	विजयंत	आनतदेवलोक
४ जन्मनगरी	वणारसी नगरी	चन्द्रपुरीनगरी	काकदीनगरी
५ जन्मतिथि	ज्येष्ठशुदि १२	पोषवदि १२	मगसिरवदि ५
६ पिताका नाम	प्रतिष्ठराजा	महासेनराजा	सुग्रीवराजा
७ माताका नाम	पृथिवीमाता	लक्ष्मणामाता	रामाराणीमाता
८ जन्मनक्षत्र	विशाखानक्षत्र	अनुराधानक्षत्र	मूलनक्षत्र
९ जन्मराशि	तुलराशि	वृश्चिकराशि	धनराशि
१० लांठननाम	साथीयाकालठन	चङ्कालंठन	मगरमङ्गकालठन
११ शरीरमान	१००)धनुष	१५०)धनुष	१००)धनुष
१२ आयुमान	१०)लाखपूर्व	१०)लाखपूर्व	१)लाखपूर्व
१३ शरीरका वर्ण	सुवर्णवर्ण	श्वेतवर्ण	श्वेतवर्ण
१४ पदवीराजकी	राजा	राजा	राजा
१५ पाणिग्रहण	परस्था	परस्था	परस्था
१६ कितनेसाथदीक्षा	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७ दीक्षानगरी	बनारसीनगरी	चन्द्रपुरीनगरी	काकदीनगरी
१८ दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९ प्रथमपारणोकाआ०	क्षीरकाजोजन	क्षीरकाजोजन	क्षीरका जोजन
२० पारणोका स्थान	माहेंद्र धरें	सोमवत धरें	पुष्प धरें
२१ कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२ दीक्षातिथि	ज्येष्ठशुदि १३	पोषवदि १३	मगसिरवदि ६
२३ ठगस्थकाल	नव मास रह्या	त्रण मास रह्या	चार मास रह्या
२४ ज्ञाननगरी	वणारसी नगरी	चन्द्रपुरी नगरी	काकदी नगरी
२५ ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६ दीक्षावृक्ष	सरीसृक्ष	नागवृक्ष	सालीवृक्ष
२७ ज्ञानतिथि	फागणवदि ६	फागणवदि ७	फाल्गुनवदि ३

यह वाचन द्योत प्रत्येक तीर्थंरुने कहते हैं

२८	गणधरसख्या.	२५) गणधर	२६) गणधर	८८) गणधर
२९	साधुश्रेकीसख्या	३०००००)	३०००००)	३०००००)
३०	साधवीयोंकीसख्या	४३००००)	३८००००)	१२००००)
३१	वैक्रियलब्धिवत	१५३००)	१४०००)	१३०००)
३२	वादिश्रेकीसख्या	८४००)	७८००)	६०००)
३३	अवधिज्ञानीसख्या	९०००)	८०००)	८४००)
३४	केवलीसख्या	११०००)	१००००)	७५००)
३५	मन पर्यवसख्या.	९१५०)	८०००)	७०००)
३६	चौदहपूर्वोसख्या	२०३०)	२०००)	१५००)
३७	श्रावकसख्या	२५७०००)	२५००००)	२२९०००)
३८	श्राविकासख्या	४९३०००)	४६९०००)	४७१०००)
३९	शासनपद्दनाम	मातंगयद्द	विजययद्द	अजिता यद्द
४०	शासनयद्दणीनाम	शाता	नृकुटी	सुतारिका
४१	प्रथमगणधरनाम	विदर्न	दिन्न	वराहक
४२	प्रथमअर्थार्यानाम	सोमा	सुमना	वारुणी
४३	मोक्षस्थान	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि	फागणवदि४	नाइवावदि४	नाइवाद्युदि९
४५	मोक्षसंज्ञेपणा	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन	काठस्सग	काठस्सग	काठस्सग
४७	अंतर मान	९०कोडीसागर	९०कोडीसागर	९०कोडीसागर
४८	गणनाम	राक्षसगण	देवगण	राक्षसगण
४९	योनिनाम	भृगयोनि	भृगयोनि	वानरयोनि
५०	मोक्षपरिवार	५००)	१०००)	१०००)
५१	जवसख्या	तीन जव कीया	तीन जव कीया	तीन जव कीया
५२	कुलगोत्रनाम	इक्ष्वाकुकुल	इक्ष्वाकुकुल	इक्ष्वाकुकुल
५३	गर्जकालमान	मासनवदिन १९	मासनवदिनसात	मास ८ दिन ८ वीस

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहेते हैं

१ श्रीतीर्थकरनाम.	१० शीतलनाथ	११ अयासनाथ	१२ श्रीवासुपूज्य
२ चवणतिथि	वैशाखवदि ६	ज्येष्ठवदि ६	ज्येष्ठवदि ६
३ विमाननाम	अच्युतदेवलोक	अच्युतदेवलोक	प्राणतदेवलोक
४ जन्मनगरी.	नदिलपुर	सिद्धपुरी	चपापुरी
५ जन्मतिथि	महावदि १२	फागणवदि १२	फागणवदि १४
६ पिताका नाम.	दृढरथराजा	विष्णुराजा	वसुपूज्यराजा
७ माताका नाम	नदामाता	विष्णुमाता	जयामाता
८ जन्मनक्षत्र	पूर्वाषाढा	श्रवणनक्षत्र	शतनिषानक्षत्र
९ जन्मराशि.	धनराशि	मकरराशि	कुनराशि
१० लाठननाम.	श्रीवत्सकालाठन	गेंमाका लाठन	पाढाका लाठन
११ शरीरमान	नेबु धनुष	अेशीधनुष	सीत्तरे धनुष
१२ आयुमान	एकलाख पूर्व	(८४)लाख वर्ष	(७२)लाख वर्ष
१३ शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	लालवर्ण
१४ पदवी राजकी	राजा	राजा	कुमार
१५ पाणिग्रहण	परस्या	परस्या	परस्या
१६ कितने साथ दीक्षा	(१०००) साथ	(१०००) साथ	(६००) साथ
१७ दीक्षानगरी	नदिलपुर	सिद्धपुरी	चपापुरी
१८ दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९ प्रथमपारणेकाश्चा०	क्षीरनोजन	क्षीरनोजन	क्षीरनोजन
२० पारनेका स्थान	पुनर्वसुके घरे	नदके घरे	सुनदके घरे
२१ कितने दिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२ दीक्षातिथि	महावदि १२	फागणवदि १२	फागणवदि १५
२३ उग्रस्थकाल	तीन मासरह्या	दो मासरह्या	एक मासरह्या
२४ ज्ञाननगरी	नदिलपुर	सिद्धपुरी	चपापुरी
२५ ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६ दीक्षावृद्ध	प्रियंगुवृद्ध	तंडकवृद्ध	पामलवृद्ध
२७ ज्ञानतिथि	पौषवदि १४	महावदि २	महावृदि २

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	८१)गणधर	८६)गणधर	६६)गणधर
२९	साधुश्रीकीसंख्या	१०००००	८४०००	७२०००
३०	साधवीयोकीसंख्या	१००००५	१०३०००	१०००००
३१	वैक्रियलब्धिवत्	१२०००	११०००	१००००
३२	वादीश्रीकीसंख्या	५८००	५०००	४३००
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	४२००	६०००	५४००
३४	केवलीसंख्या.	७०००	६५००	६०००
३५	मन पर्यवसंख्या	७५००	६०००	६५००
३६	चौदहपूर्विसंख्या	१४००	१३००	१२००
३७	श्रावकसंख्या	२८९०००	२४९०००	२१५०००
३८	श्राविकासंख्या	४५८०००	४४८०००	४३६०००
३९	शासन यह नाम	ब्रह्मायह	जह्नेटयह	कुमारयह
४०	शासनयक्षिणीनाम	अशोका	मानवी	चना
४१	प्रथमगणधरनाम	नंद	कव्वप	सुनूम
४२	प्रथमअर्यानाम	सुयशा	धारणी	धरणी
४३	मोक्षस्थान	समेतशिखर	समेतशिखर	चपापुरी
४४	मोक्षतिथि	वैशाखवदि ३	श्रावणवदि ३	श्रापादशुद्धि १४
४५	मोक्षसंक्षेपणा	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन	काठस्तग	काठस्तग	काठस्तग
४७	अंतरमान	एककोडीसागर	चोपनसागर	त्रीशसागर
४८	गणनाम	मानवगण	देवगण	राक्षसगण
४९	योनिनाम	नकुलयोनि	धानरयोनि	अश्वयोनि
५०	मोक्षपरिवार	१०००)परिवार	१०००)परिवार	६००)परिवार
५१	जवसंख्या	तीन जव कक्षा	तीन जव कक्षा	तीन जव कक्षा
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वाकुल	इक्ष्वाकुल	इक्ष्वाकुल
५३	गर्भकालमान	मासनव दिन ७	मासनव दिन ७	मास ८ दिन ३०

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं

१ श्रीतीर्थकरनाम.	१३ विमलनाथ	१४ अर्चनतनाथ	१५ श्रीधर्मनाथ
२ चवणतिथि.	वैशाखशुदि ११	श्रावणवदि ४	वैशाखशुदि ४
३ विमाननाम	सहस्रारदेवलोक	प्राणतदेवलोक	विजयविमान
४ जन्मनगरी	कंपिलपुरी	अयोध्या	रत्नपुरीनगरी
५ जन्मतिथि	महाशुदि ३	वैशाखवदि १३	महाशुदि ३
६ पिताका नाम	कृतवर्मराजा	सिहसेनराजा	चानुराजा
७ माताका नाम	श्यामामाता	सुयशामाता	सुवृतामाता
८ जन्म नक्षत्र	उत्तरानाक्षपद	रेवतीनक्षत्र	पुष्यनक्षत्र
९ जन्मराशि	मीनराशि	मीनराशि	कर्कराशि
१० जाठनका नाम	वराहका जाठन	सीचाणाका जां०	वज्र जांठन
११ शरीरमान	शाठ धनुष	पचाशधनुष	पीस्तालीशधनुष
१२ आयुमान	शाठलाखवर्ष	त्रीशलाखवर्ष	दशलाखवर्ष
१३ शरीरका वर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४ पदवीराजकी	राजा	राजा	राजा
१५ पाणिग्रहण	परस्था	परस्था	परस्था
१६ कितने साथदीक्षा.	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७ दीक्षानगरी.	कंपिलपुर	अयोध्या	रत्नपुरी
१८ दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९ प्रथमपारणोकाआ०	ह्रीरजोजन	ह्रीरजोजन	ह्रीरजोजन
२० पारनेका स्थान.	जयराजाकेघरें	विजयराजाकेघरें	धनसिंहके घरें
२१ कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२ दीक्षातिथि	महाशुदि ४	वैशाखवदि १४	महाशुदि १३
२३ ठगस्थकाल	दो मास	तीन वर्ष	दो वर्ष
२४ ज्ञाननगरी	कंपिलपुरी	अयोध्या	रत्नपुरा
२५ ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६ दीक्षावृत्त	जंबूवृत्त	अशोकवृत्त	वधिपर्णवृत्त
२७ ज्ञानतिथि	पौषशुदि ६	वैशाखवदि १४	पौषशुदि १५



यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थरुमं कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	५०)गणधर	५०)गणधर	४३)गणधर
२९	साधुश्रीकी संख्या	६८०००)	६६०००)	६४०००)
३०	साधवीयोकीसंख्या	१००८००)	६२०००)	६२४००)
३१	वैक्रियलब्धिवत.	९०००)	८०००)	८०००)
३२	वादिश्रीकी संख्या	३६००)	३२००)	२८००)
३३	श्रवधिज्ञानीसंख्या.	४८००)	४३००)	२६००)
३४	केवलीसंख्या.	५५००)	५०००)	४८००)
३५	मन पर्यवसंख्या.	५५००)	५०००)	४५००)
३६	चौददपूर्वीसंख्या.	११००)	१०००)	९००)
३७	श्रावकसंख्या	२०८०००)	२०६०००)	२०४०००)
३८	श्राविकासंख्या.	४२४०००)	४१४०००)	४१३०००)
३९	शासनयक्षनाम	पण्मुखयक्ष	पातालयक्ष	किन्नरयक्ष
४०	शासनयक्षिणी	विदिता	श्रकुशा	कदर्प्या
४१	प्रथमगणधरनाम	मदरगणधर	जस्त गणधर	श्ररिष्ट
४२	प्रथमश्रार्यानाम	धरा	पद्मा	श्रार्यशिवा
४३	मोक्षस्थान	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि	आपाढवदि ४	चैत्रशुदि ५	ज्येष्ठशुदि ५
४५	मोक्षसंलेषणा	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन	काठस्तग	काठस्तग	काठस्तग
४७	अंतर मान	नवसागरोपम	चारसागरोपम	तीनसागरोपम
४८	गणनाम	मानवगण	देवगण	देवगण
४९	योनि नाम	ढागयोनि	हस्तियोनि	मजारयोनि
५०	मोक्षपरिवार	६००)	४००)	१०८)
५१	जवसंख्या.	तीनजवकक्षा	तीनजवकक्षा	तीनजवकक्षा
५२	कुलगोत्रनाम	इक्ष्वाकुकुल	इक्ष्वाकुकुल	इक्ष्वाकुकुल
५३	गर्जकालमान.	मास ८ दिन २१	मासनवदिन	मास ८ दिन २३

यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते है

१ श्रीतीर्थकरनाम.	१६ श्रीशक्तिनाथ	१७ श्रीकुण्डनाथ	१८ श्रीअरनाथ
२ चवणतिथि	जाड़वावदि ४	आवणवदि ९	फागणवदि २
३ विमाननाम	सर्वार्थसिद्ध	सर्वार्थसिद्ध	सर्वार्थसिद्ध
४ जन्मनगरी	गजपुर	गजपुर	गजपुर
५ जन्मतिथि	ज्येष्ठवदि १३	वैशाखवदि १४	मगशिरवदि १०
६ पिताका नाम	विश्वसेन	सूरराजा	सुदर्शन
७ माताका नाम	अचिराराणी	श्रीराणी	देवीराणी
८ जन्मनक्षत्र	जरणीनक्षत्र	रुत्तिकानक्षत्र	रेवतीनक्षत्र
९ जन्मराशि	मेघराशि	वृषराशि	मीनराशि
१० लांठननाम	हरिणका लांठन	वकराका लांठन	नवावर्तकालांठन
११ शरीरमान	४० धनुष	३५ धनुष	३० धनुष
१२ आयुमान	एकलाखवर्ष	(९५०००) वर्ष	(८४०००) वर्ष
१३ शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४ पदवीराजकी	चक्रवर्ती	चक्रवर्ती	चक्रवर्ती
१५ पाणिग्रहण	(६४०००) स्त्री	(६४०००) स्त्री	(६४०००) स्त्री
१६ कितनेसाथदीक्षा	(१०००) साधु	(१०००) साधु	(१०००) साधु
१७ दीक्षानगरी	गजपुर	गजपुर	गजपुर
१८ दीक्षातप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९ प्रथमपारणोकास्थान	क्षीरनोजन	क्षीरनोजन	क्षीरनोजन
२० पारणोका स्थान	सुमित्रघरें	व्याघ्रसिद्धघरें	अपराजितघरें
२१ कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२ दीक्षातिथि	ज्येष्ठवदि १४	चैत्रवदि ५	मगशिरवदि ११
२३ तपस्थकाल	एकवर्ष	शोलवर्ष	तीनवर्ष
२४ ज्ञाननगरी	गजपुर	गजपुर	गजपुर
२५ ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६ दीक्षावृत्त	नदीवृत्त	जीजकवृत्त	आंवाकावृत्त
२७ ज्ञानतिथि	पौषवदि ९	चैत्रवदि ३	कार्तिकवदि १२

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं

२८ गणधरसख्या.	२६ गणधर	२५ गणधर	२३ गणधर
२९ साधुश्रेकीसख्या	६२०००	६००००	५००००
३० साधवीर्योकीसख्या	६१५००	६०५००	५००००
३१ वैक्रियलब्धिवत	६०००	५१००	४३००
३२ वादिश्रेकीसख्या.	२४००	२०००	१६००
३३ अवधिहानीसख्या	३०००	२५००	२६००
३४ केवलीसख्या	४३००	३२००	२८००
३५ मन पर्यवसरख्या.	४०००	३३४०	२५५१
३६ चौदहपूर्वीसख्या.	८००	६००	६१०
३७ श्रावकसख्या	१९००००	१८९०००	१८४०००
३८ श्राविकासख्या	३९३०००	३८१०००	३७२०००
३९ शासनयक्षनाम	गरुडयक्ष	गर्भयक्ष	यक्षेदयक्ष
४० शासनयक्षिणीनाम	निर्वाणी	बला	धणा
४१ प्रथमगणधरनाम	चक्रयुद्ध	सांब	कुन
४२ प्रथमआर्यानाम	सुचि	दामिनी	रक्षिता
४३ मोक्षस्थान	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४ मोक्षतिथि.	उपेष्टवदि १३	वैशाखवदि १	मगशिरश्वदि १०
४५ मोक्षसंज्ञा	एकमास	एकमास	एकमास
४६ मोक्षआसन	काचस्सग	काचस्सग	काचस्सग
४७ अंतर मान	० ॥ पञ्चोपम	० १ पञ्चोपम	१००० क्रोडवर्ष
४८ गणनाम	मानवगण	राक्षसगण	देवगण
४९ योनिनाम	द्वस्तियोनि	नागयोनि	द्वस्तियोनि
५० मोक्षपरिवार	९०० परिवार	१००० परिवार	१००० परिवार
५१ जवसरख्या	आराजव कक्षा	तीनजव कक्षा	तीनजव कक्षा
५२ कुलगोत्रनाम	इक्ष्वाकुकुल	इक्ष्वाकुकुल	इक्ष्वाकुकुल
५३ गर्भकालमान	मासनवदिन	मासनवदिनपांच	मासनवदिन ८

यह वाचन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं

१ श्रीतीर्थंकरनाम.	१९ श्रीमल्लीनाथ	२० श्रीमुनिसुवृत	२१ श्रीनमीनाथ
२ चवणतिथि	फागुणवृदि ४	आवणवृदि १५	आशोवृदि १५
३ विमाननाम	जयंतविमान	अपराजितविमा.	प्राणतदेवजोक
४ जन्मनगरी.	मथुरानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
५ जन्मतिथि.	मगशिरवृदि ११	ज्येष्ठवदि ८	आवणवदि ८
६ पिताका नाम	कुनराजा	सुमित्रराजा	विजयराजा
७ माताका नाम	प्रजावती	पद्मावती	विप्राराणी
८ जन्मनक्षत्र	अश्विनीनक्षत्र	श्रवणनक्षत्र	अश्विनीनक्षत्र
९ जन्मराशि	मेघराशि	मकरराशि	मेघराशि
१० लांठननाम	कलशका लांठन	कहपका लांठन	कमलका लांठन
११ शरीरमान	पचीशधनुष	वीशधनुष	पंदरधनुष
१२ आयुमान	५५०००) वर्ष	३००००) वर्ष	१००००) वर्ष
१३ शरीरका वर्ण	नीलावर्ण	श्यामवर्ण	पीलावर्ण
१४ पदवी राजकी	कुमार	राजा	राजा
१५ पाणिग्रहण	नहीं परलया	परलया	परलया
१६ कितने साथ दीक्षा	३००) साधु	१०००) साधु	१०००) साधु
१७ दीक्षानगरी	मिथिलानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
१८ दीक्षातप	तीन उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९ प्रथमपारणिकाश्चा ०	क्षीरजोजन	क्षीरजोजन	क्षीरजोजन
२० पारनेका स्थान	विश्वसेन	ब्रह्मवत्त	विश्वकुमार
२१ कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२ दीक्षातिथि	मगशिरवृदि ११	फागुणवृदि १२	आषाढवदि ९
२३ ठगस्थकाल	एक अहोरात्र	इग्यार मास	नव मास
२४ ज्ञाननगरी	मथुरानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
२५ ज्ञानतप	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६ दीक्षावृद्ध	अशोकवृद्ध	चपकवृद्ध	बकुल वृद्ध
२७ ज्ञानतिथि	मगशिरवृदि ११	फागुणवदि १२	मगशिरवृदि ११

यद् वाचन बोल प्रत्येक तीर्थं करोमें कहते हैं.

२८	गणधरसरख्या.	११)गणधर	१०)गणधर	११)गणधर
२९	साधुश्रीकीसरख्या	१८०००)	१६०००)	१४०००)
३०	साधवीयोकीसरख्या	४००००)	३८०००)	३६०००)
३१	वैक्रियलब्धिवत्	१५००)	११००)	७००)
३२	वादिश्रीकीसरख्या	८००)	६००)	४००)
३३	अवधिज्ञानीसरख्या	१५००)	१०००)	१३००)
३४	केवलीसरख्या	१५००)	१०००)	७००)
३५	मन पर्यवसरख्या	१०००)	७५०)	५००)
३६	चौदहपूर्वसरख्या.	४००)	३५०)	३००)
३७	श्रावकसरख्या	१६९०००)	१६४०००)	१५९०००)
३८	श्राविकासरख्या	३३६०००)	३३९०००)	३१८०००)
३९	शासनयक्षनाम	गोमेधयक्ष	पार्श्वयक्ष	मार्तण्डयक्ष
४०	शासनयक्षिणीनाम	अंबिका	पद्मावती	तिक्ष्णायिका
४१	प्रथमगणधरनाम	वरवत्त	आर्यदिन्न	इन्द्रजुति
४२	प्रथमआर्यानाम	यक्षदिन्ना	पुष्पचूडा	चन्दनबाला
४३	मोक्षस्थान	गिरनार	समेतशिखर	पावापुरी
४४	मोक्षतिथि	आषाढशुद्धि ८	श्रावणशुद्धि ८	कार्तिकवदि ०)
४५	मोक्षसंक्षेपणा	एकमास	एकमास	दोउपवास कखा
४६	मोक्षआसन	पद्मासन	काठस्तम्भ	पद्मासन
४७	अंतरमान	८३४५०)वर्ष	३५०)वर्ष	चर्मजिनेश्वर
४८	गणनाम	राक्षसगण	राक्षसगण	मानवगण
४९	योनि नाम	महिषयोनि	मृगयोनि	महिषयोनि
५०	मोक्षपरिवार	५३६)परिवार	३३)परिवार	एकाकी आप
५१	नवसरख्या	नव नव कखा	दश नव कखा	सत्तावीशनवक ०
५२	कुलगोत्रनाम	हरिवंश	इक्ष्वाकुज	इक्ष्वाकुज
५३	गर्भकालमान	मासनव दिन ८	मास नव दिन ४	मासनवदिन ४॥

इस यंत्रके अनुसार एकैक तीर्थकरके साथ बावन बावन बोलका संवध जान लेना इनमेंसुं मातादिक कितनेक द्वार जो प्रथम न्यारे लिखे गये हैं, सो व्युत्पत्तिके कारणसे लिखे हैं

इन चौबीस तीर्थकरोंमें नववा, दशवां, इग्यारवां, बारवां, तेरवां, चौदवां अरु पंदरवां, एसात तीर्थकरके निर्वाण हुआ पीछे इन सातोंका शासन जो द्वादशांग वाणीरूप शास्त्र अरु साधु तथा साधवी, श्रावक, और श्राविका, ए चतुर्विध श्रीसधरूप तीर्थ सो कितनेक काल तांइ प्रवृत्त हो कर पीछेसे व्यवहृत गया, तब तो नारत वर्षमें जैन मतका नामजी न रहा था, तबहीसे अनेक मत मतांतर और कुशास्त्रोंकी प्राये प्रवृत्ति जयी सो अबतांइ होतीही चली जाती है, बहुत लोकोंने स्वकपोल कल्पित शास्त्र बना करके पूर्व मुनि, वा ऋषि, वा ईश्वरप्रणीत प्रसिद्ध करे हैं ऐसे तीनोंसे त्रेश्छ मत प्रवृत्त कर दीये अरु आर्य चारों वेद व्यवहृत हो गये अरु नवीन वेद बना लीये उन नवीनोकोनी कइ बार लोकोंने नवी नवी रचनासे बना कर उलट पुलट कर दीये जो कुछ बन वनाके शेष रहे उनकीनी अनेक तरेंके जाय्य, टीका, दीपिका रच कर अर्थोंकी गड़ बड़ कर दीनी सो अबतांइ करतेही चले जाते हैं, ए सर्व स्वरूप जहां वेदोंकी उत्पत्ति लिखेंगे तहां स्पष्ट करके लिखेंगे वेद जो नाम हैं सोतो बहुत प्राचीन कालसे हैं, अरु जिन पुस्तकोंका नाम वेद अब प्रसिद्ध है सो पुस्तक प्राचीन नहीं है, इसका प्रमाण आगे चलके लिखेंगे ॥ इति श्री तपगङ्गीये मुनि श्री बुद्धिविजय शिष्यमुनि आनंदविजय आत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्शे प्रथम परिच्छेद सम्पूर्ण ॥ १ ॥

### ॥ अथ द्वितीय परिच्छेद प्रारंभ ॥

अब दूसरे परिच्छेदमें कुदेवका स्वरूप लिखते हैं, कुदेव उसकु कहते हैं जो जगवान् तो नहीं परंतु लोकोंने अपनी बुद्धिसे परमेश्वरका आरोप कर लीया है सो कुदेवका स्वरूप तो उक्त देव स्वरूपसे विपर्यय सर्व बुद्धिमान् आपदी जान लेंगे, परंतु विस्तारसे लिखाही जो समझ सकें हैं तिनोंके तांई लिखते हैं

॥ श्लोक ॥ ये स्त्रीशस्त्राक्षुत्रादि, रागाद्यकलकित्ता ॥ निग्रहानुग्रहपरा,

स्तेदेवास्त्पुनर्मुक्तये ॥ १ ॥ नाटपाट्टहाससंगीता, शृणुश्रुतिसंस्पृता ॥ लं  
 जयेयु पदं शातं, प्रपन्नान्प्राणिन कथ ॥१॥ इति योगशास्त्रे ॥ अर्थार्थ ॥  
 जिस देवके पास स्त्री होवे तथा तिसकी प्रतिमाके पास स्त्री होवे क्युंकि  
 जैसा पुरुष होता है वसकी मूर्तिजो प्राये वैसीही होती है आज काज  
 सर्व चित्रोंमें वैसाही देखनेमें आता है, सो मूर्ति द्वारा देवकी स्वरूप प्र  
 गट हो जाता है इस कारणे मूर्तिद्वारा तथा मत्तावलजी पुरुषोंके अथानु  
 सार समक लेना तथा शस्त्र, धनुष्य, चक्र, त्रिशूलदि जिसके पास होवे  
 तथा अक्षसूत्र, जपमाला, आदि शब्दसे कमजो प्रमुख होवे, फेर फैसा जो  
 देव होवे? राग देपादि दूषणोका जिनमें चिन्ह होवे अरु स्त्रीजो पास  
 रकेगा वो जरूर कामी और स्त्रीसे जोग करनेवाला होगा, इसमें अधिक  
 रागी होणेका दूसरा कौनसा चिन्ह है? इसी काम रागके वग होकर कुदे  
 वीने परस्त्री, स्वस्त्री, बेटी, माता, बहिन, अरु पुत्रकी वधू प्रमुखसे अनेक  
 कामकीडा कुचेष्टा करी है

अब जो पुरुष मात्र होकर परस्त्री गमन करता है वसकूं आज कालके  
 मत्तावलजीयोमेंसें कोइनी अष्टा नहीं कहता, तो फेर परमेश्वर हो कर जो  
 परस्त्रीसे काम कुचेष्टा करे, तो उसके कुदेव होनेमें कोइनी बुद्धिमान शका  
 नहीं कर सका, जो आपणी स्त्रीसे काम सेवन करता है और परस्त्रीका त्यागी  
 है वसकूनी परस्त्रीका त्यागी, धर्मी गृहस्थ, लोक कह सके हैं, परंतु उसको मु  
 नि वा ऋषि वा ईश्वर कनी नहीं कहेंगे क्युंकि जो आपही कामाग्निके कुम  
 में प्रज्ज्वलित हो रहा है तिसमें कनी ईश्वरता नहीं हो सकी, इस हेतुसें  
 जो रागरूप चिन्ह करी संयुक्त है, सो कुदेव हैं पुन जो देपके चिन्ह  
 करी संयुक्त है वोनी कुदेव है देपके चिन्ह शस्त्रादि धारण करणं क्यु के जो  
 शस्त्र, धनुष, चक्र, त्रिशूल प्रमुख रकेगा उसने अवश्य किसी वैरीको मारणा  
 है, नहीं तो शस्त्र रखणेसें क्या प्रयोजन है? तो जिसकू वैर विरोध लगा दुवा है  
 सो परमेश्वर नहीं हो सका है, जो ढाल वा खड्ग रकेगा वह जयकरी अव  
 श्य संयुक्त होगा अरु जो आप ही जय संयुक्त है तो उसकी सेवा करनेसें  
 हम निजय कैसें हो सके है? इस हेतुसें देप संयुक्तको कौन बुद्धिमान, प  
 रमेश्वर कह सका है? परमेश्वर जो है सो तो बीतराग है अरु जो राग  
 देप करी संयुक्त है सो कुदेव है

तथा जिसके हाथमें जपमाला है, सो असर्वज्ञताका विन्ह है जेकर सर्वज्ञ होता तो मालाके मणिकियों बिना नी जपकी संख्या कर सका, अरु जो जपकों करता है, सोनी अपणसे उच्चका करता है, तो परमेश्वरसे उच्च कौन है जिसका वो जप करता है? इस हेतुसे जो मालासे जप करता है सो कुदेव है

तथा जो शरीरकू जस्म लगाता है, औ धूणी तापता है, नंगा होकर कुचेष्टा करता है, नांग, अफीम, धनूरा, मदिरा प्रमुख पीता है तथा मासादि अद्युद्ध आहार करता है, वा हस्ती, ऊट, बैल, गर्दन प्रमुखकी जो असवारी करता है सोनी कुदेव है, क्युकि जो शरीरकों जस्म लगाता है, अरु जो धूणी तापता है सो किसी वस्तुकी इष्टा वाला है, सो जिसका अजीतक मनोरथ पूरा नहीं हुआ सो परमेश्वर नहीं वो तो कुदेव है

अरु जो नशे, अमलकी चीजे खाता पीता है, सो तो नशेके अमलमें आनद और हर्ष दूढता है, अरु परमेश्वर तो सदा आनद औ सुखरूप है, परमेश्वरमें वो कौनसा आनद नहीं था जो नशा पीनेसे उसकूं मि जाता है? इस हेतुसे नशा पीने वाला अरु मांसादि अद्युद्ध आहार करने वाला जो है सो कुदेव है

और जो असवारी है सो परजीवोंकू पीडाका कारण है, अरु परमेश्वर तो दयालु है, सो पर जीवोंकू पीडा कैसे देवे? इस हेतुसे जो असवारी करे, सो कुदेव है

और जो कममल रखता है, सो छवि होणेके कारण रखता है अरु परमेश्वर तो सदाही पवित्र है उनकूं कममलसे क्या काम है?

यत ॥ श्लोक ॥ स्त्रीसग काममाचष्टे, देप चायुधसग्रह ॥ व्यामोहं चाक्षुत्रादि, रशोच च कममलु ॥ १ ॥ अर्थ —स्त्रीका जो सग है सो कामकूं कहता है, शस्त्र जो है सो देपकूं कहता है, जपमाला जो है सो व्यामोहकूं कहती है, अरु कममलु जो है सो अद्युचिपणोकूं कहता है तथा निग्रह जो (जिसके उपर क्रोध करे) तिसकूं बध, बधन, मारण, रोगी, शोकी, अतीष्ट वियोगी, नरकपात, निर्धन, दीन, क्षीण करे, सोनी कुदेव है और जो जिसके उपरि अनुग्रह (तुष्टमान) होवे तिसकूं इष्ट, चक्रवर्ती, धनदेव, वासुदेव, महाममलिक, ममलिकादिकोंको राज्यादि पदवीका वर देवे तथा



सुंदर स्वर्गसदृश स्त्रीका संयोग, पुत्र परिवारादिकोंका संयोग जो करे, सो कु देव है, क्योंकि जो ऐसा रागी ढेपी है वो मोक्षके तांड कभी नहीं हो सका, सो तो जूत, प्रेत, पिशाचादिकोंकी तरे क्रीडाप्रिय देवता मात्र है ऐसा देव अपने सेवकोंको कैसे मोक्ष दे सका है? आपही यदि वो रागी, ढेपी, कर्म परतंत्र है, तो सेवकोंका क्या कार्य सार सका है? उन देवोंमें गौरी कुदेव है

पुन कुदेवके लक्षण लिखते हैं जो नाद, नाटक, हाम्य, संगीत, इनके रसमें मग्न है वाद्यत्र (वाजा) बजाता है और आप नृत्य करता है तथा औरोंको नचाता है, आप हसता और हृदता है, प्रियी रागोंका गाता है, और संगीत बोलता है इत्यादिक मोहकर्मके वश मत्सरकी चेष्टा करता है, स्वभाव जिसका अस्थिर हो रहा है, जो आपही ऐसा है तो फेर सेवकोंको शांतिपद कैसे प्राप्त कर सका है? जैसे एरंमवृद्ध कल्पवृद्धकी तर इष्टा नहीं पूर सका, किसी मूढ़ पुरुषने जो एरंमू कल्पवृद्ध मान लीया तो क्या वो कल्पवृद्धका सारा काम दे सका है? ऐसेही किसी मिथ्यादृष्टि पुरुषने जो कुदेवको परमेश्वर मान लीया तो क्या वो परमेश्वर हो सका है? कभी नहीं हो सका इसी वास्ते प्रथम परिच्छेदमें जो लक्षण परमेश्वर के लिखे हैं तिनही लक्षणों वाला परमेश्वर देव है शेष सर्व कुदेव है

प्रश्न - हमने तो ऐसा सुण रक्का है जो जैनी ईश्वरको नहीं मानते, उनका जो मत है, सो अनीश्वरीय है और हमने तो प्रथम परिच्छेदमें कइ जगे अर्द्धत जगवत परमेश्वर लिखा है और प्रथम परिच्छेद तो जगवान्हीके स्वरूपकथनमें समाप्त किया है, यह कैसे सजब हो सका है?

उत्तर - हे जय्य ! जे कइ कहते हैं कि जैनमतावलंबी ईश्वरको नहीं मानते ऐसा कहणा उनका मिथ्या है उन्होंने कभी जैनमतका शास्त्र पढ़ा वा सुना न होगा तथा किसी बुद्धिमान जैनीका ससर्गजी न करा होगा, जेकर जैन मतका शास्त्र पढ़ा, वा सुना होता तो कभी ऐसा न कहता, जो जैनी ईश्वरको नहीं मानते, जेकर जैनी ईश्वरको न मानते तो यह जो श्लोक लिखे जाते हैं, वो किसकी स्तुतिके है ॥ श्लोक ॥ त्वामव्ययं विष्णुमचित्पमसख्यमाय, ब्रह्माण्मीश्वरमनतमनगकेतुम् ॥ योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेक, ज्ञानस्वरूपममल प्रवदति सत ॥ १ ॥ अस्यार्थ - हे जिन ! ( सत ) सत्पुरुष ( त्वां ) तेरे प्रति ( अव्ययं ) अव्यय ( प्रवदति ) कहते हैं अव्यय अपचयकू जो न प्राप्ति होवे

सो इय्यार्थे नयके मतसे अय्यय तीनो कालोंमें एक स्वरूप है विनाति - शो  
 जता है परमेश्वर पणा करी सो ( विष्णु ) अथवा विनवति - समर्थ होवे  
 कर्मोन्मूलन करके सो ( विष्णु ) अथवा इडादिक देवताओंका जो स्वामी सो  
 विष्णु, सत्पुरुष इसवास्ते तुजकू विष्णु कहते हैं पुन कैसे तुजकू ? ( अचि  
 त्य ) अय्यात्म ज्ञानीजी तुजकू चितवन करनेकू समर्थ नहीं फेर कैसे तुजकू ?  
 ( असख्य ) गुणाकी सख्या ( गिणती ) नहीं कि इतने गुण है जगवानमें  
 इस हेतुसे सत्पुरुष तुजकू असख्य कहते हैं फेर कैसे तुजकू ? ( आद्य )  
 आदिमें जो होवे सर्व लोक व्यवहारके प्रवर्त्तावणसे, सत तेरेकू आद्य क  
 हते हैं, अथवा अपने तीर्थकी आदि करणसे आद्य. फेर कैसे तुजकू ?  
 ( ब्रह्माण ) अनत आनद करी जो सर्वसे अधिक वृद्धि वाला है सो ब्रह्म,  
 सत्पुरुष तुजकू ब्रह्म कहते हैं फेर कैसे तुजकू ? ( ईश्वर ) सर्व देवताओंमें  
 गकुर कहते हैं फेर कैसे तुजकू ? ( अनत ) अनत ज्ञान दर्शनके योगतें अ  
 नत अथवा नही है अत जिसका सो अनत कहते हैं अथवा अनत चारों  
 करी सयुक्त ? अनतज्ञान, १ अनतबल, २ अनतसुख, ४ अनतजीवन,  
 सो अनत कहते हैं फेर कैसे तुजकू ? ( अनगकेतु ) कामदेवकू केतुके उदय  
 समान नाशकारक सो अनगकेतु कहते हैं अथवा नहीं है अंग औदारिक,  
 वैक्रिय, आहारक, तैजस, कर्मण शरीर रूपी चिन्ह जिसके सो अनग  
 केतु नविष्य नैगमके मत करी कहते हैं फेर कैसे तुजकू ? ( योगीश्वर )  
 योगी जो चार ज्ञानके धरनारे तिनोंका ईश्वर कहते हैं फिर कैसे तुजकू ?  
 ( विदितयोग ) जाय्या है सम्यक् ज्ञानादिरूप जिसने अथवा योगी ( ध्यानादि  
 जाय्या है जिसने ) अथवा विशेष करके दित खमिति कीया है कर्मका स  
 योग जीवके साथ जिसने सो विदितयोग कहते हैं, फेर कैसे तुजकू ?  
 ( अनेक ) ज्ञान करके सर्वगत होनेसे अथवा अनेक सिद्धांके एकत्र रहनेसे  
 अथवा गुण पर्यायकी अपेक्षा करके अथवा रूपनादि व्यक्ति जेदसे अने  
 क कहते हैं फिर कैसे तुजकू ? ( एक ) अद्वितीय उत्तमोत्तम अथवा जीव  
 इय्यापेक्ष्या एक कहते हैं फेर कैसे तुजकू ? ( ज्ञानस्वरूप ) ज्ञान द्वायिक  
 केवल है स्वरूप जिसका सो ज्ञानस्वरूप कहते हैं फेर कैसे तुजकू ? ( अ  
 मल ) नहीं है अष्टावश दोषरूप मल जिसके सो अमल कहते हैं, ए पूर्वो  
 क पंदरा विशेषण ईश्वरके मतांतरोंमें प्रसिद्ध है

तथा श्लोक "बुद्धस्त्वमेव त्रिवुधाश्रितबुद्धिबोधात्, त्वं णकरोसि सुवन  
त्रयशकरत्वात् ॥ धातासि धीर शिवमार्गप्रिधेविधानात्, व्यक्त त्वमेव जगत्त  
पुरुपोत्तमोसि ॥ २ ॥ अर्थ - हे त्रिवुधाश्रित ! त्रिवुध जो वेद्यताओं की  
पूजिता सातो सुगतामेसें कोइएक सुगत, तिसकू बुद्ध कहीये, सो बुद्ध तुम्ही  
है, किस कारणसे ? धर्मबुद्धि प्रगट करणसे फेर तू णकर दे किस कारणसे ?  
तीन सुवनमें सा जो सुख करे सोशकर दे धीर ! त्व धाता (ब्रह्मा है) किस  
कारणसे ? शिव मोक्ष तिसका मार्ग जो ज्ञान, दर्शन, धारित्र रूप तिसकी  
विधि करणसे तू विधाता है हे जगत्त ! तू व्यक्त प्रगट पुष्पोमे उत्तम है  
॥ २ ॥ इत्यादि लाखों श्लोक परमेश्वरकी स्तुतिके हैं, जे कर जैनी ईश्वरको  
न मानते तो इन श्लोकोसे उनोने किसकी स्तुति करी है ? इस कारणसे  
जो कहते हैं कि जैनी लोग ईश्वरकू नहीं मानते, वे प्रत्यक्ष मृषावादी है

प्रश्न - वदुत अथवा दूथा जो मेरे मनका सशय दूर दूथा परंतु एक  
वातका सशय मेरे मनमें है जो तुमने ईश्वर तो मान्या, परंतु जगत्का कर्ता  
ईश्वर जैनमतमें तुमने मान्या है वा नहीं ?

उत्तर - हे जय्य ! जगत्का कर्ता जो ईश्वर सिद्ध हो जावे तो जैनी क्यु  
नहीं माने ? परंतु सर्व वस्तुका कर्ता ईश्वर किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता

प्रश्न - जे कर किसी प्रमाणसे ईश्वर सर्व वस्तुका कर्ता सिद्ध नहीं हो  
ता तो (१) नवीन वेदांती, (२) नैयायिक, (३) वैशेषिक, (४) पातांजल,  
(५) नवीन सांख्य, (६) ईसाई, (७) मुसलमान प्रमुख अनेक मतावलंबी  
पुरुष ईश्वरको जगत्का कर्ता वा सर्व वस्तुका कर्ता मानते है क्या इनमेंसुं  
कोइनी ईश्वरकू जगत्का कर्तापणामें निषेध करनेवाला समज वार न जया ?

उत्तर - हे जय्य ! (१) जैन, (२) बौद्ध, (३) प्राचीन सांख्य, (४) पू  
र्वमीमांसाकारक जैमिनीय मुनिके सप्रदायी जट्ट प्रजाकर इत्यादिक अनेक  
मतावलंबीयोमेंसें कोइनी समजवार न जया जो ईश्वरकू जगत्का कर्ता  
स्थापन करता

प्रश्न - जैन बौद्ध अरु प्राचीन सांख्यादि उक्त मतावलंबी सर्व अज्ञानी  
हूवे हैं इस हेतुसे ईश्वरकू जगत्का कर्ता नहीं मानते ?

उत्तर - नवीन वेदांती, नैयायिक अरु वैशेषिकादि यदनी सर्व अज्ञानी  
हूवे है, जो ईश्वरकू जगत्का कर्ता मानते है

प्रश्न—ईश्वर जगत्का वा सर्व वस्तुका कर्त्ता है, ऐसे जो मानियें, तो क्या दूषण है ?

उत्तर—ईश्वरकू जगत्का कर्त्ता वा सर्व वस्तुका कर्त्ता माननेसें बहुत दूषण आते हैं

प्रश्न—तुम तो अपूर्व बात सुणाते हो, हमने तो कवेइ नहीं सुना जो ईश्वरकू जगत् कर्त्ता वा सर्व वस्तुका कर्त्ता माननेमें दूषण आता है? अब तो आप कू कहना चाहियें जो जगत्का कर्त्ता माननेसें ईश्वरकू क्या दूषण आता है?

उत्तर—हे नय्य! प्रथम तुम यह बात कदो की तुम कोणसा ईश्वर जगत्का कर्त्ता मानता हो ?

प्रश्न—क्या ईश्वरजी कइक तरेंके हैं, जो आप हमसें ऐसा पूछते हो ?

उत्तर—क्या तुम नहीं जानते जो दो तरेंके ईश्वर मतावलवीयोंने माने हैं ? एक तो जगदुत्पत्तिमें पहिलां केवल एकही ईश्वर था जगत्का उपादा नादिक कोइनी कारण वा दूसरी वस्तु नहीं थी, एकही छुट्ट बुद्ध सच्चिदानंदादि स्वरूप युक्त परमेश्वर था एकैक जीवोंके तो ऐसा ईश्वर, जगत् वा सर्व वस्तुका रचने वाला अजिमत है, और दूसरोंने तो (१) जीव, (२) परमाणु, (३) आकाश, (४) काल, (५) दिशादि सामग्री वाला, एतावता एक तो ईश्वर उक्त विशेषण सयुक्त, और दूसरी सामग्री जिससें जगत् रचा जावे, ए दोनो वस्तु अनादि हैं, एतावता एक तो ईश्वर और दूसरी जगत् उत्पन्न करणोकी सामग्री, ए दोनो किसीने बणाये नहीं ऐसे माने है, तुम कू इन दोनो मतोंमेंलू कोनसा मत सम्मत है ?

पूर्वपक्ष—हमकू तो प्रथम मत सम्मत है, क्यु के वेदादि शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है “एतस्मादात्मन आकाश सञ्जत आकाशाद्वायु वायोरग्नि अग्नेराप अन्नं पृथिवी पृथिव्या ओषधय ओषधिन्योऽन्न अन्नादेत रेतस पुरुष सवा एष पुरुषोत्तरसमयः” यह तैत्तिरीय शाखाकी श्रुति है, तथा “स देव सौम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं तदैकत बहु स्या प्रजायेयेति” यह श्रुति ऋग्वेदकी है, तथा “नासदासीन्नो सदासीत्तदानीन्नासीद्विजो न्योमपरोयत् किमावरीव कुदकस्य शर्मण्यन्न किमासीज्जहन गचीर” यह श्रुति ऋग्वेदकी है, “आत्मा वा इदमग्र आसीन्नान्यत् किञ्चिन्मिपत् स ईद्वत लोकास्तृजइति” यह ऐतरेय ब्राह्मणकी श्रुति है इत्यादि अनेक श्रुतियोंसे सिद्ध

होता है, जो सृष्टिमें पहले एक केवल ईश्वरही था, न जगत् था और न जगत्का कारण था, एकही ईश्वर शुद्ध स्वरूप था, तथा ईसाऽ वा मुसज्जमा न मतवालेजी ऐसे ही मानते हैं ५म हेतुसे हम प्रथम पक्ष मानते हैं

उत्तर—हे पूर्वपक्षी ! तुमारा यह कहना ईश्वरकू बड़ा कञ्जकित करता है ?

पूर्वपक्ष—जगत्के रचनेसे ईश्वरकू क्या कञ्ज प्राप्त होता है ?

उत्तरपक्ष—प्रथम तो जगत्का उपादान कारण है नहीं, ५म हेतुसे जगत् कदेनी उत्पन्न नहीं हो सका, जिसका उपादान कारण नहीं है, सो कार्य कदापि उत्पन्न नहीं हो सका, जैसे गड़ेका सींग

पूर्वपक्ष—ईश्वरमें अपनी शक्ति, नामांतर कुदरतसे जगत्कू रचा है ईश्वरकी जो शक्ति है, सोऽ उपादान कारन है

उत्तरपक्ष—ईश्वरकी जो शक्ति है सो ईश्वरसे निन्न है, वा अजिन्न है ? जे कर कहोगे निन्न है, तो फेर जड है वा चेतन है ? जेकर कहोगे जड है, तो फेर नित्य है, वा अनित्य है ? जेकर कहोगे नित्य है, तो फेर यह जो तुमारा कहना था जो सृष्टिसे पहिले एक केवल ईश्वर था दूसरा कुठनी नहीं था, यह ऐसा हुवाकि जैसे उन्मत्तोका वचन, अपने ही वचनकू था पही जूव करा जे कर कहोगे अनित्य है, तो फेर उसका उपादान कारण, और ईश्वरकी शक्ति दुइ तिस शक्तिकी उत्पन्न करणे वाली और शक्ति दुई, इसी तरें करतां अनवस्थादूषण आता है, जे कर कहोगे चेतन है, तो फिर नित्य है, वा अनित्य है ? दोनोही पक्षोंमें पूर्वोक्त अपरापरस्ववचनव्याहत अरु अनवस्था दूषण है, जेकर कहोगे ईश्वर शक्ति ईश्वरसे अजिन्न है, तो सर्व वस्तुकों ईश्वरही कहना चाहिये, जब सर्व वस्तु ईश्वरही हो गइ, तो फेर अज्ञा और बुरा, नरक और स्वर्ग, पुण्य और पाप, धर्म और अधर्म, ऊच नीच, रंक राजा, सुशील और दुशील, राजा और प्रजा, चोर और साध, (सत) सुखी और दुखी इत्यादिक सर्व कुठ ईश्वरही आप बना, तब तो ईश्वरने जगत् क्या रचा, आपही आपणा सत्तानाश कर लीया, ए प्रथम कलक ईश्वरकू लगता है (१) तथा जब ईश्वर आपही सब कुठ बन गया, तो फेर वेदादिक शास्त्र क्यु बनाये ? अरु उनके पढयेसे क्या फल हुआ ? ए दूसरा कलक (२) तथा जब वेदादिक बणाये तब आपणे आपकू ज्ञानी होणे वास्ते पहिले तो अज्ञानी था ए तीसरा कलक (३) तथा शुद्धसे अ

छुड़ बना, जो जगत् रूप होणेकी मेहनत करी, सो निष्फल दुई, ए चौथा कलंक ( ५ ) कोइ वस्तु जगत् में अच्छी वा बुरी नहीं ए पाचवा कलंक ( ६ ) क्युं आपणे आपकूं सकटमें माला<sup>१</sup> ए ठछा कलंक. इत्यादि अनेक कलंक तुम ईश्वरकू जगाते हो

पूर्वपक्ष - ईश्वर सर्व शक्तिमान् है, इस हेतुमे ईश्वर, विनाही उपादान कारणसें जगत् रच सका है

उत्तरपक्ष - यह जो तुमारा कहनां है सो प्यारी चार्या, वा मित्र मा नेगा परंतु प्रेक्षावान् कोइनी नहीं मानेगा, क्युकि इस तुमारे कहनेमें कोइनी प्रमाण नहीं परंतु जिसका उपादान कारण नहीं वो कार्य कदेनी न हो सका जैसे गधेका सींग, अइसा प्रमाण तुमारे कहनेकूं बाधने वाला तो है, परंतु साधने वाला कोइनी नहीं, जेकर हठ करके स्वकपोलकल्पित हीकू मानोगे तो परीक्षा वालोकी पक्तिमें कदेनी नहीं गिने जाउगे तथा इस तुमारे कहनेमें इतरेतराश्रय दूषणरूप वज्रका प्रहार पड़ता है, यथा सृष्टिसे पहिलें उपादानादि सामग्री रहित केवल छुड़, एक ईश्वर सिद्ध हो जावे तो सर्वशक्तिमान् सिद्ध होवे, जब सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे तो सृष्टिसे पहिलें उपादानादि सामग्री रहित केवल छुड़ एक ईश्वर सिद्ध होवे, इन दोनोमेंसू जब तक एक सिद्ध न होवे तब तक दूसरा कनी सिद्ध नहीं होता, तथा इस तुमारे कहनेमें चक्रकदूषण होता है, सृष्टि का कर्ता सिद्ध होवे, तदा सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे जब सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे तब सृष्टिसे पहिलें सामग्री रहित केवल छुड़ एक ईश्वर सिद्ध होवे, तब सृष्टिकर्ता सिद्ध होवे अइसे प्रगट, चक्रकदूषण है

पूर्वपक्ष - ईश्वरतो प्रत्यक्ष प्रमाणसें सिद्ध है, फेर तुम उसकू सृष्टिकर्ता क्यु नहीं मानते ?

उत्तरपक्ष - जे कर ईश्वर सृष्टिका कर्ता प्रत्यक्ष प्रमाणसें सिद्ध होवे, तो किसीकूनी अमान्य न होवे, औ तुमारा हमारा ईश्वर विषयिक विवाद कनी नहीं होवे, क्युकि प्रत्यक्षमें विवाद नहीं होता है, तथा ईश्वरका प्रत्यक्ष देखणांजी तुमारे वेद मंत्रसें विरुद्ध हैं तथा च वेदमंत्र ॥ अथाणिपाठो जवनोग्रहीता, पश्यत्यचक्षु शृणोत्यकर्ण ॥ स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता,

तमाहुर्यं पुरुष पुराणम् ॥ इस मंत्रस कहता है ईश्वरको जानने वाला कोइनी नहीं.

**पूर्वपक्ष** - बिना कर्ताके जगत् कैसे हो गया ? इस अनुमान प्रमाणमे ईश्वर सृष्टिका कर्ता सिद्ध होता है, सो तुम क्यु नहीं मानते ?

**उत्तरपक्ष** - इस तुमारे अनुमानकू दूसरे ईश्वरपक्षमें खमन करेगे, अमे उक्त प्रकारसे एक केवल उपादानादि सामग्री रहित, अमे सृष्टिमें पहिजे परमेश्वर नहीं सिद्ध हुश्या, तोनी हम आगे चजते है कि जब ईश्वरने इन जीवोंकू रचे थे तब ( १ ) निर्मल रचे थे ? ( २ ) पुण्य वाले रचे थे ? ( ३ ) पाप वाले रचे थे ? ( ४ ) मिश्रित पुण्य पाप अर्द्ध अर्द्ध वाले रचे थे ? ( ५ ) पुण्य थोडा पापाधिक अैसे रचे थे ? ( ६ ) किवा पुण्याधिक पाप थोडे वाले रचे थे ? जे कर प्रथम पक्ष ग्रहण करेगे तो जगत्में सर्व जीव निर्मलही चाहिये, फेर वेदादि शास्त्रों द्वारा उनकू उपदेश करना च्या है, अरु वेदा वि शास्त्रोंका कर्तानी मूढ सिद्ध हो जावेगा, क्युकि जब आगंही जीव निर्मल हैं तो उसके वास्ते शास्त्र काहेकू रचने थे, जो वस्त्र निर्मल होता है तिसकू कोइनी बुद्धिमान धोता नहीं, जे कर धोवे तो महामूढ है, इस कारणसे जो निर्मल जीवोंके उपवेश निमित्त शास्त्र रचे सोनी मूढ है

**पूर्वपक्ष** - ईश्वरनेतो जीवोंकू शुद्ध निर्मल एतावता अज्ञादी बनाया था, परंतु जीवोंने अपणी इज्ञासे अज्ञा वा बुरा ( चूना ) काम कर लीया है, इसमें ईश्वरकू कुछ दोष नहीं ?

**उत्तर पक्ष** - जब ईश्वरने जीवोंमें अज्ञा वा बुरा काम करणेकी शक्ति न दी रची, तो फेर जीवोंकू पुण्य वा पाप करणेकी शक्ति कहासे आई ?

**पूर्वपक्ष** - शक्तियां तो जीवमें सर्व ईश्वरनेही रचियां है परंतु जीवोंकू बुरा काम करणेमें प्रवृत्त नहीं करता, बुरे कामोंमें जीव आपही प्रवृत्त हो जाता है, जैसे कोइ गृहस्थने अपणे प्रिय पुत्र बालककू खेलणे वास्ते एक खिलोना दीया है, परंतु जो वो बालक, उस खिलोनेसे आपणी आंख निकाल लेवे तो माता पिताका क्या दूषण है ? तैसेही जीवोंकू ईश्वरने जो हाथ, पग, प्रमुख वस्तु दइ है, सो नित्य केवल धर्म करणेके कारणे दइ हैं पीछे जो जीव उनसे अपणी इज्ञासे पाप कर लेवे तो इसमें ईश्वरकू क्या दूषण है ?

उत्तरपक्ष—हे जय्य ! यह जो तुमने बालकका दृष्टांत दीया सो यथा र्थ नहीं, क्युकि बालकके माता पिताकू यह ज्ञान नहीं है, जो हम इस बालकके खेलणे वास्ते खिलोना देते हैं, सो हमारा बालक इस खिलोनेसें अपणी आंख फोड लेगा जेकर बालकके माता पिताकू यह ज्ञान होता जो हमारा बालक, इस खिलोनेसें अपणी आंख फोड लेगा तो माता पिता कजी उसके हाथमें खिलोना न देते, जे कर जान करके देवें तो वो माता पिता नहीं किंतु ? उस बालकके परम शत्रु है, इसीतरें ईश्वर, माता पिता तुल्य है अरु तुम हम उसके बालक हैं, जे कर ईश्वर जानता था जो मैं इसकू रचा इसके तांइ हाथ, पग, मन, इडियादि सामग्री दीनी है, इस जीवने इस सामग्रीसे बहुत पाप करके नरक जाना है तो फेर ईश्वरने उस जीवकू क्यु रचा ? जे कर कहोगे ईश्वर यह बात नहीं जानता था जो मेरी धर्मकरणेकी दीनी दुइ सामग्रीसे पाप करके यह जीव नरक जावेगा, तो फेर ईश्वर तु मारे कहनेहीसें अज्ञानी असर्वज्ञ सिद्ध होता है जेकर कहोगे ईश्वर जान ता था जो यह जीव मेरी देइ दुइ सामग्रीसे पाप करके नरक जायगा तो फेर हमारा रचने वाला ईश्वर, परम शत्रु दुआ के नहीं ? बिना प्रयोजन रक जीवोंकू सामग्रीद्वारा पाप करायके क्यु उनकू नरकमें माले ? जब साम ग्रीद्वारा प्रथम पाप कराना और पीछे नरकपात करनेका दम देना इस तुमारे कहनेसे ईश्वरसें अधिक अन्यायी कोइ नहीं क्यु के उस जीवकू प्रथम तां रचा, फेर नरकमें माला, वस येही तुमने ईश्वरकू अन्यायी, असर्वज्ञ, निर्द यी, अज्ञानी, वृथा मेहनतीरूप कलक दीने, इस वास्ते निर्मल जीव ईश्वर ने नहीं रचा ए प्रथम पक्षोत्तर

अथ दूसरा पक्षोत्तर—जेकर कहोगे ईश्वरने पुण्य वालेही जीव रचे हैं तो यहजी कहनां तुमारा मिथ्या है, क्युकि जब पुण्यही वाले सर्व जीव थे तो गर्भमेंही अंधे, जंगहे, लूले, बहिरे होनां, चूमा रूप, नीच वा निर्धन के कुलमें उत्पन्न होनां, जाव जीव दु खी रहनां, खाने पीनेको पूरा न मि लनां, महा कष्ट कारक मेहनत करके पेट जरनां, यह पुण्यके उदयसें नहीं हो सके, अरु बिनाही करे पुण्यके जीवोंकू ईश्वरने पुण्य क्यु लगा दीया ? जेकर बिनाही कखां जीवोंकू ईश्वरने पुण्य लगा दीया तो ऐसे बिनाही धर्म कखां जीवोंकू स्वर्ग तथा मोक्ष क्यु नहीं पहुचाय देता ? शास्त्रोप



देश करायकें, चूखे मारकें, तृष्णा बुढायक, राग ढेप मिटायकें, घर बार बुढायकें, साधु बनायकें, दुरुहे मगायक, दया, दम, दान, सत्यपचन, चोरीका त्याग, स्त्रीका त्याग, इत्यादिक अनेक साधन करायकें, पीठे मर्ग मोक्षमें पहुचाना, यह सकट ईश्वरने व्यर्थ खड़ा करके म्यु जीगोहू ड ख दीना इस बातसे तो ऐसा प्रतीत होता है, जो ईश्वरकू कुत्रनी समझ नई। इति

अथ तृतीय पक्षोत्तर—जे कर कहोगे ईश्वरने पाप सयुक्त ही जीव रचे है, तो फेर बिनाही जीवोंके कखा पाप टाग दीया तो फेर जय ईश्वरने ही हमारा सत्तानाश करा, तो हम किस आग पिनति करे जा बिना गुना ह हमकू यह ईश्वर पाप लगाता है, तुम इसकू मने करोगे, जां बिनाही करे पाप लगा देवे, ऐसे अन्यायी ईश्वरका तो कनी नामही न लेना चाहिये तथा जेकर ईश्वरने पाप सयुक्त ही सर्व जीव रचे है, तो राजा, आमात्य ( मंत्री ) श्रेष्ठ, सेनापति, जनवानोंके घरमें उत्पन्न होना, नीरोगकाय, सुंदर रूप, सुंदर सहनन, घरमें आदर, बाहिर यशोकीर्ति, पचिडियपिपय जो ग, इत्यादिक सामग्री पापसें कवेइ सजय नहीं होती इस वास्ते जीवोंकू केवल पापवान् ईश्वरने नहीं रचे ॥ इति तृतीय पक्षोत्तर ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ पक्षोत्तर—जेकर कहोगे अर्द्धोऽर्द्ध पुण्य पाप वाले जीव ईश्वरने रचे हैं यह पक्षनी अज्ञा नहीं, क्युकि आये सुखी आधे ड खी ऐसे नी सर्व जीव देखनेमें नहीं आते ॥ इति चतुर्थपक्षोत्तर ॥

अथ पंचमपक्षोत्तर—पांचवा पक्ष सोनी ठीक नहीं, सुख थोड़ा और ड ख बहुत ऐसेनी सर्व जीव देखणेमें नहीं आते, परंतु सुख बहुत थरु ड ख अल्प, ऐसें बहुत जीव देखणेमें आते हैं ॥ इति पंचमपक्षोत्तर ॥

अथ षष्ठ पक्षोत्तर—ठछा पक्षनी समीचीन नहीं, सुख बहुत थरु ड ख थोड़ा ऐसेनी सर्व जीव देखणेमें नहीं आते है, ड ख बहुत थरु सुख अल्प, ऐसे बहुत जीव देखणेमें आते हैं इन हेतुओंसें ईश्वर जीवोंकू कि सी व्यवस्था वाला नहीं रच सका, तो फेर ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता क्युं कर सिद्ध हो सका है? कनी नहीं हो सका तथा जब ईश्वरने सृष्टि नहीं रची थी तब तो ईश्वरकू क्या ड ख था? थरु जब सृष्टि रची तब क्या सुख दुःखा

पूर्वपक्ष—ईश्वर तो सदाही परम सुखी है, क्या ईश्वरमें कुछ न्यूनता

है जो उस न्यूनताके पूर्ण करणेकूं सृष्टि रचे ? वो तो जगत्में अपनी ईश्वरता प्रगट करणेकूं सृष्टि रचता है

उत्तरपक्ष—जब ईश्वरने सृष्टि नहीं रची थी तब तो ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट नहीं थी अरु जब सृष्टि रची तब ईश्वरता प्रगट नई, तो प्रथम जब ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट नहीं नई थी तब तो ईश्वर बड़ा बड़ास अरु असंपूर्ण मनो रथ ईश्वरताको प्रगट करणेमें विवहल था इस हेतुसे अवश्य ईश्वरकू ड ख होना चाहियें जब ईश्वर सृष्टिसे पहिले ऐसा ड खी था तब तो खाली क्यु वैर रहा था ? इस सृष्टिसे पहिले अपर सृष्टि क्यु नहीं रचकें अपना ड ख दूर करा ?

पूर्वपक्ष—ईश्वरने जो सृष्टि रची हैं सो जीवोंसे धर्म करकें उनकू अनंत सुख देगा इस परोपकारके वास्ते ईश्वरने सृष्टि रची है

उत्तरपक्ष—धर्म करायकें जीवोंकू सुख देनां यह तो तुमारे कहनेसे परोपकार दुआ परतु जो पाप करकें नरक गयें उनके उपरि क्या उपकार करा ? उनकू ड खी करणेसे क्या ईश्वर परोपकारी हो सकता है ?

पूर्वपक्ष—उनकूं नरकसे निकालके फेर स्वर्गमें स्थापन करेगा।

उत्तरपक्ष—तो फेर प्रथमही नरकमें क्यु जाने दीये ?

पूर्वपक्ष—ईश्वरही सर्व कुछ पुण्य पापादि कराता है, जीवके अधीन कुछ नहीं ईश्वर जो चाहता है सो कराता है, जैसे काठकी पुतलीकू बा जीगर जैसे चाहता है, तैसे नचाता है, पुतलीके कुछ अधीन नहीं

उत्तरपक्ष—जब जीवके कुछ अधीन नहीं, तो जीवकू अच्छे बुरेका फल नहीं चाहियें क्यु के जो कोई सिरदार किसी नौकरकू कहै जो तुम यह काम करो, फेर नौकर सिरदारके कहनेसे वो काम करे, अरु वो काम अच्छा वा बुरा है तो क्या फेर वो सिरदार उस नौकरकूं कुछ दम दे सका ? कुछ नहीं दे सका ऐसेही ईश्वरकी आज्ञासे जब जीवने पुण्य वा पाप करे, तो फेर पुण्य पापका फल जीवकू नहीं चाहियें जब पुण्य पाप जीवके करे न हुए तब स्वर्ग अरु नरक एनी जीवकू न होंगे, तब जीवकू नरक, स्वर्ग, तिर्यग् अरु मनुष्य, ए चार गतिजी न होंगी जब चार गति न होवेगी, तब ससारजी न होगा, जब ससार न होगा तब तो वेद, पुराण, कुरान, तौरे, तजबूर, इजील प्रमुख शास्त्रजी न होंगे जब शास्त्र न

होगे तब शास्त्रका उपदेशकनी न होगी जब शास्त्रका उपदेशकनी नहीं तो ईश्वरनी नहीं. जब ईश्वरही नहीं तो फेर सर्व शून्यता सिद्ध नह. ए फलक क्युकर मिटेगा ?

**पूर्वपक्ष** - यह जो जगत् हे सो वाजीगरकी वाजीगत है. अरु ईश्वर इसका वाजीगर है, सो इस जगत्कू रच कर ईश्वर इस खेती में मोजता, (क्रीडा करता) है, नरक, स्वर्ग, पुण्य, औ पाप कुठ नरु

**उत्तरपक्ष** - जब ईश्वरने क्रीडाहीके वास्ते जगत् रचा, तो क्रीडाहीमात्र फल होना चाहिये, परतु इस जगत्में तो कुटी, रोगी, गौकी, धनहीन, बलहीन, महाइ खी, महाप्रलाप कर रहे हैं, जिनकू देखनेसे दयाके वज्र होकर हमारे रोंघटे (रोम) खड़े होते हैं, तो क्या फेर ईश्वरकू इन इ खी याकू देख कर दया नहीं आती ? जब ईश्वरकू दया नहीं तो फेर निर्दयीनी कदेई ईश्वर हो सका है ? अरु जो क्रीडा करने वाला है, सो बालककी तरें रागी, बेपी, अइ होता है, जब राग बेप है, तो उसमें सर्व दूषण है जब आपही औगुणोंसे नखा है, तो वो ईश्वर काहेका ? वोतो समारी जीव है अरु जब राग, बेप वाला होवेगा तब सर्वइ कदापि न होवेगा, जब सर्वइ नहीं तो उसकू ईश्वर कौन कह सका है ?

**पूर्वपक्ष** - जीवोंके करे दूये पुण्य पापके अनुसार ईश्वर दंड देता है इस हेतुसे ईश्वरकू क्या दोष है ? जैसा जिसने कीया, वैसाही उसकू फल दीया

**उत्तरपक्ष** - इस तुमारे कहनेसे यह ससार अनादि सिद्ध हो गया, अरु ईश्वर कर्ता नहीं, ऐसा सिद्ध हुआ चाह रे मित्र ! तेने अपणे हाथसे थपणां मुद्द काला किया, क्यु के जे जीव अब हैं, अरु जो कुठ इनकू इहा फल मिला है, सो पूर्व जन्ममें करा हुआ उहारा अरु जो पूर्व जन्म था उसमें जो इ ख सुख जीवकू मिला था, वो उससे पूर्व जन्ममें करा था, इसी तरें पूर्व पूर्व जन्ममें इ ख सुख करणां अरु उत्तरोत्तर जन्ममें सुख इ खका नोणणां इसी तरें ससार अनादि सिद्ध होता है अब शोचो कि जगत्का कर्ता ईश्वर कैसें सिद्ध हुआ ?

**पूर्वपक्ष** - हम तो एकही परम ब्रह्म पारमार्थिक सङ्ग मानते हैं

**उत्तरपक्ष** - जे कर एकही परम ब्रह्म सङ्ग है, तो फेर यह जो सरल,

रसाल, प्रियाल, हंताल, ताल, तमाल, प्रवाल प्रमुख पदार्थ अग्रगामि पणे करके जो प्रतीत होते हैं, उ क्युं कर सत् स्वरूप नहीं है ?

पूर्वपक्ष -ए पूर्वोक्त जो पदार्थ प्रतीत होते हैं, वे सर्व मिथ्या है तथा च अनुमान प्रपच मिथ्या है, प्रतीत होऐसें जो अैसा है, सो अैसा है यथा सीप, चांदी रूप, तैसाही यह प्रपच है, इस अनुमानसे प्रपच मिथ्यारूप है, अरु एक ब्रह्मही पारमार्थिक सडूप है

उत्तरपक्ष -हे पूर्वपक्षी ! इस अनुमानके कहनेसें तूं तीदण बुद्धिमान नहीं है, सोइ बात कहते हैं, यह जो प्रपच तुमने मिथ्यारूप माना है सो मिथ्या तीन तरेंका होता है, एक तो अत्यंत असत् रूप, अरु दूसरा है तो कुछ और, अरु प्रतीति होवे औरतरें अरु तीसरा अनिर्वाच्य इन ती नोंमेंसू कौनसा मिथ्यारूप प्रपंचकूं माना है ?

पूर्वपक्ष -इन तीनों पक्षोंमेंसें प्रथम दो पक्ष तो मेरे स्वीकारही नहीं ॥ ५॥ कारण मैं तो तीसरा अनिर्वाच्य पक्ष मानता हू, सो यह प्रपंच अनिर्वाच्य मिथ्यारूप है

उत्तरपक्ष -प्रथम तो तुम यह कहो कि अनिर्वाच्य क्या वस्तु है ? ए तावता तुम अनिर्वाच्य किस वस्तुकू कहते हो ? (१) क्या वस्तुका कहने वाला शब्द नहीं है ? (२) वा शब्दका निमित्त नहीं है ? प्रथम विकल्प तो कल्पनाही करने योग्य नहीं है ? यह सरल है, यह रसाल है, अैसा शब्द तो प्रत्यक्ष सिद्ध है अथ दूसरा पक्ष है तो शब्दका निमित्त ज्ञान नहीं है ? वा पदार्थ नहीं है ? प्रथम पक्ष तो समीचीन नहीं सरल, रसाल, ताल, तमाल प्रमुखका ज्ञान तो प्राणी प्राणी प्रत्ये प्रतीत है, सर्व जीव देखने वाले जानते है जो सरल, रसाल, ताल, तमाल प्रमुखका ज्ञान हमकू है अथ दूसरा पक्ष तो पदार्थ, जावरूप नहीं है ? कि अजावरूप नहीं है ? जे कर कहोगे पदार्थ जावरूप नहीं अरु प्रतीत होता है, तो तुमकूं विपरीता ख्याति मानणी पड़ी अरु अद्वैतवादीयोंके मतमें विपरीताख्याति मानणी महा दूषण है अथ दूसरा पक्ष जो पदार्थ अजावरूप नहीं तो जावरूप सिद्ध जया, तब तो सत् ख्याति मानणी पड़ी अरु जब अद्वैतवाद मतां गीकार कीया, अरु सत्ख्याति मानणी पड़ी, तब तो सत् ख्यातिके माननेसें अद्वैत मतकी जड़कू कूदाडेसें काटा कदापि अद्वैतमत नहीं सिद्ध होगा

पूर्वपक्ष—जावरूप तथा अजावरूप ए दोनोही प्रकारें यस्तु नहीं

उत्तरपक्ष—हम तुमकूं पूछते हैं जो जाव अरु अजाव इन दोनोका अर्थ जो लौकिकमें प्रसिद्ध है वही तुमने माना है? वा इसमें विपरीत और तर का अर्थ, जाव अरु अजावका तुमने माना है? जे कर प्रथम पक्ष मानोगे तो जहां जावका निषेध करो गे तत्र तो तहां अवश्यमेव अजाव कहना पड़ेगा, अरु जहां अजावका निषेध करोगे, तहां अवश्यमेव जाव कहना पड़ेगा, जो परस्पर विरोधी है, तिसमें एकका निषेध करोगे तो दूसरेकी विधि अवश्य कहनी पड़ेगी अनिर्वाच्यता तो जहामूलमें नष्ट हो गई अथ दूसरा पक्ष—तब तो हमारी कुछ हानी नहीं, क्यु के अलौकिक एतावता तुमारे मन कल्पित शब्द अरु शब्दका निमित्त जो नष्ट हो जावेगा, तो लौकिक शब्द अरु लौकिक शब्दका निमित्त कदापि नष्ट नहीं होगा, तो फेर अनिर्वाच्य प्रपंच किस तरें सिद्ध होगा? जब अनिर्वाच्य न सिद्ध दुश्चा, तो प्रपंच मिथ्या कैसे सिद्ध दुश्चा? तब एकही अद्वैत ब्रह्म कैसे सिद्ध दुश्चा?

पूर्वपक्ष—हम तो जो प्रतीत न होवे, उसकू अनिर्वाच्य कहते हैं

उत्तरपक्ष—इत तुमारे कहनेमें तो बहुत विरोध आवे है, जे कर प्रपंच प्रतीत नहीं होता तो तुमने अपने प्रथम अनुमानमें जो प्रपंचको प्रतीयमान हेतु स्वरूप पणो क्यु कर ग्रहण कीया? अरु प्रपंचकू अनुमान करती वेजां धर्मापणो क्यु कर ग्रहण कीया? जे कर कहोगे धर्मा पणो वा प्रतीयमान हेतुपणो प्रपंचकू ग्रहण करणमें क्या दूषण है? तो फेर तुमने यह जो उपर प्रतिज्ञा करी थी, कि हम तो जो प्रतीत नहीं होवे, उसकू अनिर्वाच्य कहते हैं, तो फेर प्रपंच अनिर्वाच्य कैसे सिद्ध दुश्चा? जब प्रपंच अनिर्वाच्य नहीं तब या तो जावरूप प्रपंच सिद्ध होगा, या तो अजावरूप प्रपंच सिद्ध होगा इन दोनोही पक्षोंमें एकरूप प्रपंचके माननेसें पूर्वोक्त विपरीताख्याति तथा सत्ख्याति रूप दोनो दूषण फेर तुमारे गलेमें रस्ती मालते हैं, अब नाग कर कहां जावोगे? हम फेर तुमकों पूछते हैं कि यह जो तुम इस प्रपंचकू अनिर्वाच्य मानते हो, सो प्रत्यक्ष प्रमाणसें मानते हो? वा अनुमान प्रमाणसें मानते हो? प्रत्यक्ष प्रमाण तो इस प्रपंचकू सत्स्वरूपही सिद्ध करता है, जैसा जैसा पदार्थ है, तैसा तैसाही प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है अरु प्रपंच जो है सो पर

स्पर (आपसमें) न्यारी न्यारी जो वस्तु है सो अपणे अपणे स्वरूपमें नाव रूप है अरु दूसरे पदार्थके स्वरूपकी अपेक्षासे अनाव रूप है, इन इतरे तर विविक्त वस्तुओंकूँही प्रपच रूप माना है, तो फेर प्रत्यक्ष प्रमाण प्रपचकूँ अनिवार्य कैसें सिद्ध कर सकता है?

पूर्वपक्ष—पूर्वोक्त जो हमारा पक्ष है, तिसकूँ प्रत्यक्ष प्रतिक्षेप नहीं कर सकता, वयु कि प्रत्यक्ष तो विधायकही है, जे कर प्रत्यक्ष इतर वस्तुमें इतर वस्तुके स्वरूपका निषेध करे, तो हमारे पक्षकूँ बाधक ठहरे, परतु प्रत्यक्ष प्रमाण तो ऐसा है नहीं, प्रत्यक्ष प्रमाणतें इतर वस्तुमें इतर वस्तुके स्वरूप निषेध करणोकु कुठ है

उत्तरपक्ष—यहनी तुमारा कहनां असत्य है अन्य वस्तुके स्वरूपके बिना निषेध्यां वस्तुके यथार्थ स्वरूपका कदापि बोध न होगा, पीतादिक वर्णों करी रहित जब बोध होगा, तबही नील ऐसे रूपका बोध होगा तथा जब प्रत्यक्ष प्रमाण करी यथार्थ वस्तु स्वरूप ग्रहण कीया जायगा, तब तो अवश्य अपरवस्तुके स्वरूपका निषेधनी तिहां जाना जायगा जे कर अन्य वस्तुके निषेधकूँ अन्य वस्तुमें प्रत्यक्ष न जानेगा तो तिस वस्तुके विधि स्वरूपकूँनी प्रत्यक्ष न जान सकेगा, केवल जो वस्तुके स्वरूपकूँ ग्रहण करणा है, सोइ अन्य वस्तुके स्वरूपका निषेध करनां है. जब प्रत्यक्ष प्रमाण, विधि अरु निषेध दोनोहीकूँ ग्रहण करता है, तब तो प्रपंच मिथ्यारूप कदापि सिद्ध न होगा, जब प्रपंच मिथ्यारूप प्रत्यक्ष प्रमाणसें न सिद्ध जया, तब तो परम ब्रह्मरूप एकही अद्वैत तत्त्व कैसें सिद्ध जया? तथा जो तुम प्रत्यक्षकूँ नियम करकें विधायकही मानोगे, तब तो विद्यावत् अविद्याकीनी विधि तुमकूँ मानणी पड़ेगी सो यह ब्रह्म अविद्यारहित प्रत्यक्ष प्रमाणसें ग्रहण कीया, तब तो अविद्यानी प्रत्यक्ष सें निषेध ग्रहण होगी फेर जो तुमारा यह कहनां है की 'प्रत्यक्ष जो है, सो विधायकही है, परंतु निषेधक नहीं' ऐसे वचन कहने वालेकूँ क्युं न उन्मत्त कहनां चाहियें? अब जो आगे अनुमान कहेंगे, तिस करकेंनी पूर्वोक्त तेरे अनुमानका पक्ष बाधित है, सो अनुमान हमारा ऐसे है, प्रपंच मिथ्या नहीं है, असत्तसें विलक्षण होणेसें जो असत्तसें विलक्षण है, सो ऐसा है यथा आत्मा तैसा ही यह प्रपंच है, तथा प्रतीयमान जो तुमा

रा हेतु है, सो ब्रह्मात्माके साथ व्यभिचारी है, जैसे ब्रह्मात्मा प्रतीयमान तो है, परंतु मिथ्यारूप नहीं है, जेकर कहोगे कि ब्रह्मात्मा अप्रतीयमान है तो वचनगोचर न होगा, जब वचनगोचर नहीं तब तो तुमकू गुणे वनना ठीक है, क्यु कि ब्रह्म बिना अंतर तो कुछ है नहीं, अरु जो ब्रह्मात्मा है, सो प्रतीयमान नहीं, तो फेर तुमकू हम गुणके बिना और क्या कहे ? प्रथम अनुमानमें जो तुमने सीपका दृष्टांत दीया था, सो साध्य विकल है, क्यु कि जो सीप है सोजी प्रपचके अतर्गत है, अरु तुम तो प्रपचकू मिथ्यारूप सिद्ध करा चाहते हो, यह कनी नहीं हो सका है, जो साध्य होवे सोइ दृष्टांतमें कहा जावे, जब सीपकानी अजीतक सत् अस्त पणा सिद्ध नहीं, तो उसकू दृष्टांतमें काहेकू जाना ? तथा हम तुमकूं पूछते हैं कि यह जो तुमने प्रथम अनुमान, प्रपचके मिथ्या साधनेकू कीना था सो अनुमान, इस प्रपचसे निन्न है वा अनिन्न है ? जेकर कहोगे निन्न है, तो फेर सत्य है, वा असत्य है ? जेकर कहोगे सत्य है, तो तिस अनुमान सत्यकी तरें प्रपचनी सत्यही स्वरूप है, जेकर कहोगे असत्य स्वरूप है, तो फेर क्या शून्य है ? वा अन्यथा ख्यात है ? वा अनिर्वचनीय है ? प्रथम दोनो पक्ष तो कदापि साध्यके साधक नहीं है, मनुष्यके शृंगकी तरें, तथा सीपके रूपकी तरें अरु तीसरा जो अनिर्वचनीय पक्ष है तिसका तो सनवही है नहीं, सो अपने साध्यकू कैसे साधेगा ?

**पूर्वपक्ष**—हमारा जो अनुमान है, सो व्यवहार सत्य है, इस कारणें असत्य नहीं, फेर आपणे साध्यकू क्यु कर नहीं साध्य सका ? अपितु साध्यही सका है

**उत्तरपक्ष**—हम तुमसे पूछते हैं कि जो यह व्यवहारसत्यका क्या स्वरूप है ? व्यवहृतीति ( व्यवहार ) ऐसे जो व्युत्पत्ति करियें तब तो ज्ञानका ही नाम व्यवहार उहारा, ज्ञानसे जो सत्य है, सो पारमार्थिकही है, इस पक्षमें सत् ख्यातिरूप प्रपंच सिद्ध हुआ जब प्रपंच सत् सिद्ध हुआ, तब तो एकही परम ब्रह्म सङ्गुप अद्वैततत्त्व किसी तरहनी सिद्ध नहीं हो सका, जेकर कहोगे व्यवहार नाम शब्दका सत्य है, तो फेर हम तुमकूं पूछते हैं जो व्यवहार नाम शब्दका है, तो फेर शब्द, स्वरूपसे सत्य है ?

वा असत्य है ? जे कर कहोगे शब्द सत्स्वरूप है तो शब्दकी तरें प्रपंचनी सत् स्वरूप है, जे कर कहोगे असत्स्वरूप शब्द है, तो फेर ब्रह्मादि शब्दसें कहे दुये, कैसें सत् स्वरूप हो सकेगे ? क्युं कि जो आपही असत् स्वरूप है, सो परकी व्यवस्था करणे वा कहनेका हेतु कनी न हो सक्ता

पूर्वपक्ष - जैसे खोटा रूपक सत्य रूपकके क्रय विक्रयादिक व्यवहारका जनक होणसें सत्य रूपक माना जाता है, तैसें ही अनुमान हमारा यद्यपि असत् स्वरूप है तोनी जगत्में सत् व्यवहार करके प्रवर्तक होणसें व्यवहार सत् है, इस वास्ते आपणे साध्यका साधक है

उत्तरपक्ष - हे नव्य ! इस तुमारे कहनेसें तुमारा अनुमान पारमार्थिक असत् स्वरूप है, फेर तो जो दूषण असत् पक्षमें देने हैं, सो सर्व इहां पढ़ेंगे, जे कर कहोगे कि हम प्रपंचसें अनेद अनुमानकूं मानते है, तब तो प्रपंचकी तरें अनुमाननी मिथ्यारूप उहारा, तब तो आपणे साध्यकूं कैसें साध सकेगा ? इस पूर्वोक्त विचारसें प्रपंच मिथ्यारूप नहीं, किंतु आत्मा की तरें सत्स्वरूप है, तो फेर एक ही ब्रह्म अद्वैततत्त्व है यह तुमारा कहना क्युं कर सत्य हो सक्ता है ? कनी नहीं हो सक्ता

पूर्वपक्ष - हमारी उपनिषदोंमें तथा शंकर स्वामीका शिष्य आनन्दगिरि, शंकरदिग्विजयके तीसरे प्रकरणमें लिखता है कि “ परमात्मा जगद्धृषा वानकारणमिति ” परमात्मा जो है, सोइ इस सर्व जगत्का कारण है, कारणनी कैसा उपादान रूप है उपादान कारण उसकू कहते है कि जो कारण होवे सोइ कार्यरूप हो जावे, इस कहनेसें यह सिद्ध हुआ जो कुछ जगत्में है, सो सर्व कुछ परमात्मा ही आप बन गया, तब तो जगत् परमात्मा रूप ही है, फेर तुम सृष्टि कर्त्ता ईश्वर क्युं नहीं मानते ?

उत्तरपक्ष - वाद रे नास्तिक शिरोमणि ! तुम आपणे कहणकूं कनी विचार शोच कर कहते हो, वा नहीं ? इस तुमारे कहनेसें तो पूर्ण नास्तिक पणा तुमारे मतमें सिद्ध होता है, यथा जब सर्व कुछ जगत् स्वरूप परमात्मरूपही है, तब तो न कोइ पापी है, न कोइ धर्मी है, न कोइ ज्ञानी है, न कोइ अज्ञानी है, न तो नरक है, न तो स्वर्ग है, साधुनी नहीं, अरु चोर नी नहीं, सत्शास्त्र नी नहीं, अरु मिथ्या शास्त्रनी नही, तथा जैसा गोमांसजही, तैसाही अन्नजही है, जैसा स्वचार्यासें कामजो



ग सेवन कीया तैसा ही माता, घड़िन, वेटीसें कीया, जैसा चमाल, तैसा ब्राह्मण, जैसा ग-दा, तैसा संन्यासी, क्यु के जब सर्व वस्तुका कारण ईश्वर परमात्माही उहरा, तब तो सर्व जगत् एकरस एक स्वरूप है, दूसरा तो कोइ है नहीं

पूर्वपक्ष—हम एक ब्रह्म मानते है, थरु एक माया मानते है, सो तुम ने जो उपर बहुतसे आल जंजाल लिखे है, सो सर्व मायाजन्य है थरु ब्रह्म तो सच्चिदानन्द एकही शुद्ध स्वरूप है

उत्तरपक्ष—हे अद्वैतवादी! यह जो तुमने पक्ष माना है सो बहुत थ समीचीन है यथा माया जो है सो ब्रह्मसे जेद है, वा अजेद है? जेकर जेद है तो जड है, वा चेतन है? जे कर जड है, तो फेर नित्य है, वा अनित्य है? जे कर कहोगे नित्य है, तो अद्वैत मतके मूजहीकू दाह करती है, क्युकि जब ब्रह्मसे जेद रूप हुइ, थरु जड रूप नइ, थरु नित्य हुइ, फेर तो तुमने द्वैतपथ आपही आपणे कहनेसे सिद्ध कर लीया थरु अद्वैत पथ जड मूलसें कट गया, जेकर कहोगे कि अनित्य है, तो वै तता दूर कजो नहीं होगी, क्युकि जो नाश होने वाला है, सो कार्य रूप है, थरु जो कार्य है, सो कारण जन्य है, तो फेर उस मायाका उपादान कारण कौन है? सो कहनां चाहिये जे कर कहोगे अपर माया तब तो अनवस्था दूषण है, थरु अद्वैत तीनो कालोमें कदापि सिद्ध नहीं होगा, जे कर ब्रह्महीकू उपादान कारण मानोगे, तब तो ब्रह्मही आप सर्व कुठ बन गया, तब तो पूर्वोक्त दूषण आया जे कर मायाको चैतन्य मानोगे, तोजी यही पूर्वोक्त दूषण होगा, जेकर कहोगे माया ब्रह्मसें अजेद है तब तो ब्रह्मही कहनां चाहिये, माया नहीं कहनां चाहिये

पूर्वपक्ष—हम तो मायाकू अनिर्वचनीय मानते है

उत्तरपक्ष—इस अनिर्वचनीय पक्षकू उपर खमन कर आये हैं, तैसें खमन करणां, इहांजी कह देनां तथा अनिर्वचनीय जो शब्द है तिसमें निस् जो उपसर्ग है, तिसका अर्थ तो निषेध रूप कीया है कलापक व्याकरणमें शेष जो शब्द है, सो या तो जावका वाचक है या अजावका वाचक है? जब जावकू निषेध करोगे, तब तो अजाव आ जावेगा, थरु जे कर अजावकू निषेधोगे, तब तो जाव आ जावेगा ए जावाजाव दोनो वज

के तीसरा वस्तुका रूप कोई नहीं। इस वास्ते अनिर्वचनीय जो शब्द है, सो दन्ती पुरुषोंने बलरूप रचा प्रतीत होता है, इस कहनेसे तो धैत ही सिद्ध होता है, अर्धैत नहीं।

पूर्वपक्ष—यह जो अर्धैत मत है, इसके मुख्य आचार्य शंकरस्वामी है जिन्होंने सर्वमतोंको खमन करके अर्धैत मत सिद्ध किया है, तो फेर ऐसे शंकर स्वामी साक्षात् शिवका अवतार, सर्वज्ञ, ब्रह्मज्ञानी, शीजवान्, सर्वसामर्थ्ययुक्त, उन्हींके अर्धैत मतको खमने वाला कौन है ?

उत्तरपक्ष—हे वल्लभ मित्र ! तुमारी समझ भूजब तो जरूर जैसें तुम कहते हो, तैसेंही है, परंतु शंकरस्वामीके शिष्य आनंदगिरिने शंकरदिग्विजय के अष्टावनवे प्रकरणमें जो शंकरस्वामीका वृत्तांत लिखा है, उसके पढ़नेसे तो ऐसा प्रतीत होता है, जो शंकरस्वामी सर्वज्ञ नहीं, अरु कामी है, अरु अज्ञानी है, अरु असमर्थ है, तिस लिखनेसे ऐसा प्रतीत होता है कि वेदांतीयोंका अर्धैत ब्रह्मज्ञान जब तांइ यह स्थूल देह रहेगी, तब तांइ रहेगा, परंतु इस शरीरके बूटघा पीछे किसी वेदांतीयोंको ब्रह्म ज्ञान नहीं रहेगा।

पूर्वपक्ष—वो कौनसा शंकरस्वामीका वृत्तांत है जिसें तुमारी पूर्वोक्त बातें सिद्ध होती है ?

उत्तरपक्ष—जो तुमकूं वृत्तांत सुनना है, तो हमारे क्या डील है, हम इसी जगगे लिख देते हैं। जब शंकरस्वामीने ममनमिश्रकूं जीता, तब ममनमिश्रने यतिव्रत लीया, अरु ममनमिश्रकी नार्या जिसका नाम सरसबाणी था, सो सरसबाणी आपणे पतिकूं यतिव्रत लीया देख कर आप सरसबाणी ब्रह्मलोककूं चली, सरसबाणीकूं जातीकूं देख कर शंकरस्वामी जीवन दुर्गमित्र करके दिग्वधन करते दुये, तिसके पीछे हे सरसबाणी ! तूं ब्रह्म शक्ति है, ब्रह्मके अशून्य ममनमिश्रकी तू नार्या है, उपाधि करके सर्वकूं फलित है, तिस कारणसे मेरे साथ प्रसंग करके फेर तुमकूं जाणा योग्य है। ऐसे शंकरस्वामीने कहा पीछे सरसबाणी शंकरस्वामी प्रते कइती दुई कि—पतिके सन्यासते प्रथम ही वैधव्य दोषके जयसें मैनें पृथिवी त्यागी है, तिस कारणसे फेर मै पृथिवीका स्पर्श न करुंगी हे यति ! तू तो पृथिवीमें स्थित हैं कैसें तेरे प्रसंगके तांइ एक विषय स्थिति होवे, ऐसे शंकरस्वामीकूं कइती प्रते फेर शंकरस्वामी कहते नये कि—हे माता !

तोनी नूमिकाके उपरि ठ हाथ प्रमाण उची आकाशमें रहो मेरे साथ सर्व वचनका प्रपच सचार करके, पीठसे जाना ऐसे आदर पर होकर शकरस्वामीके साथ सर्वशास्त्रों विषे वेद, इतिहास, पुराणों विषे समय प्रसंग करके पीठें शकरकू तिरस्कारके तांड़ जिसमें इ ठें प्रवेश है, ऐसा जो कामशास्त्र, तिस विषे नायिका, थरु नायक, इनके नेद विस्तारसे सर सवाणी शकरको पूछे तब तो शकरस्वामी इस विषयकू जानते नहीं थे, तातें शंकरस्वामी उत्तर न दे सके, मौनी होते नये, तिस पीठें सर सवाणी शकरस्वामीकू सत्य करके कहती हुई कि - तुमारे जाननेमे यह शास्त्र नहीं आया, निश्चय करके तिस शास्त्रकू मैही जानती हूँ, कालका जानकार शकरस्वामी सरसवाणी प्रति कहते हुये कि - हे माता ! तुम इहांही ठ महीने रहो, पीठे में सर्व अर्थोंका निश्चय करके तेरे कहेंका उत्तर कहुंगा ऐसे कह कर शकरस्वामी आग्रह पूर्वक सरसवाणीकू तिहांही आकाश ममलमें स्थापन करके सर्व शिष्योंकू यथास्थान नेज करके चार शिष्यो सहित (१) हस्तामलक, (२) पद्मपाद, (३) विधिवत्, (४) आनदगिरि, ए चार नामक प्रधान शिष्यों करी सेव्यमान तिस नगरसे पश्चिमदिशा नाम गढमें गये, सरसवाणीके प्रश्नोके उत्तर जानने के तांड़ उस नगरका राजा मर गया था, उसका शरीर तिस अवसरमें चित्तामें जलानेके वास्ते रक्का था, उस शरीरकू देख कर शकरस्वामीने अपना शरीर उस नगरके प्रांत एक पर्वतकी गुफामें स्थापन करके, शिष्योकू कह बोया कि तुमने इस शरीरकी रक्षा करनी थरु आप शकरस्वामी परकाय प्रवेश विद्या करके, लिंगशरीर सयुक्त अजिमान सहित उस राजाके शरीर में ब्रह्मरंध्रमें प्रवेश कर गये, तब तो राजाजी ठग डीतोपचार करा, औ उत्सवसे नगरमें छे आये, राजा मरा नहीं था यह बात प्रसिद्ध कर दी नो, तब तो शकरस्वामीकू लोकोंने राजसिंहासन उपर विठलाया पश्चात् राजसिंहासनसे उठ कर स्वामीजी बड़ी राणीके घरमें गये तहां जाकर उस राणीसे काम क्रीडा करने लगे, तब तो शकरस्वामीकी कुशलतासे तिसके आलिंगन करनेसे उत्पन्न हुआ जो सुख सजोग ताकरिके शंकरस्वामीने उस राणीके मुखके साथ तो अपना मुख जोड़ा, औ अपनी बाती उस राणीके दोनो कुंचों (स्तनो) के उपर जाडो, तैसेही उस राणीकी

नानीसें अपनी नानी जोड़ो, औ आपणे पगों करके राणीके पग सकोचे. एतावता जघोमे जघा फसाइ अर्थात् एक शरीरवत् हो गये, दोनो जने व दूत गाढा आलिगन करनेमें तत्पर हुये, तब तो गकरस्वामी राणीके कक्षा स्थानो विपे हाथों करी स्पर्श करते हुये, बहुत सुखमें मग्न हुये, तब तो राणी उनकी आलाप, चतुराई देख कर चित्तमें विचार करने लगी कि देह मात्र करी तो मेरा नर्ता है, परंतु इसका जीव मेरा नर्ता नहीं, एतो कोइ सर्वज्ञ है ऐसा विचार करके राणीने आपणे नौकरोकूं चारों दिसामें जे जा, अरु कह दीया कि जो पर्वतोमें, वा गुफाउमें बारह योजनोके बिचमें जितने शरीर जीव रहित होवे सो सर्व शरीर चित्तामें रख कर जजा दिउ. शकरस्वामी तो विषयमें मूर्छित हो गये, तब तो राणीके नौकरोनें चार शिष्योंकूं रक्षक देख कर शकरस्वामीके शरीरकू चित्तामें रख कर उनके शरीरकू अग्नि करके दाह करने लगे, तब तो शकरस्वामीके चारों शिष्य, उस नगरमें गये, जिहां शकरस्वामी थे, उहां शकरस्वामिकू काम लोलुपी अति विषयमें बद्धबुद्धि देख कर शंकर राजाके आगें नाटक करने लगे, शकरस्वामीकू परोक्ति करके प्रतिबोध करने लगे सो यह है, जो लिखते हैं -

( १ ) “यत्सत्यमुख्यशब्दार्थानुकूल, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( २ ) नह्येतत्त्व विदितं नृषु जाव, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( ३ ) विश्वोत्पत्त्यादिविधिहेतुतत्त्व, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( ४ ) सर्वचिदात्मक सर्वमदैतं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( ५ ) परतार्किकैरीश्वरसर्वहेतु, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( ६ ) यदेदांतादिनिर्ब्रह्मसर्वस्थ, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( ७ ) यद्वैमिनिनोक्तमखिलकर्म, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( ८ ) यत्पाणिनि प्राह शब्दस्वरूपं तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( ९ ) यत्सांख्यानमतहेतुचूतं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( १० ) अष्टागयोगेन धनतरूप, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( ११ ) सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( १२ ) नह्येतददृश्यप्रपंच, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( १३ ) यद्ब्रह्मणोब्रह्मविपावीश्वराह्यजवन, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् ! ( १४ ) त्वद्रूपमेवमस्मानिर्विदितं राजन् ! तव पूर्वयत्प्राश्रमस्थम् ” ॥ इन परोक्तियों करके राजा प्रतिबोध हुआ, सर्वके सन्मुख तिस राजाकी देहसे निकल कर जघ गये तब तो उस पर्वतकी कदरामें

अपणे शरीरकू न प्राप्ति हुवे तव तो अपणे शरीरकू चितामें देया. देख कर कपालमध्यमें हो कर प्रवेश करा, तब शरीरके चारो ओर अग्नि प्रज्वलित हो रही थी, तब तो निकलना शुरू हो गया, फेर शकरस्वामीने लक्ष्मी नृसिंहकी स्तुति करी तब लक्ष्मीनृसिंहने शकरस्वामीकू जीता, अग्नि मेंसे बाहिर निकाला ॥ इति कथा समाप्ता ॥ अथ हे जगत् । तू प्रचार कर देख जो मैं पूर्वे तुजकू वार्ता कही थी सो सर्व सत्य है या नहीं ? क्युंकि ( १ ) जब सरसबाणीके कहनेके प्रश्नका उत्तर नहीं आया, तब तो शकरस्वामीकू सर्वज्ञ कौन बुद्धिमान् निष्पक्षी मान सका है ? कोइनी नहीं मानेगा, ( २ ) अरु जब राजाकी राणीमें विषय सेवन करा, तब तो कामो होएमें कोइ गकाजी रहती है ? ( ३ ) अरु जब शिष्योंने आकर प्रतिबोध करा, तब तो अज्ञानी अवश्य हो चूके, ( ४ ) जब चितामेंसे न निकल सके, तब लक्ष्मीनृसिंहकी स्तुति करी तब नृसिंहने आय करके ज्वलती अग्निमेंसे निकाले, तब शकरस्वामी असमर्थ सिद्ध हो गये, जब शकरस्वामीने फेर आ कर सरसबाणीके प्रश्नका उत्तर दीया, तब तो सरसबाणीने कहा, हे स्वामी ! तू सर्वज्ञ है क्या मृतकके शरीरमें प्रवेश करके उसकी राणीके साथ विषय सेवन करके राणी पासों कबुक कामशास्त्रकी बातों शीखके सर्वज्ञ हो सका है ? सर्वज्ञ तो नहीं हो सका, परंतु गंदे खुरकणी तो हो गई सरसबाणीकू उसने सर्वज्ञ कह दीया, अरु शकरकू सरसबाणीने सर्वज्ञ कह दीया वाह क्याही सर्वज्ञोंकी जोड़ी मिली है ? सरसबाणी तो ब्रह्मकी शक्ति हो कर फेर खी बन कर मदनमिश्रसे विषय सेवन करती रही, अरु सर्वज्ञनी बन बैठी, अरु शकरस्वामी परस्त्रीसे विषयसेवन करके अरु कबुक काम शास्त्र शीख कर सर्वज्ञ बन बैठे, क्या यह गंदे खुरकणी न होइ तो और क्या हुआ ? जब शकरस्वामी, अपणां स्थूल शरीर छोड़ कर राजाके शरीरमें गये, अरु ब्रह्मविद्या सर्व जूल गये, जे कर न जूले होते तो उनके शिष्य काहेकू तत्त्वमसिका उपदेश करते ? जब शकरस्वामी स्थूल शरीरके बदल जाने परब्रह्म विद्या जूल गये, तब तो ब्रह्मविद्या का सबध, न तो लिंग शरीरके साथ रहा, न आत्माके साथ सबध रहा किंतु स्थूल शरीरहीके साथ रहा, उस्सें यह सिद्ध हुआ कि -जब वेदांती मर जाते हैं, तब उनके ज्ञानजी नष्ट हो जाता है, अरु स्थूल शरीरहीके

साथ ज्ञानका सवध रहा परंतु आत्माके साथ नहीं अरु जो तुमने कहा था कि—शंकरस्वामीके प्रगट कथन कीये अद्वैत मतकू कौन खमन कर सकता है ? सो हे नव्य ! जब शंकरस्वामीका चरित्रही असमंजस है, तो फेर उनके कहे दूये मतकू कौन सयौक्तिक समज सकता है ?

पूर्वपक्ष—“ पुरुषएवेदं ” इत्यादि श्रुतियोंसे अद्वैतही सिद्ध होता है

उत्तरपक्ष—यहजी तुमारा कहना असत् है, क्युंकि जो पुरुष मात्र रूप अद्वैततत्त्व होवे तब तो यह जो दिखलाइ देता है कोइ सुखी, कोइ दुखी, ए सर्व परमार्थसे असत् हो जावेंगे जब ऐसे होगा तब तो यह जो कहना है, “ प्रमाणतोअधिगम्य ससारनैर्गुणं तद्विमुखया प्रज्ञया तदुच्छेदाय प्रवृत्तिरित्यादि ” अस्यार्थ—ससारका निर्गुणपणा प्रमाणसे जान कर, तिस ससारसे विमुख बुद्धि हो करके तिस ससारके उच्छेदके तांइ प्रवृत्ति करे, यह जो कहना है, सो आकाशके फूलकी सुगंधिका वर्णन करने स रिखा है, क्यु कि जब अद्वैत रूपही तत्त्व है, तब तो नरकादि नवत्रमण रूप ससार कहाँ रहा ? जिस ससारकू निर्गुण जान कर तिसके उच्छेद करणेकी प्रवृत्ति होवे

पूर्वपक्ष—तत्त्वतः पुरुष अद्वैत मात्रही है, अरु यह जो ससार निर्गुण वर्णन करा है, सो सदा सर्व जीवोंकू जो प्रतिभासन हो रहा है, सो सर्व चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग उचे नीचे जैसे प्रतीत होते हैं, तैसे सर्व ससार प्रतीत होता है परंतु सर्व चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग उच्च नीचकी तरे प्रातिरूप है वा प्रातिजन्य है

उत्तरपक्ष—यह जो तुमारा कहना है सो असत् है, इस बातमें कोइ वास्तव्य प्रमाण है नहीं तत् यथा जे कर अद्वैत सिद्ध करणे वास्ते कोइ पृथग्नूत प्रमाण मानोगे, तब तो दैतापत्ति होगी, क्युकि प्रमाणके बिना किसीकाजी मत नहीं सिद्ध होता, जे कर प्रमाणके बिनाही सिद्ध मानोगे तब तो सर्ववादी अपणे अपने अनिमितकू सिद्ध कर लेवेंगे, तथा प्रातिजी प्रमाणनूत अद्वैतसे निन्नही माननी चाहिये अन्यथा प्रमाणनूत अद्वैत अप्रमाणही हो जावेगा, प्राति जब अद्वैतकाही रूप दुइ तब तो पुरुषका रूप दुइ, ताते प्रातिस्वरूपवाला पुरुषही है नहीं, तब तो तत्त्वव्यवस्था कुंठनी सिद्ध न होइ जे कर प्राति निन्न मानोगे, तब

तो देतापत्ति होवेगी, अर्धैत मतकी झानि हो जायेगी, जेकर स्थान कृष्ण विकोंसें जेद माननां इसीकृ त्राति रहोगे, तब तो निश्चय करके सत्त्वक प कुनादिक किसी जगें तो जरूर होंगे. अर्चातिके भेग्ये बिना कदापि त्राति देखनेमें नहीं आयेगी, पूर्वं जिसने सत्ता सत्पं नहीं देया, तिनहू गुरुम सत्पंकी त्राति कदापि न होवेगी ॥ तदुक्त ॥ श्लोक ॥ नादृष्टपूर्वे सत्पंस्य, रज्ज्वासत्पंमति क्वचित् ॥ तत पूर्वानुसारित्वाद् त्रातिरर्चातिपर्विका ॥ १ ॥ इस कहनेसेनी अर्धैत तत्त्व खमन हो गया तथा पुरुष अर्धैतरूप तत्त्व अवश्य करके दूसरेकू निवेदन करनां, अपणे आपकू नहीं आपणेमें तो व्यामोह है नहीं जे कर कहने वालेम व्यामोह होवे तब तो अर्धैतकी प्र तिपत्ति कबीनी नहीं होवेगी.

पूर्वपक्ष - जब आत्माकू व्यामोह है तब ही तो अर्धैत तत्त्वका उपदे श कीया जाता ?

उत्तरपक्ष - जब आत्माका व्यामोह दूर होगा तब तो आत्मा अवश्य अवस्थातरकू प्राप्ति होगी, जब अवस्था बदलेगी, तब तो अवश्य देताप त्ति हो जावेगी, तथा जब अर्धैत तत्त्वका उपदेशक पुरुष परकू उपदेश करेगा, तब तो परकू अवश्य मानेगा, फेर अर्धैत तत्त्व परकू निवेदन क रनां अरु अर्धैत तत्त्व माननां, यह तो ऐसे दुष्टा के, जैसे मेरा पिता कु मार ब्रह्मचारी है, इस बचनके कहनेसें जरूर वो पुरुष उन्मत्त है, जेकर अपणेकू अरु परकू इन दोनोंकू जब मानेगा, तब तो देतापत्ति अवश्य हांगी, इस कारणसें जो अर्धैत माननां है, सो युक्ति विकल है

पूर्वपक्ष - परमब्रह्मरूप सिद्धि सकल जेद ज्ञान प्रत्ययोंके निरालवन पणेकी सिद्धि है

उत्तरपक्ष - ए कथन नी तुमारा ठीक नहीं है, क्युकि परम ब्रह्महीकी सिद्धि नहीं है जे कर है तो स्वत सिद्धि है, वा परत सिद्धि है ? तहां स्वत सिद्धि तो है नहीं, जे कर होवे तब तो किसीकांनी विवाद न रहे, जे कर कहोगे परत सिद्धि है, तो क्या अनुमानसें है, वा आगमसें है ? जे कर कहोगे अनुमानसें है तो वो अनुमान कौनसा है ? कहो

पूर्वपक्ष - सो अनुमान यह है कि विवादरूप जो अर्थ है सो प्रतिजा सांत प्रविष्ट ब्रह्मनासके अंतर है, प्रतिजासमान होणेसें जो जो प्रतिजा

समान है सो सो प्रतिज्ञासात प्रविष्टही देखा है, जैसे प्रतिज्ञास आत्मा प्रतिज्ञासमान है सकल अर्थ सचेतन अचेतन विवादरूप है तिस कारणसे प्रतिज्ञासात प्रविष्ट है, घटपटादि यह अनुमान है

उत्तरपक्ष - यह अनुमान तुमारा सम्यक् नहीं है, (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, इन तीनोंके प्रतिज्ञासात प्रविष्ट होणसे साध्यरूपही दुये

पूर्वपक्ष - तब तो (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत इन तीनोंके न हो नेसे अनुमानही नहीं बन सका जे कर कहोगे कि, (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, ए तीनों प्रतिज्ञासात प्रविष्ट नहीं है, तो इतोंहीके साथ हेतु, व्यञ्जिचारी होगा जे कर कहोगे अनादि अविद्या वासनाके बलसे हेतु दृष्टांत जो है, सो प्रतिज्ञासके बाहिरकी तरें निश्चय करते हैं, जैसे प्रतिपाद्य, प्रतिपादक, सना, सनापति जनकी तरें तिस कारणसे अनुमानजी हो सका है, अरु जब सकल अनादि अविद्याका विलास दूर हो जावेगा, तब तो प्रतिज्ञासात प्रविष्टही प्रतिज्ञास होगा विवादजी न रहेगा, प्रतिपाद्य प्रतिपादक, साध्य, साधन जावनी नहीं रहेगा, तब तो अनुमान करनेकानी कुछ फल नहीं, आपही अनुभवमान परम ब्रह्मके होते दुये देश काल अव्यवहिन स्वरूपके होयां निर्व्यञ्जिचार, सकल अवस्था व्यापकपणे वालेमें अनुमानका कुछ प्रयोगजी नहीं चाहिये है

उत्तरपक्ष - जो अनादि अविद्या प्रतिज्ञासात प्रविष्ट है, तब तो विद्या ही हो गई तब तो असत् रूप (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत आदिक जेद कैसें दिखा सके ? जे कर कहोगे प्रतिज्ञासके बाहिरनूत है, तब तो (१) अविद्या प्रतिज्ञासमान है ? वा (२) अप्रतिज्ञासमान है ? तिस अविद्याकू प्रतिज्ञासमान रूप होणसे अप्रतिज्ञासमान तो नहीं जे कर कहोगे प्रतिज्ञासमान है, तो तिसहीके साथ हेतु व्यञ्जिचारी है तथा प्रतिज्ञासके बाहिरनूत होणसे तिसके प्रतिज्ञासमान होणसे जेकर तुमारे मनमें ऐसा होवेकी अविद्या जो है, सो नतो प्रतिज्ञासमान है, न अप्रतिज्ञासमान, न प्रतिज्ञासके बाहिर, न प्रतिज्ञासके अवर प्रविष्ट है न एक है, न अनेक है, न नित्य है, न अनित्य है, न व्यञ्जिचारिणी है, न अव्यञ्जिचारिणी है, सर्वथा विचारके योग नहीं सकल विचा



तो देतापत्ति होवेगी, अर्थात् मतकी दानि दो जावेगी, जेकर स्थान कृकुंन विकोंसे जेद माननां इसीकू प्राप्ति कहोगे, तब तो निश्चय करके मतमरूप कृकुंनदिक किसी जगे तो जरूर होगे. अत्रातिके वेग्ये बिना कदापि प्राप्ति देखनेमें नहीं आवेगी, पूर्वे जिसने सच्चा सत्य नहीं देखा, तिनकू रज्जुमें सर्पकी प्राप्ति कदापि न होगी ॥ तदुक्त ॥ श्लोक ॥ नादृष्टपूर्वसर्पस्य, रज्ज्वां सर्पमिति क्वचित् ॥ तत पूर्वानुसारित्वाद्वातिरत्रातिपूर्विका ॥ १ ॥ इस कहनेसेनी अर्थात् तत्त्व खमन हो गया तथा पुरुष अर्थात् तत्त्व अवश्य करके दूसरेकू निवेदन करना, अपणें आपकू नहीं आपणेंमे तो व्यामोह है नहीं जे कर कहने वालेमें व्यामोह होये तब तो अर्थात् तत्त्वकी प्राप्ति कबीनी नहीं होवेगी

पूर्वपक्ष - जब आत्माकू व्यामोह है तब ही तो अर्थात् तत्त्वका उपदेश किया जाता ?

उत्तरपक्ष - जब आत्माका व्यामोह दूर होगा तब तो आत्मा अवश्य अवस्थांतरकू प्राप्ति होगी, जब अवस्था बदलेगी, तब तो अवश्य देतापत्ति हो जावेगी, तथा जब अर्थात् तत्त्वका उपदेशक पुरुष परकू उपदेश करेगा, तब तो परकू अवश्य मानेगा, फेर अर्थात् तत्त्व परकू निवेदन करना अरु अर्थात् तत्त्व माननां, यह तो ऐसे दुष्टा के, जैसे मेरा पिता कुमार ब्रह्मचारी है, इस बचनके कहनेसें जरूर वो पुरुष उन्मत्त है, जेकर अपणेंकू अरु परकू इन दोनोंकू जब मानेगा, तब तो देतापत्ति अवश्य होगी, इस कारणसें जो अर्थात् माननां है, सो युक्ति विकल है

पूर्वपक्ष - परमब्रह्मरूप सिद्धि सकल जेद ज्ञान प्रत्ययोंके निरालंबन पणेंकी सिद्धि है

उत्तरपक्ष - ए कथन नी तुमारा ठीक नहीं है, क्युकि परम ब्रह्महीकी सिद्धि नहीं है जे कर है तो स्वत सिद्धि है, वा परत सिद्धि है ? तहां स्वत सिद्धि तो है नहीं, जे कर होवे तब तो किसीकाजी विवाद न रहे, जे कर कहोगे परत सिद्धि है, तो क्या अनुमानसें है, वा आगमसें है ? जे कर कहोगे अनुमानसें है तो वो अनुमान कौनसा है ? कहा

पूर्वपक्ष - सो अनुमान यह है कि विवादरूप जो अर्थ है सो प्रतिज्ञा सांत प्रविष्ट ब्रह्मज्ञासके अंतर है, प्रतिज्ञासमान होणेसें जो जो प्रतिज्ञा

वादी जैसे अनुमान करते हैं कि - पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक सर्व, बुद्धिवा  
ले कर्ताके करे हुये है, कार्य होऐसें जो जो कार्य है, सो सो सर्व बु  
द्धिवालेके करे हुये है, जैसें घट तैसेही यह जगत् है, तिस कारणसे जग  
त् बुद्धि वालेका रचा हुआ है, जो बुद्धिवाला है, सोही जगवान् ईश्वर है,  
ऐसाजी मत कहना, जो यह तुमारा हेतु असि-६ है, किस कारणसे अ  
सि-६ है ? सो कहते है कि - पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक अपणे अपणे कार  
रणके समूह करके उत्पन्न होये है, इस वास्ते कार्य रूप है तथा अवय  
वी है, इस करके कार्यरूप है, सर्व वादीयोक् निश्चित है तथा जैसेंजी न  
कहना जो यह तुमारा हेतु अनेकातिक है तथा विरु-६ है क्युकि हम  
रा हेतु विपक्षसें अत्यंत हटा हुआ है, तथा जैसेंजी मत कहना जो यह  
तुमारा हेतु कालात्ययापदिष्ट है, क्युकि प्रत्यक्ष अनुमान आगम करके  
बाध्या नहीं है, धर्म धर्मा अनतर कहनेसें तथा यहजी मत कहना जो  
तुमारा हेतु प्रकरण सम है, क्यु कि अनुमानसें जो साध्य है, तिसका शत्रु  
नूत दूसरे साध्यके साधने वाले अनुमानके अज्ञावसें तथा जैसेंजी मत  
कहना जो ईश्वर, पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिकोंका कर्ता नहीं है, बिना शरीरके  
होऐसें मुक्त आत्माकी तरें यह पीढले तुमारे अनुमानका वैरी अनुमान  
है, सो ईश्वरकू जगत्का कर्तासि-६ नहीं होऐ वेता, क्यु कि तुमने तो ईश्वरकू  
शरीर रक्षित सि-६ करके जगत्का अकर्ता सि-६ कीया, परंतु हमने तो ईश्वर  
शरीरवाला माना है इस कारणे तुमारा अनुमान असत्य है, अरु हमारा  
जो हेतु है, सो निरवय है तथा ईश्वर जो है सो एक है, क्यु कि जो बहुत  
ईश्वर मानीये, तब तो एक कार्य करनेमें ईश्वरोंकी न्यारी न्यारी बुद्धि हो जावे,  
तब तो इनके मने करने वाला तो और कोइ है नहीं, फेर कार्य कैसें  
उत्पन्न होवे ? कोइ ईश्वर तो अपनी इच्छासें चार पगवाला मनुष्य रच  
देवे, अरु दूसरा ईश्वर ठ पग वाला रच देवे, तथा तीसरा दो पग वाला  
रच देवे, अरु चौथा आठ पग वाला रच देवे, इसी तरें सर्व वस्तुकू विल  
क्षण विलक्षण रच देवे, तब तो सर्व जगत् असमजस रूप हो जावे  
परंतु सो है नहीं इस हेतुसें ईश्वर एकही होना चाहिये, तथा ईश्वर सर्व  
गत् सर्वव्यापी है, जे कर ईश्वर सर्व व्यापक न होवे, तब तो तीन खवन  
में एक साथ जो उत्पन्न होऐे वाले कार्य है, सो सर्व एक कालमें कज।

रांतर अतिक्रान्त स्वरूप है, रूपांतरके अनागमे अग्न्या जो है, तो निरूपता लक्षण है, यद्वन्तो तुमारी बड़ी अज्ञानताका रिक्तार है, तैसी निरूपता स्वभावकू यह अग्न्या है, यह अप्रतिनासमान है, अग्निमें कौन कथन करनेकू समर्थ है ? जे कर कहोगे यह अग्न्या प्रतिनासमान है, तो फेर क्युकर अग्न्या नीरूपसिद्ध होगी, जो वस्तु, जिस स्वरूप क रकें प्रतिनासमान है, सो तिसही वस्तुका रूप है, तथा अग्न्या जो है सो विचार गोचर है, वा विचार गोचर रहित है ? जे कर कहोगे विचार गोचर है तब तो नीरूप नहीं, जे कर विचार गोचर नहीं, तब तो तिसके मानने वाला महा भूल्य है, जब ग्न्या अग्न्या दोनोंही सिद्ध है, तब तो एक परमब्रह्म अनुमानसे कैसे सिद्ध हुआ ? इस कहने करक जो उप निपदमें ऐक ब्रह्मके कहनेवाली श्रुति है सोनी खमन हो गइ, तथा "स वैखल्विदब्रह्मेत्यादि" वचनकू परमात्माके अर्थांतर होऐसे देतापति हो जावेगी, जे कर कहोगे अनादि अग्न्यासे ऐसा प्रतीत होता है तब तो पूर्वोक्त दूषणोंका प्रसंग होगा, तिस वास्ते अद्वैतकी सिद्धि बध्याके पुत्रकी शोभावत् है इस कारणसे अद्वैतमत शुक्तिरिक्ल है इस हेतुसे एकही ईश्वर जगत्से प्रथम था, यह कहना मिथ्या है यह प्रथम ईश्वर के माननेवालोंके मतका खमन हुआ

अथ दूसरा ईश्वर जगत्के उपादान कारणवाला एक ईश्वर अरु दूसरी सामग्री, ए दो पदार्थ अनादि है, तिन दोनोंमेंसे सामग्री जो है, सो ऐसे है, ( १ ) पृथिवी, ( २ ) जल, ( ३ ) अग्नि, ( ४ ) वायु इन चारों के परमाणु, ( ५ ) आकाश, ( ६ ) दिशा, ( ७ ) आत्मा, ( ८ ) मन, ( ९ ) काल, ए नव वस्तु नित्य हैं, अनादि है, किसीके बनाइ होइ नहीं सो ईश्वर इस पूर्वोक्त कारणोंसे इस सृष्टिकों रचता है अथ मत्तावलबीयोंने जिस रीतिसे ईश्वरकों जगत्का कर्ता माना है, सो रीती इहां लिखते है

उपजातिवद ॥ कर्तास्ति कश्चिद्भूत सचैक, ससर्वग सस्ववश सनि  
त्य ॥ इमा कृदेवाकविडबनास्पु, स्तेषां न येषामनुशासकस्त्वम् ॥ १ ॥

अस्यार्थ—जगत् जो है, सो प्रत्यक्षादि प्रमाणों करके लक्ष्यमाण (दीसता) है, चराचर रूप तीनों जगत्का कोइक जिसका स्वरूप कह नहीं सके ऐसा पुरुष विशेष रचनेवाला है, ईश्वरकू जगत्का कर्ता मानने वाले

योगोंके देखनेसे, जैसे “अनित्यशब्दप्रमेयत्वात्” जैसे यह प्रमेयत्व हेतु साधारण अनेकांतिक है, तैसे ही यह कार्यत्व हेतुसाधारण अनेकांतिक है

१ जेकर दूसरा पक्ष मानोगे, तब जो ईश्वरका शरीर नहीं दिखलाइ दें ता (१) सो ईश्वरके माहात्म्य करके नहीं दिखलाइ देता ? (१) वा हमारी बुरी अदृष्टका प्रभाव है ? एतावता हमारे खोटे कर्मके प्रभावसे नहीं दिखलाइ देता है ? जे कर प्रथम पक्ष ग्रहण करोगे जो ईश्वरके माहात्म्यसे ईश्वरका शरीर नहीं दीखता, इस पक्षमें कोई नी प्रमाण नहीं है, जिससे ईश्वरका माहात्म्य सिद्ध होवे परंतु हे वादी ! जे कर त्रपु ( जिस्त ) तपा कर पीवें ऐसी सच्ची धीज करे तो कदाचित् मान नी लेवे, अन्यथा नहीं अरु इस तुमारे कहनेमें इतरेतर आश्रय दूषण नी है जब माहात्म्य विशेष सिद्ध हो जावे तब अदृश्यशरीर वाला सिद्ध होवे, जब अदृश्य शरीर वाला सिद्ध होवे, तब माहात्म्य विशेष सिद्ध होवे, इतीतरेतराश्रय दूषण जे कर दूसरा पक्ष पिशाचादिकोंकी तरे अदृश्य शरीर ईश्वरका है ऐसे मानोगे, तब तो सशय की निवृत्ति न होवेगी सो कैसे कि -क्या ईश्वर है नहीं जिसकरके उसका शरीर नहीं दीख पडता ? तब तो बाऊके पुत्रके शरीरकी तरें, किंवा हमारे पूर्व पापोंके प्रभावसे ईश्वरका शरीर नहीं दीखता, यह सशय कभी दूर न होवेगा जे कर कहोगे हमारा ईश्वर शरीर रहित है, तब तो दृष्टांत अरु दार्ष्टान्तिक यह दोनो विषम हो जावेंगे और हेतु विरुद्ध हो जावेगा, क्युकि घटादिक कार्योंका कर्त्ता शरीरवालाही कुनारादिक दीख पडता है, अरु ईश्वरकू जब शरीर रहित मानोगे तब तो ईश्वर कुठनी कार्य करणैकू समर्थ न होवेगा, आकाशकी तरें नित्यव्यापक अक्रिय जो है, सो अकर्त्ता है, इस हेतुसे शरीर सहित तथा शरीर रहित ईश्वरके साथ कार्यत्व हेतुकी व्याप्ति सिद्ध नहीं होती है, तथा तेरा हेतु कालात्ययापदिष्टनी है, तेरे साथ्यके धर्माका एक देश, वृक्ष, बीजली, वादल, इधनुपादिकोंका अवनी कोई बुद्धिमान् कर्त्ता नहीं दीख पडता है, इस वास्ते प्रत्यक्ष करके वाधित होया पीछे तुमने अथवा हेतु कहा, इस वास्ते तुमारा हेतु कालात्ययापदिष्ट है, इस तुमारे कार्यत्वहेतुसे बुद्धिमान् ( बुद्धिवाला ) ईश्वर जगत्का कर्त्ता कभी सिद्ध नहीं होता है

तथा दूसरी तरें जगत् कर्त्ताके खमन करनेका स्वरूप लिखते हैं, जो

उत्पन्न न होंगे, जैसे कुनारादिक जहाँ होंगे, तहाँगी कुंजादिक कर सकेंगे, परंतु वेशांतरमें कनी कार्य न कर सकेंगे. तथा ईश्वर जो है, सो सर्वज्ञ है, जे कर सर्वज्ञ न होवेगा तब तो सर्व कार्योंका उपादान कारण कैसे जानेगा ? जब कार्योंके उपादान कारणकू न जानेगा, तब तो जगत् विचित्र कैसे रच सकेगा ? तथा स्वयं ईश्वर जो है, सो स्वतंत्र है किंति दूसरेके अधीन नहीं ईश्वर अपनी इच्छासे सर्व जीवोंकू सुख दुःख का फल देता है ॥ उक्त च ॥ ईश्वरप्रेरितोग्रहेत्, सर्गं वा स्वत्रमेव वा ॥ अन्यो जतुरनीशोय, मात्मन सुखदुःखयोरिति ॥ १ ॥ अस्यार्थ - ईश्वरहीकी प्रेरणाहीसे जगत्वासी जीव, स्वर्ग तथा नरकमें जाता है, क्युंकि ईश्वरके धिना और सर्व जीव आपणे आपकू सुख दुःखका फल देनेकू समर्थ नहीं है, जेकर ईश्वरकू नी परतंत्र ( पराधीन ) मानियें, तब तो मुख्य कर्ता ईश्वर न रहेगा, अपर अपरके अधीन माननेसे अनवस्था द्रूपणजी लग जावेगा, इस हेतुसे ईश्वर आपणेही वश है, परंतु पराधीन नहीं तथा “ सन्तित्य ” ( सो ईश्वर ) नित्य है जेकर ईश्वर अनित्य होवे तब तो तिसके उत्पन्न करने वाला कोइ और चाहियें, सोतो है नहीं, इस हेतुसे ईश्वर नित्यही है, ऐसे पूर्वोक्त विशेषणों करी सयुक्त ईश्वर ( जगवान् ) जगत्का कर्ता है, इति पूर्वपक्ष

उत्तरपक्ष - हे वादी ! जो तुमारा यह कहना है पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक बुद्धिवाले कर्ताके रचे द्रुये हैं, सो अयुक्त है, क्युंके इस तुमारे अनुमानमें व्याप्तिका ग्रहण नहीं हो सकता है, अरु हेतु जो होता है, सो सर्वत्र व्याप्तिमें प्रमाण करके सिद्ध द्रुया दोषादी अपणे साध्यका गमक होता है, इस कहनेमें सर्व वाकियोंकी सम्मति है

अथ प्रथम तुम यह कहो जब ईश्वर जगत्कू रचता है, तो ईश्वर शरीर वाला है ? वा शरीर रहित है ? जेकर कहोगे, ईश्वर शरीर वाला है, तो हमारा सरीखा दृश्य शरीर अर्थात् दिखलाइ देने वाला शरीर है अथवा, पिशाच आदिकोंकी तरे अदृश्य ( न दिखलाइ देने वाले ) शरीर करी सयुक्त है ? जेकर प्रथम पक्ष मानोगे तब तो प्रत्यक्ष बाधा है तिस ईश्वरके बिनाही अब नी उत्पन्न होते द्रुये तृण, वृक्ष, इधुधुष, बावल प्रमुख का

क्योंकि जब कोऽ पुण्यवान् राजा राज करता है, तब उसके राजमें सुका ल, निरुपध्व वेशोमें होता है, तो वो उस राजाके शुन कर्मका प्रभाव है, इस कारणसे जो व्हर व्हर जीवोंकू फल देते हैं सो कर्म हैं कर्म जो हैं सो जीवोंके आश्रय है, अरु जीव जो हैं सो चेतन होणेसे बुद्धि वाले हैं तब तो बुद्धिवालेके अधीन हो कर कर्म व्हर व्हर कर फल देते हैं इस कारणसे सिद्ध साधन दूषण है जे कर कहोगे हम तो विशिष्ट बुद्धिवाला ईश्वरही सिद्ध करते है, परंतु सामान्य बुद्धिवाले जीव नहि सिद्ध करते? तब तो तुमारा दृष्टांत साध्यविकल है, बसोला आरि प्रमुख विषे ईश्वर अधिष्ठितका व्यापार, नहीं उपलब्ध होता है, किंतु कुनकारादिकोंका व्या पार तहां तहां अन्वयव्यतिरेक करके उपलब्ध होता है

पूर्वपक्ष - बड़क्यादिकजी ईश्वरकी प्रेरणाहीसे तिस तिस काममें प्रवृत्त होते है, इस वास्ते हमारा दृष्टांत साध्य विकल नहीं है

उत्तरपक्ष - तब तो ईश्वरजी और ईश्वरकी प्रेरणाहीसे प्रवृत्त होवेगा प रंतु आप नहीं प्रवृत्त होता, सोनी ईश्वर दूसरे ईश्वरकी प्रेरणासे प्रवृत्त हांगा, तब तो अनवस्था दूषण होगा

पूर्वपक्ष - बड़ प्रमुख जीव तो सर्व अज्ञानी हैं, इस वास्ते ईश्वरकी प्रेरणाहीसे अपने अपने काममें प्रवृत्त होते हैं, अरु ईश्वर (जगवान्) तो सर्व पदार्थोंका ज्ञाता है, इस वास्ते अनवस्था दूषण नहीं है

उत्तरपक्ष - यहनी तुमारा कहना असत् है, क्योंकि इस तुमारे कहनेमें इतरेतर दूषण होता है, प्रथम ईश्वर सर्व पदार्थका यथावस्थित स्वरूप ज्ञाता सिद्ध हो जावे, तब अन्यकी प्रेरणा बिना ईश्वर आपही प्रवृत्त होता है ऐसा सिद्ध होवे, जब अन्यकी प्रेरणा बिना ईश्वर आपही प्रवृत्त होता है ऐसे सिद्ध हो जावे तब तो ईश्वर सर्व पदार्थका यथावस्थित स्वरूप जान नेवाला सर्वज्ञ सिद्ध होवे, जब तांइ दोनोमेंसे एक सिद्ध न होवे, तब तांइ दूसरेकी सिद्धि कजी न होगी, तथा हे ईश्वरवादी! हम तुमकू पूछ ते हैं जे कर ईश्वर सर्वज्ञ अरु वीतराग है तो काहेकू और जीवोंकू अ सत् व्यवहारमें प्रवृत्तिवे है? क्योंकि जो विवेकी होते है वे मध्यस्थही होते हैं, फेर तो जीवोंकू सत् व्यवहारहीमें प्रवृत्त करना चाहिये परंतु असत् व्यवहारमें नहीं प्रवृत्त करना चाहिये अरु ईश्वर तो असत् व्यवहा

कोई ईश्वरवादी यह कहते हैं जगत सर्व ईश्वरका रचा हुआ है, यह उनका कहना समीचीन नहीं है काहेतें कि जगत्का कर्त्ता ईश्वर किस प्रमाणसे सिद्ध नहीं होता है

**पूर्वपक्ष**—ईश्वरकू जगत्का कर्त्ता सिद्ध करनेवाला अनुमान प्रमाण है तथाहि जो उद्गर उद्गर करके अजिमत फलके संपादन करनेके तांड प्रवृत्त होवे, तिसका अधिष्ठाता कोई बुद्धिमान् जरूर दोनों चाहिये जैसे बसोला थारी प्रमुख शस्त्र, काष्ठके दो टुकड़े करणमें प्रवर्तते हैं, तैसेही उद्गर उद्गर कर सर्व जगत्कू सुख दुःखादिक जे फल देते हैं तिनका अधिष्ठाता कोई बुद्धिमान् जरूर चाहिये है, तुमने ऐसे न कहना जो बसोला थारी प्रमुख आपही काष्ठके दो टुकड़े करणमें प्रवृत्त होतें हैं, क्यु कि वो तो अचेतन हैं आपही कैसे प्रवृत्त हो सकें? जे कर कहागे बसोला थारि प्रमुख स्वभावसे प्रवृत्त होते हैं तत्र तो तिनकू सदाही प्रवृत्त होना चाहिये, बीचमें कनी उद्गरना न चाहिये, परंतु ऐसे दे नहीं, इस पूर्वोक्त हेतुसे जो उद्गर उद्गर कर अपने अपने फलके साधनेवाले जीव हैं, तिनका अधिष्ठाता ईश्वर (जगवान्) ही सिद्ध हो सक्ता है, तथा दूसरा अनुमान जो परिमल्लादिक वृत्त, स्पश, चतुरश, सस्थान वाले गाम, नगरादिक हैं, वे सर्व ज्ञानवान्के करे द्रुये हैं, जैसे घटादिक पदार्थ, तैसेही पूर्वोक्त सस्थान सयुक्त पृथिवी, पर्वत प्रमुख हैं इस अनुमानसेही जगत्का कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होता है, इति पूर्वपक्ष ॥

**उत्तरपक्ष**—जिस अनुमानसे तुमने जगत्का कर्त्ता ईश्वर सिद्ध करा है, सो तुमारा अनुमान अयुक्त है, क्योंकि यह तुमारा पूर्वोक्त अनुमान हमारे मतमें जैसे आगे सिद्ध है, तैसेही सिद्ध करता है, इस वास्ते सिद्ध साधन दूषण तुमारे अनुमानमें होता है, जैसे हमारे मतमें आगेही सिद्ध है तैसे लिखते हैं—सपूर्ण यह जगत्की विचित्रता जो है सो सर्व कर्मके फलसे है, ऐसे हम मानते हैं, क्योंकि यह जो चारत्तवर्षमें अनेक देशोंमें, अनेक टापुओंमें, अनेक हेमवत आदिक पर्वतोंमें, अनेक प्रकारके मनुष्यादि प्राणी जो वास करते हैं, अरु जो उनकू सुख दुःखादिक अनेक तरेंकी अवस्था बण रही है, तिन सर्व अवस्थायोंका कारण कर्म ही जानने दूसरा कोई नहीं अरु देखनेमेंही कर्मही कारण हो सके हैं,

पूर्वोक्त दूषण है जेकर कहोगे कि जीवोंकूं पापमें प्रवृत्त होतोंकूं ईश्वर मने करने समर्थ नहीं, तो फेर उचे शब्दसें ऐसें न कहनां जो “सर्व कुठ ईश्वरनेही करा है, और ईश्वर सर्व शक्तिमान् है” तथा जेकर जीव पापनी आपही करता है, अरु धर्मनी आपही करता है, तो फलनी आपही जोग लेवेगा, तो फेर है पूर्वपक्षी । ईश्वर कर्त्ताकी कल्पना व्यर्थ है

पूर्वपक्ष — यर्म अधर्म तो जीव, आपही करते हैं, परंतु उनका फल प्रदान तो ईश्वरही कर्त्ता है, जीव जो हैं, सो आपणे करे दुवे धर्म अधर्म का फल आप जोगनेकूं समर्थ नहीं है, जैसे चोर चोरी करता है सो चोरी तो आपही करता है, परंतु उस चोरीका फल (बंदीखाना) जोगना आप नहीं जोग सका, कोइ दूसरा बंदीखानेमें मालने वाला चाहिये

उत्तरपक्ष — यहनी तुमारा कहना असत् है, क्योंकि जब जीव, धर्म अधर्म करने समर्थ है, तो फेर फल जोगनेमें समर्थ क्यु नहीं ? इस सारमें जैसा जैसा जो जीव पाप, धर्म करता है, तैसा तैसा पाप धर्मके फल जोगनेमें निमित्तनी बन जाता है, जैसे चोर चोरी करता है, तिस चोरीका फल राजा देता है, तथा कुष्ट हो जाता है, तथा शरीरमें कीड़े पड़ जाते हैं, तथा अग्निमें जल मरता है, तथा पाणीमें मूब मरता है, तथा खड्गसें कट जाता है, तथा तोप बंदूककी गोला गोलीसें मर जाता है, तथा दाट, हवेली, औ माटीके खानेके नीचे दब कर अनेक तरेंके सकट जोग कर मर जाता है, निर्धन हो जाता है, इत्यादि असंख्य निमित्तों से अपणे करे कर्मके फलकूं जोका है इहा धिना निमित्तके दूसरा ईश्वर फलदाता कोइ नहीं दीखता, ऐसें ही नरक स्वर्गादि परलोकमें नी छाना छान कर्म फल जोगनेके असंख्य निमित्त है जेकर कहोगे जो परब्रह्मगमन करनेसें इत्यादि पापफलमें क्या निमित्त मिलेगा, जिसके जोगसें फल जोगनां होगा ? यह बात तो मैं (ग्रथकार) नहीं जानता, जो इस पुण्य पापका यह निमित्त तुमकूं मिल कर फल दोगा, क्युकि मेरेकूं इतना ज्ञान नहीं जो ठीक ठीक पूरा पूरा निमित्त बता सकूं ? परंतु इतना कह सकता हू कि जो जो जीव पुण्य पाप करते है, उनके फल जोगनेमें अवश्य कोइक निमित्त जरूर दोगा अरु इस तरेंसे फल जोगेगा, यह निमित्त मिलेगा, अमुक देशमें, अमुक कालमें, इत्यादि सर्व प्रत्यक्षपणे तो अर्द्धत, जगवत्



रोमेंनी जीवोंकू प्रवृत्त करता है, तब तो ईश्वरकू सर्वज्ञ और वीतराग क्यों कर कहना चाहिये ?

पूर्वपक्ष - ईश्वर ( जगवान् ) तो सर्व जीवोंकू गुन कर्म कर्मेन्द्रियमें प्रवृत्त करता है, इस वास्ते जगवान् सर्वज्ञ और वीतरागही है अरु जो जीव अधर्म करनेवाले है, उनकू असत् व्यवहारमें प्रवृत्त करके पीछे नरकपात करके उनकू फल देता है, जो फेर तो जीव इस दु खमें मरता हुआ फेर पाप न करे, इस वास्ते उचित फल दणै करके ईश्वर ( जगवान् ) विवेकवान् अरु वीतराग सर्वज्ञ है, उसमें कोइनी दूषण नहीं है

उत्तरपक्ष - यहनी तुमारा कहना गिना विचारेका है, क्योंकि प्रथम पाप करनेमेंनी तो ईश्वरही प्रवृत्त करता है, ईश्वर गिना दूसरा तो कोइ प्रेरक है नहीं अरु जीव आप तो कुछ कर सका है नहीं क्योंकि जीव तो अज्ञानी है पापमें वा धर्ममें आप नहीं प्रवृत्त हो सका, तो फेर प्रथम पाप करानेकू जीवोंकू प्रवृत्त करना, पीछे नरकमें मालके उस जीवकू फल सुक्ताना, पीछे धर्म में प्रवृत्त करना, क्या यही ईश्वरकी ईश्वरता, अरु विचार पूर्वक करणा है ?

पूर्वपक्ष - ईश्वर ( जगवान् ) जीवोंकू कदेइ नहीं प्रवृत्त कर्ता, किंतु जीव आपही प्रवृत्त होता है, तब तो जो जीव जैसा जैसा कर्म करता है, उस कर्मके वशसे ईश्वर ( जगवान् ) नी तैसा तैसा फल उन जीवोंकू देता है, जैसे राजा राज करता है, परंतु राजा चोरकू ऐसे नहीं कहता जो चोरी कर, किंतु चोरी करनेकी मनाइ तो करता है फेर जे कर वो चोर जो आपही चोरी करेगा, तब दण तो राजा देवेगा, तैसे ईश्वर ( जगवान् ) पाप तो नहीं कराता, परंतु पाप करने वालोंको दण देता है

उत्तरपक्ष - यहनी तुमारा कहना अयुक्त है, क्योंकि दूसरे जो राजा हैं, सो चोरोंकू निषेध करनेमें समर्थ नहीं हैं, क्योंकि कैसाही उग्र ( कठिन ) द्रुकम वाला राजा होवे और मन वचन काया करके कितनाही चोरी आदिक पाप कर्म मने करा चाहे, परंतु लोक चोरी आदिक पापकर्म क दापि सर्वथा न छोडेगे, अरु ईश्वर ( जगवान् ) तो सर्व शक्तिमान् तुम मानते हो, तो फेर सर्व जीवोंकू पाप करनेमें प्रवृत्त होतोंकू क्यों नहीं मने करता ? जब ईश्वर जीवोंकू पाप करता मने नहीं करता, तब तो ईश्वरही जीवोंपासों पाप कराता है, फेर उनकू दण देता है, तो फेर वोही

किसीकूँ स्वर्गमें उत्पन्न करता है, जब वो जीव नाचते, कूदते, रोते, पीटते, बिलाप करते हैं, तब ईश्वर अपनी रची हुई बाजीका तमासा देखता है, इस वास्ते जगत् रचता है

उत्तरपक्ष—जब ऐसे है, तब तो ईश्वर प्रेक्षावान् नहीं है, क्यों कि उसकी तो क्रीडा होती है, अरु एक जीव तडफ तडफके महा करुणा स्पंद हो कर मर रहें है तो फेर ईश्वरकू दयालु मानना यह कैसी तुमारी अज्ञानता है ? क्योंकि जो महा पुरुष दयालु सर्वज्ञ होते है, वे कदापि किसी जीवोकूँ डख दे कर क्रीडा नहीं करते, तो फेर ईश्वर क्रीडार्थी कैसे हो सका है ? तथा क्रीडा जो है, सो सरागीकू होती है अरु ईश्वर (जगवान्) तो वीतराग है, तो फेर ईश्वर (जगवान्कू) क्रीडा रसमें मग्न होणा कैसे सनवे ?

पूर्वपक्ष—हमारा जो ईश्वर है सो रागी वैषी है, इस कारणसे उसमें क्रीडा करणेका सनव हो सका है

उत्तरपक्ष—तब तो तुमने मुख चोपडनेके बदले आपणा मुख काजा कर लीया, क्योंकि जब रागी वैषी होगा, तब तो ईश्वर जोप जीवोकी तरें सरागी हुवा, वीतराग न हुवा, अरु सर्वज्ञनी न हुवा, तब तो हमारे सरीखा हुवा फेर जगत्का रचने वाला क्यों कर हो सका है ?

पूर्वपक्ष—हम तो ईश्वरकू राग वैष सयुक्त सर्वज्ञ मानते हे, इस वास्ते सर्व जगत्का कर्ता है

उत्तरपक्ष—इस तुमारे कहनेमे कोइनी प्रमाण नहीं है जिस प्रमाण से ईश्वर रागी, वैषी, सर्वज्ञ निश्च होवे ?

पूर्वपक्ष—ईश्वरका स्वभाव ही ऐसा है, जो रागी वैषीनी होना अरु सर्वज्ञनी रहना, स्वभावमें कोइ तर्क नहीं हो सकती जैसे अग्नि तो वाहक है, परंतु आकाश वाहक क्यों नहीं ? इस प्रश्नमें उत्तर यह दीया जायगा जो अग्निमें वाहक स्वभाव है, आकाशमें नहीं इसी तरें ईश्वर नी स्वभावसेही रागी, वैषी अरु सर्वज्ञ है

उत्तरपक्ष—ऐसे तो कोइक वादी नी कह सका है जो यह हमारे सन्मुख गद्दा खडा है, सो सर्व जगत्का रचने वाला है जे कर कोइ वादी पूठैकि किस हेतुसे यह गर्दन जगत्का रचने वाला है ? तब तो तिसकू

(परमेश्वर) सर्वज्ञके ज्ञानमे जासन होता है. निमित्त बिना कोइनी फल न हों जोग सका, इस वास्ते ईश्वर फलदाता कल्पना व्यर्थ है क्या यहनी बुद्धिमानोका कहना है कि जो गेटी पका तो मका है, परंतु आप खा नहीं सका, तथा ईश्वरक फलदाता कल्पना करनेसे एक श्रान्ती कत्रक तुम परमेश्वरकू लगाते हो, जेमे किसी पुरुषकू किसी दूसरे पुम्पने मजा दि शस्त्रसे मारे, तब तो मरने वालेने जो सरुट पाया, नो किमके यो गसे ? किसकी प्रेरणासे पाये ? जे कर कहोंगे ईश्वरने उस शस्त्र वालेकू प्रेग, तब तिसने उसकू मारा, तो फेर उस मारने वालेकू फासी क्यु मिलती है ? क्या ईश्वरका यही न्याय है, जो प्रथम पुरुषके हाथमे उसकू मरवा मालनां, अरु पीठे फेर उस मारने वालेकू फासी देनां, इस तुमारी सम जने ईश्वरकू बड़ा अन्यायी सिद्ध कर दे जे कर कहोंगे ईश्वरकी प्रेरणा के बिना ही उस पुरुषने दूसरे पुरुषकू मारा, अरु ड खदीया, तब तो नि मित्तहोसे सुख ड खका जोगनां सिद्ध हो गया, फेरनी ईश्वर फलदाता कल्पना करना यह अल्प बुद्धिवालोका काम है, तथा है ईश्वर वादी। तुमकू एक और बात पूछते है कि जो धर्मका फल है कि वन्मज्ज देवागना ओके सुकुमार शरीरका स्पर्श करना सो तो जीवोंकू सुखका कारण है, इस वास्ते ईश्वरने यह फल तो जीवोंकू दीया परंतु जो अधर्मका फल घोर न रकके कुममें पडनां, नाना प्रकारके ड ख (सरुट) त्रास कुजीपाक चर्मवत्क र्त्तन, अग्निमें ज्वलना, इत्यादि महा ड ख ईश्वर उस जीवकू क्यो देता है ?

**पूर्वपक्ष** — उस जीवने जो पाप करे थे, उनका फल उस जीवकू जरूर होना चाहिये इस वास्ते ईश्वर फल देता है

**उत्तरपक्ष** — इस तुमारे कहनेसे तो ईश्वर व्यर्थ हो जीवोंकू पीडा देता है, क्योंकि जब ईश्वर उस जीवकू पापका फल न देगा, तब तो जीव कर्मका फल आप तो जोग सका नहीं फेर नतो शरीर धारेगा अरु नवी न पापनी न करेगा, फेर बैठे बैठायें ईश्वरकू क्या सुदगुदी उठती है जो फेर उन जीवोंकू नरकमें माल देता है ? जो मध्यस्थ जाव वाला अरु प रम दयालु होता है, वो किसी जीवकू कच्ची निरर्थक पीडा नहीं देता

**पूर्वपक्ष** — ईश्वर (नगवान) अपनी क्रीडाके वास्ते किसीकू नरकमें माल ता है, किसीकू तीर्थचयोनिमें खटपन्न करता है, किसीकू मनुष्य जन्ममें,

किसीकूँ स्वर्गमें उत्पन्न करता है, जब वो जीव नाचते, कूदते, रोते, पीटते, बिजाप करते है, तब ईश्वर अपनी रची हुई बाजीका तमासा देखता है, इस वास्ते जगत् रचता है

उत्तरपक्ष—जब ऐसे है, तब तो ईश्वर प्रेक्षावान् नहीं है, क्या कि उसकी तो क्रीडा होती है, अरु एक जीव तड़फ तड़फके महा करुणा स्पंद हो कर मर रहें है तो फेर ईश्वरकूँ दयालु मानना यह कैसी तुमारी अज्ञानता है ? क्योंकि जो महा पुरुष दयालु सर्वज्ञ होते हैं, वे कदापि किसी जीवकूँ दुःख देकर क्रीडा नहीं करते, तो फेर ईश्वर क्रीडार्थी कैसे हो सकता है ? तथा क्रीडा जो है, सो सरागीकूँ होती है अरु ईश्वर (जगवान्) तो वीतराग है, तो फेर ईश्वर (जगवान्कूँ) क्रीडा रसमें मग्न होणा कैसे सजवे ?

पूर्वपक्ष—हमारा जो ईश्वर है सो रागी देवी है, इस कारणसे उसमें क्रीडा करणेका सजव हो सकता है

उत्तरपक्ष—तब तो तुमने मुख चोपड़नेके बदले आपणा मुख काला कर लीया, क्योंकि जब रागी देवी होगा, तब तो ईश्वर ओप जीवकी तरें सरागी दुवा, वीतराग न दुवा, अरु सर्वज्ञनी न दुवा, तब तो हमारे सरीखा दुवा फेर जगत्का रचने वाला क्यों कर हो सकता है ?

पूर्वपक्ष—हम तो ईश्वरकूँ राग देष सयुक्त सर्वज्ञ मानते है, इस वास्ते सर्व जगत्का कर्ता है

उत्तरपक्ष—इस तुमारे कहनेमें कोइनी प्रमाण नहीं है जिस प्रमाण से ईश्वर रागी, देवी, सर्वज्ञ सिद्ध होवे ?

पूर्वपक्ष—ईश्वरका स्वभाव ही ऐसा है, जो रागी देवीनी होनां, अरु सर्वज्ञनी रहनां, स्वभावमें कोइ तर्क नहीं हो सकती जैसे अग्नि तो दाहक है, परंतु आकाश दाहक क्यों नहीं ? इस प्रश्नमें उत्तर यह दीया जायगा जो अग्निमें दाहक स्वभाव है, आकाशमें नहीं इसी तरें ईश्वर नी स्वभावसेही रागी, देवी अरु सर्वज्ञ है

उत्तरपक्ष—ऐसे तो कोइक वादी नी कह सका है जो यह हमारे समुख गद्दा खड़ा है, सो सर्व जगत्का रचने वाला है जे कर कोइ वादी पूछे कि किस हेतुसे यह गर्वन जगत्का रचने वाला है ? तब तो तिसकूँ

श्रीसा उत्तर दीया जायगा जो इस गर्वनका राजा दी श्रीसा है, जा जगतू रचके राग देष वाला सर्वज्ञ हो कर फेर गर्वन बन जाता है, इसी तरे महिष आदिक सर्व जीव जगतके कर्ता वादी भिन्न कर दंगे, तब तो ईश्वर क्या दुष्टा जो कुछ अपने मनम मान्या गो घना जीया, यह तो ईश्वरकू बड़ा कजक लगाना है इस हेतुम ईश्वर (जगगान्) सर्वज्ञ श्रु बीतराग है, फेर क्रीडाके श्रयें कनी जगतू न रचेंगा तथा दे ईश्वरगा दी । तेरे कहनेसे जब ईश्वरनेही सर्व कुछ रचा है तब तो सर्व तीनसो त्रेश्वर पाखन मतके सर्व शास्त्रजी ईश्वरहीने रचे हैं, अन्य शास्त्र सर्व आ पसमें भिन्न है, तब तो अचक्षु कितनेक शास्त्र सत्य श्रु कितनेक अ सत्य है, तब तो जूठ श्रु सत्य दोनोंका उपदेशक ईश्वर ही रहता, तब तो ईश्वर आपही सर्व मतातरीपोंको आपसमें लडाता है, हजारो लाखो मनुष्य इन मतोंके जगडोंमें मर जाते हैं, तब तो ईश्वरने शास्त्र क्या रचे ? एक जगत्में बड़ा उपदेश रचा, ऐसे जूठे सच्चे शास्त्र रचनेवालेकू महा पू र्त कहना चाहिये, नतु ईश्वर जे कर कहोगे ईश्वरने तो सच्चे शास्त्र ही रचे हैं, जूठे नहीं रचे जूठे तो जीवोंने आपही बना लीये है, तब तो ईश्वर ने जगत् नी नहीं रचा होगा, जगत् नी जीवोंने ही रचा होगा, क्योंकि ईश्वर सर्व वस्तुका कर्ता भिन्न दुष्टा नहीं।

तथा तुमने जो पूर्वे दूसरा अनुमान करा था, कि जो जो आकार वाली वस्तु है, सो सो सबे बुद्धिवालेकी रची हुई है, जैसे पुराना कूबा देखेंगे यद्यपि कारीगर तदा नहींनी उपलब्ध होता, तोनी कारीगर ही कर्ता अनुमानसे सिद्ध होगा, जैसे नवे कूबेका कर्ता उपलब्ध होता है

उत्तरपक्ष—यह तुमारा कहना समीचीन नहीं, क्यों कि आकार वाला हेतु, तुमारा सध्या, बादल, सूर्यकी बबी प्रमुख सस्थान वालोंमें है, परंतु बुद्धिवाला कर्ता कोइ नहीं है जे कर कहोगे बादल, इधधनुष, सूर्यकी बबी प्रमुख सगण वाले बुद्धिमानके करे द्रुये नहीं माने जाते हैं तैसैं ही पृथिवी, पर्वत नी बुद्धिमानके करे द्रुये नहीं मानने चाहिये

इन पूर्वोक्त प्रमाणोंसे किसी तरे नी ईश्वर जगत्का कर्ता सिद्ध नहीं होता अब जे पुरुष, ईश्वरकू जगत्का कर्ता मानते है, उनसे हम यह कहते है, कि जब तक इन हमारी शक्तियोंका उत्तर सर्वथा न दीया जावे,

तब ताई ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता न मानना चाहियें जब कोइ ईश्वरवादी इन युक्तियोंका उत्तर, पूरा दे देवेगा, तब तो हमनी जगत्का कर्त्ता ईश्वर मान लेवेंगें, अन्यथा कजी नहीं माना जायगा

पूर्वपक्ष—ईश्वर तो जगत्का कर्त्ता सिद्ध नहीं होता, परंतु एक ईश्वर है ऐसा तो सिद्ध होता है कि नहीं ?

उत्तरपक्ष—ईश्वर एकही है, यह बात सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण नहीं है, तब तो ईश्वर एक सिद्ध कैसे होवे ?

पूर्वपक्ष—ईश्वरके एकत्व सिद्ध होऐमें यह प्रमाण है, कि जहां बहुते एकते हो कर एक कामकू करने लगते हैं, तब तो अन्य अन्य मति होऐसैं एक कार्यजी नहीं बन सक्ता, ऐसेही जब ईश्वर अनंत होंगे, तब तो सृष्टि प्रमुख एकही कार्यकें करनेमे न्यारी न्यारी मति होऐसैं असमजस कार्य उत्पन्न होवेगा, इस वास्ते ईश्वर एकही होना चाहियें

उत्तरपक्ष—इत तुमारे प्रमाणसैं तो ईश्वर, एक नहीं सिद्ध होता है, क्यों कि ईश्वर तो किसी वस्तुका कर्त्ता उक्त प्रमाणोंसैं सिद्ध नहीं होता है, तथा एक मधुष्ठतेके बनानेमें सर्व मन्त्रीयोंका एक मता तो हो जाता है, अरु ईश्वर, परमात्मा, निर्विकार, निरुपाधिक, ज्योति स्वरूपोंका एक मता नहीं हो सक्ता, यह बड़े आश्चर्यकी बात है ? क्या तुमने ईश्वरोंकू कीड़ों सेजी बुद्धिहीन, अजिमाणी, अरु अज्ञानी बना दीया जो उन सर्वका एक मता नहीं हो सक्ता ?

पूर्वपक्ष—महिका जो बहुत एकठी हो कर एक मधुष्ठता आदिक कार्य बनाती हैं, तहांजी एक ईश्वरहीके व्यापारसैं एक मधुष्ठता बनता है

उत्तरपक्ष—तब तो घड़ा बनाना, चोरी करना, परस्त्रीगमन करना, इत्यादिक सर्व काम, ईश्वरके व्यापारसैं बने सिद्ध होंगे, अरु जीव सर्व, अकर्त्ता सिद्ध हो जावेंगे, फेर पुण्य पापका फल किसकू होगा ? अरु न रक स्वर्गमें जीव, क्यो भेजे जायगे

पूर्वपक्ष—जीव, कुजारादिक चोरादिक सर्व स्वतंत्रतासैं अपना अपना कार्य करते हैं, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है

उत्तरपक्ष—क्या मन्त्रीयोंहीने तुमारा कुठ अपराध करा है, जो उनकू स्वतंत्र नहीं कहते हो ? इस तुमारे एक ईश्वरके माननेसे तो ऐसानी प्र

तीत होता है, जे कर अनंत ईश्वर माने जायें, तब जो कदाचित् एक सृष्टि रचनेमें विवाद हो जायें, तो फेर उस विवादकूं दूर फेंक करे ? शिर, पंच तो कोइ दे नही; तथा एऊ ईश्वरकूं देख के दूसरा ईश्वर ईर्ष्या करेगा, जो यह मेरे तुल्य क्यु है ? इत्यादिक अनेक उपपन्न उत्पन्न हो जायेंगे, इस वास्ते ईश्वर एकही मानना चाहिये, यहनी तुमारी समज अज्ञानरूपी घुणकी खाइ दुइ है, क्यु कि जब ईश्वर (जगवान) सर्वज्ञ है, तब तो सर्वज्ञ के ज्ञानमें एकही सरीखा ज्ञान होना चाहिये, तो फेर विवाद क्यों कर होगा ? तथा ईश्वर तो राग, द्वेष, ईर्ष्या, अजिमानादि सर्व दूषणोंसे रहित है, तब तो दूसरे ईश्वरकूं देख कर ईर्ष्या अजिमान क्यों कर करेंगे ? जे कर ईश्वर हो करनी आपसमें विवाद, ऊगड़े, ईर्ष्या, अजिमान करेंगे, तो तिन पाम रोंकू ईश्वरही कैसे माना जायगा ? जब जगत्कर्त्ताही ईश्वर सिद्ध नहीं होता, तब तो विवाद ऊगड़ाही ईश्वरोंका आपसमें फाहेकू दोगा ? इस वास्ते ईश्वर अनते माननेमें कुठनी दूषण नहीं तथा "सर्वगतत्व" ईश्वर सर्व व्यापक है, यहनी जो मानते है, सो नी प्रामाणिक नहीं है, क्योंकि जब ईश्वरकू सर्व व्यापक, वादी मानते है, तब शरीर करके व्यापक मानते है ? वा ज्ञान स्व रूप करके व्यापक मानते हैं ? जे कर शरीर करके ईश्वरकू व्यापक मानेंगे, तब तो ईश्वरका शरीरही सर्व जगा समा जायगा, दूसरे पदार्थोंके रहने वास्ते कोइनी अवकाश न मिलेगा ? इस वास्ते ईश्वर वेह करके तो सर्व त्र व्यापक नहीं है

प्रश्न—क्या ईश्वरकेनी शरीर है, जो तुम ऐसे विकल्प करते हो ?

उत्तर—हे जय्य ! ऐसेनी इस जगत्में मत है, जो ईश्वरकू देहधारी मानते हैं

प्रश्न—वो कौनसे मत है, जिनोंने शरीरधारी ईश्वर माना है ?

उत्तर—तौरेतनामा ग्रन्थ है, तिसमें ऐसे लिखा है, जो ईश्वरने अबर हामके यहाँ रोटी खाइ, इस लिखनेसें, तथा याकूबके साथ कुस्ती करी, इस लिखनेसें प्रतीत होता है जो ईश्वर देहधारी है तथा शकरदिविज यके दूसरे प्रकरणमें शकरस्वामीका शिष्य, ध्यानदगिरि जो कि इसी ग्रन्थ की आदिमें लिखता है, जो मैं सर्वज्ञ हू सो लिखता है कि जब नारदजी ने देखा की इस लोकमें बहुते कपोलकल्पित मत उत्पन्न हो गये हैं, अरु सनातन धर्म लुप्त हो गया है, तब तो नारदजी शीघ्रही ब्रह्मा

जीके पास पहुँचे, श्रु जा कर कहने लगे कि हे पिताजी ! तुमारा मत तो प्राय नहीं रहा, श्रु लोकोने अनेक मत बना लीये हे. सो इस बातका कुछ उपाय करना चाहिये. तब तो ब्रह्माजी बहुत काल ताँझ चिन्ता करके पुत्र, मित्र, नक्त जनौंकुं साथ ले कर अपणे लोकसे चल कर शिवलोक में प्रवेश करते हुये आगे क्या देखते हे कि जैसे मध्यान्हमें कोटि सूर्यो का तेज तथा कोटि चंद्रमा समान शीतल, और पांच जिसके मुख हे, चंद्रमा मुकुट है, विजलीवत् पिंगल जटाका धारक, श्री पार्वती जिसके वामाई अंगमें है, सर्वका ईश्वर महादेव देखा फेर ब्रह्माजीने नमस्कार करके स्तुति करी, और कहते हुये कि जो महादेव, सर्वज्ञ, सर्वलोकेश, सर्व साक्षी, सर्वमय, सर्वकारण, इत्यादि इस लिखनेसे प्रगट प्रतीत होता है जो ईश्वर देहधारी है, जेकर देहधारी ईश्वर न होवे, तो फेर पांच मुख कैसे होवे ? इस लिखनेसे ईश्वर शरीर रहित नहीं सिद्ध हो सका है अब जेकर शरीरधारी ईश्वर होवे तब तो इस लोकमें एकिला ईश्वरही व्यापक हो कर रहेगा, दूसरे पदार्थोंके वास्ते कोइ दूसरा लोक रहनेकू चाहिये ? जेकर कहोगे ज्ञानात्मा करके ईश्वर सर्व व्यापक है, तब तो सिद्ध साध्य नहीं है, हमनी तो ज्ञानस्वरूप करके जगवान्कू सर्वव्यापी मानते हैं, परंतु जेकर तुमारे वेदसे न विरोध होवे ? क्युकि वेदोंमें शरीर करकेही सर्व व्यापक कहा है ॥ तथाच ॥ “ विश्वतश्चक्रुत विश्वतोमुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पादित्पादि श्रुते ” इस श्रुतिसे सिद्ध है, जो ईश्वर शरीर करके सर्व व्यापक है, फेर तो पूर्वोक्त दूषण है, इस वास्ते ईश्वर व्यापक नहीं तथा तुम कहते हो जो ईश्वर सर्वज्ञ है, परंतु तुमारा ईश्वर सर्वज्ञ नी नहीं क्यों के हम जो ईश्वर सृष्टिकर्त्ताके खंमने वाले है, सो उससे विपरीत चलते हैं, फेर हमकू उसने क्यों रचा ? जेकर कहोगे जन्मांतरोंमें उपार्जित जो जो तुमारे छुजाछुन कर्म, तिनोके अनुसारसे तुमकू ईश्वर फल देता है, तो फेर तुमारे कहनेहीसे ईश्वरके स्वतंत्रपणेकू जलाजलि दीनी गइ, क्यों कि जब हमारे कर्मोंके बिना ईश्वर फल नहीं दे सका, तब तो ईश्वरके कुछ अधीन नहीं, जैसे हमारे कर्म होंगे, तैसा हमकू फल मिलेगा जेकर कहोगे ईश्वर जो इष्टे, सो करे, तब तो क्यों न जानता है जो ईश्वर क्या करेगा, धर्मीयोंकू नरकमें, पापीयोंकू स्वर्गमें जेजेगा ? जेकर



कहागे परमेश्वर न्यायी है, जैसा जैसा जो करेगा, उसहू वैसा वैसा फल देता है, तो फेरजी बोही परंतत्रतारूप दूषण ईश्वरमें लागता है, तथा ईश्वर नित्य है, यह जी कहनां उनका अपणे घरहीमें सुंदर लगता है, क्यों कि नित्य तो उस वस्तुकू कहते हैं, जो तीनों कजोम एक रूप रहे, जब ईश्वर नित्य है, तो क्या जगत्को बनानेवाला स्वभाव है वा नहीं ? जे कर कहागे ईश्वरमें जगत् रचनेका स्वभाव है, तब तो ईश्वर निरंतर जगत्कू रचाही करेगा, कदापि रचनेमें न बध होगा, क्योंकि जगत्के रचनेका स्वभाव तो ईश्वरमें नित्य है जेकर कहागे ईश्वरमें जगत् रचनेका स्वभाव नहीं है, तब तो ईश्वर कदापि जगत्कू न रचेगा क्योंकि जगत् रचनेका स्वभाव ईश्वरमें हैही नहीं. तथा जे कर ईश्वरमें एकांत नित्य जगत् रचनेका स्वभाव है, तब तो प्रलय कदेई न होगी, क्यों कि ईश्वरमें प्रलय करनेका स्वभाव नहीं है जे कर कहागे ईश्वरमें रचनेकी श्रु प्रलय करने की दोनोही शक्तियां नित्य हैं, तब तो न कदापि जगत् रचा जायगा श्रु न कदेई प्रलय होगी, क्योंकि दो शक्तियां परस्पर विरुद्ध एक जगे एक कालमें कदापि नहीं रहैगी, जे कर रहेगी, तब तो जगत् न रचा जावेगा, न प्रलय करा जायगा, क्योंकि जिस कालमें रचने वाली शक्ति रचेगी, तिसी कालमें प्रलय करनेवाली शक्ति प्रलय करेगी, श्रु जिस कालमें प्रलयशक्ति प्रलय करेगी, तिसी कालमें रचने वाली शक्ति रच देवेगी, ऐसे ज व शक्तियोंका परस्पर विरोध होगा, तब तो न जगत् रचा जावेगा, न प्रलय किया जावेगा, तब तो हमाराही मत सिद्ध हो गया, क्योंकि न किसीने जगत् रचा है, श्रु न इस जगत्की कदेई प्रलय होती है, तातें यह जगत् आनादि, अनंत सिद्ध हो गया जेकर कहागे ईश्वरमें दोनोंही शक्तियां नहि है, फेरजी तो जगत् न रचा, न प्रलय किया जायगा, तब तो आनादि, अनंत सिद्ध दुवा जेकर कहागे ईश्वर जब चाहता है, तब रचनेकी इच्छा कर लेता है, श्रु जब प्रलय करता है, तब प्रलयकी इच्छा कर लेता है, इसमें क्या दूषण है ? तब तो ईश्वरकी शक्तियां अनित्य होवेगी, सो सुखेन अनित्य होवे इसमें हमारी क्या हानी है ? जे कर ईश्वरकी शक्तियों अनित्य हैं, तब तो ईश्वर जी अनित्य हो जावेगा, क्यों कि ईश्वर अपनी शक्तियोंसे अनेक है जे कर कहागे शक्तियां ईश्वरसे

नैदरूप है, तबजी शक्तियाके नित्य होऐसें जगत् न रचा जायगा, न प्रयत्न कीया जायगा, अरु ईश्वर अकिंचित्कर सिद्ध हो जावेगा, क्योंकि जब ईश्वर सर्व शक्तियोंसें रहित है, तब तो ईश्वर कुछनी करने समर्थ नहीं है, फेर जगत् रचनेमें क्यों कर समर्थ होवेगा ? अरु शक्तियोंका उपादान कारण कौन होवेगा ? अरु ईश्वरका अज्ञाव हो जावेगा. क्योंकि जब ईश्वरमें शक्तिही कोई नहीं, तब तो ईश्वर काहेका ? वो तो आकाशके फूल समान असत् है, फेर जगत्का कर्त्ता किसकू मानोगे ?

अध्याये खरड ज्ञानीयोंका ईश्वरवाद लिखते हैं खरडज्ञानी कहता है, कि जगत्में जितने पदार्थ है, उनके विलक्षण विलक्षण सयोग, आकृति, तथा गुण, और स्वभाव, दीख पड़ते हैं, जे कर इनका तथा इनके नियमोंका कर्त्ता कोई न होगा, तो ये नियम कनी न बनेंगे, क्योंकि जड पदार्थोंमें तो मिलने वा जुड़े होनेकी यथावत् समर्थता नहीं, इस हेतुसें ईश्वर कर्त्ता अवश्य दोनों चाहियें

उत्तर -प्रथमही हम जगत् कर्त्ता ईश्वरका खमन कर चुके हैं, तो फेर आप जगत् कर्त्ता क्यों कर मानते हैं ? अरु जो तुमने लिखा है कि जगत्के पदार्थोंमें न्यारे न्यारे स्वभाव दीख पड़ते हैं, इस्सें ईश्वर सिद्ध होता है, इस कहनेसें ईश्वर जगत्कर्त्ता नहीं सिद्ध होता, क्योंकि कि सर्व पदार्थोंमें अनन्त शक्तियां हैं सो अपनी अपनी शक्तियोंसें सर्व पदार्थ अपने अपने कार्यकू करते हैं, इनके मिलनेमें निमित्त यह है, एक तो काल, दूसरा पदार्थका स्वभाव, तीसरी नियती, चउथा जीवोंका कर्म, पांचवा जीवोंका उद्यम, इन पूर्वोक्त पांचों निमित्त बिना कोईनी और निमित्त नहीं है, इन पांचोंका स्वरूप, आगे चल कर लिखेंगे ?

प्रत्यक्षमेंनी इन पांचोंके निमित्तसें ही सर्व कुछ उत्पन्न होता है, जैसें बीजांकुर जब बीज बोया जाता है, तब कालही यथानुकूल होना चाहियें, अरु बीज तथा जल, पृथिवी, इत्यादिकोंका स्वभावनी अवश्य होना चाहियें तथा नियतीनी जो जो पदार्थोंका स्वभाव है, तिन पदार्थोंका तथा तथा जो परिणाम होता है, तिसका नाम नियती है, सोनी कारण है तथा अष्टविध कर्मनी कारण है तथा पुरुषाकार ( जीवोंका उद्यमनी ) कारण हैं ए पांचों वस्तु अनादि है, कीतीनेनी प्रथम रची

नहि है, क्योंकि जो जो वस्तुका स्वभाव है, सो सो सर्व अनाविमें है जे कर वस्तुमें अपणा अपणा स्वभाव न होयेगा, तब तो वस्तुही फोड़ सत् रूप न रहेगी सर्व शशशृंगवत् असत हो जायगी, अरु प्रत्यक्ष जो दृष्ट पृथिवी, आकाश, सूर्य, चंद्रमा, आदि पदार्थ दीप्त पड़ते हैं, सो इसी तरे अनादि रूपसे सिद्ध हैं, अरु पृथ्वी वपर जो जो रचना होती है, सो सर्व प्रवाहमें ऐसेही घली आती हैं, अरु जो जो जगत्के नियम हैं, वे सर्व इन पांचो निमित्तोके बिना नहीं हो सके हैं इस वास्ते सर्व पदार्थ अपणे अपणे नियममें हैं, जे कर तुम इन्द्रियकी शक्तिकू ईश्वर मान लोगे, तब तो हमारी कुछ हानी नहीं, क्योंकि हम इन्द्रियकी अनादि शक्तिका नाम ईश्वर रख लेवेंगे, अरु तुम अनादि इन्द्रियकी शक्ति कू ईश्वर मान लेवेंगे, तब तो तुमारा हमारा विवाद दूर हो जावेगा अरु तुमने लिखा जो जड़में यथावत् मिलनेकी शक्ति नहीं है, यहनी तुमारा कहना मिथ्या है, क्योंकि जगत्में अनेक तरेंके जड़ पदार्थ आपसे आप ही इन पूर्वोक्त पांच निमित्तोसे आपसमें मिल जाते हैं, जैसे सूर्यके किरण वादलोमें पड़ती है, तब इन्धनुष बन जाता है, तथा सध्याका होना, पांच वर्षके वादलोकी चिनी दुई घटा, चंद्रमा सूर्यके गिरद कुनला, आकाशमें पवनोंके मिलनेसे जल, और अग्निका उत्पन्न होना, अरु वर्षाके होनेसे उन पूर्वोक्त पांचों निमित्तोसे अनेक प्रकारके घास तृणादि अनेक प्रकारकी वनस्पति, तथा अनेक प्रकारके कीट पतंग प्रमुख जीव उत्पन्न हो जाते हैं, इन पांचो निमित्तोके बिना किसी वस्तुको बनाता दुआ ईश्वर नहीं दिखलाइ वेता, जरा पट्टपात ठोड़ कर विचार कर देखो के, ईश्वर कर्त्ता किस तरेंसे हो सका है ? क्योंकि पृथिवी, आकाश, चंद्र, सूर्य, इत्यादिक तो इन्द्रियार्थिक नयके मतसे अनादि हैं, फेर इनके वास्ते पूछना कि यह किसने बनाये हैं ? तो फेर हम पूछते हैं, ईश्वर किसने बनाया ? जे कर कहोगे ईश्वर तो, किसीनेही बनाया नहीं, वो तो अनाविसे बना बनायाही है, तो फेर पृथिवी प्रमुख कितनेक पदार्थनी बने बनाये अनाविसेही है, ऐसे माननेमें क्यु लज्जा करते हो ?

खरब हानी कहते हैं की स्वभावसे जगत्की उत्पत्ति जो मानते हैं, उनके मतमें यह दोष आवेंगे यह पृथिवी स्वभावसे होती, तो इसका कर्त्ता और

नियंता न होता, इस पृथिवीसें निम्न दशमे कोश अंतरिक्षमें दूसरा आपसे आप पृथिवी बन जाती, सो आज तक नहीं बनी, इससें जाना जाता है, जो ईश्वर कर्त्ता है

उत्तर—तुमकू कुछ विचार है, वा नहीं? जे कर है, तो पूर्वोक्त तुमारा कहनां अयुक्त है, क्यों कि जब हम तो यह कहते है, जो पृथ्वी आदिक अनादि है, किसीनें नहीं बनाये अरु तुम कहते हो आकाशमें उंची दश कोशके अतरे दूसरी पृथिवी क्यों नहीं बन जाती? अब विचारो यह तुमारा प्रश्न मूर्खताइका है, वा नहीं? तथा इस प्रश्नके उत्तरमें जो कोइ तुमकू पूछे, जो ईश्वर स्वभावसें बना होवे, तब तो ईश्वरसें अलग दूसरा ईश्वर क्यों नहीं उत्पन्न होता? जे कर कहोगे ईश्वर तो अनादि है, वो क्यों कर नवा दूसरा ईश्वर बन जावे? इस तरे हमनी कह सके हैं जो पृथ्वी अनादि है, नवीन नहीं बनती, तो फेर दश कोश आकाशमें क्यों कर बन जावे?

पूर्वपक्ष—जे कर आपसें आपही वस्तु बनती होवे, तब सर्व परमाणु एकठे क्यों नहीं मिल जाते? अथवा एकैक हो कर बिखर क्यों नहीं जाते?

उत्तरपक्ष—हमारी कुछ आज्ञा जड़ नहीं मानते है, जो हमारे कहेसें एक ठे होकर एकरूप हो जावे, अथवा एक एक हो कर बिखर जावे, पूर्वोक्त पांच निमित्त मिलनेके जहां होंगे, तहां मिल जावेंगे, जहां निमित्त नहीं होवेंगे, तहां नहीं मिलेंगे

पूर्वपक्ष—सर्व परमाणुओंके एकत्र मिलनेके पांच निमित्त क्यों नहीं मिलते?

उत्तरपक्ष—जो अनादि ससारकी नियतीरूप मर्यादा है, वो कदापि अन्य था नहीं होती, जे कर हो जावे, तब तो ससारमें जो जीव जन्म लेते हैं, सो सर्व, स्त्रीयोंहीके वा पुरुषोंकेही रूपसें क्यों नहीं उत्पन्न होते? जे कर कहोगे जैसे जैसे कर्म करे थे, वैसा वैसा ही उनकू फल मिलता है, फेर एक स्त्री आदिक स्वरूपसें कैसें उत्पन्न होवे? तब हम यह प्रष्टते है, जो सर्व जीवोंने स्त्री होनेके वा पुरुष होनेके न्यारे न्यारे कर्म क्यों करे? एकही सरीखे कर्म क्यों न करे? जे कर कहोगे ससारमें यह सनातनसें रीति है, जो सर्व जीव, एक सरीखे कर्म कदापि नहीं करते तब तो परमाणुओंमेंजी यही सनातन स्वभाव है, जो एकत्र कदेही न मिलनां, तथा एक एक हो कर बिखरनी नहीं जानां? हे पूर्वपक्षी! यह तुमारा ई

श्वर जगत् जो रचता है, सो तुमारे कहनेसे आगे अनंत मृष्टियां रच चुका है, अरु एकेक जीवकू अष्टुन कर्मोंका फल, अनंत धर्म व चूका है, ता नी वो जीव आज तां पाप करतेही घले जाते ह. तो फेर दम देनेमें ईश्वरकू क्या जान दुआ ? जो अनंत मात्रामे ५मो विद्वनाम फल रहा है ? तथा ईश्वरकू सृष्टि रचनेमें क्या प्रयोजन था ?

पूर्वपक्ष—ईश्वरकू सृष्टि नहीं रचनेका क्या प्रयोजन था ?

उत्तरपक्ष—वाह रे बढहेके बाबा ! यह तुने क्या उत्तर दीया, क्या यह उत्तर देखके विद्वान् तेरा उपहास्य न करेंगे ? ईश्वर जे कर सृष्टि रचे, तो ईश्वरताही नष्ट हो जावे, यह वृत्तांत उपर अष्टो तरंसे जिन आये हैं.

पूर्वपक्ष—ईश्वरकी जो सर्व शक्तियां हैं, सो सर्व अपना अपना कार्य करती हैं, जैसे आंख देखनेका काम करती है, कान सुननेका काम करती है, तैसेही जो ईश्वरमें रचना शक्ति है, सो रचनेसेही सफल होती है, इस वास्ते जगत् रचता है.

उत्तरपक्ष—जब तुमने ईश्वरकू सर्व शक्तिमान् माना, तब तो ईश्वरकी सर्व शक्तियां सफल होनी चाहियें, तब तो ईश्वर एक सुंदर पुरुषका रूप रच कर १ सर्व जगत्की सुंदर सुंदर स्त्रियोंमें जोग करे, अरु २ चोर बन कर चोरी करे, ३ विश्वास घातीपना करे, ४ जीवहत्या करे, ५ जूठ वो ले, ६ अन्याय करे, ७ अवतार हो कर गोपीयोंसे कछोल करे, ८ अरु कुबजासे जोग करे, ९ दूसरेकी मांगकू नगा कर ले जावे, १० तथा शिरपर जटा रस्के, ११ तीन आंख बनावे, १२ बैल उपर चढे, १३ तनमें विजृति लगावे, १४ एक स्त्रीकू वामार्धगमें रस्के, १५ किसी मुनिके आगे नगा हो कर नञ्जे, १६ किसीकू वर देवे, १७ किसीकू शाप देवे, इसी तरें १८ चार मुख बनाके एक स्त्री रस्के, अरु १९ अपनी पुत्रीसे जोग करे, तथा २० सम्राट् करे, २१ स्त्रीको चोर ले जावे, तो पीछे उस स्त्रीके वास्ते रोता फिरे, २२ एक अपना नाइ बनावे, उसकू जब सम्राट्में कोई शस्त्र लगे, तब नाइके डखसे बहुत रोवे, २३ अपने आपको तो अज्ञानी समजे, २४ नाइकी चिकित्सा वास्ते वैद्य बुलावे, २५ सर्व कुछ खावे, २६ पीवे, २७ नाचे, २८ कूदे, २९ रोवे, ३० पीटे, पीछेसे ३१ निर्मल, ३२ ज्योति स्व रूप, ३३ निरहंकार, ३४ सर्वव्यापक, बन बैठे इत्यादिक पूर्वोक्त शक्तियां ई

श्वरमें है, वा नहीं ? जे कर है तो इतने पूर्वोक्त सर्व काम ईश्वरकूं करने पड़ेंगे जे कर न करेगा, तब तो ईश्वरकीयां सर्व शक्तियां सफल न होवेगी ? तब तो ईश्वर महा डु खी हो जावेगा ? क्योंकि जिसने नेत्र तो पाये है, अरु देखना उसकूं न मिले, तो वो कैसा डु खी होता है ? जे कर कहोगे पूर्वोक्त अयोग्य शक्तियां ईश्वरमें नहीं है, तब तो सर्व शक्तिमान् ईश्वर है, ऐसे फिर कदापि न कहना चाहियें जे कर कहोगे कि योग्य शक्तियांकी अपेक्षा हम सर्व शक्तिमान् मानते हैं, तब तो जगत् रचनेकीनी शक्ति अयोग्यही है, यह नी परमात्मामें नहीं इस शक्तिकी अयोग्यता उपर लिख आये है तथा हे पूर्वपक्षी ! जब ईश्वरने प्रथमही सृष्टि रची थी, तब तो स्त्री पुरुषादिक थे नहीं, तब तो माता पिताके बिना मनुष्य क्यों कर उत्पन्न होये होंगे ?

पूर्वपक्ष —जब ईश्वरने सृष्टि रची थी, तबही बहुत पुरुष, अरु बहुत स्त्रियों, माता पिताके बिनाही रच गये थे, उनके आगें फिर गर्भसें उत्पन्न होने लगे.

उत्तरपक्ष —यह अप्रामाणिक कहनां कोइनी विद्वान् नहीं मानेगा, क्यों कि माता पिताके बिना कनी पुत्र नहीं उत्पन्न हो सका है ? जेकर ईश्वरने प्रथम माता पिताके बिनाहि मनुष्य, स्त्री, उत्पन्न करे थे, तो अब नी घड़े घड़ाये, बने बनाये, स्त्री पुरुष क्यों नहीं जेज देता ? गर्भ धारण कराणां, स्त्री पुरुषका मैथुन कराणां, गर्भवासका डु ख जोगानां, योनियत्र द्वारा खैं चके निकालनां इत्यादि सकट काहेकूं रचने थे ? अनंत बार ईश्वरने सृष्टि रची, अरु प्रलय करी, तब तो ईश्वर थाका नहीं, तो क्या मनुष्योंहीके बनानेसें थकैवा चढ गया ? जो घड़े घड़ाये, बने बनाये, नहीं जेज सका ? यह कनी नहीं हो सका, जो माता पिताके बिना पुत्र उत्पन्न हो जावे इस हेतुसेंनी जगत्का प्रवाह अनाविसें इसी तरें तारतम्य रूपसें चला आता सिद्ध होता है

पूर्वपक्ष —जे कर ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता न होवे, अरु जीवही कर्त्ता होवे, तब तो जीव आपही शरीर धारण कर लेवेगा, अरु शरीरकूं कदेइ न छोड़े गा, अरु आपणो आपकूं अष्टाफल लगा लेलेंगे, फेर तो कनी मरेंगे नहीं

उत्तरपक्ष —जो तुमने कहा है सो सर्व, कर्मोंके बश है, परंतु जीवके अर्थात् नहीं, जे कर कहोगे कर्मनी तो जीवनेही करे थे, तब क्यों जीवने अष्टाफल कर्म करे ? क्योंकि कोइ नी अपणो धुरे करणमें नहीं है, इस

का उत्तर तो दीया गया है, परंतु तुमारी समझ थोड़ी है, जो नहीं समझो  
 म्यो कि जो जो अस्थायी जीवोंकी शुन अशुन है, सो सर्व कर्मोंका फल  
 है तथा जीव जो है, सो कर्म करणमें तो प्रायः सततब्रह्मी है, परंतु फल  
 नोगनेमें स्वयंश नहीं म्योकि जैसे कोऽ जीव धनुषमें तीर चलावे, अरु  
 फिर उस तीरहू पकड़ने सामर्थ्य नहीं। तथा कोऽ जीव पिप खावे, सो तो  
 स्वयंश है, परंतु उस पिपवेगके रोकणमें जीव समर्थ, नहीं ऐसेही जीव  
 कर्म तो स्वतंत्रतासे प्रायः करता है, परंतु फल नोगनेमें जीव पर  
 वश है, जैसे वर्तमानमें रेलगाड़ी सर्व जीवोंहीने इस तरंगकी बनाई है,  
 परंतु उस चलती हुई रेलके तथा तारके वेगहू जितना धिर, उस रजकी  
 प्रेरणाशक्ति नहीं हटती, इतना धिर, कोऽ जीव नहीं रोक कर सका  
 ऐसेही कर्मफल वेगके रोकणहू जीवकी समर्थ नहीं है, तथा जीव  
 हू नवांतरमें कौन ले जाता है ? तथा जीवके शरीरकी रचना आत्माके  
 पदवे तथा नाना प्रकारके रंग वरगके हाड, चाम, लोड्ड, वीर्य, इ  
 त्यादिक रचना कौन रचता है ? इसका पूर्ण स्वरूप जहां कर्म प्रकृति  
 (१४७) का स्वरूप लिखेगे, तहांसे जानना। इस हेतुसे ईश्वर जगत् कर्ता  
 किसी तरंगी सिद्ध नहीं होता, विशेष करके जगत् कर्ता ईश्वरका स्वप्न  
 देखना होवे, तो श्री (१) सम्मतितर्क, (२) द्वादशसार नयचक्र (३) स्या  
 द्वादरत्नाकर, (४) अनेकांतजयपताका, (५) शास्त्रसमुच्चय स्याद्वादक  
 वृत्तता (६) स्याद्वादमजरी, ( ७ ) स्याद्वादरत्नाकरावतारिका, (८) सू  
 त्रकृतांग, (९) नदीसिद्धांत, (१०) शब्दान्जोनिधिगधस्तीमहाज्ञाप्य, (११)  
 प्रमाणसमुच्चय, (१२) प्रमाणपरीक्षा, (१३) प्रमाणमीमांसा, (१४) आ  
 तमीमांसा, (१५) प्रमेयकमलमार्त्तम्, (१६) प्रमेयप्रमार्त्तम्, (१७) न्या  
 यावतार, (१८) धर्मसग्रहणी, (१९) तत्त्वार्थ, (२०) पदवर्त्तनसमुच्चय  
 इत्यादि जैनमतके ग्रंथ देख लैने इस वास्ते जो कामी, क्रोधी, बली, धूर्  
 त, परस्त्री स्वस्त्री गमन करनेवाला, नाचने वाला, गाने बजाने वाला, रो  
 ने पीटने वाला, जस्म लगाने वाला, माला जपने वाला, सग्राम करने  
 वाला, तथा मरु आदिक बाजे बजाने वाला, वर वा शापके देने वाला,  
 विना प्रयोजन अनेक सङ्केशोंमें फसने वाला, इत्यादिक जो अठारह दू  
 षण करी सहित है, सो कुदेव है, उसकूं ईश्वर मानना सोइ मिथ्यात्व है,

इन कुदेवोंकू मानने वाले पञ्चरकीं नावो उपर बैठे है, इस वास्ते लिखनेका प्रयोजन इतना ही है, जो कुदेवकू कदेइ अर्हत जगवत परमेश्वर करी न मानना ॥ इति श्री तपागङ्गीयेमुनिश्रीबुद्धिविजयशिष्यमुनिआनदविजयआत्मारामविरचिते, जैनतत्त्वादर्थे, कुदेवनिर्णयनामा द्वितीय परिच्छेद सपूर्ण २

## ॥ अथ तृतीयपरिच्छेद प्रारंभ ॥

॥ यह तीसरे परिच्छेदमे गुरुतत्त्वका स्वरूप कहते है, जैनमतमें गुरुके लक्षण ऐसे लिखे हैं ॥ अनुष्ठुब् वृत्तं ॥ महाव्रतधरा धीरा, जैहूमात्रोपजीविन ॥ सामायिकस्था धर्मोप, देशकागुरवो मता ॥१॥ अस्यार्थ —अहिनादि पांच महाव्रतका धारने पालने वाला होवे, अरु आपदा आ पड़े, तब धीर साहसिकपणा करे, अपणे जो व्रत हैं, तिनकू दूषण लगा के कलकित न करे, तथा बैतालीश दूषण रहित, जिह्वावृत्ति माधुकरीवृत्ति करी, अपणे चारित्रधर्मके तथा शरीरके निर्वाह वास्ते जोजन करे, जोजनजी पूरा पेट जर कर न करे, जोजनके वास्ते अन्न, पाणी, रात्रिकू न राखे, तथा धर्मसाधनके उपकरण वर्जके और कुठनी सग्रह न करे तथा धन, धान्य, सुवर्ण, रूपा, मणि, मोती, प्रवालादि परिग्रह न राखे तथा राग, द्वेषके परिणाम रहित, मध्यस्थ वृत्ति हो कर, सदा वर्त्ते, तथा “धर्मोपदेशक” जो धर्म, जीवों के उद्धार वास्ते सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप परमेश्वर, अर्हत, जगवतें स्यादवस्थानेकांत स्वरूप निरूपण कीया है, उस धर्मकू जो नव्य जीवोंके तांइ उपदेश करे, परंतु ज्योतिषशास्त्र, अष्ट प्रकारका निमित्त शास्त्र, तथा वैद्यशास्त्र, धन उत्पन्न करनेका शास्त्र, राजसेवा आदिक अनेक शास्त्र, जिनसें धर्मकू बाधा पड़ुंचे, तिनका उपदेशक न होवे, क्यों कि लौकिक जो शास्त्र है, सो तो बुद्धिमान् पुरुष वर्त्तमानमेंजी बहुत सीखते है, तथा नवीन नवीन अनेक सांसारिक विद्याके पुस्तक बनाते हुये चले जाते है, तथा अगरेजोकी बुद्धि देख कर इस देशके लोकजी बहुत सांसारिक विद्यामें निपुण होते चले जाते हैं इस वास्ते साधुकू धर्मोपदेश ही करना चाहिये, क्यों कि धर्मही जीवोकू पाना कठिन है, ऐसे गुरु के लक्षण जैन मतमें हैं



तथा प्रथम जो पांच महाव्रत साधुओं धारने कहे हैं, सो कौन कौन से वे पांच महाव्रत हैं ? सो कहते हैं—श्लोक ॥ अहिंसा सन्नृतास्तेषु, ब्रह्मचर्यापरिग्रहा ॥ पंचनि पंचनिर्मुक्ता, चाग्नानिर्विमुक्तये ॥ १ ॥ अर्थ—(१) अहिंसा, (जीवदया,) (२) सन्नृत, (सत्य वचन बोलना,) (३) अस्तेय (साधुके उचित, वस्तुएँ बिना दीयां न लेना,) (४) ब्रह्मचर्यका पालना, (५) सर्व परिग्रहका त्याग, इन पाँचोंका नाम महाव्रत कहते हैं, तथा ॥ पांच महाव्रतोंमें एकैक महाव्रतकी पांच पांच जावना है, यह पांच महाव्रत, श्रु पञ्चीश जावना, ए सर्व मोक्षके वास्ते पाले.

अब इन पाँचो महाव्रतोंमेंसे प्रथम महाव्रतका स्वरूप लिखीये हैं ॥ श्लोक ॥ न यत् प्रमादयोगेन, जीवितव्यपरोपण ॥ त्रसाना स्थावराणां च, तदहिंसाव्रतं मतं ॥ ३ ॥ अर्थ—त्रस, (झँझियादिक जीव) श्रु स्थावर, (१) पृथ्वीकाया, (२) थपूकाया, (३) थम्रिकाया, (४) पवनकाया, (५) वनस्पतिकाया, ए पाँचोंके स्थावर जीव कहते हैं, इन सब पूर्वोक्त जीवोंके प्रमाद वश हो कर मारे नहीं, प्रमाद नाम है, राग, द्वेष, असावधानपणा, अज्ञान, मन वचन कायाका चञ्चल पणा, धर्मके विषे अनादर, इत्यादि प्रमादके वश हो कर जो प्राणातिपात करना, इसका जो त्याग करणां, इसका नाम अहिंसा व्रत है

अब दूसरे महाव्रतका स्वरूप लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ प्रिय पथ्य वचस्तथ्य, सन्नृतव्रतमुच्यते ॥ तत्तथ्यमपि नो तथ्य, मप्रिय चाहितं च यत् ॥ ४ ॥ अर्थ—जिस वचनके सुननेसे दूसरा जीव हर्ष पावे, तिस वचनके प्रिय वचन कहियें, तथा जो वचन जीवोंके पथ्यकारी होवे, परिणामसुंदर होवे, एतावता जिस वचनसे जीवके आगे बहुत सुधारा होवे, तथा जो वचन सत्य होवे, ऐसा जो वचन बोले, सो सन्नृतव्रत कहियें, इस व्रत विषे कठक विशेष लिखते हैं, जो वचन व्यवहारमें चाहो सत्यही होवे, परंतु जो आगले जीवके ड ख दायी होवे, ऐसा वचन न बोले, जैसे काणोके काणा कहना, चोरके चोर कहना, कुष्ठोके कुष्टी कहना, इत्यादिक जो वचन दूसरेके ड ख दायी होवे, सो न बोले, तथा जो वचन जीवोंके आगे अनर्थका देतु होवे, वसुराजावत् सोनी न बोले, जे कर

ह दोनों वचन बोले, तब तो उस साधुके स्मृतव्रतमें कलंक लग जावें, योंकि ए दोनो वचन धूम्रहीमें गिने हैं

अब तीसरा महाव्रत लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ अनादानमदत्तम्या, स्ते व्रतमुदीरितं ॥ बाह्या प्राणानृणामर्थो, हरतात्तद्वताहिते ॥ ५ ॥ अस्या - अदत्त, मात्तिकके विना दीया ले लेणां, तिसका जिसके नियम है, तो अस्तेय व्रत कहियें, अचोरीव्रत नामांतर है, अदत्तादान चार प्रका का है ( १ ) जो वस्तु साधुके लेने योग्य है, अचित्त जीवरहित वस्तु प्राण, काष्ठ, पापाणादिक वस्तुयोंके स्वामीकूं विना छूटे ले लेनां सो स्वामी प्रदत्त ( २ ) तथा जैसें कोइ जेह बकरी, गौ प्रमुख कोइ इनका स्वामी तिसरे हिंसक जीवकूं मोल लेकर दे देवे, अथवा विना मोल दे देवे, अरु लेने पालने देइ दोइ वस्तु जीनी है, परंतु उस जीवने तो अपना शरीर नहीं दिया है, इस हेतुसें जीवअदत्त ( ३ ) तथा जो जो वस्तु आधाकर्मादिक प्राहार, अचित्त जीव रहितजी है, अरु दीनीनी उस वस्तुके स्वामीने है, परंतु तीर्थकर जगवतें निषेध करी है, फेर जो साधु उस वस्तुकू ले लेवे, सो तीर्थकर अदत्त ( ४ ) तथा जो वस्तु निर्दोष है, वस्त्र आहारादिक अरु उस वस्तुके स्वामीने वो दीनी है, अरु तीर्थकर जगवतें निषेध नहीं करी है, परंतु गुरुकी आज्ञा विना वो वस्तुकू साधु ले लेवे, सो गुरु अदत्त इस महाव्रतमें ए चार प्रकारका अदत्त न लेणां जितने व्रत नियम हैं, वे सर्व अहिंसाव्रतकी रक्षा वास्ते बाढ़ी समान हैं, यह पूर्वोक्त तिसरे व्रतका जो पालनां है, सो अहिंसा व्रतहीकी रक्षा होती है अरु जो तीसरा महाव्रत न पाले तो अहिंसा व्रतकू दूषण लगे है, यही बात कहते हैं ॥ “बाह्या प्राणा नृणां” मनुष्योंका अर्थ, (लक्ष्मी) जो है, सो बाहिरला प्राण है जब कोइ किसीकी चोरी करता है, सो निश्चय करके उसके प्राणों का नाश करता है इसी हेतुसें चोरी करनां महा पाप है, सर्व चोरीका जो त्याग करना है, इसीका नाम तीसरा अदत्तादान त्यागरूप महा व्रत है

अब चौथे महाव्रतका स्वरूप लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ विव्यौदारिककामानां, कृतानुमतिकारितै ॥ मनोवाक्कायतस्यागो, ब्रह्माष्टदशधा मतम् ॥ ६ ॥ अस्यार्थ - विव्य (वेचताके) वैक्रिय शरीर सबधि जो काम जोग, अरु औदारिक शरीर तीर्थच मनुष्यका, तिन सबधि जो काम जोग, एतावता वैक्रिय

शरीर अरु श्रोतारिक शरीर, ए दोनोंके साथ त्रियय सेवन करना, और वृ सरापोसे त्रियय सेवन करायणा, त्रियय सेवन जो करे उसकृ अष्टा जानना, ए त चेद मन करकें, उचचन करकें, अरु उ काया करक, एउ अछारइ प्र कारका जो मैथुन सेवनका त्याग करे, उसकू ब्रह्मचर्य व्रत कहते हैं.

अब पांचवा महाव्रत लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ सर्वनायेण मूर्ध्ना, स्था गस्यादपरिग्रह ॥ यदि सत्सपि जीयेत, मूर्ध्ना चितविभ्रव ॥ ७ ॥ अ स्थाय्य—सर्व सपूर्ण जो अष्टाजाव पदार्थ, इष्य, देव, कालजावरूप व स्तु, तिस विषे जो मूर्ध्ना, ममत्वजाव मोह, तिसका जो त्याग करे, तिस का नाम अपरिग्रह व्रत कहियें, परंतु जिसके पास अपणे शरीरके बिना दूसरी कोइ वस्तु नहो, तोनी तिसकू निष्परिग्रहपणा न कहियें किंतु जिसकी मूर्ध्ना, ममत्व, सर्व वस्तुसे हठ जावे, उसीको निष्परिग्रह व्रत क हियें, क्योंकि जिसके पास कोइ वस्तु नहो, अरु अण होइ वस्तुकी जिस कू चाहना लग रही है, वो त्यागी नहो, जे कर ज्ञान द्वारा मूर्ध्ना त्यागे बिना, त्यागी हो जावे, तब तो कुत्ते अरु गधेनी त्यागी होना चाहियें, अ रु जो पुरुष ममत्व रहित है, सो निष्परिग्रह है, चाहो उसके पास धर्म साधनके कितनेक उपकरणनी है, तोनी मूर्ध्नाके न होनेसे वो परिग्रह नहो

अब इन पूर्वोक्त एकेक महाव्रतकी पांच पांच जावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ जावनाजिर्जावितानि, पचनि पचनि क्रमात् ॥ महाव्रतानि नो कस्य, साधयंत्यव्ययं पदम् ॥ १ ॥ अस्थाय्य—यह जो पांच महाव्रतोंकी पच्चीस जावना हैं, जो कोइ इन जावना करकें अपणे अपणे महाव्रतकूं रं जित वासित करे, एतावता पांच पांच जावना पूर्वक अखन महाव्रत पा ले तो अैसा कोइ जीव नही है, जिसकू ए महाव्रत मोहपदमें न पडुवावे ?

अब प्रथम महाव्रतकी पांच जावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ मनोऽं स्पेषणादानै, र्यानि समितिनि सदा ॥ दृष्टान्नपानग्रहणे ना हिंसा जाव येत्सुधि ॥ १ ॥ अस्थाय्य—मनकू पापके काममें न प्रवर्त्तावे, किंतु पापके का मसें अपणे मनकू दृढ़ा लेवे, इसका नाम मनोऽंति कहते हैं जे कर पापके काममें मनकू प्रवर्त्तावे, अरु चाहो बाह्यवृत्ति करकें हिंसा नहीनी करता, तोनी प्रसन्नचइ राजर्षिकी तरें सातमी नरकके जाने योग्य कर्म उत्प न्न कर लेता है, इस वास्ते मुनिकूं अवश्य मनोऽंति करनी चाहियें, ए

प्रथम जावना दूसरी जावना एषणासमिति सो आहारादिक चार वस्तु  
आधाकर्मादिक बेतालीश दूषण रहित लेवे, बेतालीश दूषणका पूरा स्वरू  
प देखना होवे, तो पिमनिर्युक्ति शास्त्र (४०००) श्लोक प्रमाण है, सो  
देख लेनी, ए दूसरी जावना तीसरी जावना आदाननिक्षेप नामा है, जो  
कुछ पात्रक. दंभ, फलक प्रमुख लेना पड़े, तथा चूमिकाके उपरि रखना प  
ड़े, तब प्रथम नेत्रोसे देख लेना, पीछे रजोहरण करके पूज लेवे, पीछे  
से लेना अरु रखना करें, क्योंकि विष्णु सत्पादिक अनेक जहेरी जीव,  
जे कर उस उपकरणके उपर बैठे होवें, तब तो काट खावें, अरु दूसरा  
जीव बिचारा अनाथ कोइ बैठा होवे, तो हाथके स्पर्शसे मर जावे, तब  
तो जीवहत्याका पाप लग जावे, इस वास्ते जो काम करना, सो यत्नपूर्वक  
करना, ए तीसरी जावना. चौथी जावना जब चलनेका काम पड़े, तब अ  
पणी आखोसे चार हाथ प्रमाण धरती देख कर चले, जो कोइ नीचा दे  
ख कर चलता है, उसकू इस लोकमें कितनेक गुण प्राप्त हो जाते हैं, प्र  
थम तो पगकू ठोकर नहीं लगती, दूसरा जिसके परिग्रहका त्याग न होवे,  
उसकू गिरा पड़ा पैसा, रूपक, आदि मिल जावे, तीसरे लोकमें जला म  
नुष्य किसीकी बहू बेटीकू देखता नहीं, औसा प्रसिद्ध हो जाता है, चो  
थे जीवकी रक्षा करनेसे धर्मकी प्राप्ति होती है, ए चौथी जावना पांचमी  
जावना जो अन्न, पाणी, साधु लेवे, सो प्रकाशवाली जगासे लेवे, अधिकार  
वाली जगासे न लेवे, क्योंकि अधिकारवाली जगामें एक तो जीव नहीं दीख  
पड़ता, और दूसरा साप विष्णुके काटनेका मर रहेता है, तथा गृहस्थका  
कोइ आनूषण प्रमुख जाता रहै, तब उसके मनमें शका उत्पन्न हो जा  
वे, कि क्या जाने अंधेरेमेंसे साधुही ले गया होगा ? तथा अंधेरेमें सुवर  
साधुकू देख कर कदाचित् कोइ ठसकट विकार वाली स्त्री लिपट जावे, अरु  
उस बखत कोइ दूसरा देखता होवे, तो धर्मकी बड़ी निंदा होवे, तथा सा  
धुहीका मन अंधेरेमें स्त्रीकू देख कर विगड जावे, साधु स्त्रीकू पकड लेवे,  
स्त्री पुकार कर देवे, तब तो बड़ी धर्मकी हानी, होवे तथा साधुओकी अ  
प्रीति हो जावे, इस वास्ते अंधेरेकी जगासे साधु अन्नादिक न लेवे, ए  
पांचमी जावना ए प्रथम महाव्रतकी पांच जावना हैं

अब दूसरे महाव्रतकी पांच जावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ दास्यलोजन

यक्रोध, प्रत्याख्यानेनिरुत्तरम् ॥ आलोच्य चापणमपि, जावयेत्स्मृतं व्रतं ॥ १ ॥  
 अस्मार्थ - प्रथम तो किसीकी हांसी न करे, दांसीका त्याग करे, क्योंकि जो पुरुष किसीकी हांसी करेगा, वो अवश्य ऊठ बोलेगा, ए जो परकी हांसी करणी है, सो बड़ा अनर्थका कारण हो जाती है. श्रीहेमचन्द्र सृष्टि रामायणमें लिखा है, कि रावणकी बहिन शूर्पनखाकी श्रीरामचन्द्र और लक्ष्मणजीने हांसी करी थी, तब शूर्पनखा क्रुद्ध हो कर अपने जाइ रावणके पास जा कर सीताका वर्णन करा, फेर रावण सीताको हर कर ले गया, एह बड़ा सग्राम हुआ, थाज तांइ लोक नकल बनाते हैं, ५म नारी रामायणका निमित्त शूर्पनखाकी हांसी है, इस वास्ते पर हास्यका त्यागरूप प्रथम जावना जाननी दूसरी जावना लोचका त्याग करना, क्योंकि जो लोचि होगा सो अवश्य अपने लोचके वास्ते ऊठ बोलेगा, क्योंकि यह बात सर्व लोकोमें प्रसिद्ध है, जो लोचि होगा, वो जरूर ऊठ बोलेगा, ए दूसरी जावना. तथा जय न करना, क्योंकि जयवत पुरुषजी ऊठ बोल देता है, ए जय त्यागरूप तिसरी जावना तथा क्रोध करनेका त्याग करे, क्योंकि जो पुरुष क्रोधके वश होगा, वो दूसरायोंके हूवे अणहूवे दूषण जरूर बोलेगा, इस वास्ते क्रोध त्यागरूप चौथी जावना तथा प्रथम मनमें विचार कर लेवे, पीछेसे बोले क्यों कि जो विचार करे विना बोलेगा वो अवश्य ऊठ बोलेगा, इस वास्ते विचार पूर्वक बोलना ए पांचमी जावना ए दूसरे महाव्रतकी पांच जावना है अब तीसरे महाव्रतकी पांच जावना लिखते हैं ॥ २ लोक ॥ आलोच्य वग्रहयाञ्चा, जीह्णवग्रहयाचन ॥ एतावनमात्रमेवैत, दिव्यवग्रहधारण ॥ १ ॥ समानधार्मिकेज्यश्च, तथावग्रहयाचन ॥ अनुज्ञापि तथा नाम्ना, स नमस्तेयजावना ॥ २ ॥ अस्मार्थ - जिस मकानमें साधुने रहणा होवे, तो प्रथम उस मकानके स्वामीकी आज्ञा लैणी, घरका स्वामी यही है, असा जान कर आज्ञा लैणी, जे कर स्वामीकी आज्ञा विना रहे, तो चोरी लगे अरु रात्रिमें कदाचित् घरका स्वामी क्रोध करके साधुको बांहासे निकाल देवे, तब साधु रात्रिमें कहां जावे ? इत्यादि अनेक क्लेश उत्पन्न हो जाते हैं, इस वास्ते मकानके स्वामीकी आज्ञा ले कर उसके मकानमें रहना ए प्रथम जावना दूसरी जावना उपाश्रयके स्वामीकी बार बार आज्ञा लेनी, क्योंकि कदाचित् कोई साधु रोगी हो जावे, तब अंगल पुरीष भूत्र करनेकुं

जलर जगा चाहिये, गृहस्वामीकी आज्ञाके बिना जो उसके मकानमें मल सूत्र करे, तो चोरी लगे, इस वास्ते गृहस्वामीकी आज्ञा बार बार लेनी, ए दूसरी जावना तीसरी जावना उपाश्रयकी नूमिकाकी मर्यादा कर लेवे, कि इतनी जगा तक हमारेकू तुमारी आज्ञा रही, जे कर मर्यादा न कर लेवे तो अधिक नूमिकाकू काममें लानेसे चोरी लगती है, इस वास्ते प्रथमही मर्यादा कर लेवे, ए तीसरी जावना तथा चौथी जो साधु समान धर्मी होवे, अरु वो किस जगामें प्रथम उतर रहा है, पीछे दूसरे साधु जो उस मकानमें उतरा चाहे, तो प्रथम साधुकी आज्ञा बिना न रहना, जे कर प्रथम साधुकी आज्ञा न लेवे, तो स्वधर्मी अदत्त लागे, ए चौथी जावना पाचमी जावना साधु जो कुठ अन्न, पान, वस्त्र, पात्र, शिष्यादिक लेवे, सो सर्व गुरुकी आज्ञासे लेवे, जे कर गुरुकी आज्ञा बिना कोइ वस्तु ले लेवे, तो गुरु अदत्त लागे, ए पाचमी जावना ए तिसरे महाव्रतकी पांच जावना हैं

अथ चौथे महाव्रतकी पांच जावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ स्त्रीपठपण्ड  
मद्देशमा, सनकुम्भयातरोक्लनात् ॥ सरागस्त्रीकथात्यागात्, प्राग्गतस्मृतिव  
र्जनात् ॥ १ ॥ स्त्रीरम्यांगेक्षणस्वांग, सस्कारपरिवर्जनात् ॥ प्रणीतात्य  
शनत्यागात्, ब्रह्मचर्यं तु जावयेत् ॥ २ ॥ अस्यार्थ — जिस घरमें अथवा  
आसनमें अथवा नीतके अतरे देवी अथवा मनुष्यकी स्त्री बसे, ( रहे, )  
अथवा देवांगनाकी वा स्त्रीकी लेप, चित्राम प्रमुखकी मूर्ति होवे, तथा पंड  
नपुंसक तीसरे वेद वाला जिस घरमें रहता होवे, तथा पण्ड, गाय, महि  
पी, घोड़ी, बकरी, जेड प्रमुख तिर्थच स्त्री जिस मकानमें रहती होवे,  
तथा जिस मकानमें काम सेवन करती स्त्रीका शब्द तथा दूसरा कोइ मोह  
वत्पन्न करनेका शब्द, तथा आनूषणोंका शब्द, सुणाइ देवे, इन पूर्वोक्त  
विशेषणों सयुक्त मकानमें तथा एक नीतके अतरेमें साधु न रहे, ए प्रथम  
जावना तथा सराग ( प्रेम सहित ) स्त्रीके साथ वार्त्तालाप न करे, अथवा  
सराग स्त्रीके साथ वार्त्ता न करे तथा स्त्रीके देश, जाति, कुल, वेष, नापा,  
स्नेह, शृंगार प्रमुखकी कथा सर्वथा न करे, क्योंकि सराग स्त्रीके साथ जो  
पुरुष स्नेह सहित कामशास्त्र प्रमुखकी कथा करेगा, सो अवश्य विकार  
जावकू प्राप्त होगा, इस वास्ते सराग स्त्रीसे कथा न करे, ए दूसरी जावना  
तथा दीक्षा लेनेसे पहिले गृहस्थावस्थामें जो स्त्रीके साथ कामक्रीडा, वद

नञ्चवन. चोरासी कामासनमें विषयमेव प्रमुख क्रीडा करी होंगे, तोमका फेर मनमें कवेइ न स्मरण करणा, क्योंकि पूर्ण क्रीडास्मरणरूप इनमें का माग्नि फिर धुखने लग जाती है, ए तीसरी जावना. तथा अग्निप्रेकी जनांकु देखने, अरु बांठने योग्य स्त्रीके अंग जो मुख, नयन, स्तन, जयन, दोठ प्र मुख तिनोको सराग दृष्टिसे देखना तथा अर्ध विस्मय रसके पुरमें मग्न हो कर आंख फाड़ देखना बर्जे, परंतु जो राग रहित दृष्टि करी कदाचित् देखने में आ जावे, तो दोष नहीं. तथा अर्ध शरीरक संस्कार करणा, स्नान, विलेपण, धूप करणा, नख, दांत, केश, तमा रचना, कंगी सुरमामं विज्ञा क रणा, इत्यादिक शरीरसंस्कार न करे, क्योंकि स्त्रीके रमणिक अंग देखनेमें जैसे दीप शिखामें पतंगीया जल जाता है, ऐसे कामी पुरुषकी कामाग्निमें जल जाता है, क्यों कि शरीर जो है, सो सर्व अशुचिका मूल है, इसका जो गृणार करणा है, सो अज्ञानता है, जैसे मज्जिन वस्तुकी कोयलीके ठपर जे कर चदन घस कर जगा दिया, तो क्या वह कोयली सुगंधित हो जाती है ? यह शरीर अतमें मशानकी एक मुछी राखकी बन जायेगी, फिर किस वास्ते इस शरीरकी शोभा करणेमें व्यर्थ काल खोवे है ? ए चौथी जावना तथा प्रणीत, स्निग्ध, मधुरादि रस, इनका अधिक आहार करणा, तथा रुखा नोजनकी कठ उदर पूर कर खाना, ए दोनोंही प्रकारके आहारका त्याग करे, क्योंकि जो पुरुष, निरंतर स्निग्ध, मधुर रसका आहार करेगा, उसके जरूर धातुपुष्ट होवेगी, तब तो वेदोदय करी अवश्य कुशील सेवेगा अरु रुद्ध निष्कृतिका नोजनकी प्रमाणसे अधिक नहीं करणा, क्योंकि रुद्ध नोजन अधिक करणेसे काम उत्पन्न हो जाता है, अरु अधिक खानेसे शरीरक पोडा उत्पन्न हो जाती है, विशुचिका प्रमुख रोग हो जाते हैं, इस वास्ते प्रमाणसे अधिक नोजनकी न करे पूर्व पुरुषोंने खानेकी असे मर्यादा लिखी है कि ॥ यत ॥ अर्द्धमसणस्त सव, जणस्त कुक्का दवस्त वो जागे ॥ वाउपविअरणठा, उक्काय कणग कुक्का ॥ १ ॥ अस्य तात्पर्यार्थ - बुद्धि करिकें अर्ध उदरके ठ जाग करणे, तिनोमें तीन जाग तो अन्न से चरने, अरु दो जागमें पानी, एक जाग खाती रखणा, जिसे सुखें सुखें उष्वास नि श्वास आता रहे, ए पांचमी जावना ए चौथे व्रतकी पांच जावना अब पांचमे महाव्रतकी पांच जावना लिखते है ॥ श्लोक ॥ स्पर्श रसे च

गंधे च, रूपे शब्दे च हारिणि ॥ पंच सुहृदिष्यार्थेषु, गाढं गाढ्यस्य वर्जनं ॥ १ ॥ एतेष्वेवामनोज्ञेषु, सर्वथा षेपवर्जनं ॥ अकिंचन्यव्रतस्यैव, जावना पंच कीर्तिता ॥ २ ॥ युग्म ॥ अस्यार्थ—स्पर्शादिक मनोहर पांच विषयोंमें जो अत्यंत गृहिपणा सो वर्जनां, अरु स्पर्शादिक अमनोज्ञ पांच विषयोंमें षेप न करणां ए पांचमे महाव्रतकी पांच जावना एव पूर्वोक्त पांच महाव्रत, अरु पञ्चीश जावना जिसमें होवे, सो गुरु तथा चरणसित्तरी अरु करणसित्तरी करके सयुक्त होवे, सो जैनमतमें गुरु है

अथ चरण सित्तरीके सित्तर जेद लिखते हैं ॥ गाथा ॥ वय समण धम्मसज्जम, वेयावच्च च वज्ज गुत्तीउ ॥ नाणाइ तिय तव को, ह निग्गहाइइ चरणमेयं ॥ १ ॥ अर्थ—व्रत पांच प्रकारका, अमणधर्म दश प्रकारका, सयम सत्तर प्रकारका, वेयावृत्त्य दश प्रकारका, ब्रह्मचर्य गुप्ति, नव प्रकारकी, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, ए तीन प्रकारका, तप वार प्रकारका, निग्रह क्रोधादिक चार प्रकारका, ए सर्व सित्तर द्रुये, तीनमेंसूं पांच व्रतका स्वरूप तो उपर जावना सयुक्त लिख आये हैं, सो जाननां

तथा अमणधर्म दश प्रकारका लिखीयें हैं ॥ गाथा ॥ खतिय मद्दव ज्जव, मुत्ती तव सज्जमे य बोधव्वा ॥ सच्च सोयं आकिं, चण च वज्ज च जइधम्मो ॥ १ ॥ अस्यार्थ—(१) क्हाति (कृमा) करणी चाहो सामर्थ्य होवे, चाहो असामर्थ्य होवे, परंतु दूसरेके दुर्वचन सहनेके जो परिणाम मनोवृत्ति है, तिसका नाम कृमा कहते हैं, सर्वथा क्रोधका त्याग कृमा, (२) कोमल कहीयें अहंकार रहित, तिसका जो जाव, वा कर्म सो कहियें मार्दव, नीचा हो कर अजिमान रहित होणां, (३) रुद्ध कहियें मन, वचन, काया करी सरल, तिसका जो जाव, वा कर्म, सो आर्क्य, मन वचन कायाकी कुटिलताइसे रहित, (४) मोचन मुक्ति बाहिर, अवर, तृष्णाका त्याग लोभका त्याग, (५) रसादिक धातु अथवा अष्ट प्रकार कर्म, जिस करके तपे सो तप अनशनादि बारा प्रकारका, (६) सयम, आश्रवकी त्यागवृत्ति, (७) सत्य, मृषावाद विरति जूतका त्याग, ( ८ ) शौच, अपणी सयमवृत्तिमें कोइ कलंक न लगावनां, ( ९ ) नहो है किंचित् मात्र इच्छ जिसके पास सो आर्किचन, ( १० ) नव ब्रह्मचर्यकी गुप्ति, ए दश प्रकारका यतिधर्म, तथा मर्तांतरमें दश प्रकारका



यतिधर्मं त्रैसेनी कहते हैं ॥ गाथा ॥ संती मुत्तो अङ्का, मरय तव लाषे  
तवे चेव ॥ सजम वियोग किंघण, बोधये धनजेरेय ॥ १ ॥ अस्यार्थः सुगम ॥

अथ सत्तर जेद सयमके जियते हैं ॥ गाथा ॥ पचासवारिमण, पं  
चिदिय निग्गहो कसाय जउ ॥ दंमत्तयस्स विरु, सत्तरसद्दा सजमो होइ  
॥ १ ॥ अथवा ॥ पुढवि दग अणणि मारुय, उणसइ वि ति यठ पणिवि  
अजीवा ॥ पढु प्पेहपमयण, परिवरण मणो वई काए ॥ २ ॥ इनोका अर्थ -  
उत्पन्न करीये कर्म इनो करके सो आश्रया सो आश्रव पांच प्रकारका  
है, जो पांच महाव्रतोंमें त्यागने जिये हैं (१) हिंसा, (२) जूठ, (३)  
चोरी, (४) अन्नह्न, (५) परिग्रह, ए पांच आश्रवका त्याग करे, तथा  
स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु अरु श्रोत्र, ए पांचो इन्द्रिया स्पर्शादिक पांचा  
विषयोंविषे लपटपणा त्यागे, तथा क्रोध, मान, माया अरु लोभ, इन  
चारों कपायका जीतना इन चारोंके उदय होयाकू नि फल करणा, अरु जो  
नहीं उदय आये उनकू उत्पन्न न करणा तथा दमिये चारित्र धर्मरूप ज  
दमी जीव पासों इनो करके सो खोटा मन, खोटा वचन, खोटी काया, इन  
तीनों दमकी विरति करणी एव सत्तर जेद करिकें सयम है, अथवा प्रकारा  
तर करके सत्तर जेदसें सयम कहते हैं, (१) पृथिवी, (२) उदक, (३) अग्नि,  
(४) पवन, (५) वनस्पति, (६) ईन्द्रियजीव, (७) अर्ण्यजीव, (८) चतु  
रिन्द्रिय जीव, (९) पचैन्द्रिय जीव, इन पूर्वोक्त नवविध जीवोंकू मन, वच  
न, अरु काया करी करणा, करावणा, अरु करणे वालेकू जला जानना, सरंज  
समारजासरंज, इन नव विकल्पोसें पूर्वोक्त नवविध जीवोंकी हिंसा त्यागनी,  
ए नव प्रकारका सयम जो प्राणीके प्राणकू विनाशनेका सकल्प करणा,  
इसका नाम सरंज है, जीवके प्राणकू जो परिताप करना, (पीडा देनी) इ  
सका नाम समारंज है, तथा जीवोंका प्राणका जो विध्वंस करना, इसका  
नाम आरंज है, तथा (१०) अजीव सयम जिस अजीव वस्तुके राख  
णेसें संयम कलकित हो जावे, जैसें मांस, मदिरा, सुवर्ण प्रमुख सर्व  
धातु, मोति आदिक सर्व रत्न, अकुशादिक सर्व शस्त्र, इत्यादिक अजीवके  
रखनेसें सयममें कलक होवे, सो अजीव वस्तु न रखणी, तथा अजीव  
रूप जो पुस्तक, अरु शरीरोपकरणादि, सो छुखमावि बोधसें तैसी  
बुद्धि नहीं, आशु लक्ष्मी नहीं, अक्षा, संवेग, अयम, बल, ए सर्व हीन हो

गये हैं, विद्या कंठ रहती नहीं, इस वास्ते इस कालमें जो पुस्तक रखा, सो प्रतिलेखणा, प्रमार्जनापूर्वक यतनसें राखणा, ए वसवा अजीव सयम ( ११ ) प्रेक्षासयम सो नेत्रोंसें देख करके बीज, हरि प्रसुख जीवों करी रहित स्थानमें सोना, बैठणा, चलना, इत्यादिकके करणोंसें प्रेक्षासयम तथा ( १२ ) उपेक्षासयम सो गृहस्थकू पापका व्यापार करतेकू उपेक्षां सो (उपदेश देणा) कि यह काम तुम ऐसें करो, ऐसें जो गृहस्थकू कहना, सो उपेक्षा सयम, अथवा केइ साधु सयमसें चलायमान हो गया होवे, उसकू हित करके जो उपदेश करना, सो प्रेक्षासयम, तथा पार्श्वस्थादिक जो साधुकी समाचारीसें नृष्ट हो गये हैं, अरु वो नृष्ट साधु कोइ अनुचित काम कर रहा है, अरु साधुजी अपणे मनमें जान जावे जो इसकू उपदेश करुगा, तो इसने मानना नहीं है, इस वास्ते जो औदासीन्य रहणा, उसका नाम उपेक्षासयम, ( १३ ) प्रमार्जन सयम, सो देखे दुये स्थानमें वस्त्र पात्रादिक जो लेने, वा रखने पड़े, तब प्रथम रजोहरणादिकसें प्रमार्जन करके पीठेसें लेना, रखना, सोना, बैठना करे, तब प्रमार्जना सयम, तथा ( १४ ) जात, पाणी, वस्त्र, पात्रादिक जिसमें जीव पड़ गये होवे, तब तिनकू जीवों रहित छुड़-जूमिकामें शास्त्रोक्त विधि कर जो परिष्ठापना करे, सो परिष्ठापनासयम, तथा ( १५ ) मनमें झोढ़, ईर्ष्या, अजिमान, तो न करणा, अरु धर्मध्यानादिकमें मन प्रवृत्त करणा, सो मन सयम तथा ( १६ ) हिंसाकारी कठोर वचनकों त्यागना, अरु छान वचनमें प्रवृत्त होना, सो वचनसयम, तथा ( १७ ) गमनागमन करणोंमें अरु अवश्यकरणों योग्य कामोंमें उपयोग पूर्वक जो कायाकू प्रवृत्तावे, सो कायासयम, ए सत्तरजेद सयमके जानना

अथ वैज्यावृत्तके दश जेद कहते हैं ॥ गाथा ॥ आचरिय उवधाए, तवस्ति सेहे गिलाण सादुसु ॥ समणोन्न सघ कुल गण, वेयावच्च हवइ वसहा ॥ १ ॥ अर्थ — (१) ज्ञानादिक पांच आचारकू जो पाले, सो आचार्य, तथा सेवीये जो, सो आचार्य तथा ( २ ) जिनके समीप आ कर पढीये, सो उपाध्याय, तथा ( ३ ) तप जो करे, सो तपस्वी, तथा ( ४ ) जिसने न वाही साधुपणा लीया है, सो शिष्य, तथा ( ५ ) ज्वरादि रोग वाला जो साधु सो ग्लान, तथा ( ६ ) जो धर्मसें भिगतेकू स्थिर करे, सो स्थविर, साधु

तथा (७) जिस साधुकी अथवा समान एक समाचारी होते, सो समनोक्त, तथा (८) साधु, साध्वी, श्रावक श्रु श्राविका इन चारोंको जो समुदाय सो सघ, तथा (९) बहुते एक सरिगे गघोहा सजातिपोंका जो समूह, सो कुल चडादिक जानना. तथा (१०) एक आचार्यकी वाचनागले साधुओंको समूह, सो गण गघ कौटिकादिक इन पूर्वोक्त आचार्यादिक दसोंका अन्न, पाणी, वस्त्र, पात्र, मकान, पीठ, फलक, संस्तारक प्रमुख धर्म साधनों करके जो साहाय्य करणां, शृश्रूपा करणी नेपज करणी, उजाड (जंगल) में रोग उत्पन्न होनेसे. तथा नाना प्रकारके उपसर्गमें पालना करणी, इसका नाम वैद्यावृत्त है.

अथ जो शीलवान् साधु होवे, सो नव वाड सहित शीत्र पाले, उनकू नवविध ब्रह्मचर्यकी गुप्ति कहते हैं, सो लिखते हैं ॥ गायत्रा ॥ वसहि कह नि तिदिदिय, कुमूतर पुष्कोलिय पणीए ॥ अश्मायाहार विनू, सणाइ नव वन गुत्तीउ ॥ १ ॥ अर्थ - १ (वसहि के०) वस्ती सो जो ब्रह्मचारी साधु होवे सो स्त्री, पशु, पमक इनों करी, सयुक्त जो वस्ती होवे, तहां ब्रह्मचारी न रहे, तिनमें सू प्रथम तो स्त्री जो है, सो दो तरेंकी हैं, एक तो देवी, दूसरी मनुष्यणी, इन दोनोंके दो दो जेद हैं, एक तो अस्सल, और दूसरी इनकी मूर्ति, वा चित्रामकी मूर्ति, यह दोनों प्रकारकी स्त्री जहां न होवे, तिस वस्तिमें रहे, तथा पशु जो तिर्यचिणी, गौ, महिषी, घोड़ी, बकरी, जेह प्रमुख जिस वस्ति में नही रहे, तहां रहे, तथा पमक सो नपुसक, तीसरे वेद वाला, महा मोहवाला काम करनेद्वारा, स्त्री श्रु पुरुष, इन दोनोंके साथ विषय सेवने वाला, जिस वस्तिमें रहता होवे, तहां ब्रह्मचारी न रहे, क्योंकि इन तीनों करी सयुक्त वस्तिमें रहते थके उनोंकी कामविकारकी चेष्टा देखनेसे, ब्रह्मचारीके मनमें विकार उत्पन्न होनेसे ब्रह्मचर्यकू बाधा होती है, जैसे मूषा श्रु विष्ठी दोनु एक जगे रहे, तो मूषेकू सुख नहीं, तैसेही इन तीनों सयुक्त वस्तिमें रहणेसे शीलकू उपश्रव होवे, ए प्रथम ब्रह्मचर्य गुप्ति

२ तथा (कह के०) कथा सो केवल स्त्रीयोहीकू तथा एकली स्त्रीकू धर्मवेष ना बचनका प्रबधरूप कथा न कहे, तथा स्त्रीकी कथा न करे ॥ यथा ॥ कर्णाटी सुरतोपचारचतुरा, लाटी विदग्धा प्रिया ॥ इत्यादिक कथा न करे, क्योंकि यह कथा जो है, सो राग उत्पन्न करनेकी हेतु है, जो स्त्रीके वेष, जाति,

कुल, वेप, जापा, गति, ( चलनां ) विभ्रम, इगित, हास्य, लीला, कटाक्ष स्नेह, रति, कलह, शृंगार, इत्यादिक जो विषयरसकी पोखने वाली कारिनीकी कथा है, सो कदेइ न करे जे कर करे, तो अवश्य मुनिकानी मन विकारकू प्राप्त हो जावे ए दूसरी ब्रह्मचर्यकी गुति है

३ तथा (निसिञ्ज के०) आसन सो स्त्रीयोंके साथ एक आसन उपर न उठनां, तथा जिस जगसे स्त्री उठी होवे, उस आसन वा स्थानमें दो घड़ी तक साधु न बैठे, क्यों कि उस जगे तत्काल बैठनेसे स्त्रीकी स्मृति होती है औ स्त्रीके बैठनेसे शय्या वा आसन, मैलसें मलिन होता, स्त्रीके स्पर्शवा आसनादि स्पर्शसें विकार उत्पन्न हो जाता है, ए तीसरी ब्रह्मचर्यगुति है

४ तथा (इन्द्रिय के०) इन्द्रिय सो अशिवेकी लोकोकू देखने योग्य, स्त्रीयों अंगोपांग जो नाक, स्तन, जघन प्रमुख है, उसकू ब्रह्मचारी साधु अपूर्वरस मग्न हो कर, नेत्र फाड़ कर, न देखे, कदाचित् दृष्टि पड़ जाय, तो पीठसें अक्षर चितवनाजी न करे, जैसे कि बड़े सुंदर लोचन है। नासिका बहुत सीधे हैं। बाँठने योग्य दोनों कुच हैं। जे कर स्त्रीके पूर्वोक्त अंगोपांग एकाग्र रस मग्न हो कर चितवना करे, तो अवश्य मन मोहें, तथा विकारकू प्राप्त होवे

५ तथा (कुम्भतर के०) कुम्भघातर सो जिन नीतके, तटोके, कनातवे अतर बीचमें होनेसें स्त्री पुरुष, मैथुन करते होवें, अरु उनका शब्द सुणा देवे, तहां साधु ब्रह्मचारी न रहे ए पांचमी गुति

६ तथा (पुत्रकीलिय के०) पूर्वक्रीडा सो पूर्वगृहस्थ अवस्थामें स्त्रीयों साथ जो विषय जोग क्रीडा करी होवे, तीसकू स्मरण न करे, जे कर कंठ तो कामाग्नि प्रज्ज्वलित हो जाता है, ए छठी गुति

७ तथा (पणीय के०) प्रणीत सो अति चीकणा, मीठा, दूध, दधि। मुख अति धातुपुष्ट करनेवाला आहार निरंतर न करे, जे कर करे, त वीर्यकी वृद्धि होनेसें अवश्य वेदोप्य होगा, फेर जरूर विषय सेवेगा क्योंकि जो बोदी कोषलीमें बहुत रूपिये जरेगा, तो जरूर फाट जायगा

८ तथा (अश्मायाहार के०) अतिमात्राहार, सो रूखी जिह्वाजी प्रमणसें अधिक न खावे, क्यों कि अधिक खानेसें विकार हो जाता है, अशरीरकू पीडा विशूचिकादिक होनेका कारण है, ए आठमी गुति

९ तथा (विनूतणाइ के०) विनूतणादि शरीरकी विनूपा सो स्नान, वि

पन, धूप, नख, दांत, केश, इनकी सुवरताइसे वास्ते समारणां, तथा तिलक, सुरमा, कङ्कज, त्रिजूपाके वास्ते नेत्रांमे गेरनां, तथा जाग्रमे पप मांजने, साबु, तेल प्रमुख मसज कर गम पाणीमे सुकोमजताइसे वास्त धोना, इत्यादिक शरीरकी त्रिजूपा न करे, ए नयमी ब्रह्मचर्यगुति. ए नय प्रकारकी गुति सो ब्रह्मचरतकी रक्षा रूप नय वाट है

अथ ज्ञानादि तीन कहैते है, उसमे यथार्थ वस्तुका जो बोधक सो ज्ञान, सो ज्ञानावरणीय कर्मके क्षय तथा क्षयोपशमके होनेसे जो उत्पन्न हुआ है बोध, तिसका हेतु जो दादगांग या दादगोपांग, तथा प्रकीर्णक उत्तराध्ययनादिक, सो सर्व ज्ञान कहिये. तथा दूसरा दर्शन सो १ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आश्रय, ६ सवर, ७ निज्जरा, ८ वध, ९ मोक्ष, इन जीवादिक नव तत्त्वका जो स्वरूप, तिनमे श्रद्धा ( रुचि ) करनी, जै सेकी ए नव तत्त्व तथ्य है, मिथ्या नहीं, ऐसी तत्त्वरुचि तिसका नाम दर्श न है, तथा तिसरा सर्व पापके व्यापारोंसे ज्ञान, अज्ञान पूर्वक जो निवृत्त होना, इसका नाम चारित्र है, इस चारित्रकेजी दो चेद है, एक देशविरतिचारित्र, दूसरा सर्व विरतिचारित्र, उसमे देशविरति चारित्र तो जहा गृहाश्रम धर्मका स्वरूप लिखेंगे, तहासे जान लेना, अरु जो सर्वविरति चारित्र है, तिसकाही स्वरूप, इसी गुरुतत्त्वमें लिखने लग रहे है, ए ज्ञानादिक तीन जाननां.

अथ वारा प्रकारका तप लिखते है ॥ गाथा ॥ अणसण मूणोयस्सिा, विचीसखेवणरसच्चाठ ॥ कायकलेसो सली, एया य वज्झो तवो होइ ॥ १ ॥ पायच्चित्त विणठ, वेयावच्च तहेव सथाठ ॥ ज्ञाण उस्सग्गोविय, अञ्जित रठ तवो होइ ॥ २ ॥ इनका अर्थ - १ व्रत करणां, २ थोडा खाणां, ३ नाना प्रकारके अनियम करणे, ४ रस जो दूध, वही, घृत, तैल, मीठा पक्वान्न, इनोका त्याग करनां, ५ कायक्लेश, वीरासन, दमासन आदिक करी अनेक तरेंका कायक्लेश करनां, ६ पांचो इन्द्रियोंकू अपणे अपणे विष योंसें रोकनां, ए ठ प्रकारका बाहिर तप है, १ जो कुछ अयोग्य काम करा अरु पीछेसें गुरुके आगे आपणा पाप जैसे करा था, वैसेही प्रगट पणे कह ना, आगेकू फेर वो पाप न करनां, अरु पूर्वे जो करा है, उसकी निवृत्तिके वास्ते गुरु पासों यथा योग्य दंड लेनां, इसका नाम प्रायश्चित्त तप है, तथा २ अपनेसें गुणाधिककी विनय करनी, तथा ३ वैय्यावृत्त नक्ति करनी,

तथा ४ एक आप दूसरायोंकों पढाना, दूसरा सशय उत्पन्न हुआ गुरुकुं पृ  
ठना, तीसरा अपने सीखे हुयेकूं वारवार उच्चारन करना, चौथा जो कुछ  
पढा है, उसके तात्पर्यकू एकाग्रचित्त करकें चितनां, इसका नामश्चतुप्रेक्षा  
है पांचमी धर्मकथा करनी, ए पांच प्रकारका स्वाध्याय तप है, तथा ५  
एक आर्चध्यान, दूसरा रौद्रध्यान, तीसरा धर्मध्यान, चौथा शुक्लध्यान, इन  
चारोंमेंसू आर्चध्यान अरु रौद्रध्यान, ए तो दोनो त्यागने, औ धर्मध्यान  
अरु शुक्लध्यान, ए दोनो अगीकार करने, ए ध्यानतप तथा ६ सर्व उपा  
धियोंकों त्याग देनां सो व्युत्सर्ग तप है, ए ७ प्रकारका अन्यतर तप है,  
ए सर्व मिल कर बारा प्रकारका तप हैं

क्रोध, मान, माया, अरु लोभ, इन चारोका नियह करना यह पांच  
व्रत, दश भ्रमणधर्म, सत्तर प्रकारका सयम, दश प्रकारका वैय्यावृत्त, नव  
प्रकारकी ब्रह्मचर्यगुप्ति, तीन ज्ञान, दर्शन, चारित्र, वारां प्रकारका तप,  
अरु क्रोधादिक चारका नियह, ए सर्व मिल कर सत्तर जेद चारित्रके हैं,  
इस वास्ते इनकू चरणसित्तरी कहते हैं

अथ करणसित्तरीके जेद लिखते हैं ॥ गाथा ॥ पिम्विसोही समिई, ना  
वण पडिमाय इदिय निरोहो ॥ पडिलेहण गुत्तीउ, अजिगह चव करण  
तु ॥ १ ॥ इसका अर्थ —पिम्विच्छुद्धि सो एक आहार, दूसरा उपाश्रय,  
तीसरा वस्त्र, चौथा पात्र, ए चार वस्तुकू साधु बैतालीश दूषण करकें र  
हित लेवे, तिसका नाम पिम्विच्छुद्धि है बैतालीश दूषणका जो पूरा स्व  
रूप देखनां होवे, तब तो पिम्विनिर्युक्ति ग्रंथ नष्टबाहुस्वामिकृत उसकी  
मलयगिरिसूरि कृत टीका सात हजार श्लोक प्रमाण है, सो देखनी  
तथा पिम्विच्छुद्धि ग्रंथ जिनवज्जनसूरिकृत औ उसकी जिनपतिसूरिकृत  
टीकासैं जान लेना, तथा प्रवचनसारोद्धार श्रीनेमिचन्द्रसूरिकृतसूत्र,  
तथा उसकी सिद्धसेनसूरिकृतटीकासैं जान लेनां, तथा श्रीहेमचन्द्र सूरि  
कृत योग शास्त्रसैं जान लेनां

अथ समिई सो पांच समिति, उसका स्वरूप लिखते हैं प्रथम ईयां  
समिति, सो चलनेका नाम ईयां कहते हैं, अरु समिति कहियें तम्यक्  
आगमके अनुसार जो प्रवृत्ति चेष्टा करणी, सो समिति कहियें त्रस स्या  
वर जीवोंकू अनयदान वाता जो मुनि है, तिस मुनिकू अवश्य प्रयोज

नके वास्ते चलना पड़े, तब किस रीतिसे चलना? प्रथम तो प्रमिद रस्तेमें चलना. जो रस्ता सूर्यकी किरणोंमें प्रतप्त होवे, प्राणिक जीव रहित होवे. जिसमें स्त्री पुरुषका संपर्क न होवे, जीवोंकी रक्षा निमित्त अथवा अपने शरीरकी रक्षा निमित्त पणके अंगुष्ठमें ले कर चार हाथ प्रमाण जूमिका आगेमें देख कर चलना, इसका नाम ईर्ष्यामिति है. इस रीतिसे जो साधु चले, तथा दूसरा कोइ काम करे, तिस काममें कदाचित् कोइ जीव भरनी जावे, तोनी साधुका पाप नहीं लगता, क्योंकि उसका उपयोग बहुत शुद्ध है. यह प्रथम ईर्ष्यामिति. तथा पाप सहित जाया, तथा कंगूर जाया, जैसे केतू धूर्त है, कामी है, राक्षस है, चार्वाक प्रमुखके कहे शब्दोंको न कहे, जो शब्द, जगत्में निदैनिक होवे, सो न बोले, परंतु सुखदाइ बोलने में थोड़ा बहुत प्रयोजनोंका साधनेवाला सदैव रहित असा वचन बोले, सो दूसरी जापासमिति तथा बैतालीश दूषण रहित आहारादिक ग्रहण करे, सो तीसरी एषणासमिति, तथा आसन, सत्तारक, पीठ, फज्जग, वस्त्र, पात्र, दमादिकको नेत्रोंसे देख कर उपयोग पूर्वक लेना, धरु रखना, करना, सो चौथी आदाननिक्षेप समिति, तथा पुरीष, प्रश्रवण, शूक, नाकका श्लेष्म, शरीरमज वस्त्र, अन्न, पानी, जो शरीरका अनुपकारी होवे, इन सबकु जीव रहित जूमिकामें स्थापन करना, सो पांचमी परिस्थापना समिति, यह पांच समिति कही

अथ बार जावना लिखते हैं प्रथम अनित्यजावना, दूसरी अशरण जावना, तीसरी ससारजावना, चौथी एकत्वजावना, पांचमी अन्यत्वजावना, बछी अष्टचित्त्वजावना, सातमी आश्रवजावना, आठमी सवरजावना, नवमी निर्ज्वराजावना, दशमी लोकस्वजावना, अग्यारमी बोधिज्ज्वलन जावना, बारमी धर्मका कथन करने वाला, अर्हन् है यह बारा जावना जिस तरेसे जावने योग्य रात दिनमें है, तैसें अन्यास करना, इन बारा जावनार्योंका किंचित् स्वरूप लिखते हैं,

१ अनित्यजावना. सो जिनका वज्रकी तरें सार अरु कठिन शरीर था, वोनी अनित्य रूप राक्षसेने जह्मण कर लीये, तो फेर केलेके गर्नकी तरें नि सार जो जीवोंका शरीर है, सो यह अनित्य रूप राक्षससें कैसें बचेंगे? तथा लोक, बिछीकी तरें आनदित हो कर, विषय सुखका

दूधकी तरें स्वाद लेते है, परतु लाठीकी मारकूं नहीं देखते है, नावार्थ:-  
विषयसुख भोग कर आनंद तो मानते है, परतु जन्मांतरमें नरकपतन  
रूप सकटसैं नहीं मरते है, तथा जीवोंका शरीर तो पाणीके बुल बुल्लेकी  
तरें है, अरु जीवोंका जो जीवित है, सो ध्वजाकी तरें चंचल है, तथा  
लावण्य, स्त्री, परिवार, आंखकी पापण, (जांफण) की तरें चंचल है, अ  
रु यौवन जो है, सो हाथीके कानकी तरें चंचल है, तथा स्वामीपणा  
जो है, सो स्वप्रश्रेणीकी तरें है, अरु लक्ष्मी जो है सो चपला (बीजली)  
की तरें चपल है, इसी तरें सर्व पदार्थोंकू अनित्य पणा विचारता प्यारा  
पुत्रादिकनी मर जाये, तोजी अपणे मनमें शोच न करे, तथा जो मूर्ख  
जीव सर्व नावकू नित्य माने है, वो जीण पत्रोकी जोंपढीके जग दोनोंसैं  
रात दिन रुदन करता है, तिस वास्ते तृष्णाका नाश करकें ममत्व रहित  
शुद्ध बुद्धि वाला जीव, अनित्य नावना नावे ॥ इति प्रथम नावना ॥ १ ॥

१ दूसरी अशरण नावनाका स्वरूप कहते हैं पिता, माता, पुत्र, नार्या,  
प्रमुखके आगें बहुत आधि व्याधिके समूह रूप शृखलामें बधा हुये रुदन  
करते हुयेकू कर्मरूप योद्धोंमें यमके (कालके) मुखमें प्रक्षेप करता थकां ब  
डा डख है, जो लोक शरण रहित अनाथ है, वे क्या करेंगे ? तथा  
नाना प्रकारके शास्त्र विषयोंकू जो जानते हैं, तथा नाना प्रकारके मंत्र  
यंत्रोकी क्रिया जो जानते है तथा जो ज्योतिषविद्याकू जानते हैं, तथा  
जो नाना प्रकारकी औपधि, रसायन प्रमुख वैद्यक क्रियाओंमें कुशल  
हैं, ए सर्व विद्यावानोंकी क्रिया कालके आगें कुठनी करनेकू समर्थ नहीं  
है, तथा नाना प्रकारके शस्त्रों वाले उद्धटजोद्धोंओंकी सेना करकें परिवे  
ष्टितनी है, नाना प्रकारके मदजर हाथियोंकी वाढजी है ऐसे इष्ट, वासु  
देव, चक्रवर्ती सरीखे बलवान्नी कालके घरमें खेंचे हुये चले जाते हैं,  
बडा डख है कि जो प्राणियोंकू कोइनी त्राण नहीं तथा जो मेरुका दम  
अरु पृथ्वीका ठत्र करनेकू समर्थ थें, अरु थोढानी जिनकू क्लेश नहीं था,  
ऐसैं अतन्तबली तीर्थकरनी लोकोकू कालसैं बचानेकू समर्थ नहीं, तो फेर  
दूसरा कौनसा समर्थ है ? स्त्री, मित्र, पुत्रादिकोंके स्नेहरूप नूतके दूर कर  
ए वास्ते शुद्धमति जीव अशरण नावना नावे ए दूसरी अशरण नावना.  
३ तीसरी ससार नावना कहते हैं. बुद्धिमान् तथा बुद्धि रहित, सुखी,



नके वास्ते चलनां पड़े, तब किम रीतिसे चलनां? प्रथम तो प्रमिष्ठ रस्तेमें चलनां, जो रस्ता सूर्यकी किरणोंमें प्रतप्त जाये, प्राशुक जीव रहित होवे, जिसमें स्त्री पुरुषका सघट्ट न होवे, जीवोंकी रक्षा निमित्त अथवा अपने शरीरकी रक्षा निमित्त पणके अग्रुवेम ले कर चार द्वाय प्रमाण नूमिका आगेमे देख कर चलनां, इसका नाम ईर्ष्यामिति है। ५म रीतिसे जो साधु चले, तथा दूसरा कोई काम करे, तिस काममें कदाचित् कोई ओष मरनी जाये, तोना साधुहू पाप नहीं लगता, क्योंकि उसका उपयोग बहुत छुन है, यह प्रथम ईर्ष्यामिति तथा पाप सहित जाया, तथा कंगोर जाया, जैसे के वृधूत है, कामी है, राक्षस है, चार्वाक प्रमुखके कहे शब्दोंको न कहे, जो शब्द, जगत्में निदनिक होये, सो न बोले, परहू सुखदाऽ बोलने मे थोड़ा बहुत प्रयोजनोंका साधनेवाजा सदैह रहित असा वचन बोले, सो दूसरी जापासमिति तथा वैतालेश दूषण रहित आहारादिक ग्रहण करे, सो तीसरी एषणासमिति, तथा आसन, सत्तारक, पीठ, फज्जग, वस्त्र, पात्र, दमादिकको नेत्रोंसे देख कर उपयोग पूर्वक लेनां, धरु रखनां, करना, सो चौथी आदाननिक्षेप समिति, तथा पुरीष, प्रश्रवण, शूक, नाकका श्लेष्म, शरीरमल वस्त्र, अन्न, पानी, जो शरीरका अनुपकारी होवे, इन सबकू जीव रहित नूमिकामे स्थापन करनां, सो पांचमी परिस्थापना समिति, यह पांच समिति कही।

अथ बार जावना लिखते हैं प्रथम अनित्यजावना, दूसरी अशरण जावना, तीसरी सत्तारजावना, चौथी एकत्वजावना, पांचमी अन्यत्वजावना, छठी अष्टचित्त्वजावना, सातमी आश्रवजावना, आठमी सवरजावना, नवमी निर्ज्जराजावना, दशमी लोकस्वजावजावना, अग्यारमी बोधिडुर्लभत्व जावना, बारमी धर्मका कथन करने वाला, अर्हन् है यह बारा जावना जिस तरेसे जावने योग्य रात दिनमें है, तैसें अन्यास करनां, इन बारां जावनायोंका किंचित् स्वरूप लिखते हैं,

१ अनित्यजावना. सो जिनका वज्रकी तरें सार अरु कठिन शरीर था, वोनी अनित्य रूप राक्षसेने नक्षूण कर लीये, तो फेर केलेके गर्नकी तरें नि सार जो जीवोंका शरीर है, सो यह अनित्य रूप राक्षसमें कैसें बचेंगे ? तथा लोक, बिछीकी तरें आनंदित हो कर, विषय सुखका

कुथा प्रमुख करके पीडित हो कर, आपणां आयु गीनमन हो कर पूर्ण करते हैं. यह देवगति कही. इस तरेसें मोक्षानिलापी पुरुष तीसरी संसार जावना जावे.

४ चोथी एकत्व जावना कहते हैं एकलाही जीव उत्पन्न होता है, अरु एकलाही मृत होता है, एकलाही कर्म करता है, अरु एकलाही तिनका फल नोगता है, तथा जो जीवने बहुत कष्ट करके धन उपाज्या है, सो धन, स्त्री, मित्र, पुत्र, नाइ प्रमुख खा जावेंगे अरु जो पाप कर्म उपाज्या है, उसका फल तो करने वाला जीव एकलाही नरक, तिर्यच गतिमें जाकर नोगता है, देखो यह कैसा आश्चर्य है! तथा यह जो जीव इस देहके वास्ते रात दिन फिरता है, अरु दीनपणा अवलबन करता है, धर्मसें ब्रष्ट होता है, अपने हितकू उगाता है, न्यायसें दूर होता है, सो देह इस आत्माके साथ एक पग तकनी परजवमें न चलेगी, तो फेर यह देह क्या करेगी? क्या साहाय्य देगी? अरु स्वजन जो है, सो अपने स्वार्थमें तत्पर हैं, तेरा वास्तवमें कोइनी नहीं. इस वास्ते हैं बुद्धिमान्! तू अपने हितके वास्ते धर्म करनेमें प्रयत्न कर. इस तरेसें चोथी एकत्व जावना जावे.

५ पाचमी अन्यत्वजावना कहते हैं, जीव इस देहकू ढोड कर परलो ककू जाता है, इस वास्ते इस शरीरसें जीव निन्न है, तो फिर नाना प्रकारका सुगंधि लेपन करना व्यर्थ है, इस वास्ते इस शरीरकू कोइ दमादिक करके मारे तो समता रस पीना चाहिये क्रोध न करना, जो पुरुष अन्यत्वजावना जावे, तिसकू शरीर, धन, पुत्रादिकके वियोग होनेसेनी शोक नहीं होता है. यह पांचमी अन्यत्व जावना कही.

६ छठी अशुचि जावना लिखते हैं जैसे लूणकी खानमें जो पदार्थ पडता है वो सर्व लूण हो जाता है, तैसेही इस कायामे जो कुछ आहार पडता है सो सर्व मलरूप हो जाता है, ऐसी यह काया अशुचि है, तथा यह काया लोहि, अरु शुक्र इन दोनोंके मिलनेसे गर्ज उत्पन्न होता है, जरा करके वेष्टित होता है, जो कुछ माता खाती है, उसीके रससें वो गर्ज, वृद्धिकू प्राप्त होता है, अरु स्थिर धातुयों करी पूर्ण है, ऐसी देह कू कौन बुद्धिमान् शुचि मानता है? तथा जो सुखाद, शुन गंध वाले मोठक, दही, दूध, इंदुरस, शालि, उडन, झाड़, पापड, अमृता, घेवर, आंव प्रमुख खाता है, सो तत्काल मलरूप हो जाता है, ऐसी अशुचि कायाकू

इ स्त्री, रूपवान् तथा कुरूपवान्, स्वामी तथा दास, प्यारा तथा वैरी, राजा तथा प्रजा, देवता, मनुष्य, तिर्यग्, नारक, इत्यादिक अनेक प्रकारके कर्मोंके वशसे सांग धार कर, इस संसार रूप अखाद्यमे यह जीव नाटक करता है, तथा अनेक पाप बांध करक महारंज, मांस नष्टण, मदिरापानादिक कारणों करक, महा अंधकार जहां कुछ नहीं दीपता, ऐसी नरकनृमिकामें जा करके पड़ता है, तिहा अग्न्येदन, अग्निमें वजनादि क्लेशरूप महा इ ख जो जीव रहते हैं, उन इ खोंकू केवजीनी कथन नदी कर मत्ता यह प्रथम नरकगति कही तथा ठज, जुगदिक कारणोंमें प्राणी तिर्यग गतिमें सिह, बाघ, हाथी, मृग, बैल, बकरे प्रमुखके शरीर धारण करता है अरु तिस तिर्यच गतिमें कुधा, तृषा, वध, वधन, ताडन, रोग, दृज प्रमुख में वदना इत्यादिक इ ख सदा जो जीव सहता है, वो इ ख कौन कद नेकू समर्थ है ? यह दूसरी तिर्यगति कही

तथा खाद्य, अखाद्य, विवेकशून्य, मनमें लज्जा नहीं, माता, बेटी, गमन करनेमें एक समान निष्कृता वस्त्रन है, तहां जो अनाय मनुष्य है, वोतो निरंतर जीवघात, मांस नष्टण, चोरी, परस्त्रीगमन प्रमुख कारणों करके बड़ा नारी पापकर्म महा इ खोंका देने वाला उत्पन्न करते है, तथा आर्यदेशमेंनी कृत्रिय, ब्राह्मण प्रमुख जो हैं, वेनी अज्ञान, दरिद्र, कष्ट, दौर्भाग्य, रोगादिक करके पीडित हैं दूसरोंका काम करणां, मानजग, अपमान प्रमुख अनेक इ ख निरंतर नोग रहे है, तथा अग्निवत् रक्त रंग है जिनका औसीयों सुइयों एक एक रोममें एकेक सूइ किसी जुवान पुरषके एक कालमें चोनेसे जैसा वसकू इ ख होवे तिस इ खमें आठ गुणा इ ख जीव स्त्रीके गर्भमें जब रहता है तब पाता है, इस इ खसें अनंत गुणां इ ख जन्म समय होते है, तथा बाल अवस्थामें भूत्र, पुरीष, धूलिमें लोटनां, अज्ञानी पणा, जगत्की निदा, यौवनमें धन अर्जन करनां, इष्ट वस्तुका वियोग, अनिष्ट वस्तुका सयोग, अरु वृद्ध अवस्थामें शरीरका कपनां, नेत्रोंका बलहीन हो जानां, श्वास, खांसी प्रमुख करके महा इ खी होनां तोवो कौनसी दशा है कि जिसमें प्राणी सुख पावे ? कोइनी नहीं यह मनुष्यगति कही तथा सम्यग् दर्शनादिकके पालनेसे जो जीव देवता होता है, सोनी शोक, विषाद, मत्सर, जय, थोड़ी कृद्धि, करके ईर्ष्या, काम, मद,

रूप, दुःख दावानलकूं मेघसमान अैसी शर्मावलि मोहकी देने हारी  
अगीकार करता है इस तरेसें सातमी आश्रवजावना जावे

७ आठमी सबरजावना कहते है, सो आश्रवोंका जो निरोध करना, तिसकू  
सबर कहते है, सो सबर दो प्रकारका होता है, एक देशसबर, दूसरा सर्व  
सबर उसमें सर्व करिके सबर तो अयोगी केवलीमे होता है, अरु जो दे  
शसें सबर है, सो एक दो प्रमुख आश्रवके निरोध करने वालेमें होता है  
तथा वली सबर दो प्रकारका है, एक इव्यसबर, दूसरा नावसबर, उस  
में जो कर्मपुञ्ज आश्रव करके जीव ग्रहण करता है, तिनका जो देशसे  
वा सर्वसें उेदन करना, सो इव्यसबर अरु जो नव हेतु क्रियाका त्याग,  
सो नावसबर मिथ्यात्व कपाय प्रमुख आश्रवोंको जो बुद्धिमान् उपाय  
करके निरोध करे, अरु आर्त्त, रौड् ध्यान जो बुद्धिमान् वज्जे, धर्मध्यान  
शुक्लध्यान ध्यावे, क्रोधकूं क्षमा करके जीते, मानकू मृडजाव करके जीते,  
मायाकूं सरलता करके जीते, लोनकूं सतोष करके जीते, इन्द्रियोंके विषय  
इष्टानिष्टकूं राग द्वेषके त्यागनेसें जीते, इस प्रकारसे जो बुद्धिमान् सबरजा  
वना जावे, तो स्वर्ग मोहकरूप लक्ष्मी अवश्य उसके वशीनूत हो जाती है

एनवमी निर्ज्जरा जावना लिखते हैं सत्सारकी हेतुनूत जो कर्मकी सत  
ति है, तिसकी अतिशय करके जो हानी करे, तिसका नाम निर्ज्जरा है  
सो निर्ज्जरा दो प्रकारकी है एक सकाम निर्ज्जरा, दूसरी अकाम निर्ज्जरा,  
इन दोनोंमेंसू जो सकाम निर्ज्जरा है, सो उपशान्ति चित्तवाले साधुकू हो  
ती है, अरु अकामनिर्ज्जरा, शेष जीवोंकू होती है शेष जीवोंकू जो अ  
काम निर्ज्जरा होती है, सो कर्मका पाक स्वयमेव होता है, अरु उपायसें  
नी कर्मका पाक होता है, जैसें आंवका फल स्वयमेवही वृद्धकी मालीमें  
लगा दूवाही पक जाता है, अरु कोइवाक्कि पलाल गर्त्ताक्षेप करनेसेंनी  
पक हो जाता है, ऐसेही निर्ज्जराजी दो प्रकारकी है हमारे कर्मोंकी निर्ज्ज  
रा होवे ऐसे आशय वाले पुरुष जो तप प्रमुख करते हैं, उनोंके सकाम  
निर्ज्जरा होती है, अरु एकेंद्रिय जो जीव है, तिनकू विशेष ज्ञान तो नहों  
परंतु शीतोष्ण, वर्षा, दहन, उेदन, जेदनादिक करके सदा जो वो कष्ट जो  
गनेसें कर्म निर्ज्जरा होती है, उसका नाम अकाम निर्ज्जरा है, ऐसें तप  
प्रमुख करके जो निर्ज्जराकी वृद्धि करे, सो नवमी निर्ज्जरा जावना जाननी

महा मोहोप पुरुष, शुचि माने है. तथा पानीके सौ ( १०० ) पड़ोंमें स्नान करके सुगंधि, पुष्प, कस्तूरि प्रमुख द्रव्यों करके बाहिग्ली तथा तब कितनेक कालताई सुगंधजीव शुचि सुगन्धित करते हैं, परंतु विष्टेका कोन मध्य जागमें कैसे शुचि होवे ? तथा बड़े दर्भ वृद्धिगले द्रव्य करके वासि त है, दिशा, तथा चदन, कस्तूरी, कपूर, अगुरु, कुकुम प्रमुख वस्तुका जरी रके साथ जब सग्रथ होता है, तब ए पुरांतक सर्व वस्तु दुर्गंध रूप कृष्ण मात्रमें हो जाती है, फेर इस कायाकू कोन बुद्धिमान् शुचि मानता है ? ऐसे शरीरकी अशुचिरूपता विचार करके बुद्धिमान् पुरुष, इस शरीरकी ममत्व न करे यह ठही अशुचि जावना कही

७ सातमी आश्रमजावना कहते हैं मन, वचन, औ कायाके योग करके शुचाशुचन कर्म जो जीव ग्रहण करते हैं, तिसका नाम आश्रम, जिनेश्वर देव कहते हैं सर्व जीवों गिने मंत्र जावना, गुणाधिक जीवमें प्रमोद जावना, अविनीत शिष्यादिकमें मध्यस्थ जावना, इ खी जीवोंमें कारुण्यनावना, इन चारो जावनाथो करके जिस पुरुषका अत करण निरंतर वासि त होवे, वो पुण्यवान् जीव, वैतालीश प्रकारका पुण्य उपार्जन करता है तथा सौध्यान, आर्तध्यान, पांच प्रकारका मिथ्यात्व, शोल प्रकारकी कषाय, पांच प्रकारका विषय, इनो करके जिनोका मन वासित है, वे जीव, व्याशी प्रकारका अशुचन कर्म उपार्जन करते हैं, तथा सर्वज्ञ अर्हत जगवत, गुरु, सिद्धांत दादशांग, चार प्रकारका सध, इन सर्वका जो गुणानुवाद कीर्त्तन करता है, अरु सत्य वचन हितकारी बोलता है, वे जीव, अशुचन कर्म उपार्जन करते हैं तथा श्रीसध, गुरु सर्वज्ञ, धर्म, अरु धर्मी इन सबके जो अर्थवाद् बोले, जूठे मतका, वा कपोल कक्षिपत मतका जो उपवेश करे, वो जीव अशुचन कर्म उपार्जन करता है तथा जो पुरुष चीतराग देव की पुष्पादिके करी पूजा करे तथा साधुकी जक्ति, विश्रामण प्रमुख करे, तथा पापसें काया शुद्ध करे, वो जीव, अशुचन कर्म उपार्जन करता है तथा जो, जीव, मांसनक्षण, सुरापान, जीवघात, चोरी, जूआ, परस्त्रीगमनादिक करे, वो अशुचन कर्म उपार्जन करता है ए अनुक्रमसें मन, वचन, काया करके शुचाशुचन आश्रम उपार्जन करता है, इस प्रकारसें यह आश्रम जावना जो जीव जावे हैं, सो अनर्थ परंपराकू त्याग देता है, अरु महानंदस्व

रूप, दुःख दावानलकूं मेघसमान ऐसी शर्मावलि मोहकी देने हारी प्रगीकार करता है इस तरेसे सातमी आश्रवजावना जावे

८ आठमी संवरजावना कहते हैं, सो आश्रवोंका जो निरोध करना, तिसकू सवर कहते हैं, सो संवर दो प्रकारका होता है, एक वेशसंवर, दूसरा सर्व संवर उसमें सर्व करिके सवर तो अयोगी केवलीमें होता है, अरु जो वेशसे सवर है, सो एक दो प्रमुख आश्रवके निरोध करने वालेमें होता है तथा वली सवर दो प्रकारका है, एक इव्यसवर, दूसरा नावसंवर, उसमें जो कर्मपुञ्ज आश्रव करके जीव ग्रहण करता है, तिनका जो देशसे वा सर्वसे वैदन करना, सो इव्यसवर अरु जो नव हेतु क्रियाका त्याग, सो नावसवर मिथ्यात्व कपाय प्रमुख आश्रवोंको जो बुद्धिमान् उपाय करके निरोध करे, अरु आर्त्त, रौद्र ध्यान जो बुद्धिमान् वज्जे, धर्मध्यान शुक्लध्यान ध्यावे, क्रोधकूं क्षमा करके जीते, मानकू मृदुजाव करके जीते, मायाकू सरलता करके जीते, लोचकूं सतोष करके जीते, इन्द्रियोंके विषय इष्टानिष्टकूं राग द्वेषके त्यागनेसे जीते, इस प्रकारसे जो बुद्धिमान् सवरजावना जावे, तो स्वर्ग मोहरूप लक्ष्मी अवश्य उसके वशीभूत हो जाती है

एनवमी निर्जरा जावना लिखते हैं सत्सारकी हेतुभूत जो कर्मकी सत्ति है, तिसकी अतिशय करके जो हानी करे, तिसका नाम निर्जरा है सो निर्जरा दो प्रकारकी है एक सकाम निर्जरा, दूसरी अकाम निर्जरा, इन दोनोंमेंसू जो सकाम निर्जरा है, सो उपशान्ति चित्तवाले साधुकू होती है, अरु अकामनिर्जरा, शेष जीवोंकू होती है शेष जीवोंकू जो अकाम निर्जरा होती है, सो कर्मका पाक स्वयमेव होता है, अरु उपायसे नी कर्मका पाक होता है, जैसे आवका फल स्वयमेवही वृक्षकी मालीमें लगा दूवाही पक जाता है, अरु कोइवादिक पलाल गर्त्ताद्वेष करनेसेनी पक हो जाता है, ऐसेही निर्जराकी दो प्रकारकी है हमारे कर्मोंकी निर्जरा होवे ऐसे आशय वाले पुरुष जो तप प्रमुख करते हैं, उनोंके सकाम निर्जरा होती है, अरु एकेंद्रिय जो जीव है, तिनकू विशेष ज्ञान तो नहीं परंतु शीतोष्ण, वर्षा, दहन, वैदन, जेदनादिक करके सदा जो वो कष्ट जो गनेसे कर्म निर्जरा होती है, उसका नाम अकाम निर्जरा है, ऐसे तप प्रमुख करके जो निर्जराकी वृद्धि करे, सो नवमी निर्जरा जावना जाननी

१० दशमी लोकस्वनाय जावना कहते हैं यत्र पृथिवी, चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारे अरु लोकाकाश, नरक, सर्ग प्रभुय सर्गकृ मित्रादि एक लोक कहनेमें आता है, तिस सपूर्ण लोकका आकार जैनमतक निहातम अमें लिखा है जैसे कोई पुरुष जामा पहिरके कमरमें दोनों दाथ लगा कर सटा होवे, जैसा उसका आकार है, ऐसेही लोकका आकार है, पट्टझ करके पूर्ण है, उत्पत्ति, स्थिति, अरु व्यय इन तीनों स्वरूपों करी सपुत्र है, अनादि अनंत है, किसीका रचा हुआ नहीं है, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिष्ठलोक, इन तीन स्वरूपोंमें बड़ा हुआ है जो जीवपुत्र, सब इसीक अंदर है, बाहिर नहीं लोकसे बाहिर तो केवल एक आकाशही है, वो आकाशही अनंत है, इसी आकाशका नाम जैन शास्त्रोंमें अलोक नाम करके लिखा है, अधोलोकमें न्यारी न्यारी देव उपरि सात पृथिवी है, उनमें नरकवासी जीव रहते हैं, अरु किसी जगें जवनपति व्यतरनी रहते हैं, तिरछे लोकमें मनुष्य अरु तिर्यच और व्यतर रहते हैं, ऊर्ध्व लोकमें देवता रहते हैं, विरोध करके जो लोकस्वरूप देखना होवे, तो लोकनाही धार्मिकशक्तिकासे तथा लोकप्रकाश ग्रंथसे जान लेना इसतरे लोकके स्वरूपका जो चिंतन करना है, सो दशमी लोकस्वनायजावना है

११ अग्नीयारमी बोधिधूर्जनत्व जावना कहते हैं, पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, वनस्पति, इनमें अणु करे दूये क्लिष्ट कर्मों करके जीव प्रसण करता है, इस जयानक ससारमें अनंतानंत पुत्रपरवर्तन करता हुआ यह जीव अकाम निर्झरा करके, अरु पुण्य उपार्जन करके, वैश्व, त्रीश्व, चत्वरिंश्व, पंचेश्व रूप त्रस पणा पावे है, फेर आर्यक्षेत्र, सुजाति, जला कुज, रोग रहित शरीर, संपदा, बड़ा राज्यसुख, हलके कर्म, तत्त्वातत्वके विवेचन करने वाली, बोधबीजके बोने वाली, कर्मक्षय करके मोक्ष सुखोंकी जननी, ऐसी श्री सर्वज्ञ अर्हंतकी वेशना मिलनी बहुत दुर्लभ है, जे कर जीव एक वारनी सम्यक्स्वरूप बोधि पाजता, तो इतने काल तांइ कदापि ससारमें पर्यटन न करता, जो अतीत कालमें सिद्ध दूये, जो वर्तमानमें सिद्ध होते हैं, अरु जो अनागत कालमें सिद्ध होवेंगे, वे सर्व बोधिहीके माहात्म्य है, इस वास्ते जन्म जीवकूं बोधिकी प्राप्तिमें यत्न करना चाहिये, क्योंकि कि

तनेक जीवोंने अनत वार इय्य चारित्र पाया है, परतु वोधिके बिना सर्व निष्फल हूवा. यह अगीश्वरमी जावना कही

अश्वरमी धर्म कथाके कथन करनेवाला अर्हन् है यह जावना लिखते हैं जो पुरुष परहित करनेमे उद्यत है, अरु बीतराग है, वो किसी जगामेंनी जूठ न बोलेगा इस वास्ते उसके कहे दूये धर्ममें सत्यता है, अैसा तो लोकालोककूं केवलज्ञान करकें प्रकाश करनहार, अर्हंतही हो सका है, दूसरा नहीं द्वात्यादि दश प्रकारका धर्मकू जिनेश्वर कहते दूये उस धर्म करकें जीव, ससार समुद्धमें डूबता नहीं, जो अर्हंतकी वाणी है, सो पूर्वापर अविरुद्ध है, अरु तिन वचनोंमें हिसाका उपदेश नहीं. वचन जो कहते है, सो निर्जरा वास्ते दूसरेका उपदेश बिना विचित्र तरेंसें कह जाते हैं, तथा कुतीर्थीयोंके जो वचन हे सो सर्व सजतिके वैरी हैं, क्यों के यद्वादिकोंमें पशुवध रूप हिसा करकें कलकित हैं, पूर्वापरविरोधी है, निरर्थक वचननी बहुत हैं, इस वास्ते जो कुतीर्थी धर्म कहते हैं, वोनी धर्मानास हैं, धर्म नहीं इस हेतुसे तिनका वचन किस तरें प्रमाण हो सका है ? अरु जो जो कुतीर्थीयोंके शास्त्रोंमे कहीं कहीं दया सत्यादिकोंका कथन है, सोनी कहनेही मात्र है, परतु तत्त्वमें वोनी कुछ नहीं है, क्यों के यथार्थ इनका स्वरूप वे जानते नहीं हैं, अरु यथार्थ पालते नहीं है, प्रथम तो उन शास्त्रोंके जो उपदेशक हैं, वेही सर्व कामाग्रिमे प्रवृजित थे, यह बात सर्व सुज्ञ जनकों विज्ञात है, इस वास्ते अर्हंत जगवत्तही सत्यार्थके उपदेशक हैं, तथा बड़े मक्खर हाथीयोंकी घटा सयुक्त जो राज्यका पावनां, औ सर्व जनकों आनद देने वाली सपदाका पावनां, तथा जो चड्माकी तरें निर्मल गुणका समूह पावनां, अरु जो कल्हृष्ट सौजाग्यका विस्तार पावनां, यह सर्व धर्महीका प्रजाव है, तथा समुद्ध जो पृथिवीकू अपणी कल्लोला करी बहाता नहीं है, तथा मेघ जो सर्व पृथिवीकू रेल पेल नहीं करता, अरु चड्मा, सूर्य, जो उदय दोते हैं, सर्व अधिकारका विज्ञेव करते हैं, सो सर्व जयवत धर्महीका प्रजाव है जिसका जाई नहीं, जिसका मित्र नहीं, जिस रोगीका कोई वैद्य नहीं, जिसके पास धन नहीं, जिसका कोई नाथ नहीं, जिसमें गुण नहीं, इन सर्वका जाई, मित्र, वैद्य, धन, नाथ, गुणोंका निधान,



१० दशमी लोकस्वभाव जावना कहते हैं. यत्र पृथिवी, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारे अरु लोकाकाश, नरक, सर्ग प्रभृति सग्रेष्ठ मित्रादि एक लोक कहनेमें आता है, तिस सपूर्ण लोकका आकार जैनमतके निरुक्तिमें अग्नि लिखा है जैसा कोऽपुरुष जामा पत्रिक कमरमें दोनों हाथ लगा कर सड़ा होवे, जैसा उसका आकार है, ऐसेसाही लोकका आकार है, पद्मस्वरूप करके पूर्ण है, उत्पत्ति, स्थिति, अरु व्यय इन तीनों स्वरूपों करी सयुक्त है, अनादि अनन्त है, किसीका रचा हुआ नहीं है, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, मिथ्यालोक, इन तीन स्वरूपोंमें बड़ा हुआ है जो जीवपुत्रज, सब इसीके अन्तर में, बाहिर नहीं लोकसे बाहिर तो केवल एक आकाशही है, वो आकाशही अनन्त है, इसी आकाशका नाम जैन शास्त्रोंमें अलोक नाम करके लिखा है, अधोलोकमें न्यारी न्यारी देव उपरि सात पृथिवी है, उनमें नरकवासी जीव रहते हैं, अरु किसी जगें जगत्पति व्यतरनी रहते हैं, तिरछे लोकमें मनुष्य अरु तिर्यच और व्यतर रहते हैं, ऊर्ध्व लोकमें देवता रहते हैं, विशेष करके जो लोकस्वरूप देखना होवे, तो लोकनाडी वात्रिंशतिकासे तथा लोकप्रकाश ग्रन्थसे जान लेना इसतरे लोकके स्वरूपका जो चितन करना है, सो दशमी लोकस्वभावजावना है

११ अगीधारमी बोधिचर्यजाल जावना कहते हैं, पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, वनस्पति, इनमें अपण्ण करे दूये क्लिष्ट कर्मों करके जीव जन्मण करता है, इस जगत्तक ससारमें अनन्तानन्त पुनर्जन्मपरिवर्तन करता हुआ यह जीव अकाम निर्हारा करके, अरु पुण्य उपार्जन करके, वैदिय, त्रीडिय, चचरिडिय, पचेडिय रूप व्रत पणा पावे है, फेर आर्यक्षेत्र, सुजाति, जलाकुल, रोग रहित शरीर, सपदा, बड़ा राज्यसुख, हलके कर्म, तत्त्वातत्वके विवेचन करने वाली, बोधबीजके बोने वाली, कर्मद्वय करके मोक्ष सुखोंकी जननी, ऐसी श्री सर्वज्ञ अर्द्धतकी वेशना मिलनी बहुत श्रद्धा है, जे कर जीव एक बारनी सम्यक्स्वरूप बोधि पावता, तो इतने काल तांड़ कदापि ससारमें पर्यटन न करता, जो अतीत कालमें सिद्ध दूये, जो वर्तमानमें सिद्ध होवे है, अरु जो अनागत कालमें सिद्ध होवेंगे, वे सर्व बोधिहीके माहात्म्य है, इस वास्ते जन्म जीवकू बोधिकी प्राप्तिमें यत्न करना चाहिये, क्योंकि कि

प्रतिमाओंका एक वर्षमें परिकर्म एक वर्षमें प्रतिमा, अैसें नव वर्षमें आदिकी सात प्रतिमा समाप्त करिये हैं

अथ जो यह प्रतिमा अंगीकार करता है, उसकूं कितना ज्ञान होता है ? यावत् किंचित् न्यून वश पूर्व होता है, क्युंकि जिसकूं पूर्ण वश पूर्वकी विद्या होती है, उसका वचन अमोघ होता है, इस वास्ते उसकूं धर्मोपदेश देना चाहियें उसके उपदेशसे बहुत नव्योंकूं उपकार अरु तीर्थकी वृद्धि होनेसे प्रतिमादि कल्प करना चाहियें, अरु प्रतिमा अंगीकार करने वालोंको जयन्त्य ज्ञान नवमे पूर्वकी तीसरी वस्तु, आचार वस्तु जिसका नाम हैं, तहां तांइ होवे. इतना ज्ञान सूत्र तथा अर्थ, दोनोही पूरे होवें, क्योकि निरतिशय ज्ञानी होनेसे कालादिकों नहिं जान सकेगा, तथा “व्युत्सृष्ट” शरीरकी सार सजाल त्यागी है, देवतादिकका उपसर्ग सहै, जिनकल्पीकी तरें उपसर्ग सहै, तथा एषणार्पिमयहण प्रकार, निष्ठाग्रहण विधि, गह्वरसे बाहिर रहे इत्यादि शेष वर्णन देखना होवे तो प्रवचनसारोद्धारकी वृद्धवृत्ति देख लेनी ए बारां प्रतिमा कही ॥१५॥

अथेद्विनिरोध कहते है “स्पर्शन रसना घ्राण चक्षु ओत्र चेति” यह पांच इन्द्रिय अरु स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, ए पांच, पूर्वोक्त पांच इन्द्रियोंके यथाक्रम विषय हैं, इन पांचों विषयोंका निरोध करना, क्यो के जो इन्द्रिय वशमें न होंगी तो बड़ी अनर्थकारी होगी, अरु क्लेश सागरमें गेरेंगी ॥ यदन्यथायि ॥ आर्या वृत्त ॥ सक्त शब्दे हरिण, स्पर्श नागो रसे च वारिचर ॥ रूपणपतंगो रूपे, शृजगो गधेन च विनष्ट ॥१॥ पंचसु सक्ता पच, विनष्टा यत्र गृहीतपरमार्था ॥ एक पंचसु सक्त, प्रयाति नस्मां ततां मूढ ॥ २ ॥ तुरंगैरिव तरतरलै, दुर्बतैरिंदियै समाकृष्य ॥ उन्मार्गे नीयते, तमोघने छुखदे जीव ॥ ३ ॥ अनुशुवृत्त ॥ इन्द्रियाणां जये तस्मा, यत्न कार्य सुबुद्धिनि ॥ तक्लयो येन जविनां, परत्रे हचशर्मणे ॥४॥

अथ प्रतिलेखना जैन साधुओंमें प्रसिद्ध हैं, उस वास्ते नहिं लिखी

अथ तीन गुप्ति लिखते हैं मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायागुप्ति ए तीन गुप्ति है इनका स्वरूप अैसे है कि अशुभ मन, वचन, कायाका निरोध करणां, अरु अशुभ मन, वचन, कायाकी प्रवृत्ति करणी अतिप्राय यह है कि, मनोगुप्ति तीन प्रकारकी हैं, आर्त्त, रौं ध्यानानुवधी, कटपनाका वियोग, ए प्रथम म

धर्म है तथा यह जो अर्धतका तथन कोया दृष्टा धर्म है, सो महापद्म है, ऐसे जो नव्य जीव मनमे ध्याये, सो धर्ममे दृढतर होये. एकही मि मैत्र धर्म जायनाकू निरंतर जो जीव जाये, सो नश्य, अग्रेय पापकर्म नाश करके अनेक जीवोंकू उपदेश द्वारा सुग्री करके, परम पदकू प्राप्त होता है, तो फेर जो वाराही जायना जाये, नितके परमपद प्राप्ति होनेके क्या आश्चर्य है? यह वारा जायना समाप्ति दागऽ है ॥ १२ ॥

अथ वारा प्रतिमा लिखते हैं एक मासमे छे कर सात मास पर्यंत एक एक मासकी वृद्धि जान लैनी. ए सात प्रतिमा होती है जैसे प्रथम एक मासकी, दूसरी दो मासकी, ऐसेही एक एक मास वृद्धि कर सात मास पर्यंत सात प्रतिमा होती है, और आठमी सात दिन रातकी, नवमी सात दिन रातकी, दशमी सात दिन रातकी, अग्यारमी एक दिन रातकी, अरु बारमी प्रतिमा एक रात्रि प्रमाण जाननी एव वारा प्रतिमा अनि यह, अरु प्रतिज्ञा, ए एकही नाम है

अथ जो साधु, इन वारा प्रतिमाकू अंगीकार कर सका है, तिसका स्वरूप लिखते हैं “सहनधृतियुक्त” तहां जिसका सहननवज्जरूपजना राच होवे, सो परीयह सहनेमें अत्यंत समर्थ होता है, “धृति” सो चित्तका स्वस्थपणा होवे, तो रति, अरति करके पीडित नहीं होता है, “महासत्त्व” महासात्त्विक जो होवे, सो अनुकूल, प्रतिकूल, उपसर्ग सहनेमें विपादकों नहीं धरता है, “जावितात्मा” सत्तावना करके वा सित अत करण होवे, तिसकी जावना पांच है तिनका विस्तार, व्यवहार ज्ञाप्यटीकासें जानना ए जावना कैसें जावे? जैसें आगममें है, तथा जैसें गुरु आचार्य आज्ञा देवे, जे कर गुरुही प्रतिमा अंगीकार करे, तदा नवीन आचार्य स्थापन करके उसकी आज्ञासें, तथा गण्डकी आज्ञा ले कर करे, तथा प्रथम आपणे गण्डमेंही रह कर प्रतिमा अंगीकार करणोका प्रतिकर्म करे, सो प्रतिकर्म यह है—

मासादिक सात जो प्रतिमा हैं, तिनका प्रतिकर्मनी तितनाही है, वर्षा कालमें ए प्रतिमा नहि अंगीकार करी जाती है, अरु परिकर्मनी वर्षाका लमें नहीं करणा तथा आविकी दो प्रतिमा एक वर्षमें होती है, तीसरी एक वर्षमें, चौथी एक वर्षमें, शेष पांचमी, ठी, सातमी, इन तीनों प्र

इत्यादि जैनमतके गुरु तत्त्वके स्वरूप लिखनेमें लाखों श्लोक लिखे जायगे तोनी संपूर्ण जैनमतके गुरुका स्वरूप नहीं जाना जायगा, इस वा स्ते थोड़ाहीसा स्वरूप लिखा है जेकर विशेष जाननेकी इच्छा होवे, तदा श्रीउपनिर्गुक्ति, श्रीआचारांग, दशवैकालिक, बृहत्कल्पनाप्य वृत्ति, पंचकल्प चूर्णी, जितकल्पवृत्ति, महाकल्पसूत्र, कल्पसूत्र, निशीथनाप्यचूर्णी, महा निशीथसूत्र, इत्यादि पदविनाग समाचारीके शास्त्र देख लेने

प्रश्न—जैसा जैनमतके शास्त्रोंमें गुरुका स्वरूप लिखा है, वैसी वृत्तिवा ला कोइनी जैनका साधु देखनेमें नहीं आता है, तो फेर जैनमतके साधु थ्योंको इस कालमें गुरु क्यु कर मानना चाहिये ?

उत्तर—तुमने किसी गीतार्थको सगत नहीं करी होगी, क्योंकि जे कर जैनमतके चरण करणानुयोगके शास्त्र पढ़े होते, अथवा किसि गीतार्थ गुरुके मुखारविंदसें वचन रूप अमृत पान करा होता, तो पूर्वोक्त सशय रूप रोगकी कसमसी कदापि न उत्पन्न होती ? क्योंकि जैनमतमें ढ प्रका रके निर्गंथ कहे हैं इस कालमे जो जैनके साधु हैं, वे सर्व पूर्वोक्त ढ प्र कारमेंसें दो प्रकारके हैं, क्योंकि श्रीनगवती सूत्रके पच्चीशमे शतकके ठठे ववैशेमें लिखा है, कि पंचम कालमें दो तरेंके निर्गंथ होंगें, उनोंसें तीर्थ चलेगा कषाय कुशील निर्गंथ तो किसिमें परिणामापेक्षा होगा, मुख्य तो बोही रहेंगे अरु जो जैन शास्त्रोंमें गुरुकी वृत्ति लिखी है, सो प्राय उत्सर्ग मार्गकी अपेक्षा है, और इस कालमें तो प्राय अपवाद मार्गकी प्रवृत्ति है, सो उत्सर्गवृत्तिवाले मुनि इस कालमें क्योंकर हो जावे ? कदा चित् होइ नहीं सके हैं क्योंकि न तो वो सहननवज्जरूपनाराच हैं, न मनोबल वैसा है, न जीवोंके वैसी श्रद्धा है, न वैसा देश काल है, न धैर्य है, तो फेर इस कालके जीव वैसी उत्सर्ग वृत्ति कैसें कर सके ?

प्रश्न—जे कर वैसी वृत्ति इस कालमें नहीं तो उनकुं साधुनी काहेकु कहना चाहिये ?

उत्तर—यह तुमारा कहनां बहुत बे समझका है, क्यों के व्यवहारसूत्र नाप्यमें ऐसें लिखा है ॥ गाथा ॥ पोस्करिणो आयारे, आणयण ते गाय गीयडे ॥ आयरिय एए, आदरण इति नायवा ॥ १ ॥ सड परिष्ठा ठक्काय, अदिगमो पिम उत्तरियाए ॥ रुक्के वसदे जूहे, जोदे सोहीय पु

नोगुप्ति शास्त्रानुसारी. परलोको के साधने गती धर्मप्यानानुबंध गती. मायक  
परिणति करणी, ए दूसरी मनोगुप्ति सपूर्ण गुणाद्यन मनोगुप्तिका निरोध,  
अयोगी गुणस्थान अवस्थामे साधमारामरूपता, ए तीसरी मनो गुप्ति.

वचनगुप्ति दो प्रकारकी है. वसमे मुख, नेत्र, त्रुविकार. अगुजोनाय,  
उचा होना, खांती करणी, दुकारा करणी, पठर फिकणा. इन पूर्वांक के  
वोंसे अपणा सूचन करणा वज्जेनां, ए प्रथम वचनगुप्ति. क्यों के अब  
चेष्टा द्वारा तब कुठ सूचन करा दीया. तब मीन रहना व्यर्थ है. बोजन,  
दूसरे के प्रश्नका उत्तर देनां, सो लोकसे अरु आगममे अतिरोध होवे, और  
वस्त्रादिकसे मुखका यत्न करक बोजनां, ए दूसरी वचनगुप्ति, इन दोनों  
जेदों करके वचनका निरोध अरु सम्यक् जापण रूप वचनगुप्ति जाननी.

कायागुप्ति दो प्रकारसे है एक चेष्टाका निरोध, दूसरी आगमानुसार  
चेष्टाका नियम करणा. तहाँ देवता मनुष्यादि उपसर्गमे क्रुधा लुपादि प  
रीतहोके सज्ज होया, जो कायोत्सर्ग करणादि करके कायाकू निभल क  
रणा, तथा अयोगी अवस्थामे जो सर्वथा कायाकी चेष्टाका निरोध करणां,  
ए प्रथम कायागुप्ति तथा गुरु प्रघ्न शरीर सस्तारक, नून्यादि प्रतिषेधन,  
प्रमार्जनादि, जैसे शास्त्रमे है, तिसी तरें क्रियाकलाप पूर्वक शयनादिक सा  
धुक् करणी, शयनासन लेना, रखनां, इन सर्वकृत्योंमे स्वधद चेष्टाका त्या  
ग देनां, मर्यादा सहित कायाकी चेष्टा करणी ए दूसरी कायागुप्ति

अथ अग्निग्रह प्रतिज्ञा लिखते हैं सो अग्निग्रह इव्य, क्षेत्र, काल अरु  
जाव करि चार प्रकारके हैं, इसका विस्तार प्रवचनसारोद्धार वृत्तिमे है, ए  
करणसित्तरीकी गणती कहते है यद्यपि आदारादिकके वैतालीत दूषण हैं,  
तथापि पिंम, शय्या, वस्त्र, पात्र, ए चारही वस्तु सदोष नहीं ग्रहण  
करणी इस वास्ते सख्यामे ए चारही दूषण लिये हैं तथा पांच समिति,  
बारा जावना, बारा प्रतिमा, पांच इडियनिरोध, पञ्चीश प्रतिषेखना, तीन  
गुप्ति, चार अग्निग्रह, ए सर्वे एकठे करेसे सित्तरे, करण सित्तरीके जेव हैं

प्रश्न — चरण सित्तरी और करण सित्तरी, ए दोनोंमें क्या विशेष है ?

उत्तर — जो नित्य करनां सो चरण, अरु जो प्रयोजन द्रव्या तो कर ले  
नां, और प्रयोजन नहीं होवे तदा न करणां, सो करण यह इनका जेव  
है ए चरण सित्तरी और करण सित्तरीके जेव तमाप्ति हुये हैं

मे कालमें साधु ऐसाजी होवे, तोजी संयमी कहना चाहिये, तथा नि  
शीथमेजी लिखा है ॥ नाप्य गाथा ॥ जा संजमया जीवे, सु ताव मूले गु  
णुत्तर गुणाय ॥ उत्तरियहेय सज्जम, नियंठवउ सा पडिसेवी ॥ १ ॥ इस  
गाथाकी चूर्णीकी जापा लिखते हैं, ठकायोंके जीवों विषे जब तांइ दयाके  
परिणाम है, तब तांइ बकुश निर्मथ औ प्रतिसेवना निर्मथ रहेंगे,  
इसवास्ते प्रवचन शून्य औ चारित्र रहित पंचमकाल कदापि न होवे  
गा, तथामूलोत्तरगुणोमें दूषण लगनेसे तत्काल चारित्र नष्टजी नहीं  
होता, मूलगुणजगमें वो दृष्टांत है, उत्तरगुण जंगमे ममपका दृष्टांत  
है, निश्चयनयमे एक व्रत जग दूया सर्व व्रत जग हो जाता है, परंतु  
व्यवहारनयके मतसें जो व्रत जग होवे, सोइ जंग होवे दूसरे नहीं इस  
वास्ते बहुत अतिचारके लगनेसें सयम नहीं जाता, परंतु जो कुशील सेवे,  
अरु धन रके, औ कच्चा सचित पानी पीवे, प्रवचन अनपेक्ष, वो साधु  
नहीं जहां तांइ वेद प्रायश्चित्त लगे, तहां तांइ संयम सर्वथा नहीं जाता  
तथा जो इस कालमें साधु न माने, सो मिथ्यादृष्टि है, क्यों कि स्थानां  
गसूत्रमें लिखा हैं, जो अतिचार बहुत लगते देखके औ आलोचना प्रा  
यश्चित्त यथार्थ कोइ लेता देता नहीं है, इस वास्ते साधु कोइ नहीं जो ऐसे  
कहे के वो चारित्र जेदिनी विकथाका करनेवाला है, तथा श्रीजगवती सू  
त्रके पञ्चीशमे शतकके ठेठ उद्देशकी सग्रहणीकार श्रीमदनयदेवसूरि, इन  
दोनो निर्मथोका जो स्वरूप है सो लिखते हैं, सो इहां जापामें प्रगट  
लिखा जाता है ॥ गाथा ॥ बचसं सबलं कवर, मेगछतमिह जस्त चारि  
त्तं ॥ अइयार पकजावा, सो बचसो होइ निगगथो ॥ १ ॥ व्याख्या—बकु  
श, शबल, कबुर, ए तीनो एकार्थ हैं एकही वस्तुकों कहते हैं, ऐसा है  
चारित्र जिसका, अतिचार रूपपंक होनेसें सो बकुशनामा निर्मथ है,  
इस चारत वर्षमें इसकालमें बकुश औ कुशील ए दोनो निर्मथ हैं, शेष  
तीनो तो व्यवहेद हो गये हैं ॥ तथा चोक्त परम मुनिनि ॥ “बकुश कुशी  
ला दो पुण, जातिष्ठ तावहो हति इति ॥” इसका अर्थ बकुश कुशील ए  
दोनो निर्मथ जहां लग तीर्थ रहेगा तहां तक रहेंगे,

अब जो बकुश निर्मथ है, तिसके दो जेद हैं, सो कहते हैं तहां जो  
वख पात्रादि उपकरणकी विनूपा करे सो उपकरण बकुश, ए प्रथम जेद

स्करिणी ॥२॥ “दार गाढा यो” इन दोनों दार गाथाका व्याख्यान ज्ञान  
 फारने पंदरा ज्ञाप्यगाथा करक कीया है, जे कर ज्ञाप्यगाथा देखनेसे  
 इष्टा होये, तो व्यवहारज्ञाप्य बेल लेनी, इष्टा तो उन पंदरा गाथाओंके  
 अर्थ ज्ञापामे लिख वेता है, अर्थ—जिसीपों पूर्वकालमें सुगणित कृतो  
 जियों पुष्करिणीयो घावटीयो थी, वैसे कृतो गाजीपों अब है नही, तोनी  
 पुष्करिणीयो घावटीयो तो है, लोक इन सामान्य घावटीयोंमें अपना  
 कार्य करते है ॥ १ ॥ तथा संपूर्ण आचारप्रकल्प, नरमे पूर्वमें था, उस  
 नवमे पूर्वसे उद्धार करक पुज्यपाद वैशाख गणिते निशीथ रचा, तो क्या  
 उस निशीथकू आचारप्रकल्प न कहना चाहिये ? ॥ २ ॥ पूर्वकालमें ताड़ो  
 द्याटिनी, अथस्यापिनी आदिक त्रियाके धारक चोर थे, औ इस कालमें  
 वो विद्या तो नही है, तो फिर क्या चोरी करने जाजोंकू चोर न कहना चा  
 हिये ? ॥ ३ ॥ पूर्वकालमें तो चांदह पूर्वके पागीकू गीतार्थ कहते थे, तो  
 इस कालमें जयन्थ आचार प्रकल्प, निशीथ औ मध्यम आचार प्रकल्प  
 वृद्धकल्पके पढे हूयेकू इस कालमें क्या गीतार्थ न कहना चाहिये ? ॥ ४ ॥  
 पूर्वकालमें श्रीआचारांगका शस्त्रप्रज्ञा अध्ययनके पढनेसे, ठेदोपस्थापनीय  
 चारित्रमें स्थापन करते थे, तो क्या अब दशवैकालिकके ठ जीवनीय अ  
 ध्ययनके पढनेसे न स्थापन करना चाहिये ? ॥ ५ ॥ दूसरे ब्रह्मचर्यके पां  
 चमे वद्वेशमें जो ग्रामगयी सूत्र है, उस सूत्रानुसार पूर्वे मुनि आहार ग्र  
 हण करते थे, तो क्या अब पिरेपणा अध्ययन अनुसारें न करना चाहि  
 यें ? ॥ ६ ॥ पूर्वे आचारांगके पीठे उत्तराध्ययन पढते थे, तो क्या अब द  
 शवैकालिकके पीठे न पढना चाहिये ? ॥ ७ ॥ पूर्वे मत्तांगादिक दश प्रका  
 रके वृद्ध थे, तो क्या अब अवाविक वृद्ध न कहने चाहिये ? ॥ ८ ॥  
 पूर्वे बहुत गौवोंके समूहवाले नव गोपकू ग्वाल कहते थे, तो क्या अब  
 थोड़ी गौवों वालेकू ग्वाल न कहना चाहिये ? ॥ ९ ॥ पूर्वे सदस्व मल्ल  
 योद्धे थे, तो अब क्या किसीकू योद्धा न कहना चाहिये ? ॥ १० ॥ पूर्वे  
 ठ मासी तपका प्रायश्चित्त था, तो क्या उसके बदले निवी प्रमुख प्राय  
 श्चित्त न लेना चाहिये ? ॥ ११ ॥ इसी तरें जो पूर्वकाल मुनियोंकी वृत्ति  
 नही, तो क्या आचार्य वा साधु न कहना चाहिये ? किंतु जरूरही साधु  
 मानना चाहिये तथा जीवानुशासन सूत्रकी वृत्तिमेंनी लिखा है कि पांच

कुश निर्मथ परिवार प्रमुखकी रुद्धि वाढता है ॥ गाथा ॥ पंढित तवाइ क  
यं, जस च इहेइ तंमि तुस्सइय ॥ सुहसीलो नयवाढं, जयइ अहोरत्त किरि  
यासु ॥ १ ॥ व्याख्या - पंढितपणे करी तथा तपादि करकें यशकी इच्छा  
करे, तिस यशके दुवे थके बहुत खुशी माने, औ सुखशीलिया होवे, औ  
दिन रात्रिकी क्रिया समाचारीमें बहुत उद्यमीनी नहीं होवे ॥ गाथा ॥ परि  
वारो य असज्जम, अविवित्तो होइ किंचि एयस्स ॥ घसिय पाउ तिह्वाइ,  
मासणि कित्तरिय केसो ॥ १ ॥ व्याख्या - इसका जो परिवार होवे, सो अ  
सयमी कहते असयम वाला होवे, बल पात्रादिकके मोहसें बल पात्रादि  
कसें दूर न जावे पग, जोजावे आदिकसे औ तैलादिक चोपढके सुकुमा  
र करे, औ शिर, दाढी, मूढके बाल, कतरणीसें कापे, ( कतरे ) एतावता  
लोचकी जगें उस तरें, वा कतरणीसें बाल दूर करे, परंतु लोच न करे  
॥ गाथा ॥ तद् देस सबहेयारि, देहिं सबलेहीं सज्जुं बवसो ॥ मोहकयञ्च  
मप्पु, छिउंय सुत्तमि नणियं च ॥ १ ॥ व्याख्या - तथा देशभेद सर्वभेद योग्य  
दोषों करी जिसका चारित्र कर्बुर है, परंतु मनमें उसके मोहक्य करनेकी इ  
च्छा है, एतावता मनमें सयम पालनेमें उत्साह है, परंतु पूर्ण सयम पाल  
नहीं सक्ता, इन पूर्वोक्त कृत्यों करी सयुक्त होवे, उसकू बकुशनिर्मथ कहियें  
औ सूत्रमेंनी कहा है, सो यह आगे लिखते हैं ॥ गाथा ॥ उवगरण देह चु  
स्का, रिद्धि रसगारवासिया निञ्चं ॥ बहु सबल ठेय छुत्ता, निग्गया बवसा न  
णिया ॥ १ ॥ आजोगो जाणतो, करेइ दोस अयाण मण जोगे ॥ मूलुत्तरेहिं  
सवुम, विवरिय असवुमो होइ ॥ २ ॥ अञ्चि मुह मङ्गमाणो, होइ अहा सु  
हमउ तहा बवसो ॥ सील चरण ज जस्त, कुष्ठियं सो इह कुसीलो ॥ ३ ॥  
पडिसेवणा कसाए, इहा कुसीलो इहावि पंचविहो ॥ नाणे दसण चरणे,  
तवेय अह सुद्धमए चेव ॥ ४ ॥ इह नाणाइ कुसीलो, उवजीव होइ नाण  
पनिर्णए ॥ अह सुद्धमो पुण तुस्सई, एस तवसन्ति ससए ॥ ५ ॥ इन पांचो  
गाथाओंकी व्याख्या - उपकरण देह छुट् रस्के, रुद्धि, रस, साता, ए तीनों  
गारवमें नित्य आश्रित होवे, उपकरणोंसें अविविक्त रहे, परिवार जिसका  
भेद योग्य सबल चारित्र सयुक्त सो निर्मथ बकुश कहते हैं ॥ १ ॥ साधुओंके  
बह करने योग्य नहीं, जैसे जानताजी है, तोजी उस कामकू करता है, सो  
प्रथम आजोग बकुश कहियें अरु अनजानपणेसें अरुत करे, तिसकू अ



श्री जो हाथ, पग, नख. सुरादिक देवके आयरोंको गिन्ना करे, सो शरीरबकुश, ए दूसरा जेव जानना. ए दानों जेहोंके पांच जेद है ॥ गाथा ॥ ठगरणसररिसु, सो छद्म छविहोवि दोऽ पंचगिन्ना ॥ अनांग अनांग नोग, असबुद्ध सबुद्धे सुद्धमे ॥ १ ॥ अर्थ - इतम दो पदोंका अर्थ तो अर जित्ना है, अगले दो पदोंका अर्थ निखते दे. साधुहं यह करने याव नही, ऐसे जानतानी है, तोनी उस कामको जो करे, सो प्रथम आन ग बकुश, और जो अज्ञाण पणोंसे करे सो दूसरा अनानांग बकुश मूत्र गुण, उत्तर गुणोंमें जो विष कर ठाना दोष लगावे, सो तीसरा सवृत बकुश, जो मूलगुण उत्तरगुणोंमें प्रगट दूषण लगावे, सो चौथा असवृत बकुश. नेत्र, नासिका, मुखादिककी जो मल दूर करे, सो पाचमा सूक्ष्म बकुश जानना

अथ जो उपकरण बकुश है, तिसका स्वरूप लिखते हैं ॥ गाथा ॥ जो उपकरणे बजसो, सो ध्रुवस्थ पाउसे विवश ॥ इष्टं जलहयाई, किंचिन्नूसाइ जुजइ ॥ १ ॥ व्याख्या - जो उपकरण बकुश है, सो प्रावृद्ध ( पावस ) ऋतु विनाजी जल द्वारसें वस्त्र धोता है, पावस ऋतुमें तो सर्व म हवासी साधुबोकू आह्ला है, जो एक बार वर्षासे पहिले थापणें सर्व उपकरण जल द्वारसें धो लेवे, नहीं तो वर्षाऋतुमें मलके ससर्गसे निगोदा दिक जीवोंकी उत्पत्ति हो जावेगी, और यह जो बकुशनिर्मय है, सो पावस ऋतु विना अन्य ऋतुओंमेंजी जल द्वारसे वस्त्रादिक धो लेता है, और बकुश निर्मय, सुंदर, सुकुमाल, वस्त्रजी बांढता है, और उपकरण विनूपा शोभाके वास्तेजी कबुक पहिरता है ॥ गाथा ॥ तद् पत्त दमयाई, षष्ठमं सिणैह कयतेय ॥ धारेइ विनूसाए, बहु च वझेइ ठगरण ॥ १ ॥ व्याख्या - तथा पात्र, दम प्रमुख घोटैसें घोटके सुकुमार करे, तथा घी, ते ल प्रमुख करी चोपड़के तेजवत चमकदार करके रखे, और विनूपाके वास्ते बहुत उपकरण रखने चाहे, एतावता रहे

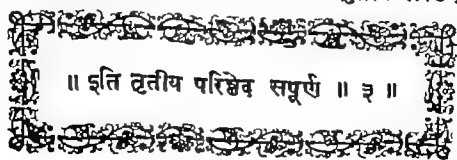
अथ शरीर बकुशका स्वरूप लिखते हैं ॥ गाथा ॥ देह बजसो अकषे, करचरण नहाइय विनूसेइ ॥ छविहोवि इमो इक्षि, इष्टं परिवार पणिईय ॥ १ ॥ व्याख्या - देहबकुश जो है, सो विना कारण हाथ, पग, नखादिककी विनूपा करे, जलाविसें धोवे, ऐसे उपकरण और शरीर ए दोनों प्रकारका ब

कुश निर्ग्रथ परिवार प्रमुखकी रुद्धि बांढता है ॥ गाथा ॥ पंक्ति तवाऽ क  
यं, जस च इच्छेऽ तंमि तुस्तस्य ॥ सुहसीलो नयवाढ, जयऽ अहोरत्न किरि  
यासु ॥ १ ॥ व्याख्या - पंक्तिपणे करी तथा तपादि करकें यशकी इच्छा  
करे, तिस यशके दुवे थके बहुत खुशी माने, औ सुखशीलिया होवे, औ  
दिन रात्रिकी क्रिया समाचारीमें बहुत उद्यमीनी नहीं होवे ॥ गाथा ॥ परि  
वारो य असंजम, अविचितो होऽ किंचि एयस्त ॥ धंसिय पाठ तिह्नाऽ,  
मासणि कितरिय केसो ॥ १ ॥ व्याख्या - इसका जो परिवार होवे, सो अ  
सयमी कहते असयम वाला होवे, बख पात्रादिकके मोहसैं बख पात्रादि  
कसैं दूर न जावे पग, जोजावे आदिकसे औ तैलादिक चोपढके सुकुमा  
र करे, औ शिर, दाढी, मूढके बाल, कतरणीसैं कापे, ( कतरे ) एतावता  
लोचकी जगें उस तरें, वा कतरणीसैं बाल दूर करे, परंतु लोच न करे  
॥ गाथा ॥ तद् देस सबहेयारि, वेदिं सबलेहीं सञ्जुत बउसो ॥ मोहकयञ्च  
मञ्जु, छिउंय सुत्तंमि जणियं च ॥ १ ॥ व्याख्या - तथा देशभेद सर्वभेद योग्य  
दोषों करी जिसका चारित्र कर्बुर है, परंतु मनमें उसके मोहक्य करनेकी इ  
च्छा है, एतावता मनमें सयम पालनेमें उत्साह है, परंतु पूर्ण सयम पाल  
नहीं सक्ता, इन पूर्वोक्त रुखों करी सयुक्त होवे, उसकू बकुशनिर्ग्रथ कहियें  
औ सूत्रमेंनी कहा है, सो यह आगे लिखते हैं ॥ गाथा ॥ उवगरण देह चु  
रका, रिद्धि रसगारवासिया निच्च ॥ बहु सबल ठेय छुत्ता, निग्गथा बउसा न  
णिया ॥ १ ॥ आनोगो जाणतो, करेऽ दोस अयाण मण जोगे ॥ मूलुत्तरेहि  
सवुम, विवरिय असवुमो होऽ ॥ २ ॥ अञ्जि मुह मळमाणो, होऽ अहा सु  
हमउ तहा बउसो ॥ सील चरण जं जस्त, कुञ्जियं सो इह कुसीलो ॥ ३ ॥  
पडिसेवणा कसाए, उहा कुसीलो उहावि पंचविहो ॥ नाणे वसण चरणे,  
तवेय अह सुद्धमए चेव ॥ ४ ॥ इह नाणाऽ कुसीलो, उवजीव होऽ नाण  
पनिर्णए ॥ अह सुद्धमो पुण तुस्तई, एस तवसत्ति ससए ॥ ५ ॥ इन पांचो  
गाथाओंकी व्याख्या - उपकरण देह छुट रस्के, रुद्धि, रस, साता, ए तीनों  
गारवमें नित्य आश्रित होवे, उपकरणोंसैं अविचित रहे, परिवार जिसका  
छेद योग्य सबल चारित्र सयुक्त सो निर्ग्रथ बकुश कहते है ॥ १ ॥ साधुओंके  
बह करने योग्य नहीं, औसैं जानताजी है, तोनी उस कामकू करता है, सो  
प्रथम आनोग बकुश कहियें अरु अनजानपणसें अरुत करे, तिसकू अ

नानोग वक्रा कर्हिं, ए दूसरा चेद मूजोत्तर गुणों करी मंगुक द्वे. लोभ  
 थैसे जानते हे, परंतु गाना ( गुप्त ) बाय जगाये हे. तिसरू सत्रत वक्रा  
 कर्हिं ए तीसरा चेद थरु जो प्रगट मूजोत्तर गुणम बाय जगाये, निमक  
 असवृत वक्रा कर्हिं ए पांचा चेद ॥ १ ॥ तथा जो आस मुत्तारि  
 मांजे, मजादि दूर करे, सो यथा सूटमयकुश कर्हिं, ए पांचमा चेद

अथ कुशीज निर्गथका सरूप निखते हे, शीन कर्हिं चारित्र सो चारि  
 त्र जिसका कुत्तित है, सो कुशीन निर्गथ, इसके दो चेद हे ॥२॥ एक प्रति  
 सेवना कुशीज, दूसरा कपायों करी कुशीज, सो मज्जजनकी कपाया करके  
 जो कुशीज सो कपाय कुशीज, ए दोनोहो चेद पांच प्रकारसे हे. सा कहते  
 हैं, जो १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ तप, ५ यथा सूटमत ॥४॥ इहां  
 ज्ञानादि कुशीज तो जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, थरु तप, यह चारो आजी  
 विकाके वास्ते करे, सो इन चारोका प्रतिसेवना कुशीज तथा एह तपस्वीहं,  
 इत्यादि प्रगसा सुणके बहुत खुशी होवे, सो पांचमा यथासूटमप्रतिसेवना  
 कुशीज जाननां तथा जो १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ तपांसि तप, सज्जजन,  
 कपायके वदय करके इनका व्यापार करे, सो ज्ञान, दर्शन, चारित्रका कपाय  
 कुशीज जानना जो कपाय कुशीज है, सो कपायके वश हो कर के शाप दे  
 देता है, मन करके जो क्रोधादिकोको सेवे, सो यथासूटमकपायकुशीज,  
 अथवा कपायों करके जो ज्ञानादिकोंको विराध, सो ज्ञानादिक कुशीज  
 जाननां काइक आचार्य, तप कुशीजके स्थानमे लिंगकुशीज कहते हैं,  
 यह दो प्रकारके निर्गथ पांचमे आरेके पर्यंत तक रहेंगे जो कोइ इत त  
 रेके साधुक साधु वा गुरु न माने, वो जीव, मिथ्यादृष्टि बहुत ससारी  
 जिनमतका ब्रह्मपक है, ऐसे मिथ्यादृष्टिकी सगतनी करनी योग्य नहीं ॥

इति श्री तपगङ्गीये मुनिश्री बुद्धिविजयशिष्य मुनिआनंदविजय आत्मराम  
 विरचिते, जैनतत्त्वादर्शे शुरुतत्त्वस्वरूपनिर्णयनामा तृतीय परिच्छेद संपूर्ण ॥३॥



॥ इति तृतीय परिच्छेद संपूर्ण ॥ ३ ॥

## ॥ अथ चतुर्थपरिच्छेद प्रारंभ ॥

॥ यह चतुर्थ परिच्छेदमें कुगुरु तत्त्वका स्वरूप लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ सर्वा  
निजापिण सर्व, नोजिन सपरिग्रहा ॥ अब्रह्मचारिणो मिथ्यो, पदेशागुर  
वोमता ॥ १ ॥ अर्थ—( सर्वा निजापिण ) सर्व जो स्त्री, धन, धान्य,  
हिरण्य, ( सोना ) रूपादि सर्व धातु तथा क्षेत्र, वास्तु क्षेत्र ( खेत ) हाट, हवे  
ली, चतु पदादिक अनेक प्रकारके पशु, इन सर्वकी अनिजापा करनेका  
शील है जिसका, सो सर्वा निजापी, तथा ( सर्वनोजिन ) सो सर्व मय,  
मांसादिक बावीस अजह्य, तथा बत्तीस अनतकाय, तथा अपर जो अ  
नुचित आहारादिक है, इन सर्वका नोजन करनेका शील है जिसका सो  
सर्वनोजिन ( सपरिग्रहा ) जो पुत्र, कलत्र, बेटा, बीटी प्रमुख करी स  
हित वर्तें, सो सपरिग्रह इसी वास्ते अब्रह्मचारी है जो अब्रह्मचारी होता  
है, तिसमें महा दोष होते हैं, इस वास्ते अब्रह्मचारी ऐसा न्याय उप  
न्यास कया है, अथ अगुरुपणोंका असाधारण कारण कहिये है, ( मि  
थ्योपदेशा ) मिथ्या ( वितथ ) आत्मके उपवेश विना धर्मका उपदेश है  
जिनका सो अगुरु है, जे कर इहां कोइ ऐसी तर्क करे जो धर्मोपदेशका  
दाता है, सो गुरु है, तो फेर नि परिग्रहादि गुणोंका काहेकू अन्वेषण कर  
णों ? इस शकाके दूर करणे वास्ते दूसरा श्लोक फेर कहते हैं

॥ श्लोक ॥ परिग्रहार्जमग्रा, स्तारयेयु कथ परान् ॥ स्वयं वरिष्ठो न पर,  
मीश्वरीकर्तुमीश्वर ॥ २ ॥ अर्थ—परिग्रह रूपादि आरज जीवोंकी हिंसा  
सर्वा निजापीपणा, औ सर्व नोजिपणां इन दोनो वस्तुओंमें जो मग्न है,  
औ नवसमुद्रमें मूबा दूया है, वो किसतरसें दूसरे जीवोंकू ससार सागरसें  
तार सका है ? इस बातमें दृष्टांत कहते हैं, कि जो पुरुष आपही बरछी है,  
वो दूसरोंको क्युं कर धनाढ्य कर सका है ? प्रथम श्लोकके चौथे पदमें “मि  
थ्योपदेशागुरवोमता” इस पदका विस्तार लिखते हैं, कुगुरु जो हैं, उनका  
उपवेश इस प्रकारसें मिथ्या है इस मिथ्या उपदेशके स्वरूपहीमें प्रथम  
तीन सौ त्रेश्वर मतका स्वरूप लिखते हैं, उनमें एक सौ अस्ती मत तो क्रिया  
वादीके है, औ चौरासी मत, अक्रियावादीके हैं, औ सदसत मत, अज्ञानवा  
दीके है, अरु बत्तीस मत, विनयवादीके हैं, ए पूर्वोक्त सर्व मत एकत्र कर  
नेसें तीन सौ त्रेश्वर होते हैं

नानोग वक्रश कहिये, ए दूमरा चेद. मूजोतर गुणों करी मंगुक ई. लोभ  
 श्रैसे जानते ई. परंतु ठाना ( गुम ) राय जगावे ई. तिसरु मंगुत वक्र  
 कहिये ए तीसरा चेद. थरु जो प्रगट मूजोतर गुणमं दोय जगावे. निम्न  
 थसवृत वक्रश कहिये ए चौथा चेद ॥ ५ ॥ तथा जा आगि मुखादि  
 मांजे, मलादि दूर करे. सो यथा सूत्रमयकृश कहिये. ए पांचमा चेद

अथ कुशीज निर्मथका स्वरूप जिलते ई. जीज कहिये चाग्रि सो चारि  
 त्र जिसका कुत्सित है. सो कुशीज निर्मथ, इसके दो चेद ई ॥३॥ एक प्रति  
 सेवना कुशीज, दूसरा कपायो करी कुशीज, सो सज्जजनकी कपायां करके  
 जो कुशीज सो कपाय कुशीज, ए दोनोही चेद पांच प्रकारमें ह. मो कहत  
 हैं, जो १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ तप, ५ यथा सूदमत ॥४॥ ईश  
 ज्ञानादि कुशीज तो जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, थरु तप, यह चारो आजी  
 विकाके वास्ते करे, सो इन चारोंका प्रतिसेवना कुशीज तथा एह तपस्वीह,  
 इत्यादि प्रशसा सुणके बहुत खुशी होवे, सो पांचमा यथासूदमतप्रतिसेवना  
 कुशीज जाननां तथा जो १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ तपोति तप, सज्जजन,  
 कपायके उदय करके उनका व्यापार करे, सो ज्ञान, दर्शन, चारित्रका कपाय  
 कुशीज जाननां जो कपाय कुशीज है, सो कपायके वश हो कर के शाप दे  
 देता है, मन करके जो क्रोधादिकोंको सेवे, सो यथासूदमतकपायकुशीज,  
 अथवा कपायो करके जो ज्ञानादिकोंको विराधे, सो ज्ञानादिक कुशीज  
 जाननां कोइक आचार्य, तप कुशीजके स्थानमें लिंगकुशीज कहते हैं,  
 यह दो प्रकारके निर्मथ पांचमे आरेके पर्यंत तक रहेंगे जो कोइ इत त  
 रेके साधुक साधु वा गुरु न माने, वो जीव, मिथ्यादृष्टि बहुत ससारी  
 जिनमतका उद्घापक है, ऐसे मिथ्यादृष्टिकी सगतजी करनी योग्य नहीं ॥

इति श्री तपगङ्गीये मुनिश्री बुद्धिविजयशिष्य मुनिआनंदविजय आत्माराम  
 विरचिते, जैनतत्त्वादर्थे गुरुतत्त्वस्वरूपनिर्णयनामा तृतीय परिच्छेद संपूर्ण ॥३॥

॥ इति तृतीय परिच्छेद संपूर्ण ॥ ३ ॥

नहीं होते हैं, तथा षट् ऋतुओंका विनाश, तथा बाल, कुमार, यौवन, और पतितादिक अवस्था विशेष काल विना नहीं हो सकती हैं, जो जो प्रति नियत काल विनागादिक हैं, तिन सबका कालही नियंता है, जे कर कालकों नियंता न मानीयें, तो किसी वस्तुकीनी व्यवस्था नहीं होवेगी, क्यों कि जैसे कोई पुरुष, मूंग रांधता है, सो नी काल विना नहीं रांधे जाते हैं, नहीं तो दांढी इधनादि सामग्रीके सयोगसे प्रथम समयहीमें मूंग रांध जाते ? तिस वास्ते जो करता है, सो कालही करता है, तथाचोक्त ॥ न कालव्यतिरेकेण, गर्जनाद्युत्पत्तिः ॥ यत्किंचिज्जायते लोके, तदसौ कारणं किञ्च ॥ १ ॥ किञ्चित्कालादृते नैव, मुञ्जपंक्तिरपीक्ष्यते ॥ स्थाव्यादि सन्निधानेऽपि, तत कालादसौ मतः ॥ २ ॥ कालनावे च गर्जादि, सर्वं स्यादव्यवस्थया ॥ परेष्टदेतुसन्नाह, मात्रादेव तद्वद्भावात् ॥ ३ ॥ इन श्लोकोंका भावार्थ उपर लिख आये हैं तथा ॥ काल पचति नूतानि, काल सहरते प्रजा ॥ काल सुप्तेषु जागर्ति, कालो हि ध्रुवतः क्रमः ॥ ४ ॥ इहां परेष्ट देतुके सन्नाह मात्रादिकसे दूसरायोंने जो मान्या है, कि स्त्री पुरुषके सयोग मात्र देतुसे गर्जकी उत्पत्ति, सो एक वर्षके स्त्री पुरुषके सयोगसे क्यों नहीं हो जाते हैं ? इस वास्ते कालही गर्जकी उत्पत्तिका हेतु है, तथा जब स्त्रीकूँ गर्ज होनेमें ऋतुकाल है तिसके विना स्त्री पुरुषके सयोगसे क्यों नहीं गर्ज होता है ? तथा कालही पकाता है, और कालही पृथिवी आदिक नूतनोंको परिणामांतरको पट्टचाता है, तथा “काल संहरते प्रजा ” कालही पूर्व पर्यायसे पर्यायांतरमें लोकोंको स्थापन करता है तथा “काल सुप्तेषु जागर्ति” कालही सूते दूये जनोंकी रक्षा करता है तिस वास्ते प्रगट है कि काल ध्रुवतः क्रम है, कालको दूर करनेमें कोईनी समर्थ नहीं है, यह कालवादी का विकल्प है ॥ १ ॥

इसी तरें दूसरा विकल्पनी कह देनां परंतु कालकी जगे ईश्वर कह देनां “यथा अस्ति जीव स्वतो नित्य ईश्वरतः” जीव, अपणे स्वरूप करके नित्य है परंतु ईश्वर उत्पन्न करता है, क्योंकि ईश्वरवादी सर्व जगत् ईश्वरहीका करा दूया मानते हैं, ईश्वर उसकू कहते हैं, कि जिसके १ ज्ञान, २ वैराग्य, ३ धर्म, ४ ऐश्वर्य, ५ चारो स्वत सिद्ध होवें, अरु जीवोंको स्वर्ग, मोक्ष, नरकादिकके जानेमें जो प्रेरक द्रोवे ॥ तदुक्त ॥

तीनमें जो क्रियावादी हैं सो श्रैते कहने के कि कर्ताके बिना ३  
 एषमधाविलक्षण क्रिया नहीं होती है, तिस वास्ते क्रिया जो है, सो का  
 त्माके साथ समगय सबधवाली है, श्रैते कहनेका शीत सनाव है कि  
 नका सो क्रियावादी है. यह जो क्रियावादी है, सो आत्मादिक नव पदा  
 योंको एकांत अस्तित्वरूप पणे माने है, तिस क्रियावादीके एक सो ३  
 स्ती मत इस उपाय करके जान लेने, १ जीव, २ अजीव, ३ आश्रय,  
 ४ वध, ५ तत्त्व, ६ निर्ज्वरा, ७ पुण्य, ८ अपुण्य, ९ मोक्ष, यह नव पदार्थ  
 अनुक्रम करके पट्टी पत्रादिकम लिखने. फेर जीव पदार्थके हेतु सत अरु  
 परत यह दो जेव स्थापन करने फेर इन सत परत के हेतु न्यारे न्यारे नित्य  
 अरु अनित्य यह दो जेव स्थापन करने फेर नित्य अनित्यके इन दानोंके  
 हेतु न्यारे न्यारे १ काल, २ ईश्वर, ३ आत्मा, ४ नियति, ५ स्वभाव, यह पांच  
 स्थापन करने, पीठेसे विकल्प कर लेने, सो आगे लिखते हैं पत्रस्थापना ॥

## जीव

स्वत		परत	
नित्य	अनित्य.	नित्य	अनित्य
१ काल	१ काल	१ काल	१ काल
२ ईश्वर	२ ईश्वर	२ ईश्वर	२ ईश्वर
३ आत्मा	३ आत्मा	३ आत्मा	३ आत्मा
४ नियति	४ नियति	४ नियति	४ नियति
५ स्वभाव	५ स्वभाव	५ स्वभाव	५ स्वभाव.

विकल्प करणेकी रीति कहते हैं अस्ति जीव स्वतोनित्य कालतश्च  
 त्येकोविकल्प ॥ १ ॥ इस विकल्पका यह अर्थ है कि यह आत्मा निश्चय  
 अपणे रूप करके कालसे उत्पन्न हुई है, कालवादीके मतमें यह विक  
 ल्प है, कालवादी उसक कहते हैं कि जो कालहीसे जगत्की उत्पत्ति, स्थि  
 ति अरु प्रलय मानते हैं, तैसेही कालवादी कहते हैं कि चपक, अशोक,  
 सहकार, नीबू, जंबू, कदवावि जो बनस्पति है, सो कालके बिना फूलोंका  
 जगना, फलका बधाविक नहीं हो सका है, तथा हिमकण संयुक्त शीत  
 का पड़ना, तथा नक्षत्र गर्जका धारण, वर्षाका होना, यह काल बिना

नहीं होते हैं, तथा पद ऋतुवोंका विभाग, तथा बाल, कुमार, यौवन, औ पलितादिक अवस्था विशेष काल विना नहीं हो सकती हैं, जो जो प्रति नियत काल विभागादिक हैं, तिन सबका कालही नियंता है, जे कर कालकों नियंता न मानीयें, तो किसी वस्तुकीनी व्यवस्था नहीं होवेगी, क्यों कि जैसे कोइ पुरुष, मूंग रोधता है, सो नी काल विना नहीं राधे जाते हैं, नहीं तो हांमी इधनादि सामग्रीके संयोगसे प्रथम समयेहीमें मूंग रोध जाते ? तिस वास्ते जो करता है, सो कालही करता है, तथाचोक्त ॥ न कालव्यतिरेकेण, गर्जनाद्युजादिक ॥ यत्किंचिच्छायते लोके, तदसौ कारण किञ्च ॥ १ ॥ किंचित्कालादृते नैव, मुञ्जपत्तिरपीक्ष्यते ॥ स्थाव्यादि सन्निधानेऽपि, तत कालादसौ मत ॥ २ ॥ कालनावे च गर्जादि, सर्व स्यादव्यवस्थया ॥ परेष्टदेतुसद्भाव, मात्रादेव तदुद्भवात् ॥ ३ ॥ इन श्लोकोंका जावार्थ उपर लिख आये हैं तथा ॥ काल पचति नूतानि, काल सदर ते प्रजा ॥ काल सुप्तेषु जागर्ति, कालोहि इरतिक्रम ॥ ४ ॥ इहां परेष्ट देतुके सद्भाव मात्रादिकसे दूसरायोंने जो मान्या है, कि स्त्री पुरुषके सयोग मात्र देतुसे गर्जकी उत्पत्ति, सो एक वर्षके स्त्री पुरुषके संयोगसे क्यों नहीं हो जाते है ? इत वास्ते कालही गर्जकी उत्पत्तिका देतु है, तथा जब स्त्रीकू गर्ज होनेमें ऋतुकाल है तिसके बिना स्त्री पुरुषके संयोगसे क्यों नहीं गर्ज होता है ? तथा कालही पकाता है, औ कालही पृथिवी आदिक नूतोंको परिणामांतरको पट्टचाता है, तथा “काल सदरते प्रजा ” कालही पूर्व पर्यायसे पर्यायांतरमें लोकोंको स्थापन करता है तथा “काल सुप्तेषु जागर्ति” कालही सूते दूये जनोंकी रक्षा करता है तिस वास्ते प्रगट है कि काल इरतिक्रम है, कालको दूर करणेमें कोइनी समर्थ नहीं है, यह कालवादी का विकल्प है ॥ १ ॥

इमी तरें दूसरा विकल्पनी कह देनां परंतु कालकी जगे ईश्वर कह देनां “यथा अस्ति जीव स्वतो नित्य ईश्वरतः” जीव, अपणे स्वरूप करके नित्य है परंतु ईश्वर उत्पन्न करता है, क्योंकि ईश्वरवादी सर्व जगत् ईश्वरहीका करा दूया मानते हैं, ईश्वर उसकू कहते हैं, कि जिसके १ ज्ञान, २ वैराग्य, ३ धर्म, ४ ऐश्वर्य, ५ चारो स्वत सिद्ध होवें, अरु जीवोंको स्वर्ग, मोक्ष, नरकादिकके जानेमें जो प्रेरक होवे ॥ तदुक्त ॥



ज्ञानमप्रतिघं यस्य, नैगम्य च जगत्पतेः ॥ १० ॥ अर्थ चैव धर्मभ, मन्त्रलिङ्ग च  
तुष्टयम् ॥ १ ॥ अक्षोजंतुग्नीगोप, मान्मन सुगुप्तयो ॥ ६ ॥ अर्थ प्रसिद्धे  
गष्टे, त्स्वर्गं वा अन्नमेव च ॥ ६ ॥ आदि ॥ १ ॥

तीसरा विकल्प आत्मवादीयोका द्वे, आत्मवादी उनको कहते हैं कि  
जो " पुरुष एवेद सर्व मित्यादि " (जो कुछ दीयता) है, सो सर्व पुरुषही  
है ऐसे मानते हैं ॥ ३ ॥

चौथा विकल्प नियतवादीयोका द्वे, जो नियतवादी ग्रंथ कहते हैं कि  
पदार्थोंमें एक ऐसी सामर्थ्य है कि जिसकी सामर्थ्यमें सर्व पदार्थ अपने  
अपने स्वरूप नियमों करके बसे वैसेही होते हैं, परंतु अन्यथा पणे नहीं  
होते हैं, सो कहते हैं, जो पदार्थ जिसकाजने जिस करिक जाता है, सो प  
दार्थ तिस कालने तिस करिकें नियत रूप करकही जाता दीखता है, अन्य  
था नहीं, तो कार्य कारण नावकी व्यवस्था नियामकके अज्ञावसे कदापि  
न होवेगी, तिस वास्ते ऐसे कार्य नियततासे प्रतीत होती है जो नियति,  
तिसको कौन पुरुष प्रमाणपथका कुगल है जो बाध सका है ? जे कर  
नियति बाधित हो जावेगी तो और जगेनी प्रमाण मिथ्या हो जावेंगे, त  
था चोक्त ॥ नियते नैव रूपेण, सर्वे नावा नवति यत् ॥ ततो नियतिजा ह्ये  
ते, तत्स्वरूपानुबेधत ॥ १ ॥ यद्यदेव यतो यावत्, तत्तदैव ततस्तथा ॥ नि  
यतं जायते न्यायात्, क एनां बाधितु द्रुम ॥ २ ॥ इन दोनों श्लोकोंका  
अर्थ उपर लिख दीया है ॥ ४ ॥

पांचमा विकल्प, स्वजाववादीयोका है, वो स्वजाववादी ऐसे कहते हैं  
कि इस ससारमें सर्व पदार्थ स्वजावहीसे उत्पन्न होते हैं, सो कहते हैं कि  
माटीसे घट होता है, परंतु वस्त्र नहीं होता है, अरु तंतुओंसे वस्त्र होता  
है, परंतु घटाविक नहीं होता है, यह जो मर्यादा संयुक्त दोनों है सो  
स्वजाव बिना कदापि नहीं हो सका है, तिस वास्ते यह जो कुछ होता  
है, सो सर्व स्वजावसेही होता है, तथा अन्यकार्य तो दूर रहो, परंतु यह  
जो मूगोका रंध जाणा है, सोनी स्वजाव बिना नहीं रंधते हैं, तथाहि  
दांही, इधन, कालादि सामर्थ्याका सजवजी है तोनी कोकडु ( कतिनमूंग )  
नहीं रंधते हैं, तिस वास्ते जो जिसके होयां होवे, जिसके न होयां जो

न होवे, सो सो अन्वय व्यतिरेक करके तिसका कर्त्ता है, स्वप्नावहीसें मूंग रं धते है, इस वास्ते स्वप्नावही सर्व वस्तुका हेतु है, ए पांचमा विकल्प ॥ ५ ॥

यह पाच विकल्प स्वत ईशपद करके होते है, ऐसेही पांच परत ईश पद करके उपलब्ध होते हैं, परत शब्दका अर्थ तो ऐसा है, कि पर पदा योंसें व्यावर्त्त रूप करके यह आत्मा निश्चय करके है, ऐसें नित्य शब्द करके दश विकल्प दूये है, ऐसेही अनित्य पद करकेनी दश विकल्प होते हैं, सर्व विकल्प एकठे करेंसें बीश होते हैं, यह बीश विकल्प जीव पदार्थ करके होते हैं, ऐसेही अजीवादिक पदार्थोंके साथ, न्यारे न्यारे बीश विकल्प जान लेनें. तब बीशको नवसू गुणाकार कखां सब मिलिके एक शो अस्ती मत क्रियावादीके होते हैं ॥ इति क्रियावादी ॥

अथ अक्रियावादीके चौरासी मत लिखते हैं अक्रियावादी कहते हैं कि क्रिया, पुण्य पाप रूपादि नहीं है, क्योंकी क्रिया, पुण्य पाप रूपादि स्थिर पदार्थको जगती है, अरु स्थिर पदार्थ तो जगत्में कोइ नो नहीं है, क्यों के उत्पत्त्यनंतरही पदार्थका विनाश हो जाता है ऐसें जो कहते हैं, सो क्रियावादी ॥ तथा चादुरेके ॥ श्लोक ॥ कृणिका सर्वसंस्कारा, अस्थिराणां कृत क्रिया ॥ नूतिर्येषां क्रिया सैव, कारक सैव चोच्यते ॥ १ ॥ अस्यार्थ - सर्व संस्कार पदार्थ कृणिक है, इस वास्ते अस्थिर पदार्थोंकूं पुण्य पापादि क्रिया कहांसें होवे ? पदार्थोंका जो होणा है, सोइ क्रिया है, सोइ कारक है, इस वास्ते पुण्यापुण्यादि क्रिया नहीं यह जो अक्रियावादी हैं, सो आत्माकू नहीं मानते है, तिनके चौरासी मत जाननेका यह उपाय है कि १ जीव, २ अजीव, ३ आश्रय, ४ सबर, ५ निर्जरा, ६ वध, ७ मोक्ष, यह सात पदार्थ लिखने, पीछे यह जीवादि सातो पदार्थोंके हेतु न्यारे न्यारे स्व अरु पर यह दो विकल्प लिखने फेर इन दोनोके हेतु न्यारे न्यारे १ काल, २ ईश्वर, ३ आत्मा, ४ नियति, ५ स्वप्नाव, ६ यदृष्टा, यह छे लिखने इहां नित्यानित्य यह दो विकल्प इस वास्ते नहीं लिखे हैं कि जब आत्मादि पदार्थही नहीं हैं, तो फेर नित्य अनित्यका सचव कैसें होवे ? तथा जो यह यदृष्टावादी हैं, सो सर्व नास्तिक अक्रियावादी हैं, इस वास्ते क्रिया वादी यदृष्टावादी नहीं हैं, इस वास्ते क्रियावादीके मतमें यदृष्टा पद नहीं ग्रहण कीया है, इस मतके चौरासी जेव इसी रीतिसें जानने सो कहते है

“ नास्ति जीव स्वतः कालतद्व्येकोपिकृत्य ” नही है जीव अपने स्वरूप करके कालमें उत्पन्न हुआ, यह एक विकल्प, अतएव ईश्वरादिसंकेतों के फेर यदृष्टा पधित सर्व है विकल्प दृष्टे इनका अर्थ पीछली तर जानना, परंतु इतना विशेष है जो यदा यदृष्टावादी अधिक है

प्रश्न - यदृष्टावादीयोंका क्या मत है ? उत्तर - जो पदार्थोंका संतान की अपेक्षा नियत कार्य कारण नाब नही मानते, किंतु “ यदृष्टया ” जो कुछ होता है, सो सर्व यदृष्टासे होता है, एतावता कार्य कारण नाब नही यदृष्टादिसंकेतों होता है, यदृष्टावादी असे कहते हैं, कि नही है निश्चय करके पदार्थोंको आपसमें कार्य कारण नाब, क्यों कि कार्य कारण नाब प्रमाणसे ग्रहण नहीं किया जाता है, तथाही मृतक ममकसेंनी ममक उत्पन्न होता है अरु गोबरसेंनी ममक उत्पन्न होता है अग्निसंसेनी अग्नि उत्पन्न होती है अरु अग्निसंसेनी अग्नि उत्पन्न होती है, धूमसेंनी धूम उत्पन्न होता है, अरु धूमसेंनी धूम उत्पन्न होता है, कदलीके बीजसेंनी केला उत्पन्न होता है, अरु केलेके बीजसेंनी केला उत्पन्न होता है, बीजसेंनी वटवृक्ष उत्पन्न होता है, अरु वटवृक्षकी शाखासेंनी बट वृक्ष उत्पन्न होता है, इस वास्ते प्रति नियत कार्य कारण नाब कि सी जगेंनी नहीं देखणेमें आता है, इस वास्ते यदृष्टा करीके किसी जगें कुछ होता है, ऐसे मानना चाहिये, क्योंकि जब जान लीसा कि जो कुछ होता है, सो यदृष्टासे होता है, तो फेर काहेको बुद्धिमान कार्य कारण नाबको माने, औ आत्माको क्लेश देवे यह जैसे सत के साथ है विकल्प करे है, ऐसेही नास्ति परत के साथनी है विकल्प होते हैं, यह जब सर्व विकल्प मिलाइये तब बारा विकल्प होते हैं, इन व रीकूं जीवादिक सात पदार्थों करके सात गुणा कक्षा चौरासी जेव अक्रिया वादीके होते हैं ॥ इति अक्रियावादी ॥ ५ ॥

अथ तीसरा अज्ञानवादीका जेव कहते हैं, कि जूंमा ज्ञान है, जिनका सो अज्ञानवादी जानना, अथवा अज्ञान करके जो प्रवर्त्त, सो अज्ञानिका अज्ञानवादी, ऐसे कहते हैं कि ज्ञान अज्ञानी वस्तु नहीं है, क्योंकि ज्ञान जब बोधे गा, तब परस्पर बिबाद होगा, जब बिबाद होगा तब चित्त मलिन होगा, न ब चित्त मलिन हुआ, तब संसारकी वृद्धि होवेगी, जैसे किसी पुरुषने को

इ वस्तु उलटी कही, तब जो ज्ञानीने सुण करके ज्ञानके अजिमानसे उस पुरुषके उपर बहुत मलिन चित्त करके उसके साथ विवाद करणे लगा, विवाद करते थके अत्यंत तीव्रचित्त मलिन अरु अहंकार बढ़ा, उस अहंकार औ चित्तकी मलिनतासें महा पाप कर्म उत्पन्न हुआ, तिस पापसे दीर्घतर सत्सारकी वृद्धि हुई, इस वास्ते ज्ञान अच्छी वस्तु नहीं अरु जब अज्ञानी अपणोंको मानीयें, तब तो अहंकारका सजब नहीं होता है, अरु दूसरोंके उपर चित्तका मलिन पणानी नहीं होता है, तिस वास्ते कर्मका बधनी नहीं होता है, तथा जो कार्य विचार करीयें है, तिसमें महा कर्मका बध होता है, उसका फलनी महा जयानक होता है, अरु जो काम, मनोव्यापार बिना करीयें है, तथा मनोव्यापार बिना किसी जीवका बध करीये हैं, तिसका फल अवश्यमेव जोगनेमें नहीं आता है, अरु जो उस काममें किंचित् कर्मबध होता है, सोनी चूने गजनीं तके उपरि बालु (रेतकी) मुष्टिके सबधवत् स्पर्शमात्र है, परंतु बध नहीं होता है इस वास्ते अज्ञानही मोक्षगामीयों पुरुषोंको अगीकार करणों श्रेय है, परंतु ज्ञान अगीकार करणों श्रेय नहीं है यह अज्ञानवादी कहते हैं की ज्ञान हम माननी लेवें, जे कर ज्ञानका निश्चय करणोंमें सामर्थ्य होवें ? क्योंकि प्रथम तो ज्ञान सिद्धही नहीं हो सक्ता है, तथाहि जितने मत्तावलबी पुरुष है, सो सर्व परस्पर निन्नही ज्ञान अगीकार करते हैं, इस वास्ते क्यों कर निश्चय करणोंमें समर्थ्य होवे ? जो इस मतका ज्ञान सम्यग् है, अरु इस मतका ज्ञान सम्यग् नहीं है, जे कर कहोगे कि जो सकल वस्तुके समूहको साक्षात् कारी ऐसे ज्ञानवाला जो जगवान है, तिसके उपदेशसें जो ज्ञान होवे सो सम्यग् ज्ञान है, अरु जो इसके बिना दूसरे मत हैं, उनका ज्ञान सम्यग् नहीं क्योंकि उनके मतमें जो ज्ञान है, सो सर्वज्ञका कथन कीया दुध्या नहीं है

अज्ञानवादी कहते हैं कि यह तुमारा कहनां है, सो तो सत्य है, किं तु सकल वस्तु समूहका साक्षात् करणवाला ज्ञानी सुगत, ईश्वर, विष्णु, ब्रह्मादिकों हम माने ? किंवा जगवान् वर्द्धमान महाबीर स्वामीको सकल वस्तु समूहके साक्षात् करणे वाला माने ? फेरनी वोही सशय रहा, निश्चय न दुध्या, जो कौन सर्वज्ञ है ? जे कर कहोगे कि जिस जगवान्के पादार

“ नास्ति जीवः सतः काजतः अन्येकोपि रूपः ” नन्दा है जीव अपने स्वरूप करके काजतें उत्पन्न दृष्टा, यह एक विकल्प, ऐसे ही भ्रमरविषे कर यह छा पर्यंत सर्व ठे विकल्प दृष्टे इनका अर्थ पीनजी तरें जानने । रंतु इतना विशेष है जो यहां यह छावादी अधिक है.

प्रश्न—यह छावादीयोंका क्या मत है ? उत्तर.—जो पदार्थोंकें सत्त्व की अपेक्षा नियत कार्य कारण नाव नन्दा मानते, किंतु “ यह छावा ” जो कुछ होता है, सो सर्व यह छासे होता है, एतावता कार्य कारण जब नहीं यह छाहीसे होता है, यह छावादी अंग कहते हैं, कि नन्दा है निज करके पदार्थोंको आपसमें कार्य कारण नाव, क्यों कि कार्य कारण जब प्रमाणसे ग्रहण नहीं कहा जाता है, तथाही मृतक ममकसेनी ममक उत्पन्न होता है थरु गोवरसेनी ममक उत्पन्न होता है अग्निसेनी अग्नि उत्पन्न होती है थरणीके काएसेनी अग्नि उत्पन्न होती है, धूमसेनी धूम उत्पन्न होता है, थरु अग्निसेनी धूम उत्पन्न होता है, कदलीके कद सेनी केला उत्पन्न होता है, थरु केलेके बीजसेनी केला उत्पन्न होता है, बीजसेनी वटवृक्ष उत्पन्न होता है, थरु वटवृक्षकी शाखासेनी वट वृक्ष उत्पन्न होता है, इस वास्ते प्रति नियत कार्य कारण नाव कि सी जगेंनी नहीं देखणेमें आता है, इस वास्ते यह छा करीके किसी जगें कुछ होता है, ऐसे मानना चाहिये, क्योंकि जब जान लीवा कि जो कुछ होता है, सो यह छासे होता है, तो फेर काहेको बुद्धिमाव कार्य कारण नावको माने, औ आत्माको क्लेश देवे यह जैसे सतके साथ ठे विकल्प करे है, ऐसे ही नास्ति परत के साथनी ठे विकल्प होते हैं, यह जब सर्व विकल्प मिलाइये तब बारा विकल्प होते हैं, इन बारांकी जीवाविक सात पदार्थों करके सात गुणा कक्षा चौरासी नेव अक्रियावादीके होते हैं ॥ इति अक्रियावादी ॥ ५ ॥

अथ तीसरा अज्ञानवादीका नेव कहते है, कि जूना ज्ञान है, जिनका सो अज्ञानवादी जानना, अथवा अज्ञान करके जो प्रवर्त्ते, सो अज्ञानिका अज्ञानवादी, ऐसे कहते हैं कि ज्ञान अज्ञानी वस्तु नहीं है, क्योंकि ज्ञान जब होवे गा, तब परस्पर बिबाद होगा, जब बिबाद होगा तब चित्त मलिन होगा, जब चित्त मलिन हुआ, तब संसारकी वृद्धि होवेगी, जैसे किसी पुरुषने को

महावीर सर्वज्ञाहीके कथन करे दूये हैं, यह क्योंकर जाना जाये ? क्या जाने किसी धूर्त्तने रच करके महावीरका नाम रख दिया होवेगा ? क्योंकि यह बात इन्द्रिय ज्ञानका विषय नहीं है, अरु अतीन्द्रिय ज्ञानकी सिद्धिमें कोइनी प्रमाण नहीं है

जला कदी यहनी होवे कि जो आचारांगादिक शास्त्र हैं सो महावीर सर्वज्ञाहीके कहे दूये हैं, तोनी श्रीमहावीरजीके कहे दूये शास्त्रका यही अ निप्राय, यही अर्थ है, और अर्थ नहीं, यह क्योंकर जान्या जाय ? क्योंकि शब्दोंके अनेक अर्थ हैं, सो इस जगत्में प्रगट सुननेमें आते हैं, क्या जाने इनही अक्षरों करके श्रीमहावीर स्वामीजीने कोइ अन्यही अर्थ कहा होवे, अरु तुमारी समझमें उनही अक्षरों करके कबु और अर्थ नास्तन होता होवे, फेर निश्चय क्यों कर होवे जो इन अक्षरोंका यही अर्थ जगवानने कहा है, जे कर तुमने यह मान रक्का होवे कि जगवानके समयमें गौतमादिक मुनि थे, उनोने जगवानके मुखारविंदसे साक्षात् जो अर्थ सुना था, सोइ अर्थ आज तांइ परंपरासें चला आता है, इस वास्ते आचारांगादिक शास्त्रोंका यही अर्थ है, अन्य नहीं यहनी तुमारा कहनां अशुक्त है, क्योंकि गौतमादिकनी उद्यस्थ थे, अरु उद्यस्थकों दूसरेकी चित्तवृत्तिका ज्ञान नहीं होता है, दूसरेकी चित्तवृत्ति तो अतीन्द्रिय ज्ञानका विषय है, उद्यस्थ तो इन्द्रिय द्वारा जान सकता है, इन्द्रियज्ञानी सर्वज्ञाके अ निप्रायकों क्यों कर जान सके, जो सर्वज्ञका यही अ निप्राय है ? इस अ निप्रायसें सर्वज्ञनें यह शब्द कहा है ? इस वास्ते जगवानका अ निप्राय तो गौतमादिक नहीं जान सके हैं, केवल जो वरणावली जगवान् कहते जये सोइ वरणावली जगवानके पीछे लगे दूये गौतमादिक उच्चारण करते आये, परंतु जगवानका अ निप्राय किसीने नहीं जाना, जैसें आर्य देशोत्पन्न पुरुषके शब्द उच्चारणसे म्लेच्छनी वैसा शब्द उच्चार सकता है, परंतु तात्पर्य कुछ नहीं जानता, ऐसेही महावीरके शब्द के अनुवादक गौतमादिक हैं, परंतु महावीरका अ निप्राय नहीं जानते, इस वास्ते सम्यग् ज्ञान किसी मतमेंनी सिद्ध नहीं होता है, एक तो ज्ञान होणेसें पुरुष अ निमानसें बहुत कर्म बांध कर दीर्घ ससारी हो जाता है, दूसरा सम्यग् ज्ञान किसी मतमें है नहीं, इस वास्ते अज्ञानही श्रेय है,

त्रिद युगज सर्व देवता. इन्द्र, परस्पर अन्नं पुर्यंक विजिष्ट विजिष्टतर विजुम्भि  
 युति करके सयुक्त, संकटों विमानोमें बैठ करके सकल आकाश मंजुष्व  
 आघादित करते दृश्ये पृथिवीमें उतर करके पूजते जयें हैं. सो जगत्सर्व  
 वर्द्धमान स्वामी सर्वज्ञ है परंतु सुगत, गकर, पिप्पु, ब्रह्मादिक नहीं;  
 क्योंकि सुगतादिक सर्व, अल्प बुद्धिगाले मनुष्य दृश्ये हैं, इस वास्ते  
 वो देव नहीं दृश्ये हैं, जे कर सुगतादिकनी सर्वज्ञ होते, तो तिनकीनी देव  
 ता. इन्द्र, पूजा करते, परंतु किसीनी देवता, इन्द्रने पूजा नहीं करी इन  
 वास्ते सुगतादिक सर्वज्ञ नहीं दृश्ये हैं, हे जैन ! यह जो तुमने बात कही  
 है, सो अण्णें मतके राग करके कही है, परंतु इस बातमें इष्टसिद्धि न  
 हीं है, क्योंकि वर्द्धमान स्वामीही देवता, इन्द्र, देवलोकरे आ करके पूजा  
 करते थे, यह तुमारा कहना हम क्योंकर सच्चा मान लेवे ? जगवान् श्री  
 महावीरकों तो बहुत काल दूयांको हो गया है, उनके सर्वज्ञ होणेमें को  
 इनी साधक प्रमाण नहीं है ? जे कर कहोगे कि सप्रदायसे एतावता महा  
 वीरके शासनसे महावीर सर्वज्ञ सिद्ध होता है, तो इसमें यह तर्क होगी  
 कि यह जो तुमारी सप्रदाय है, सो कोन जाने किसी धूर्तकी चलाइ हुई  
 है ? वा किसी सत्पुरुषकी चलाइ हुई है, हम क्यों कर जान सके ? इस बा  
 तके सिद्ध करने वाला कोइनी प्रमाण नहीं है, अरु बिना प्रमाणके हम  
 मान लेवे, तो हम प्रेक्षावान् काहे के ? तथा मायावान् पुरुष आप सर्वज्ञ नहीं  
 नी होते तोनी अण्णें आपकू जगत्में सर्वज्ञ होना प्रगट कर देते हैं इन्द्रजा  
 लके (१४) पीठ है, तिनमेंसू कितनेक पीठोंके पाठक अण्णें आपको तीर्थ  
 करका रूप अरु इन्द्र, देवता, पूजा करते दृश्ये बना सके हैं, तो फेर देवता  
 अर्थात् आगमन पूजा देखनेसे सर्वज्ञ पणा क्यों कर सिद्ध होवे, जो हम  
 श्रीमहावीरजीकू सर्वज्ञ मान लेवे ? तुमारे मतका आचार्य समतनइ स्तुति  
 कारनी कहता है ॥ श्लोक ॥ वेधागमनजोयान, चामरादिविजुतय ॥ मा  
 याविष्वपि दृश्यते, ह्यतस्त्वमसि नो महान् ॥१॥ इस श्लोकका जावार्थ - देव  
 ताओंका आगमन आकाशमें चलनां, उत्र चामरादिककी विजुति, यह सर्व  
 आदंबर, इन्द्रजालीयमेंनी हो सका है, इस हेतुसे तो हे जगवन् ! तू हमारा  
 महान् स्तुति करणे योग्य नहीं हो सका है तथा हे जैन ! तेरे कहने  
 से महावीरही सर्वज्ञ होवे, तोनी यह जो आचारांगदिक साक्ष्य हैं, सो म

बढ़ जावेगा, तब तो ज्ञानवान् बहुत्र कर्म बंध करके दीर्घतर संसारि हो जावेगा, ऐसेही असत् आदिक शेष विकल्पोंकाजी अर्थ जान लेना ॥ इति ॥

विनय करके जो प्रवर्त्ते, सो वैयक्या इन विनयवादीयोंके लिंग अरु शास्त्र नहीं होता है, केवल विनयहीसे मोक्ष मानते हैं, तिन विनय वादीयोंके वचीस मत हैं, सो इस तरसे हैं, कि १ सुर, २ राजा, ३ जाति, ४ ज्ञाति, ५ स्थविर, ६ अधम, ७ माता, ८ पिता, इन आठोंकी मन करके, वचन करके, काया करके, अरु देशकाल वचित्त दान देने करके विनय करे, इन चारोंसे आठकों गुण्या वचीस हूये ॥ इति विनयवादी ॥ ४ ॥

ए सब मिल कर तीनसौ त्रेणव मत दुये ए सर्व मतधारी तथा इन मतोंके प्ररूपणे वाले सर्व कृगुरु हैं, क्योंकि यह सर्व मत मिथ्यादृष्टियोंके है, यह सब एकांतवादी हैं, परंतु स्यादादरूप अमृत स्वादसे रहित है, इनका जो अनिमित्त तत्त्व है, सो प्रमाण करके बाधित है, इनके मतोंको पूर्वाचार्योंने अनेक युक्तियोंसे खमन करा है, सो नव्य जीवोंके जानने वास्ते मैं नी पूर्वाचार्योंकी युक्तियां इन जापाग्रथमें किंचित् मात्र नीचे लिखता हूं

प्रथम जो कालवादी कहते हैंकि सर्व वस्तुका कालही कर्त्ता है, तिसका खमन लिखता हूं हे कालवादी ! यह जो काल है सो क्या ? एक स्वभाव नित्य व्यापी है ? १ किंवा समयादिक रूप करके परिणामी है ? जे कर आदि पक्ष मानोगे सो तो अयुक्त है, क्योंकि ऐसे कालकों सिद्ध करने वाला कोइनी प्रमाण नहीं है, जैसा आद्य पक्षमें तूने काल मान्या है, तैसा काल, प्रत्यक्ष प्रमाणसे उपलब्ध नहीं होता है, अरु ऐसे कालका कोइ लिंगनी अविनाभावरूप नहीं दीखता, इस वास्ते अनुमानसेनी सिद्ध नहीं होता है

पूर्वपक्ष —क्योंकर अविनाभावलिंगका अभाव कहते हो ? क्योंकि लिखता हैकि जरत रामचड़ाविकों विषे पूर्वापर व्यवहार सो पूर्वापर व्यवहार वस्तुरूप मात्र निमित्त नहीं है ? जे कर वस्तुरूप मात्र निमित्त होवे, तदा वर्त्तमानकालमें वस्तु रूपके विद्यमान होणे करके तैसे व्यवहार होना चाहिये, तिस वास्ते जिस करके यह जरत रामादिकोविषे पूर्वापर व्यवहार है, सो काल है, तथाहि पूर्वकालयोगी, पूर्व जरतचक्रवर्त्ती, अ परकालयोगी अपर रामादि



॥ इत्यज्ञानवादीका श्रद्धान ॥ सो अज्ञानी सदसत् प्रकारके हैं. तिनके ज्ञान  
 नेका यह उपाय है कि जीवाधिक नव पदार्थ किसी पदार्थिकमें लिखने,  
 अरु दशमे स्थानमें उत्पत्ति लिखनी. तिन जीवादि नव पदार्थोंके स्वरूप  
 न्यारे सत्त्वाधिक सात पद स्थापन करणें, सो यद्द है कि - १ सत्त्व, २ असत्त्व,  
 ३ सदसत्त्व, ४ अवाच्यत्त्व, ५ सदवाच्यत्व, ६ अशदवाच्यत्व, ७  
 सदसदवाच्यत्व, तहां १ सत्त्व, सो स्वरूप करके विद्यमान पण, २ असत्त्व,  
 सो पररूप करके अविद्यमान पण, ३ सदसत्त्व, सो सारूप पररूप करके  
 विद्यमान पण तहां यद्यपि सर्व वस्तु स्वरूपों करके सर्वदाही स्वभावसे  
 सदसत्त्व स्वभाव है, तोनी किसी जगे कदाचित् ठनूत रूप करके विवक्षा  
 करियें हैं, तिस हेतुसे यह तीन विकल्प होते हैं, तथा ४ सोऽ सत्त्व अत  
 त्व, जब युगपत् एक शब्द करके कहनेकी इछा करियें, तदा तिसका वा  
 चक कोइनी शब्द नहीं है, इस वास्ते अवाच्यत्व यह चारों विकल्प सक  
 जादेशा औसा नाम कहीयें, क्यो के यह चारों सकल वस्तु विषयकों ब  
 द्धण करते है, ५ अरु यदा एक जागमें सत्, दूसरे जागमें अवाच्य, युग  
 पत् विवक्षा करियें, तदा सदवाच्यत्व, ६ यदा एक जागमें असत्, दूसरे  
 जागमें अवाच्य, तदा असत् अवाच्यत्व, ७ यदा एक जागमें सत्, दूसरे  
 जागमें असत्, तीसरे जागमें अवाच्य युगपत् कल्पना करियें, तदा सदसद  
 वाच्यत्व इन सातों विकल्पोंसे अन्य (दूसरा) विकल्प कोइनी नहीं है,  
 जे कर कोइ करनी छेवे, तो इन सातोहीके अंतरभाव हो जायगे, परंतु सा  
 तोंसे अधिक विकल्प कदापि न होवेंगे, यह जो सात विकल्प कहे हैं इन  
 सातोंको नव गुणा करे, तब त्रैश्व होतेहैं, अरु उत्पत्तिके चार विकल्प  
 आदिकेही होते हैं. १ सत्त्व २ असत्त्व, ३ सदसत्त्व, ४ अवाच्यत्व, यह  
 चार विकल्प त्रैश्वमें प्रक्षेप करीयें, तब सदसत्त्व मत अज्ञानवादीके होते  
 है अब इन सातों विकल्पोंका अर्थ लिखते हैं, कि कौन जानता है जो  
 जीव सत्य है, यह एक विकल्प दूया कोइनी नहीं जानता है सत् जीव है  
 इसका ग्रहण करनेवाला प्रमाण कोइनी नहीं है जे कर कोइ जाणनी छे  
 वेगा जो जीव सत् है तो कौनसे पुरुषार्थकी सिद्धि हो गइ क्यो कि जब अज्ञान  
 हो जावेगा तब अनिनिवेश, अनिमान, चित्त मलिन लोकोंसे विवाद, जगदा,

मागभात् ॥ कालस्य पूर्वदित्व च, सहचार्यवियोगत ॥ १ ॥ प्रागसिद्धा  
वेकस्य, कथमन्यस्य सिद्धिरिति ॥ इस वास्ते प्रथम पक्ष श्रेय नहीं है

अथ दूसरा पक्ष मानोगे, सोनी अयुक्त है, क्योंकि समयादिक रूप  
परिणामी काल विषे काल एकजी है, तोनी विचित्र पणा उपलब्ध होता  
है, तथाहि एक कालमें भूग राधता कोइ रंधता है ? कोइ नहीं रंधता है  
तथा समकालमें एक राजाकी नौकरी करते थके एक नौकरकू थोड़ेही  
कालमें नौकरीका फल मिल जाता है, अरु दूसरेकू बहु कालांतरमेंनी वैसा  
फल नहीं मिलता है, तथा समकालमें खेती करता एक जाटके तो बहु  
धान्य उत्पन्न हो जाते हैं, अरु दूसरेकू थोड़ा फूटा हुआ खमित उत्पन्न  
होता है, तथा समकालमें कौड़ीयांकी मूठी जर कर जूमिकामें गेरीयें, तब  
कितनीक कौड़ीयां सूधी पड़ती हैं, अरु कितनीक थोड़ी पड़ती है अब  
जे कर कालही एकला कारण होवे, तब तो सर्व भूग एकही कालमें रंध  
जाते, परंतु सर्व रंधते नहीं हैं, इस वास्ते नि केवल कालही जगत्के वि  
चित्रताका कर्त्ता नहीं है, किंतु कालादि सामग्रीके मिलनेसें कर्म कारण  
है, यह सिद्ध पक्ष है ॥ इति प्रथम कालवादीके मतका खमन ॥ १ ॥

अथ दूसरा ईश्वरवादी अरु तीसरा अद्वैतवादी, ए दोनो मतोंका खमन  
ईश्वरवादमें लिख आये हैं, तहांसें जान लेना ॥ ३ ॥

अब चौथा मत नियतिवादीका है, तिसका खमन लिखते हैं कि नियतिवा  
दी जो कहते हैं, कि सर्व पदार्थोंका करता नियति है, नियति उसकूं कहते  
हैं जो तत्त्वांतर होवे, सोनी नियति, तादृचमान अति जीर्ण वस्त्रकी तरें  
विचार रूप ताडनाकूं असदमान सैंकड़े टुकड़ोंको प्राप्ति होती है, सोइ क  
हते हैं हे नियतवादी ! तेरा जो नियतिनाम तत्त्वांतर है, सो जावरूप है,  
किंवा अजाव रूप है ? जे कर कहोगे कि जावरूप है, तो फेर एकरूप है, वा  
अनेक रूप है ? जे कर कहोगे कि एक रूप है, तो फेर नित्य है, वा अनित्य  
है ? जे कर कहोगे नित्य है, तो किस तरें पदार्थोंकी उत्पत्त्यादिकमें हेतु है ?  
क्योंकि नित्य जो होता है, सो किसीकानी कारण नहीं होता है, सोइ क  
हते हैं कि नित्य जो होता है सो सर्व कालमें एकरूप होता है, नित्यका  
लक्षण “अप्रवृत्तानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावतया नित्यत्वस्य व्यावर्त्तात्” नित्य  
का लक्षणतो ऐसा है, जो कूरे नहीं अरु उत्पन्ननी न होवे, स्थिर एक

उत्तर पक्षीकी तरुं -जे कर जरत रामादिकोंगिरे पूर्वापर कालके योग से पूर्वापर व्यवहार है, तो कालका पूर्वापर व्यवहार कैसे सिद्ध होगा ?

पूर्वपक्षीका समाधान. कालका जो पूर्वापर व्यवहार है, सो अन्य काल के कालके योगसे है.

उत्तरपक्ष -जे कर दूसरे कालके योगमें प्रथम कालका पूर्वापर व्यवहार है, तब तो दूसरे कालका पूर्वापर व्यवहार तीसरे कालके योगमें हुआ, ऐसेही करते जाइयें, तब अन्वयस्या दूषणका प्रमग होता है

पूर्वपक्ष -यह दूषण हमकूं नहीं लगता है, क्यों कि हम तो तिस का लहीके स्वयमेव पूर्वापर विभाग मानते हैं, किसी कालादिक योगसे नहीं मानते हैं, तथा चोक्त ॥ पूर्वकालादि योगीय, पूर्वादिव्यपदेशनाक् ॥ पूर्वा परत्व तस्यापि, स्वरूपादेव नान्यत ॥ १ ॥ अस्यायं -जो पूर्वापर काल के योगी जरत रामादि है, सो जरत रामादि पूर्वापर व्यपदेश वाले है, अरु कालका जो पूर्वापर विभाग है, सो स्वत ही है, परंतु अन्यकालादि योगसे नहीं है

उत्तरपक्ष -है पूर्वपक्षी -यह तुमारा कहनां अैसा है कि जैसा कंठ लग मदिरा पीके मदिरा पानीका प्रलाप, तैसा है, क्योंकि तुमनें प्रथम पक्षमें काल एकांत एक नित्य व्यापी मान्या है, तो फेर कैसें तिस कालका पूर्वा पर व्यवहार होवे ?

पूर्वपक्ष -सहचारिके सगसें एक वस्तुकानी पूर्वापर कल्पनामात्र व्यवहार हो सकता है, जैसें सहचारि जरतादिकोंका पूर्वापर व्यवहार है, तैसें ही जरतादि सहचारियोंके सगसें कालकानी कल्पनामात्र पूर्वापर व्यपदेश होता है, सहचारियों करके व्यपदेश सर्व तार्किकोंके मतमें प्रसिद्ध है, यथा "मचा क्रोशतीति" जैसें मचा गालीयां वेता है

उत्तरपक्ष -यहनी मूर्खोंहीका कहना, है क्योंकि इस कहनेमें इतरेतर दोषका प्रसंग है सोइ कहते हैंकि सहचारि जरतादिकोंको कालके योगसे पूर्वापर व्यवहार हुआ अरु कालको पूर्वापर व्यवहार, सहचारि जरतादिकोंके योगसें हुआ, जब एक सिद्ध नहीं होवेगा तब दूसराजी सिद्ध नहीं होगा ॥ उक्त ॥ एकत्वव्यापितायां हि, पूर्वादित्व कथं नवेत् ॥ सहचारिव शास्त्रे, दन्योन्याश्रयतागम ॥ १ ॥ सहचारिणां हि पूर्वत्व, पूर्वकाल स

मागमात् ॥ कालस्य पूर्वार्द्धत्वं च, सहचार्यवियोगतः ॥ १ ॥ प्रागसिद्धा  
वेकस्य, कथमन्यस्य सिद्धिरिति ॥ इतः वास्ते प्रथमं पक्षं श्रेयं नहीं है

अथ दूसरा पक्ष मानोगे, सोनी अयुक्त है, क्योंकि समयादिक रूप  
परिणामी काल विषे काल एकनी है, तोनी विचित्र पणा उपलब्ध होता  
है, तथाहि एक कालमें मूंग राधता कोइ रंधता है ? कोइ नहीं रंधता है  
तथा समकालमें एक राजाकी नौकरी करते थके एक नौकरकु थोड़ेही  
कालमें नौकरीका फल मिल जाता है, अरु दूसरेकु बहुत कालांतरमेंनी वैसा  
फल नहीं मिलता है, तथा समकालमें खेती करता एक जाटके तो बहुत  
धान्य उत्पन्न हो जाते हैं, अरु दूसरेकु थोड़ा फूटा हुआ खमित उत्पन्न  
होता है, तथा समकालमें कौडीयाँकी मूठी नरकर नूमिकामें गेरीयें, तब  
कितनीक कौडीयाँ सूधी पड़ती हैं, अरु कितनीक आँधी पड़ती है अब  
जे कर कालही एकला कारण होवे, तब तो सर्व मूंग एकही कालमें रंध  
जाते, परंतु सर्व रंधते नहीं हैं, इतः वास्ते नि केवल कालही जगत्के वि  
चित्रताका कर्त्ता नहीं है, किंतु कालादि सामग्रीके मिलनेसें कर्म कारण  
है, यह सिद्ध पक्ष है ॥ इति प्रथम कालवादीके मतका खमन ॥ १ ॥

अथ दूसरा ईश्वरवादी अरु तीसरा अद्वैतवादी, एदोनो मतोंका खमन  
ईश्वरवादमें लिख आये हैं, तहांसें जान लेना ॥ २ ॥

अब चौथा मत नियतिवादीका है, तिसका खमन लिखते हैं कि नियतिवा  
दी जो कहते हैं, कि सर्व पदार्थोंका करता नियति है, नियति उसकु कहते  
हैं जो तत्त्वांतर होवे, सोनी नियति, तादृशमान अति जीए वस्त्रकी तरें  
विचार रूप तादृशनाकु असदृशमान सैंकड़े टुकड़ोंको प्राप्ति होती है, सोइ क  
हते हैं वे नियतवादी ! तेरा जो नियतिनाम तत्त्वांतर है, सो जावरूप है,  
किंवा अजाव रूप है ? जे कर कहोगे कि जावरूप है, तो फेर एकरूप है, वा  
अनेक रूप है ? जे कर कहोगे कि एक रूप है, तो फेर नित्य है, वा अनित्य  
है ? जे कर कहोगे नित्य है, तो किस तरें पदार्थोंकी उत्पत्त्यादिकमें देतु है ?  
क्योंकि नित्य जो होता है, सो किसीकानी कारण नहीं होता है, सोइ क  
हते हैं कि नित्य जो होता है सो सर्व कालमें एकरूप होता है, नित्यका  
लक्षण “अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावतया नित्यत्वस्य व्यावर्त्तात्” नित्य  
का लक्षणतो ऐसा है, जो क्षरे नहीं अरु उत्पन्ननी न होवे, स्थिर एक

स्वभाव करके रहे, सो नियति तब तो नियति तिस नित्य रूप करके जे कर कार्य उत्पन्न करे, तब तो सर्वदा तिसरी रूप करके कार्य उत्पन्न करे, क्योंकि तिसके रूपमें कोइनी विशेष नहीं है, एकही रूप है, अरु सर्वदा तिसही रूप करके तो कार्य उत्पन्न नहीं करती है, क्योंकि कभी कभी अरु कभी कैसा कार्य उत्पन्न होता दीख पड़ता है, तथा एक औरनी बात है कि, जो दूसरे तीसरे आदि कृणमें नियतिने कार्य करणे है, वो तब वही कार्य प्रथम समयहीमें उत्पन्न कर लेवे, क्योंकि तिस नियतिकी ओ नित्य करण स्वभाव द्वितीयादि कृणमें है सो स्वभाव प्रथम समयमेंनी विद्यमान है, जे कर प्रथम कृणमें द्वितीयादि कृणवर्ती कार्य करणेकी शक्ति नहीं तो द्वितीयादि कृणमेंनी कार्य न होना चाहिये क्योंकि प्रथम द्वितीयादि कृणमें कुठनी विशेष नहीं, जे कर प्रथम द्वितीयादि कृणमें नियतिके रूपमें परस्पर विशेष मानोगे तबतो जोरा जोरी नियतिके रूपमें अनित्यता आ गइ “अतावदवस्थमनित्यतां ब्रूम इतिवचन प्रामाण्यात्” ॥ जो जैसा है वो तैसा न रहे इस वचन प्रमाणसे उसकों हम अनित्य कहते हैं.

पूर्वपक्ष —नियति नित्य विशेष रहितनी है, तोनी तिस तिस सहकारिकी अपेक्षा करके कार्य उत्पन्न करती है, अरु जो सहकारि है, सो प्रति नियति देश काल वाले है, तिस वास्ते सहकारियोंके योगसे कार्य क्रम करके होता है

उत्तरपक्ष —यह नी तुमारा कहना असमीचीन है, क्योंकि सहकारिजो हैं, सोनी नियति करकेही प्राप्त होते हैं, अरु नियति जो है, सो प्रथम कृणमेंनी तिसके करणेवाले स्वभाव वाली है, जेकर द्वितीयादि कृणमें दूसरे स्वभाववाली नियति मानोगे, तब तो नित्यपणेकी हानी हो गइ, तिस वास्ते प्रथम कृणमें सर्व सहकारियोंके सजब होणेसे प्रथम कृणमेंही सर्व कार्य करणेका प्रसंग हो गया तथा एक औरनी बात है, कि सहकारियोंके होणेसे कार्य हुआ, अरु सहकारियोंके न होणेसे कार्य न हुआ, तब सहकारियांहीकों अन्वय व्यतिरेक देखनेसे कारण कल्पना करनी चाहिये परंतु नियति कारण नहीं दुइ, क्योंकि नियतिमें व्यतिरेकका असंभव है, उक्त च ॥ श्लोक ॥ हेतुनान्वयपूर्वेण, व्यतिरेकेण सिद्ध्यति ॥ नित्यस्याव्यतिरेकस्य, कुतो हेतुत्वसंभव ॥ अथ जे कर इन पूर्वोक्त दोषोंके नयसे अनित्य पक्ष

मानोगे, तब तो तिस नियतिके प्रतिक्षण अन्य अन्य रूप दोषोंसे नियति या बहुत हो गइयां, तब तो जो तुमने नियति एकरूप मानी थी, तिस प्रतिज्ञाका व्याघात होनेका प्रसंग हो गया, अरु जो पदार्थ क्षणक्षणी होता है, वो किसीका कार्य कारण नहीं हो सका है, तथा एक औरनी बात है कि जे कर नियति एकरूप होवे, तब तिससे जो कार्य उत्पन्न होवेंगे सो सर्व एकरूपही होने चाहिये, क्योंकि विना कारणके जेद हुआ कार्य जेद कदापि नहीं हो सका है, जे कर हो जावे, तब तो वह कार्यजेद निर्हेतुकही होवेगा, अरु हेतुविना किसी कार्यका जेद नहीं है, जे कर अनेकरूप नियति मानोगे, तब तो तिस नियतिसे अन्य नानारूपी विशेषण विना नियति नानारूप कदापि न होवेगी, जैसे मेघका पानी, काली, पीली, खर खूमिके सबध विना नानारूप नहीं हो सका है, यद्युक्त “विशेषण विना यस्मात्तुल्यानां विशिष्टेति वचनप्रामाण्यात्” तिस वास्ते अवश्य तिस नियतिसे अन्य नानारूप विशेषण नियतिके जे व मानने चाहिये तिन नानारूप विशेषणोंका जो होणां है, सो क्या तिस नियतिसेही होता है अथवा किसी दूसरेसे होता है? जे कर कहोगे कि नियतिसे ही होता है, तब तो तिस नियतिकों स्वतः एकरूप होषेसे कैसे तिस नियतिसे हुये होये विशेषणोंको नानारूपता होवे?

अथ विचित्र कार्यकी अन्यथानुपपत्ति करके नियतिजी विचित्र रूपही मानते हैं, तब तो नियतिकी विचित्रता बहुत विशेषणों विना नहीं हो वेगी, तिस वास्ते तिस नियति विषे विशेष्य बहुत अंगीकार करणे चाहिये, अब तिन विशेषणोंका जो जाव है, सो तिस नियतिहीसे होता है, अथवा किसी दूसरेसे? इत्यादि सोइ फेर आ गया, इस वास्ते अनवस्था दूषण होता है

अथ जे कर कहोगे अन्यसे होता है, तो यहजी पक्ष अयुक्त है, क्यों के नियति विना और किसीको तुमने हेतु नहीं मान्या है, यह तुमारा कहना किसी कामका नहीं है, तथा अनेक रूप नियति है, जे कर तुम ऐसे मानोगे, तब तो तुमारे मतके वैरी दो विकल्प हम तुमकू जेट कर ते हैं, तुमारी नियति अनेकरूप जो है, सो मूर्ति है? वा अमूर्ति है? जे कर कहोगे कि मूर्ति है, तब तो नामांतर करके कर्मही तुमने माने, क्यों

स्वभाव करके रहे, सो नित्य तब तो नियति तिम नित्य रूप करके जे कर कार्य उत्पन्न करे, तब तो सर्वदा तिसरी रूप करके कार्य उत्पन्न करे, क्योंकि तिसके रूपमें कोइनी विशेष नहीं है, एकरी रूप है, अरु सर्वदा तिसही रूप करके तो कार्य उत्पन्न नहीं करती है, क्योंकि कनी कैसा अरु कनी कैसा कार्य उत्पन्न होता दीख पड़ता है, तथा एक आरती क त है कि, जो दूसरे तीसरे आदि कृणमें नियतिने कार्य करणे है, वो त वैही कार्य प्रथम समयहीमें उत्पन्न कर लेवे, क्योंकि तिस नियतिका जो नित्य करण स्वभाव द्वितीयादि कृणमें है सो स्वभाव प्रथम समयमेंनी विद्यमान है, जे कर प्रथम कृणमें द्वितीयादि कृणमें कार्य करणेकी शक्ति नहीं तो द्वितीयादि कृणमेंनी कार्य न होना चाहिये क्योंकि प्रथम द्वितीयादि कृणमें कुठनी विशेष नहीं, जे कर प्रथम द्वितीयादि कृणमें नियतिके रूपमें परस्पर विशेष मानोगे तबतो जोरा जोरी नियतिके रूपमें अनित्यता आ गइ “अतादवस्थमनित्यतां ब्रूम इतिवचन प्रामाण्यात्” ॥ जो जैसा है वो तैसा न रहे इस वचन प्रमाणसे उसको हम अनित्य कहते हैं

पूर्वपक्ष - नियति नित्य विशेष रहितनी है, तोनी तिस तिस सदकारिकी अपेक्षा करके कार्य उत्पन्न करती है, अरु जो सहकारि है, सो प्रति नियति देश काल वाले हैं, तिस वास्ते सहकारियोंके योगसे कार्य क्रम करके होता है

उत्तरपक्ष - यह नी तुमारा कहना असमीचीन है, क्योंकि सहकारिजो हैं, सोनी नियति करकेही प्राप्त होते हैं, अरु नियति जो है, सो प्रथम कृणमेंनी तिसके करणेवाले स्वभाव वाली है, जेकर द्वितीयादि कृणमें दूसरे स्वभाववाली नियति मानोगे, तब तो नित्यपणेकी हानी हो गइ, तिस वास्ते प्रथम कृणमें सर्व सहकारियोंके सजव होणेसे प्रथम कृणमेंही सर्व कार्य करणेका प्रसंग हो गया तथा एक औरनी बात है, कि सहकारियोंके होणेसे कार्य हुआ, अरु सहकारियोंके न होणेसे कार्य न हुआ, तब सहकारियांहीको अन्वय व्यतिरेक देखनेसे कारण कल्पना करनी चाहिये परंतु नियति कारण नहीं दुइ, क्योंकि नियतिमें व्यतिरेकका असजव है, एक च ॥ श्लोक ॥ हेतुनान्वयपूर्वेण, व्यतिरेकेण सिद्धयति ॥ नित्यस्याव्यतिरेकस्य, कुतो हेतुत्वसंज्ञव ॥ अथ जे कर इन पूर्वोक्त कृणोंके जयसे अनित्य पक्ष

हो सक्ता, क्योंकि जे कर जावरूप है तो अजाव कैसें हुआ ? जे कर अजाव रूप है, तो जाव कैसें हुआ ? जे कर कहोगे कि स्वरूप अपेक्षा जावरूप है, अरु पररूपापेक्षा अजावरूप है, तिस वास्ते जावाजाव दोनोंके न्यारे निमित्त हो नेसें कुछनी दूषण नहीं, इस कहनेसें तो माटीका पिंम जावाजावरूप अ नेकांतात्मिकरूप तुमारेकुं प्राप्त हुआ, परंतु यह अनेकांतात्मपणा जैनोदीके मतमें शोजता है, क्योंकि जैनमतवालेही सर्व वस्तुकुं स्वपरजावादि स्वरूप करके अनेकांतात्मिक मानते हैं, परंतु तुमारे सरीखे एकांतग्रहग्रस्त मतवालोंको नहीं शोजता है, जे कर कहोगे कि मृत्पिंममें जो पररूपका अजाव है, सो तो कल्पित है, अरु जो जावरूप है, सो तात्विक है, इस वास्ते अनेकांतात्मिक वाद हमारे मतमें नहीं आता है, तब तो तिस मृत्पिंमसें कैसें घट होवेगा ? क्यों कि तिस मृत्पिंममें परमार्थसें घटके प्राग्जावका अजाव है, जे कर प्राग् अजाव विनाजी तिस मृत्पिंमसें घट हो जावे, तब तो सूत्र पिंमादिकसेंजी घट क्यों नहीं होजावे ? जैसा मृत्पिंममें घट प्राग्जावका अजाव है, तैसाही सूत्रपिंमादिकमेंजी घट प्राग्जावका अजाव है, तथा तिस मृत्पिंमसे खरगृण क्यों नहीं हो जाता है ? इस वास्ते यह तुमारा कहनां कुछ नहीं है, तथा जो तुमने क हा या कि जो वस्तु जिस अवसरमें जिससेंति होवे है, सो कालांतरमेंजी सोई वस्तु तिस अवसरमें तिसतें नियतरूप करके होती दुई दीखती है, यह तो तुमारा कहनां ठीक है, क्योंकि कारण सामग्रीके अनादि नियमोसे कार्यजी तिस अवसरमें तिसतें नियतरूप करकेही होता है, जब कारण शक्तिके नियमसें कार्य हो गया, तब कौन ऐसा प्रेक्षावान् प्रमाणपंथका कुशल है जो प्रमाण बाधित नियतिकों अंगीकार करे ? ॥ इति नियति खमन ॥

अथ पांचमा स्वजाववादीका खमन लिखते हैं स्वजाववादी ऐसे कहते हैं कि इस ससारमें सर्व जावपदार्थ स्वजावहीसें उत्पन्न होते हैं, यह स्वजाववादीयोंका मत नियतिवादके खमनसेंही खमन हो गया, क्योंकि जो दूषण, नियतिवादीके मतमें कहे हैं, वे सर्व दूषण, प्रायः यहांनी समानही हैं, सोई कहते हैं, कि यह जो तुमारा स्वजाव है, सो जावरूप है ? अथवा अजावरूप है ? जे कर कहोगे कि जावरूप है, तो क्या एक रूप है ? वा अनेक रूप है ? इत्यादि सर्व दूषण नियतिकी तरें कह देने



कि कर्म जो है, सो पुञ्जरूप होणेंसे मूर्तिनी है, अरु अनेक रूपनी है, तो तुमारा हमारा एकही मत हो गया, क्योंकि हम जिनकूं कर्म मानते हैं, उनही कर्मोंका नामांतर तुमने नियति मान लीया, परंतु वस्तु इसी है अथ जे कर नियतिकूं अमूर्ति मानोगे, तब तो नियति सुख ड खका है तु अमूर्ति होनेसे न होवेगी, जैसे आकाश अमूर्ति है, परंतु सुख ड खका हेतु नहीं है, पुञ्जही मूर्ति होनेसे सुख ड खका हेतु हो सका है, जे कर तुम ऐसे मानोगे कि आकाशनी देश जेव करके सुख ड खका हेतु है, जे से मारवाड देशमें आकाश ड खदायी है, ग्रेष सजल देशोंमें सुखदायी है, यहनी तुमारा कहना असत् है, तिन मारवाडादि देशोंमेंनी आकाश रहे दूये जो पुञ्ज है, उन पुञ्जोंही करी ड ख सुख होते हैं, तथाहि मर स्थली जो है, सो प्राय जल फरकेंर हित है अरु घालु (रेति)नी बहुत है, अरु रस्तेमें चलता पग घालुमें धस जाते हैं, तब तो पसीना बहुत आ जाता है, अरु उष्णकालमें सूर्यकी किरणोंसें घालु तप जाता है, तब बहुत सताप होता है, अरु जलनी पीनेको पूरा नहीं मिलता है, तिसके खननेमें कोइ प्रयत्न करना पडता है, इस वास्ते उन देशोंमें बहुत ड ख है अरु सजल देशोंमें पूर्वोक्त कारण नहीं है, इस वास्ते पूर्वोक्त ड खनी नहीं है, इस हेतुसे पुञ्जही सुख ड खका हेतु है, परंतु आकाश नहीं

अथ जे कर नियतिकू अजावरूप मानोगे, तो यहनी तुमारा पक्ष अयुक्त है, क्योंकि अजाव जो है सो तुष्टरूप है, शक्ति रहित है, औ कार्य करणोंमें समर्थ नहीं, क्योंकि कटक कुमलादिकोंका जो अजाव है, सो कटक कुमल उत्पन्न करनेकू समर्थ नहीं, तैसेही देखनेमें आता है, जेकर कटक कुमलादिकोंका अजाव कटक कुमलादिक उत्पन्न करे, तब तो जग त्में कोइनी दरिही न रहे

पूर्वपक्ष — घटानाव जो है सो मूर्तिम है, तिस माटीके पिंमसें घट उत्पन्न होता है, तो फेर हमारे कदनेमें क्या अयुक्तता है ? अरु जो माटी का पिंम है सो तुष्टरूप नहीं है क्योंकि वो अपणे स्वरूप करके विद्यमान है, तो फेर अजाव पदार्थकी उत्पत्तिमें हेतु क्यों नहीं हो सका ?

उत्तरपक्ष — यहनी तुमारा पक्ष असमीचीन है, क्योंकि जो माटीके पिंमका नाव स्वरूप है सो जावाजावका आपसमें विरोध होनेसें अजाव रूप नहीं

न होता है, परंतु अरणीके काष्ठसे नहीं होता, अरु जो अरणीके काष्ठसे अग्नि उत्पन्न होता है, सो सदा अरणीकाष्ठसेही उत्पन्न होता है, परंतु अग्निसें नहीं होता, अरु जो कहा था कि बीजसेंजी केला उत्पन्न होता है, इत्यादिक सोनी परस्पर विनिन्न होनेसें सोइ उत्तर है कि जो उपर लिख आये हैं एक औरनी बात है, कि जो केला कंदसें उत्पन्न होता है, सो नी परमार्थसें बीजहीसें होता है, ताते परंपरा करके बीजही कारण है, ऐसेही वटादिकनी शाखाके एक देशते उत्पन्न होते हुये परमार्थसें बीज सेही उत्पन्न होते हैं, सोइ कहते हैं कि शाखासें शाखा होती है, परंतु व स शाखाकी हेतु शाखा है, ऐसा लोकमें व्यवहार नहीं है, काहेते कि वट बीजहीकुं सकल शाखा प्रशाखा समुदाय रूप वटका हेतु होने करके प्र सिद्ध है, ऐसेही शाखाके एक देशसेंजी उत्पन्न होता हुआ वट परमार्थसें मूल, वटशाखारूपही है, इसते सोनी मूल बीजहीसें उत्पन्न हुआ मान ना चाहिये, तिस वास्ते किसी जगेसेंजी कार्य कारण नाव व्यनिचारी न हों है ॥ इति यदृष्टवादि मतखमन ॥

अथ अज्ञानवादी मत खमन लिखते हैं अज्ञानवादी जो कहते हैं कि ज्ञान श्रेय नहीं है, क्योंकि जब ज्ञान होता है, तब परस्पर विवादके योगसें चित्तमें क्लृप्त पणसें दीर्घतर सत्तारकी वृद्धि होती है, इत्यादि यह जो अज्ञान वादीयोंने कहा है, सो नी मूर्खताका सूचक है, सोइ दिखाते हैं, कि और बात तो रही परंतु प्रथम हम तुमकों दो बातें पूछते हैं सो यह बातें है कि ज्ञानका जो तुम निषेध करते हो, सो क्या ज्ञानसे करते हो ? वा अज्ञानसें करते हो ? जे कर कहोगे कि ज्ञानसें करते हैं, तो फेर कैसें कहते हो कि अज्ञान श्रेय है ? इस कहनेसें तो ज्ञानही श्रेय हुआ, ज्ञानके बिना अज्ञानको कोई स्थापन करने समर्थ नहीं है, जे कर उक्त कहनेको मानोगे, तो तुमारी प्रतिज्ञा का व्याघात प्रसंग होगा, जे कर कहोगे कि अज्ञानसें निषेध करते हैं, सोनी अयुक्त है, सो अज्ञानकों ज्ञान निषेधनेका सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि अज्ञान किसीकेनी साधने बाधनेमें समर्थ नहीं है, अज्ञान हो नेसें जब अज्ञान निषेधनेमें सामर्थ्य न हुआ तब सिद्ध हुआ कि ज्ञानही श्रेय है, अरु जो तुमने कहा था कि जब ज्ञान होगा, तब परस्पर विवादके

एक और नी बात है, कि स्वभाव आत्माके जाग्रतों कहते हैं, तो स्वभाव कार्यगत हेतु है? वा कारण गत है? कार्य गत तो नहीं है, क्यों कि जब कार्य हो जायेगा तब कार्यगत स्वभाव होवेगा परंतु बिना कार्य के दूये कार्य गत कैसे होवे? अरु जब कार्य हो गया, तब तिसका हेतु स्वभाव कैसे होवे? जो जिसके अज्ञान पान संपादनमें सामर्थ्य होवे, तो तिसका हेतु है, अरु कार्य तो निष्पन्न होने करक लक्ष्य आत्मज्ञान है नहीं तो तिस स्वभावहीके अज्ञानका प्रसंग हो जायेगा, तब तो वो स्वभाव कैसे कार्यका हेतु होवेगा? जे कर कहोगे कि कारणगत हेतु है, यह तो हम मजूनी समत है, सो स्वभाव प्रति कारण निन्न है, तिस करक माटीसे घट होता है, परंतु माटीसे पटादि नहीं होता है, माटीके पिनमें पटादि होनेका स्वभाव नहीं है, अरु तंतुओंसे पटही होता है, घटादि नहीं होते हैं, क्योंकि तंतुओंमें घट होनेका स्वभाव नहीं है, तिस वास्ते जो तुमने कहा था कि माटीसे घटही होता है, पटादि नहीं होता, सो तो सर्व कारणगत स्वभाव माननेसे सिद्धहीकों साध्या है यह पक्ष, हमारे मतका बाधक नहीं है, तथा जो तुमने कहा था कि मूंगोंमें रथनेका स्वभाव है, को कडुमें नहीं? इत्यादि सोनी कारणगत स्वभाव अंगीकार कक्षां सर्वही स मीचीन हो जाता है, जैसे एक कोकडु मूंग है, स्वकारण वशते तैसे रूप वास्ते दूये हैं, हांभी, इधन, कालादि सामग्रीका संयोगनी है, तोनी नहीं रथते है, अरु स्वभाव जो है सो कारणसे अनेक है, इसमें सर्व वस्तु तकारणही हैं, यह सिद्ध पक्ष है ॥ यह क्रियावादीयोका मत तो खमन हो चुका ॥

अथ अक्रियावादीयोमें जो पट्टभावादी हैं, तिनोंने जो कहा था कि वस्तुओंका नियम करके कार्य कारणभाव नहीं है, इत्यादि सोनी कहनां कार्य कारणके विवेचने वाली बुद्धिसे रहित होनेका सूचक है, क्यों कि कार्य कारणको प्रतिनियताका सजव होनेसे है, सोई कहते हैं कि जो शालूकसे शालूक उत्पन्न होता है, सो सदा शालूकहीसे उत्पन्न होता है, परंतु गोबरसे नहीं अरु जो गोबरसे शालूक उत्पन्न होता है, सो सदा गोबरहीसे उत्पन्न होता है, परंतु शालूकसे नहीं, अरु इन दोनों शालूकियों को शक्तिवर्णादि वैधित्रतासे औ परस्पर जात्यंतर होनेसे एकरूपनी नहीं हैं, अरु जो अग्निसे अग्नि उत्पन्न होता है, सोनी सबैव अग्निहीसे उत्प

न होता है, परंतु अरणीके काष्ठसें नहीं होता, अरु जो अरणीके काष्ठसें अग्नि उत्पन्न होता है, सो सदा अरणीकाष्ठसेंही उत्पन्न होता है, परंतु अग्निसें नहीं होता, अरु जो कहा था कि बीजसेंजी केला उत्पन्न होता है, इत्यादिक सोजी परस्पर विजिन्न होनेसें सोइ उत्तर है कि जो उपर लिख आये हैं एक औरजी बात है, कि जो केला कवसें उत्पन्न होता है, सो जी परमार्थसें बीजहीसें होता है, ताते परंपरा करके बीजही कारण है, ऐसेही वटादिकजी शाखाके एक देशतें उत्पन्न होते दूये परमार्थसें बीज सेंही उत्पन्न होते हैं, सोइ कहते हैं कि शाखासें शाखा होती है, परंतु व स शाखाकी हेतु शाखा है, ऐसा लोकमें व्यवहार नहीं है, काहेतें कि वट बीजहीकू सकल शाखा प्रशाखा समुदाय रूप वटका हेतु होने करके प्र सिद्ध है, ऐसेही शाखाके एक देशसेंजी उत्पन्न होता हुआ वट परमार्थसें मूल, वटशाखारूपही है, इततें सोजी मूल बीजहीसें उत्पन्न हुआ मान नां चाहिये, तिस वास्ते किसी जगेसेंजी कार्य कारण नाव व्यनिचारी न हो है ॥ इति यदृष्टावादि मतखमन ॥

अथ अज्ञानवादी मत खमन लिखते हैं अज्ञानवादी जो कहते हैं कि ज्ञान श्रेय नहीं है, क्योंकि जब ज्ञान होता है, तब परस्पर विवादके योगसें चित्तमें कलुष पणोसें दीर्घतर सत्तारकी वृद्धि होती है, इत्यादि यह जो अज्ञान वादीयोंने कहा है, सो जी मूर्खताका सूचक है, सोइ दिखाते हैं, कि और बात तो रही परंतु प्रथम हम तुमको दो बातें पूछते हैं सो यह बातें है कि ज्ञानका जो तुम निषेध करते हो, सो क्या ज्ञानसें करते हो ? वा अज्ञानसें करते हो ? जे कर कहोगे कि ज्ञानसें करते हैं, तो फेर कैसें कहते हो कि अज्ञान श्रेय है ? इस कहनेसें तो ज्ञानही श्रेय हुआ, ज्ञानके बिना अज्ञानको कोई स्थापन करने समर्थ नहीं है, जे कर उक्त कहनेको मानोगे, तो तुमारी प्रतिज्ञा का व्याघात प्रसंग होगा, जे कर कहोगे कि अज्ञानसें निषेध करते हैं, सोजी अयुक्त है, सो अज्ञानको ज्ञान निषेधनेका सामर्थ्य नहीं है, क्योंकि अज्ञान किसीकेजी साधने बाधनेमें समर्थ नहीं है, अज्ञान हो नेसें जब अज्ञान निषेधनेमें सामर्थ्य न हुआ तब सिद्ध हुआ कि ज्ञानही श्रेय है, अरु जो तुमने कहा था कि जब ज्ञान होगा, तब परस्पर विवादके

एक श्रीरत्नी बात है, कि स्वभाव आत्माके जावकों कहते हैं, तो स्वभाव कार्यगत हेतु है? वा कारण गत है? कार्य गत तो नहीं है, क्यों कि जब कार्य हो जावेगा तब कार्यगत स्वभाव होवेगा परंतु बिना कार्य के दूरे कार्य गत कैसे होवे? अरु जब कार्य हो गया, तब तिसका हेतु स्वभाव कैसे होवे? जो जिसके अन्तर्गत तान संपादनमें सामर्थ्य होवे, तो तिसका हेतु है, अरु कार्य तो निष्पन्न होने करके लक्ष्य आत्मज्ञान है वही तो तिस स्वभावहीन अज्ञातका प्रसंग हो जावेगा, तब तो वो स्वभाव कैसे कार्यका हेतु होवेगा? जे कर कहोगे कि कारणगत हेतु है, यह तो ब्रह्मकी समत है, सो स्वभाव प्रति कारण निन्न है, तिस करके माटीसे घट होता है, परंतु माटीसे पटादि नहीं होता है, माटीके पिंममें पटादि होनेका स्वभाव नहीं है, अरु तंतुओंसे पटही होता है, घटादि नहीं होते हैं, क्योंकि तंतुओंमें घट होनेका स्वभाव नहीं है, तिस वास्ते जो तुमने कहा था कि माटीसे घटही होता है, पटादि नहीं होता, सोतो सर्व कारणगत स्वभाव माननेसे सिद्धहीकों साध्या है यह पट्ट, हमारे मतका बाधक नहीं है, तथा जो तुमने कहा था कि मूर्गोंमें रथनेका स्वभाव है, को कहुमें नहीं? इत्यादि सोची कारणगत स्वभाव अंगीकार कयां सर्वही त मीचीन हो जाता है, जैसे एक कोकडु मूग है, स्वकारण वशते तैसे रूप वाले दूरे हैं, हांमी, धन, कालादि सामग्रीका सयोगनी है, तोनी नहीं रथते है, अरु स्वभाव जो है सो कारणसे अनेक है, इससे सर्व वस्तु तकारणही हैं, यह सिद्ध पट्ट है ॥ यह क्रियावादीयोंका मत तो खमन हो चुका ॥

अथ अक्रियावादीयोंमें जो पट्टावादी हैं, तिनोंने जो कहा था कि वस्तुओंका नियम करके कार्य कारणभाव नहीं है, इत्यादि सोची कहना कार्य कारणके विवेचने वाली बुद्धिसे रहित होनेका सूचक है, क्यों कि कार्य कारणको प्रतिनियताका सनव होनेसे है, सोई कहते हैं कि जो शालूकसे शालूक उत्पन्न होता है, सो सदा शालूकहीसे उत्पन्न होता है, परंतु गोबरसे नहीं अरु जो गोबरसे शालूक उत्पन्न होता है, सो सदा गोबरहीसे उत्पन्न होता है, परंतु शालूकसे नहीं, अरु इन दोनों शालूकियों को शक्तिवर्णादि वैचित्रतासे और परस्पर जात्यंतर होनेसे एकरूपनी नहीं हैं, अरु जो अग्निसं अग्नि उत्पन्न होता है, सोनी सबैव अग्निहीसे उत्प

ध्वसायवाला नहीं होता है, अरु जो तुमने कहा था कि अज्ञानही सत्पुरुषोंको मोक्ष जाने वास्ते श्रेय है, परंतु ज्ञान श्रेय नहीं, यह जो कहना है, सो मूढताका सूचक है, जिसका नामही अज्ञान है, वो श्रेय क्यों कर हो सक्ता है? अरु जो तुमने कहाथा कि हम ज्ञानकूं माननी लेवे, जो ज्ञानका निश्चय करणमें कोई समर्थ होवे, सोनी भूखोंका कहना है, क्योंकि यद्यपि सर्व मतों वाले परस्पर निजही ज्ञान अंगीकार करते हैं, तोनी जिसका वचन दृष्टेष्ट बाधित नहीं अरु पूर्वापर व्याहत नहीं है, सोइ सम्यक् रूप जानना तैसा वचन तो जगवानहीका कहा दूथा हो सक्ता है, सोइ प्रमाण है, शेष नहीं अरु जो कहा था कि बौधनी अपने बुद्ध जगवानको सर्वज्ञ मानते हैं, इत्यादि सोनी असत् है, क्योंकि दृष्टेष्टकरके तिनका वचन बाधित है, इस वास्ते सुगतादिक सर्वज्ञ नहीं है, तिनका वचन जैसे बाधित है, तैसे आगे लिखेंगे

तथा जो तुमने कहाथा कि जो वर्द्धमान स्वामी सर्वज्ञ होवे, तोनी तिस वर्द्धमान स्वामीहीका कहा दूथा यह आचारांगादि शास्त्र हैं, सो क्योंकर प्रतीत होवे? यहनी तुमारा कहना दूर हो गया, क्योंकि और किसीका ऐसा दृष्टेष्ट बाधा रहित वचन है नहीं अरु जो तुमने कहाथा कि यहनी तुमारा कहना होवेकि आचारांगादि यह जो शास्त्र है, सो वर्द्धमान स्वामी सर्वज्ञके कहे दूये हैं तोनी वर्द्धमान स्वामीके उपदेशका यही अर्थ है अन्य नहीं है इत्यादि सोनी अयुक्त है क्योंकि जगवान जो है, सो बीतराग है, अरु जो बीतराग होता है, सो किसीकू कपट उपदेश देकर नृजाता नहीं है क्योंकि विप्रतारणका हेतु जो रागादि दोषोंका समूह सो जगवानमें नहीं है, अरु जो सर्वज्ञ होता है, सो जानता है, जो इस शिष्यने विपरीत समजा है, अरु इसने सम्यक् समजा है, तब तो जिसने विपरीत समजा है, तिसकूं मनाकर देते है, अरु जगवानने तो गौतमादिकोंको मने नहीं करा, इस वास्ते गौतमादिकोने सम्यग्ही जाना है, अरु जो कहाथा कि गौतमादि उग्रस्थ हैं, इत्यादि सोनी असार है, क्योंकि उग्रस्थनी उक्त रीति करके जगवानके उपदेशसेही यथार्थ वक्ता निश्चय हो सक्ता है, तथा विचित्र अर्थोंवाले शब्दनी जगवाननेही कहे हैं, सो शब्द जैसे जैसे प्रकरण हो गा, तैसे तैसे ही अर्थका प्रतिपादक हो सक्ता है, इस वास्ते कोईनी दूषण

योगसें चित्त काज्जुप्यादि जायहूं प्राप्त होगी, इत्यादि. सोनी बिना विचार कदना है, हम परमार्थसे ज्ञानी ठहराया करते हैं कि जिसकी वास्तविक विवेक करके पवित्र होवे, श्रु जो ज्ञानका गर्व न करे, श्रु जो वास्तविक ज्ञानी हो कर कंठ लग मय पी कर जैसा उन्नत शान्तता है तैसा बोधे, श्रु सकल जगत्को दृष्टीकी तरफ माने, सो परमार्थसे अज्ञानीही है, क्यों कि उनको ज्ञानका फल नहीं है. ज्ञानका फल तो गगन देवादि गुरुओं का त्यागना है जब यह नहीं हुआ, तब तो परमार्थसे ज्ञानही नहीं " उक्तं च ॥ तत् ज्ञानमेव न जयति, यस्मिन्नुदिते विनाति रागगण ॥ तमसो दुःखोऽस्ति शक्तिर्विनशकः किरणायत स्यात् ॥१॥ " ऐसा ज्ञानी विवेक करके पवित्र आत्मा वाला परजीवोंके हित करणमें एकांत रसीया हावे, जेकर बोवादी करेगा, सोनी परजीवोंके उपकार वास्ते करेगा, श्रु राजा ब्राह्मण परीक्षक निपुण बुद्धिवालोंके परिपदामें करेगा, अन्यथा नहीं करेगा ऐसेही तीर्थंकर गणधरोनें वाद करणकी आज्ञा दीनी है जब ऐसे हुआ तब कैसें चित्तकी मज्जितता करके कर्मका बंध होनेसे दीर्घतर सत्तारकी वृद्धि होवे ? केवल ज्ञानवान्का जो वाद है, सो वादी नरपति परीक्षकोंके अज्ञानके दूर करणके वास्ते है, सम्यक् ज्ञानके प्रगट होनेसे बड़ा उपकार होता है, इस वास्ते ज्ञानही श्रेय है

श्रु जो अज्ञानवादी कहता है, कि तीव्राध्यवसाय करके जो कर्म उत्पन्न होते हैं, उनसे वारुण विपाक फल होता है, सो तो हम मानते हैं, परंतु जो अशुजाध्यवसाय है, तिनका हेतु ज्ञान नहीं है, क्योंकि अशुजाध्यवसायोंका अज्ञानही हेतु देखनेमें आता है, केवल इतनी बात तो है कि ज्ञानके होते हुआ जे कर कदाचित् कर्म दोषतें अकार्यमें प्रवृत्तिनी होवेगी, तोनी ज्ञानके बलसें प्रतिकूल सवेग जावनासें तीव्र अशुद्ध परिणाम नहीं होते हैं, सोइ विखाते हैं

जैसें कोईक पुरुष राजादिकोंके दुष्ट नियोगसें विषमिश्रित अन्न है, ऐसें जानता ठता नयनीत मन करके जीमेगा, तैसेंही सम्यक् ज्ञानीनी कषयित्कर्म दोषसें अकार्यनी आचरेगा, तोनी सत्तारके दुःखों करके नयनीत मनवाला होवेगा, परंतु निःशक नहीं होवेगा श्रु जो संसारसें नयनीत होता है, तिसहीका नाम सवेग कहते हैं, तबतो सवेगवान् तीव्र अशुजा

ध्वसायवाला नहीं होता है, अरु जो तुमने कहा था कि अज्ञानही सत्पुरुषोंको मोह जाने वास्ते श्रेय है, परंतु ज्ञान श्रेय नहीं, यह जो कहना है, सो मूढताका सूचक है, जिसका नामही अज्ञान है, वो श्रेय क्यों कर हो सक्ता है? अरु जो तुमने कहाथा कि हम ज्ञानकूं मानजी लेवे, जो ज्ञानका निश्चय करणमें कोई समर्थ होवे, सोनी मूर्खोंका कहना है, क्योंकि यद्यपि सर्व मतों वाले परस्पर निजही ज्ञान अंगीकार करते हैं, तोनी जिसका वचन दृष्टेष्ट बाधित नहीं अरु पूर्वापर व्याहत नहीं है, सोई सम्यक् रूप जानना तैसा वचन तो जगवानहीका कहा हुआ हो सक्ता है, सोई प्रमाण है, शेष नहीं. अरु जो कहा था कि बौधनी अपने बुद्ध जगवानकों सर्वज्ञ मानते हैं, इत्यादि सोनी असत् है, क्योंकि दृष्टेष्टकरके तिनका वचन बाधित है, इस वास्ते मुगतादिक सर्वज्ञ नहीं है, तिनका वचन जैसे बाधित है, तैसे आगे लिखेंगे

तथा जो तुमने कहाथा कि जो वर्धमान स्वामी सर्वज्ञ होवे, तोनी तिस वर्धमान स्वामीहीका कहा हुआ यह आचारांगादि शास्त्र हैं, सो क्योंकर प्रतीत होवे? यहनी तुमारा कहना दूर हो गया, क्योंकि और किसीका ऐसा दृष्टेष्ट बाधा रहित वचन है नहीं अरु जो तुमने कहाथा कि यहनी तुमारा कहना होवेकि आचारांगादि यह जो शास्त्र है, सो वर्धमान स्वामी सर्वज्ञके कहे हुये हैं तोनी वर्धमान स्वामीके उपदेशका यही अर्थ है अन्य नहीं है इत्यादि सोनी अयुक्त है क्योंकि जगवान् जो है, सो वीतराग है, अरु जो वीतराग होता है, सो किसीकूं कपट उपदेश देकर नृजाता नहीं है क्योंकि विप्रतारणका हेतु जो रागादि दोषोंका समूह सो जगवानमें नहीं है, अरु जो सर्वज्ञ होता है, सो जानता है, जो इस शिष्यने विपरीत समजा है, अरु इसने सम्यक् समजा है, तब तो जिसने विपरीत समजा है, तिसकूं मनाकर देते है, अरु जगवानने तो गौतमादिकोंको मने नहीं करा, इस वास्ते गौतमादिकोने सम्यग्ही जाना है, अरु जो कहाथा कि गौतमादि उग्रस्थ हैं, इत्यादि सोनी असार है, क्योंकि उग्रस्थनी उक्त रीति करके जगवानके उपदेशसेही यथार्थ वक्ता निश्चय हो सक्ता है, तथा विचित्र अर्थोंवाले शब्दनी जगवाननेही कहे हैं, सो शब्द जैसे जैसे प्रकरण होगा, तैसे तैसे ही अर्थका प्रतिपादक हो सक्ता है, इस वास्ते कोइनी दूषण



नहीं क्योंकि तिस तिस प्रकरणके अनुसारं तिस तिस अर्थका निबध हो जाता है, अरु गौतमादिकोंने जिस जिस जगे जिस जिस जगत्का जैसा जैसा अर्थ करा है, सो जगवानने निषेध नहीं करा, इस वास्तेजी जाना जाता है, जो गौतमादिकने यथार्थही जाना है, अरु यथार्थही जगत्का अर्थ करा है, अरु जो कुछ गौतमादिकोंने कहा था, सोई आचार्योंकी अविशिष्ट परंपरा करके अब ताई तैसेही अर्थका अवगम होता है, ऐसेनो न कहना कि आचार्योंकी परंपरा हमकू प्रमाण नहीं ? क्यों कि अविपरीतार्थ कहने करके आचार्योंकी परंपराको फोड़नी जूरी करने समर्थ नहीं.

एक औरनी बात है, कि तुमारा जो मत है, सो आगम मूल है ? वा अनागम मूल है ? जे कर कहोगे कि आगम मूल है, तब तो आचार्योंकी परंपरा क्योंकि अप्रामाणिक हो सक्ति है ? आचार्योंकी परंपरा बिना, आगमका अर्थही क्योंकि जाना जाये ? जे कर कहोगे कि अनागममूल है, तब तो उन्मत्तके विरचित वचनवत् प्रामाणिक न होवेगा

पूर्वपक्ष—यद्यपि हमारा मत अनागम मूल है, तोनी युक्ति संयुक्त है, इस वास्ते हम मानते हैं.

उत्तरपक्ष—अहो “ इत स्वदर्शनानुराग ” कैसा जारी अपने मतका राग है, क्योंकि यह पूर्वापर विरुद्ध जापण तो अज्ञान मतका नृपण है ?

पूर्वपक्ष—किसी तरें हमारा पूर्वापर विरुद्ध बोलनाही हमारे मतका नृपण है ?

उत्तरपक्ष—युक्तियां जो होतीयां हैं, सो ज्ञानमूलही होतीयां हैं, अरु तुम तो अज्ञानहीकू श्रेय मानते हो, तो फेर तुमारे मतमें सत् युक्तियों का कैसे सजब होवे ? इस वास्ते तुम पूर्वापर विरुद्धार्थके जापक हो, इस हेतुसें तुमारा मत किसीजी कामका नहीं है ॥ इति अज्ञानवादि मत खमन ॥

अथ विनयवादीके मतका खमन लिखते हैं अब जो विनयहीसें मोक्ष मानते हैं सोनी एकांत वादके मोक्षसें हैं, क्योंकि विनय मुक्तिका अंग है, जो मुक्ति मार्गमें चलते हैं, तिनकी विनय करे अरु मुक्तिमार्ग तो “सम्यक् दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गं” इति बचनात्” सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, अरु सम्यक् चारित्र रूप है, ऐसा तत्त्वार्थ सूत्रका प्रमाण है, इस वास्ते ज्ञानादिकोंकी तथा ज्ञानादिकोंके आधार नूत जो बहुभुतादिक

पुरुष है, तिनकी जो विनय करे, बहुमान देवे, ज्ञानादिककी वृद्धि करे, सो परंपरा करके मुक्तिका अंग हो सका है, परंतु जो सुर, नरपति आदिककी विनय है, सो सत्कारका हेतु है, क्योंकि जो जिसकी विनय करता है, वो उसके गुणोंको बहु मान देता है, अरु सुर, नरपति, प्रमुखोंमें तो विषय जोगनेका प्रधान गुण है, जब उनकी विनय करी, तब तो उनके जोगोंकूं बहु मान दीया, जब जोगोंकूं बहु मान दीया, तब दीर्घ सत्कारपथकी प्रवृत्ति कर लीनी इस वास्ते एकांत विनयसे जो मोक्ष मानते हैं, सोनी असत् वादी हैं, क्योंकि ज्ञानादिकोंसे रहित विनय साक्षात् मुक्तिका अंग नहीं है ज्ञान, दर्शन, चारित्र्यसे रहित पुरुष, केवल पादपतनादिक विनयसे मुक्ति नहीं पा सकता है, किंतु ज्ञानादिक सहितही पा सकता है, तब तो ज्ञानादिकही साक्षात् मुक्तिके अंग दूये विनय नहीं

**पूर्वपक्ष**—कैसे हम जानीये जो ज्ञानादिकही मुक्तिके अंग है ?

**उत्तरपक्ष**—इस सत्कारमें मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति, इन तीनोंही करके कर्म वर्गणका संबंध आत्माको होता है, अरु कर्मकालका जो दूय होना है, सोइ मोक्ष है “मुक्ति कर्मद्वयाविष्टेति वचनप्रामाण्यात्” अरु कर्मका दूय तो तब होगा, जब कर्मवधका कारण वृद्धेद होगा, अरु कर्मका कारण तो मिथ्यात्वादि तीन है, इस वास्ते मिथ्यात्वका प्रतिपक्ष सम्यक् दर्शन है, अरु अज्ञानका प्रतिपक्ष सम्यक् ज्ञान है, अरु अविरति का प्रतिपक्ष सम्यक् चारित्र्य है, जब इन तीनोंको सेवता हुआ, यह तीनों प्रकर्ष जावकों प्राप्त होगे, तब सर्वथा कर्मोंका कारण दूर होवेगा जब कारण वृद्धेद होवेगा, तब निर्मूलज कर्मोद्धेदके होनेसे मोक्ष होवेगी, इस वास्ते ज्ञानादिकही मोक्षका अंग है, परंतु विनय मात्र नहीं अरु जो ज्ञानादिकों विषे विनय करता हुआ परंपरा करके मुक्ति अंग है, अरु साक्षात् मोक्षका हेतु तो ज्ञानादिक है, अरु जो जैनशास्त्रोंमें केइ जगें लिखा है कि “सर्वकल्याणजाजन विनय” सो ज्ञानादिकोंकी प्रवृत्ति वास्ते है, अरु जे कर विनयवादीनी इसी तरें मानता है, तब तो विनयवादीनी हमारे मतमेंही वर्ते है, तब तो विवादकाही अभाव है ॥ इति विनयवादी मत खम्बन ॥ यह समुच्चय ( ३५३ ) मतका किंचित् मात्र स्वरूप लिखा है

अथ नय्य जीवोंके शीघ्र बोध होने वास्ते पद दर्शनोंका किंचित् स्वरूप

प लिखते है. उसमें प्रथम बौद्ध दर्शनका स्वरूप है सो कहते हैं, बौद्ध मतमें गुरु जो होते हैं, तिनका त्रिगुण असा होता है. १ मस्तक मूर्च्छा हुआ, २ घामका टूकड़ा, ३ कममज्जु. ४ धातुरक्त वस्त्र, यह तो उनका वेष है. अरु शोचक्रिया बहुत है. कोमल शय्यामें सोना, सबेरे उठकर पेया पीना, मध्याह्न कालमें जात खाना, अपरान्हमें पानी पीना, डाह, खम, मिसरी अर्द्धरात्रिमें मरणांतमें मोह, यह बौद्धोंका चरित्र है, तब मनगमता नोजन करना, मनगमती शय्या, आसन, अरु मनगमता रहने का स्थान, असी अष्टी सामग्रियोंमें मुनि अष्टा ध्यान करता है, अरु निम्न पात्रमें जो कुछ पड़ जावे, सो सर्व बुद्ध, ऐसे मान करके मांसजी खा लेते हैं, अरु ब्रह्मचर्यादि अपणी क्रियामें बहुत दृढ धाते हैं, यह उनका आचार है, १ धर्म, २ बुद्ध, ३ सच, यह तीनोंको रत्नत्रय कहते हैं, अरु शासनके विघ्नोके नाश करने वाली तारा देवी मानते हैं, अरु विपश्चादिक सात बौद्धावतार जिनोकी मूर्तियोंके कठम तीन तीन रेखाका चिन्ह होता है, तिसकू जगवान् मानते हैं, तिसकू सर्वज्ञ मानते हैं.

अरु बुद्ध जगवान्को जितने नामों कर कहते हैं, सो लिखते हैं, १ बुद्ध, २ सुगत, ३ धर्मधातु, ४ त्रिकालवित्, ५ जिन, ६ बोधि सत्त्व, ७ महाबोधी, ८ आर्य, ९ शास्ता, १० तथागत, ११ पचज्ञान, १२ पडनिज्ञ, १३ दशार्ह, १४ दशजूमिग, १५ चतुस्त्रिंशज्ज्ञातकज्ञ, १६ दशपा रमिताधर, १७ द्वादशाह, १८ दशवल, १९ त्रिकाय, २० श्रीधन, २१ अक्षय, २२ समतज्ज्ञ, २३ सगुप्त, २४ दयाकूर्च, २५ विनायक, २६ मारजित्, २७ लोकजित्, २८ मुखजित्, २९ धर्मराज, ३० विज्ञानमात्रक, ३१ महामैत्र, ३२ मुनीन्द् यह वत्तीस नाम, बुद्ध जगवान्के कहते हैं अरु सात बुद्ध मानते हैं, १ विपशी, २ शिखी, ३ विश्वजु, ४ क्रकुष्ठद, ५ कांचन, ६ काश्यप, ७ शाक्यसिंह पीठला जो शाक्यसिंह बुद्ध है, ८ सके नाम, १ शाकसिंह, २ अर्कबोधव, ३ राहुलसू, ४ सर्वार्थसिद्ध, ५ गौतम, ६ मायासुत, ७ बुद्धोदनसुत, ८ देववत्ताप्रज तथा १ निहु, २ सोगत, ३ शाक्य, ४ शोद्धौवनी, ५ सुगत, ६ तथागत, यह शून्यवादी बौद्धोंके नाम हैं तथा १ शोद्धौवनी, २ धर्मोत्तर, ३ अर्बट, ४ धर्मकीर्ति, ५ प्रज्ञाकर, ६ विम्राग, ७ रामट इत्यादि अर्थोंके करने वाले गुरु हैं तथा

१ तर्कज्ञाणा, २ न्यायविद्, ३ हेतुविद्, ४ अर्थवत्, ५ तर्ककर्मलक्षित, ६ न्यायप्रवेश, ७ ज्ञानपार, इत्यादि नाम उनके तर्कशास्त्रोंके हैं तथा बौद्धोंकी शाखा चार है, सो कहते हैं, १ वैजापिक, २ सौतांत्रिक, ३ योगाचार, ४ माध्यमिक.

अथ बौद्धमतं बौद्ध चार वस्तु मानते हैं, सो लिखते हैं, १ दुःख, २ समुदाय, ३ मार्ग, ४ निरोध तहां जो दुःख है, सो पांच स्कंधरूप है, उसका नाम लिखते हैं १ ज्ञानस्कंध, २ वेदनास्कंध, ३ संज्ञास्कंध, ४ सस्कारस्कंध, ५ रूपस्कंध इन पांचो विना अपर कोइनी आत्मादिक पदार्थ नहीं है, यह पांच स्कंधका अर्थ लिखते हैं १ रूपविज्ञान, रस विज्ञान, इत्यादिक निर्विकल्पक जो विज्ञान हैं, सो विज्ञान स्कंध, २ सुखा दुःखा, अदुःख सुखा, यह वेदनास्कंध है, यह वेदना पूर्वकृत कर्मोंसें होती है, ३ सविकल्पक ज्ञान जो है, सो संज्ञास्कंध, ४ पुण्य अपुण्यदिक धर्म समुदाय जो है, सो सस्कारस्कंध है, इसही संस्कारके प्रबोधसें पूर्व अनुभवका स्मरणदिक होता है, ५ पृथिवी, धातु आदिक अरु रूपादिक, यह रूपस्कंध है, इन पांचोंसें अतिरिक्त आत्मादिक कोइ पदार्थ नहीं अरु यह जो पांचों स्कंध हैं, वे सर्व एक कृणमात्र रहते हैं, नित्यनी नहीं है, अरु कितनेक काल तांइ रहनेवालेनी नहीं है, यह दुःख तत्त्वके पांच जेद कहे

अथ दुःख तत्त्वका कारणनूत समुदाय तत्त्वका स्वरूप लिखते हैं, जो इस जगत्में राग द्वेषोंका समूह उत्पन्न होता है, वो राग द्वेषका समूह कैसा है? कि “आत्माआत्मीयनावारब्ध” मैं हूँ, यह मेरा है, ऐसा जो संबंध, तथा यह दूसरा है, यह दूसरेकी वस्तु है, ऐसा जो संबंध, सोइ है नाम जिसका इस करके जो राग द्वेषादिक उत्पन्न होते हैं, तिसका नाम समुदायतत्त्व है अथ दुःख, अरु समुदाय, यह जो दोनों हैं, सो ससारकी प्रवृत्तिके हेतु है

अब इन दोनोंके जो विपक्षीनूत १ मार्ग २ निरोध तत्त्व है, सो लिखते हैं कि “परमनि रुष्ट काल कृण” तिसमें जो होवे, सो कृणिक है, सर्व पदार्थ कृणमात्र रह कर नाश हो जाते हैं, आत्मा कोइसर्वकाल स्थायी नहीं पूर्वकृणके नाश होनेसें तत्सदृश उत्तर कृण उत्पन्न होता है, पूर्वज्ञान जनिता वासना सो उत्तर ज्ञानमें शक्ति है, अरु कृणोंकी परंपरा करके जो मान

सी प्रतीति होवे, तिसका नाम मार्ग है, सो निरोधका कारण जानना  
अथ चौथा निरोध नामा तत्त्व लिखते हैं, निरोध नामा तत्त्व मोक्षमें  
कहते हैं चित्तकी जो निवृत्ति अवस्था तिसका नाम निरोध तत्त्व है, सो  
मांत्तर करिकें मोक्ष कहते हैं, यह ५ खादि चारको आर्यसत्त्व कहते हैं,  
अरु यह जो चारों तत्त्व अनंतर कहे हैं, सो सोतात्रिक बौद्धमतकी अपेक्षा है.

अरु जेकर नेद रहित समुच्चय बौद्धमतकी प्रशिक्षा करियें, तब तो  
बौद्धमतमें चार पदार्थ होते हैं, उसमें १ आंत्र, २ चक्षु, ३ प्रा  
ण, ४ रसन, ५ स्पर्शन. यह पांच तो इन्द्रिय, अरु इन पांचों इ  
न्द्रियोंके पांच विषय, तथा १ चित्त, २ शब्दायतन धर्म जो है, सुख  
दुखादि तिनका जो आयतन ( घर ) सो क्या है ? कि शरीर है यह सर्व  
षादश तत्त्वोंका नाम आयतन कहते हैं, अरु यह चार आयतन कृणिक  
हैं, उक्त प्रकारसे. चार तत्त्व तो सांतांत्रिकके मतके, अरु सामान्य प्रकार  
से बौद्धमतके चार आयतन कह करके अब बौद्धमतके प्रमाण जिस  
ते हैं, बौद्धमतमें एक प्रत्यक्ष, दूसरा अनुमान, यह दो प्रमाण मानते  
हैं ॥ इति सङ्क्षेप मात्र बौद्धदर्शन ॥ १ ॥

अथ नैयायिक दर्शन लिखते हैं नैयायिक मतका अथर नाम र्योगमतकी  
कहते हैं, इन नैयायिकोंके गुरु १ दम रखते हैं, २ बड़ी कौपीन पहरेतें  
हैं, ३ कांबली उढते हैं, ४ जटा राखते हैं, ५ शरीरको नस्म लगाते हैं,  
६ नीरस आहार करते हैं, ७ बांहके मूलमें तूबी राखते हैं, ८ प्राय क  
रके वनोमें रहते हैं, ९ आतिथ्य कर्ममें तत्पर होते हैं, १० कद, मूल,  
फल, खाते हैं, ११ कितनेक स्त्री रखते हैं, औ कितनेक नहीं रखते हैं,  
१२ जो स्त्री नहीं रखते हैं, सो तिनमें उत्तम गणें जाते हैं, १३ पंचाग्नि  
तापते हैं, १४ जटामें प्राणलिंग धरते हैं, १५ उत्तम समय अवस्थामें  
जब प्राप्त होते हैं, तब नग्न हो कर भ्रमण करते हैं, १६ सवेरे दूत पा  
दादि शौच करके शिवका ध्यान करते हैं, १७ नस्म करके तीन तीन वा  
र अंगकू स्पर्श करते हैं, १८ जो उनका जक बढना करता है, सो “ उ  
नम शिवाय ” कहता है, अरु १९ गुरु जकके तांड “ शिवाय नम ” औ  
से कहता है उनका कहना ऐसाही है, कि जो पुरुष शैवी दीक्षा बारां  
वर्षपाल करके ढोह देवे, जेकर पीछे वो दास दासीनी होवे, तोनी निर्वाण

पद पाता है, अरु शंकर इनका देव है, सो शंकर कैसा हैकि.—सर्व सृष्टि का संहारका कर्त्ता है

तिस शंकरके अवतार अवतार मानते हैं, तिसका नाम लिखते हैं, १ नकुलीश, २ कौशिक, ३ गार्ग्य, ४ मैत्र, ५ कौरुप, ६ ईशान, ७ अपर गार्ग्य, ८ कपिलाम, ९ मनुष्यक, १० अपर कुशिक, ११ अत्रि, १२ पिगलाक्ष, १३ पुष्पक, १४ बृहदाचार्य, १५ अगस्ति, १६ सतान, १७ राशिकर, ( १८ ) विद्यागुरु, यह अवतार उनके तीर्थेश हैं, इनकी बहुत सेवा करते हैं, इनका पूजन, अरु प्रणिधान तिनके शास्त्रोंसे जान लेना

अरु इनका अरूपाद मुनि अर्थात् गौतम मुनि गुरु है, तिनके मतमें जरट पूजनिक है, सो कहते हैं, देवताओंके सन्मुख हो कर नमस्कार न करणी, जैसा नैयायिक मतमें लिंग, वेप, देवादि स्वरूप है, तैसाही वैशेषिक मतमेंनी जान लेना, क्योंकि नैयायिक वैशेषिकोंके प्रमाण अरु तत्त्वोंमें थोडासा जेद है, इस वास्ते यह दोनो मत तुल्य ही है, इन दोनों हीकों तपस्वी कहते हैं, अरु तिनके शैवादि चार जेद हैं, एक शैव, दूसरा पाछपत, तीसरा महाव्रतधर, चौथा कालमुख इनके अवतार जेद जरट, जकलैंगिक, तापसादिक है, जरटादिकोको व्रत ग्रहणमें ब्राह्मणादि वर्णोंका नियम नहीं, किंतु जिसकी शिव विषे जक्ति होवे, सो व्रती जरटादिक होता है, परंतु नैयायिक जो हैं, सो सर्व सदाशिवजक्त होनेसे उनका नाम शैव कहते हैं, अरु वैशेषिकोंको पाछपत कहते हैं

इन नैयायिकोंके मतमें १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ४ शाब्द, यह चार प्रमाण मानते हैं, अरु १ प्रमाण, २ प्रमेय, ३ सशय, ४ प्रयोजन, ५ दृष्टांत, ६ सिद्धांत, ७ अवयव, ८ तर्क ९ निर्णय, १० वाद, ११ जल्प, १२ वितंभा, १३ हेत्वाज्ञास, १४ उल, १५ जातय, १६ निग्रहस्थान यह सोला पदार्थ मानते हैं, इनका विस्तार बहुत है, इस वास्ते नहीं लिखा, अरु आत्पतिक ड खोंका जो वियोग तिसकू मोक्ष कहते हैं इनके १ न्यायसूत्र, अरूपाद मुनि कर्त्ता, २ जाप्य, वात्स्यायन मुनि कर्त्ता, ३ न्याय चार्त्तिक, उद्योतकर कर्त्ता, ४ तात्पर्य टीका, वाचस्पति कर्त्ता, ५ तात्पर्य परिच्छिदि, उदयन कर्त्ता, ६ न्यायालकार वृत्ति, श्रीकृष्णयतिलकोपाध्याय कर्त्ता, ७ नासर्वज्ञप्रणीत,

सी प्रतीति होवे, तिसका नाम मार्गी है, सो निरोधका कारण जानकी  
अथ चौथा निरोध नामा तत्त्व लिखते हैं. निरोध नामा तत्त्व मोक्षमें  
कहते हैं चित्तकी जो निक्षेप अवस्था तिसका नाम निरोध तत्त्व है. न  
मांतर करिकें मोक्ष कहते हैं, यह दुःखादि चारको आर्यसत्त्व कहते हैं,  
अरु यह जो चारों तत्त्व अनंतर कहे हैं, सो सौतांत्रिक बौद्धमतकी अपेक्षा है.

अरु जेकर नेव रहित समुच्चय बौद्धमतकी प्रियक्षा करियें, तब तो  
बौद्धमतमें बारा पदार्थ होते हैं. वसमें १ आंत्र, २ चक्षु, ३ प्रा  
ण, ४ रसन, ५ स्पर्शन. यह पांच तो इन्द्रिय, अरु इन पांचों ६  
इन्द्रियोंके पांच विषय, तथा १ चित्त, २ शब्दायतन धर्म जो है, सुप्त  
दुःखादि तिनका जो आयतन ( घर ) सो क्या है ? कि शरीर है यह १  
षादश तत्त्वोंका नाम आयतन कहते हैं, अरु यह बारा आयतन  
हैं, वक्त प्रकारसे. चार तत्त्व तो सौतांत्रिकके मतके, अरु सामान्य  
सैं बौद्धमतके बारा आयतन कह करिकें अथ बौद्धमतके प्रमाण  
ते हैं, बौद्धमतमें एक प्रत्यक्ष, दूसरा अनुमान, यह दो प्रमाण  
हैं ॥ इति सङ्क्षेप मात्र बौद्धदर्शन ॥ १ ॥

अथ नैयायिक दर्शन लिखते हैं नैयायिक मतका अपर नाम चौथा  
कहते हैं, इन नैयायिकोंके गुरु १ दम रखते हैं, २ बड़ी कौपीन  
हैं, ३ कांबली उढते हैं, ४ जटा राखते हैं, ५ शरीरको नस्म लगाते  
६ नीरस आहार करते हैं, ७ बांहके मूलमें तूवी राखते हैं, ८ प्राय  
रके वनोमें रहते हैं, ९ आतिथ्य कर्ममें तत्पर होते हैं, १० कद,  
फल, खाते हैं, ११ कितनेक स्त्री रखते हैं, औ कितनेक नहीं रखते  
१२ जो स्त्री नहीं रखते हैं, सो तिनमें उत्तम गणो जाते हैं, १३  
तापते हैं, १४ जटामें प्राणलिंग धरते हैं, १५ उत्तम समय  
जब प्राप्त होते हैं, तब नम्र हो कर भ्रमण करते हैं, १६ सबेरे दत्त  
दादि शौच करके शिवका ध्यान करते हैं, १७ नस्म करिकें तीन तीन  
र अंगकू स्पर्श करते हैं, १८ जो उनका जक्त बढ़ना करता है, सो  
“ नम शिवाय ” कहता है, अरु १९ गुरु जक्तके तांड़ “ शिवाय नम ”  
से कहता है उनका कढ़ना औसानी है, कि जो पुरुष शैवी दीक्षा  
वर्षपाल करिकें ढोढ देवे, जेकर पीछे वो दास दासीनी होवे, तोनी .

न्यायसार तिसविधे अगारह टीका है, तिनमेंसू न्यायजूरण नामक टीका प्रसिद्ध है, न्यायकलिका जयंत रचित, न्याय कुसुमांजलि यह सब इन नैयायिकोंके तर्क ग्रंथ है, यह नैयायिकदर्शन, सक्षेपसे लिखा.

अथ वैशेषिककी यही लिख देते हैं कि वैशेषिकोंका मत नैयायिकों के तुल्यही है, परंतु यह विशेष है कि, यह मतवाले प्रत्यक्ष अथ अनुमान यह दो प्रमाण मानते हैं, अथ १ इन्द्रिय, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, यह सावरूप ठ तत्त्वा मानते हैं, इन सर्वका विस्तार देखना होवे, तदा वैशेषिक मतके ग्रंथोंमें देख लेना, तथा त पागुष्ठाचार्य श्रीगुणरत्नसूरिविरचित पददर्शन समुच्चय ग्रंथकी टीका देख लेनी अथ यह वैशेषिकमतके जो तर्कग्रंथ हैं, सो कहते हैं, एक तो ६००० श्लोक प्रमाण, कदली श्रीधर आचार्य कर्त्ता, वैशेषिक सूत्र, ३००० श्लोक प्रमाण, प्रशस्तकर नाथ, ७०० श्लोक मान, व्योमशिवाचार्यरुत व्योममतीटीका, ९००० श्लोक मान, उदयनकी करी दूई किरणावली ६००० श्लोकमान, श्रीवत्स आचार्यरुत लीलावती टीका ६००० श्लोकमान, अथ एक आग्नेय तत्र था, सो व्यवहृद हो गया है यह वैशेषिक मतवाले कहते हैं की शिवजीने उलूककारूप करके कणाद मुनि के आगे यह वैशेषिक मत प्रकाश करा था, इस वास्ते इस मतका नाम औलूक्य मतकी कहते हैं ॥ इति वैशेषिक मत ॥

अथ सांख्यमत लिखते हैं प्रथम तो सांख्यमतके साधुओंके जानने वास्ते उनका लिंगादिक लिखते हैं सो त्रिदम्नीकी होते हैं, कौपीन पहरेते हैं, धातुरक्त वस्त्र रखते हैं, कोई शिर उपर शिखा रखते हैं, अथ कोई जटा रखते हैं, कोई मस्तक क्षुरमुद्र कराते हैं, मृगचर्मका आसन रखते हैं, द्विजके घरका अन्न खाते हैं, कोई पांचही ग्रास खाते हैं, अथ बारा अक्षरका जाप करते हैं, तिनके नक्त, जब गुरुकूँ बदना करता है, तब “ॐ नमो नारायणाय” ऐसे कहते हैं, तब गुरु उनकूँ “नमो नारायणाय” ऐसे कहते हैं, अथ महाजारतमें जिसका नाम “वीटा” ऐसा लिखा है, यह काष्ठकी मुखवस्त्रिका मुखके निश्वास निरोधके वास्ते रखते हैं, जिससे मुखश्वास से जीवहिंसा न होवे यदाहु ॥ श्लोक ॥ ते प्राणादनुयातेन, श्वासेनैकेन जै तव ॥ हन्यते शतशो ब्रह्म, त्रणुमात्राक्षरजाविन ॥ १ ॥ ते सांख्य गुरु. ज



लके जीवोंकी दया वास्ते अपने पास पाणीके ढानने वास्ते गलनां राखते हैं, अरु अपने जकोकू पाणीके ढानने वास्ते तीस अगुल प्रमाण लां वा और वीश अगुल प्रमाण चौड़ा, दृढ ढलना राखनेका उपदेश करते हैं, अरु जो जीव पानीके ढाननेसे निकले, वो उसी पाणीमें पीठे प्रक्षेप करने, क्योंकि मीठे पाणी करके खारे पाणीके पूरे मर जाते हैं, अरु खारे पाणीके मिलनेसे मीठे पाणीके पूरे मर जाते हैं, इस वास्ते परस्पर पानी योंका मेल न करना, बहुत सूक्ष्म पाणीके एक बिंदुमें इतने जीव हैं कि जे कर चमर समान उस जीवोंकी काया बनाइ जावे, तो तीन लोकमें वे जीव न समावे ॥ इति गलनक विचारो मीमांसाया ॥

यह सांख्यजी एक प्राचीन, अरु एक नवीन, ऐसे दो तर्रके हैं, नवीनोका दूसरा नाम पांतांजलजी कहते हैं, इनमेंसू प्राचीन सांख्य ईश्वरकों नहीं मानते हैं, अरु नवीन सांख्य ईश्वरकों मानते हैं, जो निरीश्वर हैं वो ना रायण पर हैं, अरु उनके जो आचार्य हैं, सो विष्णु प्रतिष्ठा कारका चैतन्य प्रमुख शब्दों करके कहे जाते हैं, अरु सांख्य मत कहने वाले यह आचार्य हैं सो लिखते हैं कपिल, आसुरी, पंचशिख, जार्गव, उलूक, ईश्वर, रुष्ण, यह शास्त्रोंके कर्त्ता हैं सांख्यमत वालोंकों कपिलाजी कहते हैं, तथा कपिलाका परमार्थ ऐसा दूसराजी नाम है, इस वास्ते तिनकों पारमर्षाजी कहते हैं, वाणारसीमें सो बहुत होते हैं, मासोपवासजी करते हैं, अरु ब्राह्मण जो हैं, सो अर्चिमार्गसे विरुद्ध धूममार्गानुगामी हैं, अरु सांख्य जो हैं, सो अर्चिमार्गानुयायी हैं, तिस वास्ते ब्राह्मणोंको तो वेद प्यारे हैं, अरु यज्ञमार्गानुयायी हैं, अरु सांख्य जो हैं सो हिंसा करके पूर्ण, ऐसे जो वेद, तिनोंसे निवर्ते दूये हैं, अध्यात्मवादी हैं सो सांख्य अपने मतकी महिमा ऐसी मानते हैं भावर शास्त्रके प्रांतमें लिखा है ॥ श्लोक ॥ हस पिब चखाद मोद, नित्य जुह्व च जोगान् यथाऽनिकाम ॥ यदि विदितं कपिलमतं, तत्प्राप्स्यसि मोक्षसौख्यमचिरेण ॥ १ ॥ अथार्थ — जे कर तुमने कपिल मत जाना है तो इसो, पीयो, खेलो, खाउ, सदा खुशी रहो, जैसे रुचि होवे, तैसे जोगोंको सदा जोगो, तो तुमकों थोड़ेसे कालमें मुक्ति सुख प्राप्त होवेगा शास्त्रांतरमेंजी कहा है ॥ श्लोक ॥ पचविंशति तत्त्वज्ञो, यत्र तत्राश्रमे रत ॥ शिखी मुनी जटी वापि, मुच्यते नात्र सशय ॥ १ ॥

न्यायसार तिसविधे अगारद टीका है, तिनमेंसे न्यायज्ञापण नामक टीका प्रसिद्ध है, न्यायकलिका जयत रचित, न्याय कुसुमाजलि यह सब इन नैयायिकोंके तर्क ग्रंथ हैं, यह नैयायिकदर्शन, सक्षेपसे लिखा

अथ वैशेषिककी यही लिख देते हैं कि वैशेषिकोंका मत नैयायिकों के तुल्यही है, परंतु यह विशेष है कि, यह मतवाले प्रत्यक्ष अरु अनुमान यह दो प्रमाण मानते हैं, अरु १ इव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, यह सावरूप ७ तत्त्वों मानते हैं, इन सर्वका विस्तार देखनां होवे, तदा वैशेषिक मतके ग्रंथोंमें देख लेना, तथा तपागुणाचार्य श्रीगुणरत्नसूरिविरचित पददर्शन समुच्चय ग्रंथकी टीका देख लेनी अरु यह वैशेषिकमतके जो तर्कग्रंथ हैं, सो कहते हैं, एक तो ६००० श्लोक प्रमाण, कदली श्रीधर आचार्य कर्ता, वैशेषिक सूत्र, ३००० श्लोक प्रमाण, प्रशस्तकर नाथ, ४०० श्लोक मान, व्योमशिवाचार्यरुत व्योममतीटीका, ९००० श्लोक मान, उदयनकी करी दूई किरणावली ६००० श्लोकमान, श्रीवत्स आचार्यरुत लीलावती टीका ६००० श्लोकमान, अरु एक अत्रिय तत्र था, सो व्यवहृद हो गया है यह वैशेषिक मतवाले कहते हैं की शिवजीने उलूककारूप करके कणाद मुनि के आगे यह वैशेषिक मत प्रकाश करा था, इस वास्ते इस मतका नाम औलूक्य मतनी कहते हैं ॥ इति वैशेषिक मतं ॥

अथ सांख्यमत लिखते हैं प्रथम तो सांख्यमतके साधुओंके जानने वास्ते उनका लिंगादिक लिखते हैं सो त्रिदमीनी होते हैं, कौपीन पहरेते हैं, धातुरक्त वस्त्र रखते हैं, कोई शिर उपर शिखा रखते हैं, अरु कोई जटा रखते हैं, कोई मस्तक झुरमुन कराते हैं, मृगचर्मका आसन रखते हैं, दिजके घरका अन्न खाते हैं, केइ पांचही मास खाते हैं, अरु बारा अक्षरका जाप करते हैं, तिनके जक्त, जब गुरुकू बचना करता है, तब “ॐ नमो नारायणाय” ऐसे कहते हैं, तब गुरु उनकू “नमो नारायणाय” ऐसे कहते हैं, अरु महानारतमें जिसका नाम “वीटा” ऐसा लिखा है, यह काष्ठकी मुखवस्त्रिका मुखके निश्वास निरोधके वास्ते रखते हैं, जिससे मुखश्वास से जीवहिंसा न होवे यवाहु ॥ श्लोक ॥ ते प्राणावनुयातेन, श्वासेनैकेन जं तव ॥ हन्यंते शतशो ब्रह्म, त्रणुमात्राक्षरवादिन ॥ १ ॥ ते सांख्य गुरु, ज

लके जीवोंकी दया वास्ते अपने पास पाणीके ठानने वास्ते गलना राखते है, अरु अपने जकोकू पाणीके ठानने वास्ते तीस अगुल प्रमाण लावा और वीश अगुल प्रमाण चौडा, दृढ ठलना राखनेका उपदेश करते है, अरु जो जीव पानीके ठाननेसे निकले, वो उसी पाणीमें पीठे प्रहेष करने, क्योंकि मीठे पाणी करके खारे पाणीके पूरे मर जाते है, अरु खारे पाणीके मिलनेसे मीठे पाणीके पूरे मर जाते हैं, इस वास्ते परस्पर पानी योंका मेल न करना, बहुत सूक्ष्म पाणीके एक बिंदुमें इतने जीव है कि जे कर चमर समान उस जीवोंकी काया बनाइ जावे, तो तीन लोकमें वे जीव न समावे ॥ इति गलनक विचारो मीमासायां ॥

यह सांख्यजी एक प्राचीन, अरु एक नवीन, ऐसे दो तरके हैं, नवीनोका दूसरा नाम पांतांजलजी कहते हैं, इनमेंसूं प्राचीन सांख्य ईश्वरको नहीं मानते हैं, अरु नवीन सांख्य ईश्वरको मानते है, जो निरीश्वर है वो नाशयण पर हैं, अरु उनके जो आचार्य है, सो विष्णु प्रतिष्ठा कारका चैतन्य प्रमुख शब्दों करके कहे जाते है, अरु सांख्य मत कहने वाले यह आचार्य है सो लिखते है कपिल, आसुरी, पचशिख, जार्गव, उल्लूक, ईश्वर, कृष्ण, यह शास्त्रोंके कर्त्ता है सांख्यमत वालोको कपिलाजी कहते है, तथा कपिलाका परमर्षि ऐसा दूसरानी नाम है, इस वास्ते तिनको पारमर्षाजी कहते है, वाणारसीमें सो बहुत होते है, मासोपवासजी करते है, अरु ब्राह्मण जो है, सो अर्चिमार्गसे विरुद्ध धूममार्गानुगामी है, अरु सांख्य जो है, सो अर्चिमार्गानुयायी है, तिस वास्ते ब्राह्मणोको तो वेद प्यारे है, अरु यज्ञमार्गानुयायी है, अरु सांख्य जो हैं सो हिंसा करके पूर्ण, ऐसे जो वेद, तिनोसे निवर्ते दूये हैं, अध्यात्मवादी हैं सो सांख्य अपने मतकी महिमा ऐसी मानते है भावर शास्त्रके प्रांतमें लिखा है ॥श्लोक॥ हस पिव चखाद मोद, नित्य जुह्व च जोगान् यथाऽनिकाम ॥ यदि विदितं कपिलमतं, तत्प्राप्यसि मोक्षसौख्यमचिरेण ॥१॥ अथार्थ —जे कर तुमने कपिल मत जाना है तो हसो, पीयो, खेलो, खाओ, सदा खुशी रहो, जैसें रुचि होवे, तैसें जोगोंको सदा जोगो, तो तुमको थोड़ेसे कालमें मुक्ति मुख प्राप्त होवेगा शास्त्रांतरमेंजी कहा है ॥ श्लोक ॥ पचविंशति तत्त्वज्ञो, यत्र तत्राश्रमे रत ॥ शिखी मुनी जटी वापि, मुच्यते नात्र सशय ॥ १ ॥

अस्यार्थे - पञ्चीश तत्त्वोंका जो जानकार होवे, सो चाहो किसी आश्रममें रहे, शिखावाजा होवे, ॥ मुनित होवे, अथवा जटावाजा होवे, वे सर्व उपाध से बूट जाते हैं, इसमें संशय नहीं।

अब सांख्यमतमें सर्वसांख्य पञ्चीश तत्त्व मानते हैं, जब पुरुष तीन डखोंसे अचिह्न होता है, तब तिन डखोंके दूर करणें वास्ते जिज्ञासा उत्पन्न होती है, सो तीन डख यह हैं १ आध्यात्मिक, २ आधिदैविक, ३ आधिभौतिक, यह तीन डख हैं, आध्यात्मिक जो आधि है, सो दो प्रकारकी है, एक शारीरी, दूसरी मानसी, तदा जो वायु, पित्त, श्लेष्म, इन तीनोंकी विषमतासे देहम जो अतिसारादिक होते हैं, सो शारीरिक है अथवा काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, विषयोंके देखनेसे जो होवे, सो मानसी यह दोनोंही आंतर उपायसे दूर हो सकति हैं इस वास्ते इसकू आध्यात्मिक डख कहते हैं, २ अथ जो बाह्य उपाय करके साध्या जावे सो डख दो प्रकारके हैं, एक आधिभौतिक, दूसरा आधिदैविक, तहां जो डख मनुष्य, पशु, पक्षी, मृग, सर्प, स्थावर आदिके निमित्त करके होता है ताकू आधिभौतिक कहते हैं, ३ अथ यह, राक्षस, जूतादिकका प्रवेश हो जाना, तथा महामारी अनावृष्टि अतिवृष्टिका दोनों तितका नाम आधिभौतिक है इन तीनों डखों करके रज परिणामके जेद करके प्राणी योंकों डखोंके दूर करणें वास्ते तत्त्वोंके जाननेकी इच्छा होती है, सो तत्त्व, पञ्चीश प्रकारके हैं

अब प्रथम पञ्चीश तत्त्वोंका स्वरूप लिखते हैं तिनमें प्रथम सत्त्वादि गुणोंका स्वरूप कहते हैं १ प्रथम सत्त्वगुण सुखलक्षण, २ दूसरा रजोगुण डख लक्षण, ३ तीसरा तमोगुण मोहलक्षण, इन तीनों गुणोंके यह लिंग हैं, १ सत्त्वगुणका चिन्ह प्रसन्नता, २ रजोगुणका चिन्ह सताप, ३ तमोगुणका चिन्ह दीनपणा, अब १ प्रसाद, २ बुद्धिपाठव, ३ लाघव, ४ प्रश्रय, ५ अननिष्वग, ६ अक्षेप, ७ प्रीत्यादय, यह सत्त्वगुणके कार्यलिंग हैं १ ताप, २ शोष, ३ जेव, ४ चलचित्त, ५ स्तब्ध, ६ उद्वेग, यह रजोगुणके कार्य लिंग हैं, १ दैन्य, २ मोह, ३ मरण, ४ असादन, ५ वीनत्सा, ६ ज्ञानगौरवादि, यह तमोगुणके कार्यलिंग हैं इन कार्य करके सत्त्वादि गुण जाने जाते हैं ॥ तथाहि ॥ लोकमें जो कुछ सुख उपलब्ध होता है,

सो १ आर्क्षव, २ मार्दव, ३ सत्य, ४ शौच, ५ लज्जा, ६ बुद्धि, ७ क्रमा, ८ अनुकंपा, प्रसादादि, यह सर्व सत्त्व गुणके कार्य हैं अरु जो कुछ दुःख उपलब्ध होता है, सो १ देष, २ दोह, ३ मत्सर, ४ निदावचन, ५ वधन, तापादि स्थान हैं, सो रजोगुणके कार्य हैं अरु जो कुछ मोह, उपलब्ध होता है, सो १ अज्ञान, २ मद, ३ आलस्य, ४ नय, ५ दैन्य, ६ रुपण ता, ७ नास्तिकता, ८ विपाद, ९ वन्माद स्वप्नादि, यह तमोगुणके कार्य हैं यह सत्त्वादिक परस्परोपकारी तीन गुणों करके सर्व जगत् व्याप्त है, परंतु ऊर्ध्व लोकमें देवतायों विषे बाहुल्य करके सत्त्वगुण हैं, औ अधोलोक तिर्यच नरकों विषे बाहुल्य करके तमोगुण है, औ मनुष्यों में बहुलता करके रजो गुण है, इन तीनों गुणों की जो सम अवस्था है, तिसका नाम प्रकृति है, तिस प्रकृतिकों प्रधान, अव्यक्त शब्दों करकेनी कहने हैं, सो प्रकृति नित्य स्वरूप है, “अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभाव कूटस्थ नित्यं” यह नित्यका लक्षण है अरु यह जो प्रकृति है सो अन्वय, वा असाधारणी, अशब्दा, अस्पर्शा, अरसा, अरूपा, अगधा, अव्याया, कहते हैं अरु जो मूल सांख्यमती है, वे एकैक आत्माके साथ न्यारा न्यारा प्रधान मानते हैं, अरु जो नवीन सांख्य है, वे सर्वात्माओंमें एक, नित्य, प्रधान मानते हैं, प्रकृति अरु आत्माके संयोगसे सृष्टि होती है, इस वास्ते सृष्टि होनेका क्रम लिखते हैं

तिस प्रकृतिसेती बुद्धि उत्पन्न होती है, गौ आदिकोंके आगें दीखने से यह गौही है घोडा नहीं, यह स्थाणुही है, परंतु पुरुष नहीं, ऐसा जो निश्चयरूप अथ्यवसाय होता है, तिसका नाम बुद्धि कहते हैं, दूसरा तिसका नाम महत्तजी कहते हैं तिस बुद्धिके आत रूप हैं १ धर्म, २ ज्ञान, ३ वैराग्य, ४ ऐश्वर्य, यह चार तो सात्विक बुद्धिके रूप है, १ अधर्म, २ अज्ञान, ३ अवैराग्य, ४ अनैश्वर्य, यह चारो तामसी बुद्धिके रूप है तिस बुद्धिसे अहंकार उत्पन्न होता है, तिस अहंकारसेति सोला गुणका समूह उत्पन्न होता है, सो गुण यह है, १ स्पर्शन (त्वक्) २ रसन जिह्वा, ३ घ्राण नासिका, ४ चक्षु लोचन, ५ श्रोत्र श्रवण इन पांचोंको बुद्धिंडिय कहते हैं, क्योंकि यह पांचों अपने अपने विषयको जानती है, अरु पांच कर्मेंडिय है १ पायु गुदा, २ उपस्थ स्त्री पुरुषका चिन्ह, ३

कवादि आठस्थानोंसे जो शब्द उत्पन्न किये हैं, सो वच, ४ हाथ, ५ पग, इन पांचोंसे पांच काम होते हैं. १ मलोत्सर्ग, २ सनोग, ३ वचन, ४ पकड़ना, ५ चलना, इस वास्ते इन पांचोंको कर्मेन्द्रिय कहते हैं अरु अगोचरवा मन, यह मन जो है, सो बुद्धिन्द्रियोंसे मिलता है, तब बुद्धिन्द्रियरूप हो जाता है, अरु जब कर्मेन्द्रियोंसे मिलता है, तब कर्मेन्द्रिय रूप हो जाता है, अरु यह मन जो है, सो सकल्पवृत्ति है, तथा अहंकारसती पांच तन्मात्रा जिनकी सूक्ष्म सज्ञा है, सो उत्पन्न होते हैं, तहां १ रूप तन्मात्रा सो शुक्ल कृष्णादिरूप विशेष, २ रस तन्मात्रा सो तिकादि रस विशेष, ३ गंध तन्मात्रा सो सुरगंधादि गंध विशेष, ४ शब्दतन्मात्रा, सा मधुरादि शब्द विशेष, ५ स्पर्श तन्मात्रा, सो मृदु काठिन्यादि स्पर्श विशेष, यह षोडशका गण है अथ पांच तन्मात्राओंसे पांच नूत उत्पन्न होते हैं, सो कहते हैं १ रूप तन्मात्रा सूक्ष्म सज्ञासे अग्नि उत्पन्न होता है, २ रस तन्मात्रासे जल उत्पन्न होता है, ३ गंध तन्मात्रासे पृथिवी उत्पन्न होती है, ४ औ शब्द तन्मात्रासे आकाश उत्पन्न होता है, तथा ५ स्पर्श तन्मात्रासे वायु उत्पन्न होता है ऐसे पांच तन्मात्राओंसे पांच नूत उत्पन्न होते हैं, ऐसे यह सब मिल कर चोवीस तत्त्व रूप सांख्य मतमें प्रधान निवेदन किया, “ औ अकर्ता विगुण जोका ” ऐसा पुरुष तत्त्व नित्य चिद्रूप मानते हैं, चोवीस तत्त्वरूप प्रधान असे हैं कि १ प्रकृति, २ महान्, ३ अहंकार, ४ पांच ज्ञानेन्द्रिय, १३ पांच कर्मेन्द्रिय, १४ मन, १५ पांच तन्मात्रा, २४ पांच नूत, यह चोवीस तत्त्व हैं तिनमेंसू प्रथम एक प्रकृति है, ऐसों अनुत्पन्न होनेसे बुद्धि आदिक सात अंगजोंके तो कारण हैं, अरु पीढलोंके कार्य हैं, इस वास्ते इन सातोंको प्रकृति विकृति कहते हैं, अरु षोडशका गण सो कार्यरूप दोषोंसे विकृति रूप है, अरु पुरुष जो है, सो न प्रकृति है, न विकृति है, न किसीसे उत्पन्न हुआ है, न किसीको उत्पन्न करता है, इस हेतुसे ॥ तथाचेश्वर कृष्ण सांख्यसप्ततौ ॥ “ मूलप्रकृतिरविकृतिर्मेद्वाद्या प्रकृतिविकृतय सप्त ॥ षोडशकश्च विकारो, विकृतय न प्रकृतिर्न विकृति पुरुष इति ॥ अर्थ—तथा ईश्वर कृष्ण सांख्यमतका आचार्य सांख्यसप्तति ग्रंथमें लिखता है, कि मूल प्रकृति अविकृति है, मद्दत् आदिक सात प्रकृति विकृति हैं, षोडशक विकार

विकृति हैं न प्रकृति है, न विकृति है, सो पुरुष है तथा महदादिक, प्रकृतिका विकार है, सो व्यक्त होकर फेर अव्यक्तनी हो जाते हैं, सो अनित्य होनेसे अपणो स्वरूपसे प्रश हो जाते हैं, अरु प्रकृति जो है, सो अविकृतिरूप है, सो कदापि अपणो स्वरूपसे प्रश नहीं होती है तथा महत् आदिकोंका अरु प्रकृतिका स्वरूप सांख्यमतवाले ऐसे मानते हैं ? हे तुमत्, १ अनित्य, २ अव्यापक, ४ सक्रिय, ५ अनेक, ६ आश्रित, ७ लिंग, ८ सावयव, ९ परतंत्र, १० व्यक्त, इनसे विपरीत प्रकृति है तहां ? हे तुमत् कारण वाले हैं, महत् आदिक १ अनित्य, उत्पत्तिधर्मवाले हैं, २ बुद्ध्यादिक अव्यापी है, सर्वगत नहीं, ४ अध्यवसाय करके संयुक्त वर्तते है, ५ स हेतुसे सक्रिय सव्यापार चलने वाले हैं, ६ अनेक, तेवीस प्रकारके हैं इस वास्ते, ६ आश्रित, आत्माके उपकार वास्ते प्रधानकों अवलंब करिके रहे हैं, ७ लिंग, जो जिससेते उत्पन्न होते हैं, सो तिसहीमें “लज्जं कृतं गच्छतीति लिंग,” तहां पांच जूत, पांच तन्मात्राओंमें लज्ज होते हैं, औ पांच तन्मात्रा, अरु दश इन्द्रिय, अरु मन, यह अहंकारमें लज्ज होते हैं, अरु अहंकार बुद्धिमें लज्ज होता है, अरु बुद्धि प्रकृतिमें लज्ज होती है, औ प्रकृति किसीमेंनी लज्ज नहीं होती हैं, ८ सावयव, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधादिकों करके संयुक्त है, ९ परतंत्र, कारणके अधीन होनेसे, १० ऐसेही महत् आदिक व्यक्त हैं, प्रकृति इनसे विपरीत है, सो सुगम है, आपही समझ लेनी यह थोड़ासा स्वरूप लिखा है, जेकर विस्तार देखना होवे तदा सांख्य सप्तति आदिक, तिनोके शास्त्रोंसे जान लेना

अथ पञ्चीशवा पुरुष तत्त्वका स्वरूप कहते हैं, पुरुषजो है सो “अकर्त्ताविगुणोक्तो नित्यचिदनुपेतश्च” पुरुष तत्त्व आत्माको कहते हैं, १ आत्माजो है, सो विषय सुखादिक तिनका कारण पुण्यादिक नहीं करता है, इस वास्ते “अकर्त्ता” है, क्योंकि आत्मा तृण मात्रनी तोड़ने समर्थ नहीं है, औ कर्त्ता जो है, सो प्रकृति है, क्योंकि प्रकृतिमें प्रवृत्ति स्वभाव है, तथा २ “विगुण” सत्त्वादि गुणरहित है, क्योंकि सत्त्वादिक जो हैं सो प्रकृतिके वर्म हैं, तथा ३ “नोक्ता” आत्मा नोक्ता नोचने वाला है, नोक्तानी साक्षात् नहीं किंतु प्रकृतिका विकार जूत उन्नय मुख दर्पणाकार जो बुद्धि है, तिसमें स क्रमण होय दुवे सुख उ खोंकों पुरुष स्वात्म निर्मलविषे प्रतिबिंबोदय मात्र

करकं “नोक्ता” कहियें है, “बुद्ध्यवसितमर्थं पुरुषभेतत” इति वचनात् ॥ जैसे जाइके फूलोंके सन्निधानके वशसे स्फटिकमें रक्ततादि कहनेमें आता है, तैसे प्रकृतिके निकट होनेसे पुरुषजी सुख दुःखोंका नोक्ता कहा जाता है, सांख्यमतका वाद महाएवजी कहता है, उक्तच “बुद्धिदर्पणसंक्रांतं, समर्थप्रतिविवक ॥ द्वितीयदर्पणकल्पे, पुसित्यद्धारोदति ॥ तदेव नोकृत्य मस्य नत्वात्मनोविकारापत्तिरिति” ॥ इसका तात्पर्यार्थे उपर ज़िखा जानना.

तथा च कपिलका शिष्य आसुरिजी कहता है ॥ श्लोक ॥ विवक्ते दृक्परिणतौ, बुद्धौ नोगोऽस्य कथ्यते ॥ प्रतिविवोदय स्वप्ने, यया च इमसौ नसि ॥ १ ॥ तथा विध्यवासी सांख्याचार्य आत्माको ऐसे नोक्ता कहता है, कि पुरुष जो है, सो अविहतात्माही है, स्वनिर्जास अचेतनमन करता है, तिस म नकी निकटतासे उपाधि स्फटिकवत् दिखलाइ देती है, तथा “निस्था या चिञ्चेतना तथाऽन्युपेत ” इस कहने करके पुरुषही चैतन्य स्वरूप है, “नतु ज्ञानस्य ” ( परंतु ज्ञान को नहीं ) क्योंकि ज्ञानको बुद्धिधर्म हो नैसें. तथा पतंजलीजी ऐसेही कहता है तथा “पुमान् ” यह जो एक वचन है, सो जातिकी अपेक्षा है, परंतु आत्मा अनंत है, क्योंकि जन्म मरण कारणोंके नियम देखनेसे, तथा धर्मादिक प्रवृत्ति नाना देख नैसें सो सर्व अनंत आत्मा सर्वगत अरु नित्य है ॥ उक्तच ॥ अमूर्च्छिभेतनो नोगी, नित्य सर्वगतोऽक्रिय ॥ अकर्त्ता निर्गुण सूक्ष्म, आत्माकापि लदर्शन इति

सांख्यमतमें प्रमाण तीन मानते है, १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ शाब्द, इस मतका नाम सांख्य वा शांख्य किस वास्ते कहते हैं ? तिसका हेतु कहियें हैं सांख्या प्रकृति तत्त्व पञ्चीश रूप तिनकों जो जाने, वा पढ़े, इति सांख्य तथा जे कर तालवी शकारसें बोलियें तब शांख्य, तिनके मत में शाख ध्वनि है ऐसी वृद्धोंकी आम्नायसें यह नाम है, तथा शाख नामक कोइ आद्य पुरुष हुआ है, “तस्यापत्यं पौत्रादिरिति गर्गादित्वादयस्त्रीप्रत्यये शांख्यास्तेषामिदं दर्शनं सांख्यं शाख वा ॥ इति सांख्यमतं सहेपत संपूर्ण ॥

अथ मीमांसक मत लिखते हैं इसका दूसरा नाम जैमिनीयाजी कहते हैं, इस मत बाजे सांख्यमतकी तरें एकदमी, त्रिदमी होते हैं, धा तु रक्त वस्त्र पहिरते हैं, मृगचर्मके आसन उपर बैठते हैं, कमल रखते हैं, शिर मुनि रखते हैं, सन्यासी प्रमुख दिज इस मतमें होते हैं, ति



नका वेदही गुरु है, परंतु और वक्ता गुरु कोइ नहीं. सो आपणे आपकों सन्नस्त सन्नस्त कहते हैं, यज्ञोपवीतको प्रक्षाल करके तीन बार जल पीते हैं, सो मीमांसक दो प्रकारके हैं एक याज्ञिकादि हैं, ते पूर्व मीमांसक हैं, दूसरे उत्तर मीमांसावादी हैं, कुकर्मके वर्जक यजनादिक पद कर्मके कारणहार, ब्रह्मसूत्रके धारक, गृहस्थाश्रममें स्थित, गुरुका श्रमादिक वर्जते हैं, तिनकेजी दो जेद हैं, एक जट, दूसरे प्रजाकर, उसमें जट वै प्रमाण मानते हैं, श्रु प्रजाकर पांच प्रमाण मानते हैं, श्रु जो उत्तरमीमांसक है, सो वैदांतिक है, ब्रह्मादितही मानते हैं, “सर्वमेवेद ब्रह्मेति नापते” तिस पर प्रमाण देते हैं, कि एकही आत्मा सर्व शरीरोमें उपजब्ध होता है ॥ श्लोक ॥ एकएव हि नृतात्मा, नूते नूते व्यवस्थित ॥ एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचड्वत् ॥ १ ॥ इतिवचनात् ॥ “पुरुषएवेद सर्व यजुतं यज्ञनायमिति वचनात्” ॥ आत्माहोमें लय होना मुक्ति मानते हैं, और कोइ मुक्ति नहीं मानते सो, मीमांसक द्विजही जगवत्जिनका नाम है, सो चार प्रकारके हैं, १ कुटीचर, २ बह्वक्, ३ हंस, ४ परमहंस तिन मेंसू १ त्रिदनी, सशिखा, ब्रह्मसूत्री, गृहत्यागी, यजमान, परिग्रही, एक बार पुत्रके घरमें जोजन करता है, कुटीमें वसता है, तिनकों कुटीचर कहते हैं २ तुल्य वेष, पूर्वोक्त विप्रके घरमें नीरस निष्कानोजी, विष्णुजाप पर नदीके तीरमें रहता है, तिसकों बह्वक् कहते हैं, ३ ब्रह्मसूत्र शिखा करके रहित, कपाय वस्त्र, दणधारी, ग्राममें एक रात्रि श्रु नगरमें तीन रात्रि रहता है, धूम रहित जब अग्नि हो जावे, तब ब्राह्मणके घरमें जो जन करता है, श्रु तप करके शोपित शरीर, देशोमें फिरता रहता है, तिसकू हंस कहते हैं, हंसकूही जब ज्ञान हो जाता है, तब चारो वर्णोंके घरमें जोजन कर लेता है, अपनी इच्छासें दण रखता है, ईशानविशाके सन्मुख जाता है, जे कर शक्ति हीन हो जावे, तब अनशन ग्रहण करता है, ४ वेदांतैकध्यायी तिसकू परमहंस कहते हैं, इन चारोंमेंसू पर परोऽधिक यह चारोंही केवल ब्रह्मादितवाद साधनेमें व्यसनी हैं, इत्यादिक इस मतका स्वरूप है

अथ पूर्वमीमांसा वादीयोंका मत विशेष करके लिखते हैं जैमिनी मत वाले कहते हैं, कि सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग, सृष्ट्यादिकका कर्त्ता, इन

पूर्वोक्त विशेषणों करी संयुक्त कोइनी देव नहीं है, जिस देवका बचन प्रा  
माणिक होवे, प्रथम तो देवही वक्ता कोइ नहीं, जिसका कथा दूआ बचन  
प्रमाण होवे, अनुमान पुरुष सर्वज्ञ नहीं, मनुष्य होनेसे, रष्या पुरुषवत्

पूर्वपक्ष - किंकर हो कर जिसकी थसुर, सुर, सेवा करते हैं, औ तीन  
लोकके ऐश्वर्यके सूचक, उत्र चामरादि जिसकी विनूति है, सो सर्वज्ञ बि  
ना क्यों कर हो सकती है ?

उत्तरपक्ष - यह विनूति तो इइजालीयाजी बना सका है, क्योंकि इस  
बातका साक्षी जैनमतका समतजइ आचार्यजी है ॥१॥ लोक ॥ देवागमनजोया  
न, चामरादिविजुतय ॥ मायाविष्वपि दृश्यते, ह्यतस्त्वमसि नो महान् ॥१॥

पूर्वपक्ष - जैसे थनादि सुवर्णका मल, द्वार मृत्पुटपाकादिकोकी कि  
या विशेषसे शोध्यमान सुवर्णको सर्वथा निर्मलता हो जाती है, ऐसे आ  
त्माजी निरंतर ज्ञानादिकोके अन्याससे निर्मल होनेसे सर्वज्ञ पणेका स  
चव क्यों कर न होवे ? किंतु होदी जावेगा

उत्तरपक्ष - यह कहनांजी तुमारा ठीक नहीं है, क्योंकि अन्यास कर  
नेसेंजी छुद्धिकी तारतम्यताही होती है, परंतु परम प्रकर्ष थवस्था नहीं  
होती है, क्योंकि जो पुरुष चलनेका अन्यास करे, एतावता कूदनेका, ठ  
लांक मारनेका, ठाल मारनेका अन्यास करेगा, वो दश हाथ कूद जावेगा,  
बीश हाथ कूद जावेगा, परंतु शत योजन कूदनेका अन्यास कदापि न हो  
वेगा, सर्व लोककू कूदके जानेका अन्यास कदापि न होवेगा, ऐसे आत्मा  
जी अन्यास द्वारा सर्वज्ञ नहीं हो सकती है

पूर्वपक्ष - मनुष्यको सर्वज्ञता मत होवो, परंतु ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरा  
दिकोंको तो सर्वज्ञता होवे, क्योंकि तिनको तो जगत् ईश्वर मानता है,  
इस बातको कुमारिजजी कहता है अथापि विध्य वेद दोनोंसें ब्रह्मा, वि  
ष्णु, महेश्वर, इनको सर्वज्ञता होवे, मनुष्यको सर्वज्ञता क्यों कर होवे ?

उत्तरपक्ष - जो राग द्वेषमें मग्न हैं, औ निग्रह अनुग्रहमें ग्रस्त है,  
काम सेवनमें तत्पर है, ऐसे लक्ष्ण वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, क्यों  
कर सर्वज्ञ हो सके हैं ? क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाणजी सर्वज्ञका साधक  
नहीं है, कारणके इडियों वर्त्तमान वस्तुहीको ग्रहण करती हैं अरु  
अनुमानसेंजी सर्वज्ञ सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि अनुमान प्रत्यक्ष पूर्व

कही प्रवृत्त हो सक्ता है, श्रु आगमजी सर्वज्ञकी सिद्धि करणेवाला कोइ नहीं क्योंकि आगम सर्व विवादास्पद है, उपमानजी नहीं, क्योंकि दूसरा सर्वज्ञ कोइ होवे, तब उपमान बने, तैसेही अर्थापत्तिसेजी सर्वज्ञ सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि अन्यथा अनुपपद्यमान ऐसा कोइ पदार्थ नहीं है, जिसके होनेसे सर्वज्ञ सिद्ध होवे जब जावग्राहक पाच प्रमाणों से सिद्ध न हुआ, तब सर्वज्ञ अज्ञाव प्रमाणका विषय हुआ, यह अनुमानजी सर्वज्ञकी नास्ति सिद्धकर्ता प्रयोग नहीं है, सर्वज्ञ प्रत्यक्षादि गोचरके अतिक्रांत होनेसे शशशृंगवत् जब कोइ सर्वज्ञ देव नहीं, श्रु उ स सर्वज्ञ देवका कहा हुआ कोइ शास्त्र नहीं, तब अतीन्द्रिय अर्थका ज्ञान कैसे होवे ? ऐसी मनमें आशंका करके जैमिनी कहता है कि “तस्मात्” तिस कारणसे, “अतीन्द्रिय” इन्द्रियोंकी विषय रहित जो आत्मा, यमाधर्म, काल, स्वर्ग, नरक, परमाणु प्रमुख जो पदार्थ है, तिनका साक्षात् करत जामलकवत् देखने वाला कोइ नहीं इस हेतुसे नित्य जो वेद वाक्य है, तिनोहीसे यथार्थ तत्त्वका निश्चय होता है, क्योंकि वेद जो हैं, सो अपो रूपेय हैं, एतावता किसीकेजी रचे दूये नहीं, अनादि नित्य है, तिन वेद वचनोसेही अतीन्द्रिय पदार्थोंका ज्ञान होता है, परंतु किसी सर्वज्ञके कहे दूये आगमसे नहीं होता है, क्योंकि सर्वज्ञ कोइजी न हुआ है, न वर्तमान में है, न आगे कोइ होवेगा ॥ यथादुस्ते ॥ अतीन्द्रियाणामर्थानां, साक्षाद्गृह्य न विद्यते ॥ वचनेनहि नित्येन, य पश्यति स पश्यति ॥१॥

पञ्च —अपौरुषेय वेदांतका अर्थ कैसे जाना जाये ?

उत्तर —अव्यवच्छिन्न जो हमारी परंपरा तिससे जाना जाता है, इसी वास्ते सर्वज्ञादिकोंके अज्ञाव होनेसे प्रथम वेदोहीका पाठ प्रयत्नसे करना चाहिये वेद चार हैं, १ ऋग्, २ यजुर्, ३ साम, ४ आथर्व, इन चारोंका पाठ करके तिसके पीछे धर्मकी जिज्ञासा करनी चाहिये, धर्म जो है, सो अतीन्द्रिय है, श्रु जो धर्म है, सो कैसा है ? श्रु किस प्रमाणसे हम जानेंगे ? ऐसी जो जाननेकी इच्छा है, तिसका नाम जिज्ञासा है सो करणी कैसी है ? वो जिज्ञासा धर्मसाधनी ( धर्मसाधनेका ) उपाय है, तब तिस नो दनाके निमित्त दो हैं, एक जनक, दूसरा ग्राहक, इहां ग्राहक निमित्त जानना इसहीका विशेष स्वरूप कहते हैं

प्रेरीयें श्रेय साधक इत्यादिकों विषे जीवोंको, इस करके सो नोदना वेदवचनकी करी दूइ प्रेरणा है ॥ इत्यर्थ ॥ धर्मजो है, सो नोदना करके जानीयें है इस वास्ते नोदना जहणधर्म है, धर्मको अतीन्द्रिय होने करके नोदनाहीसे जानीयें है, और किसी प्रत्यक्षादिक प्रमाणोंसे नहीं जाना जाता है, क्योंकि प्रत्यक्षादिक विद्यमानके उपलानक है, अरु धर्म जो है, सो कर्त्तव्यतारूप है, अरु कर्त्तव्य जो है, सो त्रिकाल स्वभाव वाली है, तिस कर्त्तव्यताका ज्ञान नोदनाही उत्पन्न कर सकती है, यह मीमांसकोंका अच्युपगम है

अथ नोदनाका व्याख्यान करिये हे अग्निहोत्र, सर्व जीवोंकी अहिंसा दानादिक क्रिया, इनोके करने वास्ते जो प्रवर्त्तक प्रेरक वेदोंके वचन हैं, सोइ नोदना है जैसे “अग्निहोत्र जुह्यात्स्वर्गकाम” ऐसा जो प्रवर्त्तक वेदवचन है, सो नोदना जाननी “यथा ॥ न हिंस्यात् सर्वभूतानि, तथा न वै हिंस्यो नवेत्” इन वचनों करके प्रेक्षा दूथा इव्य, गुण कर्मोंकर के जो हवनादिक विषे प्रवर्त्त होता है, सो धर्म है, अरु इन वेद वचनों करके प्रेक्षा दूथानी जो न प्रवर्त्त, वा विपरीत प्रवर्त्त, तिसकों नरकादि अनिष्ट फल होता है श्रावर जाप्यमेंनी ऐसेही कहता है

यह जैमिनी पद प्रमाण मानता है १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ शब्द, ४ उपमान, ५ अर्थापत्ति, ६ अज्ञाव, इनका विस्तार षट्दर्शन समुच्चय की टीकासें जानना ॥ इति सक्षेपतो मीमांसमत्तं ॥ ५ ॥

यह पांच दर्शन आस्तिक कहे जाते हैं, अरु उष्ठा जैन दर्शन है, तिसका स्वरूप अगले परिच्छेदमें लिखा जायगा, तथा नास्तिक जो है, सो दर्शनमें नहीं “नास्तिक तु न दर्शनमिति राजशेखर स्वरिक्त षट्दर्शन समुच्चय वचनात्” तोनी नव्य जीवोंके जानने वास्ते कबुक् स्वरूप लिखते हैं कपाली, जस्म लगाने वाले, योगी, ब्राह्मणादि, अत्य जातिके लोक, जिनको लोक वाममार्गी कहते हैं, तथा कौलिक, इत्यादिक नास्तिक हैं, तिनके मतका नाम नास्तिक चार्वाक कहते हैं, वो जीव पुण्य पापादिक कुछ नहीं मानते हैं, चार जौतिक वेद मानते हैं, तथा सर्व जगत्ही चार जौतिक मानते हैं

अरु कोइ चार्वाकैकदेशीया आकाशको पांचमा जूत मानते हैं, पांच

जूतात्मक जगत् है, जैसे कहते हैं, तिनोंके मतमें जूतोंसेंतीही मद्यशक्ति वत् चैतन्य उत्पन्न होता है, पाणीके बुलबुलेंकी तरें जो शरीर है, सोही जीव है, इस मत वाले मद्य मांस खाते हैं, माता, बहिन, वेटी, आदिक जो अगम्य है, तिनकोजी गमन कर लेते हैं, ते नास्तिक वामी, वर्ष वर्ष विषे एक दिनमें सर्व एक जगा एकठे होते हैं, स्त्रीकों नगी करके उसकी योनिकी पूजा करते हैं, अरु विषय सेवनजी करते हैं, इत्यादि ऐसा बुरा काम करते हैं, जो इस पुस्तकमें लिखते मुझको लज्जा आती है, इस वास्ते नहीं लिखा है, सो नास्तिक, कामसे अपर (दूसरा) कोइ धर्म नहीं मानते हैं, किंतु कामहीकू धर्म मानते हैं

इस मतकी उत्पत्ति जैनमतके शीलतरंगिणी नामक शास्त्रमें ऐसे लिखी है, सो कहते हैं एक बृहस्पतिनामा ब्राह्मण था, दूसरा उसका नाम देवव्यासजी था, उसकी एक बहिन थी, वो उसकी बहिन बाल विधवा हो गई थी, उसके सासरोमें ऐसा कोइ न था, जिनके आश्रयसें वो अपना जीवितव्य सपूर्ण करती, तातें निराधार हो कर, अपने जाइके घरमें आ रही, वो अत्यंतरूप अरु यौवनवत थी, अरु जो उसका नाम था तिसकी चार्या मृत्युकों प्राप्त हो गई थी, तब तो बृहस्पतिकों का मन अत्यंत पीडा दीनी, तब उनकू आपनी बहिनके साथ विषय सेवनकी इच्छा नई, अपनी बहिनसें प्रार्थना करी कि हे जगिनी ! मेरे साथ तु सजोग कर, तब तिसकी बहिनने कहा कि हे जाई ! यह बात उन्नय लोक विरुद्ध है, सो मैं क्योंकर करु ? क्यों कि प्रथम तो मैं तेरी बहिन हू, जे कर जाइके साथ विषय जोग करु तो अवश्यमेव नरकमें जाउगी, अरु यह बात जो जगत्में प्रसिद्ध हो जावेगी, तब तो लोक मुझकों धिक्कार देंगे ऐसी बात सुन कर बृहस्पतिने अपने मनमें शोचा कि जब तक इसके मनसें पाप अरु नरकादिकोका जय दूर न होवेगा, तब तक यह मेरे साथ कनी सजोग न करेगी ? ऐसा विचार करके बृहस्पति सूत्र रचे, तिन सूत्रोंसें पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरकका अज्ञाव, सिद्ध करके अपनी बहिनको शास्त्र सुना करके प्रतिबोध करा तब तो तिसकी बहिनने अपने मनमें विचार करा कि यह जो शरीर है, सोतो पांच जैतिक है, अरु इस शरीरसे अतिरिक्त आत्मा नामक कोइ पदार्थ नहीं है, तब तो पुण्य, पाप, नरक, स्वर्ग, कु

उनी सिद्ध नहीं होता है, तो फेर में इन मूर्खों की टाङ्का करके अप-  
ना यौवन तथा काहेको खोक ? ऐसे विचार करके अपने जाइके साथ  
विषयभोग करनेमें लुब्ध हो गई, जब लोकोका यह बात जान पड़ी, तब  
लोक निंदा करने लगे, तब तो बृहस्पति निर्दोष हो कर लोकोकों ना-  
स्तिक मतका उपदेश करने लगा, तब तो जो अत्यन्त विषयी अरु अज्ञानी  
जन थे, वे उसके शिष्य होते नये, कितनेका काज पीछे उनके शिष्योंने  
अपने मतको बड़ा करनेके वास्ते कहते नये कि यह जो हमारा मत है,  
सो देवताओंका गुरु जो बृहस्पति नामक आकाशमें ग्रह है, तिसने प्रवृत्त  
करा है, अरु बृहस्पतिसेति अन्य कोई दूसरा बुद्धिमान् नहीं है, इस वा-  
स्ते हमारा मत सच्चा है, इस बृहस्पतिका होना हमारे चौबीसमे तीर्थ  
कर श्रीमद्वावीसे पहिले सिद्ध है, क्योंकि श्रीमद्वावीके कथन करे हुये  
शास्त्रोंमें चार्वाकमतका निरूपण है. ऐसे चार्वाक मतकी उत्पत्ति है, इस  
मतका नाम चार्वाक, लोकायितादि है, “चर्वं चर्चते चर्वति, नक्षयति तत्त्व  
तो न मन्यते पुण्यपापादिक परोक्षवस्तुजातमिति चार्वाका ॥ मयाकस्या  
माकेत्यादि सिद्ध है, मोणादि दम्भकेनशब्दनिपातन. लोका निर्विचाराः  
सामान्या लोकास्तद्वाचरन्ति स्मेति लोकायिता लोकायितका इत्यपि ॥ बृह-  
स्पतिप्रणीतमतत्वेन बार्हस्पत्याश्चेति ” चर्व जो धातु है सो नक्षय अर्थ  
में है, चर्वण ( नक्षय ) जो करे, तात्पर्यार्थसे जो पुण्य पापादिक परोक्ष  
वस्तु समूहको न माने, सो चार्वाक, मयाकस्यामाक इत्यादि सिद्ध है, हे  
मव्याकरणके कणादिदम्भ करके निपातसे सिद्ध है, तथा लोक निर्विचार  
है, सामान्य लोकोकी तरें जो आचरण करते नये हैं, ते लोकायिता लोका-  
यितका ऐसेंजी है तथा बृहस्पतिके प्ररूपणसे इस मतका नाम बार्हस्प-  
त्यजी कहते हैं

अथ चार्वाकका मत लिखते हैं नास्तिक ऐसें कहते हैं कि, जीव चे-  
तना लक्षण परलोकमें जानेवाला नहीं, पाँच महाभूतसें जो चेतन उत्प-  
न्न होता है, सोनी इहांही भूतोंके नाश होनेसें नाश हो जाता है, जेकर  
जीव परलोकसें आया होवे, तब परलोकका स्मरण होना चाहिये, परंतु  
सो तो होता नहीं, इस वास्ते जीव न परलोकसें आया है, अरु न परलो-  
कमें जाने वाला है तथा जीव स्थानमें जो देव ऐसा पाठ मानीयें, त

व सर्वज्ञादि विशेषण विशिष्ट कोइ वेव नहीं, तथा मोक्षनी नहीं, धर्माधर्म नहीं, पुण्य पाप नहीं, पुण्यपापका जो फल नरक, स्वर्ग, सोनी नहीं, “तथाच तन्मतं ॥श्लोक॥ एतावानेव लोकोयं, यावानिन्द्रियगोचर ॥ नडे वृक्षपद पश्य, यद्ददंत्यवदुश्रुता ॥१॥ अथस्यार्थ —इतनाही मनुष्य लोक है, जितना प्रत्यक्ष देखनेमें आता है क्योंकि जो पदार्थ इन्द्रियोंमें ग्रह्य जाता है, सोइ पदार्थ है, और दूसरा कोइनी पदार्थ नहीं है, यवा लोक शब्द की जगें लोकमें जो रहे दूये पदार्थ हैं, सो ग्रहण करणे अरु सो इत लोकसें परे हे, जीव, पुण्य, पाप, अरु तिनका फल जो स्वर्ग नरकादिक सो अप्रत्यक्ष होनेसें नहीं है जे कर अप्रत्यक्षनी माने जावे तब तो शशशृंग वध्यापुत्रादिनी होने चाहियें, पंचविध प्रत्यक्ष करके यथाक्रम १ मृड कठोरादि वस्तु २ तिक्त, कटु, कपायादि इव्य, ३ सुरजि डुरजिरूप गंध, ४ जू, जूधर, सुवन, जूरुह, स्तन, कुज, अजोरुहादि, नर, पशु, श्वा पदादि, स्थावर, जगम प्रमुख पदार्थोंका समूह, ५ विविध, वेणु वीणादि ककी ध्वनि, इन पांचोंके विना और कुछनी नहीं प्रतीत होता है, पांच जूतोंसे व्यतिरिक्त नरक स्वर्गके जाने वाला जीव जब प्रत्यक्ष प्रमाणसें न सिद्ध जया, तब तो जीवोंके सुखदुखोंका कारण धर्माधर्म है, अरु तिन धर्माधर्मके उत्कृष्ट फल जोगनेकी जूमि स्वर्ग नरक है, अरु सर्वथा पुण्य पापके क्य होनेसे मोक्ष सुख जो वर्णन करते हैं, यह सर्व पूर्वोक्त वर्णन ऐसा है, कि जैसा आकाशमें चित्रामकरणां है क्योंकि जीव नतो किसी ने स्पर्शा है, न किसीने खा कर स्वाद चरका है, न किसीने सूघा है, न किसीने देखा है, न किसीने शब्दवत् सुना है, फेर मूढमति किततरें जीव को मान करके स्वर्गादि सुखोंकी इच्छा करके शिर, दाढी, मौंठ, मुद्रवा करके नाना प्रकारका ड कर तप करके शीत, आतप सह करके वृथाही इस शरीरकी विहंवना करके इस मनुष्य जन्मकों खराब कर रहे है ? यह उनकी समझकी विहबना है ॥ तदुक्त ॥श्लोक॥ तपांसि यातनाश्चित्रा, सयमो जोग वचना ॥ अग्निहोत्रादिक कर्म, बालक्रीडेव लक्ष्यते ॥१॥ यावज्जीवेत् सुख जीवेत्, तावद्वैषयिक सुखं ॥ नस्मीनूतस्य देहस्य, पुनरागमनं कृत ॥ १ ॥ इत्यादि तिस बास्ते यह सिद्ध दूयाकि जो इन्द्रियगोचर है, सोइ तात्त्विक है अथ जो परोक्ष प्रमाण, अनुमानागमादिकों करके जीव, अरु पुण्य

पापादिको हू व्यवस्थापन करते हैं, थरु कदाचित् स्थापन करनेसें बटते नहीं हैं, तिनके प्रतिबोधने वास्ते दृष्टांत कहते हैं “ जड़े एकपद पश्येत्त्राय सप्रदाय ” कोइक पुरुष नास्तिक मत करक वा सत्त्वांत करण अण्णी नार्याको आस्तिक मत विषे दृढ प्रतिज्ञा वाली जान करक अण्णे शास्त्रोक्त युक्तियो करकें “ प्रत्यह ” प्रतिबोध करता है, जब वो प्रतिबोध नहीं होती, तब उसने विचारा जो यह इस उपाय करकें प्रतिबोध होवेगी, ऐसे स्वचिन्तमें चिन्तन करक रात्रिके पीठले प्रहरमें तिस स्त्रीके साथ नगरसे निकल करकें तिस आपणी नार्याको कहता हूया, हे वध्वने ! यह जो इस नगरके बसने वाले लोक परोक्ष पदार्थोंको अनुमानादि प्रमाणों करकें सिद्ध करते हैं, थरु लोकमें बहुत शास्त्रोंके पढ़े हूये कहलाते हैं, थव तू तिनको चातुर्य देख, ऐसे कह कर नगरके दरवाजेसे ले कर चौक तक सूक्ष्म धूलिमें थपणे हाथों करकें जेडीयेंके पजोका आकार कर दीया, तस पीठें प्रात कालमें ते जेडीयेंके पजे देख कर बहुत लोक राज मार्गमें मिलते जये, तब तो बहुश्रुतनी तदा आ गये, सो बहुश्रुत लोकों को कहने लगे कि जो लोको ! जेडीयेंके पजोकी अन्यथा अनुपपत्ति करकें निश्चयही कोइक जेडीया रात्रिमें बनसेंती इहां आया था, तब तो वो नास्तिक मती तिनको तैसें कहते हूयाको देख करकें निज नार्याको कहता हूया कि हे जड़े ? “ एकपद ” (जेडीयेंका पजा) तू देख, जिस पंजेकू जेडीयेंका पजा अबहुश्रुत कहते हैं, लोक रूढीसें यह बहुश्रुत कहलाते हैं, परंतु परमार्थसें महा गेठ हैं, क्योंकि ये परमार्थ तो कुछ जानते नहीं हैं, केवल देखा देखी रौजा करने लग रहे हैं, परमार्थसें इनका बचन मानने योग्य नहीं है, ऐसेही बहुत मतवाले धार्मिक, उष ( धूर्त ) दूसरोके उगनेमें तत्पर सो कबुक अनुमान आगमादि करके दृढपणेसें जीवादिकी अस्ति सिद्ध करकें दृष्टादी जोछे लोकोंको स्वर्गादि सुखोंका लोभ दिखा कर जह्णजह्ण, गम्यागम्य, हेयोपादेयादि, सफटोमें गेरते हैं, बहुत मुखोंको धार्मिक पणोंका व्यामोह उत्पन्न करते हैं, इस वास्ते बुद्धिमानोंको उनका बचन मानना न चाहिये तब तो तिसकी नार्या अपने पतिके सर्व बचन मानती नई, तिसके पीठें तिसका पति जो अपनी नार्याकू उपदेश देता गया, सो इहां लिखते हैं



॥ श्लोक ॥ पिव खाद च चारुलोचने, यदतीतं वरगात्रि तन्न ते ॥ न हि  
जीरु गतं निवर्त्तते, समुदायमात्रं मिदं कलेवरं ॥१॥ व्याख्या - हे चारुलो  
चने ! शोचन ( सुंदर ) आखवाली “ पिव ” पी, तू पेयापेयकी व्यवस्था  
ठोढ़ कर मदिरापान कर न केवल मदिराही पी, “खाद च” नृक्षानृक्षकी  
निरपेक्षा करके मासादिक खा, तथा गम्यागम्यका विज्ञान त्याग कर नोगों  
को नोग कर अपना यौवन सफल कर, जो कुछ यौवनादि अतिक्रान्त, (व्य  
तीत) हो गया है। हे वरगात्रि ! हे प्रधानांगि ! फेर वो तुझको न मिलेगा,  
अति काम राग जनावनेके वास्ते बहुत संबोधन पद कहे हैं, इस वास्ते  
पुनरुक्ति दोष नहीं है किसीकी आज्ञाका मनमें ला कर बृहस्पति मत वा  
ला कहता है, कि अपनी इच्छा करके जो खान, पान, नोग, विलास  
करेगा, उसको परलोकमें कष्ट परंपरा पावणी बहुत सुजन है, और जो  
सुखत करेंगे, उनको नवांतरमें सुख यौवनादिक पावनां सुजन है, ऐसी  
परकी आज्ञाका दूर करने वास्ते बृहस्पति कहता है नहीं हे जीरु ! प  
रके कहने मात्र करके नरकादि दुखोंकी प्राप्ति, इस लोकके यौवनादिको  
सें निवर्त्त होना, एतावता इस लोकमें विषयनोग करके यौवनका सुख  
तो नहीं लेना, अरु परलोकमें हमको यौवनादिक फेर मिलेगा, ऐसे पर  
लोकके सुखोंकी इच्छा करके तपश्चरणादि कष्ट क्रिया करके जो इस लोक  
के सुखोंकी उपेक्षा करनी है, सो महा मूढताका चिन्ह है

अथ शृणाशृज कर्मके वश करके इस जीवने अवश्य परलोकमें जी स्व  
कर्म हेतुक सुख दुःखादि वेदना होवेगी, ऐसी आज्ञाका मनमें ला करके बृह  
स्पति कहता है कि “समुदायमात्रं” समुदायनूत चारोंका सयोग मात्रही  
यह “ कलेवरं ” (शरीर है), परंतु चारों नूतोंके सयोग मात्रसें अपर दूसरा  
नवांतरमें जानेवाला, शृणाशृज कर्मविपाकका नोगने वाला, ऐसा जीव ना  
मक कोइनी पदार्थ नहीं, अरु चारों नूतका जो सयोग है, सो विजलीके  
वद्योतकी तरें कृष्णमात्रमें नष्ट हो जाता है, इस वास्ते परलोकका जय  
मत कर दे हरिणाक्षि ! जैसे मन माने, ऐसा खा, पी, नोग विलास कर

अथ प्रमेय प्रमाण दोनो कहता है ॥ श्लोक ॥ पृथ्वी जल तथा ते  
जो, वायुर्नूतचतुष्टय ॥ आधारो नूमिरेतेषां, मानं त्वक्षजमेव हि ॥ १ ॥  
अर्थ - १ पृथिवी, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु, यह चारनूत हैं, अरु इन

पापादिकोंको व्यवस्थापन करते हैं, थरु कदाचित् स्थापन करनेसे दृष्ट नही है, तिनके प्रतिबोधने वास्ते दृष्टांत कहते हैं “ जइ वृकपद पश्येत्त्राप सप्रदाय ” कोइक पुरुष नास्तिक मत करक वा सख्यात करक व पणी जार्याको आस्तिक मत बिषे दृढ प्रतिज्ञा वाली जान करकें अपणे शास्त्रोक्त युक्तियों करकें “ प्रत्यह ” प्रतिबोध करता है, जब वो प्रतिबोध नही होती, तब उसने विचारा जो यह इस ठपाय करकें प्रतिबोध होवेगी, ऐसे स्वचिन्तमें चिन्तन करक रात्रिके पीठले प्रहरमें तिस स्त्रीके साथ नगरसे निकल करकें तिस थापणी जार्याको कहता हुआ, हे वध्वजे ! यह जो इस नगरके वसने वाले लोक परोक्ष पदार्थोंको अनुमानादि प्रमाणों करकें सिद्ध करते हैं, थरु लोकमें बहुत शास्त्रोंके पढ़े दूये कहलाते हैं, थव तू तिनको चातुर्य देख, ऐसे कह कर नगरके दरवाजेसे ले कर चौक तक सूदम धूलीमें थपणे हाथों करकें जेडीयेंके पंजोका आकार कर दीया, तस पीछे प्रात कालमें ते जेडीयेंके पजे देख कर बहुत लोक राज मार्गमें मिलते जये, तब तो बहुश्रुतजी तहां आ गये, सो बहुश्रुत लोकों को कहने लगे कि जो लोको ! जेडीयेंके पंजोकी अन्यथा अनुपपत्ति करकें निश्चयही कोइक जेडीया रात्रिमें वनसेंती इहां आया था, तब तो वो नास्तिक मती तिनको तैसें कहते दूथांको देख करकें निज जार्याको कहता हुआ कि हे जइ ? “ वृकपद ” (जेडीयेंका पंजा) तू देख, जिस पंजेकूं जेडीयेंका पंजा अबहुश्रुत कहते हैं, लोक रुढीसे यह बहुश्रुत कहलाते हैं, परंतु परमार्थसें महा गोर हैं, क्योंकि ये परमार्थ तो कुछ जानते नहीं हैं, केवल देखा देखी रौजा करने लग रहे हैं, परमार्थसें इनका बचन मानने योग्य नहीं है, ऐसेही बहुत मतवाले धार्मिक, ठग ( धूर्त ) दूसरोंके उगनेमें तत्पर सो कुछ अनुमान आगमादि करके दृढपणेसें जीवादिकी अस्ति सिद्ध करकें वृथाही जोले लोकोंको स्वर्गादि सुखोंका लोभ दिखा कर जह्वाजह्वा, गम्यागम्य, हेयोपावेयादि, सकटोंमें गेरते हैं, बहुत मुख्योंको धार्मिक पणोंका व्यामोह उत्पन्न करते हैं, इस वास्ते बुद्धिमानोंको उनका बचन मानना न चाहिये तब तो तिसकी जार्या अपने पतिके सर्व बचन मानती नई, तिसके पीछे तिसका पति जो अपनी जार्याकू उपदेश देता गया, सो इहां लिखते हैं

धार करके सुनो मैं तुमारे मतमें पूर्वापर व्याहृत पणा दिखलाता हूँ  
प्रथम बौद्धमें पूर्वापर विरोध उद्भावन करते हैं

प्रथम तो बौद्ध मतमें सर्व पदार्थ कृष्णजगुर कह करके पीछेसे ऐसे  
कहा है “नानतुरुत्तान्वयव्यतिरेक कारण नाकारण विषय इति” अस्याय  
मर्थ—ज्ञान अर्थके होते दूयाही उत्पन्न होता है, परंतु अर्थके बिना नहीं  
होता है ऐसे अनुरुत्त अन्वयव्यतिरेक अर्थज्ञानका हे अरु कारण जिस  
अर्थकी अर्थज्ञान उत्पन्न होता है, तिस कारणहीकों विषय करता है  
इस कहनेसे अर्थकों दो कृष्ण स्थिति वाला कहा ॥ तद्यथा ॥ अर्थरूप  
कारणसे ज्ञान कार्य उत्पन्न होता है, अरु एकही समयमें कारण, कार्य,  
उत्पन्न नहीं होते हैं, तब तो ज्ञान अपने जनक अर्थहीकों ग्रहण  
करता है “नापरं नाकारण विषय इति वचनात्” ॥ जब ऐसे दूआ  
तब तो अर्थकों दो समयकी स्थिति जोरा जोरी हो गई अरु बौद्ध मतमें  
द्वय समय स्थिति वाला कोइ पदार्थ नहीं, एक तो यह पूर्वापर विरोध है

तथा “नाकारण विषय इत्युक्तं” जो पदार्थ ज्ञानकी उत्पत्तिमें का  
रण नहीं है, उस पदार्थकों ज्ञान विषयनी नहीं करता है, ऐसे कह क  
र फेर योगी प्रत्यक्ष ज्ञानकों अतीत अनागत पदार्थोंका जानने वाला  
कहा है, अरु अतीत पदार्थ तो नष्ट हो गये हैं, तथा अनागत पदार्थ उ  
त्पन्न नहीं दूये हैं, इस वास्ते अतीत अनागत पदार्थ ज्ञानके कारण  
नहीं हो सके हैं, तब अकारणकों योगी प्रत्यक्षका विषय कहनां यह  
दूसरा पूर्वापर विरोध है

ऐसेही साध्य साधनोंकी व्याप्ति थौ ग्राहक व्याप्ति ग्रहण करानें वा  
छेकू कारण पण्येके अज्ञावसे त्रिकालगत अर्थकों विषय कहने वालेकों  
क्यों नहीं पूर्वापर व्याघात होवेगा ? क्योंकि कारणहीकों प्रमाणका विष  
य मान्या है इस वास्ते तीसरा पूर्वापर विरोध है

तथा कृष्ण ह्य अंगीकार करणमें जिनका काल निन्न निन्न हैं, ऐसे  
जो अन्वयव्यतिरेक तिनकी प्रतिपत्ति नहीं सजव होती है, तब तो सा  
ध्य साधनोंके त्रिकाल विषय व्याप्ति ग्रहण मानने वालेकों पूर्वापर व्याह  
ति क्यों नहीं ? यह चौथा पूर्वापर विरोध है

तथा सर्व पदार्थोंकों कृष्णकृपी मान करके पीछेसे बुद्धने ऐसे कहा

चारोंकी आधार पृथ्वी है, थरु किसी जगें ऐसा पाव है कि "चेतन्यजूमिरे तेषां" इन चारोंको चेतन्यजूमि कहते हैं, यह चारों एकठे होकर रसैं चैतन्य उत्पन्न करते हैं. तथा इन चारोंकोके मतमें यह चारों जूत प्रमाणकी जूमिका प्रमाणका विषय तात्त्विक है, थरु इन चारोंकोके मतमें, प्रमाण तो एक प्रत्यक्षही है

अथ नूतचतुष्टयसे देहकों चेतनता क्यां कर हो जाती है? औसी आशकां करके कहता है ॥ श्लोक ॥ पृथ्व्यादिजुतसहत्या, तथा देह परीणते ॥ मदशक्ति सुरांगेन्यो, यद्वत्तद्विदात्मनि ॥ १ ॥ अर्थ - "पृथिव्यादीनि" पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, तिनकी जो "सहति" सयोग तिस करके जो देहकी परिणाम, तिसमें जैसे मदिराके अंगोसे (गुड़ धात की आदिकोसें) उन्माद शक्ति उत्पन्न होती है, असेही इस देहमें चैतन्य शक्ति उत्पन्न होती है, परंतु देहसे अन्य जीव पदार्थ नहीं होते, औ आदि शब्दसे पर्वतादि सर्व पदार्थ चार जूतोसेही उत्पन्न है, इस वास्ते दृष्ट सुखोंका त्याग न करना थरु अदृष्ट सुखोंमें प्रवृत्त होना, यह तो लोकोंकी बड़ी सुखता है, थरु जो शांतिरसमें मग्न हो कर मोक्ष सुखका वर्णन करते हैं, वेजी महा मूढ है क्योंकि काम (मैथुन) सेवनसे अधिक न को इ धर्म है, थरु न कोइ मोक्ष है, न कोइ सुख है ॥ इति चार्वाकमतं सङ्क्षेपतः संपूर्ण ॥

यह जो उपर मत लिखे हैं, इनके जो उपदेशक है, वे सर्व कुगुरु हैं, क्योंकि जो इनोके मत हैं, वे युक्तिप्रमाणसे खंति हो जाते हैं, थरु पूर्वापर व्याहत है, पूर्वापर विरोधी है

पूर्वपक्ष - अहो जैन! अरिहतके कहे दूये तत्त्वका तुज्झकों बड़ा राग है, इस करके तुम अपने मतको तो निर्दोष उहराते हो, थरु हमारे मतोंको पूर्वापर विरोधी कहते हो, परंतु हमारे मतोंमें कुबज्झी पूर्वापर व्याहतपणां नहीं है, क्योंकि हमारे जो मत हैं, सो निर्दोष हैं, उनको जो पूर्वापर व्याहत (कलक) वेना है, सो औसा है कि जैसा अमृतके पुजमें मस्कीका बिड़ु गेर देनां

उत्तरपक्ष - हे वादीयो! तुम अपने अपने मतका पक्षपात गोर कर मध्यस्थपणेको अवलंबन करके थरु निरजिमान हो करके सुंदर बुद्धिकों

मत है कि सर्व पदार्थ नैरात्म्य है, एतावता आत्मस्वरूप आपणे स्वरूप करके सदा स्थिर रहनेवाले नहीं है, ऐसी जो जावना, तिसका नाम नैरात्म्य जावना है, यह जो नैरात्म्य जावना है, सो रागादि क्लेशोंके नाश करने वाली है, तथाहि जब नैरात्म्य जावना होवेगी, तब अपणे आप विपे तथा पुत्र, नाइ, नार्या, आदिको विपेजी आत्मीय अजिनिवेश नहीं होवेगा, एतावता 'यह मेरे हैं' ऐसा मोह न होवेगा, क्योंकि जो आप उपकारी है, सो आत्मीय है, अरु जो आपणा प्रतिघातक है, सो वैष है, जब आत्माही नहीं है, किंतु पूर्वापर कृण टूटे दूयांका अनुसंधान है, पूर्व पूर्व हेतु करके जो प्रतिबद्ध है ज्ञानकृण, सोइही तैसैं तैसैं उत्पन्न होते हैं, तब कौन किसीका उपकर्ता अरु उपघातक है? क्योंकि कृणोंको कृण मात्र रहने करके परमार्थसैं उपकार अनुपकार नहीं कर सके हैं, इस वास्ते तत्त्ववेदीयोंको अपने पुत्रादिकोमें आत्मीय अजिनिवेश नहीं है अरु वैरीयों विपे वैष नहीं है, अरु जो लोकोंको अनात्मीय पदार्थोंमें आत्मीय अजिनिवेश है, सो अतत्त्व मूल होनेसैं अनादि वासनाके परिपाकने करा है, अिसैं जाननां

प्रश्न—यदि परमार्थसैं उपकार्युपकारक जाव नहीं, तब तो अिसैं तुम कैसे कहते हो कि जगवान् सुगत, करुणा करके सकल जीवोंके उपकार वास्ते देशना करता हुआ? अरु कृणिक पणानी जे कर एकांतही है, तब तो तत्त्ववेदी एक कृण पीठें नष्ट हो गया, अरु तत्त्ववेदी जानता था जो मैं पीठें नहीं था अरु आगेको मैंने होनां नहीं, तो फेर काहे को मोह वास्ते यत्न करे?

उत्तर—जो तुमने कहा, सो हमारा अजिप्राय न जाननेसैं अयुक्त है जगवान् जो है, सो प्राचीन अवस्था विपे अवस्थित है, अरु सकल जगत्को राग वैषादि डखों करके सकल जानता था का कैसे यह सकल जगत्का डख मेरेको दूर करणा योग्य है? ऐसी दया उत्पन्न होनेसैं नैरात्म्य कृणिकत्वादिक जानता हुआनी तिन उपकार्य जीवोंके निक्केश कृण उत्पन्न करनेके वास्ते स्वप्रजा हित राजेकी तरैं अपणी सतति बुद्धि विपे सकल जगत् साक्षात् करण समर्थ अपणी सततिगत विशिष्ट कृणकी उत्पत्तिके वास्ते यत्न आरंभ करता है क्योंकि सकल जगत् साक्षात्कार

है ॥ श्लोक ॥ इतएकन्यते कल्पे, शक्त्या मे पुरुषोद्भूत ॥ तेन कर्मवि  
पाकेन, पावे विद्मोस्मि निद्रव ॥ १ ॥ इस श्लोकमें जन्मान्तरविषेमें कर्म  
का प्रयोग कृण कृय विरुद्ध बोलता दूया बुद्ध, क्या कर पूर्वापर विरोध  
न कहना चाहिये ? यह पाचमा पूर्वापर विरोध है

तथा “निरश सर्व वस्तु है” जैसे प्रथम कह कर फेर “हिता विरति  
दान चित्तस्वसवेदन थरु स्वगत सद्बुद्धचेतनत्व स्वर्गप्रापण शक्त्यादिक वृ  
हत्तदपि स्वर्गप्रापण शक्त्यादेरशस्येति सांशतां पश्चाद्भवत सौगतस्य कथ  
पूर्वापरविरुद्ध वचो न स्यात् ॥” यह ठान विरोध है

जैसेही निर्विकल्पक प्रत्यक्ष प्रमाण नीजादिक वस्तुओंको सर्व प्रकार  
करके ग्रहण करता दूयानी नीजादिक अश विषे निर्णय उत्पन्न करता  
है, परंतु नीजादि अर्थगत कृणकृय अशविषय निर्णय नहीं उत्पन्न कर  
ता है, जैसे सांशताको कहता दूयां सौगतको पूर्वापर वचन विरोध सु  
बोधही है यह सातमा विरोध है

तथा हेतुको तीन रूप वाला मानता है, थरु सशयको दो उल्लेख वा  
ला मानता है, थरु कहता है फेर सांश वस्तुको नहीं मानता है, य  
हनी आठमा पूर्वापर विरोध है

तथा परस्पर अनमिले द्रुये परमाणु निकटता सबध वाले एकठे हो  
कर घटादि रूपपणे प्रतिजात होते हैं, परंतु आपसमें अगागीनाव रूप  
करके कोइनी कार्य नहीं आरंज करते, यह बौद्धोंका मत है, तिसमें यह  
दूषण है कि आपसमें परमाणुओंके अनमिलनेसें घटका एक वेश जब  
हम हाथसें पकड़ेंगे, तब सपूर्ण घटकों नहीं रहना चाहिये, तथा घटके उ  
ठानेसेंनी एक वेशही घटका उठना चाहिये, परंतु सपूर्ण घट नहीं उठना  
चाहिये, तथा जब घटकों कांठा पकड़के हम खेंचेंगे तबनी घटका एक वे  
शही हमारे पास आना चाहिये, परंतु सपूर्ण घट नहीं, थरु जलादि धा  
रण रूप घटका अर्थ क्रियालक्षण सत्व अगीकार करण करके सौगतोनें  
परमाणुओंका मिलना मान्या है, थरु तिनके मतमें परमाणुओंका मि  
लना है नहीं, तिस वास्ते यह नवमा पूर्वापर विरोध है इत्यादि बौद्ध  
मतमें अनेक पूर्वापर विरोध है

अथ बौद्धमतका खंमनजी ओढासा लिखते हैं इन बौद्धोंका यह

बधमोहादिका संजव नहीं है, क्योंकि सर्वकाल एक स्वभाव होने कर के तिसके अवस्था विचित्र नहीं हो सकी है, अरु तुम तो नित्य मानते नहीं हो, “सर्व कृणिकमिति वचनात्” अथ जे कर कहोगे कि कृणिक है, तब तो वोही प्राचीन बंध मोहादि वैय्यधिकरण दूषण प्राप्त हुआ, जे कर कहोगे कि अनिन्न है, तब तो तिससे अनिन्न होनेसे तिसके स्वरूपकी तरें सतानीही हुआ, सतान नहीं नई जब ऐसे हुआ, तब तो तदवस्थाही पूर्वजा दूषण है, जे कर कहोगे कि कृणासेति अन्य सतान कोइ नहीं किंतु जो कार्य कारण नाव प्रबध करके कृण नाव है, सोइ सतान है, तिस वास्ते दोष कोइ नहीं है, यहनी तुमारा कदनां अयुक्त है, क्योंकि तुमारे मतमें कार्य कारण नावनी नहीं घटता है, सोइ विखाते हैं, कि प्रतीत्य समुत्पादमात्र कार्य कारण नाव है, तिसमें यथाविवक्षित घट कृणानंतर घट कृण है, तैसे पटादि कृणनी है, अरु जैसे घट कृणसें पहिला अनंतर विवक्षित घटकृण है, तैसे पटादि कृणनी है, तब तो कैसे प्रतिनियत कार्य कारण नावका अवगम होवे ?

एक औरनी दूषण है, सो यह है कि—कारणसेंती उत्पन्न होता हुआ जो कार्य, सो सत् उत्पन्न होता है ? वा असत् उत्पन्न होता है ? जे कर कहोगे कि सत् उत्पन्न होता है, तब तो कार्योत्पत्ति कालमेंनी कारण सत् हुआ, अरु तब कार्य कारणको समकालताका प्रसंग हुआ, अरु एक कालमें दो पदार्थोंका कार्य कारण नाव मान्या नहीं है, अन्यथा माता पुत्रका व्यवहार न होवेगा, घट पटादिकोंका नी परस्पर कार्य कारण नावका प्रसंग हो जावेगा जे कर असत् पक्ष मानोगे, तो सोनी अयुक्त है, क्योंकि जो असत् है, सो कार्य नहीं हो सका है, अन्यथा खरशृंगसेंतीनी कार्य उत्पन्न होना चाहिये, अरु अत्यन्तानाव, प्रध्वसानाव दोनोंही जगे वस्तुसत्ताका सजव होनेसें इन दोनोंका कोइनी विशेष न हुआ, जे कर कहोगे कि प्रध्वसानावमें वस्तु थी, इस करके देतु है, तब तो जब थी तब देतु नहीं, अन्यदा देतु हुआ, ऐसे तो बहुत अष्टी तत्त्वव्यवस्था नई

एक औरनी बात है, कि तज्जावे नाव ऐसे अवगममें कार्य कारण नावका अवगम है, सो जो तज्जावे नाव है, सो क्या प्रत्यक्ष करके प्रतीत होता है ? वा अनुमान करके प्रतीत होता है ? प्रत्यक्ष करके तो

करे बिना सर्वकों अक्षुण विधान उपकार करणोंको अगव्य होनेसें तिस वास्ते समुत्पन्न केवल ज्ञान पूर्वस्थापन ठपाके विशेष सस्कार वशसें न गवान् ठुतार्थनी है, तोनी देशना वेवेमें प्रवृत्त होता है, तब तो वेसना सु न करके निर्मल बुद्धि नैरात्म्य तत्त्व विचारता हुआ जीकों नावना प्रकृष विशेषसें वैराग्य उत्पन्न होता है, तिससेंती मुक्तिज्ञान होता है. अरु जो आत्माको मानता है, तिसकों मुक्तिका सनव नहीं, क्योंकि परमार्थ सेती आत्माके होते हूयां तिस आत्मामें स्नेह वर्त्तगा, तिस स्नेहके बध से तिस आत्माके सुखी होनेकी तृष्णा वाला होता है, अरु तृष्णाके व शसें सुखोके साधना विषे प्रवृत्त होता है, जब गुण उत्पन्न हूये, तब गुणोंमें राग करता है, तिस रागसें यावत्काल आत्मानिनिवेश रहेगा, तावत् काल सत्तार है ॥ आह च ॥ श्लोक ॥ ये पश्यन्त्यात्मान, तत्रास्याह मि ति शाश्वत स्नेह ॥ स्नेहात्सुखेषु तृप्यति, तृष्णा दोषास्तिरस्कुरुते ॥ १ ॥ गु णदर्शिपरितृप्यन्, ममेति तत्साधनान्युपावृत्ते ॥ तेनात्मानिनिवेशो, यावच्चाव त्सत्तार ॥ २ ॥ इति बौद्धमत पूर्वपक्ष ॥

अथ जैनमतकी तरफसें उत्तरपक्ष —यह सर्व कहनां तुमारा अंत कर णमें वास करणोवाले महा मोहका मोटा बिलास है, क्योंकि आत्माके अ नाव हूये बध मोह्यादिकोंका एकाधिकरणत्व नहीं होवेगा, सोइ दिखाते हैं हे बौद्धो ! तुम आत्मा नहीं मानते हो, किंतु पूर्वापर क्षुण टूटाका

अनुसंधान ज्ञान क्षुणादीको मानते हो, जब ऐसें माना, तब अन्यकों बध हुआ, अरु अन्यकों मुक्ति हुई, औ कृया औरकों लगी, अरु तृप्ति औरकों हो गई, तैसेही अनुजवता और हुआ, अरु स्मर्त्ता और हो गया, जुलाब औरने लीया, अरु राजीरोग रहित तो और हो गया, तप क्लेश तो औरने करा, अरु स्वर्गादिकका फल औरने जोगा, औ पढनेका अन्यास और करने लगा, अरु और कोई पढ गया, यह बात अतिप्रसंग होनेसें कोई शुक्तिसंग त नहीं है, जे कर कहोगे कि संतानकी अपेक्षा करके बध मोह्यादिकोंका एक अधिकरण हो सका है, सोनी ठीक नहीं, क्योंकि संताननी तुमारे मत में नहीं हो सका है, संतान जो है सो संतानीसें निम्न है ? वा अजिम्न है ? जे कर कहोगेकि निम्न है, तब तो फेर दो विकल्प तुमारी नेट करते हैं, सो संतान नित्य है ? वा अनित्य है ? जे कर कहोगेकि नित्य है, तब तो तिसकों



तर्हि तिससे अनिन्न होनेसें वासककीनी सक्रांति है, जे कर कहोगे कि संक्रांति है, तब अन्वयका प्रसंग होवेगा, इस वास्ते तुमारा कहनां किसी कामका नहीं है, अरु जो तुमने कहा था कि सकलही जगत् राग देपा दि डख सकुल जानता हुवा सकल जगत्को डखोंसे कैसें में उद्धार करु ? इत्यादि सोनी पूर्वापर असंबंध है, क्योंकि तुमारे मत कृणही पूर्वापर टूटे दूये परमार्थसें सत् है, अरु कृणोंके रहनेका कालमान एक परमाणुके व्यतिक्रम मात्र है, इस वास्ते उत्पत्तिसें व्यतिरिक्त तिनकी कोइ क्रिया नहीं उपपद्यमान होती, “नूतिर्येषां क्रिया सैव, कारक सैव बोध्यते ॥ इति वचनात्” तिसतें ज्ञान कृणोंको उत्पत्ति अनंतर न गमन है, न अवस्थान है, न पूर्वापर कृणोंसेंती अनुगम है, तिस वास्ते तिनोंक परस्पर स्वरूपावधारण नहीं अरु न कोइ उत्पत्ति अनंतर व्यापार है, तब कैसें मेरे सन्मुख यह अर्थ साक्षात् प्रतिजासता है ? इस प्रकारसें अर्थके निश्चयमात्र करणेमेंनी अनेक कृणोंका सजब है, अनुस्यूत हो कर उत्पन्न होते हैं, अरु तिस अनुस्यूतके अज्ञावसें कहांसें सकल जगत् राग देपादिक डख सकुलजाता करके विचारणां है ? अरु कहांसें दीर्घतर कालके अनुसंधान करके शास्त्रार्थका वितन है ? जिसके प्रज्ञावसें सम्यक् उपाय जान करके दया विशेषसें मोक्षके वास्ते घटना होवे ?

पूर्वपक्ष —यह जो सर्व व्यवहार है, सो ज्ञान कृणोंकी सततिकी अपेक्षा करके है, फेर तुम क्यों इस पक्षमें दूषण देते हो ?

उत्तरपक्ष —“सुकुमारप्रज्ञोदेवानां प्रिय सदैव सप्त घटिका मध्यमिष्ठान्न जोजन मनोज्ञाशयनीय शयनान्यासेन सुखैधितो” परंतु वस्तुके यथार्थ तत्त्व विचारनेसें तेरी बुद्धि क्लेशित नहीं हुइ है, तिस करके हमारा कहा तेरी समझमें नहीं आता है, क्योंकि ज्ञान कृण सततिविषेजी वोही दूषण है, जो हमने उपर कहा है, सोइ दिखाते है, कि वैकल्पिक, अरु अवैकल्पिक, जो ज्ञान कृण है, सो परस्पर अनुगमके अज्ञावसें परस्पर स्वरूप नहीं जानते, अरु कृणमात्रसें उपरांत रहते नहीं, तब तो कैसें पूर्वापर अनुसंधान रूप दीर्घकालिक सकल जगत् डखिताका विचार शास्त्र विचारण रूप यह व्यवहार होवे ? आखों मीच करके विचारो तो सही ? इत्यादि बौद्धमतका खमन, नदीसिद्धांत, तथा सम्मतितर्क, दादशा

नहीं, क्योंकि पूर्व वस्तुगत प्रत्यक्ष करके पूर्ववस्तु परिष्ठित हुआ, और उक्त वस्तुगत करके उत्तर वस्तु हुआ, और ये दोनों परस्पर स्वरूपकाँ जानते नहीं, और इन दोनोंका अनुसंधान करने वाला ऐसा तीसरा एक स्वरूप कोइ मानते नहीं है, तिस वास्ते इसके अनंतर इसका ज्ञान है, ऐसे कि स तरे अवगम होवे ? सो तो तिसकृती प्रत्यक्षपूर्वक होनेसे अनुमान कर केंची नहीं होवे, और अनुमान जो है, सो लिंग लिंगो सवध ग्रहणपूर्वक प्रवृत्त होता है, और लिंग लिंगीका सवध तो प्रत्यक्ष करके ग्राह्य है, जे कर अनुमानसे सवध ग्रहण करियें, तब अनवस्थादूषण आता है और कार्य कारण नाव विषे प्रत्यक्ष प्रवृत्त होता नहीं, तिस वास्ते अनुमानकी नी प्रवृत्ति नहीं, ऐसेही ज्ञानके दोनों कृणोंकी परस्पर कार्य कारण नावका अवगमनी निषेध दुया जानना तहांनी स्वसवेदन करके अपने अपने रूपके ग्रहणमें परस्पर स्वरूप अनवधारणसे तदनंतरमें उत्पन्न हुआ हुआ, और इसका मैं जनक हूँ, ऐसी अवगतिके न होनेसे तुमारे मतम कार्यकारण नाव नहीं है और तिसका अवगमनी नहीं है, तिसमें मृषा ही यह तुमारा कहना है कि एक सतति पतित होनेसे वध मोक्षका एकाधिकरण है, इस कहने करके जो कहते हैं कि उपादेयोपादान कृणोंका परस्पर वास्यवासक नाव होनेसे, उत्तरोत्तर विशिष्ट विशिष्टतर कृणोत्पत्तिसें मुक्तिका सजब है, सोनी उपादानोपादेय नावका उत्तरीतिसें अनुपपद्यमान होनेसें प्रतिक्षिप्त जानना, और जो वास्यवासक नाव कहा है, सोनी तिल फूलोंकी तरें एक कालमें दोनों होवे तब हो सका है, “उक्तचान्यैरपि ॥ अवस्थिताहि वास्यंते, नावानावैरवस्थितै ॥ तब कैसें उपादेयोपादान कृण दोनोंकों परस्पर असाहित्य होनेसें वास्यवासक नाव होवे ? उक्त च ॥ श्लोक ॥ वास्यवासकयोश्चैव, मसाहित्यान्न वासता ॥ पूर्वकृणैरनुत्पन्नो, वास्यते नोत्तर कृण ॥ १ ॥ उत्तरेण विनष्टत्वान्न च पूर्वस्य वासना ॥ इति ॥

एक औरनी बात है, कि वासना वासकसे निन्न है ? वा अनिन्न है ? जे कर कहोगे कि निन्न है, तब तो तिस वासना करके शून्य होनेसें अन्यकों वस्त्वतरवत् कदापि वासित न करेगी, जे कर कहोगे कि अनिन्न है, तब तो वास्यकृणमें वासनाका सक्रम कदापि नहीं होवे, ऐसे तिसके स्वरूपकी.

ए तथा स्मृतिगृहीतग्राही होने करके प्रमाण नहीं मानते हैं, “अनर्थ जन्यत्वेन” विना अर्थके होने करके अरु गृहीतग्राही होनेसे प्रमाण नहीं, अरु धारावाही ज्ञानकी गृहीतग्राही है, तिनकोनी अप्रमाणता होनी चाहिये, परंतु धारावाही ज्ञानको नैयायिक औ वैशेषिक प्रमाण मानते हैं, अरु अनर्थजन्य होने करके स्मृतिकों जब अप्रमाण मान्या, तब अतीतानागत अनुमानकी अनर्थजन्य होने करके प्रमाण न हुआ, अरु अनुमानकों शब्दकी तरें त्रिकाल विषयक मानते हैं, क्योंकि धूम करके वर्तमान अग्नि अनुमेय है, अरु मेघोन्नति करके नविष्यत् वृष्टि, अरु नदीका पूर देखनेसे अतीत वृष्टिका अनुमान, यह दोनोंही अनर्थ जन्य है, तो फेर धारावाही ज्ञान, अरु अनर्थ जन्य अनुमान, इन दोनोंको तो प्रमाण मानना अरु स्मृतिकों अप्रमाण नहीं मानना यह पूर्वापर विरोध है

१० ईश्वरका सर्वार्थ विषय प्रत्यक्ष जो है, सो इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष निरपेक्ष मानते हो ? वा इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न मानते हो ? जे कर कहोगे कि इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष निरपेक्ष मानते हैं, तब तो “इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न ज्ञानमव्यपदेश्यमित्यत्र सूत्रे” सन्निकर्षोपादान निरर्थक होवेगा, क्योंकि ईश्वर प्रत्यक्ष ज्ञान सन्निकर्षके विनाही हो सका है, जे कर कहोगे कि ईश्वर प्रत्यक्ष इन्द्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्न मानते हैं, तब तो ईश्वरके मनको अणु मात्र प्रमाण होनेसे युगपत् सर्व पदार्थोंके साथ सयोग न होवेगा ? तब तो ईश्वर जब एक पदार्थको जानेगा, तब दूसरे पदार्थ होते दूयांकोनी न ही जानेगा तब तो हमारेकी तरें तिस ईश्वरको कदापि सर्वज्ञता न होवेगी, क्योंकि सर्व पदार्थोंके साथ युगपत् सन्निकर्ष नहीं हो सका है, जे कर कहोगे कि सर्व पदार्थोंको क्रम करके जाननेसे सर्वज्ञ है, तब तो बहुत काल करके सर्व पदार्थोंके देखने करके ईश्वरकी तरें हमकोनी सर्वज्ञ कहना चाहिये. एक औरनी बात है कि अतीत, अनागत जो पदार्थ हैं, सो विनष्ट अनुत्पन्न होनेसे मनके साथ सन्निकर्ष नहीं हो सका है, हो तेही पदार्थोंका सयोग होनेसे, अरु अतीत अनागत तो तिस अवसरमें दोनों अस्त है, तब किस तरें महेश्वरका ज्ञान अतीत अनागत अर्थका ग्राहक होवे ? अरु तुम तो ईश्वरका ज्ञान सर्वार्थका ग्राहक मानते होत,

र नयचक्र, अनेकांत जयपताका, स्यादादरजाकर, स्यादादरजाकराव तारिका प्रमुख अनेक शास्त्रोंमें अछी तर कीया हे, सो देख लेना ॥ इति बौद्ध मत खमन ॥ १ ॥

१ अथ द्वितीय नैयायिक मतमें पूर्वापर व्याहृतपणा लिखते हैं, कि सत्ता योगसे सत्त्व है ऐसे कह कर सामान्य विशेष समवाय इन पदार्थोंको सत्ता के योगसे विनाही सत् कहतेको क्यों नहीं पूर्वापर व्याहृत वचन होवेगा ?

२ ज्ञान आपणे आपको नहीं जानता, आपणे आप विपे क्रियाका विरोध है, इस वास्ते ऐसे कह करके फेर कहिते हैं कि ईश्वरका जो ज्ञान है, सो आपणे आपको जानता है, अरु स्वात्माविपे क्रियाका विरोध मानते नहीं है, तो फेर क्योंकर स्ववचन विरोध न हुआ ?

३ अरु दीपक जो है, सो अपणे आपको आपही प्रकाश करता है, अरु इस जगे स्वात्म विपे क्रिया विरोध मानते नहीं, यह पूर्वापर वचन व्याहृत है

४ दूसरोंके उगने वास्ते उल, जाति, निग्रह, स्थान, इनको तत्स्वरूप पणे करके उपदेश करते हुआ अक्षपाद कृपिका वैराग्य वर्णन करना ऐसा है कि जैसा अधिकारको प्रकाशवाला कहना यह क्यों कर पूर्वापर व्याहृत नहीं है ?

५ आकाशको निरवयवी स्वीकार करके फेर तिसका गुण शब्द जो है, सो एक देशमें सुणाइ देता है, सर्वत्र नहीं तब तो आकाशको सांशता हो गइ यह पूर्वापर व्याहृत पणा है

६ सत्तायोगसे सत्त्व अरु योग जो है सो सर्व वस्तुओंके सांशता दोने हीसे होता है, अरु सामान्यको निरंश एक मानते हैं, तब कैसे पूर्वापर व्याहृत वचन न होवे ?

७ समवाय, नित्य एकस्वभाव मानते हैं, अरु सर्व समवायी पदार्थोंके साथ सबध नैयत्य करके होता हुआ समवाय, अनेक स्वभाव वाला हो गया, तब तो पूर्वापर विरोध हो गया

८ “अर्थवत्प्रमाण” अर्थ सहकारी है, जिसका सो अर्थवत् प्रमाण, यह कह करके फेर योगी प्रत्यक्षको अतीतावर्थ विषय कहतेको क्यों नहीं पूर्वापर विरोध है ? क्योंकि अतीताविक जो है, सो विनष्ट अनुत्पन्न होने से सहकारी नहीं हो सके हैं

पूर्वपक्ष —सुगतादिक ईश्वर मत होवो, परतु सृष्टिका कर्त्ता तो महादेव ईश्वर है, सो क्यों नहीं मानते ?

उत्तरपक्ष —जगत् कर्त्ता ईश्वरकी सिद्धिमें प्रमाणका अभाव है, इस वास्ते नहीं मानते

पूर्वपक्ष —जगत् कर्त्ताकी सिद्धिमें प्रमाण है पृथिव्यादिक किसी बुद्धि वानके करे दूये हैं घटादिवत् कार्यरूप होनेसे यह हेतु असिद्ध नहीं है, पृथिव्यादिकोंको सावयव होने करिकें कार्यत्वकी प्रसिद्धि होनेसे तथाहि पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक सर्व सावयव होनेसे घटवत् कार्यरूप है, अरु यह हेतु विरुद्धनी नहीं है, निश्चित कर्टक घटादिकों विषे कार्यत्व हेतुके देखनेसे अरु जिनोका कर्त्ता नहीं है, उनसे व्यावृत्त होनेसे अनेकांतिकनी नहीं है, अरु प्रत्यक्ष आगम करके अवाधित विषय होनेसे कालात्यया पविष्टनी नहीं है, इस निर्वोप हेतुसे जगत्कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होता है

उत्तरपक्ष —तहां प्रथम पृथिवीआदिक बुद्धिमानके बनाये दूये हैं, इस सिद्धिके वास्ते जो तुमने कार्यत्व हेतु कहा था, सो हेतु क्या सावयवत्व है ? वा प्राग्वत् स्वकारण सत्ता समवाय है ? वा 'कृतं' ऐसे प्रत्ययका विषयत्व है ? वा विकारित्व है ? इन चारों विकल्पोमेंसु कार्यत्व हेतुका कौनसा स्वरूप है ? जे कर कहोगेकि सावयवत्व स्वरूप है, तो यह सावयवपणा अवयवों विषे वर्त्तमानत्व है ? वा अवयवों करके आरन्ध्यमाणत्व है ? वा प्रवेशत्व है ? वा सावयव ऐसी बुद्धिविषयत्व है ?

तहां आद्य पक्षविषे अवयव सामान्य करके यह हेतु अनेकांतिक है, तथा अवयवों विषे वर्त्तमाननी निरवयव अरु अकार्य कहते है, तथा दूसरे पक्षमें हेतु साध्यके समान है, जैसा पृथिव्यादिकोंको कार्यत्व साध्य है, ऐसेही परमाणु आदिकोंको अवयव आरन्ध्यत्व पणा है, तथा तीसरे पक्षमें आकाशके साथ हेतु अनेकांतिक है, क्योंकि आकाश प्रदेश वाला तो है, परतु कार्य नहीं है तथा चक्षुषे पक्षमेंनी आकाशके साथ हेतु व्यभिचारी हैं, क्योंकि जो व्यापक होता है, सो निरवयव नहीं होता है, अरु जो निरवयव होता है, सो परमाणुवत् व्यापक नहीं होता है

तथा प्रागसत् स्वकारण सत्तासमवाय कार्यत्वनी नहीं, क्योंकि तिसको नित्य होने करके तिसके लक्षणके न होनेसे जे कर तिसका लक्षण

व तो पूर्वापर विरोध सहजहीमें हो गया, ऐसेही योगीयोंकींजी सर्वाधि  
ग्राहक ज्ञानका दुर्धर विरोध जान लेना

११ कार्य इव्यके प्रथम उत्पन्न होनेसे तिसका जो रूप है, सो पीछेसे  
उत्पन्न होता है, बिना आश्रयके गुण क्योंकर उत्पन्न होवे ? यह कह  
करके पीछेसे यह कहते हैंकि कार्य इव्यके विनाश दूये पीछे तिसका रूप  
नष्ट होता है, यह पूर्वापर विरोध है, क्योंकि जब कार्यइव्य नाश हो ग  
या, तब रूप आश्रय बिना पीछे क्यों कर रह सकेगा ?

१२ नैयायिक औ वैशेषिक जगत्का कर्त्ता ईश्वरको मानते हैं, यह वा  
तनी एक महामूढताका चिन्ह है, क्योंकि जगत्का कर्त्ता ईश्वर किसी  
प्रमाणसे सिद्ध नहीं हो सका है, यह जगत् कर्त्ताका खमन दूसरे परिष्ठे  
दमें अच्छी तरे विस्तार पूर्वक लिख आये है, तोनी नव्य जीवोंके ज्ञान  
वास्ते थोडासा इहांनी लिख देते हैं

कोइक कहते हैं कि साधुओंके उपकार वास्ते श्रु डष्टोंके सहार वास्ते  
ईश्वर युग युगमें अवतार लेता है, श्रु सुगतादिक कितनेक यह बात कह  
ते हैं कि मोक्षको प्राप्त हो करके अपने तीर्थको क्लेशमें देख कर फेर नग  
वान् अवतार लेता है, “यदाद्गु रन्ये ॥ ज्ञानिनो धर्मतीर्थस्य, कर्त्तार परम पद ॥  
गत्वा गच्छति नूयोपि, नवतीर्थनिकारत इति ॥ १ ॥” जो फिर सत्सारमें  
अवतार लेता है, वो परमार्थसे मोक्षरूप नहीं दूआ है, क्योंकि उसके  
सर्व कर्म क्षय नहीं दूये हैं, जे कर मोहादिक कर्मक्षय हो जाते, तो वो का  
हेकों अपने मतका तिरस्कार देखके पीडा पाता, श्रु अवतार लेता, जे  
कर साधुओंके उपकारार्थ श्रु डष्टोंके सहार वास्ते अवतार लेता है, तब  
तो असमर्थ दूआ, क्योंकि बिनाही अवतारके लीयां वो यह काम नहीं  
कर सका था, जे कर कर सका था, तो फेर काहेकों गर्जावासमें पडा ? इ  
स वास्ते सर्व कर्म क्षय नहीं दूये, जे कर क्षय हो जाते तो कबीनी अव  
तार न लेता ॥ यष्टक ॥ दग्धे बीजे यथात्पंत, प्राड्भिवति नांकुर ॥ कर्मबी  
जे तथा दग्धे, न रोहति नवांकुर ॥ १ ॥ उक्तच श्रीसिद्धसेन विवाकर पा  
वैरपि ॥ नवाजिगामुकानां, प्रबलमोहविकृजितं ॥ श्लोक ॥ दग्धेधन पुन  
रुपैति नव प्रमथ्य, निर्वाणमप्यनवधारितजीरनिष्ठं ॥ मुक्त स्वयं कृततनुश्च  
परार्थश्रु, स्ववृत्तासनप्रतिदत्तेष्विह मोहराज्यं ॥ १ ॥ इत्यलविस्तरेण ॥

त्व होवे, तब तो वाय्यादिकोंकोनी अग्नि प्रतिगमकत्वका प्रसंग होवेगा, अरु महेश्वर आत्मत्व करके सर्व जीवोंके सदृश होनेसे १ सत्सारिपणा, २ किंचित् ह्रस्वपणा, ३ सपूर्ण जगत्का अकर्तृत्वपणके अनुमापकका अनुपग है, क्योंकि तुल्य अक्षेप समाधान होनेसे तिस वास्ते वाय्य अरु धूम इन दोनोंको किसी अश करके साम्यनी है, तोनी कोइक़ ऐसा विशेष है, जिस करके धूम अग्निका गमक है, परंतु वाय्यादिक नहीं. तैसेही पृथिव्यादिकोंको इतर कार्योसेनी कबुक विशेष अगीकार करो

जे कर दूसरा पद मानोगे, तब हेतु असिद्ध है, कार्य विशेषके अभावसे जावे वा जीण कूप प्रासादादिकोंकी तरें अक्रिया देखने वालेकोनी कृतबुद्धि उत्पादकका प्रसंग है, जे कर कहोगेकि समारोपसे प्रसंग नहीं होता है, सोनी दोनों जगें एक सरीखा होनेसे क्यों नहीं होता है? दोनों जगें कर्त्ताको अतींद्रियत्वके अविशेषसे पूर्वपद प्रामाणिकों है, यहां कृतबुद्धि उत्तरपद कैसे तहां तिसको कृतत्वका अवगम होवे? इस अनुमान करके अथवा अनुमानांतर करके आद्य पदमें परस्पर आश्रय दूषण है, तथाहि सिद्ध विशेषण हेतुसे इस अनुमानका उद्धान है, तिसके उद्धानके होयां हेतुके विशेषणकी सिद्धि है अरु दूसरे पदमें अनुमानांतरकोनी सविशेषण हेतुसे उद्धान होवेगा, तहांनी अनुमानांतरसे तिसकी सिद्धि इसी तरें अनवस्था दूषण होता है, इस वास्ते कृत बुद्धि उत्पादकत्व रूप विशेषण सिद्धि नहीं, तब तो विशेषण असिद्ध हेतु है

अरु जो कहते हैं कि स्वातप्रतिपूरित पृथिवीके दृष्टांत करके कृतकोंको आत्मविषे कृतबुद्धि उत्पादकत्वका अभाव है, सोनी असत् है, तहां आकृति नूनागादि सारूप्यको तिसके उत्पादकके अभावसे, तिसके उत्पादककी उत्पत्तिसे

अरु ऐसेनी न कहनांकि पृथिव्यादिकोंमेंनी अकृत्रिम सस्थान सारूप्य है, जिस करके आकृतिमत्त्व बुद्धि उत्पन्न होती है, तिसहीके न माननेसे अथसिद्धांतकी प्रसक्ति होवेगी, ऐसे कृतबुद्धि उत्पादकत्व रूप विशेषण असिद्ध होनेसे हेतु विशेषण असिद्ध है, सो सिद्ध होवो, तोनी यह हेतु घटादिकोंकी तरें शरीरादि विशिष्टकोही बुद्धिमत् कर्त्ताका इहां प्रसाधनसे हेतुविरुद्ध है

होवेगा, तब तो पृथिव्यादिकोंके कार्यत्वकोंनी नित्यताका प्रसंग होवेगा, तब बुद्धिमत्का बनाया दूया क्या सिद्ध करोगे? एक औरनी दूषण है कि योगीयोंके अशेष कर्मके दूष दूयां यकां पक्षांतपातिविषे अग्रवृत्त होने करके यह हेतुनागा अस्ति है, क्योंकि योगी प्रत्यक्षको प्रध्वसा नाव रूप होने करके सत्ता स्वकारण समवाय इन दोनोंके अनावसे

तथा “कृतं” ऐसे प्रत्ययका जो विषयत्व है सोन। कार्यत्व नहीं हो सक्ता है, खनन उत्सेचनादिक करके कृतं आकाश ऐसे अकार्य आकाशमें नी वर्तमान होने करके अनेकांतिक है

तथा विकारत्वकोंनी कार्यत्वका अनुपग है, सत् वस्तुको जो अन्यनाव है, सो विकारित्व है तब तो ईश्वरकोंनी विकारित्व पणा है, अपर बुद्धि मत् हेतुकत्व प्रसंग होनेसे अनवस्था हो जावेगी, जे कर कहोगेकि ईश्वर विकारी नहीं तब तो कार्यका कारित्व पणा डुर्घट है, ऐसे कार्य स्वरूप को विचारता यकां उपपद्यमान न होनेसे “कार्यत्वात्” यह हेतु अस्ति है, एक औरनी दूषण है कि कदे दोनों कदे न होना, लोकमें उसको कार्य त्वकी प्रसिद्धि है अरु यह जो जगत् है, सो तुमारे महेश्वरकी तरें सदा सत्त्व होनेसे कैसे कार्यत्व होवे?

पूर्वपक्ष - तिस जगत्के अतर्गत तृणादिकोंको कार्यत्व होनेसे जगत् कोंनी कार्यत्व है

उत्तरपक्ष - महेश्वर अतर्गत बुद्धिआदिकोंको तथा परमाणु आदिकोंके अतर्गत पाकज रूपादिकोंको कार्यत्व रूप होनेसे महेश्वरको तथा परमाणु आदिकोंको कार्यत्वका अनुपग होवेगा, तब तो इस ईश्वरको अपर बुद्धिम त् हेतुकत्व प्रसंगसे अनवस्था दूषण आता है, अरु अपसिद्धांतका अनु पग है, तथा हे ईश्वरवादि ! जैसे तैसे करके जगत्को कार्यत्वपणा होवो, तोनी कार्यमात्र इहां हेतु तुमने माना है ? वा कार्य विशेष हेतु माना है?

जे कर आद्य पक्ष मानोगे, तब तो तिससेती बुद्धिमत्कर्तृ विशेष सिद्धि नहीं क्योंकि तिसके साथ व्याप्तिकी सिद्धि नहीं, किंतु कर्तृ सामान्यकी सिद्धि होती है, जे कर ऐसेही मानोगे, तब तो हेतु अकिंचित्कर है, साध्यसे विरुद्ध साधनेसे हेतु विरुद्ध है, तिस वास्ते कार्यत्वकृत बुद्धि उत्पादक बुद्धिमत् कर्त्ताका गमक नहीं, अरु जे कर सर्व सारूप्य मात्र करके गमक



हैं ? अथवा और किसी प्रमाणसें है ? प्रथम पक्षमें चक्रक दूषण है, इस प्रमाणसें तिसका सन्नाह सिद्ध होवे, तब अदृश्य होने ईश्वरके अनुपपन्न की सिद्धि होवे, तिसकी सिद्धिके दोषों का लात्पयापदिएका अज्ञाव सिद्ध होवे, तिसके पीछे इस प्रमाणकी सिद्धि होवे. दूसरा पक्षकी अयुक्त है, ईश्वरके ज्ञावावेदिक प्रमाणके अज्ञावसें होवे, तहां प्रमाणका सन्नाह तोनी ? ईश्वरके अदृश्य होनेमें क्या शरीरका न होना कारण है ? १ वा विद्यादि प्रज्ञाव हैं ? ३ वा जाति विशेष है ? प्रथम पक्षमें अशरीरी होनेसे मुक्त आत्मावत् कर्त्तापणेकी अनुपपत्ति है

प्रश्न - शरीरके अज्ञाव करकेनी ज्ञानेष्वा प्रयत्नाश्रयत्व करके शरीर उत्पन्न करके ईश्वर कर्त्ता हो सका है

उत्तर - यहनी विना विचारहीका तुमारा कहना है, क्योंकि शरीर संबध करकेही तिसकी प्रेरणा होनेसें शरीरके अज्ञाव दूषों मुक्त आत्मवत् तिसका असन्नाह होनेसें अरु शरीरके अज्ञावसें ज्ञानादि आश्रयित्वका नी असन्नाह है, तिसकी उत्पत्तिमें इसको निमित्त होनेसें अन्यथा मुक्तात्मा कोनी तिसकी उत्पत्ति होवेगी अरु विद्यादि प्रज्ञावको अदृश्यपणेमें हेतु दूषों कदाचित् यह दीखना चाहिये, परंतु सर्वदा नहीं क्योंकि विद्यावान् सदा अदृश्य नहीं रहते हैं, पिशाचादिकोंकी तरें जाति विशेषनी अदृश्यमें हेतु नहीं, क्योंकि ईश्वर एक है, एकमें जाति नहीं होती है, जाति जो होती है, सो अनेक व्यक्ति निष्ठ होती है नलेही ईश्वर दृश्य अथवा अदृश्य होवे, तोनी ? क्या सत्ता मात्र करके ? १ वा ज्ञानवत्त्व होने करके ? ३ वा ज्ञानेष्वा प्रयत्नवत्त्व करके ? ४ वा तत्पूर्वक व्यापार करके ? ५ वा ऐश्वर्य करके पृथिव्यादिकोंका कारण है ?

तहां आद्य पक्षमें कुलालादिकोंकोनी सत्त्वके अविशेष होनेसें जगत्कर्तृका अनुपग होवेगा दूसरे पक्षमें योगीयोंकोनी जगत् कर्त्ताकी आपत्ति होवेगी, तीसरा पक्षनी ठीक नहीं, क्योंकि अशरीरको प्रथमही ज्ञानादि आश्रयत्वका प्रतिपेध करनेसें चतुर्थेका नी सन्नाह नहीं क्यों कि अशरीरको काय वचनके व्यापारवत्त्वका असन्नाह होनेसें अरु ऐश्वर्यनी ज्ञातपणा है ? अथवा कर्त्तापणा है ? अथवा और कुछ है ? जेकर कहोगे कि ज्ञातपणा है, तब क्या ज्ञातत्वमात्र है ? अथवा सर्वज्ञात पणा है ? आद्यपक्षमें ज्ञाताही होवेगा,

प्रश्न - ऐसे दृष्टांत दार्ष्टान्तिक साम्य अन्वेषणम सर्व जगें हेतुबोकी अनुपपत्ति होवेगी.

उत्तर - ऐसे नहीं है धूमादि अनुमानम महानत इतर साधारण अग्निकी प्रतिपत्तिसें, यद्वाजी ऐसेही बुद्धिमत् सामान्य प्रसिद्धिसें हेतु विरोध नहीं, ऐसेजी कहनां अयुक्त है, क्योंकि दृश्य विशेष आधारकीही तिस सामान्यको कार्यत्व हेतुकी प्रसिद्धि है, परंतु अदृश्य विशेषाधारकी नहीं, तिसकी स्वप्नेमेजी प्रतिपत्ति नहीं है, तिस सामान्य वालेका स्वरूप आधार है, तिस वास्ते जैसे कारणसे जैसा कार्य उपलब्ध होता है, तैसाही अनुमान करने योग्य है, यथावत् धर्मात्मक अग्निसे यावत् धर्मात्मकस्य धूमकी उत्पत्ति है, सुदृढ प्रमाणसे प्रतिपन्न है, तैसेही धूमसे तैसाही अग्निका अनुमान है, ऐसे कहने करके साध्य साधन दोनोंका विशेष करके व्याप्तिविषे ग्रहण करतां दूथा, सर्वानुमानकी उभेद प्रसक्ति है, इत्यादि जो कहनां है, सोजी खमन हो गया

तथा बिना बीजके बोयां जो तृणादिक उत्पन्न होते हैं तिनके साथ यह कार्यत्व हेतु व्यभिचारी है, बहुतसें कार्य देखनेमें आते हैं, उनमेंसु कितनेक तो बुद्धिमान्के करे दुये दीखते हैं, जैसें घटादिक

अरु कितनेक ठकसें विपरीत दिखाइ देते हैं, जैसें बिना बोयां तृणादिक जे कर कहोगेकि हम सर्वको पक्षमें कर लेवेंगे तब तो " स इयामस्तत्पुत्रत्वादितरतत्पुत्रवत् " इत्यादिजी गमक होने चाहियें, तब तो कोइजी हेतु व्यभिचारी न होवेगा जहां जहां व्यभिचार होवेगा, तहां तहां तिसको पक्षमें कर लेनेसें तथा यह हेतु ईश्वर बुद्धि आदिकों करकेजी व्यभिचारी है, ईश्वर बुद्ध्यादिकोंको कार्यत्वके दोषां दूषांजी समवायि कारणसें ईश्वरादिकोंसें निज बुद्धिमत्पूर्वकत्वके अज्ञावसें, जे कर यहांजी इसी तरें मानोगे, तब अनवस्थादूषण होवेगा, तथा यह कार्यत्व हेतु कालात्यया पदिष्टजी है, बिना बोयां उत्पन्न दुये तृणादिको विषे बुद्धिमत् कर्ताका अज्ञाव प्रत्यक्ष प्रमाणसें अग्निके अनुपपत्त्य साध्यविषे इध्यत्व हेतु वत् दीख पड़ता है

प्रश्न - अंकुर तृणादिकोंकाजी अदृश्य ईश्वर कर्ता है

उत्तर - यहजी ठीक नहीं, तहां अदृश्य ईश्वरका दोनों इसी प्रमाणसें

वितंता, १३ हेत्वान्नास, १४ बल, १५ जाति, १६ निग्रहस्थान, य  
ह सोला पदार्थ कहे हैं

तहां, हेय उपादेय प्रवृत्तिरूप करके जिस करके पदार्थोंकी परिस्थिति क  
रियें हैं, “तत्त्वमीयतेऽनेनेति प्रमाण” सो प्रमाण, सो प्रमाण १ प्रत्यक्ष,  
२ अनुमान, ३ उपमान, ४ शब्द जेदसैं चार प्रकारका है, “तत्रेडियार्थ  
सन्निकर्षोत्पन्न ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यनिचारिव्यवसायात्मक प्रत्यक्ष इति  
गौतम सूत्र ॥” इसका यह तात्पर्य है कि इडिय अरु अर्थका जो सबध  
तिससेती जो उत्पन्न दूया व्यपदेश रहित व्यनिचार रहित निश्चयात्मक  
तिसकों प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं, परंतु प्रत्यक्ष प्रमाणका यह लक्षण नहीं  
है, तथाहि जहां आत्मा अर्थ ग्रहण प्रति साक्षात् व्यापारियें, सोइ प्रत्य  
क्ष प्रमाण है, सो अवधि, मन पर्यव, अरु केवल है, अरु यह जो प्रत्य  
क्ष नैयायिकोंने कहा है, सो उपाधि द्वारा प्रवृत्ति होनेसैं अनुमानकी त  
रें परोक्ष है, जो उपचार प्रत्यक्ष माने, तब तो है, परंतु तत्त्वचिंतामें  
उपचारका व्यापार नहीं होता है

अरु अनुमान प्रमाण तीन जेद करिकें मानते हैं, १ पूर्ववत्, २ शेषवत्,  
३ सामान्यतोदृष्ट तद्वा कारणसैं कार्यका जो अनुमान, सो पूर्ववत्, तथा  
कार्यसैं कारणका जो अनुमान, सो शेषवत्, तथा एक आंवका वृक्ष फूला  
देख कर आंव, जगत्में फूले है, अैसें जाननां, अथवा देवदत्तादिकोंमें गति  
पूर्वक स्थानसैं स्थानांतरकी प्राप्ति देख कर सूर्यमेंजी गतिका अनुमान क  
रनां इसका नाम सामान्यतो दृष्ट है, तद्वाजी अन्यथानुपपत्तिही गमक है,  
नतु कारणादिक क्योकि अन्यथानुपपत्तिके बिना कारणको कार्य प्रति व्य  
निचार होनेसैं अरु जहां अन्यथानुपपत्ति है, तहां कार्य कारणादिकों  
के बिनाजी गमकनाव देखीयें है, सोइ दिखाते हैं कृतिकाके देखने  
सैं रोहिणीका उदय होवेगा ॥ तद्धक्तं ॥ श्लोक ॥ अन्यथानुपपन्नत्व, यत्र  
तत्र त्रयेण किं ॥ नान्यथानुपपन्नत्व, यत्र तत्र त्रयेण किं ॥ १ ॥ तथा  
एक औरनी बात है कि जब प्रत्यक्ष प्रमाणही नैयायिकका कहा प्रमाण  
न दूया तब प्रत्यक्ष पूर्वक अनुमान जो है सो क्योकर प्रमाण होवे ?  
तथा “प्रसिद्ध साधर्म्यात्” अर्थात् प्रसिद्ध साधर्म्यसे जो साध्यका सा  
धन है, सो उपमान है, जैसा गौ है तैसा रोज है, यद्वाजी सड़ा सड़ा

परंतु ईश्वर न होवेगा. अस्मदाद्यन्यज्ञातृपांकी तरे दूसरे पक्षमें सर्वज्ञ पणा इसको होवेगा परंतु सुगतादिवत् ईश्वरपणा न होवेगा.

अथ जे कर कहोगे कि कर्तृत्वपणा है तब तो कुनकारादिकोंकोनी अनेक कार्य करने वालोंको ऐश्वर्यकी प्रसक्ति होवेगी, अरु इहा प्रयत्नके बिना और कोइनी वस्तु ईश्वरके ऐश्वर्यकी निवधन नहीं है

एक औरजी बात है, कि ईश्वरके जगत् बनानेमें यथारुचि प्रवृत्ति है ? वा कर्मके वश हो करके है ? वा दया करके है ? वा क्रीडा करके है ? वा नियहानुग्रह करने वास्ते है ? वा स्वभावसे है ? आद्य विकल्पमें कदाचित् और तरेंकी सृष्टि हो जावेगी, दूसरे पक्षमें ईश्वरकी स्वतंत्रताकी हानी होवेगी, तीसरे पक्षमें सर्व जगत् सुखीही करना था

पूर्वपक्ष - ईश्वर क्या करे ? जैसे जैसे जीवोंने कर्म करे ह, तिन कर्मोंके वशसे ईश्वर तैसा तैसा ड ख सुख देता है

उत्तरपक्ष - तब तो तिसका क्या पुरुषाकार है ? जब कर्महीकी अपेक्षा करके कर्त्ता है, तब तो ईश्वरकी कल्पना करके क्या करना है ? कर्महीके बलसें सब कुछ हो जावेगा, तथा चउथे पांचमे विकल्पमें ईश्वर, रागी देपी हो जावेगा, तब तो ईश्वर क्यों कर सिद्ध होवेगा ? तथाहि क्रीडा करनेसें बालवत् रागवान् ईश्वर है ? तथा ईश्वर अनुग्रह नियह करनेसें राजाकी तरें राग देप वाला है ?

जे कर कहोगे कि ईश्वरका स्वभावही जगत् करने ( रचनेका ) है, तब तो जगत् स्वभावसेंही दूआ है, अैसें मान लेवो फेर ईश्वरकी कल्पना का हेकों करते हौ ? इस वास्ते कार्यत्व हेतु बुद्धिमत कर्त्ता ईश्वरकों नहीं सिद्ध कर्त्ता है, इस वास्ते नैयायिक, वैशेषिक जो जगत्का कर्त्ता ईश्वरकों मानते हैं, सो मूर्खताका सूचक है, विशेष करके जगत् कर्त्ताका खमन देखना होवे, तदा सम्मतिर्त्तकं ग्रथ देखना

अरु जो नैयायिकोंने सोला पदार्थ माने हैं, सोनी बालकोंकी खेल है, क्योंकि सोला पदार्थ घटते नहीं है, सोला पदार्थ बढ़ है उसका नाम कहते हैं १ प्रमाण, २ प्रमेय, ३ सशय, ४ प्रयोजन, ५ दृष्टांत, ६ सिद्धांत, ७ अवयव, ८ तर्क, ९ निर्णय, १० वाद, ११ जल्प, १२

लोकका सञ्जाव होना सोची जीवाजीवके बिना और कुछ नहीं है, तथा १० फल, जो सुख दुःखका जोगना है, सोची जीव गुणोंके अतर्जाव है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ कहना ठीक नहीं, तथा ११ दुःख, यहनी फलसे न्यारा नहीं, और १२ जन्म मरण प्रवध उच्छेदरूप करके सर्व दुःखोंको दूर करणां, ऐसा मोक्षका लक्षण है, सो हमने नवतत्त्वमें मान्याही है

३ तथा यह क्या है ? ऐसा अनिश्चयरूप प्रत्ययको सशय कहते हैं, सोची निर्णय ज्ञानवत् आत्माहीका गुण है

४ तथा जिस करके प्रयुक्त दूआ होयां प्रवर्त्ते है, तिसका नाम प्रयोजन है, सोची इहा विशेष होनेसे आत्माका गुण है

५ तथा अविप्रतिपत्ति विषयमें प्राप्त है, अर्थ सो दृष्टांत है, सोची जीवाजीवपदार्थोंसे न्यारा नहीं है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ नहीं है क्योंकि अवयवग्रहणेमेंनी आगे इसका ग्रहण हो जावेगा

६ तथा सिद्धांत चार प्रकारका है, १ सर्वतंत्राविरुद्ध सर्व शास्त्रों में अविरुद्ध जैसे स्पर्शनादि इन्द्रिय है, और स्पर्शादि इन्द्रियार्थ है, तथा प्रमाणों करके प्रमेयका ग्रहण होता है, २ समानतंत्रसिद्ध, परतंत्रा सिद्ध, प्रतितंत्रासिद्धांत, जैसे सांख्य मत वालोके असत् आत्म जानको प्राप्त नहीं होता है, और सत्का सर्वथा विनाश नहीं है, तथा ३ जिस को सिद्धिके दूयां औरनी अर्थ अनुपग करके सिद्ध हो जावे, सो अधिकरणसिद्धांत है तथा ४ “अपरीक्षितार्थानुपगमत्वात्तद्विशेषपरीक्षणमन्युपगमसिद्धांत” जैसे किसीने कहा शब्द क्या वस्तु है ? कोइक कहता है शब्द इव्य है, सो शब्द नित्य है ? वा अनित्य है ? इत्यादि विचार यह चार प्रकारका सिद्धांत ज्ञान विशेषसे अतिरिक्त नहीं है, और ज्ञानविशेष आत्माका गुण है गुणोंके ग्रहणसे ग्रहण किया है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ नहीं

४ अथावयवा प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन, यह पांचो अवयवकों जे कर शब्दमात्र मानीये, तब तो पुञ्ज रूप होनेसे अजीव तत्त्वमें ग्रहण कीये हैं जे कर ज्ञानरूप मानीये, तब तो जीव तत्त्वमें ग्रहण कीये हैं, इस वास्ते पृथक् पदार्थ कहना ठीक नहीं, जे

सबधकी प्रतिपत्ति उपमानका अर्थ है, इहानी अन्ययानुपपत्तिके सिद्ध होनेसे उपमानकी अनुमानके अतरजावही है, परंतु पृथग् प्रमाण नहीं जे कर कहोगे कि इहां अन्ययानुपपत्ति नहीं है, तब तो व्यभिचारी हो नेसे उपमान प्रमाणही नहीं है, शाब्दकी सर्व प्रमाण नहीं है, किंतु जो आप्त प्रणीत आगम है, सोइ प्रमाण है, अरु अर्हत बिना दूसरा कोई आप्त नहीं इस बातका निर्णय देखनां होवे, तदा सम्मतितर्क, नदीसिद्धांत, आप्तमीमांसादि शास्त्र देख लेने तथा एक औरकी बात है, कि यह चारों प्रमाण आत्माका ज्ञान है, अरु ज्ञान वस्तुके गुणोंको पृथग् पदार्थ मानियें, तब तो रूपरसादिकोंकी पृथग् पदार्थ मानना चाहिये जे कर कहोगे कि प्रमेयके ग्रहण करके, औ इन्द्रियार्थ होने करके तेनी ग्रहण कीये जाते हैं, यहनी तुमारा कहनां युक्ति युक्त नहीं है, क्योंकि इव्यसे पृथग् गुणोंका अज्ञाव है, इव्यके ग्रहण करनेसे गुणोंका नी ग्रहण सिद्ध है, इस वास्ते पृथग् पदार्थ माननां ठीक नहीं

१ तथा प्रमेयका जेद, १ आत्मा, २ शरीर, ३ इन्द्रिय, ४ अर्थ, ५ बुद्धि, ६ मन, ७ प्रवृत्ति, ८ दोष, ९ प्रेत्यजाव, १० फल, ११ दुख, १२ अपवर्ग तदा १ आत्मा सर्वका देखने वाला अरु जोक्ता है, अरु इच्छा, देष, प्रयत्न, सुख, दुख, ज्ञान, इन करके अनुमेय है, सो तो हमने जीवतत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु २ शरीर जो है, सो आत्माका जोगायतन है, इन्द्रिय जो गोंके साधन हैं, अरु ३-४ इन्द्रियार्थ जोग्य हैं, येनी शरीरादिक जीवाजीव के ग्रहण करके हमने ग्रहण करे हैं, अरु ५ बुद्धि जो है, सो उपयोग रूप ज्ञान विशेष है, सो बुद्धि जीवके ग्रहणहीमें आ गइ, एतावता जीव तत्त्वमेंही ग्रहण हो गइ, अरु ६ सर्व विषय अत करण है, युगपत् ज्ञान का न होनां यह मनका लिंग है, तहां इव्य मन तो पौत्रलिक है, सो अजीव तत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु जावमन जो है सो ज्ञानरूप आत्माका गुण है, सो जीव तत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु ७ आत्माकी इच्छाका नाम प्रवृत्ति है, सो सुख दुखोंके होनेमें कारण है, सो ज्ञानरूप दोषोंसे जीवतत्त्वमें ग्रहण करी है, ८ आत्माके जो अध्यवसाय राग, देष, मोहादि दोष हैं, यह दोषनी जीवके अजिप्राय रूप होनेसे जीवतत्त्वमेंही ग्रहण कीया है, इस वास्ते पृथग् पदार्थ नहीं ए प्रेत्यजाव, पर

है, अरु हेतु तो किसी माध्यवस्तुमें हेतु है, दूसरे साध्यमें अहेतु है, इस वास्ते नियतस्वरूप वाला नहीं

१४-१५-१६ तथा ठल, जाति, निग्रहस्थान, यह तीनो पदार्थ नहीं क्योंकि यह तीनोही वास्तवमें कपटरूप हैं, जिनोने इनको तत्त्व करके कथन करे हे, उनके ज्ञान, वैराग्यका क्या कहना है ? इस ससारमें जो चोरी, उगी, हथफेरी प्रमुख सिखावे, तिसकोही तत्त्वज्ञानका उपदेशक मानना चाहिये ? यह नैयायिकमतके सोला पदार्थोंका खमन कीया, जे कर विशेष करके देखना होवे, तो न्यायकुमुदचक्षु देख लेनां यह खमन, सूत्ररुताग सिद्धांतसें लिखा है, जे कर विशेष देखनां होवे, तब बारहवा अध्ययन देख लेनां ॥ इति नैयायिक दर्शन खमन सपूर्णम् ॥

अथ वैशेषिक मत खमन लिखते हैं वैशेषिकोंके कहे दूये तत्त्वजी तत्त्व नहीं है, सोइ दीखाते हैं १ इव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, इनोने यह ठ तत्त्व माना है तहां १ पृथिवी, २ अग्नि, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिक्, ८ आत्मा, ९ मन, यह नव इव्य हैं तिनमें पृथिवी, अग्नि, तेज, अरु वायु, इन चारोंकों निम्न निम्न इव्य माननेसें ठीक नहीं क्योंकि परमाणु जो हैं, सो प्रयोग विश्रुता करके पृथिवी आदिकोंके रूपपणे परिणमतेनी हैं, तोही अपणे इव्य पणेकों नहीं त्यागते है, अरु अति प्रसंग होनेसें अवस्था नेद करके इव्यका नेद मानना युक्त नहीं हैं, अरु आकाश, तथा कालकों तो हमनेही इव्य माना है, अरु विशा जो है, सो आकाश का अवयवजुत है, इस वास्ते पृथग् इव्य नहीं अरु आत्मा शरीर मात्र व्यापी उपयोग लक्षण तिसकों हमनी इव्य मानते हैं, अरु इव्य मन जो है, सो पुञ्जइव्यके अतर्भाव है, तथा जावमन जो है, सो जीवका गुण होनेसें आत्माके अतर्भाव है, यद्यपि वैशेषिक कहते हैं, कि जैसे पृथिवीत्वके योगसें पृथिवी है, यद्वनी उनका कहनां स्वप्रक्रिया मात्र है, क्योंकि पृथिवीसें अन्य दूसरा कोइ पृथिवीपणा नहीं है, जिसके योगसें पृथिवी होवे, अपि तु सर्वही जो कुछ है, सो सामान्य विशेषात्मक है, न रसिद्धाकारवत् उनयस्वभाव है

तथा चोक्त ॥ श्लोक ॥ नान्वय सहि नेदत्वाच्च, नेदोन्वयवृत्तित ॥ ८

कर ज्ञान विशेषको पृथक् पदार्थ मानीयें, तब तो पदार्थ बहुत हो जावेंगे, क्योंकि ज्ञानविशेष अनेक प्रकारके हैं.

८ सशयसे उपरि जवितव्यता प्रत्ययरूप सदर्थपर्यालोचनात्मक तिसको तर्क कहते हैं, जैसे कि यह स्थाणु अथवा पुरुष जरूर होवेगा, यहही ज्ञान विशेषही है, ज्ञानविशेष जो है, सो ज्ञातासे अजिज्ञ है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ कल्पना ठीक नहीं

९ सशय अरु तर्कसेती उत्तर काल जावी निश्चयात्मक थैसा जो ज्ञान, तिसका नाम निर्णय है, यहही ज्ञानविशेष है, अरु निश्चयरूप हो एसे प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके अतर्जाव होनेसे पृथक् पदार्थ कल्पना ठीक नहीं

१०-११-१२ तथा वाद, जल्प, वित्तमा, तदा प्रमाण तर्क साधन उपायज सिद्धांत अविरोध पचायय करके समुक्त पक्ष प्रतिपक्षका जो ग्रहण करणा, तिसका नाम वाद है सो वादतत्त्व ज्ञानके वास्ते शिष्य अरु आचार्यका होता है, अरु सोइ वाद जिसको जीतना होवे, तिसके साथ ठज, जाति, निग्रह स्थान करके साधनोपलज, सो जल्प है, तथा सो वादही प्रतिपक्ष स्थापना करकेही वित्तमा है, यह वाद, जल्प, वित्तमा, इन तीनोंका जेद ही नहीं हो सक्ता है, क्योंकि तत्त्वचिन्ताविषे तत्त्वके निर्णयार्थ वाद करना चाहिये, परंतु ठज जाति आदिक करके तत्त्वका निश्चय नहीं होता है, क्योंकि ठजादिक जो हैं, सो परके वचने वास्ते करिये हैं, तिनसे तत्त्व निर्णयकी प्राप्ति नहीं होती है, जे कर इनका जेदही मानोगे, तोही ये पदार्थ नहीं हो सक्ते हैं, क्योंकि जो परमार्थसे वस्तु है, सोइ पदार्थ है अरु वाद जो है, सो पुरुषकी इच्छाके अधीन है, नियतरूप नहीं है इस वास्ते पदार्थ नहीं, तथा एक औरही बात है, कि कुकड़, जाल, मीठे, इनके वादमेंही पक्ष प्रतिपक्ष ग्रहण करते हैं, तिनोकोही तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होनी चाहिये, परंतु यह तुम नहीं मानते हो, इस वास्ते वाद पदार्थ नहीं है

१३ तथा १ असिद्ध, २ अनेकांतिक, ३ विरोध, यह तीनों हेत्वाज्ञास हैं हेतु तो नहीं, परंतु हेतुकी तरें जासन होते हैं, इस वास्ते हेत्वाज्ञास कहते हैं जब सम्यक् हेतुवोकीही तत्त्वव्यवस्थिति नहीं, तो हेत्वाज्ञासों का तो क्याही कहना है ? क्योंकि जो नियत स्वरूप करके रहे, सो वस्तु



किसी सत्ताके यागसे है ? वा स्वरूप करके है ? जे कर कहोगे कि और सत्ताके योगसे है, तब तो तिस सत्तामें सत् प्रत्यय, और सत्ताके योगसे होना चाहिये ? ऐसे करता अनवस्था दूषण आता है, अरु जे कर कहोगे कि स्वरूप करके सत् है, तब तो इव्यादिकनी स्वरूप करके सत् हैं, तब तो अजाके गलेके स्तनोकी तरे नि फल सत्ताके कल्पनेसे क्या प्रयोजन है ? एक औरनी बात है कि इव्यादिक जो हैं, सो सत्ताके योग होनेसे सत् कहे जाते हैं ? अथवा सत्ताके संबंध विनाही सत् स्वरूप है ? जे कर कहोगे कि स्वत ही सत् स्वरूप हैं, तब तो सत्ताकी कल्पना करनी व्यर्थ है, जे कर कहोगे कि सत्ताके योगसे सत् है, तब तो शशविपाणनी सत्ताके योगसे सत् होना चाहिये ॥ तथा चोक्त ॥ श्लोक ॥ स्वतोऽर्था सतु सत्ताव, त्सत्तया किं सदात्मनां ॥ असदात्मसु नैपास्या, त्सर्वथा ति प्रसगत ॥ १ ॥ इत्यादि येही दूषण तुल्य योग क्लेम होनेसे अपर सामान्यमेंनी जोड़ लेने तथा हमनी सामान्य विशेष रूप होनेसे वस्तुकों कथंचित् सामान्यरूप मानतेही हैं, इस वास्ते इव्यके ग्रहण करनेसे सामान्यकानी ग्रहण हो गया, इस हेतुसे सामान्य जो है, सो कुछ इव्यसे पृथक् पदार्थ नहीं

५ अथ विशेष जो है, सो अत्यंत व्यावृत्ति बुद्धिके हेतु होने करके वैशेषिकोंने माने हैं तदा यह विचार करते हैं कि तिन विशेषों जो विशेष बुद्धि है, सो अपर विशेषों करके है ? वा स्वत ही स्वरूप करके है ? अपर विशेष हेतुक तो नहीं है, अनवस्था अरु विशेषमें विशेषका अंगीकार नहीं है, जे कर कहोगे कि स्वत ही विशेष बुद्धिके हेतु हैं, तब तो इव्यादिकनी स्वत ही विशेष बुद्धिके हेतु है, तो फेर विशेषोंको इव्यसे अतिरिक्त पदार्थ कल्पने व्यर्थ हैं अरु इव्योंसे अव्यतिरिक्त विशेषोंको सर्व वस्तुओंको सामान्य विशेषात्मक होनेसे हमनी मानते हैं

६ अरु समवाय जो है, सो अशुत सिद्ध आधार आधेय नूतोंका जो इह प्रत्ययका हेतु है, सो समवाय कहते हैं, अरु समवाय जो है, सो नित्य अरु एक है, ऐसे वैशेषिक मानते हैं तिस समवायके नित्य होनेसे समवायीनी नित्य होने चाहिये जे कर समवायी अनित्य हैं, तो समवायी अनित्य होना चाहिये ? क्योंकि समवायका आधार समवायी है, इस

जेद ष्यससर्ग, वृत्तिजात्यतरं घट ॥ १ ॥ इसका जावार्थ—घट जो है तिसमें मृत्तिकाका अन्वय नहीं है, पृथु बुध्र उदराकारादिकों करके इस हेतुसे जेद है, अरु अन्वयवर्त्ति होनेसे घटका मृत्तिकासे एकांत जेदनी नहीं है, एतावता घट मृत्तिका रूपही है, अन्वय व्यतिरेक दोनोंके मिलने से घडा जो है, सो जात्यतर रूप है, एतावता मृत्तिकासे कथञ्चित् जेदा जेद रूप है ॥ तथा ॥ श्लोक ॥ न नर सिद्धरूपत्वा, न्नसिद्धो नररूपत ॥ शब्दविद्वानकार्याणां, जेदो जात्यतर हि स ॥ १ ॥ जावार्थ—सिद्धरूप होनेसे नर नहीं है, अरु नररूप होनेसे सिद्धनी नहीं है, तो क्या है, १ शब्द, २ विज्ञान, ३ कार्य, इनके जेद होनेसे नरसिद्ध जो है सो तीसरी जाति है

१ अथ रूप, रस, गंध, स्पर्श, रूपी इव्यमें इनकी प्रवृत्ति है अरु विशेष गुण है, तथा १ सख्या, २ परिमाण, ३ पृथक्त्व, ४ सयोग, ५ विजाग, ६ परत्व, ७ अपरत्व, ये सामान्य गुण हैं, इनकी सर्व इव्यमें वृत्ति है तथा १ बुद्धि, २ सुख, ३ दुःख, ४ इच्छा, ५ द्वेष, ६ प्रयत्न, ७ धर्म, ८ अधर्म, ९ सस्कार, ये आत्माके गुण हैं तथा गुरुत्व, पृथिवी पाणीमें है, इव्यत्व पृथिवी, जल, अरु अग्निमें है, स्नेह जलमेंही है, वेग नाम सस्कार ये मूर्त्त इव्योंमें हैं, अरु शब्द आकाशका गुण है, तिनमें सख्या विक सामान्य गुण रूपादिवत् इव्यस्वभाव होने करके, अरु परोपाधिसं गुणही नहीं है, क्योंकि जब गुण, इव्यसें पृथक् हो जावेंगे, तब इव्यके स्वरूपकी हानी हो जावेगी, “गुणपर्यायवद्भव्य” इस कहने करके गुण जो है, सो इव्यसें न्यारे नहीं हैं, इव्यके ग्रहणहीसे गुणका ग्रहण न्याय है, परंतु पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है, अरु शब्द जो है, सो आकाशका गुण नहीं है, क्योंकि यह तो पौजलिक है, अरु आकाश तो अमूर्त्त है, अरु शेष जो वैशेषिकने कहा है सो प्रक्रियामात्र है, साधन दूषणोंका अंग नहीं हैं

३ अरु कर्मनी गुणवत् पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है

४ अथ सामान्य दो प्रकारके हैं, एक पर, दूसरा अपर तिनमें पर सामान्य महासत्ता नाम है, इव्यादि तीन पदार्थोंमें व्यापी हैं, अरु जो अपर है, सो इव्यत्व गुणत्व कर्मत्वाविक है, तिनमें महासत्ताकों पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है क्योंकि सत्तामें जो सत् यह प्रत्यय है, सो और

सकते हैं, तथा महदादि विकारके होनेमें प्रकृतिमें विषमता उत्पन्न करनेमें कोइनी कारण नहीं है, क्योंकि प्रकृतिके बिना और वस्तु, सांख्य कोइ मानते नहीं है, अरु आत्माको अकर्ता अकिंचित् कर मानते है, जे कर स्वभावसे वैषम्य मानेंगे, तब निर्हेतुकताकि आपत्ति होवेगी, क्योंकि जो कार्य कनी होवे, अरु कनी न होवे, वो हेतुके बिना नहीं हो सकता है, अरु जो खरशृंगादि नित्य असत् हैं, तथा आकाशादिनित्य सत् हैं, सो हेतुसें नहीं होते हैं ॥ उक्तंच ॥ श्लोक ॥ नित्यसत्त्वमसत्त्व वा, हेतोरन्यानपेक्षणात् ॥ अपेक्षा तोहि जावाना, कदाचित्तत्त्वसन्व ॥ १ ॥

तथा स्वभाव प्रकृतिसें निन्न है ? वा अनिन्न है ? निन्नतो नहीं क्योंकि प्रकृति बिना सांख्योंने अपर कोइ वस्तु मानी नहीं है, जे कर कहोगे कि अनिन्न है, तब तो प्रकृति है “नतुस्वभाव” (स्वभाव नहीं है)

तथा एक औरनी बात है कि महत् अरु अहंकार ज्ञानसें निन्न हम नहीं देखते हैं, सोइ दिखावते हैं, कि बुद्धि जो है सो अध्यवसायमात्र है, अरु अहंकार जो है सो अहं सुखी, अहं दुःखी, ऐसें स्वरूप वाला है, इन दोनोंको चिडूप होनेसें आत्माका गुणत्व पणा है, परंतु जडरूप प्रकृतिका विकार नहीं

तथा यह जो तन्मात्रोंसें नूतोंकी उत्पत्ति मानते है, कि जैसें १ गंध तन्मात्रात् पृथिवी, २ रसतन्मात्रासें जल, ३ रूप तन्मात्रासें अग्नि, स्पर्श तन्मात्रासें वायु, ५ शब्दतन्मात्रासें आकाश, यहनी माननां युक्ति नहीं है, जे कर बाह्यनूतकी अपेक्षा करके कहते हो सो अयुक्त है, इन बाह्य पांच नूतोंके सदाही होनेसे उत्पत्ति नहीं “न कदाचिदनीदृश जगत् इति वचनात्” अर्थात् यह जगत् प्रवाह करके अनादि कालसें ऐसाही चला आता है

जे कर कहोगेकि प्रति शरीरकी अपेक्षा हम कहते है, तिनमेंसू त्वचा, द्वादह, कवीन लक्षणा पृथिवी है श्लेष्म, रुधिर इव लक्षण आप (जल) है पक्ति लक्षण अग्नि है, पानापान लक्षण वायु है, शृण्विर अर्थात् पोलाह लक्षण आकाश है, यहनी कदनां ठीक नहीं है, क्योंकि तिनमेंनी कितने शरीरोंकी उत्पत्ति पिताका शुक्र, अरु माताके रुधिरसें होती है, तहां तन्मात्राओंकी गंधनी नहीं है, अरु अदृष्ट वस्तुको कारण कल्पनेमें अति प्रसंग

वास्ते तथा समवायके एक होनेसे समवायीजी एकही होने चाहियें, अथवा समवायीयोके अनेक होनेसे समवायजी अनेक रूप होना चाहियें, तथा यह जो समवाय पदार्थोंका समवायी संग्रह करता है, सो समवाय उन पदार्थोंके साथ थपणा सबध थपर समवायके योगसँ करता है ? किंवा थापही थपणा संग्रह करता है ? जे कर कहोगे कि थपर समवायसे करता है, तब तो अनवस्थादूषण है थरु समवायजी दूसरा है नही, जे कर कहोगे कि थापही थापणा सबध करता है, तब तो गुण क्रियादिकनी इव्यसँ स्वरूप करके तथा अविष्वगजाव सबध करके सबधी है, तब तो समवायजी कल्पना व्यर्थही है

अैसे वैशेषिक मतमेंनी सम्यक् पदार्थोंका कथन आप्तोक्त नहीं, तथा नैयायिक वैशेषिक मतमें जो मोक्ष मानी है, सोनी प्रेक्षावानोंको मानने योग्य नहीं है, क्योंकि जब आत्मा ज्ञानसे रहित होवे, एतावता जडरूप हो जावे, तब आत्माको मोक्ष मानते है, ऐसी मोक्षको कौन बुद्धिमान उपादेय मानता है ? क्योंकि ऐसा कौन बुद्धिमान है, जो सर्व सुख और ज्ञानसँ रहित पापाण तुल्य आपणी आत्माको करना चाहे ? इसी वास्तेकितीने वैशेषिकोंका उपादास्यनी करा है, सो कहते हैं ॥ श्लोक ॥ वरवृदावने रम्ये, क्रोष्ट्वमनिवांढति ॥ नतु वैशेषिकीं मुक्तिं, गौतमोगतुमिच्छति ॥ १ ॥ अथार्थ—स्वर्गके जो सुख हैं, सो सोपाधिक, सावधिक, परिमितआनंद रूप हैं, अरु मोक्ष जो है, सो नैरुपाधिक, नैरवधिक, अपरमितानंद ज्ञानसुख स्वरूप, विचक्षण पुरुष कहते है, जब मोक्ष होना पापाण के तुल्य है, तब तो ऐसी मोक्षसँ कुछ प्रयोजन नहीं इस्सेतो सत्सारही अज्ञा है कि जिस सत्सारमें दुख करके कलुषित सुख जोगनमें आता है, जरा विचार तो करो, कि थोड़े सुखका जोगना अज्ञा है ? वा सर्व सुखों का उद्भेद अज्ञा है ? इत्यादि विशेष चर्चा स्यादावमजरीकी टोकासँ जाननी इस वास्ते नैयायिक मत, अरु वैशेषिक मत उपादेय नहीं है ॥ इति ॥

अथ सांख्य मतका खमन लिखते है सांख्य मतका स्वरूप तो उपरलिखा है, सो जान लेना, सांख्यका मत ठीक नहीं हैं, क्योंकि परस्पर विरोधी सत्त्व, रजो, तम, गुणोंका प्रकृति रूपोंका गुणीके बिना एकत्र अवस्थान अर्थात् रहणं युक्त नहीं है, जैसें कृष्ण श्वेतादि गुण गुण विना एकत्र नहीं रह

पूर्वपक्ष - सृष्टिसे पहिला आत्माकों दिदृक्षा नई, तब तिस दिदृक्षाके व शसे प्रधानके साथ आपणा एकरूप देखने लगा, तब ससारो हो गया, अरु जब प्रकृतिका छुटपणा विचारमें आया, तब प्रकृतिसे वैराग्य हुआ, फेर प्रकृतिविषे दिदृक्षा नहीं तब ससारजी नहीं

उत्तरपक्ष - यहजी तुमारा कहना स्वकृतात विरोध होनेसें अयुक्त है, सोई दिखाते है दिदृक्षा सो देखनेकी अनिलापाका नाम है, सो अनिलापा पूर्व देखे हूये पदार्थोंमें तथा स्मरणसे होता है, अरु प्रकृति तो पूर्वे कदापि देखी नहीं है, तब कैसे तिस विषे स्मरण अनिलापा होवे ? जे कर कहो गेकि अनादि वासनाके वशसे प्रकृतिमेंही स्मरण अनिलापा है, सोनी अ सत् है, क्योंकि वासनानी प्रकृतिका विकार होने करके प्रकृतिके पहिला नहीं थी, जे कर कहोगेकि वासना जो है, सो आत्माका स्वभावरूप है, तब तो आत्मस्वरूपवत् वासनाका कदापि अभाव नहीं होवेगा, अरु मोहजी कदापि नहि होवेगी, तब तो सांख्यका मतजी बालकोंका खेल जैसा हो गया ॥ इति सांख्यमत खमन समाप्तम् ॥

अथ मीमांसक मतका खमन लिख्यते ॥ इत मतका स्वरूप उपर लिख आये हैं, अरु वेदांतियोंके ब्रह्म ( अद्वैत )का खमन ईश्वर वादमें अड़ी तरेसें कर चुके है इस वास्ते यहां नहीं लिखा इति मीमांसक मत ॥

अथ जैमिनीयमतका खमन लिखते है जैमिनीया ऐसें कहते है, कि जो "हिंसागार्ह्यात्" अर्थात् इन्द्रियोंके रस वास्ते अथवा कुब्यसन करके करिये सोई हिंसा अधर्मका हेतु है, प्रमादके उदय करनेसें जोनिक लुब्धकादिकोंकी तरें अरु वेदोंमें जो हिंसा कही है, सो हिंसा नहीं है, किंतु धर्मका हेतु है, देवता, अतिथि, पितरोंके प्रीतिसपादक हो नेसें तथाविध पूजा उपचारवत् अरु यह प्रीति सपादकत्व असिद्ध नहीं है, क्योंकि कारीरी प्रकृति यज्ञोंके स्वसाध्य विषे वृष्ट्यादि फलोका जो अ व्यञ्जिचारी पणा है, सो यह करनेसें जो देवता तृप्त होते है, वो वृष्ट्या दिकोंके हेतु हैं, ऐसेही "त्रिपुरार्णववर्णित ऋगल" अर्थात् बकरेके मां सका होम करनेसें परराष्ट्रका जो वश दोनों है, सोनी उस मांसकी आहु तीर्थोंसे तृप्त हूये होय देवताओंकाही अनुभाव है, अरु अतिथि प्रीतिजो "मधुसर्पकसस्कारादिसमाखादजा" प्रत्यक्षही दीख पड़ता है, अरु पित

दूषण है, अरु अमज, उज्जिह्व, अंकुरादिकोंकीजी उत्पत्ति अपरही वस्तुसे होती दीख पड़ती है, इस वास्ते महदहकारादिकोंकी उत्पत्ति जो सांख्यों ने अपनी प्रक्रिया करके मानी है, सो युक्ति रहित मानी है, केवल अपने मतके रागसेही यह मानना है, अरु आत्माको अकर्ता माने है, तब तो ठतनाश अकृतान्यागम दूषण है, अरु वध मोक्षका अज्ञाव है, अरु निर्गुण होनेसे आत्मा ज्ञानशून्य हो जावेगी, इस वास्ते यह सर्व पूर्वोक्त बालप्रलापमात्र है

अथ सांख्यमतकी मोक्ष विचारिये हैं, “ प्रकृतिपुरुषांतरपरिज्ञानात् मुक्ति ” अर्थात् प्रकृति पुरुषसे अन्य है, असा जब ज्ञान होता है, तब मुक्ति होती है सोइ दिखाते हैं ॥ श्लोक ॥ शुद्धचैतन्यरूपोऽयं, पुरुष पुरुषार्थतः ॥ प्रकृत्यंतरमहात्मा, मोक्षात्ससारमाश्रितः ॥ १ ॥ जावार्थ - पुरुष जो है, सो परमार्थसे शुद्ध चैतन्यरूप है, अणु आणु प्रकृति से एकमेक समझता है, इस मोक्षसे ससारको आश्रित हो रहा है, तिस हेतुसे प्रकृतिसुखादि स्वभावसे जहां जगि विवेक करके न ग्रहण करेगा, तहां जगि मुक्ति नहीं अरु केवल ज्ञानके उदय होनेसे मुक्ति है, यद्विज्ञा अस्त है, क्योंकि आत्मा एकांत नित्य है, अरु सुखादिक जो हैं, सो अत्पाद व्यय स्वभाव वाले हैं, तब तो विरुद्ध धर्म सत्तर्गसे आत्मासेती प्रकृतिका भेद प्रतीतही है, तो फेर मुक्ति क्यों नहीं ?

अथ यही तो ससारी विचार नहीं करता है, इस वास्ते मुक्ति नहीं जे कर ऐसे कहोगे तब तो तुमारे कहनेसे कदापि मुक्ति नहीं होवेगी, असा विवेकाध्यवसाय ससारीको कदापि नहीं हो सका है, सोइ दिखाते हैं जहां जग ससारी है, तहां जग विवेक परिजावना करके ससारी पणा दूर नहीं होता है, इस वास्ते विवेकाध्यवसायके अज्ञावसे कदापि ससारसे बूढ़ना नहीं है

एक औरजी बात है, कि इस सृष्टिके पद्विला केवल आत्मा है, ऐसे तुम मानते हो, तब फेर आत्माको ससार कहांसे लिपट गया ? जे कर कहोगे कि निर्मल आत्माको संसार लिपट जाता है, तब तो मोक्ष दूआ पीछे फेरजी ससार लिपट जायगा, तब तो मोक्षजी क्या दूह, एक विमल ना खनी हो गई

है ? अरु जे कर हिंसा है, तो धर्मका हेतु क्यों कर हो सकी है ? ॥ श्लोक ॥  
श्रूयतां धर्मसर्वस्व, श्रुत्वा चैवावधार्यतां ॥ आत्मन प्रतिकूलानि, परेषा न  
समाचरेत् ॥ १ ॥ इत्यादिक जे धर्म कहे हैं, तो हिंसा क्यों कर है ? क्यों  
के माताजी है, अरु बध्याजी है, ऐसा कनी नहीं होता है

पूर्वपक्ष — हिंसा कारण है, अरु धर्म तिसका कार्य है

उत्तरपक्ष — यहजी तुमारा कहनां असत् है, क्योंकि जो जिसके साथ  
अन्वय व्यतिरेक वाला होता है, सो तिसका कार्य होता है, जैसें मृ  
त्पिमादिकोंका घटादिक कार्य है, तो कुछ धर्म हिंसाही करनेसें नहीं होता  
है, क्योंकि तप, दान, पढ़नादिकनी धर्मके कारण हैं

पूर्वपक्ष — हम सामान्य हिंसाकों धर्म नहीं कहते हैं, किंतु विशिष्ट हिं  
साकों धर्म कहते हैं, सो विशिष्ट हिंसा वोही है, जो वेदोंमें करनी कही है

उत्तरपक्ष — जे कर वेदकी हिंसा धर्मका हेतु है, तो क्या जो जीव य  
ज्ञादिकोंमें मारे जाते हैं, वो मरते नहीं है ? इस वास्ते धर्म है ? अथ  
वा क्या उनके मरणोंमें उनको आर्त्तध्यानका अज्ञाव है, इस वास्ते धर्म  
है ? अथवा जो यज्ञादिकोंमें मारे जाते हैं, वो मरके स्वर्गकों जाते हैं ? इ  
स वास्ते धर्म है ? इसमें आद्य पक्ष तो ठीक नहीं, क्योंकि प्राण त्यागते  
हूये तो वो जीव प्रत्यक्ष दीख पड़ते हैं तथा दूसरा पक्षजी असत् है,  
क्योंकि दूसरेके मनका ध्यान ऊर्लक्ष है, इस वास्ते आर्त्तध्यानका अज्ञाव  
कहना, यहजी परमार्थ शून्य वचनमात्र है, आर्त्तध्यानका अज्ञाव तो  
क्या होना था ? बलिक हा डूखी है ? है कोऽ करुणारस जरा जो हमको  
बुड़ावे ? ऐसा अपनी जाषामें कहते हूये अरु अपनी जाषा करके विरस  
अरराट करता हुआ बदन वैश्य, नयन तरलादिक लिंग देखनेसें स्पष्ट उन  
विचारोंके आर्त्तध्यान उपलब्ध होता है

पूर्वपक्ष — जैसें लोहेका गोला पानीमें डूबनें वालाजी है, तोनी तिस  
के सूक्ष्म पत्र कर दीये जाय तो जलके उपर तरेंगे, परंतु डूबेंगे नहीं, त  
था विष जो है सो मारणे वालाजी है, तोनी मत्रो करके सस्कार करा हू  
आ गुण करता है, तथा जैसे अग्नि दाहक स्वभाव वालाजी है, तोनी स  
त्य शीलादिकके प्रभावसें दाह नहीं करता है ऐसेंही वेद मंत्रादिकों कर  
के सस्कार करी दुःख जो हिंसा सो दोषका कारण नहीं, अरु वैदिकी हिं

रोके ताड़ जो आद करते है, उस करके पितर तृप्त हुवे होयें, ससंता नकी वृद्धि प्रत्यक्षही करते दीखते है, अरु इस बातम आगमनी प्रमाण देता है, आगममें देव प्रीत्यर्थ अश्वमेध, नरमेध, गोमेधादिक करणे कहे है, अरु अतिथि विषय “महोक्ष वा महाज वा, श्रोत्रियाय प्रकल्पयेदिति” अैसा कहा है, अरु पितरोकी प्रीति वास्ते यह श्लोक है ॥ श्लोक ॥  
 द्वा मासौ मत्स्यमांसेन, त्रीन् मासान् हरिणेन तु ॥ और त्रेणाय चतुर, सा कुनेनेह पच तु ॥ १ ॥ पण्मासं घागमांसेन, पार्षतेनेह सप्त वै ॥ अष्टावे णस्य मांसेन, रौरवेण नवैव तु ॥ २ ॥ दशमासास्तु तृप्यति, वराहमहिषामिषै ॥ शशकूर्मयोन्मीसेन, मासानेकादशैव तु ॥ ३ ॥ सवत्सर तु गव्येन, पयसा पायसेन तु ॥ बाध्रीणेशस्य मांसेन, तृप्तिर्द्वादशवार्षिकी ॥ ४ ॥ यह श्लोक स्मृतिके है, इनका अर्थ कहते हैं

जे कर पितरोंको मत्स्यका मांस देवे, तो पितर दो मास लग तृप्त रहते हैं, जे कर हरिणका मांस पितरोंको देवे, तो पितर तीन मास लग तृप्त रहते हैं जे कर मीढिका मांस पितरोंको देवे, तब चार मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर जगली कूकडका मांस पितरोंको देवे, तो पितर पांच मास तृप्त रहते हैं ॥ १ ॥ जे कर वकरेका मांस देवे, तो पितर छमास लग तृप्त रहते हैं, जे कर छपतविंछ करके युक्त जो हरिण होवे, उसको पार्षत कहते हैं, तिसका मांस जो पितरोंको देवे, तो पितर सात मास लग तृप्त रहते हैं, जे कर एण मृगका मांस देवे, तो आठ मास लग पितर, तृप्त रहते है, जे कर बडे काले मृगका मांस देवे, तो नव मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर खुर अरु मदिषका मांस देवे, तो दश मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर शश अरु कछु, इन दोनोंके मांस देवे, तो अग्यारह मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर गौका दूध अथवा खीर देवे, तो बारह मास लग पितर तृप्त रहते हैं, तथा बाध्रीण कहते हैं जो अति बूढा बकरा होवे तिसका मांस देवे, तो बार वर्ष लग पितर तृप्त रहते हैं, यह मीमांसक मानते हैं

अब इसका खंमन लिखते हैं कि हे मीमांसक ! वेदोंमें जो हिंसा कही है, सो धर्मका हेतु कदापि नहीं हो सकती है, इस तुमारे कहनेमें प्रगट स्ववचनविरोध है, तथादि जे कर धर्मका हेतु है, तब तो हिंसा क्यों कर



सेही जिनप्रतिमा देखनेसेंजी श्रीजिनेश्वर देवके स्वरूपका ज्ञान होता है, जे कर कहोगेकि प्रतिमा तो कारीगरने पापाणकी बनाइ है, इससें क्या ज्ञान होता है ? तो हम पूछते हैं कि वेद, कुरान, इजीज, प्रमुख पुस्तक लिखा रीयोंने स्याही, और कागजोंके बनाये है, इनसें क्या ज्ञान होता है ? जे कर कहोगेकि ज्ञान तो हमारी समझसें होता है, अक्षरोंकी स्थापना तो हमारे ज्ञानका निमित्त है, तैसेही जिनेश्वरदेवका ज्ञान तो हमारी समझ से होता है परंतु उस स्वरूपका निमित्त प्रतिमा है. क्योंकि जो बुद्धिमान् पुरुष, किसी वस्तुका नकशा नहीं देखेगा, अर्थात् चित्र नहीं देखेगा, वो कभी उस वस्तुका स्वरूप नहीं जान सकेगा ? इस वास्ते जो बुद्धिमान् है, वो अवश्य स्थापना मानता है

जे कर कहोगेकि परमेश्वर तो निराकार, ज्योति स्वरूप, सर्व व्यापक है, तिसकी मूर्ति क्योंकर बन सकती है ?

उत्तर—यह तुमारा कहनां बड़े उपहास्यका कारण है, क्योंकि जब तु मने परमेश्वरका रूप आकार ( मूर्ति ) नहीं मानी, तब तो वेद, वा इजीज, वा कुरान, इनको परमेश्वरका वचन माननां क्यों कर सत्य हो सकेगा ? बिना मुखके साक्षर शब्द कदापि नहीं हो सक्ता है

जे कर कहोगेकि ईश्वर, बिनाही मुखके शब्द कर सक्ता है, तो इस बात कहनेमें कोइ प्रमाण नही इस वास्ते जो साक्षर शब्द है, सो बिना मुखके नहीं, और शरीरके बिना, मुख नहीं हो सक्ता है, इस वास्ते जो कोइ वादी किसी पुस्तकको ईश्वरका वचन मानेगा, वा जरूर ईश्वरका मुख और शरीरजी मानेगा, और जब शरीर माना, तब नगवानकी प्रतिमाजी जरूर माननी पड़ेगी, जब प्रतिमा सिद्ध हो गई, तब मंदिरजी जरूर बनानां पड़ेगा, इस वास्ते जिनमंदिरका बनानां जो है, सो आवश्यक है, और जो बनाने वाला है, सो यत्न पूर्वक बनाता है, और पृथिवी कायादिक के जो जीव हैं, सो अस्पष्ट चैतन्य हैं उनकी हिसामें अल्प पाप और बहुत निर्झरा है, और तुमारे पक्षमें तो भ्रुति, स्मृति, पुराण, इतिहास प्रमुखोंमें यम नियमादिकों करकेजी स्वर्गकों दोनों कहा है, तो फेर रुपण, दीन, अनाथ, ऐसे पंचेंद्रिय जीवोंका वध काहेकों यज्ञमें करते हो ? इससें यही सिद्ध होता है कि जो तुम निरपराध, रुपण, दीन, अनाथ,

सा निंदनीय कनी नहीं है, क्योंकि तिस हिंसाके करने वाले याज्ञिक ब्राह्मणोंको जगतमें पूजनिक देखते हैं

उत्तरपक्ष—यहनी तुमारा कहनां थसत् है, क्योंकि जितने दृष्टांत तुम ने कहे हैं, सो सर्व वैपम्य है इस वास्ते सिद्धि कुवनी नहीं कर सके हैं, लोहेका जो पिम, पत्रादि रूप होनेसे जलके उपरि तरता है, सो प रिणामांतर होनेसे तरता है, परंतु वेद मंत्रोंसे सस्कार करके जब पशुको मारते हैं, तब उसमें क्या परिणामांतर होता है ? क्या उस परिणामांतर से उन पशुओंको मारते ड ख नहीं होता है ? ड ख करके तो वे प्रगट अर राट शब्द करते हैं, तो फेर लोह पत्रका दृष्टांत कैसे समीचीन हो सका है ?

पूर्वपक्ष—जो पशु यज्ञमें मारे जाते हैं, वो सर्व देवता हो जाते हैं, य ह यज्ञ करनेमें परोपकार है

उत्तरपक्ष—इस बातमें कौनसा प्रमाण है ? तिसमें प्रत्यक्ष प्रमाण तो नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष तो इडिय सबध वर्त्तमान वस्तुकाही आहक है, “सबधोवर्त्तमान च, गृह्यते चक्षुरादिनेति वचनात्” अरु अनुमानजी नहीं है, क्योंकि तत्प्रतिवदलिग कोइजी नहीं दीखता है, अरु आगम प्र माणजी नहीं क्योंकि आगम तो जगडेका घर है, इस वास्ते सिद्ध दूआ नहीं है तथा अर्थापत्ति अरु अनुमान यह दोनो अनुमानकेही अत र्गत है, तो अनुमानके खमनेसे यहनी दोनु खमन हो गये

पूर्वपक्ष—जैसे तुम जिनमदिर बनाते दूये पृथिवीकायादि जीवोंकी हिं साको परिणाम विशेष करके पुण्यके तांइ कल्पते हो, ऐसे हमनी यज्ञमें जो हिंसा करते हैं, सो पुण्यके वास्ते है, क्योंकि वेदोक्त विधि विधान रू प परिणाम विशेष इहांजी नि सवेह होनेसे पुण्य क्यों कर नहीं होता ?

उत्तरपक्ष—परिणाम विशेषजी वेही पुण्यका कारण होते हैं, जहां और कोइ उपाय न होवे, अरु यत्नसे प्रवृत्त होवे, ऐसी प्रवृत्ति जिनमदिरमें हो सकी है, क्योंकि जिनमदिरके बिना श्रीनगवान्की प्रतिमा रहती नहीं जहां प्रतिमा रहेगी उसीका नाम जिनमदिर है, जे कर कहोगे कि जिनप्र तिमा पूजनेसे क्या जान है ? तो हम तुमकू पूबते हैं कि जा पुस्तकमें क कारावि अक्षर लिखते हो, इनके लिखनेसे क्या जान है ? जे कर कहोगे कि ककारावि अक्षरोंकी स्थापना देखनेसे वस्तुका ज्ञान होता है, तो तै

**पूर्वपक्ष -** हम नि केवल प्रदान मात्रही पशुवध क्रियाका फल नहीं करते है, किंतु नूत्यादिक अर्थात् लक्ष्मी आदिनी होती है, यदाह श्रुति “श्वेतवायव्यामजमालानेत् नूतिकामइत्यादि” जावार्थ -श्वेतवर्णका जि सका वायु देवता स्वामी है ऐसे बकरेको आलानेत् हिंसेत् अर्थात् मारे कौन मारे ? लक्ष्मीका कामी मारे

**उत्तरपक्ष -** यहनी तुमारा कहनां व्यभिचार पिशाच करी ग्रस्त होनेसें अ प्रामाणिक है, क्योंकि नूति जो है, सो अन्य उपाय करकेनी साध्यमान है

**पूर्वपक्ष -** तहां यज्ञमें जो ऋगादिक मारे जाते हैं वे मरके देवगतिकों प्राप्त होते हैं, यह यज्ञ करनेमें उन जीवों उपरि उपकार हैं

**उत्तरपक्ष -** यहनी तुमारा कहनां प्रमाणके अज्ञावसें बचन मात्र है, क्योंकि यज्ञमें मारे गये पशुयोंमेंसू सज्जतिके जान होनेसे मुदित मन हो करके कोइनी पशु पीठा आ करके अपने स्वर्गके सुखोंका निरूपण नहीं करता है

**पूर्वपक्ष -** इस कहनेमें आगम प्रमाण है ॥ यथा ॥ औपथ्य पशवोदृ ह्वा, स्तिर्यच पक्षिणस्तथा ॥ यज्ञार्थं निधन प्राप्ता, प्राप्नुवत्युद्धृतं पुनरित्यादि ॥ जावार्थ -औपथियो, अजादिक पशु, किंजत्कादि पक्षी, जो ये यज्ञमें मारे जाते हैं, वे फेर उद्धृत अर्थात् उन्नतिकों प्राप्त होते हैं

**उत्तरपक्ष -** यहनी तुमारा कहनां ठीक नहीं तुमारा आगम पौरुषेय अपौरु पेय विकल्पों करके हम आगे खमन करेंगे अरु श्रोत्रविधि करके पशुओंके मारनेसें जे कर स्वर्गप्राप्ति होती होवे, तब तो कताइ (खटीक) प्रमुख नी स्वर्गवासी हो जावेंगे ॥ तथा च पठति पारमर्षी ॥ यूपं हित्वा पशून् हत्वा, कृत्वा रुधिरकर्वम ॥ यद्येव गम्यते स्वर्गे, नरके केन गम्यते ॥ १ ॥ एक औरनी बात है, जे कर अपरिचित, अस्पष्ट चैतन्य, अनुपकारी पशु ओंके मारनेसें त्रिदिव पदवी प्राप्त होवे, तदा परिचित, स्पष्ट चैतन्य, प रमोपकारी, माता पितादिकोंके मारनेसें याज्ञिकोंको अधिकतर पदवी प्राप्ति होवेगी ? यदनी करनां चाहिये

**पूर्वपक्ष -** “अचित्योद्दि मणिमत्रौपधीनां प्रज्ञाव इति वचनात्” इस वास्ते वैदिक मंत्रोंकी अचित्य शक्ति होनेसें उन मंत्रों करके सस्कार क रा हुआ पशुके मारनेसें अवश्य स्वर्ग प्राप्ति होती है

जीवोंको यज्ञादिकोंमें मारते हो, तिस्से सपूर्ण पुण्यका नाश करके अमर्य दुर्गतिमें जाओगे, शुचपरिणामका होना तुमको बहुत दुर्जन है

जें कर कहोगेकि जिनमंदिर बनानेमेंनी हिंसा होती है, इस वास्ते जिनमंदिर बनानेमेंनी पुण्य नहीं है

उत्तर—यह तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि जिनमंदिर, जिनप्रतिमा के देखनेसे उनके दर्शनसे जगवान्‌के गुणानुराग करक कितनेक जय्यजी वोंको बोधिलाज होता है, अरु पूजातिशय देखनेसे मन प्रसाद होता है, तिस मन प्रसादसे समाधि होती है, पीठें क्रम करके नि श्रेयस अर्थात् मोक्षकी प्राप्ति होती है ॥ तथा च जगवान्‌ पचालिङ्गीकार ॥ पुढवाइया ए जइविदु, होइ विणासो जिणालयादि तो ॥ तविसयावि सुदिच्छिस्त, नि यमथो अग्नि अणुकपा ॥ १ ॥ एथादि तो बुद्धा, विरिया रक्कति जेण पु ढवाइ ॥ इत्तो निवाण गया, अवाहया आनव मणत्तं ॥ २ ॥ रोगसिरावे हो इव, सुविक्क किरियाव सुप्पवत्ताउ ॥ परिणाम सुदरच्चिय, चिन्हासे वाह जोगेविति ॥ ३ ॥ इनका जावार्थ लिखते हैं यद्यपि जिनमंदिर बनानेमें पृथिवीआदिक जीवोंकी हिंसा होती है, तोनी सम्यक् दृष्टिकी तिन जी वों वपर निश्चयही अनुकपा है ॥ १ ॥ इनकी हिंसासे निवर्त्त हो कर ज्ञानी निर्वाणको प्राप्त होये हैं कैसें निर्वाणको ? अव्याहत, अनत काल लागि ॥ २ ॥ जैसें रोगीकी नाडीको बड़े यत्नसे वैद्य बांधता है उस वैद्यके ऐसे परिणाम अग्नि हैं कि कदाचित वो रोगी मरजी जावे, तोनी वैद्यको पाप नहीं, तैसेही जिनमंदिरके बनानेमें यत्नपूर्वक प्रवर्त्तमान पुरुषोंको उ नजीवोंके वपर अनुकपाही है, अरु वेदके कहे सुजब बध करनेमें किंचित् मात्रनी पुण्य हम नहीं देखते हैं

पूर्वपक्ष—ब्राह्मणोंके तांइ पुरोमाशादि प्रदान करनेसे पुण्यानुबधी गुण होता है

उत्तरपक्ष—यहनी तुमारा कहनां ठीक नहीं क्योंकि पवित्र सुवर्णादि प्रदान मात्रसेनी पुण्योपाईनेका सजब होता है, अरु जो रुपण, बीन, अनाथ, पशु गणको मारणां, अरु तिनके मांसका दान करनां, यह केवल तुमारी निर्वयता अरु मांस लोलुपताहीका चिन्ह है

किं सम्यक् दर्शनं ज्ञानं सपन्नं अर्चिमार्गप्रतिपन्नं वेदांतवादीयोनंजी नि  
दीहै “ तथा च तत्त्वदर्शिनः पठन्ति ॥ श्लोक ॥ देवोपहारव्याजेन, य  
ज्ञव्याजेन वायवा ॥ घृतिं जंतून् गतघृणा, घोरा ते यांति दुर्गतिं ॥ १ ॥  
वैदांतिका अप्याहुः ॥ अथे तमसि मज्जाम, पशुजिरे यजामहे ॥ हिंसा ना  
म नवेधर्मो, न चूतो न नविष्यति ॥ २ ॥ “तथा अग्निर्मातेतस्मात् हिंसाकृ  
तादेनसोमुचतु षादसत्वान्मोचयतु इत्यर्थः ” व्यासेनाप्युक्तं ॥ ज्ञानपालिपरि  
क्षिते, ब्रह्मचर्यदयानसि ॥ स्नात्वातिविमले तीर्थे, पापपकापहारिणि ॥ १ ॥  
ध्यानाग्नौ जीवकुम्भस्थे, दममारुतदीपिते ॥ असत्कर्मसमिक्षेपै, रग्निहोत्रं  
कुरुत्तम ॥ २ ॥ कपायपशुनिर्दुष्टै, धर्मकामार्थनाशकैः ॥ शममत्रदुर्तैर्यज्ञ, वि  
वेदि विहितं बुधैः ॥ ३ ॥ प्राणिघातानु यो धर्म, मीहते भूदमानसः ॥  
स बांढति सुधावृष्टिं, रुष्णादिमुखकोटरात् ॥ ४ ॥ इत्यादि

अरु जो यह करने वालोंको पूजनिक पणा तुम कहते हो, सोनी असा  
र है, क्योंकि अबुद्ध जनही उनको पूजते हैं, नतु विविक्त बुद्धिमान्  
अरु मूर्खोंका जो पूजना है, सो प्रामाणिक नहि, क्योंकि मूर्ख तो कुते औ  
गधेकोनी पूजते हैं

अरु जो तुमने कहा था कि देवता, अतिथि, पितृ प्रीति सपादक होने  
से वेद विहिता हिंसा, वीरके ताड़ नहीं, यहनी जूठ है, क्योंकि देवता  
ओंके सकल्प मात्रसेही अनिमित्त आहारके रसका स्वाद, प्राप्त हो जाता है,  
अरु देवताओंका शरीर वैक्रियरूप है, सो तुमारी जुगुप्सित पशुमांसा  
दि आहुतिके जेनेको उनकी इच्छाही नहीं हो सकती है, क्योंकि औदारिक  
शरीर वाछेही तिन मांसादिकोंके आहक है, जे कर देवताओंकोनी कवल  
आहारी मानोगे, तब तो देवताओंका शरीर तुमने मन्त्रमय माना है, तिस  
के साथ विरोध होवेगा, अरु अन्युपगमकी बाधा है, देवताओंका शरीर  
मन्त्रमय तुमारे मतमें अस्ति नहीं है, “ चतुर्थ्यतं पदमेव देवता इति जैमि  
नीयवचनप्रामाण्यात् ॥ तथा च ॥ मुनेऽ शब्देतरत्वे युगपन्निर्देशेषु यमृषु  
नसा प्रयाति सानिष्य मूर्त्तत्वादस्मादिवदिति ”

तथा जिस वस्तुकी आहुति देवताओंको देते हैं, वोतो नस्मीनावमा  
त्र हो जाती है, तो फेर देवता क्या उस नस्म अर्थात् राखकों खाते  
हैं ? इस वास्ते तुमारा कहना प्रज्ञापमात्र है.

उत्तरपक्ष—यहनी कहना व्यभिचारी है क्योंकि इह लोकमें विवाह, गन्नाधान, जातकर्मादिकोंके विषे तिन मन्त्रोंका व्यभिचार देखनेमें आता है, तो अदृष्ट स्वर्गादिकोंमेंनी तिनोके व्यभिचारका अनुमान करते हैं क्यों कि वेदोक्त मन्त्रों करिकें सस्कार करे दूये विवाहसेनी अनंतरही स्त्री, विधवा, अल्पायुष्या, दारिद्र्यादि उपपन्न करकें विधुर होते दूये, देखनेमें आते हैं, अरु वेद मन्त्रोंके सस्कार बिनानी कितनेक विवाह करने वाले सुखी, धनी, आदिक दीखते हैं

पूर्वपक्ष—जिस विवाहादिकोंमें विधवादि हो जाती है तदा क्रियाकी वैगुण्यतासे विसवाद होता है

उत्तरपक्ष—इस तुमारे कहनेमें यह सशय कनी दूर नहीं होवेगा, क्या तहां क्रियाकी वैगुण्यता विसवादका हेतु है ? किंवा वेदमन्त्रोंकी असमर्थता विसवादका हेतु है ?

पूर्वपक्ष—जैसे तुमारे मतमें “आरोग्य बोद्धिज्ञान समाह्विरमुत्तम विदुः” इत्यादिक वचनोंका कालांतरमेंही फल चाहते (वाढते) हैं, ऐसे हमारे अनिमित्त वेद वचनोंकाही इस लोकमें फल नहीं कल्पना करते हैं, किंतु जो कालांतरमें फल होता है इस वास्ते विवाहादिकका उपालनावकाश नहीं

उत्तरपक्ष—अदो वचन वैचित्री ! जैसे वर्तमान जन्मविषे विवाहादिकोंमें प्रयुक्त मन्त्र, सस्कारों करकें आगम जन्ममें तिसका फल है, ऐसे ही द्वितीयादि जन्ममेंनी विवाहादिकोंके पुण्य हेतु माननेसे अनन्त जनों का अनुसंधान होवेगा, ऐसे तो कदापि सत्सारकी समाप्ति नहीं होवेगी, तब तो किसीकोनी मोक्षप्राप्ति नहीं इस्ते यही सिद्ध दूया जो वेवही अपर्यवसित सत्सार बल्लरीका मूल (कव) है, अरु आरोग्यादि प्रार्थना जो है, सो असत्य अमृषा जाषा है, परिणाम विष्टुदिका कारण होनेसे दोषके वास्ते नहीं, क्योंकि तहां जाव आरोग्यादिककीही विवक्षा है, अरु वो जो आरोग्यपणा है, सो चातुर्गतिक सत्सार लक्षण जावरोग परिरूप रूप होनेसे उत्तम फल है, तिस विषयक जो प्रार्थना है, वो कैसे विवेक वानोंको आवरण्य नहीं ? ऐसेनी मत कहना जो परिणाम शुद्धिसे तिस फलकी प्राप्ति नहीं, क्योंकि सर्व वादीयोंके जावशुद्धिसे फल पा नेमें विवाद नहीं ऐसेनी मत कहना जो वेदविहित दिंसा बुरी नहीं, क्यों

क्योंकि कितनेक कुछ देवताओं तैसेंही प्रीति है, तहांजी वें छुट देव सो अ  
पनी पूजा देखके राजी होते हैं, परंतु मलिन (बीजत्स) मासके खाने  
सँ नहीं राजी होते जे कर दोम करी दूइ वस्तुकों खाते है, तब तो निं  
वपत्र, कहुवा तेल, थारनाल, धूमाशादिजी दूयमान इय्यजी तिनका  
जोजन हो जावेगा, बाह कयाही तुमारे देवता सुंदर जोजन करते हैं।

अरु अतिथिकी जो प्रीति है, सो सस्कार सपन्न पक्वान्नादिक करकेंजी  
हो सकी है, तो फेर तिनके अर्थे महोद्द महाजादिकोंका कल्पनां सो  
नि केवल तुमारी निर्विवेकताकों कहता है

अरु आ-इदिकोंके करनेसँ पितरोकी जो प्रीति है, सोजी अनेकां  
तिक है, क्योंकि कितनेक आ-इ नहींजी करते हैं, तोजी तिनकी सत्ता  
नष्टि देखते हैं, गर्तशूकरादिके जैसे वृद्धि है तिस वास्ते आ-इदिकोंका  
जो करणा है, सो सुगंध जनकों विप्रतारणमात्रही फल है जो पितर  
लोकांतरमें प्राप्त हूये हैं, सो अपणे सुकृत डकृत कर्मोंके अनुसार  
सुर नारकादि गतियोंमें सुख दुख जोग रहे हैं, तो फेर पुत्रादिकोंके दीये  
हूये पिंनोको क्योंकर जोगनेकी इच्छा कर सके हैं ? “तथा च युष्मद्युधि  
न पतति ॥ श्लोक ॥ मृतानामपि जतूनां, आ-इ चेतृत्तिकारण ॥ तं निर्वा  
णप्रदीपस्य, स्नेह सर्वयेष्टिखामिति ॥

तथा आ-इ करनेसँ पुण्य क्यों कर उस पितरोके पास चला जाता है ?  
क्योंकि वो पुण्य तो औरने करा है, अरु पुण्य जो है, सो आप जडरूप  
है, औ पगोंसँ रहित है जे कर कदोगेकि उद्देशतो पितरोहीका है, परंतु  
पुण्य, आ-इ करनेवाले पुत्रादिकोंको होता है, यहजी कदनां ठीक नहीं  
पुत्रादिकोंको पुण्य नहीं होता है, पुत्रादिकोंके मनमें यह वासना नहीं  
जा हम पुण्य करते हैं, इसका फल हमको मिलेगा, तो बिना पुण्यकी  
जावनासँ पुण्य फल नहीं होता है, इस हेतुसँ नतो पितरोंको, अरु न  
पुत्रादिकोंको आ-इ करनेका फल है, किंतु विचमेंही त्रिशकुके दृष्टांत करिकें  
बिलीन हो गया

अरु पापानुबधी जो पुण्य है, वो तत्त्वसँ पाप रूपही है, जे कर कदो  
गे कि ब्राह्मण जो कुंठ खाते हैं, वो उनको मिलता है, तो इस कहनेकी  
तुमकोंही सत्यता प्रतीत होती होवेगी, ब्राह्मणोहीका मोटा उदर दिखला

तथा एक औरनी बात है, यो यह त्रेताग्रिहे, सो तेतीस कोटि देवताका मुख है, “अग्रिमुखा वै देवा इति श्रुते” तब तो उत्तम, मध्यम, अधम, सर्व देवता एकही मुख करके खाने वाले सिद्ध दूये अरु सर्व आपसमें जुट खाने वाले बन गये, तब तो तुरकोसेनी अधिक हो गये क्यों कि तुरकोनी एक पात्रमें एकठे खाते हैं, परंतु एक मुख करके सर्व नहीं खाते हैं

एक औरनी दूषण है, एक शरीरमें मुख बहुत हैं, यह बात तो हम आगेनी सुनते थे, परंतु अनेक शरीरोंका एक मुख, यह ता बड़ा आश्चर्य है. जब सर्व देवताओंका एक मुख माना, तब तो किसी पुरुषने जब एक देवताकी पूजादि करके आराध्या, अरु अन्य देवताओंकी निंदादि करके विराध्या, तब तो एक मुख करके युगपत् अनुग्रह, निग्रह, वाक्यके उच्चारणमें संकरका प्रसंग होवेगा

तथा एक औरनी बात है कि, मुख जो है सो देहका नवमा नाग है, तो जब उन देवताओंका मुखही दाहात्मक है, तब एक एक देवताका शरीर दाहात्मक होनेसें तीनों जवनही जस्मीनूत हो जाने चाहियें १ ५ त्यजमतिचर्चया ॥

अरु जो कारीरी यज्ञादिकोंमें वृष्ट्यादि फलका अध्यनिचार है, तिस फलमें आहुति करके प्रीणीत देवताका अनुग्रह जो तुम कहते हो सोनी अनेकांतिक है किसी जगे व्यनिचारनी देखनेमें आता है, अरु जहां व्यनिचार नहीं, तहांनी आहुतिके नोजन करनेसे अनुग्रह नहीं किंतु वो देवता विशेष अतिशय ज्ञानी हैं, स्वच्छेश्य पूजोपचारकों देख करके, अपो स्थानमेंही स्थित दूये थके पूजा करने वाले प्रति प्रसन्न हो कर उसका कार्य, अपनी इच्छासें कर वेता है, अनुपयोग करके अनजानता अथवा जानता थकांनी पूजकके अज्ञान्य करके कार्य नहींनी करता १ क्योंकि इष्ण, क्षेत्र, काल, जावादि सद्कारियों करके कार्यका दोनों दोख पड़ता है, अरु वो जो पूजा उपचार है, सो नि केवल पशुओंहीके मारनेसें नहीं हो सकती, दूसरी तरसेंनी हो सकती है, तो फेर पाप एक फल रूप शौनिकवृत्ति करनेसें क्या है १

अरु जो बगल अर्थात् बकरेके मांस होमनेसे परराष्ट्र वश करने वाली सिद्धादेवीके परितोष होनेका जो अनुमान है, तो इसमें क्या आश्चर्य है १



क्योंकि कितनेक कुछ देवताओं तैसेही प्रीति है, तद्दानी वें छुट देव सो अ  
पनी पूजा देखके राजी होते हैं, परंतु मलिन (बीजत्स) मासके खाने  
सैं नहीं राजी होते जे कर दोम करी दूइ वस्तुको खाते हैं, तब तो निं  
वपत्र, कहुवा तेल, आरनाल, धूमांशादिनी दूयमान डब्यनी तिनका  
नोजन हो जावेगा, वाह क्याही तुमारे देवता सुदर नोजन करते है।

अरु अतिथिकी जो प्रीति है, सो सस्कार सपन्न पक्काचादिक करकेंनी  
हो सकी है, तो फेर तिनके अर्थें महोक् महाराजादिकोका कल्पनां सो  
नि केवल तुमारी निर्विवेकताकों कहता है

अरु आराधिकाँके करनेसैं पितरोकी जो प्रीति है, सोनी अनेकां  
तिक है, क्योंकि कितनेक आर नहोंनी करते हैं, तोनी तिनकी सता  
नष्टि देखते हैं, गर्तशूकरादिके जैसे वृद्धि है तिस वास्ते आराधिकाँका  
जो करणा है, सो सुगंध जनोको विप्रतारणमात्रही फल है जो पितर  
लोकातरमें प्राप्त हूये हैं, सो अण्ण सुकृत डकृत कर्मोंके अनुसार  
सुर नारकादि गतियोंमें सुख डख जोग रहे हैं, तो फेर पुत्रादिकाँके दीये  
हूये पिंमोको क्योंकर जोगनेकी इच्छा कर सके हैं? “तथा च युष्मद्युधि  
न पतति ॥ श्लोक ॥ मृतानामपि जंतूनां, आर चेत्तृप्तिकारण ॥ तं निर्वा  
णप्रदीपम्य, स्नेह सर्वदयेष्ठिखामिति ॥

तथा आर करनेसैं पुण्य क्यों कर उस पितरोंके पास चला जाता है?  
क्योंकि वो पुण्य तो औरने करा है, अरु पुण्य जो है, सो आप जडरूप  
है, औ पगोंसैं रहित है जे कर कहोगेकि उद्देशतो पितरोहीका है, परंतु  
पुण्य, आर करनेवाले पुत्रादिकाँको होता है, यद्दनी कहनां ठीक नहीं  
पुत्रादिकाँको पुण्य नहीं होता है, पुत्रादिकाँके मनमें यह वासना नहीं  
जो हम पुण्य करते हैं, इसका फल हमको मिलेगा, तो बिना पुण्यकी  
जावनासैं पुण्य फल नहीं होता है, इस हेतुसैं नतो पितरोंको, अरु न  
पुत्रादिकाँको आर करनेका फल है, किंतु बिचमेंही त्रिशकुके दृष्टांत करिकें  
बिलीन हो गया

अरु पापानुबंधी जो पुण्य है, वो तत्त्वसैं पाप रूपही है, जे कर कही  
गे कि ब्राह्मण जो कुछ खाते हैं, वो उनको मिलता है, तो इस कहनेकी  
तुमकोंही सत्यता प्रतीत होती होवेगी, ब्राह्मणोहीका मोटा उदर दिखला

इ देता है, परंतु उनके पेटमें प्रवेश करके पितर खाते दूधे कदापि नहीं दिखते हैं, जोजनावसरमें ब्राह्मणोंके उदरमें प्रवेश करते दूधे पितरोक्ष कोइनी लिंग हम नहीं देखते हैं, केवल ब्राह्मणोदीको ठूठ होते देखते हैं

अरु जो तुमने कहाथाकि हमारे पास आगम प्रमाण है, सो तुमारा आगम पौरुषेय है ? वा अपौरुषेय है ? जे कर कहोगेकि पौरुषेय है, तो क्या सर्वज्ञका करा दूथा है ? वा असर्वज्ञका करा दूथा है ? जे कर आ य पक्ष मानोगे, तब तो तुमारे मतकी व्यावृत्ति होवेगी, क्योंकि तुमारा यह सिद्धांत है, “ अतीन्द्रियाणामर्थानां, साक्षाद्गुणानां विद्यते ॥ नित्येन्यो वेदवाक्येन्यो, यथार्थत्वविनिश्चय ॥ १ ॥ दूसरे पक्षमें दूषण वाले करता के करे दूधे शास्त्रका विश्वास नहीं होता है, जे कर कहोगेकि अपौरुषेय है, तब तो सचबही नहीं हो सका है, स्वरूप निराकरणसें तुरगशृंगवत् पुरुषक्रियानुगत रूप इसका है पुरुष क्रियाके बिना यह क्योंकर हो सका है ? इस वास्ते जो साक्षर वचन है, सो पौरुषेयही है, कुमारसचवादि वचनवत् वचनात्मकही वेद है, “ तथा चाहु ॥ तात्वादिजन्मा नतु वर्ण वर्गो, वर्णात्मको वेद इति स्फुट च ॥ पुनश्च तात्वादिरत कथं स्या, अपौरुषेयोयमिति प्रतीति ॥ १ ॥ इति श्रुतिकों अपौरुषेयत्व ” अगीकार करकेनी तुमने तदर्थव्याख्यान पौरुषेयही अगीकार करी है, अन्यथा “ अग्निहोत्र जुहुयात् स्वर्गकाम ” इसका अर्थ “ श्रमांस नृक्षेत् इति ” नियामकके अनावसें ऐसे क्यों न हो जावे ? तिस वास्ते यही अज्ञा है जो शास्त्रको पौरुषेय माननां होवे तुमारे हठसें अपौरुषेय वेद माने, तोनी तिसकों प्रमाणता नहीं, क्योंकि प्रमाणता जो है, सो आस पुरुषाधीन है, जब वेद प्रमाण न दूधे, तब तिन वेदोंका कहा दूथा तथा वेदानुसारी स्मृतिनी प्रमाण नूत नहीं, हिंसात्मक याग आदि विधि प्रामाण्य विधुरही है

पूर्वपक्ष — जो यह कहा है कि “ न हिंस्यात् सर्वज्जुतानीत्यादि ” करके जो हिंसाका निषेध करा है, सो औत्सर्गिक मार्ग है, अर्थात् सामान्य विधि है, अरु वेदविदिता जो हिंसा है, सो अपवाद विधि है, अर्थात् विशेष विधि है, तब तो अपवाद करके उत्सर्गकी बाधा होनेसें वैदिकी हिंसा दोष का कारण नहीं “ उत्सर्गापवादयोरपवादविधिर्बलीयानिति न्यायात् ” तुमारे जैनोंके मतमेंनी एकांत हिंसाका निषेध नहीं है, कितनेक कारणोंके

होनेसें पृथिव्यादिक जीवोंकी हिंसा करनेकी आज्ञा है, अरु जब साधु रोग पीडित होता है, “असस्तरे” अर्थात् अस्सामर्थ्य होता है, तब आ धाकर्मादि आहारके ग्रहणकीनी आज्ञा है, ऐसेही हमारे मतमें याज्ञिकी हिंसा जो है, सो देवता अतिथिकी प्रीतिके वास्ते पुष्टालंबनरूप होनेसे अपवाद रूप है, इस वास्ते दोष नहीं

उत्तरपक्ष—अन्यकार्यके वास्ते उत्सर्ग वाक्य, अरु अन्य कार्यके वास्ते अपवाद पद कहनां, यह उत्सर्ग, अपवाद, कदा नी नहीं हो सका है, किंतु जिस अर्थके वास्ते शास्त्रमें उत्सर्ग कहा है, तिसी अर्थके वास्ते अपवाद होवे, तबही उत्सर्ग अपवाद हो सका है, तिन दोनोंहीकों उन्नत निम्नादि व्यवहारवत् परस्पर सापेक्ष होनेसेही एकार्थके साधक हो सके हैं, जैसे जैनोंके सयम पालनेके अर्थ नवकोटि विष्टु-६ आहारकों ग्रहणों, सो उत्सर्ग है, तैसेही इष्य, क्षेत्र, काल, जाव, आपत्तमें पड़नेसे गत्यंतर के अज्ञावसें पंचकादि यज्ञा करके अनेपणीयादि आहारकों जो ग्रहण करना, सो अपवाद है, सोनी सयमहीके पालने वास्ते है, ऐसें नी मत कहनां कि जिस साधुको मरणाही एक शरणा है, तिसको गत्यंतर अज्ञाव की अतिविधि है ॥ उक्त चार्पिणि ॥ सव्वञ्च स जम स, जमाउ अप्पाणमेव रत्तिक्का ॥ मुच्चइ अइवायाउ, पुणो विसोही नयाविरई ॥ १ ॥ इत्यागमात् ॥ इसका नावार्थ—सर्वत्र सयम करणा, जे कर सयमके दूषित होनेसे प्राण रहित होवे, तो सयममें दूषणनी लगा कर प्राणोंकी रक्षा करणी, प्राणों के रहणेसें प्रायश्चित्त द्वारा उस पापसें बूट करके शुद्ध हो जावेगा, अरु अविरतिनी नहीं रहेगी, तथा आयुर्वेदमें नी जो वस्तु किसी रोगमें किसी अवस्थामें अपथ्य है, सोइ वस्तु उसी रोगमें उसी अवस्थामें अवस्था, देश, काल, देख कर देवे, तो पथ्य हैं देशादि अपेक्षा करके ऊपर वा लेकों वही खानेको देते हैं ॥ तथाच वैद्या ॥ कालाविरोधिनिर्दिष्ट, ज्वरादौ लघन हितं ॥ कृतेऽनिलश्रमक्रोध, शोककामकृतज्वरात् ॥ १ ॥ जैसें प्रथम अपथ्यका परिहार करनां, अरु जो तद्वाही अवस्थातरमें तिसीको जोगनां, सो दोनोंही जगे रोगके दूर करनेका प्रयोजन है इससें यह सिद्ध हुआ जो एकही वस्तुविषयक उत्सर्ग अपवाद है

अरु तुमारे तो उत्सर्ग, और अर्थ वास्ते है, तथा अपवाद, और अर्थ

वास्ते है, क्योंकि तुमारे तो “न हिंस्यात् सर्वज्जुतानि” यह जो उत्सर्ग है सो दुर्गतिके निषेध वास्ते है, अरु जो तुमारी अणुवाद हिंसा है, सो रेव ता, अतिथि, पितरोकी प्रीति सपादनेके अर्थ है, इस वास्ते परस्पर निरपेक्ष होनेसे उत्सर्ग अणुवाद विधि नहीं हो सकती है तब कैसे तुमारा अणुवाद, उत्सर्ग विधिकों बाधा कर सका है ?

असंज्ञी मत कहना कि वैदिक हिंसाकी जो विधि है, सो स्वर्गहेतु होनेसे दुर्गति निषेधार्थही है, वैदिकहिंसा स्वर्गका हेतु नहीं है, यह उपर अष्टी तरेसें लिख आये है, वैदिक हिंसाके विनाजी स्वर्गकी प्राप्ति हो सकती है, गत्यंतरके अज्ञावमेंही अणुवाद हो सका है, कुछ हमही नहीं बड़ा करनेसे स्वर्गका निषेध करते हैं, किंतु तुमारा व्यासजीजी कहता है यदाह व्यासमहर्षि ॥ पूजया विपुल राज्य, मग्निकायें सपद ॥ तप पाप विच्छेदार्थ, ज्ञान ध्यान च मुक्तिद ॥२॥ यदा अग्निकार्यं शब्दवाच्यस्य या गादिविधि उपायांतर करके जो साध्य है सपदा, तिसहीका हेतु कहता हुआ आचार्य तिस यागकों सुगतिका हेतु अर्थात् ही कदर्थन करता हुआ है, तथा सोइ व्यासजी जावाग्निदोत्र “ज्ञानपाली” इत्यादि श्लोकों करके स्थापन कर गया है ॥ इति मीमांसकमतखण्डनम् ॥ ५ ॥

अथ चार्वाकमत खण्डन लिखते हैं ॥ चार्वाक कहता है की आत्माही नहीं है, तब किस वास्ते मतावलंबी पुरुष, वचनकल्हा करते हैं ? जब आत्माही नास्ति है तब जैन, बौद्ध, सांख्य, नैयायिक, वैशेषिक, अरु जैमिनीय, यह जो षट् दर्शन है, सो नि केवल लोकोंको भ्रममें माल करके जोग बिलास बुझा देते हैं, वास्तवमें आत्मानामा कोइ वस्तु नहीं इस वास्ते हमारा मत अज्ञा है, जे कर आत्मा है, तो कैसे तिसकी सिद्धि है ?

उत्तरपक्ष—प्रतिप्राणी स्वसंवेदन प्रमाण चैतन्यकी अन्यथानुपपत्तिसिद्धि है, तथाहि यह जो चैतन्य है, सो नूतोंका धर्म नहीं है, जे कर नूतोंका धर्म होवे, तब तो पृथिवीकी कठोरताकी तरें सर्वत्र सर्वदा उपलज्ज होना चाहिये, सो सर्वत्र सर्वदा उपलज्ज होता है नहीं, क्योंकि लोछादिकों में अरु मृत् अवस्थामें चैतन्य उपलज्ज नहीं होता

पूर्वपक्ष—लोछादिकोंमें अरु मृत् अवस्थामें चैतन्य है, केवल शक्ति रूप करिके है, तिस वास्ते नहीं उपलज्ज होता है

उत्तरपक्ष - वो विकल्पके न उल्लंघनसें यह तुमारा कहनां अयुक्त है, तथाहि वो शक्ति, चैतन्यसे विलक्षण है ? अथवा चैतन्यही है ? जे कर कहोगेकि विलक्षण है, तब तो शक्तिरूप करके चैतन्य है ऐसा मत कहो, क्योंकि नहीं पटके विद्यमान दूआ पटरूप करके घट रहता है, “आह च ॥ प्रज्ञाकरगुप्तोपि ॥ श्लोक ॥ रूपातरेण यदित, तदेवास्तीति मारटी ॥ चैतन्यादन्यरूपस्य, नावे तद्विद्यते कथम् ॥ १ ॥ जे कर दूसरा पक्ष मानोगे, तब तो चैतन्यही वो शक्ति है, तो फेर क्यु नहीं उपलज होती ? जे कर कहोगेकि आवृत्त होनेसे उपलज नहीं होती, तो यहनी ठीक नही, क्योंकि आवृत्ति नाम आवरणका है, सो आवरण क्या विवक्षित परिणामका अज्ञाव है ? अथवा परिणामांतर है ? अथवा नूतोंसे अतिरिक्त और वस्तु है ? उसमें विवक्षित परिणामोंका अज्ञाव तो नहीं हैं, क्योंकि एकांत तुष्ट होने कर के तिस विवक्षित परिणाम अज्ञावकों आवरण शक्ति नहीं है, अन्यथा तिसकों अतुष्ट रूप होनेसे सोनी नावरूप हो जावेगा अरु जब नावरूप प हुआ, तब तो पृथिवी आदिकोंमेंसू अन्यतम हुआ, क्योंकि “पृथिव्यादी न्येव नूतानि तत्त्वमिति वचनात् ” अरु पृथिवी आदिक जो नूत है, सो चैतन्यके व्यजक हैं, परतु आवरण नहीं तब कैसे आवरणत्व सिद्ध होवे ? अथ जे कर कहोगेकि परिणामांतर है, सोनी अयुक्त है, क्योंकि परिणामांतरकों नूत स्वभाव होने करके नूतोंकी तरें चैतन्यका व्यजकही हो सका है, आवरण नहीं

अथ जे कर कहोगेकि नूतोंसे अतिरिक्त वस्तु है, यह कहनां बहुत ही असंगत है, क्योंकि नूतोंसे अतिरिक्त वस्तु माननेसे “चत्वार्येव पृथ्व्या वि नूतानि तत्त्वमिति” इस कहनेसे तत्त्वसंख्याका व्याघात हो जावेगा

एक औरनी बात हैकि यह जो चैतन्य है, सो एक एक नूतका धर्म है ? वा सर्व नूत समुदायका धर्म है ? एक एक नूतका धर्म तो नहीं, क्योंकि एक एक नूतमें वीखता नहीं औ एक एक परमाणुमें सवेदन उपलज नहीं होता है जे कर प्रति परमाणुमें होवे, तब तो पुरुष, सहस्र चैतन्य वृक्षी तरें परस्पर निज स्वभाव होवेगा, परतु एक रूप चैतन्य नही होवेगा, अरु देखनेमें एक रूप आता है, “अहं पश्यामि” अर्थात् मैं देखता हूँ, मैं करता हूँ, ऐसे सकल शरीरका अधिष्ठाता एक उपलज होता है

जे कर समुदायका धर्म मानोगे सोनी प्रत्येकमें अज्ञाव होनेसे असत् है, क्योंकि जो प्रत्येक अवस्थामें असत् है, वो समुदायमनी नहीं होस का है, जैसे रेणुकायोंमें तैल

जे कर कहोगेकि मयांगोंमें मद शक्ति नहीं है समुदायमें हो जाती है, ऐसे चैतन्यनी हो जावे, तो क्या बोध है ? यहनी अयुक्त है, क्योंकि प्रत्येक मद अंगोंमें मद शक्त्यनुयायि माधुर्यादि गुण दीखते हैं, तथाहि ॥ दीखता है माधुर्यादि इक्षुरसमें धातकी फूजोंसे थोड़ीसी विकलता उत्पादक शक्ति, ऐसे चैतन्य, सामान्य प्रकारसे जूतोमें नहीं उपजन होता है, तब कैसे जूत समुदायमें चैतन्य हो सका है ? जे कर प्रत्येक अवस्थामें असत् समुदायमें हो जावे, तब तो सर्व समुदायसें सर्व कुठ हो जाना चाहिये, यह अति प्रसंग होवेगा

एक औरनी बात है, कि जे कर तुमने चैतन्य धर्म माना है, तब तो अक्षय धर्मके अनुरूप धर्मोंनी मानना चाहिये, जे कर अनुरूप न मानोगे, तब तो जल अरु कठिनता इन दोनोंको धर्म धर्मों मानना चाहिये, ऐसे नी मत कहना जो जूतही धर्म हैं, क्योंकि जूत, चैतन्यसें विलक्षण हैं, तथाहि चैतन्य बोध स्वरूप, अरु अमूर्त है, अरु जूत इससें विलक्षण हैं, तब कैसे परस्पर धर्म धर्मों जाव हो सका है ? अरु यह चैतन्य जूतोका कार्यनी नहीं है, अत्यंत वैलक्षण्य होनेसें कार्य कारण जाव कवा पि नहीं होता है ॥ उक्तच ॥ काठिन्याबोधरूपाणि, जूतान्यव्यङ्ग्यसिद्धित ॥ चेतना च न तद्रूपा, सा कथं तत्फलं जवेत् ॥ १ ॥

एक औरनी बात है कि जे कर जूतकार्य चेतना होवे, तब तो सकल जगत् प्राणिमय होवे, जे कर कहोगेकि परिणति विशेष सन्भावके अज्ञाव सें सकल जगत् प्राणिमय नहीं होता है, तो वो परिणति विशेष सन्भाव सर्वत्र किसी वास्ते नहीं होता है ? सोनी परिणति जूतमात्र निमित्तकही है, तब कैसे तिसका किस जगें होना न होना सिद्ध होवे ? तथा वो परिणति विशेष किस स्वरूपवाली है, जे कर कहोगेकि कठिनादि रूप है, सो इ विखाते हैं कि घुणादि जंतु उत्पन्न होते दूये काष्ठादिकोंमें दीखते हैं तिस वास्ते जहां कठिनत्वादि विशेष है, सो प्राणिमय हैं, शेष नहीं यह नी व्यभिचार देखनेसें असत् है तथाहि अविशिष्टनी कठिनत्वादि विशेषके

हूया कहीं होता है, और कहीं नहीं होता, अरु किसी जगे कठिनत्वादि विशेषके विनाजी सस्वेदज घने आकाशमें समूर्द्धिम उत्पन्न होते हैं

एक औरजी बात है कि कितनेक जीव समानयौनिकजी विचित्रवर्ण संस्थान वाले दीखते हैं, तथाहि गोवर आदि एक योनिवालेजी कितने क नीचे शरीर वाले हैं, अपर पीत शरीर वाले हैं, अन्य विचित्र वर्ण वाले हैं, अरु संस्थानजी इनका परस्पर निन्न है, जे कर नूतमात्र निमित्त चैतन्य होवे, तब तो एक योनिक सर्व एक वर्ण संस्थान वाले होने चाहिये, परंतु सोतो होते हैं नहि, तिस वास्ते आत्माही तिस तिस कर्मके वश तैसैं उत्पन्न होती है, यही सिद्ध मानना चाहिये

जे कर कहोगेकि आत्मा होवे, तब जाता आता क्यों नहीं उपलब्ध होता ? केवल वेहके दुवांही सवेदन उपलब्ध होता है, अरु वेहके अना व होयां नस्म अवस्थामें नहीं दीखता है, तिस वास्ते आत्मा नहीं किं तु सवेदन मात्रही एक है, सो सवेदन वेहका कार्य है, वेहहीमें आश्रित है, नीतके चित्रवत् चित्र, नीतके विना नहीं रह सकता है, अरु दूसरी नीत उपर सक्रमणजी नहीं होता है, किंतु नीत उपर उत्पन्न हुआ है, अरु नीतके साथही विनाश हो जाता है, सवेदनजी ऐसेही जान लेनां यहनी अस्त है, क्योंकि आत्मा स्वरूप करके अमूर्त है, अरु आंतर शरीर अति सूक्ष्म है, इस वास्ते दृष्टिगोचर नहीं ॥ तदुक्त ॥ श्लोक ॥ अतराजावदेहोपि, सूक्ष्मत्वाच्चोपलभ्यते ॥ नि क्रामन् प्रविशन् वात्मा, नानावोऽनीकृणादपि ॥ १ ॥ तिस वास्ते आंत शरीर युक्तजी आत्मा आता जाता हुआ नहीं दीखता है, परंतु लिंगसैं उपलब्ध होता है, तथाहि तत्काल उत्पन्न हुआजी कर्मो जीवकों अपने शरीर विषे ममत्व है, घातकों जान करकें दौड़ जाता है, जिसका जिस विषे ममत्व है, सो पूर्वक्षे ममत्वके अन्यास पूर्वक है, तैसेही देखनेसैं अरु जितना चिर, किसी वस्तुके गुण दोष नहीं जानता, उतना चिर, उस वस्तुमें किसीकोंजी आग्रह नहीं होता है, तब तो जन्मकी आविर्में जो शरीरका आग्रह है, सो शरीर परिशीलन अन्या सपूर्वक सस्कार निबधन है, इस वास्ते आत्माका जन्मांतरसैं आवनां सिद्ध हुआ ॥ उक्त च ॥ शरीरग्रहरूपस्य, चेतस सज्जवोयदा ॥ जन्मादौ देहि नां दृष्ट, किन्न जन्मांतरा गति ॥ १ ॥

अथ आगति प्रत्यक्षसे नहीं दीखती है, तब कैसे तिसका अनुमानसे बोध होवे ? यह तुमारा कहनां कुछ दूषण नहीं, क्योंकि अनुमेय अर्थ विषे प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति नहीं हो सकती है, परस्पर प्रियकों परिहार करके प्रत्यक्ष अनुमानका प्रवर्तना बुद्धिमान् मानते हैं, तब कैसे यह तुमारा दूषण है ? आह च ॥ अनुमेयेस्ति नाध्यक्ष, मिति कैवात्र छुटता ॥ अथानुमानस्य, विषयो विषयो नहि ॥ १ ॥

अरु जो चित्रका दृष्टांत तुमने कहा था, सोनी विषम होनेसे अशुभ है, तथाहि चित्र जो है सो अचेतन है अरु गमन स्वभाव रहित है, औ आत्मा जो है सो चैतन्य है सो कर्मोंके वशसे गति आगति करता है, तब कैसे दृष्टांत अरु दार्ष्टिकी साम्यता होवे ? जैसे देवदत्त किसी विवक्षित ग्राममें कितनेक दिन रह करके फेर ग्रामांतरमें जाता रहता है, तैसेही आत्माजी विवक्षित जवमें देहको त्याग कर जवांतरमें देहांतर रच कर रहता है,

अरु जो तुमने कहा था कि सवेदन देहका कार्य है, सोनी ठीक नहीं क्योंकि चक्षुषादि इन्द्रियद्वारे उत्पन्न होनेसे चाक्षुषादि सवेदन कथचित् देहसेंनी उत्पन्न होता है, परंतु जो मानस ज्ञान है, वो कैसे देहका कार्य हो सका है ? तथाहि सो मानस ज्ञान देहसें उत्पद्यमान होता हुआ इन्द्रियरूपसे उत्पन्न होता है ? वा अनिन्द्रिय रूपसे उत्पन्न होता है ? वा केश नखादि लक्ष्णसें उत्पन्न होता है ? प्रथम पक्ष तो ठीक नहीं जे कर इन्द्रियरूपसें उत्पन्न होवे, तब तो इन्द्रिय बुद्धिवत् वर्त्तमानार्थकाही ग्राहक दोनों चाहिये, इन्द्रियज्ञान जो है, सो वर्त्तमान अर्थही ग्रहण कर सका है, इस सामर्थ्यसें उपजायमान मानस ज्ञानकी इन्द्रियज्ञानवत् वर्त्तमान अर्थकाही ग्रहण कर सकेगा.

अथ जब चक्षुरूप विषय व्यापार करता है, तब रूप विज्ञान उत्पन्न होता है, शेष काल नहीं तब वो रूपविज्ञान वर्त्तमानार्थ विषय है, क्यों कि वर्त्तमानार्थ विषयही चक्षुका व्यापार होनेसे अरु रूप विषय व्यावृत्तिके अज्ञावमें मनोज्ञान है, तिस वास्ते नियत काल विषयक नहीं है, ऐसेही शेष इन्द्रियमेंनी जान लेनां, तब कैसे मनोज्ञानको वर्त्तमानार्थ ग्रहण प्रसक्ति होवे ? उक्त च ॥ अक्षुव्यापारमाश्रित्य, जवदक्षजमिष्यते ॥ तद्व्यापारो न तत्रेति, कथमक्षजव नवेत् ॥ १ ॥



अथ अनिर्दिष्ट रूपसें है, सोनी तिसको अचेतन होनेसें अयुक्त है, अरु केश नखादिक तो मनोज्ञान करके स्फुरत चिद्रूप नहीं उपलब्ध होते हैं, तब कैसे तिनसेंती मनोज्ञान होवे ? आह च ॥ चेतयंतो न दृश्यन्ते, केशश्मश्रुनखादय ॥ ततस्तेन्यो मनोज्ञान, नवतीत्यतिसाहस ॥ १ ॥

जे कर केश, नखादिकों करके प्रतिबद्ध मनोज्ञान होवे, तब तो तिनोके उल्लेख दूया मूलसेंही मनोज्ञान नहीं होवेगा ? अरु केश, नखादिकोंको उपधात दूयां ज्ञाननी उपहत होना चाहिये, परंतु सोतो होता है नहीं, इस वास्ते यह तीसरा पक्षनी ठीक नहीं

एक औरनी बात है, कि मनोज्ञानके सूक्ष्म अर्थ नेतृत्व अरु स्मृतिपाटवादि विशेष जो है, सो अन्वयव्यतिरेक करके अन्यासपूर्वक देखे हैं, तथाहि वोही शास्त्र, इहा अपोहादि प्रकार करके जे कर बार बार विचारिये, तब सूक्ष्म सूक्ष्मतर अर्थावबोध उद्भास होता है, अरु स्मृति पाटव अपूर्व वृद्धि होती है, ऐसें एक शास्त्रविषे अन्याससेती सूक्ष्मार्थ नेतृत्व शक्तिके होयां, अरु स्मृतिपाटवके दूयां अन्य शास्त्रोंमेंनी सहजसेंही सूक्ष्मार्थावबोध, अरु स्मृतिपाटव उद्भास होती है, ऐसें अन्यास हेतुक सूक्ष्मार्थ नेतृत्वादिक मनोज्ञानके विशेष देखे हैं, अरु किती को अन्यासके बिनानी देखिये है, तिस वास्ते अवश्य परलोकका अन्यास हेतु है, सो काहेत ? कि कारणके साथ कार्यका अन्यथानुपपन्न पणा है, तिस प्रतिबधमें अदृष्ट तिसके कारणकीनी सिद्धि है, तिस वास्ते जीवका परलोकमें जाना सिद्ध हुआ

अरु देह, कृपोपशमका हेतु है, इस वास्ते देहनी कश्चित् ज्ञानको उपकारी दम मानते है नहीं देहके दूर होनेसे सर्वथा ज्ञानकी निवृत्ति होती जैसें अग्नि करके घटकों कुछ विशेषता है, परंतु अग्निकी निवृत्ति दूया घट मूलसेंही उल्लेख नहीं हो जाता है, केवल कठुक विशेष दूर हो जाता है, जैसें सुवर्णकी ध्वता ऐसें इहांनी देहकी निवृत्ति दूया कोशक ज्ञानविशेष तत्प्रतिबद्धही निवृत्त होता है, परंतु समूल ज्ञानका उल्लेख नहीं होता है, जे कर देहही ज्ञानका निमित्त मानेंगे, अरु देहकी निवृत्तिसे ज्ञान निवृत्तिवाला मानोगे, तब तो स्मशानमें देहके जस्म दूयां तो ज्ञान न होवे, परंतु देहके विद्यमान दूया मृत अवस्थामें किस वास्ते नहीं होता ?

जे कर कहोगे कि प्राण, अपानकी ज्ञानके हेतु है, तिनके अज्ञासे ज्ञान नहीं होता है, यहनी कहना ठीक नहीं, क्योंकि प्राणापान ज्ञानके हेतु नहीं हो सके है, किंतु ज्ञानहीसे तिनकी प्रवृत्ति होनेसे तथाहि जब प्राणापानका करने वाला मद इच्छा करता है, तब मद होता है, अरु जब दीर्घकी इच्छा करता है, तब दीर्घ होता है, जे कर देहमात्र नैमित्तिक प्राणापान होवे, अरु प्राणापान नैमित्तिक विज्ञान होवे, तब तो इच्छाके वशसे प्राणापानकी प्रवृत्ति न होवेगी, क्योंकि जिनका निमित्त देह है, ऐसी जो गौरता थी श्यामता, वो इच्छाके वशसे प्रवृत्त नहीं होती है, जे कर प्राणापान ज्ञानका निमित्त होवे, तब तो प्राणापानके थोड़े वा बहुतके होनेसे ज्ञानकी थोड़ा वा बहुत होना चाहिये, क्योंकि जिसका कारण हीन अथवा अधिक होवेगा, तब उसका कार्यकी हीन अधिक होवेगा जैसे माटीका पिन बड़ा किवा छोटा होवेगा, तब घटकी बड़ा अरु छोटा होवेगा, अन्यथा वो कारणकी नहीं तुमारेकी तो प्राणापानके न्यून अधिक होनेसे ज्ञान, न्यून अधिक नहीं होता है किंतु विपर्यय होता तो दीखता है क्योंकि मरणावस्थामें प्राणापान अधिककी होते हैं, तोनी विज्ञान घट जाते है

जे कर कहोगे कि मरणावस्थामें वात पित्तादि दोषो करके देहके विगुणी हो जानेसे प्राणापानकी वृद्धिसेनी ज्ञानकी वृद्धि नहीं होती है, ऐसे ही मृतावस्थामेंनी देहके विगुणीनूत होनेसे चेतनता नहीं है, यहनी असमीचीन है, जे कर ऐसे होवे, तब तो मरा हूआनी जिवा होना चाहिये ॥ तथाहि ॥ “मृतस्य दोषा समीनवति” अर्थात् मरण पीछे वात पित्तादि दोष नहीं रहते हैं, औ ज्वरादि विकारके न देखनेसे दोषोका न रहना प्रतीत होता है, अरु जो दोषोका समपणा है, सोइ आरोग्यता है, “तेषां समत्वमारोग्य, कृयवृद्धिविपर्यय ॥ इति वचनात्” ॥ आरोग्य जान से देहको फेर जिवा होना चाहिये, अन्यथा देह कारणही नहीं, चित्तके साथ देहका अन्वय व्यतिरेक नहीं जे कर मारा हुवा जी खड़े, तो हम देहको कारणकी मान लेवे

पूर्वपक्ष —यह फेर जी खठनेका प्रसंग तुमारा अयुक्त है, क्योंकि यद्यपि दोष, देहको वैगुण्य करके निवृत्त हो गये हैं, तोनी तिनका वैगुण्य पणा

करा हुआ नहीं निवृत्त होता है, जैसे अग्निका करा हुआ काष्ठमें विकार अग्निके निवृत्त होनेसें नी नहीं निवृत्त होता है

उत्तरपक्ष—यह तुमारा कहनां अशुक्त है, क्योंकि विकारनी दो प्रकारका है, एक निवृत्त होता है, एक नहीं निवृत्त होता है, अनिवृत्त विकार जैसे काष्ठमें अग्निका करा हुआ श्यामता मात्र अरु निवृत्त विकार जैसे अग्निरुत सुवर्णमें इवता वायु आदिक जो दोष हैं, सो निवृत्त विकार है, चिकित्सा प्रयोग देखनेसे जे कर वायु आदि दोषनी अनिवृत्त विकार होवे, तब तो चिकित्सा वैफल्य हो जावेगी, ऐसेनी मत कहनां मरणोंसें पहिलां दोषनिवृत्त विकारारजक है, अरु मरण कालमें अनिवृत्त विकारारजक है, क्योंकि एकको एक जगे निवृत्त अनिवृत्त विकार दो रूप नहीं हो सके हैं,

पूर्वपक्ष—व्याधि दो प्रकारकी लोकमें प्रसिद्ध है, एक साध्य, दूसरी असाध्य, उसमें साध्य जो है, सो चिकित्सासें दूर हो सकती है, अरु दूसरी दूर नहीं होती है, तब दो प्रकारकी व्याधि क्यों नहीं सिद्ध हो सकती है?

उत्तरपक्ष—यहनी अशुक्त है, क्योंकि तुमारे मतमें असाध्य व्याधिही नहीं हो सकती है तथाहि व्याधिका जो असाध्यपणा है, सो आयुके क्षय होनेसें होता है, क्योंकि तिसी व्याधिमें समान औषध वैद्यके योगसें नी कोइ मर जाता है, कोइ नहीं मरता है, अरु जो प्रतिकूल कर्मोंके उदय करके चित्रादि व्याधि है, वो हजार औषधसें नी साधी नहीं जाती है, यह दोनों प्रकारकी व्याधि परमेश्वरके बचनोंके जानने वालोंके मतमें ही सिद्ध होती हैं, परंतु तुमारे नूतमात्र तत्त्ववादीयोंके मतमें नहीं हो सकती है कहीक आसाध्य व्याधि इस वास्ते हो जाती है, दोषरुत विकारके दूर करणेमें समर्थ औषधि, अरु वैद्यके अज्ञावसें जब औषधि अरु वैद्यके अज्ञावसे व्याधि वृद्धिमान हो कर सकल आयुको उपक्रम करती है, अर्थात् क्षय कर देती है तथा कोइक दोषोंके उपशम होनेसे अकस्मात् मर जाता है अरु कोइक अति दुष्ट दोषोंके होनेसें नी नहीं मरता है यह बात तुमारे मतमें नहीं हो सकती है ॥ आह च ॥ श्लोक ॥ दोषस्योपशमेऽप्यस्ति, मरणकस्थचित्पुन ॥ जीवन दोषदुष्टत्वे, प्येतन्न स्यान्नवन्मते ॥ १ ॥ हमारे मतमें तो जहां लगि आयु है, तहां लगि दोषों करके पीडितनी जीता रहता है, अरु जब आयु क्षय हो जाता है, तब

जे कर कहोगे कि प्राण, अपानकी ज्ञानके हेतु है, तिनके अज्ञानसे ज्ञान नहीं होता है, यद्वनी कहना ठीक नहीं, क्योंकि प्राणापान ज्ञानके हेतु नहीं हो सके हैं, किंतु ज्ञानहीसे तिनकी प्रवृत्ति होनेसे तथाहि जब प्राणापानका करने वाला मद इच्छा करता है, तब मद होता है, अरु ब व दीर्घकी इच्छा करता है, तब दीर्घ होता है, जे कर देहमात्र नैमित्तिक प्राणापान होवे, अरु प्राणापान नैमित्तिक विज्ञान होवे, तब तो इच्छाके वशसे प्राणापानकी प्रवृत्ति न होवेगी, क्योंकि जिनका निमित्त देह है, ऐसी जो गौरता औ श्यामता, वो इच्छाके वशसे प्रवृत्त नहीं होती है, जे कर प्राणापान ज्ञानका निमित्त होवे, तब तो प्राणापानके थोड़े वा बहुतके होनेसे ज्ञानकी थोड़ा वा बहुत होना चाहिये, क्योंकि जिसका कारण हीन अथवा अधिक होवेगा, तब उसका कार्यकी हीन अधिक होवेगा जैसे माटीका पिन बड़ा किवा छोटा होवेगा, तब घटकी बड़ा अरु छोटा होवेगा, अन्यथा वो कारणकी नहीं तुमारेकी तो प्राणापानके न्यून अधिक होनेसे ज्ञान, न्यून अधिक नहीं होता है किंतु विपर्यय होता तो दीखता है क्योंकि मरणावस्थामें प्राणापान अधिककी होते हैं, तोनी विज्ञान घट जाते हैं

जे कर कहोगे कि मरणावस्थामें वात पित्तादि दोषो करके देहके विगुणी हो जानेसे प्राणापानकी वृद्धिसेनी ज्ञानकी वृद्धि नहीं होती है, औ सेंही मृतावस्थामेंनी देहके विगुणीनूत होनेसे चेतनता नहीं है, यद्वनी असमीचीन है, जे कर ऐसे होवे, तब तो मरा दूआकी जिवा होना चाहिये ॥ तथाहि ॥ “मृतस्य दोषा समीनवति” अर्थात् मरण पीछे वात पित्तादि दोष नहीं रहते हैं, औ ज्वरादि विकारके न देखनेसे दोषोका न रहना प्रतीत होता है, अरु जो दोषोका समपणा है, सोइ आरोग्यता है, “तेषां समत्वमारोग्यं, कृपवृद्धिविपर्यय ॥ इति वचनात्” ॥ आरोग्य जान से देहको फेर जिंदा होना चाहिये, अन्यथा देह कारणही नहीं, घिसके साथ देहका अन्वय व्यतिरेक नहीं जे कर मारा हुवा जी छठे, तो हम देहको कारणकी मान लेवे

पूर्वपक्ष—यह फेर जी ठठनेका प्रसंग तुमारा अयुक्त है, क्योंकि यद्यपि दोष, देहको वैगुण्य करके निवृत्त हो गये हैं, तोनी तिनका वैगुण्य पणा

## ॥ अथ पंचम परिच्छेद प्रारंभ ॥

यह पंचम परिच्छेदमें धर्मतत्त्वका स्वरूप लिखते हैं धर्म उसको कहते हैं, जो दुर्गति जाते दूरे आत्माको धरी राखे, एतावता दुर्गतिमें न जाने वेवे, उसको धर्म कहते हैं तिस धर्मके तीन जेद है १ सम्यक् ज्ञान, २ सम्यक् दर्शन, ३ सम्यक् चारित्र, इन तिनोमेंसू प्रथम ज्ञानका स्वरूप सद्धेयसे लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ यथावस्थिततत्त्वानां, सद्धेयाविस्तरेण वा ॥ योवबोधस्तमत्राद्गु, सम्यग्ज्ञान मनीषिण ॥ १ ॥ अस्यार्थ - यथावस्थित नय प्रमाणों करके प्रतिष्ठित है स्वरूप जिनका, औसैं जो जीव, अजीव, आश्रव, सवर, निर्जरा, वध, मोह रूप सप्त तत्त्व, तथा प्रकारांतरें पुण्य पापके अधिक होनेसे नव तत्त्व होते हैं, इनका जो अवबोध, अर्थात् ज्ञान सो सम्यक् ज्ञान जाननां अरु वह जो ज्ञान है, सो ह्योपशमके विशेषसे किसी जीवको सद्धेय करके अरु किसी जीवको विस्तार करके होता है इन नव तत्त्वोंमें प्रथम जो जीवतत्त्व है तिसका स्वरूप ऐसा है कि जीव कदो अथवा आत्मा कदो यह दोनो एकही वस्तुके नाम है.

प्रश्न - जैनमतमें आत्माका क्या लक्षण है ?

उत्तर - चैतन्य लक्षण है,

प्रश्न - जैनमतमें जीव प्राणी आत्मा किसको कहते हैं ?

उत्तर - ॥ श्लोक ॥ य कर्त्ता कर्मज्ज्ञानां, जोक्ता कर्मफलस्य च ॥ संसर्त्ता परिनिर्वाता, सहात्मा नान्यलक्षण ॥ १ ॥ इस श्लोकसे जान लेनां. इसका जावार्थ कहते हैं, कि जो मिथ्यात्वादिकों करके कलुषित अर्थात् मैला हो करके वेदनीयादिक कर्मोंका कर्त्ता, (करनेवाला) अरु तिन अपने करे दूये कर्मोंका जो फल सुख दुःखादिक तिनोका जोगनेवाला, अरु नारकादि जावों विषे कर्म विपाकके उदय करके जो भ्रमण करनेवाला अरु सम्यक् दर्शनादि तीन रत्नोंके उत्कृष्ट अन्यास करके संपूर्ण कर्मोंको दूर करके जो निर्वाण रूप होनेवाला, सोइ प्राणी है, सोइ जीव है, सोइ आत्मा है, यह नदीसूत्रमें लिखा है आत्माकी सिद्धि चार्वाकमतखंमनमे लिख आये हैं जेकर आत्माकी सिद्धि विशेष करके देखनी होवे, तदा सुद्धां जोनिधि, गंधदस्ती महाजाण्य देख लेनी यह आत्मा सर्व व्यापीनी नहीं है, औ एकांत नित्य, कूटस्थनी नहीं है एकांत अनित्यद्वणिकनी नहीं है, किंतु

दोषोंके विकार विनाजी मर जाता है, इस वास्ते वेद, ज्ञानका निमित्त नहीं है,

एक औरजी बात है कि वेद जो तुम ज्ञानका कारण मानते हो, तो सहकारी कारण मानते हो ? वा उपादान कारण मानते हो ? जे कर सहकारी कारण मानते हो, तब तो हमजी वेदको द्योपशमका हेतु मानते है, कथचित् विज्ञानका हेतु मानते है, जे कर उपादान कारण मानो गे तब तो अयुक्त है, उपादान वो होता है कि जिसके विकारी होनेसे कार्यजी विकारी होवे, जैसे मृत्तिका और घट. वेदके विकार करके सवेदन विकारी नहीं होता है, अरु वेद विकारक विनाजी नय शोकादिकों करके सवेदनको विकारी देखते है, इस वास्ते वेद, सवेदनका उपादान कारण नहीं ॥ उक्त च ॥ अधिरुत्य हि यद्वस्तु, य पदार्थोविकार्यते ॥ उपादान न तत्तस्य, युक्त गोगवयादिवत् ॥१॥ इस कहने करके जो कहते हैं, कि माता पिताका चैतन्य, पुत्रके चैतन्यका उपादान कारण है, सोजी खमन हो गया तहां माता पिताके विकारी होनेसे पुत्र विकारी नहीं होता है, अरु जो जिसका उपादान होता है, सो अपने कार्यसे अजेद होता है, जैसे माटी और घट जब माता पिताका चैतन्य, पुत्रके चैतन्यके साथ अजेद रूप हुआ, तब तो पुत्रका चैतन्य, माता पिताके चैतन्यसे अजेद होना चाहिये इसी वास्ते तुमारा कहना किसी कामका नहीं है, इस हेतुसे नूतोंका धर्म वा नूतोंका कार्य चैतन्य नहीं है, इस वास्ते आत्मा सिद्ध है विशेष करके चार्वाकमतका खमन देखनां होवे, तदा सम्मतितर्क, स्याद्वाद रत्नाकरादि शास्त्र देख लेनां ॥ इति चार्वाक मत खमन ॥ इस परिच्छेदमें जो कृगुरुके लक्षण कहे हैं, वे लक्षण चाहो जैनके साधुमें होवें, चाहो अन्यमतके साधुमें होवे, उन सर्वकों कृगुरु कहनां चाहिये ॥ इति श्री तपगह्वीये मुनि श्रीबुद्धिबिजयशिष्य मुनि आनंदविजयआत्मरामविरचिते जैनतत्त्वादश कृगुरुस्वरूपनिर्णयनामा चतुर्थ परिच्छेद सपूर्ण ॥ ४ ॥

॥ इति चतुर्थ परिच्छेद सपूर्ण ॥ ४ ॥

सि है अरु दोइइय, तीनइइय, चौरिइय, इन जीवोंमें एक मन विना पांच पर्याप्ति है पंचेइय जीवोंमें उही पर्याप्ति है. १ पृथिवीकाय, २ जल काय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय, ( पवन ) इन चारोंमें असख्य जीव हैं तथा वनस्पतिकायमें जो प्रत्येक वनस्पति है, उसमें तो असख्यजीव हैं अरु साधारण वनस्पतिमें अनंत जीव है. इन स्थावर अरु त्रसोंके जघन्य तो चौदह जेद हैं मध्यम ( ५६३ ) जेद हैं अरु उत्कृष्ट अनंत जेद हैं तिनमें मध्यम चौदह जेद नरक वासीयोंके हैं अठतालीश जेद तिर्यच गतिवालोंके हैं, औ तीनसो तीन जेद मनुष्यगति वालोंके हैं ( १९८ ) जेद देवगति वालोंके हैं यह सर्व मध्यम जेद ( ५६३ ) हैं इनका विचार पूरा देखना होवे, तदा प्रज्ञापन्न सिद्धांत, तथा जीव समाप्त प्रकरणादि शास्त्रोंसे देख लेंना

प्रश्न — हे जैन ! वो इइयादिक जीव तो जीव लक्षण सयुक्त होनेसे जिव सिद्ध हो जाते हैं, परंतु पृथिवीआदि पांच स्थावरोंमें जीव कैसे हम मान लेवे ? क्योंकि पृथिवी आदिकोंमें जीवका कोइनी चिन्ह उपलब्ध नहीं होता है

उत्तर — यद्यपि पृथिवी आदिकमें प्रगट जीवके होनेका चिन्ह नहीं दीखता, तोनी अव्यक्तपणेमें जीवके चिन्हसे जीव सिद्ध होते हैं जैसे धतूरेके तथा मदिरापानादिकके नशे करके मूर्छित हुये जीवोंके व्यक्तलिंगके होनेसे जीवपणा है, तैसेही पृथिवी आदिकोंकोनी सजीव मानना चाहिये

प्रश्न — मदिरेकी मूर्छामें उड्डासादिकोंके देखनेसे अव्यक्तमेंनी चेतना लिंग है परंतु पृथिवी आदिकोंमें तैसा चेतनताका लिंग कोइनी नहीं तिनको कैसे चैतन्य माना जावे ?

उत्तरपद — जैसे तुमने कहा है, सो ऐसे है नहीं क्योंकि पृथिवीकायमें प्रथम स्व स्व आकारमें रहे हुये लवण, विडुम, पाषाणादिकोंको अर्श मांस अकुरकी तरें समान जातीय अकुरउत्पत्ति पणा है वनस्पतिकी तरें चैतन्यपणेका चिन्ह है, इस वास्ते अव्यक्त उपयोगादि लक्षणके होनेसे पृथिवी सचेतन है यह सिद्ध हुआ

प्रश्न — विडुम पाषाणादि पृथिवी कठिन रूप है, तो फेर कठिन रूप हो नेसे कैसे पृथिवी सचेतन हो सकी है ?

शरीरमात्रव्यापी कथंचित् नित्यानित्य रूप है. इनका खंजन मंजन स्त्रावावरत्नाकर, स्यावावरत्नाकरावतारिका, अनेकातजयपताका प्रमुख आखोंसें देख लेना. इस वास्ते मैने नर्दा जिखा है जो ग्रथ बड़ा जारी हो जावेगा, अरु पढ़नेवाले आलस कर जायेंगे

तहां जे जीव हैं सो दो प्रकारके हैं एक मुक्त रूप, दूसरा सत्तारी, बह दोनोही प्रकारके जीव अनादि अनंत है अरु ज्ञान दर्शन इनका लक्षण है, अरु जो मुक्त स्वरूप आत्मा है वो सर्व एक सजाव है जन्मादि क्लेशों करके वर्जित है अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंतवीर्य, औ अनंत आनंदमय स्वस्वरूपमें स्थित है, निर्विकार निरंजन ज्योति स्वरूप है

अरु जो सत्तारी जीव है, सो दो प्रकारके हैं एक स्थावर, दूसरा त्रस, उसमें स्थावरके पांच जेद हैं, १ पृथिवीकाय, २ अप्काय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय. तथा त्रस जीवके चार जेद हैं १ दोइडिय, २ तीनइडिय, ३ चारइडिय, ४ पांचइडिय स्थावर जो हैं सो सर्व एक कही स्पर्शइडिय वाले हैं रुमी, गमोला, जलोक, सुमी, इत्यादि जीव एक स्पर्शन अर्थात् शरीर इडिय, दूसरा रसनइडिय अर्थात् मुख, इन दो इडिय वाले हैं कीड़ी, जु, सुरसलो, ढोरा, इत्यादि जीव, दो पूर्वोक्त अरु एक नासिका, यह तीन इडियवाले हैं माखी, चमर, सहेतकी माखी, मँजू, धमोड़ी, बिहू, इत्यादि जीव, तीन पूर्वोक्त, अरु चवथा नेत्र, इन चार इडिय वाले हैं नारक, तीर्थच, मनुष्य, अरु देवता, ये पंचइडिय जीव हैं यह सर्व स्पर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र, कान, इन पांच इडिय वाले हैं स्थावर जीवनी दो तरेंके हैं, एक सूक्ष्म नामकर्मके उदयवाले सूक्ष्म, दूसरा बावर नामकर्मके उदय वाले बावर, यह जो स्थावर अरु त्रस जीव है, सो समुच्चय है पर्याप्ति वाले हैं इन है पर्याप्तिका नाम लिखते हैं १ आधारपर्याप्ति, २ शरीर पर्याप्ति, ३ इडियपर्याप्ति, ४ आसोष्वासपर्याप्ति, ५ नाषापर्याप्ति, ६ मन पर्याप्ति.

अथ पर्याप्तिका स्वरूप लिखते हैं आधार (जो जन) तिसके ग्रहणकी जो शक्ति, तिसका नाम आधारपर्याप्ति कहते हैं १ शरीर रचनेकी जो शक्ति, तिसका नाम शरीरपर्याप्ति कहते हैं २ इडिय रचनेकी शक्ति, सो इडियपर्याप्ति है अैसेंही सर्वत्र जान लेना जिस जीवके पूर्वोक्त है शक्ति, अधूरी हैं, उसकू अपर्याप्ति कहते हैं स्थावर जीवोंमें आदिकी चार पर्या



शीही हैं, ऐसे वैशेषिक कहते हैं, तथा शीतकालमें शीतके बहुत पडनेसे प्रातः कालमें तलावादिकोंके पश्चिम दिशामें खड़े हो कर जब तलावादि देखियें, तदा तिस जलसेती निकलता हुआ वाष्पका समूह दिखता है, सो नी जीवहेतुकही है, तिसका प्रयोग ऐसे हैं कि शीतकालमें जो वाष्प है, सो उष्ण स्पर्शवाली वस्तुसे होता है वाष्प होनेसे शीत कालमें शीत जल करके सींचे हुए मनुष्य शरीर वाष्पवत् अरु जो उकुडिका कूड़े कचवरमें से धूआ वाष्प निकलता है, तदां नी हम पृथिवीकायके जीव मानते हैं इन हेतुओंसे जल सजीव सिद्ध होता है

प्रश्न - तेजस्कायमें जीव किस तरें सिद्ध होता है ?

उत्तर - जैसे रात्रिमें खद्योतका शरीर जीव शक्तिसे बना हुआ, प्रकाश वाला है, ऐसे अगारादिकनी प्रकाशमान होनेसे सचेतन हैं तथा जैसे ज्वरकी उष्मा जीवके प्रयोग बिना नहीं होती, ऐसेही अग्निमेंनी गरमी जीवोंके बिना नहीं है क्योंकि सूतकके शरीरमें ज्वर कदापि नहीं होता है ऐसे अन्वय व्यतिरेक करके अग्नि सचित्त जाननी यहां यह प्रयोग है कि आत्माके सयोगसे प्रगट नया है अगारादिकोंको प्रकाश परिणाम शरीर स्थ होनेसे खद्योत वेद परिणामवत् तथा आत्मा सयोग पूर्वक शरीर स्थ होनेसे ज्वरोष्मवत् अगारादिकोंमें उष्णता है ऐसेनी मत कहना कि सूर्यके उष्मके साथ अनेकांतिक हेतु है, तो सूर्यादिकोंमें जो उष्मा है, सो नी आत्मसयोग पूर्वकही हम मानते हैं, तथा अग्नि सचेतन है, क्योंकि यथायोग्य आहारके करनेसे, वृद्धिआदि विकारके उपलब्ध होनेसे पुरुषके शरीरवत् इत्यादि लक्षणों करके अग्निको सचेतनता है

प्रश्न - वायुकायमें ( पवनमें ) सचेतनताकी सिद्धि कैसे करोगे ?

उत्तर - जैसे देवताका शरीर शक्तिके प्रभाव करके, अरु मनुष्योंका शरीर अजनादि विद्यामंत्रके प्रभाव करके अदृश्य हो जानेसे नेत्रोंसे नहीं दिखता, तो नी विद्यमान चेतना वाला है, ऐसे सूक्ष्म परिणाम होनेसे परमाणुकी तरें वायुकाय जो नेत्रोंसे नहीं दीखता तो नी विद्यमान चेतना वाला है तथा अग्नि करके दग्ध पापाण स्वर्गत अग्निवत् प्रयोग यह है कि चेतनावान् वायु है, बिना दूसरायोंके प्रेरणसे, नियम करके तिर्यग्ग

उत्तर -जैसे शरीरमें अस्थि अर्थात् हाड अनुगत है, सो कठिनजी है तोजी सचेतन है, ऐसेही जीवानुगत पृथिवीका शरीरजी सचेतन है. अथवा पृथिवी, अथ, तेज, वायु, वनस्पति, इनके शरीर जीव सहित है. ठेप, जेय, उत्क्षेप्य, जोग्य घ्रेय, रसनीय, स्पृश्य, इव्य होनेसे. सास्ना विषाणादि सघातवत् पृथिवी आदिकोको ठेयत्वादि जो दिखते है, तिनको को इजी गोप नहीं सका है अरु यहजी मत कहना कि पृथिवी आदिकोंको जीव शरीरत्व जो साधना है, सो अनिष्ट है, क्योंकि सर्व पुज्य इव्यको हम इव्य शरीर मानते है, अरु जीव सहित तथा जीव रहित जो विशेष है सो ऐसे है शस्त्र करके अनुपदत जो पृथिवी आदिक है सो हाथ पगके सघातवत् सघात न होनेसे कदाचित् सचेतन है, ऐसेही कदाचित् शस्त्रोपदत होनेसे हाथादिकोकी तरें अचेतनजी है, सो अचेतनही है

प्रश्न -प्रश्रवणवत् अर्थात् मूत्रकी तरें जीवके लक्षण न होनेसे जल जीव नहीं है

उत्तर -हेतु अति६ होणेसे यहजी कहना ठीक नहीं है तथाहि हाथीका शरीर कलज अवस्थामें (अधुना उत्पन्न होयेको) इवपणा अरु सचेतन पणा देखते हैं, ऐसेही जलमेंनी जानना तथा अनेमें रस मात्र है परंतु अवयव को३ उत्पन्न हुआ नहीं औ व्यक्त (हाथ पगादिक) जी नहीं, तोजी सचेतन है, इस उपमासे जलजी सचेतन है यह स्तमें प्रयोग है शस्त्र करके अनुपदत हुआ इवरूप होनेसे हस्तिशरीरके उपादानजून कलजवत् जल सचेतन है इस हेतुमें विशेषणके उपादानसे अर्थात् ग्रहणसे प्रश्रवण दूधादिकोंमें अजिचार नहीं तथा अनुपदत इव होनेसे अनेमें रहे कलजवत् सात्मक जल है तथा हिमादि किसीक अवस्थामें अप्काय होनेसे इतर यवकवत् सचेतन है तथा किसी जगे जूमि खननेसे स्वाभाविक सजव होनेसे मैमकवत् सचेतन जल है, अथवा आकाशमें उत्पन्न हुआ जल बावलावि विकारके हुवा स्वत ही अर्थात् आपही उत्पन्न हो करके पडनेसे मत्स्यवत् सचेतन है तथा शीतकालमें बहुत शीतके पडते हुये नवी आदिकोंमें अल्पके हुआ अल्प अरु बहुतक हुआ बहुत, उष्मा देखते हैं, सो उष्मा सजीव हेतुकही है अल्पबहुत मिश्रित मनुष्योंके शरीरोंसे जैसे अल्प बहुत उष्म होता है जलमें शीत रूप

नहीं बैठ सका है, ऐसेही जीव पुञ्ज स्थित तो आपही होते हैं, परंतु अपेक्षा कारण अधर्मास्तिकाय है ॥ इति अधर्मास्तिकाय ॥

३ तीसरा आकाशास्तिकाय इव्य है, इसका स्वरूपजी धर्मास्तिकायवत् जानना, परंतु इतना विशेष है कि यह इव्य लोकालोक सर्वव्यापी है, अरु अवगाह दान लक्षण है, जीवपुञ्जके रहनेमें अवकाश दाता है, यह तीनों इव्य आपसमें मिले दूये हैं जहा लजि आकाशमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय है, तहां लजि लोक है, अरु जहां केवल एकजा आकाशही है, और कोई वस्तु नहीं, तिसका नाम अलोक है इति आकाश इव्य

४ चवथा पुञ्जास्तिकाय इव्य है, पुञ्ज नाम परमाणुओंकानी है, अरु जो परमाणुओंका घट पटादि कार्य है, उसकोंजी पुञ्जही कहते हैं, एक परमाणुमें एक वर्ण है, एक रस है, एक गंध है, दो स्पर्श है, और कार्यही जिनका लजि है, वर्णसे वर्णांतर, रससे रसांतर, गंधसे गंधांतर, स्पर्शसे स्पर्शांतर हो जाते हैं यह परमाणु इव्यरूप करके अनादि अनंत है, पर्यायस्वरूप करके सादि सांत है, इन परमाणुओंका जो कार्य है, सो कोईक प्रवाहसे तो अनादि अनंत है, अरु कोई सादि सांतजी है, जो यह जड दीखता है, सो सर्व इन परमाणुओंका कार्य है सूकी दुइ व नस्पति सर्व अरु अग्नि आदिक शस्त्रों करके परिणामांतरकों प्राप्त दूये पृथिव्यादिक सर्व पुञ्ज हैं, समुच्चय पुञ्ज इव्यमें पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध, आठ स्पर्श, पांच सस्थान, उसमें काजा, नीजा, रक्त, पीत, शुक्ल, यह पांच तो वर्ण है तीक्ष्ण, कटुआ, कषाय, खाटा, मीठा, यह पांच रस है सुगंध, दुर्गंध, यह दो प्रकारकी गंध है खरखरा अर्थात् कणोर, सु कोमल, हलका, नारी, शीत, उष्ण, चीकणा, रुखा, यह आठ स्पर्श है इनसे अधिक जो वर्णादि हैं, सो सर्व इनहीके मिलनेसे हो जाते हैं इन पुञ्जोमें अनंत शक्तियां अनंत स्वभाव हैं १ इव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ जाव, इत्यादि तिस तिस निमित्तोंके मिलनेसे विचित्र परिणाम हो जाते हैं इति पुञ्जइव्य ॥ ४ ॥

५ पांचमा कालइव्य है, सो प्रसिद्ध है यह पांच इव्य अजीव है, सो निमित्त जैन भेताबराचार्य श्रीसिद्धसेनदिवाकरकृत सम्मतितर्क ग्रंथमें पांच लिखे हैं सो कहते हैं, १ काल, २ स्वभाव, ३ नियति, ४ पूर्वकृत

ति होनेसे, गवाश्वादिवत् तिर्यग्गतिके नियम करनेसे, परमाणुके सावध निचार नहीं ऐसे वायु शस्त्र करके अनुपहत सचेतन है

५ अरु वनस्पतिमें तो प्रत्यक्ष प्रमाणसे जीव सिद्धही है इस वस्ते यहां विस्तारसे नहीं लिखा आगमजी सर्वज्ञका कथन करा हुआ पृथिवी, जल, अग्नि, पवन अरु वनस्पतिमें जीवका होना कहता है अरु जो कोइ दीडिय, त्रीडिय, चतुरिडिय अरु पंचेडियमें जीव नहीं मानते हैं, तो तिन मूढोके न माननेसे कुछ हानी नहीं यह सक्षेपसे जीवोंका स्वरूप लिखा है जब विस्तारसे देखना होवे, तब जैनमतके सिद्धांत देख लेने ॥ इति प्रथम जीवतत्त्व संपूर्ण ॥

अथ दूसरा अजीव तत्त्व लिखते हैं अजीव वस्तुओं कहते हैं, कि जो जीवके लक्षणोंसे विपरीत होवे, जो ज्ञानसे रहित होवे, और जो रूप, रस, गंध, अरु स्पर्शवाला होवे, नर अमरादि जन्ममें न जावे, अरु ज्ञानावरणीया विकर्मका कर्ता न होवे, अरु तिनोके फलका भोगने वाला न होवे, ब्रह्मस्वरूप होवे, तिसको अजीव कहते हैं, सो अजीव इष्ट पांच प्रकारके हैं उसका नाम कहते हैं, १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आकाशास्तिकाय, ४ पुञ्जलास्तिकाय, ५ काल

१ तिनमें जो धर्मास्तिकाय है, सो लोकव्यापी है, और नित्य है, अवस्थित है, अरूपी है, अंशरूप प्रवेशी है, जीव अरु पुञ्जकी गतिमें उपरि नक है, यद्यपि जीव अरु पुञ्ज स्वशक्तिसे चलते हैं, तो भी चलनेमें धर्मास्तिकाय अपेक्षा कारण है जैसे मछली जलमें तरती तो अपनी शक्तिसे है, परंतु अपेक्षा कारण जल है ऐसेही जीव पुञ्जको गति साहायक धर्मास्तिकाया है जहां लगे यह धर्मास्तिकाया है, तहां लगे लोककी मर्यादा है जे कर धर्मास्तिकाया न मानीये, तो लोकालोककी मर्यादा न रहेगी अरु जहां लगे धर्मास्तिकाया है, तहां लगे जीव पुञ्ज गति करते हैं इसका पूरा स्वरूप जैनमतके ग्रंथ पढ़ेबिना नहीं जान सका है ॥ इति ॥ १ ॥

२ दूसरा अधर्मास्तिकाय इष्ट है इसका सर्व स्वरूप धर्मास्तिकायकी तरें जानना परंतु इतना विशेष है, कि यह इष्ट, जीव पुञ्जको स्थिति साहायक है जैसे पथिक जन जब चलता चलता थक जाता है, तब किसी वृक्षादिककी छायामें बैठता है, सो बैठता तो वो आपही है, परंतु आश्रयबिना

प्रति एक वर्ष तां६ दीये है इसी कारणसे जैनमतमें प्रथम दानधर्म है तथा जैनमतके शास्त्रमें औरनी केई तरेंसें पुण्यका उपाङ्कन लिखा है

अथ पुण्यका फल बैतालीस प्रकार करके जोगनेमें आता है, सो बैतालीस प्रकार लिखते हैं १ जिसके उदयसे जीव शाता जोगता है, सो शातावेदनीय, २ जिसके उदयसे जीव ऋत्रियादि उच्च कुलमें उत्पन्न होता है, सो उच्चगोत्र, ३ जिसके उदयसे जीव मनुष्य गतिमें उत्पन्न होता है, सो मनुष्यगति, ४ जिसके उदयसे जीव देवगतिमें उत्पन्न होता है, सो देवगति, ५ जिसके उदयसे जीव अपांतराल गतिमें नियतदेश अनुभेणी गमन करता है, अरु नियत मर्यादापूर्वक अगोका विन्यास, अर्थात् स्थापन करनेवाली नामकर्मकी प्रकृतिकों आनुपूर्वी कहते हैं, उसमें जो मनुष्य गतिमें आने वाली जीवके उदयमें है, सो मनुष्यानुपूर्वी, ऐसेही ६ देवानुपूर्वी, ७ जिसके उदयसे जीव पंचेंद्रिय पणा पाता है, सो पंचेंद्रिय जाति अथ पांच शरीर कहते हैं ८ जिसके उदयसे जीव औदारिक वर्गणाके पुञ्जलोंको ग्रहण करके औदारिक शरीरकी रचना करता है, अर्थात् औदारिक शरीर पणो परिणाम करता है, सो औदारिक शरीर नाम कर्मकी प्रकृति है, ऐसेही ९ वैक्रियक, १० आहारिक, ११ तैजस, १२ कार्मण, इन पांचो शरीरोंकी प्रकृतियोंका अर्थ कर लेना तथा अगोपांग तीन है, उसमें अग सो शिर प्रमुख, उपांग सो अंगुली प्रमुख हैं, शेष अगोपांग हैं, यथा १ शिर, २ छाती, ३ पेट, ४ पीठ, ५ दो बाहु, ६ दो सायलां, यह आठ अंग हैं, तथा अगुल्यादि उपांग है, शेष नखादि अगोपांग है, जिसके उदयसे जीवको आदिके तीन शरीरोंमें अगोपांगकी उत्पत्ति होवे, तिसका नाम तिन शरीरके अगोपांग है सो यह है, १३ औदारिक अगोपांग, १४ वैक्रिय अंगोपांग, १५ आहारक अगोपांग १६ जिसके उदयसे जीव आदिका सदनन जिसका नाम वज्र रूपननाराच है, तहां वज्र नाम कीलिका है, अरु रूपन नाम परिवेष्टन पट्ट अर्थात् उपर लपेटनेका दाढ़, तथा नाराच सो मर्कटवध इन तीनों रूपों करके जो उपलक्षित है, तिसको वज्ररूप ननाराच सदनन कहते हैं दाढ़के सचय सामर्थ्यका नाम सदनन है, यह सदनन औदारिक शरीर वालोमेंही होता है, १७ जिसके उदयसे जी

कर्म, ५ पुरुषाकार. इन पांचोंमेंसुं एकको माने, तो वो मिथ्याज्ञान । मिथ्यादृष्ट है, अरु इन पांचोंके समवायको माने, तो सम्यक्ज्ञान अरु सम्यक्दृष्ट है, इन पांच निमित्तोंमेंसुं १ काल, २ स्वभाव, ३ नियति, इन नो निमित्तोंका स्वरूप क्रियावादीके मतमें लिख आये है अरु चठपा । कृत कर्म, उनका स्वरूप आगे कर्मोंके स्वरूपमें लिखेगे अरु पांचमा पुरुषार, सो जीवके उद्यमका नाम है. इन पांचों निमित्तोंसें जगत्की प्रवृत्ति हो रही है, इन निमित्तोंहीसें नरकादि गतियोंमें जीव जाते हैं, रु सुख दुःखका फल जोगते है, इन निमित्तोंके बिना फलका दाता । राविक कोइनी नहीं, जे कर कोइ वादी इन पांचो निमित्तोंके समवाय ईश्वर माने, तब तो हमनी ईश्वर कर्ता मान लेवेंगे, क्योंकि जैनमतकी स्वगीतामें लिखा है, कि अनादि जो इव्यमें इव्यत्व शक्ति है, सोइ सर्व दार्थोंको उत्पन्न करती है, औ लयनी करती है, सो शक्ति चैतन्याऽचैतन्य वि अनन्त स्वभाव वाली है, तिसको कर्ता ईश्वर माननेसे जैनमतकी हानी नहीं है ॥ इति अजीवतत्त्व संपूर्ण ॥ २ ॥

३ अथ पुण्यतत्त्व लिखते हैं प्रथम तो पुण्य उपार्जन करनेका नव कार हैं, “उक्त च स्थानांगसूत्रे ॥ अन्नपुण्ये पाणपुण्ये वस्त्रपुण्ये लेणपुण्ये सयणपुण्ये मणपुण्ये वयपुण्ये कायपुण्ये नमोक्कारपुण्ये इति सूत्रं ॥” ध्याख्या — १ पात्र तांइ अन्नका दान करनेसे जो तीर्थंकर नामादि पुण्य प्रकृतिका बंध हो तिसका नाम अन्न पुण्य है ऐसेही २ पीनेको जल देवे, ३ वस्त्र देवे, ४ रनेको स्थान देवे, ५ सोने बैठनेको आसन देवे, ६ गुणिजनको देख कर नमें तोष धरे, ७ बचन करके गुणिजनोंकी प्रशंसा करे, ८ काया कर पर्युपासन अर्थात् सेवा करे, ९ गुणिजनको नमस्कार करे यह आतमकी जो कही, सो कुछ जैनीयोंकेही देनेसें नहीं, किंतु किसी मत वाद कोइ क्यों न हो, कोइनी अनुकपा करके जिसको दान देवेगा, वो पुण्य उपार्जैगा, परंतु इतना विशेष है, कि पात्रको जो दान देना है, सो पुण्य अरु मोक्ष इन दोनोंकाही हेतु है, अरु जो अनुकपा करके सर्वजनोंके देवेगा, सो केवल पुण्यही उपार्जैगा जैनमतके किसी शास्त्रमें पुण्य करने निषेध नहीं क्योंकि जैनमतके रूपनदेवादि चोवीश तीर्थंकर जये हैं, नोंनेंजी वीक्षा लेनेसें पहिलां एक क्रोड, आठ लाख, सोनइये दिन कि

र नामकर्म, ३४ जिसके उदयसे जीवके शिर प्रमुख अवयव छुंन होते हैं, सो छुंननामकर्म, ३५ जिसके उदयसे जीव सौजाग्यवान् होता है, सो सुजगनामकर्म, ३६ जिसके उदयसे जीवका स्वर कोकिजावत् रमणिक होवे, सो सुस्वर नामकर्म, ३७ जिसके उदयसे जीवका उपादेय वचन होवे, जो कुछ कहे, सो हो जावे, सो आदेय नामकर्म, ३८ जिसके उदयसे जीवकी विशिष्ट कीर्ति ( यश ) जगत्में विस्तरे, सो यशोनामकर्म, ३९ जिसके उदयसे जीवकों चोशठ इष्ट पूजा करते हैं, अरु उपदेष्टा धर्म तीर्थका कर्त्ता होवे, सो तीर्थकर नामकर्म, ४० तिर्यचोंका आयु, ४१ मनुष्यायु, ४२ देवायु आयु उसकों कहते हैं कि जिसके उदयसे तिर्यचादि जन्ममें जीव जाता है, जिस्से यह पूर्वोक्त तीन आयुकी जीवकों प्राप्ति होती है, १० तीन आयुकी प्रकृति जाननी यह बैतालीस प्रकार करके पुण्य फल जोगनेमें आता है ॥ इति पुण्यतत्त्व संपूर्ण ॥ ३ ॥

४ अथ चौथा पापतत्त्व लिखते हैं पाप उसकों कहते हैं, कि जो आत्माका आनन्द रस पीवे, यह पाप जो है, सो पुण्यसे विपरीत नरकादि फलका प्रवर्त्तक होनेसे अछुन है, आत्माके साथ सबध है, कर्मपुञ्ज लरूप है, यद्यपि बधतत्त्वके अंतर्भूतही पुण्य पाप है, तोनी न्यारे जो कहे हैं, सो पुण्य पाप विषे नानाविध परमतत्वेद निरासार्थ है, सो परमत यह है, सो कहते हैं कोइक मत वालोंका यह कहना है, कि एक पुण्यही है, परंतु पाप नहीं तथा कोइक मतवाले कहते हैं, कि एक पाप ही है, परंतु पुण्य नहीं तथा कोइक कहते हैं कि पापपुण्य दोनो आपसमें अनुविद्ध स्वरूप हैं, मेचक मणि सरीखे, सो मिश्र सुख दुःख फलके हेतु हैं, इस वास्ते साधारण पुण्य पाप एक वस्तु है कोइक ऐसे कहते हैं कि मूलसेती कर्मही नहीं है, सर्व जगत्में स्वजावसेही विचित्रता सिद्ध है यह सर्व पूर्वोक्त मत मिथ्या हैं, क्योंकि सुख दुःख दोनो न्यारे न्यारे अनुभवमें आते हैं, तिस वास्ते तिनके कारणभूत पुण्य पापजी स्वतंत्रही अंगीकार करणे योग्य हैं, परंतु एकिला पाप वा एकिला पुण्य वा मिश्रित मानने ठीक नहीं

अथ कर्माजाववादी नास्तिक अरु वैदातिक कहते हैं, कि पुण्य पाप जो

वको आदिके समचतुरस्र सस्थानकी प्राप्ति होवे, तहां सम हे चारों अक्ष जिसके तुल्य शरीर लक्षण युक्त प्रमाण सहित, ऐसा आद्य सस्थान सुर राकार मनोहर होवे, सो समचतुरस्र सस्थान नाम कर्मकी प्रकृति जान नी थव वर्ण, रस, गंध, स्पर्श, यह चारो कहते है तिनमें जिसके उदय से १० वर्ण रुष्णादिक, १९ रस तिकादिक, २० गंध सुरज्यादिक, २१ स्पर्श मृड्यादिक, यह चारो गुन होवे, सो वर्णादि चार प्रकृति जाननी. २२ जिस कर्मप्रकृतिके उदयसे जीवका शरीर न तो जारी होवे, जिसको जीव उग न सके, अरु नतो हलका होवे, जो पवन करके उठ जावे, तिसका नाम अगुरु लघु है, तिसकी प्राप्ति होवे, सो अगुरु लघु नामकर्म, २३ जिसके उदयसे प्राणी परकों हणो, अरु शरीरकी आकृति ऐसी होवे जिसके देखनेसे दूसरोंको अजिजव होवे, सो पराघात नाम कर्म, २४ जिसके उदयसे उच्चासन लब्धि अर्थात् उच्चास लेनेकी शक्ति, आत्माको होती है, सो उच्चास नामकर्म, २५ जिसके उदयसे जीव प्रकाश अरु आतप शरीर पावे है, तिसका नाम आतप नामकर्म, २६ जिसके उदयसे जीव, उष्ण प्रकाशरूप उद्योत वाला शरीर पाता है, सो उद्योत नामकर्म, २७ जिस कर्मके उदयसे जीव विहायनाम आकाशका है, तिसमें जो गति सो विहायोगति, सो राजहस सरस्वी गति होवे, सो सुविहायोगति नामकर्म, २८ जिसके उदयसे जीवके शरीरके अगोपांग विकोंकों नियतस्थानमें स्थापने वाला सूत्रधार ( कारीगर ) समान अर्थात् नसा, जाल, माथेकी खोपडीके दाढ़, आंख, कानके पडवे, केश, नखा दि सर्व शरीरके अवयवोंको रचनेवाला निर्माण नामकर्मकी प्राप्ति हो वे, सो निर्माण नामकर्म, २९ जिसके उदयसे जीवको व्रत पणोकी प्राप्ति होवे, उष्णादि करके तप्त दूआ विवक्षित स्थानसे ठायादिकमें जा नां, औ दो इडियादिक पर्यायका जो फल जोगनां पावे, सो व्रत ना मकर्म, ३० जिसके उदयसे जीव बादर अर्थात् स्थूल शरीर वाला होता है, सो बादर नामकर्म, ३१ जिस कर्मके उदयसे जीव ठ पर्याप्ति पीठें कही है वो पूर्ण करता है, सो पर्याप्तनामकर्म, ३२ जिसके उदयसे प्रत्येक एक एक जीवके एक एक शरीर होता है सो प्रत्येक नामकर्म, ३३ जिसके उदयसे जीवको हाडादि अवयव स्थिर निश्चल होते है, सो स्थि



दिक पञ्च हिंसादिक क्रियाकाजी श्लाघा मासजही निर्दय आदि दृष्ट फलही है, तो फेर काहेको अदृष्ट धर्माधर्मका फल कल्पना करना? क्योंकि लोक जो हैं सो बाहुल्यता करके दृष्ट फलमेंही प्रवृत्त होने हैं, खेती वणिज्यादि हिंसादिक क्रियामें बहुत लोक प्रवृत्त होते हैं, अरु अदृष्ट दान फलादि क्रियामें थोड़े लोक प्रवृत्त होते हैं इस वास्ते रुपि हिंसादि अशुच क्रियायोका अदृष्टफल पापरूप हम नहीं मानते

उत्तरपक्ष — जे कर तुमारा कहनां ठीक होवे, तब तो परजवमें फलके अज्ञावसें मरणके अनंतरही सर्व जीव विना यत्नके मोक्ष हो जावेंगे, तब तो प्राय सत्तार, शून्य हो जावेगा, तब सत्तारमें डखी कोइनी न होवेगा, दानादि शुचक्रियाके करने वाले तथा तिसका शुच फल नोगने वाले ही रहने चाहिये, परंतु सत्तारमें डखी बहुत दीखते हैं, अरु सुखी थोड़े दीखते हैं, तिस करके जाना जाता है कि जे रुधी, वाणिज्य, हिंसादिक्रिया निबधन अदृष्टपाप रूप फल, यह डखित जीवोंको है, अरु सुखी जीवोंको दानादि अदृष्ट धर्मका फल है

वादी कहता है कि जो सुखी है, वो हिंसादि क्रियासें है, अरु जो डखी है, वो धर्म दानादिकके फलसें है ऐसे क्यों न हो जावे?

उत्तर — ऐसे नहीं होता है, क्योंकि अशुचक्रिया हिंसादिकके करने वालेही बहुत हैं, अरु शुचक्रिया दानादिकके करने वाले थोड़े हैं, यह कारणानुमान है अथ कार्यानुमान कहते हैं कि जीवोंको आत्मत्वके अविशेषनी दृष्टा नर पश्यादिकोंकी देहोंमें कार्य होनेसें विचित्रताका कारण है, जैसे घटका दम, चक्र, चीवरादि सामग्री सयुक्त कुजकार तथा ऐसे नी मत कहनां कि दीखते जो है माता, पिता, सोइ इस देहके कारण है नतु पुण्य पाप, ऐसेनी मत कहनां क्योंकि माता, पिता, एक सरीखेनी है, तोनी पुत्रोंके देहमें विचित्रता देखते हैं, सो विचित्रता अदृष्ट ( शुच शुच कर्मके ) विना नहीं हो सकी है, इस वास्ते जो शुच देह है, सो पुण्यका कार्य है, अरु जो अशुच देह है, सो पापका कार्य है, यह कार्यानुमान है सर्वज्ञके वचन प्रमाणसें पुण्य पापकी सत्ता सिद्धही है, विशेष पुरुषने विशेषावश्यककी टीका देख लेनी

पाप अगारह प्रकारसें बधाता है, सो व्याप्ती प्रकारसें नोगनेमें आता

है, सो आकाशके फूज सदृश थसत् जानने, परन्तु सत् नही, तो फेर पुण्य पापके फल जोगनेके स्थान नरक स्वर्ग क्यों कर माने जावे?

उत्तर—पुण्य पापके थजावसे सुख ड ख निर्हेतुक होनेसे उत्पन्न होने चाहियें, सो प्रत्यक्ष विरोध है, सोइ दिखाते हैं, मनुष्यपणा सदृश है, तो जो कोइ स्वामी है, कोइ दास है, कोइ थपणाही उदर जर सके है, कोइ थपणाजो उदर नहीं जर सके है, कोइ देवताकी तरें निरतर सुख जोग विलास करते हैं, कितनेक नारकीकी तरें ड ख जोग रहें हैं, इस वास्ते थ जुनूयमान सुख ड खाके निवधनजून पुण्य पाप जरूर मानने चाहियें ज ब पुण्य पाप माने, तब तिनोके उत्कृष्ट फल जोगनेके स्थान जो नरक स्वर्ग है, सोनी माने गये, जे कर न मानोगे, तब थई जरतीय न्यायका प्रसंग होवेगा, आधा शरीर बूढा, आधा छुवान इसमें यह प्रयोग अर्थात् थ नुमानजी है, सुख ड ख कारण पूर्वक है, थकुरवत् कार्य होनेसें इसीवास्ते जे सुख ड खके कारण हैं, सो मानने चाहियें जैसे थकुरका बीज

पूर्वपक्ष—नीलादिक जे मूर्त्त पदार्थ हैं, जैसे वे नीलादिक स्वप्रतिजाति थमूर्त्त ज्ञानके कारण हैं, ऐसेही थन्न, फूज माला, चदन, स्त्रीयादिक मूर्त्त दृश्यमानही सुख थमूर्त्तोंके कारण होवेंगे सर्प विष, कर्मआदिक सुखोंके कारण हैं, तो फेर काहेकों थदृष्ट पुण्य पापोंकी कल्पना करते हो?

उत्तरपक्ष—यह तुमारा कहनां थयुक्त है, क्योंकि इस कहनेमें थनिचार है, तथादि ॥ दो पुरुषोंके पास तुल्य साधनजी है, तोजी फलमें बड़ा जेव दिखता है, तुल्य थन्नादिके जोगनेमेंजी किसीकों आख्याद अर्थात् दर्ष दिखता है थरु दूसरेकों रोगोत्पत्ति देखते हैं, यह फलजेव थवश्य स कारण है, नहीं तो नित्य सत् नित्य थसत् होनां चाहियें, क्योंकि जो व स्तु कार्य कवे होवे, कवे न होवे, सो कारणके बिना नहीं होता है, थथ वा कारणानुमानसें कार्य पुण्य पाप जाने जाते हैं, तहां कारणानुमान यह है, कि दानादि छजक्रियाका थरु हिंसादि थछजक्रियाका फलजूनत कार्य कारण होनेसें है. कृष्यादि क्रियावत् जो इन क्रियायोंका फलजूनत कार्य है, सो पुण्य पाप जानने जैसें खेती करनेवालेकी क्रियाका फल शालि, यव, गेहू, आदिक है

पूर्वपक्ष—जैसें कृष्यादि क्रियाका दृष्ट फल शाक्यादिक है, तैसें दाना

दिक पञ्च हिंसादिक क्रियाकाजी श्लाघा मासजन्ही निर्दय आदि दृष्ट फलही है, तो फेर काहेको अदृष्ट धर्माधर्मका फल कल्पना करना ? क्योंकि लोक जो हैं सो बाहुल्यता करके दृष्ट फलमेंही प्रवृत्त होने हैं, खेती वणिज्यादि हिंसादिक क्रियामें बहुत लोक प्रवृत्त होते हैं, अरु अदृष्ट दान फलादि क्रियामें थोड़े लोक प्रवृत्त होते हैं इस वास्ते रुपि हिंसादि अशुच क्रियायोका अदृष्टफल पापरूप हम नहीं मानते

उत्तरपक्ष — जे कर तुमारा कहना ठीक होवे, तब तो परजवमें फलके अज्ञावसें मरणके अनंतरही सर्व जीव बिना यत्नके मोक्ष हो जावेंगे, तब तो प्राय ससार, शून्य हो जावेगा, तब ससारमें डखी कोइनी न होवेगा, दानादि शुचक्रियाके करने वाले तथा तिसका शुच फल नोगने वाले हो रहने चाहिये, परंतु ससारमें डखी बहुत दीखते हैं, अरु सुखी थोड़े दीखते हैं, तिस करके जाना जाता है कि जे रुपी, वाणिज्य, हिंसादिक्रिया निवधन अदृष्टपाप रूप फल, यह डखित जीवोंको है, अरु सुखी जीवोंको दानादि अदृष्ट धर्मका फल है

वादी कहता है कि जो सुखी है, वो हिंसादि क्रियासें है, अरु जो डखी है, वो धर्म दानादिकके फलसें है ऐसे क्यों न हो जावे ?

उत्तर — ऐसे नहीं होता है, क्योंकि अशुचक्रिया हिंसादिकके करने वालेही बहुत हैं, अरु शुचक्रिया दानादिकके करने वाले थोड़े हैं, यह कारणानुमान है अथ कार्यानुमान कहते हैं कि जीवोंको आत्मत्वके अविशेषज्ञी द्वारा नर पशवादिकोंकी देहोंमें कार्य होनेसें विचित्रताका कारण है, जैसे घटका दम, चक्र, चीवरादि सामग्री सयुक्त कुजकार तथा ऐसे नी मत कहना कि दीखते जो है माता, पिता, सोइ इस वेदके कारण है नतु पुण्य पाप, ऐसेनी मत कहना क्योंकि माता, पिता, एक सरीखेनी है, तोनी पुत्रोंके वेदमें विचित्रता देखते हैं, सो विचित्रता अदृष्ट ( शुच शुच कर्मके ) बिना नहीं हो सकी है, इस वास्ते जो शुच वेद है, सो पुण्यका कार्य है, अरु जो अशुच वेद है, सो पापका कार्य है, यह कार्यानुमान है सर्वज्ञके वचन प्रमाणसें पुण्य पापकी सत्ता सिद्ध हो है, विशेष पार्थ पुरुषने विशेषावश्यककी टीका देख लेनी

पाप अथगर्ह प्रकारसें बधाता हैं, सो व्याप्ती प्रकारसें नोगनेमें आता

हैं, सो आकाशके फूल सदृश अथवा ज्ञानने, परन्तु सत् नहीं, तो फेर पुण्य पापके फल जोगनेके स्थान नरक स्वर्ग क्यों कर माने जावे?

उत्तर—पुण्य पापके अज्ञावसे सुख दुःख निर्हेतुक होनेसे उत्पन्न होने चाहियें, सो प्रत्यक्ष विरोध है, सोइ दिखाते हैं, मनुष्यपणा सदृश है, तो जो कोइ स्वामी है, कोइ दास है, कोइ अपणाही उदर जर सके है, कोइ अपणाजी उदर नहीं जर सके है, कोइ देवताकी तरें निरतर सुख जोग विनास करते हैं, कितनेक नारकीकी तरें दुःख जोग रहें हैं, इस वास्ते अ नुन्यमान सुख दुःखाके निबधननूत पुण्य पाप जर मानने चाहियें ज ब पुण्य पाप माने, तब तिनोके उत्कृष्ट फल जोगनेके स्थान जो नरक स्वर्ग है, सोजी माने गये, जे कर न मानोगे, तब अर्ध जरतीय न्यायका प्रसंग होवेगा, आधा शरीर बूढा, आधा छुवान इसमें यह प्रयोग अर्थात् अनुमानजी है, सुख दुःख कारण पूर्वक हैं, अकुरवत् कार्य होनेसे इसीवास्ते जे सुख दुःखके कारण हैं, सो मानने चाहियें जैसें अकुरका बीज

पूर्वपक्ष—नीलादिक जे मूर्त्त पदार्थ हैं, जैसें वे नीलादिक स्वप्रतिभासि अमूर्त्त ज्ञानके कारण हैं, ऐसेंही अन्न, फूल माला, चदन, स्त्रीयादिक मूर्त्त दृश्यमानही सुख अमूर्त्तोंके कारण होवेंगे सर्प विष, कर्मआदिक सुखोंके कारण हैं, तो फेर काहेको अदृष्ट पुण्य पापोंकी कल्पना करते हो?

उत्तरपक्ष—यह तुमारा कहनां अशुक्त है, क्योंकि इस कहनेमें व्यभिचार है, तथाहि ॥ दो पुरुषोंके पास तुल्य साधनजी है, तोनी फलमें बड़ा जेव दिखता है, तुल्य अन्नादिके जोगनेमेंनी किसीको आल्हाद अर्थात् हर्ष दिखता है अरु दूसरेको रोगोत्पत्ति देखते हैं, यह फलजेव अवश्य स कारण है, नहीं तो नित्य सत् नित्य असत् होना चाहियें, क्योंकि जो वस्तु कार्य कवे होवे, कवे न होवे, सो कारणके बिना नहीं होता है, अथवा कारणानुमानसे कार्य पुण्य पाप जाने जाते हैं, तहां कारणानुमान यह है, कि दानावि घृणक्रियाका अरु दिसावि अघृणक्रियाका फलनूत कार्य कारण होनेसे है कृष्यावि क्रियावत् जो इन क्रियायोंका फलनूत कार्य है, सो पुण्य पाप जानने जैसें खेती करनेवालेकी क्रियाका फल शालि, यव, गेहू, आदिक है

पूर्वपक्ष—जैसें कृष्यावि क्रियाका दृष्ट फल शाल्यादिक है, तैसे दाना

जो आवरण, सो ज्ञानावरण, सो तो पूर्वे लिख आये हैं अरु जो दर्शन का आवरण है, सो दर्शनावरण इनके नव जेद हैं, तिनमें जो आदिके चार जेद है, सो मूलसेही दर्शन लब्धियोंके आवरण होनेसे आवरण शब्द करके कहे जाते हैं जैसे १ चक्षुदर्शनावरण, २ अचक्षुदर्शनावरण, ३ अवधिदर्शनावरण, ४ केवलदर्शनावरण अरु निष्ठादि जे पांच है, सो दर्शनावरण ह्योपशम करके लब्ध आत्मज्ञानका दर्शन लब्धियोंका आवरण है, इसका नावार्थ यह है कि चक्षु करके सामान्यग्राही जो बोध, सो चक्षुदर्शन, सो जिसके उदय करके तिसकी लब्धिका विधात करे, सो चक्षुदर्शनावरण ऐसेही अचक्षु करके चक्षु वर्जके शेष चार इन्द्रिय तथा पांचमा मन, इन करके जो दर्शन, सो अचक्षुदर्शन, तिसका जो आवरण, सो अचक्षुदर्शनावरण, तथा रूपी पदार्थोंका जो मर्यादापूर्वक देखना, सामान्यार्थका ग्रहण करना, सो अवधिदर्शन, तिसका जो आवरण, सो अवधिदर्शनावरण तथा वर, प्रधान, ह्यायक होनेसे केवल अनत ज्ञेयके होनेसे जो अनत दर्शन, सो केवलदर्शन, तिनका जो आवरण, सो केवलदर्शनावरण अरु जो चैतन्यको सर्व उरसे अतिक्रुत्सित पणा करे, सो निष्ठा दर्शन उपयोग सामान्य ग्रहण रूप, तिसका विघ्न करने वाली, सो निष्ठा जाननी तिस निष्ठाके पांच जेद हैं १ निष्ठा, २ निष्ठा निष्ठा, ३ प्रचला, ४ प्रचलाप्रचला, ५ स्त्यानार्द्धि तहां १ निष्ठा उसको कहते हैं, कि जो चपटी बजानेसे जाग उठे, सो सुखप्रतिबोधनिष्ठा, जिसके उदयसे ऐसी निष्ठा आवे तिसका नाम निष्ठा है. तथा २ अतिशय करके जो निष्ठा होवे, उसका नाम निष्ठा निष्ठा है, जैसे कि बहुत हलानेसे डूख जागे, कपड़े खैचनेसे जागे, जिसके उदयसे ऐसी निष्ठा आवे, तिस कर्मप्रकृतिका नाम निष्ठा निष्ठा है तथा ३ जो बैठेको खड़ेको जो निष्ठा आवे, तिसका नाम प्रचला है, जिस कर्मके उदयसे ऐसी निष्ठा आवे, तिस कर्मका नाम प्रचला है, तथा ४ जो चलतेको निष्ठा आवे, तिसका नाम प्रचलाप्रचला है, जिस कर्मके उदयसे ऐसी निष्ठा आवे, तिस कर्मकी प्रकृतिका नाम प्रचलाप्रचला है, तथा ५ स्त्याना नाम है पिं मीनूतका सो पिंमीनूत है रुद्रि आत्माकी शक्ति जिस निष्ठामें सो स्त्यानार्द्धि, तिस निष्ठामें वासुदेवके बलसे आधा बल होता है, जिस कर्म

है, सो जेद यह है, कि पांच ज्ञानावरण, पांच अतराय, नव दर्शनावरण, मोहनीकी ठवीश प्रकृति, नामकर्मकी चवत्तीस प्रकृति, एक अज्ञातावेदनी, एक नरकायु, एक नीचगोत्र, यह सब मिल कर ब्याप्ती जेद हूयें इनका विवरा लिखते हैं

अथ ज्ञानावरण कर्मकी पांच प्रकृति. प्रथम ज्ञान पांच प्रकारका है, उसमें मतिज्ञान, और श्रुतज्ञान, ए दो अनिजाप छावितार्थ ग्रहणरूप ज्ञान हैं, तथा तीसरा इन्द्रियोंकी अपेक्षा बिना आत्माको साक्षात् अर्थके ग्रहणे वाला ज्ञान, सो अवधिज्ञान, चउथा मनमें चितित अर्थका साक्षात् करनेवाला ज्ञान, सो मन पर्यवज्ञान, पांचमा केवल सपूर्ण नि कलक जो ज्ञान, सो केवल ज्ञान इन पांचों ज्ञानोंका जो आवरण सो ज्ञानावरण है, १ मतिज्ञानावरण, २ श्रुतज्ञानावरण, ३ अवधिज्ञानावरण, ४ मन पर्यवज्ञानावरण, ५ केवलज्ञानावरण उसमें १ जिसके उदयसे जीव निर्म्मति नि प्रतिजा होता है, सो मतिज्ञानावरण, २ जिसके उदयसे पवन करते जीवको कृच्छ्री न आवे, सो श्रुतज्ञानावरण, ३ जिसके उदयसे अवधि ज्ञान न होवे, सो अवधिज्ञानावरण, ४ जिसके उदयसे मन पर्यवज्ञान न होवे, सो मन पर्यवज्ञानावरण, ५ जिसके उदयसे केवलज्ञान न होवे, सो केवल ज्ञानावरण यह पांच प्रकृति पापरूप है

अथ अतराय कर्मकी पांच प्रकृति कहते हैं १ जिसके उदयसे देनेवा जीवस्तुजी है, गुणवान पात्रजी है, दानका फलजी जाना है, परंतु दान नहीं दे सका है, सो दानांतराय, २ जिसके उदयसे देने योग्य वस्तुजी है, अरु दाताजी बहुत प्रसिद्ध है, तथा मांगने वालाजी मांगनेमें बड़ा कुशल है, तोजी मांगने वालेको कृच्छ्री न मिले, सो जानांतराय, ३ जिसके उदयसे एक बार जोगने योग्य वस्तु जो आदारादिक, सो विद्यमानजी है, तोजी जोग नहीं सका, सो जोगांतराय, ४ जिसके उदयसे बारंबार जोगने योग्य वस्तु जो शयन अंगनादि, सो विद्यमानजी है, तोजी जोग नहीं सका, सो उपजोगांतराय, ५ जिसके उदयसे अनुपहत पुष्टांगवालाजी शक्ति वि कल हो जाता है, सो वीर्यांतराय यह पांच प्रकृति पापरूप है

अथ दर्शनावरण कर्मकी नव प्रकृति लिखते हैं इहा जो सामान्य बोध है, तिसका नाम दर्शन है, अरु जो विशेष बोध है, सो ज्ञान है, तहां ज्ञानका

या संज्वलनका चार कपाय कहते हैं, क्रोध, पाणीकी लकीर समान, मा  
न, तिनिशलताका स्थान समान, माया, बासकी ठिन्नक समान, जोन, हरि  
इके रंग समान, यह चारो एक पङ्कती स्थिति वाले हैं, यह सोजा कथा  
यका स्वरूप लिखा अथ नवनो कपाय कहते हैं

स्त्रीवेद, पुरुषवेद, नपुसकवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, जय,  
छुगुप्ता यह नव नोकपाय मोहनीयकी प्रकृति है नोशब्द सहकारी अर्थ  
में हैं कपायोंके सहचारि जो होवे, उनको नोकपाय कहते हैं अब इन न  
व प्रकृतिका स्वरूप लिखते हैं १ जिसके उदयसे स्त्री, पुरुषकी अजिजा  
पा करती है, जैसे पित्तके उदयसे मीठी वस्तुकी अजिजापा होती है, फुफ  
क अग्नि समान स्त्रीवेदक उदय है, जैसे फुफक अग्नि फोड़नेसे वृद्धिमा  
न होती है, ऐसेही स्त्रीके स्तन कट्ठादिके स्पर्शनेसे स्त्रीवेदका प्रवज उ  
दय होता है, तथा जिसके उदयसे पुरुष, स्त्रीकी अजिजापा करता है,  
सो पुरुषवेद जानना जैसे कफके उदयसे खाटी वस्तुकी अजिजापा होती  
है, यह पुरुषवेदका विकार ऐसा है कि जैसी ठणकी अग्नि क्योंकि  
ठणकी अग्नि एक बारही प्रज्वलित होती है, अरु तत्काल शांतनी  
हो जाती है, ऐसे पुरुषवेदकी एक बारही तत्काल उदय हो जाता  
है, फेर शांतनी तत्काल हो जाता है तथा जिसके उदयसे स्त्री, अरु पु  
रुष इनदोनोकी अजिजापा उत्पन्न होवे, (सो नपुसक वेद है, जैसे पित्त  
अरु कफके उदयसे खट मीठी वस्तुकी अजिजापा होती है यह नपुसक  
वेदका उदय ऐसा है कि जैसा मोटे नगरके दाहकी अग्नि, यह तीन वेद  
हैं तथा जिसके उदयसे सनिमित्त निर्निमित्त हसना आवे, सो हास्यनामा  
मोहकर्मकी प्रकृति है, तथा जिसके उदयसे रमणिक वस्तुओंमें रमे, खुशी  
माने, सो रतिनामा मोहकर्मकी प्रकृति है तथा इस्से जो विपरीत होवे,  
सो अरतिनामा मोहकर्मकी प्रकृति है तथा जिसके उदय करके प्रियवि  
प्रयोगादिमें विकल मन, शोचन, कदन, परिवेचनादि करता है, सो शोकना  
मा मोहकर्मकी प्रकृति है, तथा जिसके उदयसे सनिमित्त अथवा विना  
निमित्तके जयजीत होवे, सो जयनामा मोहकर्मकी प्रकृति है, तथा ग  
दादि मलिन वस्तुके देखनेसे जो नाक चढ़ाना है, तिसका जो हेतु है,

कें उदयसें ऐसी निंद आवे, तिसका नाम स्त्यानर्द्धिकर्म है, इस निंदा में कितनेक कार्यन्त्री कर लेता है, परंतु उसकों कुछ खबर नही रहती है

अथ मोहकर्मकी प्रकृति लिखतेहैं मोहे तत्त्वार्थ श्रद्धानको विपरीत करे, सो मोहनीय है उसमें १ मिथ्यात्वही जो मोह, सो मिथ्यात्व मोहनीय कहीयें, मोह कर्मकी उत्तरप्रकृति मिथ्यात्व है, यद्यपि यह मिथ्यात्व १ अजिग्रहिक, २ अनजिग्रहिक, ३ सांशयिक, ४ अजिनिवेशिक, ५ अनानोगादि अनेक प्रकारसें है, तोनी यथावस्थित वस्तुतत्त्वके अश्रद्धानसें सर्वजनोंका एकही मिथ्यात्वरूप गिना जाता है यह प्रथम मिथ्यात्व मोह कर्मकी प्रकृति है, अरु सोला जेद, कपाय मोहनीयके हैं क्योंकि यह क्रोधादिकनी तत्त्वश्रद्धानसें घट कर देते हैं, सो सोला जेद ऐसे हैं, १ अनतानुबधी क्रोध, २ अनतानुबधी मान, ३ अनतानुबधी माया, ४ अनतानुबधी लोच ऐसेही अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोच ऐसेही प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोच ऐसेही सज्जलन, क्रोध, मान, माया, लोच यह सर्व सोलह जेद कपायमोहनीयके हैं

जे क्रोधादिक अनत सत्तारके मूल कारण हैं, अरु अनतनवानुबधि जिनका शक्ति है, उसमें जिसका स्वभाव ऐसा है, कि जैसी पथरकी रेखा, जिसके साथ झेस दो जावे, फेर जहां लगि जीवे, तहां लगि रोष न बोडे, सो अनतानु बधि क्रोध है, तथा मान, पथरके स्थन सरिखा क दापि न मे नही, तथा माया, बांसकी जड समान, कदापि सरज न होवे, तथा लोच, ठमीके रंग समान, कदापि दूर न होवे, ऐसे क्रोध, मान, माया, अरु लोच करके सयुक्त जो परिणाम है, तिसका नाम अनतानुबधि क्रोधादिक कर्म प्रकृति है तथा अप्रत्याख्यान यहां नञ् अप्रार्थ वास्ते है, सो थोडाजी प्रत्याख्यान जिसके उदय होनेसें नही होता है, उसकों अप्रत्याख्यान कहते हैं इसका स्वरूप कहते हैं क्रोध, पृथिवीकी रेखा समान, मान, हाडके स्थन समान, माया, मेषके सींग समान, लोच, कर्दमके दाग समान, एक वर्ष तांड़ रहता है तथा जिसके उदयसें सर्व विरतिपणा जीवकों न आवे, सो प्रत्याख्यानवरण कपाय है उसमें क्रोध, रेणुकी रेखा समान, मान, काष्ठके स्थन समान, माया, गौके मूतने समान, लोच, खजनके रंग समान चार मास जिसकी रहनेकी स्थिति है त



४ कुब्ज, ५ दुम्बक, यह पांच सस्यान इनका स्वरूप जिलते हैं तहा १ न्यग्रोधवत् बडवृक्षकी तरें परिमल्ल, न्यग्रोधपरिमल्ल जैसे बडवृक्ष उपरि सपूर्ण अवयववाला होता है, अरु हेवें तैसे नहीं होता है, तैसेही यह सस्यान नाजिके उपरि तो विस्तार बाहुल्य सपूर्ण लक्षणावाला है, अरु नाजिके हेवे सपूर्ण लक्षण नहीं, सो न्यग्रोधपरिमल्ल सस्यान दूसरा है २ तथा सादि आदि इहां उचपणा नाजिसें हेवला देहका विभाग, सो लक्षणों करकें पूर्ण, अरु नाजिसे उपरि लक्षण विसवादी होवे, तिसका नाम सादिसस्यान है तथा ३ हाथ, पग, शिर, ग्रीवा, यथोक्त लक्षणादि युक्त, अरु शेष उदरादिरूप कोष्ठ शरीरमध्य, लक्षणादि रहित, सो वामननामा सस्यान है ४ तथा उर उदरादि, लक्षण युक्त होवे, अरु हाथ पगादि लक्षणों रहित होवे, सो कुब्जसस्यान है, ५ तथा जिसके शरीरका एक अवयव बनी सुदर न होवे, सो दुम्बसस्यान जान लेनां यह राचसस्यान

२२ जिसके उदयसैं वर्णादि चार अप्रशस्त होवे, सो कहते हैं कि जो अति बीनरस दर्शन, रुष्णादि वर्ण वाला प्राणी होता है, सो अप्रशस्त वर्णनाम सो वर्ण, रुष्णादि जेदों करके पाच प्रकारका है, तिनो करकें जो जीव युक्त होवे, सो अप्रशस्त वर्णनाम ऐसेही जिसके उदयसैं कुपित मृतमृशकादिवत् दुर्गंधता प्राणीयोंके शरीरमें होवे, सो अप्रशस्तगधनाम तथा जिसके उदयसे प्राणीयोंकी देहमें रसनेंड़ियों डु खदायी स्वभाववाला कौडीतोरीकी तरें तिक्त कहुवादि ऐसा असार रस होवे, सो अप्रशस्तरस नाम तथा जिसके वशसैं स्पर्शेड़ियों उपतापका हेतु ऐसा कर्कशादि स्पर्शविशेष, जीवोंके देहमें होवे, सो अप्रशस्तस्पर्शनाम यह वर्णादिचार

२३ तथा जिसके उदयसैं अपणोही शरीरके अवयवो करकें प्रतिजिह्वा, गज, वृद्ध, लवक, चोर दांतादिक शरीरके अदर वर्द्धमान हो करके शरीर हीकों पीडा देते हैं, तिसका नाम उपघातनाम तथा २४ जिसके उदयसैं जीवोंको खर उटादिककी तरें चलनां, अप्रशस्त होवे, सो कुबिहायोगति नाम तथा २५ जिसके उदयसैं पृथिवी आदिक एकेंड़िय स्यावरकायमें प्राणी उत्पन्न होता है, अरु स्यावरनामसैं कहे जाते हैं, सो स्यावरनाम. २६ जिसके प्रभावसैं जाकव्यापि सूक्ष्म, पृथिवी आदि जीवोंमें जीव उत्पन्न होता है, सो सूक्ष्मनाम २७ जिसके उदयसैं आहार पर्याप्ति आ

सो छुगुप्तानामा मोहकर्मकी प्रकृति है. यह नव नोकपाय मोहकर्मकी प्रकृति हैं, यह सर्व पैतालीस जेद द्रुये

अथ नामकर्मकी चवत्तिस प्रकृति पापरूप हैं, उसका नाम कहते हैं  
१ नरक गति, २ तिर्यचगति, ३ नरकानुपूर्वी, ४ तिर्यचानुपूर्वी, ५ एकेंद्रिय जाति, ६ द्विन्द्रियजाति, ७ त्रीन्द्रियजाति, ८ चतुरिन्द्रियजाति, १२ पांच स दहनन, १८ पांच सस्थान, १९ अप्रशस्त वर्ण, २० अप्रशस्तगव, २१ अप्रशस्त रस, २२ अप्रशस्त स्पर्श, २३ उपघात, २४ कुविहायोगति, २५ स्थावर, २६ सूक्ष्म, २७ अपर्याप्त, २८ साधारण, २९ अथिर, ३० अशुभ, ३१ असुजग, ३२ दुस्वर, ३३ अनादेय, ३४ अयश कीर्ति

इनका स्वरूप ऐसे हैं १ नरकगति उसको कहते हैं कि जिसके उदय से नारकी नाम पड़े, अरु नरकगतिमें ले जावे, २ ऐसेही तिर्यचगतिजी जान लेनी, तथा ३ जिसके उदयसे नरकगतिमें जाते द्रुये जीवकों दो स मयादि विग्रहगति करके अनुश्रेणीमें नियत गमन परिणति होवे, सो नरकगतिके सहचारी होनेसे नरकानुपूर्वी कहियें ४ ऐसेही तिर्यचानुपूर्वी जी जान लेनी तथा ५ जिसके उदयसे एकेंद्रिय जो पृथिवी, जल, अग्नि, पवन, बनस्पति इनमें जीव उत्पन्न होता है, सो एकेंद्रिय जाति ६ ऐसेही द्विन्द्रिय जाति, ७ त्रीन्द्रियजाति, ८ चतुरिन्द्रिय जाति

तथाआद्य सदनन वर्जके शेष, ऋषजनाराच, नाराच, अर्द्धनाराच, कीजिका, सेवार्त्त, यह पांचो, संदननोंके नाम हैं इनका स्वरूप ऐसा है कि “ऋषज परिवेष्टनपट्ट नाराच उजयतोमर्कटबध” दोनो दाढ़ोंको दोनों पासों मर्कटबधन बांधके पट्टेकी आकृति समान दाढ़की पट्टी उपर वेष्टन जिसके है, सो दूसरा ऋषजनाराच सदनन है तथा वज्र ऋषज करके हीन दोनों पासों मर्कटबध युक्त, तीसरा नाराच नामक सदनन है, तथा एक पासों मर्कटबध अरु दूसरे पासों कीलि करके वींध्या दूआ दाढ़, यह चवथा अर्धनाराचनामा सदनन है, तथा ऋषज अरु नाराच, इन करके वर्जित मात्र कीलि करके वींधे द्रुये दोनों दाढ़, ऐसा जो दाढ़का सचय, सो पांचमा किजिका नामा सदनन है, तथा दोनो दाढ़का स्पर्श पर्यंत लक्षण है जिसमें, अरु मूवी चापी करानेमें आर्त्त (पीडित) सो सेवार्त्त नामा संदनन है

तथा १८ आद्य सस्थान वर्जके १ न्यग्रोध परिमज्ज, २ सादि, ३ वामन,

जगत्में होता है, सो निमित्तके बिना नहीं होता है, यह जो निम्न, को ल, धांगड, धाणक, गधीले, चमाल, थोरी, वाघरी, सासी, कजर प्रमुख थ सन्य जातिके लोक हैं, सो जगलोमें गामोंके बाहिर रहते हैं, अनेक प्रकारके क्लेश सहते हैं, काले, दुर्गंधवाले, रूपमें बुरे शरीर पाते हैं, सुंदर खानेकों नहीं मिलता है, यह सब इनके निमित्त है ? अथवा निमित्त नहीं ? जे कर कहोगेकि बिनाही निमित्तके होते हैं, तब तो तुम नास्तिक मती हो, इस नास्तिकमतीका खमन हम पूर्व जिन आये हैं, जे कर कहोगेकि सनिमित्तक हैं तब तो ऐसे असन्य जातिके कुलमें उत्पन्न होनेका कारणजी जरूर चाहिये जिसके उदयसे ऐसे कुलमें उत्पन्न होता है, तिसकाही नाम नीचगोत्र है, इस नीचगोत्रके प्रभावसे औरजी बहुत पाप प्रकृतियोंका उदय है, जिसे वे दुःखादि क्लेश पाते हैं बुद्धिहीन, जालमस्वभाव, निर्दयता, कुत्सित आहार, पशुओंकी तरें जंगलोमें वास, धर्मकर्मसे पराङ्मुख, सत्सग रहित, गम्यागम्यके विवेक रहित, नद्वयानद्वय पेयापेया विचार शून्य, इन सबका मुख्य कारण नीचगोत्र है, जैसेही धनवान् और निर्धन ए दोनों एक सरीखे सर्वथा नहीं हो सके हैं, तैसे नीचगोत्र वाले उचगोत्र वालोंके सदृश नहीं हो सके हैं

जे कर कहोगे कि विजायतमें सर्व एक सरीखे हैं, तो इस बातमें क्या आश्चर्य है ? जहां उच नीच पणा नहीं, तहां सर्व जीवोंने एक सरीखा गोत्रकर्मका वध करा है, इस वास्तेही सर्व सरीखे हुये हैं, परंतु जहां उच नीचपणा माना जायगा, तहां अवश्यमेव उच नीच गोत्रका व्यवहार जरूर होवेगा, अरु जो हीन जातियोंको बुरे जानते हैं, सो बुद्धिमान् नहीं, क्योंकि बुराई तो छोटे कर्मोंके करनेसे होती है, जे कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, हो कर छोटे कर्म, जीवहिंसा, जूठ, चोरी, परस्त्रीगमन, परनिंदा, विश्वासघात, कृतघ्न, मांसनक्षण, मदिरापान, इत्यादिक जो कुकर्म करेगा, हम उनको जरूर बुरा मानेंगे, अरु नीच जातिवाला है, सोनी जे कर सुकर्म करेगा, दया, सत्य, चोरीका त्याग, परस्त्रीत्याग, इत्यादि करेगा, तो हम अवश्य उसको अज्ञा कहेंगे, तो फेर हमारी समझ किसी रीति से बुरी है अरु जो उसके साथ खाते नहीं है, यह कुलरूढ़ी है, अरु जो नीच जातिवालोंकी निंदा (छुगुप्ता) करते हैं, वे अज्ञानी हैं, निंदा छु

दिक पूर्वोक्त पर्याप्ति पूरी न होवे, सो अपर्याप्तनाम १८ जिसके उदयसें अनन्त जीवोंका साधारण एक शरीर होवे, सो साधारण नाम १९ जिसके उदयसें जिह्वावि अवयव, शरीरमें अस्थिर होवे, सो अस्थिर नाम २० जिसके उदयसें नाजिके देहले अवयव अशुन होवे, सो अशुन नाम क्योंकि किसीकों हाथ लग जावे, तो रोष नहीं करता, परंतु पन लगनेसे क्रोध करता है, इस वास्ते अशुननाम है २१ जिसके उदयसें जीवोंको जो जो देखे, तिस तिसकों वो जीव अनिष्ट लगे, उद्वेगकारी होवे, सो अशुनगनाम २२ जिसके उदयसें कठोर, निम्न, हीन, दीन, स्वर वाला जीव होवे, सो दुस्वरनाम २३ जिसके उदयसें चाहो युक्तियुक्तनी बोले, तोनी तिसका कहनां कोइ न माने, सो अनादेय नाम २४ जिसके उदयसें जीव, ज्ञान विज्ञान दानादिक गुण युक्तनी है, तोनी जगत्में उसकी यश ( कीर्ति ) नहीं होती बलके बलटी निंदा जगत्में होती है, सो अयश कीर्तिनाम ॥ इति नामकर्मकी चउत्तीस पापप्रकृति कही

जिसके उदयसें जात्यादि करके विकल जीव होता है, सो नीचगोत्र जाननां नीचगोत्र उसकों कहते हैं, कि जो अधम कैवर्त्त, चामालादि, “कुल गूयते सशब्दयतेऽनेन हीनोयमजातिरित्यादि शब्दैरिति गोत्रं कुल नीचमिति विशेषणाऽन्यथानुपपत्त्या नीचैर्गोत्रमित्यर्थः ”

प्रश्न - यह जो तुम नीच गोत्रके उदयसें नीच कुल कहते हो, तिनों के साथ खान, पान, नहीं करते हो, तिनोंकी बूत मानते हो, अरु निंदा जुगुप्साजी करते हो, यह तुमारी बड़ी अज्ञानता है, क्योंकि मनुष्य धर्म करके सर्व सरीखे हैं, एक सरीखे हाथ पगादि अवयव हैं, तो फेर एककों उंच माननां, तथा एककों नीच माननां, यह केवल ब्राह्मण, और जैनीयोंने बुरी रसम, जारतवर्षमें जारी कर रखी है, इस बातमें क्या मुक्तिका अंग है? क्योंकि जारत वर्षियोंकों वर्जके और सर्व द्वीप द्वीपांतरमें तथा जारतवर्षमेंनी सर्व विजायतादिकमें कोइनी उच नीच नहीं गिनते हैं, सर्व निवाले प्यालेमें एक है, यह नि केवल तुमारी मूढता अर्थात् अथ प रंपरा है, वास्तवमें उंच नीच कोइनी नहीं

उत्तर - यह तुमारा कहनां बहुत वे समझका है, क्योंकि तुम हमारे कहेका अनिप्राय नहीं जानते, हमारा अनिप्राय तो यह है, कि जो इस

जगत्में होता है, सो निमित्तके बिना नहीं होता है, यह जो निम्न, को ल, धांगड, धाणक, गधीले, चमाल, थोरी, वाधरी, सांसी, कजर प्रमुख अ सन्य जातिके लोक है, सो जगलोमें गामोके बाहिर रहते हैं, अनेक प्रका रके क्लेश सहते हैं, काले, दुर्गंधवाले, रूपमें बुरे शरीर पाते है, सुंदर खा नेकों नहीं मिलता है, यह सब इनके निमित्त है ? अथवा निमित्त नहीं ? जे कर कहोगेकि बिनाही निमित्तके होते हैं, तब तो तुम नास्तिक मती हो, इस नास्तिकमतीका खमन हम पूर्व लिख आये हैं, जे कर कहोगेकि सनि मित्तक हैं तब तो ऐसे असन्य जातिके कुलमें उत्पन्न होनेका कारणनी जरूर चाहिये जिसके उदयसे ऐसे कुलमें उत्पन्न होता है, तिसकाही नाम नीचगोत्र है, इस नीचगोत्रके प्रभावसे औरनी बहुत पाप प्रकृतियों का उदय है, जिसे वे डखावि क्लेश पाते हैं बुद्धिहीन, जालमस्वभाव, निर्दयता, कुत्सित आहार, पशुओंकी तरें जंगलोमें वास, धर्मकर्मसे परा इसुख, सत्संग रहित, गम्यागम्यके विवेक रहित, नद्वयानद्वय पेयापेया विचार शून्य, इन सबका मुख्य कारण नीचगोत्र है, जैसेही धनवान् और निर्धन ए दोनों एक सरीखे सर्वथा नहीं हो सके हैं, तैसे नीचगोत्र वाले उचगोत्र वालोंके सदृश नहीं हो सके हैं

जे कर कहोगे कि विजायतमें सर्व एक सरीखे हैं, तो इस बातमें क्या आश्चर्य है ? जहां उच नीच पणा नहीं, तहां सर्व जीवोने एक सरीखा गोत्रकर्मका बंध करा है, इस वास्तेही सर्व सरीखे हुये हैं, परंतु जहां उ च नीचपणां माना जायगा, तहां अवश्यमेव उच नीच गोत्रका व्यवहार जरूर होवेगा, अरु जो होन जातियोंकों बुरे जानते हैं, सो बुद्धिमान् नहीं, क्योंकि बुराई तो छोटे कर्मोंके करनेसे होती है, जे कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, हो कर छोटे कर्म, जीवहिंसा, जूठ, चोरी, परस्त्रीगमन, पर निंदा, विश्वासघात, कृतघ्न, मांसनष्टण, मदिरापान, इत्यादिक जो कुकर्म करेगा, हम उनको जरूर बुरा मानेंगे, अरु नीच जातिवाला है, सोनी जे कर सुकर्म करेगा, दया, सत्य, चोरीका त्याग, परस्त्रीत्याग, इत्यादि करेगा, तो हम अवश्य उसको अज्ञा कहेंगे, तो फेर हमारी समझ किसी रीति से बुरी है अरु जो उसके साथ खाते नहीं है, यह कुजलूदी है, अरु जो नीच जातिवालोंकी निंदा (छुपुप्ता) करते हैं, वे अज्ञानी हैं, निंदा छु

गुप्ता तो किसीकीनी करनी न चाहियें अरु जो तिनकी तृत मानते हैं, वोनी कुलारुढी है, अरु जो मनुष्यत्व धर्म करके सरीखे है, तोनी जैसे माता, बहिन, बेटा, चार्या, यह सब स्त्रीत्व स्वरूप करके समान हैं, तोनी जैसे अगम्य गम्यका विजाग है, तैसेही उच नीचकाजी विजाग है, यह व्यवहार ब्राह्मण, अरु जैनोने नही बनाया है, किंतु अष्टे घुरे कर्मोंके उदय से है, यह परस्पर जातिका आहार न खानेका व्यवहार मिश्रदेशमेंनी था, इस वास्ते उच नीच गोत्रके प्रजावसेंही उच नीच जाति होती है

तथा आयु कर्ममेंसू नरकायुकी प्रकृति पापमें गिनी जाती है, नरक शब्दकी व्युत्पत्ति ऐसे है, “नरान् प्रकृष्टपापफलजोगाय गुरुपापकारिण प्राणिनोनरानित्युपलक्षणत्वात् कायंति शब्दयतीति नरकास्तेष्वायुस्तद्भव प्रायोग्यसकलकर्मप्रकृतिविपाकानुजवकारण प्राणधारण यत्तन्नरकायुष्क तद्विपाकवेद्यकर्मप्रकृतिरपि नरकायुष्कमिति ॥”

तथा वेदनीकर्मकी अज्ञातावेदनी पाप प्रकृतिमें गनी जाती है, सो अज्ञाता नाम दुखका है, जिसके उदयसे जीव दुख जोगता है, तिसका नाम अज्ञातावेदनी है

यह ज्ञानावरणी पांच, अतराय पांच, दर्शनावरणी नव, मोहनी बढीस, नामकर्मकी चौत्तीस, नीचगोत्र एक, नरकायु एक, तथा अज्ञातावेदनी एक, सब मिल कर व्याप्ती जेवें पाप फल जोगनेमें आता है ॥ इति पाप तत्त्वसंपूर्ण ॥

अथ आश्रवतत्त्व लिखते हैं मिथ्यात्वादि आश्रवके हेतु हैं १ असत् देव, २ असत् गुरु, ३ असत् धर्म, इनो विषे सत् देव, सत् गुरु, अरु सत् धर्म, ऐसी जो रुचि, तिसका नाम मिथ्यात्व है तथा हिंसादिकसे जो न निवृत्तना, तिसका नाम अविरति है, तथा प्रमाद मद्यादि, तथा कषाय क्रोधादय, अरु योग मन वचन कायाका व्यापार, ये मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, अरु योग, यह पांच पुनर्विधक जीवके ज्ञानावरणीयादिक कर्मोंके बधके हेतु हैं, इसको जैन मतमें आश्रव कहते हैं आश्रवें कर्म जिनोसेंती सो आश्रव तब तो मिथ्यात्वादि विषयादिक मन, वचन, कायाका व्यापारही गुजारुन कर्मबधका हेतु होनेसें आश्रव होय यह तात्पर्य है

प्रश्न—बधके अज्ञाव होये कैसें आश्रवकी उत्पत्ति है ? जे कर कहोगे कि आश्रवसें पहिला बंध है, तबतो वो बधनी आश्रवहेतु विना नहीं

हो सका है, क्योंकि जो जिसका हेतु है, सो तिसके अज्ञाव हुआ नहीं हो सका है, जे कर होवेगा, तब अतिप्रसंग दूषण होवेगा

उत्तर—यह कहना असत् है, क्योंकि आश्रवकों पूर्वबध अपेक्षा का र्य पणा है, अरु उत्तरवधापेक्षा कारणत्व है, ऐसेही वधकोंनी पूर्वोत्तर आश्रवकी अपेक्षा करके कार्यत्व कारणत्व जानना, बीजाङ्कुरकी तरें वधा अरु दोनोंका परस्पर, कार्य कारण जावका नियम है, यहां इतरेतर दूषण नहीं है, प्रवादापेक्षा करके अनादि होनेसे

यह आश्रव पुण्य पापका बधहेतु होने करके दो प्रकारें हैं, यह दो नों नेदोंके मिथ्यात्वादि उत्तर नेदोंके उत्कर्षापकर्ष, अर्थात् अधिक न्यून होनेसे अनेक प्रकार हैं इस शुभाशुभ मन वचन कायके व्यापार रूप आश्रवकी सिद्धि अपणी आत्मामें स्वसवेदनादि प्रत्यक्षसे है, अरु दूसरोंमें वचन काय व्यापारकी प्रत्यक्षसे सिद्धि है, औ शेषकी तिसके कार्य प्रभव अनुमानसे जाननी तथा आप्तप्रणीत आगमसे जाननी.

अथ आश्रवके उत्तर नेद वैतालीस हैं, सो लिखते हैं पांच इन्द्रिय, चार कषाय, पांच अव्रत, पञ्चश क्रिया, तीन योग, यह वैतालीस नेद हैं

जीवरूप तलावमें कर्मरूप पाणी जिस करके आवे, सो आश्रव है, तहां इन्द्रिय पांच हैं, तिनका स्वरूप कहते हैं, १ स्पर्शियें स्वविषय स्पर्श लक्षण, जिस करके सो स्पर्शनेन्द्रिय, २ “रस्यते आस्वाद्यते रसोऽनयेति” आस्वादियें रस लीजीयें जिस करके सो रसना ( जिह्वा ) इन्द्रिय, ३ सूंघीयें गंध जिस करके सो घ्राणेन्द्रिय ( नासिकेन्द्रिय, ) ४ चक्षु ( जोचन, ) पशुणियें शब्द जिस करके सो श्रोत्रेन्द्रिय यह पांच इन्द्रिय मूलनेदकी अपेक्षा से पांच कारण आश्रवके हैं

“कुक्ष्यति कुप्यति” सचेतन अचेतन वस्तुमें क्रोध जो करे, सनिमित्त, निनिमित्त येन जिस करके प्राणी, सो क्रोधवेदनीय कर्म है, तिसका उदय नी उपचारसे क्रोध है ऐसेही मान, माया, अरु लोभमेंनी कह देना इसमें मान आव प्रकारका है, तिसका नाम कहते हैं १ जातिमद, २ कुलमद, ३ वलमद, ४ रूपमद, ५ ज्ञानमद, ६ लाजमद, ७ तपोमद, ८ ऐश्वर्यमद १ जातिमद, उसको कहते हैं जो अपणी माताके पक्षका अजिमान करेकि मेरी माता ऐसे बड़े घरकी बेटी है, इस तरें आपको उंचा माने,

अरु दूसरोंको निदे, इसका नाम जातिमद है, २ कुजमद सो है, कि जो अपने पिताके पदका अजिमान करे, जैसेकि मेरे पिताका बड़ा उंच कुन है, इस तरें आपको बड़ा माने, औरोको निदे, तिसका नाम कुजमद है, ३ जो अपने बलका अजिमान करे, अरु दूसरोंके बलकों निदे, सो बलमद, ४ जो अपने रूपका अजिमान करे, दूसरोंके रूपको निदे, सो रूपमद, ५ जो अपने आपको बड़ा ज्ञानी जाने, अरु दूसरोंको तुष्टमति जाने, सो ज्ञानमद, ६ जो अपने आपको बड़ा नसीबे वाला समजे, अरु दूसरोंको दीण पुष्पी समजे, सो लाजमद, ७ जो तप करके अजिमान करेकि मेरे समान तपस्वी कोइ नहीं, सो तपोमद, ८ जो अपनी ऐश्वर्यताका अजिमान करे, दूसरोंको घासनू समजे, सो ऐश्वर्यमद इस प्रकारसें मान के आठ जेद हैं तथा तीसरी माया, सो “मयति गह्वति” अर्थात् जावे, तिस तिस विकारोंको परवचनेके अर्थे जीव, वसकों माया (कपट) कहते हैं तथा जिस करके परधनमें गृही होवे, तिसको लोच कहते हैं, इन चारोंको कषाय कहते हैं यह चार कषाय हैं

अथ पांच अव्रत कहते हैं, तहां पांच इडिय, ६ मनोबल, ७ वचनबल, ८ कायबल, ९ वज्रासनिश्वास, १० आयु, यह दस प्राण हैं इन दस प्राणोंके योगसें जीवकोंजी प्राण कहिये हैं तिन प्राणोंका जो वध (हनना) अर्थात् मारनां सो प्रथम प्राणवध अव्रत जाननां तथा १ छूठ बोलनेका नाम मृषावाद है तथा २ दूसरोंकी वस्तु चुराय लेनी, तिसका नाम अदत्तादान है, तथा ४ स्त्री पुरुषका जो जोड़ा, तिसका नाम मिथुन है, इन दोनोंके मिलनेसें जो कर्म, सो मैथुन (अब्रह्म सेवन) तथा ५ “परिगृह्यते” सर्व ओरसें अगीकार करिये, चार गतिके निबधन कर्म जिस करके, सो परिग्रह, इन पांचोंके चार चार जेद हैं, सो कहते हैं

१ एक इव्यें हिंसा है, परंतु जावें नहीं, २ एक इव्यें हिंसा नहीं, परंतु जावें है, ३ एक इव्येंजी हिंसा है, अरु जावेंजी हिंसा है, ४ एक इव्येंजी हिंसा नहीं, अरु जावेंजी हिंसा नहीं, यह प्रथम अव्रतके चार जेद कहे तिसमें प्रथम जगका स्वरूप ऐसें है कि साधुकी समाचारी प्रतिछेखना करनेसें, मार्गमें बिहार करनेसें, नदी आदिकके लघनेसें, नावमें बैठ कर नदी उतरनेसे, नदीमें साध्वी आदिकके काढनेसें, वर्षा वर्षतामें शोच जानेसें,



ग्लानि रोगीकी लघुशंकाकों मेव वर्पतामें गेरनेसें, गुरुके शरीरमें वाय तथा थकेवा दूर करके मूठी चापी करनेसे, जो हिंसा होती है, सो सर्व इव्यहिंसा है, तथा श्रावकको जिनमदिर बनानेसे, जिनपूजा करनेसें, सधर्मिवरसज करनेसे, तीर्थयात्रा जानेसे, रथोत्सव, अष्टाई उत्सव, प्र तिष्ठा श्रु अजनशलाका करनेसें, तथा जगवानके सन्मुख जानेसें, गुरुके सन्मुख जानेसें, इत्यादि कर्तव्यसें जो हिंसा होवे सो सर्व इव्यहिंसा है, परंतु जावहिंसा नहीं। इसका फल अल्प पाप, श्रु बहुत निर्झरा है यह जगवती सूत्रमें लिखा है, यह हिंसा साधु आदि करते हैं परंतु उन का परिणाम उस अवसरमें खोटे नहीं है, इस वास्ते इव्यहिंसा है

प्रश्न -यज्ञादिमें जो गोमेध प्रमुख जीव मारे जाते हैं, यहनी इव्यहिंसा क्यों नहीं? इसका उत्तर, मीमांसक मत खमनमें लिख आये हैं, सो देख लेनां यह प्रथम जग

दूसरे जंगमें इव्यहिंसा नहीं परंतु जाव हिंसा है, तिसका स्वरूप कह ते हैं, कि जो पुरुष उपरसें तो शांतिरूप बना दूआ है परंतु परिणाम अ त करण जिसका खोटा है, वो ऐसा चाहता है कि मेरे शत्रुके घरमें आ ग लग जावे, मरी पड जावे, नदीमें डूब जावे, चोरी हो जावे, बदीखाने में पडे, तथा वेष बदलके जला मानस बनके उग बाजी करे, तथा अग लेका बुरा करनेके वास्ते अनेक प्रकारसें उसको विश्वास करावे, तथा फ कीरीका वेप करके लोकोसें धन एकठा करे, इत्यादि तथा साधुके गुण तो उसमें नहीं हैं, परंतु लोकोंमें अपने आपको गुण प्रकट करे, इत्यादिक का ममें इव्य हिंसा तो नहीं करता, परंतु जावसें तो वो पुरुष, हिंसक है, इसका फल सत्सारमें भ्रमण करने सीवाय और कोइ फज नहीं यह दूसरा जग

तीसरे जंगमें प्रकट इडियोकी विषयमें गृह हो कर जीवहिंसा कसाइ, ( खटिक ) वागुरी अदेही, ( शिकार मारनां ) विश्वासघात, इत्यादि करके जीवहिंसा करनी, श्रु मनमें आनद माननां, इसका फज दुर्गति है, यह इव्येजी हिंसा है, श्रु जावेजी हिंसा है, यह तीसरा जग

चौथा जंगमें इव्येजी हिंसा नहीं, श्रु जावेजी हिंसा नहीं, उसको हिंसा कहनां यह जग शून्य है, इस जग वाला कोइनी जीव नहीं ॥इति॥

ऐसैही फूठकेनी चार जेद है तिसका स्वरूप कहते है १ साधु, २ स्तेमें चला जाता है, तिसके आगे हो कर एक जगली गौआंका तथा मृगादि जानवरोंका टोला निकल जावे, तिसके पीछे शिकारी बंदूक प्रमुख शस्त्र लीयां चला आता है, उनके मारने वास्ते वो शिकारी साधुको पूछे कि तुमने अमुक जीव जाते देखे है ? तब साधु मौन कर जावे, जे कर मौन करेनी पीछा न छोड़े, साधुको मारे, तब साधु कह देवे, मै नहीं देखे, यद्यपि यह झूठ है, परंतु नावे फूठ नहीं, क्योंकि जो कोइ इन्द्रियोंकी विषय वास्ते तथा अपने लोभ वास्ते फूठ बोले, तब जावत फूठ होवे, परंतु यह तो जीवोंकी क्या वास्ते फूठ बोले है वास्तवमें यह फूठ नहीं इसी तरें और जगेंनी समझ लेना यह प्रथम जग

तथा दूसरा जगमें कोइ पुरुष मुखसे तो कुछ नहीं बोलता, परंतु दूसरों के उगने वास्ते मनमें अनेक विकल्प करता है, यह दूसरा जग तथा तीसरे जगमें तो झूठेनी फूठ बोलता है, अरु नावेनी फूठ बोलता है, तिसका अन्तिप्रायनी महा बल कपट करनेका है, क्योंकि मुखसेनी फूठ बोलता है, अरु चित्तमेंनी छुटता संयुक्त है, यह तीसरा जग तथा चौथा जग तो पूर्ववत् शून्य है इति फूठ स्वरूप

अथ चोरीका यही चार जग कहते हैं तहां प्रथम जगमें जैसे कोइ स्त्री शीलवान है, औ कोइ छुट राजा उसका शीलजग करा चाहता है, तब कोइ धर्मज्ञादि पुरुष रात्रिमें अथवा दिनमें उस स्त्रीके शीलकी रक्षा वास्ते उस राजसे बाहिर ले जावे, तो व्यवहारमें उस राजाकी उसने आज्ञा जगरूप चोरी करी है, परंतु वास्तवमें वो चोर नहीं इसी तरें और जगमेंनी जान लेना यह प्रथम जग दूसरे जगमें चोरी तो नहीं करता, परंतु चोरी करनेका मन उसका है, तथा जो जगवान् बीतराग सर्वज्ञकी आज्ञा जग करने वाला है, सोनी जावचोर है यह दूसरा जग तथा तीसरे जगमें चोरीनी करता है, अरु मनमेंनी चोरी करनेका नाव है, यह तीसरा जग है अरु चतुथा जग तो पूर्ववत् शून्य है इति अदत्तादान जग

ऐसैही मैथुनके चार जग कहते हैं जो साधु, जलमें डूबती साधवीको देख कर काठनेके वास्ते पकड़े, तथा धर्मी गृहस्थ गतसे गिरती अपनी बहिन बेटीको पकड़े, तथा बावरी दोइ दौड़तीको पकड़े, यह ५

व्यं मैथुन है, परंतु जावे नहीं यह प्रथम जंग. तथा इव्यं तो मैथुन नहीं सेवता है, परंतु मैथुन सेवनेकी बड़ी अजिलापा करता है, सो जावे मैथुन है यह दूसरा जंग तथा तीसरे जंगमें तो इव्यं अरु जावे मैथुन सेवता है. अरु चौथा जंग पूर्ववत् शून्य है ॥ इति मैथुन स्वरूप ॥

ऐसेही परिग्रहका चार जंग कहते हैं, १ जैसे कोइ मुनि कायोत्सर्ग कर रहा है, उसके गलेमें कोइ द्वाराविक आनूपण गेर देवे, वो इव्यं तो परिग्रह दीखता है, परंतु जावे परिग्रह नहीं है, यह प्रथम जंग तथा दूसरा इव्यं तो उसके पास कौड़ी एकजी नहीं है, परंतु मनमें धनकी बड़ी अजिलापा रखता है, सो जावपरिग्रह है तथा तीसरेमें धनजी पास है, अरु अजिलापानी है, सो इव्यं जाव करके परिग्रह है, तथा चौथा जंग पूर्ववत् शून्य है इन सर्व जंगोंमें दूसरा अरु तीसरा जंग निश्चय करके अविरतिरूप है यह पांच प्रकारकी अविरति

अथ पञ्चीस क्रियाका नाम अरु स्वरूप कहते हैं १ काया (देह) करके जो होवे, सो कायिकीक्रिया, २ आत्माको नरकादिमें जाने वास्ते जीव अधिकारी करे, इस करके सो अधिकरण परोपघात करनेसें वायुरादि गल कूटपाशा करके जो उत्पन्न होवे, सो अधिकरणकी क्रिया, ३ अधिक जो होवे दोष सो प्रदोष कहिये क्रोधादिक, तिनमें जो उत्पन्न होवे, सो प्रदोषक्रिया, ४ जीवको परित्याग देनेसें जो उत्पन्न होवे, सो पारित्यागकी क्रिया, ५ प्राणीयोके बिनाश करनेकी जो क्रिया, सो प्राणान्निपातकी क्रिया, ६ पृथिवीआदिक कायाका उपघात करना यह जिसका लक्षण है, ऐसें जो शुष्क तृणादि श्वेद, लेखनादि, तिनमें जो क्रिया होवे, सो आरंजकी क्रिया, ७ जो विविध उपायों करके धन उपार्जन तथा धनरक्षण करणोंमें मूर्खोंके परिणाम, उसका नाम परिग्रह है, तिनमें जो उत्पन्न होवे क्रिया, सो परिग्रहकी क्रिया, ८ मायाही है हेतु प्रत्यय जिसका मोक्षके साधनोंमें माया प्रधान प्रवृत्ति, सो माया प्रत्ययकी क्रिया, ९ मिथ्यात्वही है, प्रत्यय कारण जिसका सो मिथ्या दर्शन प्रत्ययकी क्रिया, १० सयमके विधातकारक कपायोंके उदयसें प्रत्याख्यानका न करना, सो प्रत्याख्यानकी क्रिया, ११ रागादि कलुषितका जो जीव अजीवको देखना,

सो दृष्टिकी क्रिया, १२ राग, द्वेष, मोह सधुक्त चित्तसें जो स्त्री आदिकोंके शरीरका स्पर्श करना, सो स्पृष्टिकाक्रिया, १३ पूर्वे अंगीकार करे दूये पा पोषादान कारण अधिकरणकी अपेक्षा जो क्रिया उत्पन्न होवे, सो प्रातीत्यकी प्रत्ययक्रिया, यह तात्पर्यार्थ १४ “समतात्” सर्व ओरसे “उपनिपात” आगमन आवणां, स्त्री आदिक जीवोंका जिस स्थानमें नोजना विकर्मे, सो समतोपनिपात, तदा जो क्रिया उत्पन्न होवे, सो सामतोपनिपातिका क्रिया, १५ जो परोपदेशित पापमें चिर काल प्रवृत्ते, उस पापकी जो नावसें अनुमोदना करे, सो नैसृष्टिकी क्रिया, १६ अपणे हाथ करके जो करे, जैसें कोइ पुरुष बड़े अजिमान करके क्रोधित चित्त दूआ यका जो काम उस के नौकर कर सके हैं, उस कामकों अपने हाथसें करे, सो स्वादस्तिकीक्रिया, १७ नगवत् अर्द्धतकी आङ्गा उद्धरण करके अपनी बुद्धिसें जीवाजीवादि पदार्थोंके प्ररूपण द्वारा जो क्रिया, सो आङ्गापनिका क्रिया, १८ दूसरायों के अण होये खोटे आचरणका प्रकाश करणां, उनकी पूजाका नाश करनां, तिस करनेसें जो उत्पन्न होवे, सो वैदारणिका क्रिया, १९ आनोग नाम है उपयोगका, तिससें जो विपरीत होवे, सो अनानोग है, तिस करके उपलक्षित जो क्रिया, सो अनानोग क्रिया बिना देखे, बिना पूजे देश अर्थात् नीत जून्यादिकमें शरीरादिकका निक्षेप करणां, सो अनानोग क्रिया, २० अपनी अरु परकी जो अपेक्षा करणी, तिसका नाम अनवकांक्षा है, इससें जो विपरीत तिसका नाम, अनवकांक्षा है, सोइ है कारण जिसका सो अनवकांक्षा प्रत्यय क्रिया तात्पर्य यह है कि जिनोक्त कर्त्तव्य विधियोंमें किसी विधियों में जो अपनेको अरु और जीवोंको हितकारी है, तिन विधियोंमें प्रमादके वश हो कर आवर न करनां, सो अनवकांक्षा प्रत्ययकी क्रिया, २१ “प्रयोग” दौडना चलनादि कायाका व्यापार, अरु हिंसाकारी कठोर क्रूर बोलनादि बचनव्यापार, पराजिडोह, ईर्ष्या अजिमानादि मनोव्यापार, इन तीनोंका जो करणां, सो प्रयोगक्रिया, २२ जिस करके विषय ग्रहण करिये, सो समादान इडिय हैं, तिसकी जो क्रिया देश सर्व उपघातरूप व्यापार, सो समुदान क्रिया, २३ प्रेम नाम है माया अरु लोभका, तिन करके जो होवे, सो प्रेमप्रत्यय क्रिया, २४ द्वेष नाम है क्रोध अरु मा

नका,तिन करकें जो होवे,सो षेपप्रत्ययिकी क्रिया, १५ चलनेसैं जो क्रिया होवे, सो ईर्यापयक्रिया यह क्रिया बीतरागकों होती है

अथ इन पच्चीश क्रियाका व्याख्यान करते हैं १ प्रथम कायिकी क्रिया दो प्रकारकी है, एक अनुपरता कायिकी क्रिया, दूसरी अनुपयुक्त कायिकी क्रिया, उसमें प्रद्युष्ट मिथ्यादृष्टि जीवके मन बचनकी अपेक्षारहित पर जीवोंके पीडाकारी ऐसा जो कायाका उद्यम, सो प्रथम जेद है, तथा प्रमत्त सत्यतके विना उपयोग अनेक कर्त्तव्यरूप कायाका व्यापार, सो दूसरा जेद, यह कायिकी क्रियाका स्वरूप कह्या २ दूसरी अधिकरणकी क्रिया दो प्रकारें है एक सयोजना,दूसरी निवर्तना,उसमें विष,गरल,फांसी, धनु, यत्र, तलवार, आदि शस्त्रोंकों जीवोंके मारणें वास्ते जो इनका “स योजन” अर्थात् मिलाप करणा, जैसे धनुष अरु तीरका मिलाप करनां, इसी तरें सर्व जाननां. यह प्रथम जेद तथा तरवार, तोमर, शक्ति, तोप, वज्रुक, इनका जो नवे सिरसैं बनानां, यह दूसरा जेद यह दूसरी क्रिया का स्वरूप कह्या ३ जिन निमित्तोंसैं क्रोध उत्पन्न होवे, सो निमित्त जीव अजीव हैं, उसमें जीव तो प्राणी, अरु अजीव खूँटा, काँटा, पत्थर, ककरादि, इनके उपर षेप करे, यह तीसरी प्रदोषक्रिया, ४ तथा अपणें हाथोंकरके अरु परके हाथों करके, जीवकों ताडनां (पीडा देनी) सो परि तापना, इस परितापनाके दो जेद हैं, एक तो “स्व” (अपणें आपको) पीडा देनी, जैसे पुत्र कलत्रादिके वियोगसैं डखी हो कर अपणें हाथों करी जाती शिरका कूटनां, यह प्रथम जेद तथा पुत्र शिष्यादिकोंको ताडनां (पीटना) यह दूसरा जेद, यह चौथी पारितापनिकी क्रिया तथा ५ पांचमी प्राणातिपातकी क्रियाके दो जेद हैं, एक तो अपणें आपकी घात करणी, जैसे कि जान बूझ कर पर्वतसैं गिरके मर जानां, जर्त्ताके साथ सती होनेके वास्ते अग्निमें जल मरनां, पाणीमें मूबके मरनां, विष खा के मरनां, शस्त्र सैं मरनां, इत्यादि स्वप्राणातिपात यह महापाप रूप क्रिया, यह प्रथम जेद तथा दूसरी मोह, लोभ, क्रोधके वश हो कर पर जीवकों स्व अथ वा परहाथ करकें मारणां यह पांचमी क्रिया, ६ जीव, अजीवका आरन करणा, सो आरनकी क्रिया, ७ जीव अजीवका परिग्रह करणां, सो परिग्रहकी क्रिया, ८ माया करणी, सो माया प्रत्ययकी क्रिया, ९ वि

सो दृष्टिकी क्रिया, १२ राग, द्वेष, मोह सयुक्त चित्तसे जो स्त्री आदिकोंके शरीरका स्पर्श करना, सो स्पृष्टिकाक्रिया, १३ पूर्वे अंगीकार करे दूषे पा पोषादान कारण अधिकरणकी अपेक्षा जो क्रिया उत्पन्न होवे, सो प्रातीत्यकी प्रत्ययक्रिया, यह तात्पर्यार्थ १४ “समतात्” सर्व ओरसे “उपनिपात” आगमन आवणां, स्त्री आदिक जीवोंका जिस स्थानमें जोजना दिकमें, सो समतोपनिपात, तद्वा जो क्रिया उत्पन्न होवे, सो सामतोपनिपातिका क्रिया, १५ जो परोपदेशित पापमें चिर काल प्रवृत्ते, उस पापकी जो जावसे अनुमोदना करे, सो नैसृष्टिकी क्रिया, १६ अपणे हाथ करके जो करे, जैसे कोइ पुरुष बड़े अजिमान करके क्रोधित चित्त दूआ यका जो काम उस के नौकर कर सके हैं, उस कामको अपने हाथसे करे, सो स्वाहस्तिकी क्रिया, १७ जगवत् अर्द्धतकी आक्षा वज्रघन करके अपनी बुद्धिसे जीवाजीवादि पदार्थोंके प्ररूपण द्वारा जो क्रिया, सो आक्षापनिका क्रिया, १८ दूसरायों के अण होये खोटे आचरणका प्रकाश करणां, उनकी पूजाका नाश करनां, तिस करनेसे जो उत्पन्न होवे, सो वैदारणिका क्रिया, १९ आनोग नाम है उपयोगका, तिससे जो विपरीत होवे, सो अनानोग है, तिस करके उपलब्धित जो क्रिया, सो अनानोग क्रिया बिना देखे, बिना पूजे देश अर्थात् नीत नून्यादिकमें शरीरादिकका निक्षेप करणां, सो अनानोग क्रिया, २० अपनी अरु परकी जो अपेक्षा करणी, तिसका नाम अनवकांक्षा है, इससे जो विपरीत तिसका नाम, अनवकांक्षा है, सोइ है कारण जिसका सो अनवकांक्षा प्रत्यय क्रिया तात्पर्य यह है कि जिनोक्त कर्त्तव्य विधियोंमें किसी विधियों में जो अपनेको अरु और जीवोंको हितकारी है, तिन विधियोंमें प्रमादके वश हो कर आवर न करनां, सो अनवकांक्षा प्रत्ययकी क्रिया, २१ “प्रयोग” दौडना चलनादि कायाका व्यापार, अरु हिंसाकारी कठोर फूट बोलनादि वचनव्यापार, परानिदोद, ईर्ष्या अजिमानादि मनोव्यापार, इन तीनोंका जो करणां, सो प्रयोगक्रिया, २२ जिस करके विषय ग्रहण करिये, सो समादान इडिय हैं, तिसकी जो क्रिया देश सर्व उपघातरूप व्यापार, सो समुदान क्रिया, २३ प्रेम नाम है माया अरु लोभका, तिन करके जो होवे, सो प्रेमप्रत्यय क्रिया, २४ द्वेष नाम है क्रोध अरु मा

अथ संवरतत्त्व लिखेते हैं पूर्वोक्त आश्रवका जो रोकने वाला सो संवर है, तिस संवरके सत्तावन जेद हैं, सो कहते हैं पांच समिति, तीन गुप्ति, दश प्रकारका यतिधर्म, बारह जावना, बावीश परीषद्, पांच चारित्र यह सब मिल कर सत्तावन जेद हूये इनमेंसू पांच समिति, तीन गुप्ति, दशविध यतिधर्म, बारह जावना, इनका स्वरूप गुरुतत्त्वमें लिख आये है तहांसें जान लेना इहां नहीं लिखते

अथ बावीश परीषद्का स्वरूप लिखते हैं १ क्रुधापरीषद्, सो क्रुधा नाम नूखका है, शेष वेदनासें अधिक नूखकी वेदना है, सो जब क्रुधा लगे, तब अपनी प्रतिज्ञासे न चले, अरु आर्त्तध्यानजी न करे, सम्यक् परिणामोंसें क्रुधा सहे, सो क्रुत्परीषद्, २ अैसेही पिपासा जो तृषा तिस का परीषद्जी जान लेना, ३ शीतपरीषद्, सो बड़ा नारी जब शीत पड़े, तबजी अकल्पनिक वस्त्रकी बांठा न करे, जैसें जीर्ण वस्त्र होवे, उनोंहीसें शीत सहे, अरु अग्निसेंजी न तापे, इसी रीतीसें सम्यक् शीत परीषद् सहे ४ अैसेही उष्णपरीषद्जी सहे, ५ दंशमशकपरीषद्, सो दश मशक जब काटे, तब उस स्थानसें चले जानेकी इच्छा न करे, तथा दश मशकके दूर करने वास्ते धूमादि यत्नजी न करे, तथा तिनके दूर निवारण वास्ते पंखानी न करे, अैसे पुरुष, दश मशक परीषद् सहे, ६ अचेलपरीषद्, जो सर्वथा वस्त्रोंका अजाव, तिसका नाम अचेल परीषद् नहीं, किंतु आगम में जो वस्त्रादिक रखनेका प्रमाण कहा है, तिस प्रमाण रखनां सो परिग्रह नहीं है, परिग्रह तो उसकों कहते हैं कि जो मूर्छा करके रखे ॥ उक्त च ॥ जपि वञ्च च पायं च, कबल पाय पुञ्जण ॥ सोपि सजम लज्जघा, धारिंति परिहरंति य ॥ १ ॥ न सो परिगृहो वुत्तो, नाइ पुत्तेण ताइणा ॥ सुद्धापरिगृहो वुत्तो, इइ वुत्त महेसणत्ति ॥ १॥ चेल नाम वस्त्रका है, सो शीर्ण अर्थात् फटे हूये अरु जीर्णजी होवे, तोजी अकल्पनिक न लेवे, सो अचेलपरीषद्, ७ अरतिपरीषद्, सयम पालनेकों जो अरति सयममें उत्पन्न होवे, तिसको सहे, इसके सद्नेका उपाय वशवैकालिककी प्रथम चूड़ामें अठारह वस्तुके चितनरूप करनेसे अरतिदूर हो जाती है ८ स्त्रीपरीषद्, सो स्त्रियोंके अंग प्रत्यग सस्थान सूरति, दसनानां, मनोहर पणां, विभ्रमादि चेष्टायोंकों मनमें चितवना न करे, मोक्ष मार्गमें अर्गलसमान स्त्रियोंकों जान करके

परीत वस्तुका श्रद्धान सोइ है, निमित्त जिसका सो मिथ्यात्व दर्शन प्रत्ययकी क्रिया, १० जीवके दहननेका तथा अजीव मय मांसादि पीने स्नानेका जिसके त्याग नहीं, ऐसा जो अक्षयती जीव, तिसकों अप्रत्याख्या नकी क्रिया, ११ घोडा, रथ, प्रमुख जीव तथा अजीवोंके देखने वास्ते जाना, सो दृष्टिकी क्रिया, १२ जीव, अजीव, स्त्री, पूतली, आदिकका राग करके स्पर्श करना, सो स्पृष्टिका क्रिया, १३ जीव, अजीवकी अपेक्षा जो कर्मका बध होवे, सो प्रातीत्यकी क्रिया, १४ जीव सो पुत्र, जाइ, शिष्यादिक, अरु अजीव सो नृपण, घर, दाटादि इनकों लोक सर्व दिशोंसे देखने आवे, देखके प्रशंसा करे, तब तिन वस्तुओंका स्वामी दर्पित होवे, सो सामतो पनिपातिका क्रिया, १५ जीव मनुष्यादि अरु अजीव इटका टुकड़ा, इनकों फेंके सो नैस्पृष्टिकी क्रिया, १६ अपने हाथों करी जीवकों तथा अजीवकों ( प्रतिमाविकों ) ताढे, वींधे, सो स्वदस्तकी क्रिया, १७ जीव अजीवकी मिथ्या प्ररूपणा करणी, तथा जीव अजीवकों मंत्रसे मगावा लेना, सो आह्वापनिका क्रिया, १८ जीव अजीवकों विदारणा, सो वैदारणिका क्रिया, १९ विना उपयोगकु जो वस्तु लेवे, तथा नृमिकादि उपर गड़े, सो अनाजोगक्रिया, २० इत लोकमें औ परलोकमें जो विरुद्ध ऐसा जो चोरी, परदारागमनादिक है, उनकों सेवे, मनमें मरे नहीं, सो अनवकांक्षा प्रत्यय क्रिया, २१ मन, बचन, कायाका जो सावय ( सपाप ) व्यापार, सो प्रयोग क्रिया, २२ अष्टविध कर्म परमाणुओंका जो ग्रहणा, सो समुदान क्रिया, २३ राग जनक बीणादिकका जो शब्दादि सो प्रेम प्रत्यय क्रिया २४ अपने उपर तथा पर उपर द्वेष करना, सो द्वेषप्रत्ययिकी क्रिया, २५ केवल योगोंसे जो क्रिया, सो केवलीकों ईर्ष्यापथ क्रिया यह पञ्चीस क्रिया का स्वरूप सङ्क्षेप मात्र लिखा है यद्यपि इन क्रियाओंमें कितनीक क्रिया आपसमें एक सरस्वी वीखती हैं, तोनी एक सरस्वी नहीं है, इनका अष्टी तरे स्वरूप देखना होवे, तो गणदस्तीनाय्य देख लेना

अथ योग तीन है, सो लिखते हैं १ मनका व्यापार, सो मनोयोग, २ बचनका व्यापार, सो वचनयोग, ३ कायाका व्यापार, सो काययोग, यह सर्व मिल कर बैतालीस जेव आश्रव तत्त्वके दूये हैं इन बैतालीस जेदों से जीवकों शुनाशुन कर्मकी आमदनी होती है इति आश्रवतत्त्व संपूर्ण ॥



ज शरीरमें लगनेसे कठिन मैल लग जाता है, अरु उष्ण कालकी तप्तसे प्रगट हुआ है दुर्गंध तिस करके उत्पन्न हुआ है उद्वेग, तोजी स्नानादि शरीरकी विनूपा साधु न करे, यह मलपरीषद् है, १९ सत्कारपरीषद्, सो जक्त लोकोने वस्त्रान्न पानादिक करके साधुको बहुत सत्कारनी किया, तोजी मनमें अजिमान न करणां, तथा और और साधुओंकी जक्त लोक पूजा नक्ति करते हैं, अरु जैनमतके साधुकी कोइ बातजी नहीं पूठता, तोजी मनमें विषाद न करे, यह सत्कारपरीषद् है, २० प्रज्ञापरीषद्, सो बहुत बुद्धि पा कर अजिमान न करे, तथा अल्पबुद्धि होवे तदा “मैं म हा मूर्ख हूँ, सर्वके पराजयका स्थान हूँ,” ऐसी ताप दीनता मनमें नहीं लावे, सो प्रज्ञापरीषद्, २१ अज्ञानपरीषद्, सो ज्ञान चौदहपूर्व पाठी, एकादशांगपाठी, तथा उपांग, छेद, प्रकर्ण, शास्त्रोका पाठी, ज्ञानका स मुद् मै हूँ ऐसा गर्व न करे अथवा मैं आगम ज्ञान रहित हूँ, धिक् है, मुझे निरह्वर कुद्दिनरको ? ऐसी दीनताजी न करे, ऐसे विचारे कि नि के वज ज्ञानावरणका क्षयोपशमके उदयसे मेरा यह स्वरूप है, स्वरुतकर्म का फल है, जांतीं जोगनेसे दूर होवेगा, वा तपोनुष्ठानसे दूर होवेगा ? ऐसे विचारि अज्ञान परीषद् सहे, २२ शास्त्रोंमें देवता अरु इन्द्र सुनते हैं, परंतु सांनिध्य कोइनी नहीं करता, इस वास्ते क्या जाने देवता इन्द्र है ? वा नहीं ? तथा मतांतरकी कृद्धि वृद्धि देख कर जिनोक्त तत्त्वमें समोह करनां, ऐसी विकलता जो मनमें न लावे, सो दर्शनपरीषद् यह बावी स परीषद् जो साधु जीते, सो सबरी कहा जाता है, इन परीषदोंका विस्तार देखनां होवे, तो श्रीशान्तिस्मरिक्त उत्तराध्ययन सूत्रकी बृहद्वृत्ति, तथा तत्त्वार्थ सूत्रकी वृत्ति देख लेनी

अथ पांच प्रकारका चारित्र लिखते हैं १ सामायिक चारित्र, २ वेदोपस्थापनिका चारित्र, ३ परिहारविमुक्ति चारित्र, ४ सूक्ष्मसंपराय चारित्र, ५ यथाख्यात चारित्र, यह पांच प्रकारका चारित्र है इन पांचोके धारक साधु जी जैनमतमें पांच प्रकारके हैं, इस कालमें प्रथम दो चारित्रके धारक साधु है, अरु तीन चारित्र व्यवच्छेद गये हैं, इन पांचोंका विस्तार पूर्वक देखनां होवे तदा देवाचार्यकृतं नवतत्त्व प्रकरणकी टीका, तथा ज

तिनोमें कामकी बुद्धि करके, नेत्रोंसे देखे नहीं ए चर्या नाम है चलने का चलनां घर रहित ग्राम नगरादिमें अनियतवास्तव ममत्व रहित मास कल्पादि करणा, सो चर्यापरीषद् है, १० निपद्यापरीषद्, सो निपद्या यह रहनेके स्थानका नाम है, सो स्थान, स्त्री, पद्मक विवर्जित होवे, तिस स्थानमें रहतेकों इष्टानिष्ट जो उपसर्ग होवे, तोजी अपरो चित्तमें चलायमान न होवे, सो निपद्यापरीषद्, ११ 'शेरते' शयन करिये इस विषे सा शय्या, सस्तारक, वसति, तहां सस्तारक सो सोनेका आसन, को मल, कठिन, ऊँचा, नीचा, धूल, कूड़ा, ककर वाली जगामें होवे, तथा वो स्थान, शीत गर्मी वाला होवे, तोजी मनमें उद्वेग न करे, दुःख सहन करे, सो शय्यापरीषद्, १२ आक्रोश परीषद्, सो अनिष्ट वचन कोइ कहे, तब ऐसे विचारे, जे कर यह पुरुष सच्ची बातके वास्ते अनिष्ट वचन कहता है, तो मुजकों कोप करनां ठीक नहीं, क्योंकि यह पुरुष मुजे शिक्षा देता है, फेर ऐसा काम न करुगा, जे कर इस पुरुषका मेरे पर जूता कोप है, तोजी मुजकों कोप करनां युक्त नहीं, ऐसे चितन करके आक्रोशपरीषद् सहे, १३ वध नाम है हाथादि करके ताड़नां, (मारनां,) तिसका सहनां सो इसी रीतीसे कि यह जो मेरा शरीर है, सो अवश्य विध्वंस होवेगा, इस शरीरके संबंधसे जो मेरेको दुःख होता है, सो मेरे करे दूये कर्म का फल है इस बुद्धिसे वधपरीषद् सहे, १४ याचना नाम मांगनेका है, सर्वही वस्त्र अन्नादिक साधुको मांगनेसेही मिलता है, इस बुद्धिसे याचना परीषद् सहे, १५ साधुको किसी वस्तुकी इच्छा है, अरु वो वस्तु गृहस्थ के घरमेंनी बहुत है, साधु मांगनेको गया, परंतु गृहस्थ देता नहीं, तब साधु मनमें विषाद न करे, अरु देने वालेका बुराजी नहीं चितवे, दुर्वचनजी न बोले, समता करे, आज नहीं मिला, तो कलको मिल जायगा, इस तरें अज्ञानपरीषद् सहे, १६ रोग (ज्वर अतिसारादि) जब हो जावे, तब गृहके बाहिर जो साधु होवे, सो तो कोइनी औषधि न खावे, अरु जो गृहवासी साधु होवे, सो गुरु जापवता विचार करके रोग परीषद् सहे, अरु जो रीति शास्त्रमें औषध करनेकी कही है, तिस रीतिसें करे, सो रोगपरीषद् सहे, १७ तृणस्पर्श परीषद्, सो वर्णादिक कठोर तृणका स्पर्श सहे, १८ मलपरीषद्, सो साधुके शरीरमें पत्तीना आनेसे रजका पु

रे ईश्वरजी कर्मफल जोगने वास्ते नरककुंडमें जा गिरेगा, अरु जीव पी ठेसे काहेसे बनेगा ? जीवका उपादान कारण कोइ नहीं. जे कर कहोगे कि ईश्वर जीवका उपादान कारण है, तब तो कारणके समान कार्यनी होना चाहिये जैसा ईश्वर निर्मल, नि पाप, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी है, तैसाही जीव होवे, परंतु तैसा है नहीं अरु जो ईश्वर जीवोंका उपादान कारण होवे, तब तो ईश्वरही जीव बन कर नाना क्लेश जन्म मरण गर्नावासादि दुखोंका जोगने वाला हुआ, तब ईश्वरने यह अपने पगमें आप कुहाडा क्यों मारा ? जो पूर्णानंद पद ठोड कर ससारकी विटंबनामें फसा ? फेर अपने आपको नि पाप करने वास्ते वेदादि शास्त्र द्वारा कैइ तरेंका तप जपादिक क्लेश करना बताया ? इस वास्ते यह सर्व कहनां महा मूर्खोंका है, इस वास्ते यह दूसरा विकल्पनी मिथ्या है

३ तीसरा विकल्प, जीव और कर्म यह दोनों एक साथ उत्पन्न हूये, यहनी मिथ्या है, क्योंकि जो वस्तु समकालमें उत्पन्न होती है, सो आपसमें कारण कार्य रूप नहीं होती है, जब कर्म, जीवके करे सिद्ध न हूये, तब कर्मफलनी जीव नहीं जोगेगा, यह प्रत्यक्ष विरोध है, क्योंकि जीव तो कर्म जोत्ते देखते हैं, अरु कर्म तथा जीवका उपादान कारण कोइ नहीं इस वास्ते यह तिसरा विकल्पनी मिथ्या है

४ चौथा विकल्प, जीव तो है परंतु जीवके कर्म नहीं यहनी मिथ्या है, क्योंकि जब जीवके कर्म नहीं, तो जीव दुख सुख क्यों जोत्ता है ? कर्म के बिना ससारकी विचित्रता कदापि न होवेगी ? इस वास्ते यह चौथा विकल्पनी मिथ्या है

५ पांचमा विकल्प, जीव अरु कर्म, यह दोनोंही नहीं, यहनी मिथ्या है, क्योंकि जब जीवही नहीं, तब यह कौन कहता है, जो जीव अरु कर्म नहीं है, ऐसा कहने वाला जीव है ? कि दूसरा कोइ है ? इस वास्ते यह स्वबचनविरोध है, तो यह पांचमा विकल्पनी मिथ्या है यह पांच विकल्प मिथ्यात्वरूप हैं, अरु सत्य विकल्प उछा है, सो यह है

६ उछा विकल्प, जीव अरु कर्म, यह दोनों अनादि अपभ्यानुपूर्वी है.

प्रश्न -जब जीव अरु कर्म यह दोनों अनादि हैं, तब तो जीवकी तरें कर्मका नाश कदापि न होना चाहिये ?

गवती अरु पन्नवणासूत्रकी वृत्ति देख लेनी. यह सर्व मिल कर सत्तावन जेद आश्रवके रोकने वाले हैं. इति सवरतत्त्व संपूर्ण ॥

अथ निर्झरातत्त्व लिखते हैं निर्झरा उसकों कहते हैं, जो बांधे हूँ ये कर्मोंको खेरु करे, जिस करके निर्झरा होती है, तिसका नाम तप है सो तप बारह प्रकारका हैं, उसका स्वरूप गुरुतत्त्वमें संक्षेप करके लिख आये हैं, तहांसें जान लेना अरु जे कर विस्तार देखनां होवे, तवा नव तत्त्वप्रकरणवृत्ति तथा श्रीवर्द्धमानसूरिकृत आचारदिनकर शास्त्र, तथा श्रीरत्नशेखरसूरिकृत आचारप्रदीप, तथा जगवतीसूत्र, अरु उववाईं शास्त्र देख लेनां ॥ इति निर्झरातत्त्व संपूर्ण ॥

अथ बधतत्त्व लिखते हैं, बध चार प्रकारका होता है, १ प्रकृतिबंध, २ स्थितिबंध, ३ अनुजागबंध, ४ प्रवेशबंध बध कहते हैं जीवके प्रवेश, अरु कर्मपुञ्ज, ये दोनों दूध अरु पाणीकी तरें परस्पर मिल जावे, उसकों बंध कहते हैं अथवा बध नाम बदीवानका है, जैसें वधुआ कैदमें स्वतंत्र नहीं रहता, ऐसें आत्माजी हानावरणीयादि कर्मोंके बंध हो जाता है, स्वतंत्र नहीं रहता है, इस कर्मके बधमें ठ विकल्प है, सो कहते हैं

१ कोइक वादी कहता हैं, कि निर्मलजीव पुण्य पापके बध रहित था, पीछेसें पुण्य पापका बध हुआ है, यह प्रथम विकल्प यह विकल्पमिथ्या है, क्योंकि निर्मल जीव कर्मका बध नहीं कर सका है, अरु कर्मके बिना सत्सारमें उत्पन्नजी नहीं हो सका है, जे कर निर्मल जीव कर्मका बध करे, तब तो मोक्षस्थ जीवजी कर्मका बध कर लेवेगा, जब मोक्षस्थ जीवकों कर्मबंध हुआ, तब मोक्षका अज्ञाव हो जावेगा, जब मोक्ष नहीं, तब तो मोक्षोपायके शास्त्र अरु शास्त्रोंके बनाने वाले मिथ्यावादी हो जावेंगे, तब तो नास्तिकमती बन जायेंगे, अरु निर्मल आत्मा सत्सारमें शरीरके अज्ञावसें कर्मकी फादसें करेगा ? इस वास्ते यह प्रथमविकल्प मिथ्या है.

२ दूसरा विकल्प कर्म पदेले थे, अरु जीव पीछेसें बना है, यहजी मिथ्या है, क्योंकि जीवोंके बिना वो कर्म किसनें करे थे, कारणकि कर्ताके बिना कर्म हो नहीं सके हैं, अरु प्रथम कर्मोंका फल इस जीवकों नहीं होवेगा, क्योंकि वो कर्म जीवके करे हुए नहीं हैं, जे कर कर्मके करे बिनाजी कर्मका फल होवे, तब तो अतिप्रसंग दूषण होवेगा, अरु बिना कर्मके क

स्वभाव वात हरणोका वा पित्त हरणोका वा कफ हरणोका इत्यादि होता है, जैसें ही प्रकृति स्वभाव कर्मोंका, किसी प्रकृतिका ज्ञानावरण करनेका स्वभाव, कोसी प्रकृतिका दर्शन आवरण करनेका स्वभाव होता है, सो प्रकृतिबंध, १ कोइ लड्डु एक दिन रहके बिगड़ जाता है, कोइ दो, तिन, चार, पाच, ठ, सात, आठ, नव, दश, इग्यारह, बारह, तेरह, चौदह दिन, कोइ पक्ष, मासादि रहता है, पीछे बिगड़ जाता है ऐसेही कर्मस्थितिजी कोइ घड़ी, पहर, दिन, पक्ष, मास, यावत् सीतेर कोटाकोटी सागरोपम लग रह कर फल दे कर, चली जाती है, यह दूसरा स्थितिवंध ३ जैसें लड्डुमें रस है किसीमें कडुवा, किसीमें कपायेला, किसीमें मीठा, ऐसेही कर्मोंमें रस है किसीमें दुःख रूप, किसीमें सुख रूप, जो जो अवस्था जीवकी सत्तारमें होती है, सो सर्व कर्मके अनुनागसें होती है, यह तीसरा अनुनाग बंध तथा ४ जैसें लड्डुका तोल, मान, कोइ तोला, कोइ ठ टाकादि होता है, ऐसे ही कर्मप्रदेशोंकी गिणती किसी कर्ममें थोड़ी, किसीमें अधिक, होती है, यह चौथा प्रदेश बंध यह दृष्टांत कर्मग्रथमें है

अथ बंधके हेतु लिखते हैं एक तो मिथ्यात्व सो तत्त्वार्थे श्रद्धान रहित होना, इसरा पापोसें निवर्त्त होनेके परिणाम रहित होना, सो अ विरतिपणां, तीसरा कष नाम सत्तारका है, तथा कर्मका है, तिसका जो आथ नाम लान सो कपाय, क्रोध, मान, माया, लोन रूप चौथा योग सो मन, बचन, कायाका व्यापार, यह चारों, बंधके मूलहेतु हैं

अथ उत्तर हेतु सत्तावन लिखते हैं उसमें प्रथम तो मिथ्यात्व पां च प्रकारका हैं १ अनिग्रह मिथ्यात्व, २ अननिग्रह मिथ्यात्व, ३ अनि निवेश मिथ्यात्व, ४ सशयमिथ्यात्व, ५ अनाज्ञोग मिथ्यात्व

१ प्रथम अनिग्रह मिथ्यात्व है, सो जो जीव ऐसा जानता है कि जो कुछ मैंने समझा है, सो सत्य है, औरोंकी समझ ठीक नहीं है, सब जूठकी परीक्षा करनेका मनजी नहीं है, सब जूठका विचारजी नहीं करता है, यह मिथ्यात्व वीकृत शाक्यादि अन्यमत ममत धारीयोंको हो तो है, वो अपने मनमें ऐसें जानते है, कि जो मत, हमने अगीकार किया है, वो सत्य है, और मत सर्व जूठ हैं, ऐसें जिसके परिणाम हो वे, सो अनिग्रह मिथ्यात्व

उत्तर—कर्म जो अनादि कहे हैं, सो प्रवाह अनादि है, इस वास्ते उ सका ह्य हो जाता है

प्रश्न—यह जो तुम वध कहते हो, सो निर्देतुक है ? अथवा सहेतुक है ? जे कर कहोगे कि निर्देतुक है, तब तो “नित्य सत्त्व” होवेगा, वा “नित्य असत्त्व” होवे गा, क्योंकि जिस वस्तुका हेतु नहीं, वो आकाशवत् नित्य सत्त्व होती है, अथवा खरगुंगवत् नित्य असत्त्व होती है, निर्देतुक होनेसे मोहका अभाव हो जावेगा, जे कर कहोगे कि सहेतुक है, तो हमको कहो कि इस वधके क्या हेतु है ?

उत्तरपद—इस वधके मूल हेतु चार हैं, अरु उत्तर हेतु सत्तावन हैं, यहां प्रथम चार प्रकारका वध कहते हैं, तिसमें प्रथम तो प्रकृतिबध है, सो प्रकृति कौनसी है ? अरु उसका वध क्या है ? तदा मूल प्रकृति आठ हैं, उसमें १ मर्यादि ज्ञानका जो आवरण आच्छादन, सो ज्ञानावरण, २ सामान्य बोध चक्षु आदिका जो आवरण सो दर्शनावरण, ३ सुख दुःख वेदीयें ( जोगीयें ) सो वेदनीय, ४ मोहे जीवकों विचित्रताको प्राप्ति करे, सो मोह, ५ सर्वथा जो कर्म चला जावे “एति याति चेत्यायु” जिसके उदयसे जीव जीता है सो आयु, ६ नमावे जो गुणागुण गत्यादि रूप करके आत्माको, सो नामकर्म, ७ गोत्र शब्दकी व्युत्पत्ति ऐसे है “गां वा चां प्रायतइति गोत्रं” जिसके उदयसे जीव उच नीच कुलका कहाता है, सो गोत्र, ८ अंतर कहियें विचाले लाजादिके जो हो जावे, एतावता वा न लाजादिक जीवमें होताको न होने वेवे, सो अंतराय, यह आठ स्वभाव रूप कर्म जो जीवके साथ क्षीर नीरकी तरें मिथ्यात्वादि हेतुओंसे बध जावे, तिसका नाम प्रकृतिबध है २ इनहीं आठ प्रकृतियोंकी स्थिति अर्थात् काल मर्यादा, जैसी कि यह प्रकृति इतना काल तक आत्माके साथ रहेगी, पीछेसे न रहेगी, जिस करके ऐसी स्थिति होवे, सो स्थिति बध ३ इनही आठ प्रकृतियोंमें तीव्र, मद्, रसका जो करना, सो अनुजागवध, ४ कर्मप्रवेशका जो प्रमाण यथा इतने परमाणु इस प्रकृतिमें है, उन परमाणुओंका जो आत्माके साथ वध सो प्रवेशवध

इसका वध इस तरें चार प्रकारें है सो जम्ब जीवोंके सुबोधके वास्ते चार प्रकारके वधमें लङ्का दृष्टांत लिखते हैं, जैसे एक लङ्का है, तिसका

शास्त्रके अर्थ बताने वाला गुरु पूरा चाहिये, सो नहीं है इत्यादि निमित्तोंसे सशयमिथ्यात्व होता है

५ पांचमा अनाजोग मिथ्यात्व, सो जिन जीवोंको उपयोग नहीं कि धर्म, अधर्म, क्या वस्तु है ? ऐसा जो विकर्षेडियादि जीव, तिनको अनाजोगमिथ्यात्व होता है यह मिथ्यात्वके पांच नेद हैं यह पांच मिथ्यात्वमें औरजी मिथ्यात्वके अनेक नेद हैं सोजी इन पांचोंके अतर्भूत हैं, सो नेद इस प्रकारसे हैं

१ प्रथम प्ररूपणा मिथ्यात्व, सो जिनवाणी रूप जो सूत्र, निर्युक्ति, नाथ्य, चूर्णी, टीका, इनसे विपरीत प्ररूपणा करे

२ दूसरी प्रवर्तना मिथ्यात्व, सो जो काम,मिथ्यादृष्टि जीवों धर्म जान करके करते हैं, उनकी देखा देखीसे उनकी करणी करें, ३ तीसरी परिणाम मिथ्यात्व, सो मनमें परिणाम विपरीत कदाग्रह रहे, छुट शास्त्रार्थ माने नहीं

४ चौथा प्रदेशमिथ्यात्व, सो मिथ्यात्वके पुञ्ज जो सत्तामें है, उन का नाम प्रदेश मिथ्यात्व है इन चारों नेदोंके अनेक नेद हैं, उसमेसू कितनेक लिखते हैं

१ धर्म जो बीतराग सर्वज्ञने कहा है, तिसको अधर्म माने, २ अरु जो हिंसा प्रवृत्ति प्रमुख आश्रवमयी अछुट अधर्म हैं, उसको धर्म माने, ३ जो सत्यमार्ग है, उसको मिथ्यात्व कहे, ४ जो विषयीयोंका मार्ग है, उसको सत् मार्ग कहे, ५ जो साधु सत्तावीश गुणों करी बिराजमान है, उसको असाधु कहे, ६ जो आरंभ परिग्रह विषय कषाय करके नरा दूया है, अरु उपवेश ऐसा देता है, कि जिसके सुननेसे लोकोंको कुवासना, लुप्तपणा, कुबुद्धि उत्पन्न होवे, ऐसा गुरु पञ्चरकी नौका समान ऐसे जो अन्यालिगी कुलिंगी तिनको साधु कहे, ७ षट्कार्योंके जीवोंको अजीव माने, ८ काष्ठ, सोना, जो अजीव हैं, उनको जीव माने, ९ मूर्ति पदार्थोंको अमूर्ति माने, १० अमूर्ति पदार्थोंको मूर्ति माने, यह दश नेद मिथ्यात्वके हैं

तथा दूसरे षे नेद मिथ्यात्वके हैं, सो कहते हैं १ लौकिक देव, २ लौकिक गुरु, ३ लौकिक पर्व, ४ लोकोत्तर देव, ५ लोकोत्तर गुरु, ६ लोकोत्तर पर्व

१ प्रथम लौकिक देवगत मिथ्यात्व जो है, सो जो देव, राग द्वेष करके नरा दूया है, एक उपर महेरवान होता है, एकका विनाश करता है, स्त्री

२ दूसरा अनजिग्रह मिथ्यात्व, सो सर्व मतोंको अज्ञा माने, सर्वमतोंसे मोक्ष है, इस वास्ते किसीको बुरा न कहना, सर्वको नमस्कार करनी, यह मिथ्यात्व, जिनोंने कोइ दर्शन ग्रहण नहीं करा, ऐसे जो गोपाल बालकादि तिनको है, क्योंकि यह अमृत अरु विषको एक सरिखे जानने वाले हैं.

३ तीसरा अजिनिवेश मिथ्यात्व, सो जो पुरुष जान करके फूट बोधे, प्रथम तो अज्ञानसे किसी शास्त्रार्थको नूल गया, पीछे जब कोइ विद्वान् कहे कि तुम इस बातमें नूलते हो, तब फूटे मतका कदाग्रह ग्रहण करे, जाल्यादि अजिमानसे कहना न माने, उलटी स्वकपोलकल्पित कुपुक्तियों बना करके अपने मनमाने मतको सिद्ध करे, वादमें हार जावे, तोजी न माने, ऐसा जीव अतिपापी, अरु बहुल ससारी होता है. ऐसी मिथ्यात्व, प्राय जो जैनी (जैनमतको) विपरीत कथन करता है, उसमें दोष है, जैसे गोष्ठमाहिलाविक दूये हैं, इस बार्त्ताको नाथ्यकार श्रीअनघ देवस्वरि नवांगीवृत्तिकारक नवतत्त्वप्रकरणकी नाथ्यमें कहता है, “तथा च नाथ्यकार ॥ गोष्ठमाहिलमाई ए, जं अजिनिविसि तु तयं ॥” आदि शब्दसे बोटिक शिवजूतिकों अजिनिवेशिक मिथ्यात्व जानना.

४ चौथा सशय मिथ्यात्व, सो जिनोक्त तत्त्वमें शका करणी, क्या यह जीव असख्य प्रवेशी है ? वा नहीं है ? इस तरें सर्व पदार्थोंमें शका करणी, तिससेंति जो उत्पन्न होवे, सो सांशयिक मिथ्यात्व “तदाह नाथ्यकृत् ॥ सांशयिक मिथ्यात्व तदशेषया शका सदेदोजिनोक्ततत्त्वेष्विति ॥” सशय मिथ्यात्वके होनेके कारण श्रीजिनजङ्गणिक्रमाश्रमण ध्यानशतकमें लिखते हैं, कि एक तो जैनमत स्थाविरूप अनतनयात्मक है, इस वास्ते समजना कठिन है, तथा सप्तजगीके सकलादेशी, विकलादेशी जगोंका स्वरूप, अष्टपक्ष, सात सौ नय, चार निरूप, इष्य, क्षेत्र, काल, जाव, तथा १ उत्सर्ग, २ अपवाद, ३ उत्सर्गापवाद, ४ अपवादोत्सर्ग, ५ उत्सर्गोत्सर्ग, ६ अपवादापवाद, यह षड्जगी तथा १ विधिवाद, २ चारित्रानुवाद, ३ विधिवाद, ४ यथास्थितवाद, इत्यादि अनतनयापेक्षा जैनमतके शास्त्र कथन कीये दूये हैं, जब तांइ जिस अपेक्षा शास्त्रोंमें कथन है वो अपेक्षा न समजे, तब तांइ जैनशास्त्रका यथार्थ अर्थ समजना कठिन है. इनके समजनेके वास्ते बड़ी निर्मल बुद्धि चाहिये सो थोड़े जीवोंको है, तथा



ग्रना करुंगा, जैसें नावोंसें बीतरागकों माने, इस वास्ते यह मिथ्यात्व है, जो पुरुष चिंतामणिका दातासेंती काचका टुकड़ा मागे, वो युक्त नहीं जि सकों अपने कर्मोदयका स्वरूप मालुम नहीं, वोही जीव ऐसा होता है, यह लोकोत्तरदेवगत मिथ्यात्व है.

५ पांचमा लोकोत्तरगुरुगत मिथ्यात्व, सो जो साधुका वेप रक्के, अरु आप निर्गुणी होवे, जिनवाणीका उच्चापक होवे, अपने मन कल्पितका उपदेश देवे, सूत्रका सच्चा अर्थ तोड़े, ऐसा लिंगी उत्सूत्रका प्ररूपक ति सकों गुरु जान कर मान, सन्मान करे. तथा जो साधु गुणी, तपस्वी, आचारी बद्धक्रियावत, तिसकी इस लोक इच्छा करके सेवा करे, बद्धमान करे, मनमें ऐसे जाणे कि इनकी बद्धत सेवा करुंगा, तब इनकी मेहरबानगीसे धन, इन्द्रि, स्त्री, पुत्रादि मुज्जकों मिलेंगे, यह लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व है

६ ठछा लोकोत्तरपर्वगत मिथ्यात्व, सो प्रभुके पांच कल्याणिककी तिथि तथा दूसरे पर्वके दिन, तिन दिनोमें धनाविके वास्ते जप, तप, धर्मकरणी करे, सो लोकोत्तरपर्वगत मिथ्यात्व है इत्यादि मिथ्यात्वके अनेक वि कल्प हैं, परंतु वो सब पूर्वोक्त अनिग्रहादि मिथ्यात्वमेंही अतर्जुत हैं यह पांच प्रकारका मिथ्यात्व कहा, यह प्रथमबध हेतु कहा

अब बारह प्रकारकी अविरति कहते हैं पांच इन्द्रिय, ठछा मन, अरु ठे काय, यह बारह प्रकार हैं तिसका स्वरूप इस तरेसें है, पांच इंद्रियोंकों अपने अपने विषयमें प्रवृत्तावे, सो पांच अव्रत, अरु ठछा किसी पापकी वस्तुसें मनका निरोध न करनां सो अव्रत है, तथा पड़विध जीवनिकायकी हिंसामें प्रवृत्त होवे, यह बारह प्रकारें अविरति है, यह दूसरा बधहेतु कहा

तीसरा कषायबध हेतु है, उनके सोलां कषाय, अरु नव नोकषाय मिल कर पञ्चीस जेव हैं अनतानुबधि क्रोध, मान, माया, अरु लोभ, ऐसें ही अप्रत्याख्यान क्रोधादि चार, तथा प्रत्याख्यान क्रोधादि चार, अरु सज्जन क्रोधादि चार, एव सोलह कषाय, इनके सहचारी नव नोकषाय है, उसका नाम कहते हैं १ हास्य, २ रति, ३ अरति, ४ शोक, ५ जय, ६ छुगुप्ता, ७ स्त्रीवेद, ८ पुरुषवेद, ९ नपुंसकवेद इन सर्वका व्याख्यान पीठें लिख आये हैं, इनसें कर्मका बध होता है, यही ससार स्थितिका मूल कारण है यह तीसरा बध हेतु कहा

के जोगविलासमें मग्न है, अरु अनेक प्रकारके राख जिसके हाथमें हैं, अपनी ठकुराईमें अजिमाती है, हाथमें माला जपता है, सावध जोग पंचेंद्रिका वध चाहाता है, ऐसे देवकों जो पुरुष परमेश्वर माने, अथवा परमेश्वरका अश अवतार माने, और पूजे, तिसके कहे दूये शास्त्रसे हिंसाकारी यज्ञादि करे, अनेक तरेंके पाप, धर्मके नामसे प्रवृत्त करे, इसलौकिक देवके अनेक जेद हैं सो मिथ्यात्व सित्तरी प्रमुख ग्रंथोंसे जानने. यह प्रथम लौकिक देवगत मिथ्यात्व है

१ दूसरा लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व, सो जो अठारह पाप सेवे हैं, नव प्रकारका परिग्रह राखे, गृहस्थाश्रम सेवे, स्त्री, पुत्र, पुत्रीके परिवार बाला होवे, तथा कुलिंगी मन कल्पित नवा नवा वेष बना कर स्वकपोलकल्पित चलावे, अरु आम्बरी होवे, बाह्य परिग्रह तो त्याग दोया है, परंतु अन्य तर ग्रंथि ठोड़ी नहीं, गुरु नाम धरावे, ममलीसें विचरे, जिसकी अनादि नूल मिटी नहीं, औ जिसकों शुद्ध साध्यकी पीठाण नहीं, तिसकों गुरु माने, तिसका बहुमान करे, तिस्सें मोक्ष जाणी दान देवे, उसकों परम पात्र जाणे, सो लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व है

३ तीसरा लौकिक पर्वगत मिथ्यात्व, सो १ अजापढवा, २ प्रेतदूज, ३ गुरुतीज, ४ गणेशचौथ, ५ नागपंचमी, ६ जीलणाढठ, ७ सीयलसा तम, ८ बुद्धाष्टमी, ९ नोजीनवमी, १० विजयदशमी, ११ व्रतएकादशी, १२ वत्सदादशी, १३ धनतेरस, १४ अनंतचौदश, १५ अमावास्या, १६ सोमवतीअमावास्या, १७ रक्षाबंध, १८ दोली, १९ आहोइ, २० दसहरा, २१ सोमप्रदोष, २२ लोड़ी, २३ आदित्यवार, २४ उत्तरायण, २५ सक्रांति, २६ ग्रहण, २७ नवरात्र, २८ आहु, २९ पीपलकों पाणी देना, ३० गधे कों माताका घोडा मानके पूजणां, ३१ गोत्राटी, ३२ अन्नकूट, ३३ अनेक समशान, कबरोंका मेला इत्यादि यह लौकिक पर्वगत मिथ्यात्व है

४ चौथा लोकोत्तर देवगत मिथ्यात्व, सो देव श्रीअरिहंत, धर्मका आकर, विश्वोपकार सागर, परमपूज्य, परमेश्वर, सकल दोष रहित, शुद्ध, निरंजन, तिनकी स्थापनारूप जो प्रतिमा, तिसके आगे इस लोकके पौजलिक सुखकी आशासें मनमें कल्पना करे, जेकर मेरा यह काम हो जावेगा, तो मैं बड़ी नारी पूजा करुगा, ठत्र चढावगा, दीपमालाकी रोशनी करुगा, रात जा

स वस्तुका जो नाम बोलते हैं, उस देशमें वो नाम सत्य है, जैसें कोकण देशमें पाणीकों पित्र कहते हैं, कोइ देशमें बड़ा पुरुषकों वेटा कहते हैं, वा वेटेको काका कहते हैं, किसी देशमें पिताको नाइ, सासुकों आइ, इत्यादि कहते हैं, सो जनपदसत्य १ दूसरा सम्मतसत्य, सो जैसें पकसे उत्पन्न हुआ मैमक, सिवाल, कमल, तोनी पकज शब्द करके कमलही पूर्व विद्या नाने सम्मत कीया है, परंतु मैमक, सिवाल नहीं ३ तीसरा स्थापनासत्य, सो जिसीकी प्रतिमा होवे, तिसको उसके नामसे कहना, जैसे महावीर, पार्श्वनाथ जी अर्द्धतकी प्रतिमा होवे, उस प्रतिमाकों महावीर, पार्श्वनाथ कहे, तो सत्य है, परंतु उसकों पत्थर कहे, सो मृपावादी है, जैसे स्याही और कागज का नाम, स्थापना करनेसें जू, यजु, साम, अथर्व, कहे जाते हैं, आचारंगदि अंग कहे जाते हैं, तथा काष्ठके आकार विशेषकों किवाड कहे जाते हैं, ईंट, पत्थर, चूनेको स्थन कहना, पुस्तकमें त्रिकोणादि चित्र लिखके उसकों आर्यावर्त्त, नारतवर्ष, जंबूद्वीपादि कहना तथा ककार, खकार, स्याहीकी स्थापनाकों कहना इस स्थापनासे पुरुषकी कबुक् सिद्धि जरूर होती है, नहीं तो नाना प्रकारकी स्थापना, पुरुष, किस वास्ते करते हैं ? इस वास्ते श्रीमहावीर तथा श्रीपार्श्वनाथजीकी स्थापनारूप प्रतिमाको श्री महावीर पार्श्वनाथजी कहना, यह स्थापना सत्य है इसमें इतना विशेष है, कि जो देव शुद्ध है, उसकी स्थापनाजी शुद्ध है, अरु जो देव शुद्ध नहीं, उसकी स्थापनाजी शुद्ध नहीं, परंतु उस स्थापनाकों उनका देव कहना, यह बात सत्य है ४ चौथा नामसत्य, सो किसीने अपने पुत्रका नाम कुलवर्द्धन रखा है, अरु जिस दिनसें वो पुत्र जन्मा है, उस दिनसें उस कुलका नाश होता चला जाता है, तोनी उस पुत्रकों कुलवर्द्धन नामसें पुकारे, तो सत्य है ५ पांचमा रूपसत्य, सो चाहे गुणोंसें छष्टनी है, तोनी साधुके वेपवालेकों साधु कहे, तो सत्य है, ६ षष्ठा प्रतीतसत्य, अर्थात् अपेक्षासत्य, सो जैसें मध्यमाकी अपेक्षा अनामिकाकों ठोटी कहना ७ सातमा व्यवहारसत्य, सो जैसें पर्वत जलता है, रसता चलता है ८ आठमा जावसत्य, सो जैसें तोतेमें पांच रंग हैं, तोनी तोता हरे रंगका कहना ९ नवमा योगसत्य, सो जैसें दमके योगसें दमनी कहना १० दशमा उपमासत्य, सो जैसें मुख, चक्षुत् कहना यह दश प्रकारका सत्य है

चौथा योगनामा बंधहेतु हैं. सो योग, मन, वचन, अरु काया, यह तीन प्रकारका है. इन तीनोंके पंदरा जेद हैं. तहां प्रथम मनोयोग चार प्रकारका है, और वचन योग चार प्रकारका है, अरु काययोग सात प्रकारका है, ये सब मिलकर पंदरा जेद है

मन नाम अत करणका है, सो चार प्रकारें है. १ सत्यमनोयोग, २ असत्यमनोयोग, ३ मिश्रमनोयोग, ४ व्यवहारमनोयोग मन क्या वस्तु है? कायाके व्यापारसँ पुजल ग्रहणा करके उन पुजलोंको जव मनोयोग करके काढता है, तिसका नाम इव्यमन कहते हैं, अरु उन पुजलोंके सयोगसे जो ज्ञान उत्पन्न हो ता है, तिसका नाम ज्ञावमन है उस ज्ञान करके जो व्यवहार सिद्ध होता है, तिस व्यवहार करके मनजी सत्यादि अपदेशकों प्राप्त हो ता है, अरु उपचार करके इव्यमनजी क्षायक है, मनमें जो सत्य व्यवहारका धारण करता, सो सत्यमन, सो व्यवहार यह है कि पापसँ निवृत्तनां वचनके उच्चारण बिना जो चितवन करनां कि मुनि है, जीवादि पदार्थ सत् हैं, इत्यादि मन शब्द करके इहां मनोयोग नोडियावरण कर्मके कृत्योपशमसँ उत्पन्न हुआ जो मनोज्ञान, उस करके परिणत आत्माकों ब जायान करने वाला मनोवर्गणाके सबधसँ उत्पन्न हुआ दीर्घविशेष, सो इहां मन जाननां इसी मनके चार जेद हैं जैसेंही वचनयोग, सो वचनकी वर्गणा अर्थात् परमाणुका समूह, उस वचन वर्गणा करके उत्पन्न जइ सामर्थ्यविशेष, आत्माकी परिणति, सो वचनयोग जाननां

मनके चार जेदमेंसू सत्यमनोयोगका स्वरूप उपर लिख आये हैं, सो प्रथम जेद अरु दूसरा सृषामन, सो धर्म नहीं, पाप नहीं, नरक, स्वर्ग, कुठ नहीं इत्यादिक जो वचन निरपेक्ष चितवना करनी, सो जाननां तीसरा मिश्रमन, सो सच्च, अरु छूठ, इन दोनोंका चितन, जैसें गोवर्गकों देख कर मनमें चितन करनां कि यह सर्व गौवां हैं, यह मिश्र इस वास्ते है कि उस गोवर्गमें बलवन्नी है, इत्यादि मिश्रवचन चौथा “ हे ग्राम गच्छ ” इत्यादि चितन करनां, सो व्यवहारमन, इसी तरें जव वचन योगसँ पूर्वोक्त चारोंका उच्चारण करे, तब वचन योगजी चार प्रकार का जान लेनां यह चार मनके अरु चार वचनके एव आठ जेद हूवे

अब सत्यवचन दश प्रकारका है, १ जनपद सत्य, सो जिस वंशमें जि

जीवके वीर्यका परिणाम सामर्थ्य, सो कायायोग है, जैसे अग्निके संयोग से घटकी रक्तता होती है, तैसेही आत्माको कायके करण सवधसे वीर्य परिणाम है, इस काययोगके सात जेद है १ आदारिककाययोग, २ आदारिकमिश्रकाययोग, ३ वैक्रियकाययोग, ४ वैक्रियमिश्रकाययोग, ५ आदारककाययोग, ६ आदारकमिश्रकाययोग, ७ कर्मणकाययोग उसमेंलू प्रथमके दो काययोग तो मनुष्य, अरु तिर्यचमें होते है, अगले दो स्वर्ग वासी देवताओंमें होते है, अरु अगले दो चौदह पूर्वपाठी साधुमें होते हैं, अरु जीव जब काल करके परजवमें जाता है, तब रस्तेमें कर्मण शरीर होता है, तथा समुद्घात अवस्थामें केवलीमें होता है, अरु जो तैजस शरीर, आहार पाचन करनेमें समर्थ युक्त है, सो कर्मण योगके अंतर नूत होनेसे पृथग् ग्रहण नहीं कीया है यह सप्तविध काययोग है यह सब मिल कर बधतत्त्वके उत्तर जेद सत्तावन्न दूये हैं ॥ इति बधतत्त्व संपूर्ण

अथ मोक्षतत्त्व लिखते है तहां प्रथम मोक्ष किसको कहते हैं ? यद्युक्त ॥ जीवस्य कृत्स्नकर्मकृयेण यत्स्वरूपावस्थान तन्मोक्ष उच्यते ॥ जावार्थ - जीवके संपूर्ण ज्ञानावरणादि कर्मोंके कृय होने करके जो स्वरूपमें रहना है, सो मोक्ष कहते है वो जो मोक्ष है, सो जीवका धर्म है अरु धर्म धर्मीका कथचित् अजेद होनेसे धर्मी जो सिद्ध, तिनकी जो प्ररूपणा, सो जी मोक्ष प्ररूपणा है, क्योंकि मोक्ष जो है, सो जीवपर्याय है, सो जीव पर्याय कथचित् सिद्ध जीवसे अजिन्न है, सर्वथा जीवकी पर्याय जीवसे निन्न नहीं हो सकी है ॥ तदुक्त ॥ श्लोक ॥ इव्य पर्यायवियुतं, पर्यायाद्ध्यवर्जिता ॥ क कदा केन किं रूपा, दृष्टा मानेन केन वेति ॥ १ ॥ जावार्थ - इव्य पर्यायों करके रहित अरु पर्यायों इव्य वर्जित अर्थात् रहित, किसी जगे, किसी अवसरमें, किसी प्रमाणसे, किसीने कोइ रूप देखा है ?

अब सिद्धोंका स्वरूप नव द्वारोंसे सूत्रकार अरु जाप्यकार कहते हैं १ सत्पद प्ररूपणा, २ इव्यप्रमाण, ३ क्षेत्र, ४ स्पर्शना, ५ काल, ६ अंतर, ७ जाग, ८ जाव, ९ अल्पबहुत्व इन नव द्वारों करके सिद्धोंका स्वरूप लिखते है १ प्रथम सत्पद प्ररूपणा द्वार, सो जो सत्ता विद्यमानता, तिसका कहने वाला पद, सो सत्पद सिद्ध है, वा नहीं सिद्ध है ? सो गति आदि चौद पदोंमें कहनां यथा “पचविधा” १ पांच प्रकार गति है,

अब दश प्रकारके जूठ कदते हैं. १ क्रोधनिमित्त तो क्रोधके दश हो कर जो वचन बोले, सो असत्य, २ ऐसेही मानके उदयसे बोले, सो असत्य, ३ ऐसे मायाके उदयसे बोले, सो असत्य, ४ लोभके, ५ रागके, ६ द्वेषके उदयसे बोले, सो असत्य, ७ हास्यके दश बोले, ८ जयके दश बोले, ९ विकथा करे, सो असत्य १० जिस बोलनेमें जीवकी हिंसा होवे, सो असत्य यह दश प्रकारका असत्य वचन है

अब दश प्रकारका मिश्रवचन कदते हैं १ उत्पन्न मिश्रित, सो बिना खबर कह देना कि इस नगरमें आज दश बालक जन्मे हैं, इत्यादि २ विगत मिश्रित, सो जैसे बिना खबरके कहना कि इस नगरमें आज दश मनुष्य मरे हैं ३ उत्पन्नविगतमिश्रित, सो जैसे बिना खबरके कहना कि इस नगरमें आज दश जन्मे हैं, अरु दशही मरे हैं ४ जीवमिश्रित, सो जीवा जीवकी राशिकों कहना कि यह जीव है ५ अजीवमिश्रित, सो अन्नकी राशिकों कहना कि यह अजीव है ६ जीवाजीवमिश्रित, सो जीवाजीव दोनोंकी मिश्रजापा बोले ७ अनन्तमिश्रित, सो मूली आदिकोंके अवयवोंमें किसी जगे अनन्त जीव हैं, किसी जगे प्रत्येक जीव हैं, उनको प्रत्येक काय कहै ८ प्रत्येकमिश्रित, सो प्रत्येक जीवोंको अनन्तकाय कहै ९ अक्षामिश्रित, सो दो घड़ीके तहकेमें कहै कि दिन चम्या है १० अदक्षामिश्रित, सो घड़ी एक रात्रि गया, दिनका उदय कहै यह दश प्रकारका मिश्रवचन है

अब व्यवहार वचनके बारह जेव कहते हैं १ आमत्रण करना, कि हे जगवन् ! २ आह्वापना, सो यह काम कर, तथा यह वस्तु लाव ३ याचना, सो यह वस्तु हमको दीजिये ४ पृष्ठना, सो अमुक गामका मार्ग कौन सा है ? ५ प्रह्वापना, सो धर्म ऐसे होता है ६ प्रत्याख्यानी, सो यह काम हम नहीं करेंगे ७ इष्ठानुलोम, सो यथासुख ८ अननिष्ठहीता, सो मुझको खबर नहीं ९ अनिष्ठहीता, सो मुझे खबर है १० सशय, सो क्यों कर खबर नहीं है ? ११ प्रगट अर्थ कहै १२ अप्रगट अर्थ कहै यह बारह प्रकारका व्यवहारवचन है

और कायायोगके सात जेव हैं प्रथम कायायोग उसको कहते हैं, कि आत्माके निवासभूत पुञ्जद्रव्य घटित बूढेको डुर्बलको अवष्ट नन्त जैसे लाठी आदि है, तिसकी तरें विषम काममें जिसके योगसे

णा नहीं, क्योंकि यह सर्व शरीरादिकके दूयें होते हैं, सो शरीरादिक सिद्धोंको है नहीं ए चक्षु, अक्षु, श्रवण, श्रु केवल, इन चारो दर्शनमें सू आदिके तीनों दर्शनमें सिद्धपणां नहीं, परंतु केवलदर्शनमें केवल ज्ञानवत् ज्ञान लेना १० कृष्ण, नील, कापोत, तेज, पद्म, श्रु शुक्ल, यह वै प्रकारकी लेश्यायोमें सिद्धपणां नहीं, क्योंकि लेश्या जो है, सो नवस्थ जीवकी पर्याय है, सिद्ध तो अलेशी है ११ जव्य, अजव्य, इन दोनोंमें सिद्धपणां नहीं, क्योंकि जव्यजीव उसको कहते हैं, कि जिसको सिद्धपदकी प्राप्ति होवेगी, श्रु सिद्धों तो नवीन कोइ सिद्ध पदवी पावणी नहीं है, इस वास्ते जव्य पणा सिद्धोंमें नहीं श्रु अजव्यजीव उसको कहते हैं, कि जिसमें सिद्ध होनेकी योग्यता किसी कालमेंनी न होवे, असा सिद्धका जीव नहीं है, क्योंकि उसमें अतीतकालमें सिद्ध होनेकी योग्यता थी, इस वास्ते सिद्ध अजव्यजीव नहीं सिद्ध जो है, सो नोजव्य नोजव्य है, यह आप्त वचनकी है १२ ह्यायिक, ह्यायोपशम, उपशम, सास्त्रादन, श्रु वेदक यह सम्यक्त्व पांच प्रकारका है इनका विपक्षी एक मिथ्यात्व, दूसरा सम्यक्त्व मिथ्यात्व, सो मिश्र है, तिनमेंसू ह्यायिक वजित चार सम्यक्त्व श्रु मिथ्यात्व, तथा मिश्र, इनमें सिद्धपद नहीं, क्योंकि यह सर्व ह्यायोपशमिकादि जाव वर्ती है, श्रु ह्यायिक सम्यक्त्वमें सिद्ध पद है, ह्यायिक सम्यक्त्वकी दो तरेंकी है एक शुद्ध, दूसरी अशुद्ध, तहां शुद्ध अपाय, सत् इव्य रहित नवस्थ केवलीयोंके है, श्रु सिद्धोंके शुद्ध जीव स्वजावरूप सम्यक् दृष्टि है, सावि अपर्यवसान है, श्रु अशुद्ध अपाय सहचारिणी श्रेणिकादिकोंकी तरें सम्यक् दृष्टि होनां, यह ह्यायिक सावि सपर्यवसाना है तहां अशुद्ध ह्यायिकमें सिद्ध पद नहीं क्योंकि उसके अपाय सहचारी हैं श्रु शुद्ध ह्यायिकमें तो सिद्ध सत्ताका विरोध नहीं, क्योंकि सिद्ध अवस्थामें शुद्ध ह्यायिक जाती नहीं रहती है अपाय, मतिज्ञानाशका नाम है श्रु सत् इव्य शुद्ध सम्यक्त्वके दलियों का नाम है, इन दोनोंका अजाव होनेसे ह्यायिक सम्यक्त्व होता है, १३ सज्ञा यद्यपि तीन प्रकारकी है १ हेतुवादोपदेशिनी, २ दृष्टिवादोपदेशिनी, ३ दीर्घकालिकी तोनी दीर्घकालिकी सज्ञा करके जो सज्ञा है, सोही व्यवहारमें प्राय ग्रहण कीये जाते हैं, सज्ञा होवे जिनके सो सज्ञा

१ नरकगति, २ तिर्यग्गति, ३ मनुष्यगति, ४ देवगति, ५ सिद्धगति तद्वा  
 सिद्धगति वर्जके शेष चार गतिमें सिद्ध नहीं यद्यपि १ कर्मसिद्ध, २ सि  
 ष्टसिद्ध, ३ विद्यासिद्ध, ४ मन्त्रसिद्ध, ५ योगसिद्ध, ६ आगमसिद्ध, ७  
 अर्थसिद्ध, ८ यात्रासिद्ध, ९ अग्निप्रायसिद्ध, १० तपसिद्ध, ११ कर्म  
 कृत्यसिद्ध ऐसे अनेक तरोंके सिद्ध आवश्यककी निर्युक्तिकारने कहे हैं  
 तोनी इहां जो कर्मकृत्य करके सिद्ध दूया है, तिसका अधिकार है, उन  
 हींको मोक्षपर्याय है, औरोंको नहीं २ इन्द्रिय स्पर्शनादि पांच है, एक  
 इन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पांच इन्द्रिय इन पांचों प्र  
 कारोंमें सिद्ध पणां नहीं, क्योंकि सर्वथा शरीरके परित्यागनेसे सिद्ध होता  
 है, जहां शरीर नहीं, तहां इन्द्रियनी कोइ नहीं इसी वास्ते सिद्ध अर्त्तोन्द्रिय  
 हैं, ३-१ पृथिवीकाय, २ अप्काय, ३ तेज काय, ४ पवनकाय, ५ वनस्पतिका  
 य, ६ त्रसकाय इन ठही कायोंके जीवोंमें सिद्धपणां नहीं क्योंकि सिद्ध  
 जो हैं, सो अकाय (काय रहित हैं) ४ काय, बचन, अरु मन जेद कर  
 के योग तीन है उसमें केवल काययोग वाले एकेंद्रिय जीव हैं, अरु का  
 य बचन योग वाले द्वीन्द्रियादि असङ्गी पंचेंद्रिय पर्यंत जीव हैं, अरु का  
 य, बचन, मन योग वाले सङ्गी पंचेंद्रिय पर्याप्त जीव हैं, इन तीनों यो  
 गोमें सिद्धपणेकी सत्ता नहीं, क्योंकि सिद्ध अयोगी हैं, अरु अयोगी प  
 णां तो काय बचन अरु मनके अज्ञावसे होता है ५ स्त्री, पुरुष, नपुंसक,  
 इन तीनों वेदोंमें सिद्ध पदकी सत्ताका अज्ञाव है, क्योंकि सिद्ध जो हैं,  
 सो पूर्वोक्त हेतुसे अवेदी हैं ६ क्रोध, मान, माया, लोभ, इन चारों कपा  
 योंमें सिद्ध पणां नहीं है, क्योंकि सिद्ध अकषायी हैं, सो अकषायिपणा  
 कर्मके अज्ञावसे होता है, ७ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्या  
 यज्ञान, केवल ज्ञान यह पांच प्रकारका ज्ञान है अरु मति अज्ञान, श्रुत  
 अज्ञान, विज्ञानज्ञान, यह तीन अज्ञान हैं उसमें आविके चारों ज्ञानों  
 में अरु तीनों अज्ञानोंमें सिद्धपणां नहीं है, एक केवलज्ञानमें सिद्धपणां  
 हैं, सो केवलज्ञान, इहां सिद्धावस्थाका जानना, परंतु सयोगी अवस्थाका  
 नहीं ८ सामायिक, ठेवोपस्थापनीय, परिहारविष्णुदि, सूक्ष्मसंपराय, अ  
 रु यथारख्यात यह पांच चारित्र, तथा इनके विपक्षी वेश सयम, अरु अ  
 सयम तद्वा पांचविध चारित्रमें तथा दोनों विपक्षोंमें सिद्धपणां मोक्षप



## ॥ अथ पष्ठ परिच्छेद प्रारम्भः ॥

यद् पष्ठ परिच्छेदमें चौदह गुणस्थानका स्वरूप किंचित् मात्र लिखते हैं यह जैन मतमें जव्य जीवोंकों सिद्धिसौधके चढने वास्ते गुणोंकी जो अणी है, सोही निसरणी है, तिस गुण निसरणोंमें पगधरणरूप गुणोंसे गुणांतरकी प्राप्तिरूप जो स्थान, अर्थात् जूमिका है, सो चौदह हैं, तिन के नाम कहते हैं १ मिथ्यात्व गुणस्थानक, २ सास्वादन गुणस्थानक, ३ मिश्र गुणस्थानक, ४ अविरतिसम्यक्दृष्टि गुणस्थानक, ५ देशविरति गुणस्थानक, ६ प्रमत्तसयत गुणस्थानक, ७ अप्रमत्तसयत गुणस्थानक, ८ अपूर्वकरण गुणस्थानक, ९ अनिवृत्तबाधर गुणस्थानक, १० सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक, ११ उपशान्तमोह गुणस्थानक, १२ क्षीणमोह गुणस्थानक, १३ सयोगीकेवली गुणस्थानक, १४ अयोगीकेवली गुणस्थानक यह चौदह गुणस्थानक अर्थात् गुणरूप जूमिकाके नाम हैं

तहां प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानकका स्वरूप कहते हैं, वसमेंनी प्रथम व्यक्त, अव्यक्त, मिथ्यात्वका स्वरूप कहते हैं जो स्पष्टचैतन्यसङ्गी पंचेंद्रिय जीवोंकी अदेव, अगुरु औ अधर्मे, इन तीनोंमें क्रम करके देव, गुरु, औ धर्मेकी बुद्धि होवे, सो व्यक्तमिथ्यात्व है अरु उपलक्षणसे जीवादि नव पदार्थोंमें जिसकी श्रद्धा नहीं, अरु जिनोक्त तत्त्वसे जो विपरीत प्ररूपणा करणी, तथा जिनोक्त तत्त्वमें सशय करणां, तथा जिनोक्त तत्त्वमें दूषणोंका आरोप करणां, इत्यादि तथा आनिम्यादिकादि जो पांच मिथ्यात्व हैं, तिनमें एक अनाजोगिकमिथ्यात्व तो अव्यक्त मिथ्यात्व है, शेष चार जेद, व्यक्त मिथ्यात्वके हैं तथा 'अधम्मो धम्मसत्ता इत्यादि' दश प्रकारकी जो मिथ्यात्व है, सो सर्व व्यक्त मिथ्यात्व है अरु अपर जो अनादि कालसे मोहनीय प्रकृतिरूप मिथ्यात्व सत् दर्शनरूप आत्माके गुणका आभासक जीवके साथ सदा अविनाशनादि है, सो अव्यक्तमिथ्यात्व है

अथ मिथ्यात्वकों गुण स्थानक किसी रीतीसे कहते हैं १ सो लिखते हैं अनादि अव्यक्त मिथ्यात्व अव्यवहार राशिवर्ती जीवमें सदा होती है, परंतु व्यक्त मिथ्यात्वकी जो बुद्धि है, तिस बुद्धिकी जो प्राप्ति है, सोइ मिथ्यात्व गुणस्थानक है

जैसेकि यह करा है, यह करुंगा, यह में कर रहा हों, ऐसा जो त्रिकाल विषय मनोविज्ञानवाले जीव है, तिनकों सझी कहते हैं इनमें जो विषय होवे, सो अथसझी जानने यह सझी तथा अथसझी, इन दोनोहीमें सिद्ध पद नहीं क्योंकि सिद्ध तो नोसझी नोअथसझी हैं, १४ अथो ज आहार, लोम आहार, प्रक्षेप आहार, अथ आहार, तीन प्रकारका है इन तिनों आहारोमें सिद्ध नहीं यह प्रथम सत्पद प्ररूपण द्वार कहा

दूसरा इव्य प्रमाण द्वार लिखते हैं गिणती करियें तो सिद्धोंके जीव अनत हैं तीसरा क्षेत्रद्वार, सो आकाशके एक देशमें सर्व सिद्ध रहते हैं, वो आकाशका देश कितना बड़ा है? सो कहते हैं, कि धर्मास्तिकायाविक पांच इव्य, जहां तक हैं, तहां तक लोक है, ऐसा जो लोक सबधि आकाश, तिसके अक्षरव्यमे जागमें सिद्ध रहते हैं चौथा स्पर्शनाद्वार, सो जितने आकाशमें सिद्ध रहते हैं, स्पर्शना वससें किंचित् अधिक है पांचमा कालद्वार, सो एक सिद्धके आश्री सावि अनतकाल है, अरु सर्व सिद्धाश्रित अनादि अनतकाल जानना ठछा अतरद्वार, सो सिद्धोंके विधाने अतर नहीं, सर्व सिद्ध मिलके एकही रूपवत् रहने हैं सातमा जागद्वार, सो सिद्ध जे हैं ते सर्व जीवोंके अनतमे जागमें हैं आठमा जावद्वार, सो सिद्धोंको क्वायिक पारिणामिक जाव है, शेष जाव नहीं नवमा अक्ष्य बहुत्वद्वार, सो सर्वसें थोड़े अनतर सिद्ध हैं, अनतर सिद्ध उनको कहते हैं कि जिनको सिद्ध हुआ, एक समय हुआ है, तिनसें परंपर सिद्ध अनत गुणे हुए हैं, ठै मास सिद्ध होनेमें उत्कृष्ट अतर होता है यह अक्ष्य बहुत्व द्वार कहा यह मोक्षतत्त्वका स्वरूप सक्षेपमात्र लिखा है, जे कर विशेष करके सिद्धोंका स्वरूप देखना होवे, तदा नदीसूत्र, प्रज्ञापन्नसूत्र, सिद्धप्राज्ञतसूत्र, सिद्धपंचाशिका, देवाचार्यकृत नवतत्त्व प्रकरणकी वृत्ति देख लेनी तथा आगे चतुर्वेश गुणस्थानमेंनी सिद्धोंका कबुक स्वरूप लिखेगे ॥ इति श्री तपगङ्गीयमुनिश्रीबुद्धिविजयशिष्य मुनि आ नवविजय आत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्शे नवतत्त्व स्वरूपनिर्णयनामा पंचम परिच्छेद संपूर्ण ॥ ५ ॥

तिसे अनाविकाल उद्भव मिथ्याकर्मके उपशम होनेसे, ग्रंथिजेद करण कालसे पीछे औपशमिक सम्यक्त्व होता है, यह सामान्य स्वरूप है, अरु विशेषस्वरूप ऐसे है कि औपशमिक सम्यक्त्व दो प्रकारका है, एक तो अंतरकरणौपशमिक सम्यक्त्व, अरु दूसरा स्वश्रेणिगत, अर्थात् उपशमश्रेणिगत औपशमिक सम्यक्त्व है तहां अपूर्व करण करकेही करा है, ग्रंथिजेद जिसने, अरु मिथ्यात्व कर्म पुञ्ज राशिके तीन पुज करे हैं जिसने, सो तीन पुज यह हैं, १ अष्ट-६, २ अर्ध-६, ३ छ-६ इसमें अष्ट-६ पुज जो है, सो मिथ्यात्वमोहनीय है, अरु अर्ध छ-६ जो है, सो मिश्रमोहनीय है, तथा छ-६पुज जो है, सो सम्यक्त्व मोहनीय है इनका स्वरूप पीछे लिख आये हैं, यह तीन पुंज जिसने नहीं करे हैं, अरु उदय आया मिथ्यात्व क्षय कीया है, तथा जो मिथ्यात्व उदय नहीं आया, तिसको उपशमाया है, अंतर करणमें अतर्मुहूर्तकाल जगें सर्वथा मिथ्यात्वके अवेदकों, अंतर करणमें औपशमिक सम्यक्त्व होता है, यह एक जेद तथा औपशम श्रेणिप्रतिपन्नको मिथ्यात्व अनंतानुबंधीके उपशम दूआ स्वश्रेणिगत औपशमिक सम्यक्त्व होता है, सो दूसरा जेद ये दोनो प्रकारकी जो उपशम सम्यक्त्व है, सो सास्वादन उत्पत्तिमें मूल कारण है

अथ सास्वादनस्वरूप लिखते हैं औपशमिक सम्यक्त्ववाला जीव शांत होये अनंतानुबन्धी चारों कषायोंमें एकजी क्रोधादिकके उदय दूयां यकां औपशमिकरूप गिरिशिखर तुल्यसें “ परिच्युतो ब्रह्मो ” अर्थात् गिरा सो जहां जगि मिथ्यात्वरूप जूतलको नहीं प्राप्त दूआ, तहां जगि एक सम पसें ले कर षट्चावलिकाप्रमाण सास्वादन गुणस्थानकवर्त्ती होता है,

प्रश्न - व्यक्तबुद्धिप्राप्तिरूप प्रथम अरु मिथ्यादि गुणस्थानको उत्तरोत्तर चढण रूपोंको तो गुणस्थानपणा युक्त है. परंतु सम्यक्त्वसें पढने वाले सास्वादनको गुणस्थानपणा कैसें सजवे ?

उत्तर - मिथ्यात्व गुणस्थानककी अपेक्षा सास्वादनकी ऊर्ध्व आरोहणरूप होनेसें गुणस्थान है, क्योंकि मिथ्यात्व गुण अजन्म जीवों कोजी होता है, अरु सास्वादन तो नव्य जीवोंहीको हो सक्ता है, नव्य जीवोंमेंजी जिसका अर्ध पुञ्जपरावर्त्त शेष सत्सार है, तिनहीको होता है इस वास्ते सास्वादनकोजी मिथ्यात्व गुणस्थानसें आरोहरूप गुणस्था

प्रश्न - मिथ्यात्व गुणस्थानमें सर्व जीवोंके स्थान मिलते हैं, यह जैनशास्त्रका कथन है, तो फेर कैसे व्यक्त मिथ्यात्वकी बुद्धिकों गुणस्थान रूपता कहते हो ?

उत्तर - सर्वज्ञाव सर्व जीवोंने पूर्वं अनन्त वार पाया है, इस बचनके प्रमाणसे जो प्राप्तव्यक्त मिथ्यात्वबुद्धिवाले जीव, व्यवहार राशिवर्ती हैं, सोही प्रथम गुणस्थानवाले जीव कहे जाते हैं, नतु अव्यवहार राशिवर्ती जीव ? क्योंकि वो अव्यक्तमिथ्यात्व वाले हैं, इस वास्ते दोष नहीं

अथ मिथ्यात्व रूप दूषणका स्वरूप कहते हैं जैसे जीव मनुष्यादिक प्राणी मदिरेके उन्मादसे हित, वा अहित, यह कुठनी नष्टवैतन्य होनेसे नहीं जानता है, तैसेही मिथ्यात्व करके मोहित जीव धर्माधर्म सम्यक् नहीं जानता है ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ मिथ्यात्वेनालीढचित्ता नितान्तं, तत्त्वातत्त्व जानते नैव जीवा ॥ किं जात्यथा कुत्रचिदस्तुजाते, रम्यारम्यं व्यक्तमासादयेयु ॥ १ ॥ इति ॥ अथ मिथ्यात्वकी स्थिति कहते हैं, अजव्य जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व जो है, अरु सामान्य प्रकारें अव्यक्त मिथ्यात्व, इनकी अनादि अनन्त स्थिति है, सोइ स्थिति अजव्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि सांत है, यह स्थिति सामान्यप्रकार करके मिथ्यात्वकी अपेक्षा दिखलाइ है, जे कर मिथ्यात्व गुणस्थानककी स्थिति विचारियें, तदा अजव्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि सांत है तथा सादि सांतनी हैं, अरु अजव्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि अनन्त है, जब मिथ्यात्व गुणस्थानकमें जीव वर्तता है तब एक सौ बीस बंध प्रायोग्य कर्मप्रकृतियोंमेंसू १ तीर्थकर नाम कर्मकी प्रकृति, २ आहारकशरीर, ३ आहारकोपांग, यह तीन प्रकृति नहीं बांधता है शेष एक सौ सत्तरां प्रकृतिका बंध करता है, तथा एक सौ बावीस कर्म प्रकृति जो उदय प्रायोग्य है, तिनमेंसू १ मिश्रमोदनीय, २ सम्यक्त्वमोदनीय, ३ आहारक, ४ आहारकोपांग, ५ तीर्थकर नाम, यह पांच कर्मप्रकृति वर्जके शेष एक सौ सत्तरां प्रकृतिका उदय है, अरु एक सौ अतलासीस कर्म प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति ॥ १ ॥

अथ दूसरा सास्वादन गुणस्थानकका स्वरूप कहते हैं उसमें प्रथम तो यह गुणस्थानकका कारणजून उपशम सम्यक्त्व है, तिसका स्वरूप कहते हैं, जीवमें अनादिकालसज्जत (वत्पन्न) मिथ्याकर्मकी उपशां

वै आयु बांधा है, अरु पीछे उनको मिश्रगुण स्थानक दूआ है, वो जब मरे गा, तब जीस गुणस्थानकमें आयु बांधा है, तिसी गुणस्थानमें जा कर मरता है, औ गतिनी उसकी उसी मरण वाले गुणस्थानकके अनुसार होती है, तथा मिश्रगुणस्थानक वाला जीव, १ नरकगति, २ नरकायु, ३ नरकानुपूर्वी, ४ स्त्यानार्द्धिक, ५ दुर्नग, ६ दुस्वर, ७ अनादेय, १३ अनतानुबंधी चार, १४ मध्यके चार सस्यान, ११ मध्यके चार सहन न, १२ नीचगोत्र, १३ उद्योतनाम, १४ अप्रशस्तविहायोगति, १५ स्त्रीवेद यह पच्चीस प्रकृतिका बधव्यवच्छेद करता है तथा मनुष्यायु, देवायु, यह दोनी नहीं बांधता है, यह सत्तावीस प्रकृति बिना शेष चोह तर प्रकृतिका बध करता है ४ तथा अनतानुबंधी चार, ५ स्थावरनाम, ६ एकेडिय, ७ विकलत्रिक, इनके उदयके व्यवच्छेद होनेसे अरु मनुष्यानुपूर्वी, तथा तिर्यगानुपूर्वी, इन दोनोके उदय न होनेसे एक सौ प्रकृतिका उदय वेदता है, अरु पूर्वोक्त १४४ प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति मिश्रगुणस्थानक ॥३॥

अथ चौथा अविरतिसम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं तहां प्रथम सम्यक्त्व प्राप्ति का स्वरूप कहते हैं, कि जब सही पंचेडिय जीव को यथोक्ततत्त्व यथावत् सर्ववित् प्रणीत तत्त्वोंमें जीवादि पदार्थोंमें नि सर्गसे अर्थात् पूर्वजव अन्यासविशेष करके उत्पन्न नइ अत्यंतनिर्मल गुणात्मक रूप स्वभाव, इन स्वभावसे अथवा गुरुके उपदेश श्रवण करणेसे रुचि जावना प्रगट उत्पन्न होती है, सो सम्यक्त्व, सम्यक्श्रद्धान जहण कहते हैं ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ रुचिर्जिनोक्ततत्त्वेषु, सम्यक् श्रद्धानमुच्यते ॥ जायते तन्निसर्गेण, गुरोरधिगमेन वा ॥ १ ॥ अथ अविरति सम्यग्दृष्टिपणा जैसे होता है, तैसे कहते हैं दूसरी कपाय अप्रत्याख्यान, जिम का नाम है, ऐसे जे क्रोध, मान, माया, लोभ, तिनके उदय करके, वर्जित हुआ विरतिपणा इसी वास्ते केवल सम्यक्त्व मात्र जहां होवे, सो चौथे गुणस्थान वालोंको अविरति सम्यग्दृष्टिनामक गुणस्थानक होता है इस का तात्पर्य यह है, कि जैसे कोइ पुरुष, न्यायोपपन्न धन जोग विलास सौंदर्यशान्ति कुलमें उत्पन्ननी हुआ है, परंतु डुरत जूथा आदि व्यसन सेवन करने लगा, इत्यादि अनेक अन्याय करे है, सो अपराध करनेसे उसको राजदम मिला है, सो खमित करा है जिनोने अनिमान, ऐसे जो दम

नत्व हो सका है. तथा सास्वादन गुणमें वर्तता हुआ जीव, १ मिथ्यात्व, ४ नरकत्रिक, ७ एकेडियादि जाति चार, ९ आतपनाम, १० स्थावरनाम, ११ सूक्ष्मनाम, १२ अपर्याप्तनाम, १३ साधारणनाम, १४ दुष्कसस्थान, १५ सेवार्त्तसहनन, १६ नपुसकवेद, यह सर्व सोला प्रकृतिका वध व्यवहरे करता है, शेष एक सौ एक प्रकृतिका वध करता है, तथा ३ सूक्ष्मत्रिक, ४ आतप, ५ मिथ्यात्वोदय, ६ नरकानुपूर्वी, यह ठै प्रकृतिका उदय व्यवहरे होनेसे १११ कर्मप्रकृति वेदता है, तथा तीर्थकरनामकी सत्ता विना १४४ प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति दूसरे सास्वादन गुणस्थानकका स्वरूप ॥१॥

अथ तीसरे मिश्रगुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं दर्शनमोहनीय प्रकृतिरूप मिश्र मोहकर्मके उदयसे जीवविषये जो समकाल समरूप करके सम्यक्त्व मिथ्यात्वके मिलनेसे मिश्रितजाव अंतरमुद्धर्त्त यावत् मिश्र गुणस्थान कहते हैं, जो जीव, सम्यक्त्वमिथ्यात्व दोनोंके एकत्र मिलनेसे मिश्रजावमें वर्त्त है, सो मिश्रगुणस्थानस्थ होता है, क्योंकि मिश्रण जो है, सो दोनोंके मिलनेसे एक रूप जात्यंतर है अथ दोनों जावों के एकत्व जात्यंतर होनेमें दृष्टांत लिखते हैं कि जैसे घोड़ा और गधा इन दोनोंके सयोगसे जात्यंतर खच्चर उत्पन्न होता है, अथवा जैसे गुड़ और दहीके मिलनेसे जात्यंतर रस शिखरणी रूप उत्पन्न होता है, तैसे ही जिस जीवको सर्वज्ञ असर्वज्ञके कहे दोनो धर्मोंमें समबुद्धिसे एक सरीखी श्रद्धा उत्पन्न होवे, सो जात्यंतर जेवात्मक होनेसे मिश्रगुणस्थानक होता है जब यह मिश्रगुणस्थानस्थ जीव होता है, तब परजवका आशु नहीं बांधता है, अरु मिश्रगुणस्थानकमें वर्त्तता हुआ जीव, मरताजी नहीं है, जातो सम्यक्दृष्टि हो कर चौथे सम्यक्दृष्टिगुणस्थानकमें आरोह कर मरता है, अथवा कुदृष्टि हो कर मिथ्यादृष्टिगुणस्थानकमें पीठा आ कर मरता है, परंतु मिश्रगुणस्थानमें वर्त्तमान नहीं मरता है यह मिश्रकी तरें बारहवा क्षीणमोह, अरु तेरहवा सयोगी, इन दोनो गुणस्थानोंमेंजी जीव नहीं मरता है, शेष इग्यारह गुणस्थानोंमें काल कर जाता है, अरु मिथ्यात्व, सास्वादन, अविरति सम्यक्दृष्टि, यह तीन गुणस्थानक जीवके साथ परजवमें जाते हैं शेष इग्यारह गुणस्थानक नहीं जाते हैं तथा जिन जीवोंने मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंमें पू

हते हैं, २ तथा जिन अग्राप्त पूर्व अथ्यवसाय विशेष करके तिस ग्रथिकों ग्रथि घन निविड राग देय परिणतिरूपकों कहते हैं तिस ग्रथिके जेदनेका जो आरज, तिसकों अपूर्वकरण कहते हैं, ३ तथा जिन अथ्यवसायविशेष करके अनिवृत्त, ग्रथिजेद करके अति परम आनंद जनक सम्यक्त्व पाता है, तिसका नाम अनिवृत्ति करण है, यह तीनों करणका स्वरूप श्रीजिन ज ङ्गणिक्कमाश्रमण आचार्य, आवश्यककी छुट्ठानोनिग्रि गधहस्ती महा जाण्यमें लिखते हैं तीन पथिकके दृष्टांतसे तीनों करणका स्वरूप दिखाते हैं जैसे तीन पथिक उजाड़के रस्ते चले जाते थे, तहां चलते चलते वि काल बेला हो गइ, औ सूर्य अस्त हो गया, वे पथी, मनमें बहुत मरने लगे, इतनेमें उस वखत तहां तत्काल दो चोर आ पडुचे, तिन चोरोंकों देख कर तिनमेंसू एक पथिक तो मरता दूआ पोर्नेकों दौड़ गया, अरु ए क पथिककों चोरोने पकड लीया, अरु एक पथिक तिन चोरोसें लड जिड मार पीट करके अगले नगरमें पडुंच गया, यह तो दृष्टांत है. इसका दा र्ष्टांत ऐसे हैं, कि उजाड़ जो है, सो मनुष्य नव है, तिसमें कर्मोंकी जो स्थिति है, सो दीर्घ रस्ता है, औ जो गांव है, सो नयका स्थानक है, अरु राग देय यह दोनो चोर हैं अब जो पुरुष पीर्नेको दौड़ा है, तिसको तो स्थिति सत्तारमें रदणेकी अधिक हो जाती है, अरु जो पुरुष, पकडा गया, वो गांवके पास जा कर खडा हो गया, सो राग देय, चोरोनें पकड ली या, वोनी डुखी है, अरु जिसने सम्यक्त्व पा लिया, सो गाममें पडुच गया, तातें सुखी नया यह दृष्टांत तीनो करणके साथ जोड लेना

अथ कीडीयोंके दृष्टांत करके तीनों करणोंका स्वरूप लिखते हैं, जैसे कीडीयों विजमेंसू निकलके एक खूटेके तले भ्रमण करती हैं, एकैके की डीयां उस खूटेके उपरि चढती हैं, अरु कितनिक खूटेके उपर चढ कर पं ख लग जानेंसें उम गइ है यह तीनों करणजो इसी तरें जान लेने तब तो जीव यथाप्रवृत्ति करण करके ग्रथिदेशकों प्राप्त होता है, अरु अपूर्व क रण करके ग्रथिका जेद करता है, ग्रथिजेद करके कोइक जीव मिथ्यात्व के पुज्ज राशिको विनज्य ( वांट ) करके १ मिथ्यात्व मोह, २ मिश्रमो ह, ३ सम्यक्त्व मोह रूप तीन पुज करता है, जब अनिवृत्तिकरण कर के विछुट मानके उदय हुये अरु मिथ्यात्वके क्लय हुये १ उदय नहीं, हुये

पाशिक कोटवाल तिनों करके विडम्ब्यमान अपने व्यसन जनित कुत्सित कर्मकूं विरूप जानता हुआ अपने कुजके सुंदर सुख सपदाकी अनिता पा करताजी है, परंतु कोटवालोंसे बूटके सुखका उन्नासनी नहीं ले स का है, तैसेही यह जीवनी अविरतिपर्योको छोटे कर्मका फल जानता है, विरतिके सुंदर सुखकी अनितापाजी करता है, परंतु कोटवाल समा न दूसरी कषायके पाशों बूटनेका उत्साहनी नहीं कर सता है, औ अ विरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका अनुभव करता है

अथ चौथे गुणस्थानककी स्थिति कहते हैं, इस अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानककी स्थिति उत्कृष्टी तो तेजोस सागरोपम प्रमाण कबुक् अधिक है, सो सर्वार्थ सिद्धादि विमानवासीयोकी स्थिति मनुष्यायु अधिक है, तथा यह सम्यक्त्व, जब जीवका अर्ध पुञ्जपरावर्त शेष सत्सार रहता है, तब जीवको आता है, दूसरोको नहीं आता है

अथ सम्यग्दृष्टिका लक्षण कहते हैं, १ दुखी जीवके दुख दूर कर षोकी जो चिता, तिसका नाम रुपा है, २ किसी कारणसे क्रोध उत्पन्न नी दो गया है, तोजी तीव्र अनुशय अर्थात् तीव्र वैर नहीं रखता है, ति सका नाम प्रशम है, ३ सिद्धिसौधके चढने वास्ते सोपानसमान सम्य ग् ज्ञानादि साधनोमें उत्साह लक्षण मोहानिलाप, तिसका नाम सवेग है, ४ अत्यंत कुत्सिततर अर्थात् अत्यंत बुरा संसाररूप बदीत्वानेसे निकलने वास्ते परम वैराग्य रूप दरवाजेमें जो आ जाना है, तिसका नाम निर्वेद है, ५ श्रीसर्वज्ञ प्रणीत समस्त जावोंकी अस्तित्वका चितना तिसका नाम आस्तिक्य है, यह पांच लक्षण जिस जीवमें होवें, वो न व्यजीव सम्यग् दर्शन करके अलंकृत होता है

अथ सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकवर्ती जीवोंकी कौनसी गति है ? सो क हते हैं इहां जीवपरिणामविशेषरूपको करण कहते हैं, सो करण, तीन प्रकारका होता है, १ यथाप्रवृत्तिकरण, २ अपूर्वकरण, ३ अनि वृत्तिकरण तहां पर्वतकी नदीके जल करके आलोढमान पाषाणकी तरें घचनां ( घोलनां ) न्याय करके जीव आयु वर्जके शेष कर्मोंकी स्थिति किंचित् कनी एक कोटाकोटी सागर प्रमाण स्थिति करता हुआ जिन अ ध्यवसाय विशेष करके ग्रथिवेश तक आता है, सो यथाप्रवृत्तिकरण क



देशविरति हो सक्ता है, तिनमें जघन्य देशविरति आकुट्टि स्थूलहिंसादि त्याग मद्य मांसादि परिहार, अरु परमेष्ठि नमस्कारका स्मरण करण॥य दाह॥श्लोक॥ आउट्टि थूल हिंसाइ, मद्य मसाइचायउ ॥ जहन्नो सावउ होइ, जो नमुक्कार वारउ ॥ १॥ तथा मध्यम देशविरति “अकुडादि न्याय स पन्न विनव इत्यादि” धर्म योग्यता गुणों करि आकीर्ण गृहस्थ उचित पट्क र्मे धर्ममें तत्पर , द्वादश व्रतका पालक, सदाचारवान्, ऐसा होवे, तो मध्यम आवक जाननां तथा उत्कृष्टदेशविरति, सचित्त आहारका वर्जक, प्रतिदिन एकाशन करे, ब्रह्मचारी होवे, महाव्रत अंगीकार करनेकी इत्तावा ला होवे, गृहस्थका वदा जिसने त्यागा है, ऐसा जो होवे, सो उत्कृष्ट देशविरति यह तीन प्रकारकी विरति जिसकों होवे, उसकों आ-इ, अर्थात् आवक कहते हैं देशविरतिकी उत्कृष्टी स्थिति देशोन कोटिपूर्वकी है

अथ देशविरति गुणस्थानकमें ध्यानका सजव कहते हैं यह गुणस्थान में १ अनिष्टयोगार्त्त, २ इष्टवियोगार्त्त, ३ रोगार्त्त, ४ निदानार्त्त यह चार पाद रूप आर्त्तध्यान तथा १ हिंसानदरौइ, २ मृपानदरौइ, ३ चौर्यानिंद रौइ, ४ सरह्णानदरौइ यह चार पादवाला रौइ ध्यान है वे देशविरतिके आर्त्तध्यान मद होता है, जैसे जैसे देशविरति अधिक अधिकतर होती है, तैसे तैसे आर्त्त रौइ ध्यान, मद मदतर होता जाता है, अरु धर्म ध्या न तो जैसे जैसे देशविरति अधिक होती है, तैसे तैसे अधिक अधिक हो ता है, मध्यमरूपही रहता है, परंतु उत्कृष्ट धर्मध्यान नहीं होता है जे कर उत्कृष्ट धर्मध्यान हो जावे, तब सर्व विरति हो जायगा, वो पांचमे गुणस्थान संबंधी धर्मध्यान कैसा है? जिसमें पट् कर्म, एकादश प्रतिमा, अरु आवक व्रत पालनेका सजव है

उक्त पट् कर्मका नाम कहते हैं १ तीर्थंकर अर्द्धत जगवत वीतराग सर्वज्ञकी प्रतिमाद्वारा पूजा करे, २ गुरुकी सेवा करे, ३ स्वाध्याय, ४ सय म, ५ तप, ६ दान, यह पट्कर्म है ॥युक्त॥ देवपूजा गुरुपास्ति, स्वाध्याय सयमस्तप ॥ दान चेति गृहस्थानां, पट् कर्माणि दिने दिने ॥ १ ॥

प्रतिमा जो है, सो अग्निग्रहविशेषकों कहते हैं, सो नाममात्र यह है ॥गाथा॥ दसण वय सामाइय, पोसह पडिमा अवज सचित्ते ॥ आरंज पेस उदिठ, वज्जए समणजूए य ॥ १ ॥ इनका विस्तार देखनां होवे, तदा पचाशकनामा शास्त्रके

के उपशान्त दूये, द्वायोपशमिक सम्यक्त्वकों प्राप्ति होता है जब जीवों को द्वायोपशमिक सम्यग् वर्शन उत्पन्न होता है, तब जीवोंके मनुष्यमति देवगतिकी सप्त होती है तथा अथर्व करण करकेही छत तीन पुत्र वाले जीवकों चौथे गुणस्थानसेही रूपकपणों जव आरंज करता है, तब अनतानुबधी चार, मिथ्यामोह, मिश्रमोह, अरु सम्यक्त्व मोहरूप तीनों पुत्रोंके दूय दूये, द्वायिक सम्यक्त्व होता है, तब वो द्वायिक सम्यग्दृष्टि जे कर अवधायु है, तब तो तिसी नवमें मोह रूप होवेगा अरु जे कर आयु बांध कर पीछे द्वायिकसम्यक्त्ववान् दूया है, तब तो तीसरे नवमें मोह होता है अरु जे कर असख्यात वर्ष जीवने वाले मनुष्य, तीर्थचका आयु बांध कर पीछेसे द्वायिकसम्यक्त्व पावे, तब चौथे नवमें मोह होता है

अथ अविरति गुणस्थानकवर्ती जीवका कृत्य लिखते हैं व्रत नियम तो उसके कोइनी नहीं होता है, परंतु देवमें अर्थात् जगवान् श्रीवीतराग में, अरु उल्लक्षण गुरुमें, तथा श्रीसधमें, क्रम करके जक्ति, पूजा, नमस्कार, वात्सल्यादि कृत्य करता है तथा प्रभावक आवक होनेसे शासनकी उन्नति, शासनकी प्रभावना करता है तथा अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक वाला जीव, १ तीर्थकर नामकर्म, २ मनुष्यायु, ३ देवायु यह तीन प्रकृति तीसरे गुणस्थानसे अधिक बांधता है इस वास्ते सत्तत्तर प्रकृतिका बंध करता है, तथा मिश्र मोहके व्यवधेद होनेसे अरु आयुपूर्वी चार, अरु सम्यक्त्वमोहके उदय होनेसे एक सौ चार कर्म प्रकृतिकों वेदता है अरु द्वायिक सम्यक्त्व वालेकों १२० प्रकृतिकी सत्ता होती है, अरु उपशम सम्यक्त्व वालेकों चौथे गुणस्थानकसे ले कर इग्यारहमे गुणस्थानक पर्यंत १४० कर्मप्रकृतिकी सत्ता है अरु द्वायिकसम्यक्त्व वालेकों जिस जिस गुणस्थानमें जितनी जितनी कर्मप्रकृतिकी सत्ता है, सो आगे चल कर लिख देवेंगे ॥ इति अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका स्वरूप ॥ ४ ॥

अथ पचम गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं जीवकों सम्यग् तत्त्वावबोध करके उत्पन्न दूया वैराग्य, तिस वैराग्यसे सर्वविरतिकी बांठा करता नी है, तोनी सर्वविरतिघातक प्रत्याख्यान नाम कपायके उदयसे सर्वविरति अंगीकार करणों सामर्थ्य नहीं, किंतु जघन्य, मध्यम, उत्कृष्टरूप

देशविरति हो सक्ता है, तिनमें जघन्य देशविरति आकुट्टि स्थूलहिंसादि त्याग मद्य मांसादि परिहार, अरु परमेष्ठि नमस्कारका स्मरण करणा॥य दाह ॥श्लोक॥ आउट्टि स्थूल हिंसाइ, मद्य मसाइचायउ ॥ जहन्नो सावउ होइ, जो नमुक्कार वारउ ॥ १॥ तथा मध्यम देशविरति “अकुडादि न्याय स पन्न विजव इत्यादि” धर्म योग्यता गुणों करि आकीर्ण गृहस्थ उचित पट्क में धर्ममें तत्पर , द्वादश व्रतका पालक, सदाचारवान्, ऐसा होवे, तो मध्यम आवक जानना तथा उत्कृष्टदेशविरति, सचित्त आहारका वर्जक, प्रतिदिन एकाशन करे, ब्रह्मचारी होवे, महाव्रत अंगीकार करनेकी इच्छावाला होवे, गृहस्थका धदा जिसने त्यागा है, ऐसा जो होवे, सो उत्कृष्ट देशविरति यह तीन प्रकारकी विरति जिसको होवे, उसको आह, अर्थात् आवक कहते हैं देशविरतिकी उत्कृष्टी स्थिति देशोन कोटिपूर्वकी है

अथ देशविरति गुणस्थानकमें ध्यानका सजव कहते हैं यह गुणस्थान में १ अग्निष्टयोगार्त्त, २ इष्टवियोगार्त्त, ३ रोगार्त्त, ४ निदानार्त्त यह चार पाद रूप आर्त्तध्यान तथा १ हिंस्तानवरौइ, २ मृषानदरौइ, ३ चौर्यानिंदरौइ, ४ सरङ्गणानदरौइ यह चार पादवाला रौइ ध्यान है वे देशविरतिके आर्त्तध्यान मद्य होता है, जैसे जैसे देशविरति अधिक अधिकतर होती है, तैसे तैसे आर्त्त रौइ ध्यान, मद्य मद्यतर होता जाता है, अरु धर्म ध्यान तो जैसे जैसे देशविरति अधिक होती है, तैसे तैसे अधिक अधिक होता है, मध्यमरूपही रहता है, परंतु उत्कृष्ट धर्मध्यान नहीं होता है जे कर उत्कृष्ट धर्मध्यान हो जावे, तब सर्व विरति हो जायगा, वो पांचमे गुणस्थान सबधी धर्मध्यान कैसा है? जिसमें षट् कर्म, एकादश प्रतिमा, अरु आवक व्रत पालनेका सजव है

उक्त षट् कर्मका नाम कहते हैं १ तीर्थकर अर्द्धत जगवत वीतराग सर्वज्ञकी प्रतिमाद्वारा पूजा करे, २ गुरुकी सेवा करे, ३ स्वाध्याय, ४ सयम, ५ तप, ६ दान, यह षट्कर्म हैं ॥युक्त॥ देवपूजा गुरुपास्ति, स्वाध्याय सयमस्तप ॥ दान चेति गृहस्थानां, षट् कर्माणि दिने दिने ॥ १ ॥

प्रतिमा जो है, सो अजिग्रहविशेषको कहते हैं, सो नाममात्र यह है॥गाथा॥ दसण वय सामाइय, पोसह पढिमा अवन सचिने॥आरंज पेस उदिठ, वक्काए समणजूएय ॥१॥ इनका विस्तार देखनां होवे, तदा पचाशकनामा शास्त्रके

प्रतिमा पचाशकमें देख लेनां अरु श्रावकके व्रत बारह है, सो आगे चल कर लिखेंगे. यह पद् कर्म, एकादश प्रतिमा, बारह व्रत इनके पाजनमें मध्यमधर्म ध्यान होता है, तथा वेशविरति गुणस्थानस्थ जीव, अप्रत्याख्यान चार कषाय, नरकगति, नरकायु, नरकानुपूर्वी, यह नरक त्रिक आय सदनन तथा औदारिक शरीर, औदारिक अगोपांग, यह औदारिक द्विक यह सब मिल कर दश कर्मप्रकृतिका वध, व्यवच्छेद होनेसें सतसठ कर्मप्रकृतिका वध करता है तथा अप्रत्यख्यान चार, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यचानुपूर्वी, नरकत्रिक, देवत्रिक, वैक्रियद्विक, कुर्नग, अनादेय, अयश कीर्ति यह सत्तरां कर्मप्रकृतिका वध व्यवच्छेद करनेसें सत्तासी कर्म प्रकृतिका फल नोक्ता है अरु एक सौ अठत्तीस प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति वेशविरतिगुणस्थान ॥५॥

अथ पांचमे गुणस्थानक उपरांत जो गुणस्थान है, तिनमेंसू तेरहवा गुणस्थान वर्जके शेष सर्वगुणस्थानोमें पृथक् पृथक् अंतर मुहूर्त्तमात्र स्थिति है

अथ उक्ता प्रमत्तसयत गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं सर्व विरति साधु, यह उक्ते प्रमत्त गुणस्थानकमें होता है, वो साधु कैसा है? कि अर्द्धिस्तादि पांच महाव्रतका धारक है, वो साधु किस करके प्रमत्त होता है? कि प्रमादके होनेसें प्रमत्त होता है, सो प्रमाद पांच प्रकारका है ॥

॥ यदाद् ॥ गाथा ॥ मल्ल विसय कसाया, निहा विगद्वा य पंचमी न णिया ॥ ए ए पंच पमाया, जीव पाढति संसारे ॥१॥ नावार्थ—मय, विषय, कषाय, निहा, अरु विकषा, यह पांच प्रमाद हैं, सो जीवकों संसारमें गेरते हैं, जो साधु, इन पांचो प्रमादों करके सयुक्त होवे, अरु स ज्वलनकी चौथी कषायका वध होवे, तब महासुनि महाव्रती साधु अ वश्य अंतर मुहूर्त्त काल लागि सप्रमाद होनेसें प्रमादी होता है जे कर अंतरमुहूर्त्तसें उपरांतजी सप्रमादी होवे, तदा प्रमत्त गुणस्थानसेंजी नीचे गिर पडता है अरु जे कर अंतर मुहूर्त्तसें उपरांतजी प्रमाद रदित होवे, तदा फेर अप्रमत्त गुणस्थानमें चढता (आरोहता) है

अथ प्रमत्तसयत गुणस्थानमें ध्यानका संज्ञा कहते हैं यह गुणस्थानमें मुख्य तो आर्चध्यान, उपलक्षणसें रौडध्यानका संज्ञा है, क्योंकि नोकषाय, दास्यादि पदकके होनेसें तथा आह्लादि आलबन युक्त धर्मध्यानकी गौणता है, १ आह्ला, २ अपाय, ३ विपाक, ४ सस्थान इन

चारोंके चितनलक्षण आलंबनों करके सयुक्त धर्मध्यान होता है इहा धर्मध्यानके चार पाद हैं ॥ उक्तं च ॥ आज्ञापायविपाकानां, सस्थानस्य वि चितनात् ॥ इष्ट वा ध्येयजेदेन, धर्मध्यान चतुर्विध ॥ १ ॥ आज्ञा उस कों कहते हैं, कि जो कुछ सर्वज्ञ अर्हत जगवतने कहा है, सो सर्व सत्य है, अरु जो बात, मेरी समझमें नहीं आती है, वो मेरी बुद्धिकी मदता है, तथा दुपम कालके प्रनावसे, सशय मिटाने वाले गुरुके अनावसे, इ त्यादि निमित्तोंसे मेरी समझमें नहीं आता है, परंतु अर्हत जगवतके कहे दुवे वाक्य सत्य है, क्योंकि उनके मृपा बोलनेका कोइनी निमित्त नहीं है, ऐसा जो चितन करना, सो आज्ञा विचयनामा प्रथम जेद है तथा राग, द्वेष, कपायादिको करके जो अपाय (कष्ट) उत्पन्न होते है, तिनका जो चितन करना, सो अपायविचयनामा दूसरा जेद है तथा कृण कृण प्रति जो कर्मफलोदय विचित्ररूप उत्पन्न होता है, सो विपाकविचयनामा तीसरा जेद है, तथा यह लोक अनादि अनंत है, अरु उत्पाद, व्यय, ध्रुव रूप सर्व पदार्थ हैं, तथा पुरुषाकार लोकका सस्थान है, ऐसा जो चितन करना, सो सस्थानविचयनामा चौथा जेद है इत्यादि आलंबना युक्त धर्मध्यानकी गौणता, प्रमत्त गुणस्थानमें है, परंतु सप्रमाद होनेसे मुख्यता नहीं

अथ जे कर कोइ प्रमत्त गुणस्थानमें निरालंबन धर्मध्यान कहे, तिसका निषेध करते हैं जिनजास्कर (जिनसूर्य) ऐसे कह गये हैं, कि जो साधु जहां जगि प्रमाद सयुक्त होवे, तहां जगि तिस साधुको निरालंबन ध्यान नहीं होता है, क्योंकि इहां प्रमत्त गुणस्थानमें मध्यमधर्मध्यानकी नी गौणताही कही है, परंतु मुख्यता नहीं तिस वास्ते प्रमत्तगुणस्थानमें उत्कृष्ट निरालंब धर्मध्यानका सजब नहीं

अथ जो यह अर्थ न माने, तिसको कहते हैं, जो साधु, प्रमाद युक्तनी आवश्यक सामायिकादि पढावश्यकसाधक अनुष्ठानका परिहार करके निश्चल निरालंबन ध्यानाश्रित होवे, वो साधु, मिथ्यात्वमोहित मिथ्याभाव करके मूढ दुष्टा यका जैनागम श्रीसर्वज्ञप्रणीत शास्त्र नहीं जानता, क्यों कि वो साधु व्यवहार तो ठोढ़ वैरा है, अरु निश्चयकों प्राप्त नहीं दुष्टा है अरु जो जिनागमके जानने वाले हैं, सो तो व्यवहारपूर्वक निश्चय कों साधते हैं ॥ यदाह ॥ जइ जिणमय पवक्कह, ता मा विवहार निव्वए सु

यद् ॥ विवहारनञ्छेए, तिबुहेउ जउ नणिथो ॥ १ ॥ अर्थ - जे कर  
जिनमतकों अगीकार करते हो, औ जैनमतमें साधु होते हो, तो व्यवहार  
निश्चयका त्याग मत करो, क्योंकि व्यवहार नयके उद्बेद होनेसे तीर्थका  
उद्बेद हो जायगा, इस बात उपर यह दृष्टांत है, कि जैसे कोइक पुरुष अप  
ने घरमें सदा बाजरेकी रोटी खाता है, किसीने उसकों निमंत्रण कर  
कें अथर्व मिष्टान्नाहार कराया, तब तो वो उस स्वादका लालुपी हो कर  
अपणे घरकी बाजरेकी रोटी नि स्वाद जान कर खाता नहीं, उस इ प्राप्य  
मिष्टान्नकी अनिलाषा करता है, तब तो वो अपणे घरका कदन्न तो  
खाता नहीं, अरु मिष्टान्नकी मिलता नहीं, तब वो उजयव्रष्ट होता  
है तैसें यह जीवनी कदाग्रहरूप नूतके लगनेसें प्रमत्तगुणस्थान सा  
ध्यस्थूलमात्र पुण्यपुष्टिका कारण षडावश्यकादि कष्टक्रिया नहीं करता,  
अरु कदाचित् प्रमत्तगुणस्थानमें जिसका लाल है, औसा जो निर्विकल्प म  
नोजनित समाधिरूप निरालंबन, ध्यानाशरूप, अमृत आहारतुल्य पाया  
है तब तो तिस करिकें उत्पन्न हुआ जो परमानन्द सुखस्वाद, तिस करकें  
प्रमत्त गुणस्थानगत षडावश्यकादि कष्टक्रिया कर्म, कदन्न समान कर सम्यक्  
राधन न करे, अरु मिष्टान्न तुल्य निरालंबन ध्यानाश सो तो प्रथम सहननके  
अज्ञावसें प्राप्त नहीं होता है, तब तो षडावश्यकके न करनेसें उजयव्रष्ट हो  
जाता है, क्योंकि निरालंबन ध्यानका मनोरथही पंचम कालके मदामुनि रुषि  
योंने करा है ॥ तथाच पूर्वमहर्षय ॥ चेतोवृत्तिनिरोधनेन करण, ग्राम विधा  
यो दश ॥ तत्सहस्र गतागतं च मरुतो, धैर्यं समाश्रित्य च ॥ पर्यकेन मया  
शिवाय विधिवत् स्थित्वैकजूनृद्वारीमध्यस्थेन कदाचिदर्पितदृशा, स्थात  
व्यमतर्मुख ॥ १ ॥ चित्ते निश्चलतां गते प्रशमिते, रागादिनिष्पामदे ॥ विद्वाणोऽ  
ह्मकदंबके विघटिते, ध्वांते भ्रमार्जके ॥ आनन्दे प्रविजृजिते पुरपते, इनि  
समुन्मीलिते ॥ मां रक्षयंति कदा वनस्थमजितो, छटाशया श्वापदा ॥ २ ॥  
तथा श्रीसूरप्रज्ञाचार्या ॥ चित्तावदातैर्नवदागमानां, वा जैपजैरांगरुज नि  
वर्त्य ॥ मया कदा प्रौढसमाधिजङ्घी इत्यादि ॥ तथा श्री हेमचन्द्र सूरय ॥  
वनपद्मासनासीन, क्रोडस्थितमृगार्जक ॥ कदा प्रास्थति वक्त्रे मां, चरतो  
मृगयूथपा ॥ १ ॥ शत्रौ मित्रे तृणे स्त्रेणे, सुवर्णेऽश्मनि मणौ मृदि ॥ मोहे  
नवे नविष्यामि, निर्विगेषमति कदा ॥ २ ॥ इन श्लोकोका थोडासा अर्थनी

जिख देते हैं, चित्तकी वृत्ति निरोध करके, इन्द्रिय समूह औ इन्द्रियोंके विषयोंको दूर करके, तिस पीछे पवनकी अर्थात् श्वासोश्वासकी गतागति को रोक करके, अरु वैर्यकों अवलबके, पद्मासनसे बैठ करके, शिवके वास्ते विधि सयुक्त किसी पर्वतकी गुफामें बैठ करके, एक वस्तु उपरि दृष्टि रख कर, मुँहको अतर्मुख रहना योग्य है ॥१॥ चित्तके निश्चल हूयां उता राग, द्वेष, कषाय, निद्रा, मदके शांति हूया, अरु इन्द्रिय समूहके दूर हूयां, अरु त्रमारजक अधिकारके दूर होया, अरु आनन्दके प्रगट वृद्धिमान नये, ज्ञानके प्रकाश नये, ऐसी जीवकों अवस्थामें मेरेको वनमें रहेकों छुष्टाशयवाले सिद्ध कब रह्या करेंगे ? ॥२॥ तथा श्रीसूरप्रजाचार्यजी कहते हैं, कि हे जगद्वन ! तुमारा आगमरूप जेपज करके, राग रूप रोग निवर्त्त करके, निर्मल चित्त करके कब वो दिन आवेगा कि जिस दिन मैं समाधि रूपी लक्ष्मीकू देखुंगा ? इत्यादि तथा श्रीहेमचन्द्रसूरिजी कहते हैं कि वनमें पद्मासन बैठे दुवे मेरी गोदमें मृगका वच्चा बैठे, अरु हिरणोंका स्वामी बड़ा हरण मेरे मुखकों सूधे, अरु मैं अपणी समाधिमें स्थित रहूं ॥१॥ तथा शत्रुमें मित्रमें, तृण अरु स्त्रीमें, सुवर्ण अरु पापाणमें, मणि अरु मट्टिमें, मोक्ष अरु सत्तारमें, निर्विशेषमति, मै कब होवूंगा ? ॥ ४ ॥ अैसेही मन्त्री वसुपालने तथा परमतमें जर्तुहरिनेनी मनोरथही करा है अैसे स्वतन्त्र परममयमें प्रतिष्ठ जो पुरुष हूये हैं, तिनोंने परमात्मतत्त्वसवित्तिमें मनोरथही करा है, अरु मनोरथ जो लोकमें करते हैं, सो छु प्राप्य वस्तुकाही करते हैं, परंतु जो वस्तु, सुखेन मिल जावे, तिसका मनोरथ कोइनी नहीं करता है, जो सदा मिष्टान्न खाता है, अरु बड़ा नारी राज्य जोगता है, वो कनी मिष्टान्न खानेका अरु राज्य जोगनेका मनोरथ नहीं करता है, तिस वास्ते सर्व प्रकारसे प्रमत्त गुणस्थानस्थ विवेकी जनोनें परम सवेग आरूढ अप्रमत्त गुणस्थानकका स्पर्शी कराजो है, तोनी परम सुद्ध परमात्मतत्त्वसवित्तिका मनोरथ करणा, परंतु पट्कर्म षडावश्यकदि व्यवहार किया जो है, उसका परिहार न करना अरु जो मूढ, योगग्रह करके प्रसन्न हैं, अरु सदाचार व्यवहारसे पराङ्मुख हैं, तिनका योगजी कि सी कामका नहीं है, अरु उनका यह लोकजी नहीं अरु परलोकजी नहीं क्योंकि वो जीव जडात्मा है ॥ यत् ॥ योगिन सम्मतामेतां,

प्राप्य कल्पलतामिव ॥ सदाचारमयीमस्या, वृत्तिमातस्वर्ता बहि ॥ १ ॥  
 ये तु योगग्रहयस्ता, सदाचारपरादमुखा ॥ एष तेषां च योगोपि, न लो  
 कोपि जडात्मनां ॥ २ ॥ तिस वास्ते साधुकों जो दूषण दिन रात्रिमें  
 जगता है, तिसके भेदने वास्ते अवश्यमेव पडावश्यकादि क्रिया करे,  
 जहां जगि उपरिले गुणस्थानों करि साध्य जो निराजंबन ध्यान है,  
 तिसकों न प्राप्ति होवे, तहा जगि करे तथा प्रमत्त गुणस्थानस्थ जीव,  
 चार प्रत्याख्यानके बंध, व्यवहेद होनेसे त्रैशठ प्रकृतिका बंध करता है,  
 तथा तिर्यग्गति, तिर्यगानुपूर्वी, नीचगोत्र, उद्योत, अरु प्रत्याख्यान चार,  
 यह आठ प्रकृतिके उदय उहेद होनेसे अरु आधारक तथा आधारकोपी  
 ग, यह दो प्रकृतिके उदय होनेसे एकासी प्रकृति वेदता है, अरु एक सौ  
 अठत्तीस प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति प्रमत्तगुणस्थानक पष्ठ ॥ ६ ॥

अथ सप्तम अप्रमत्त गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं पांच महाव्रत  
 धारी साधु, पांच प्रमाद रहित, अप्रमत्त गुणस्थानस्थ होता है, अरु सं  
 ज्वलनकी चारों कषायोंका उदय मव होवे, तथा नोकषायोंका उदय  
 मव होवे. तात्पर्य यह है कि सज्वलन कषाय तथा नोकषायोंका जैसा  
 जैसा मवोदय होता है, तैसें तैसें साधु अप्रमत्त होता है ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥  
 यथा यथा न रोचते, विषया सुलजाअपि ॥ तथा तथा समायाति, स  
 विचौतत्त्वमुत्तम ॥ १ ॥ यथा यथा समायाति, सविचौतत्त्वमुत्तम ॥ तथा  
 तथा न रोचते, विषया सुलजाअपि ॥ २ ॥ अर्थ - जैसें जैसें अप्रमत्तगुण  
 स्थान वाला जीव मोहनीय कर्मके उपशम करणमें तथा ह्य करणमें  
 निपुण होता है, तथा जैसें सध्यानका आरंभ करता है, सोइ स्वरूप कहते हैं

दूर करे हैं, सर्व प्रमाद जिसने ऐसा जो जीव, तथा पांच महा  
 व्रतका धारक, अरु अष्टादश सदस्य जो शीलांगलक्षण, तिनों करके सयुक्त,  
 सदागमका अन्यासी, ज्ञानवान् ध्यान एकाग्रता रूप, ऐसा ज्ञान ध्यानरूप जि  
 सके पास धन है, इसी वास्ते "मौनी" मौनवान् है क्योंकि मौनवान्ही ध्यान  
 रूप धनवान् हो सका है, तिस पीछें ज्ञान ध्यान मौनवान्, उपशम कर  
 णोंके अर्थ अथवा ह्य करणोंके अर्थ सन्मुख दूषा यका ऐसा पवित्र मुनि  
 सप्तोत्तर मोहकों पूर्वोक्त सम्यक्त्व मोह, मिश्रमोह, मिथ्यात्वमोह, अरु  
 अनतानुबधी चार यह सात प्रकृतिके विना शेष इक्षीत प्रकृतिरूप मो



हनीय कर्मके उपशम करणके सन्मुख तथा ह्य करणके सन्मुख जब होता है, तब सालवन ध्यान त्यागके निरालवन ध्यानमें प्रवेश करनेका आरंभ करता है यह निरालवन ध्यानमें प्रवेश करने वाले योगी, तीन तरफ़के होते हैं ? यथाप्रारंभका, १ तन्निष्ठा, २ निष्पन्नयोगी ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ सम्यग् नैसर्गिकीं वा, विरतिपरिणतिं, प्राप्य सासर्गिकीं वा ॥ क्वाप्येकांते निविष्टा, कपि च पलचल, न्मानसस्तंजनाय ॥ शश्वन्नासाग्रपाली, घनघटितदृशो, वीरवीरासनस्थो ॥ ये नि पापा समाधे, विदधति विधिना, रजमारंजकास्ते ॥ १ ॥ कुर्वाणो मरुतासर्नेडियमन, कुत्तर्पनिडाजय ॥ योत जल्पति रूपणानिरसठ्ठ, तत्त्व समन्यस्यति ॥ सत्त्वानामुपरि प्रमोदकरुणा, मैत्रिर्जुश मन्यते ॥ ध्यानाधिष्ठितचेष्टयाऽन्यदयते, तस्येह तन्निष्ठता ॥ २ ॥ उपरतवहिरंतर्ध्वपकल्लोज्जमा ज्ञे, लसदविकलविद्यापद्मिनीपूर्णमध्ये ॥ सततममृतमत मानसे यस्य हस्त, पिबति निरुपलेप सोऽत्र निष्पन्नयोगी ॥ ३ ॥

अथ अप्रमत्त गुणस्थानमें ध्यानका सनव कहते हैं सर्वज्ञका कहा हुआ धर्म ध्यान मैत्र्यादि अनेक जेदरूप हैं ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ मैत्र्यादि निश्चतुर्नेद, यद्वाज्ञादि चतुर्विध ॥ रूपस्थादि चतुर्धा वा, धर्मध्यान प्रकीर्तितम् ॥ १ ॥ तत्र ॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्य, माध्यस्थानि नियोजयेत् ॥ धर्म ध्यानमुपस्कर्तुं, तद्वि तस्य रसायन ॥ २ ॥ आज्ञापायविपाकानां, सस्थानस्य विचितनात् ॥ इष्ट वा ध्येयजेदेन, धर्मध्यान प्रकीर्तितं ॥ ३ ॥ तथा १ पिं मस्थध्यान अपणे अग अगीका स्वरूप, २ वाणीव्यापाररूप पदस्थध्यान, ३ सकल्पित आत्मरूप रूपस्थ ध्यान, ४ कल्पनासे रहित रूपातीत ध्यान, ऐसा जो जिनेश्वरका कहा हुआ धर्मध्यान, सो अप्रमत्त गुणस्थान में मुख्यवृत्ति करके प्रधानपणे होता है तथा रूपातीतपणे करके शुक्लध्यानजी अशमात्र करके गौणपणे है इहां अप्रमत्त गुणस्थानमें आवश्यक क क्रियाका जो अनाव है, तोनी शुद्ध है, यह वार्त्ता कहते हैं

इस पूर्वोक्त अप्रमत्त गुणस्थानकर्म सामायिकादि पद आवश्यक, सोनी नहीं है, “कोर्थ” सामायिकादि वै आवश्यक व्यवहार कियारूप, इस गुण स्थानमें नहीं, परंतु निश्चय सामायिकादि सर्व कुठ है, क्योंकि सामायिकादि सर्व आत्माके गुण हैं, “आया सामाइए, आया सामाइयस्त अरे” अ

यात् आत्माही सामायिक है, अरु आत्माही सामायिकका अर्थ है, यह आगमके बचनसे है

प्रश्न - किस वास्ते अप्रमत्त गुणस्थानमें व्यवहार क्रियारूप पट् आवश्यक नहीं ?

उत्तर - अप्रमत्त गुणस्थानमें निरंतर ध्यानके सत् योगसे निरंतर ध्या नहीमें प्रवृत्त होता है, इस वास्ते स्वानाविकी सहज नित्य सकल्प विकल्प मालाके अनावसें एक स्वभावरूप निर्मल आत्मा होती है, इस गुणस्थानमें वर्तमान जो जीव है, वो जावतीर्थ स्नान करके परम शुद्धिको प्राप्त होता है ॥ यदाह ॥ दादोवसमं तएहाइ, बेयण मजप्पवाहण चेव ॥ तिहिं अर्हेहिं निवत्त, तम्हा तं दवत्त तिह ॥ १ ॥ कोहमि व निग्गहिए, दादस्तो वसण हवइ तिह ॥ जोहमि व निग्गहिए, तएहाइ बेयण जाण ॥ २ ॥ अ ठवियं कम्मरय, बहुएहिं नवेहिं सचिय जम्हा ॥ तव सयमेण धोयइ, तम्हा तं जावत्त तिह ॥ ३ ॥ अर्थ - दाह उपशान्त करे, टूपाका छेद करे, शरीरकी मजको दूर करे, इन पूर्वोक्त तीनों अर्थों करके जो निशुक्त होवे, ऐसे जो गंगा मागधादि, तिसको इस वास्ते इच्छतीर्थ कहते हैं ॥ १ ॥ तथा क्रो धके निग्रह करणसें दाह उपशम होती है, अरु लोचके निग्रह करणसें टूपा छेद होती है, ऐसे जानना अरु आव प्रकारकी कर्मरज बहुत नवों करके जो सची है, सो तप सयम करके जो धोवे, तिस वास्ते तिसको जाव तीर्थ कहते हैं ॥ अन्यच्च ॥ श्लोक ॥ रुद्धप्राणप्रचारे, वपुषि नियमि ते, सवृतेऽक्षप्रपंचे ॥ नेत्रस्पदे निरस्ते, प्रलयमुपगतं, तर्विकल्पेज्जाले ॥ जिह्वे मोहांयकारे, प्रसरति महसि, कापि विश्वप्रदीपे ॥ धन्यो ध्यानाव लवी, कलयति परमानदसिंधौ प्रवेश ॥ १ ॥ अर्थ - प्राण, आसोद्वास का प्रचार आना जाना जिसने रोका है, औ जिसने शरीरको वश किया है, औ जिसने नेत्रका टपकारना बंद किया है, औ पांच इन्द्रियों अपरो अपरो विषयसें रोका है, तथा अंतर विकल्परूप इज्जालके लय दूये, मोह रूप अधकारके नष्ट दूयां, अरु त्रिस्तुवन प्रकाशक ज्ञान प्रदीपके, प्रगट दूये धन्य वो ध्यानावलवी पुरुष है, सो परमानदरूप समुद्रमें प्रवेश करता है

यद् अप्रमत्त गुणस्थानस्य जीव, १ शोक, २ रति, ३ अरति, ४ अस्थिर, ५ अश्रुज, ६ अयश, ७ अज्ञातावेदनी इन सातों प्रकृतियोंका बंध

व्यवच्छेद करता है, अरु १ आहारक, २ आहारकोषाग, यह दो प्रकृतिका बध करता है इस वास्ते कणसठ प्रकृतिका बध करता है अरु जे कर दे वायु न बाधे, तब अछावन प्रकृतिका बध करता है, तथा स्त्यानर्द्धित्रिक, अरु आहारक द्विकोदयका व्यवच्छेद करे, तब बिहतर प्रकृतिका फल वेद ता है, अरु १३७ प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति अग्रमत्त गुणस्थानक सप्तम ॥ ७ ॥

अथ आठवा अपूर्वकरण, नवमा अनिवृत्तिबादर, दसवा सूक्ष्मसपराय, इग्यारवा उपशांत मोह, बारहवा क्षीणमोह. यह पाच गुणस्थानों का नामार्थ सामान्य प्रकारसें लिखते हैं

जो अग्रमत्तसयत सातमे गुणस्थान वर्त्ती दिखलाया है, सोइ संज्वलन कषाय चार, नो कषाय ठै, इनके मइ उदय दूये प्राप्त अप्राप्तपूर्व अत्यंत परमात्माद्वारूप अपूर्व पारिणामिक आठवा गुणस्थान है, इसका नाम अपूर्वकरण इस वास्ते कहते हैं कि इस गुणस्थानकमें अपूर्व आत्मगुण की प्राप्ति होती है

तथा देखा, सुना, औ अनुजब्या, जो जोग, तिनकी कांक्षारूप सकल विकल्प रहित निश्चल परमात्मैकतत्त्वरूप प्रधानपरिणतिरूप जावों की निवृत्ति नहीं, इस वास्ते इसका नाम अनिवृत्ति गुणस्थान कहते हैं अरु इसका नाम जो अनिवृत्तिबादर कहते हैं, सो इहा अप्रत्याख्या नादि जो द्वादश बादर कषाय हैं, तिनका, अरु नव नोकषायोंका शमक, उपशम करने वास्ते अरु रूपक, हृय करणेके वास्ते उद्यमी होता है, इस कारणसें इसका नाम अनिवृत्तिबादर कहते हैं यह नवमा गुणस्थान है

तथा सूक्ष्म परमात्मतत्त्वजावनाबल करके सत्तावींश प्रकृतिरूप मोहके उपशांत दूये, तथा हृय दूये, एक सूक्ष्म खंभीनूत लोचकी अस्तित्व जहां है, सो सूक्ष्मसपराय नामक गुणस्थानक है, सपराय नाम कषायका है, इस वास्ते सूक्ष्मसपराय दशमा गुणस्थानकका नाम कहा

तथा उपशामकही उपशम मूर्तिरूप सद्जस्वजाव बल करके सकल मोह कर्मके उपशांत करनेसें उपशांत मोहनामक एकादशम गुणस्थान होता है

तथा रूपककोही रूपकश्रेणि मार्ग करके दशमे गुणस्थानसेंही नि कषाय शुद्धात्मजावना बल करके सकल मोहके हृय करणेसे क्षीणमोह

नामक बारहवा गुणस्थान होता है यह पाचों गुणस्थानोंका सामान्य प्रकारें नामार्थ कहा.

अथ अपूर्वकरणादि अशसेंही दोनो श्रेणिका आरोह कहते हैं तहां अपूर्वकरणस्थानमें आरोह समयमें अपूर्वकरणके प्रथम अशसेंही उपशमक, उपशमश्रेणिमें चढता है, अरु रूपक, रूपकश्रेणिमें चढता है

अथ प्रथम उपशमश्रेणिके चढनेकी योग्यता कहते हैं. इहां उपशमक मुनि, शृङ्गध्यानका प्रथम पाया, जिसका आगें स्वरूप लिखेगे उसको व्याता दूथा उपशमश्रेणिकों अगीकार करता है कैसा वो मुनि है? कि पूर्वगत श्रुतका धारक, निरतिचार, चारित्रवान्, आदिके तीन सहनन युक्त, ऐसा मुनि उपशमश्रेणि करता है

उपशमश्रेणिवाला मुनि जे कर अल्प आयुवाला होवे, तब काल कर के "अहमिद्" अर्थात् पाच अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होता है, परंतु जिसके प्रथम सहनन होवे, वो अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होता है, क्योंकि अपर सहनन वाला अनुत्तर विमानमें उत्पन्न नहीं होता है, सेवार्त्त सहननवाला चौथे महेन्द्र स्वर्ग तक जा सका है, अरु कीलिकादि चार सहनन वालोंके दो दो देवलोककी वृद्धि कर लेनी, अरु प्रथम सहनन वाला तो मोक्ष तक जाता है, अरु जिसकी आयु जे कर सात जव अधिक होती, तो मोक्ष जाता, सोइ सर्वार्थसिद्ध विमानमें उत्पन्न होता है ॥ यदाह ॥ गाथा॥ सत्त जव जइ आवं, पटुप्पमाण तउं दु सिञ्जता ॥ तिसि यमिर्त्तं न दुय, तत्तो जव सत्तमा जाया ॥१॥ सव्वह सिद्धनामे, यक्कोसस्सिमु विजयमार्हसु ॥ एगावसेस गप्पा, हवति जव सत्तमा देवा ॥ २ ॥

प्रश्न - उपशमश्रेणिवाला मोक्षके योग्य कैसे हो सका है ?

उत्तर - सात जो जव है, सो एक मुहूर्त्तका इग्यारवा हिस्सा है, तब तो जवसत्तमावशेष आयुवालाही खमिर्त्त उपशमश्रेणि करने वाला पराइसु ख सातमे गुणस्थानमें आ करके फेर रूपकश्रेणिमें चढ कर सात जवके बिचहीमें क्षीणमोह गुणस्थानमें हो कर अत कृत केवली हो कर मोक्ष हो जाता है, इस वास्ते दूषण नर्दा तथा जो पुष्टायु उपशमश्रेणि करता है, सो अखमिर्त्त श्रेणि करके, चारित्र मोहनीयका उपशम करक इग्यारवे गुणस्थानमें पडुच कर उपशमश्रेणि समाप्ति करके गिर पडता है

अथ औपशमकही अपूर्वादि गुणस्थानोमें जो करता है, सो कहते हैं. संज्वलनका लोच वर्द्धके शेष वीश प्रकृति मोहनीय कर्मकी अपूर्वकरण, अरु अनिवृत्तिवादर, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशम करता है तिसके पीछे क्रम करके सूक्ष्म सपराय गुणस्थानमें संज्वलनके लोचकों सूक्ष्म करता है तिस पीछे क्रम करके उपशान्तमोह गुणस्थानमें तिस सूक्ष्म लोचका सर्वथा उपशम करता है, तथा इहां उपशान्तमोह गुणस्थानमें जीव, एक प्रकृति, शातावेदनीय रूप बांधता है अरु उणसठ प्रकृति वेदता है, तथा १४८ प्रकृतिकी उत्कृष्टी सत्ता है

अथ उपशान्तमोह गुणस्थानकमें, जैसा सम्यक्त्व चारित्र जाव लक्ष्ण तीन है, सो कहते हैं. यह गुणस्थानमें उपशम सम्यक्त्व अरु उपशम चारित्र होता है, अरु इहां जावजी उपशमही होता है, परंतु क्वायिक जाव तथा क्षायोपशमिक जाव नहीं होता है

अथ उपशान्तमोह गुणस्थानसे जैसे पड जाता है, तैसे कहते हैं उपशमी मुनि तीव्र मोहोदय अर्थात् चारित्र मोहनीयका उदय पा करके उपशान्तमोह गुणस्थानसे पड जाता है, फेर मोहजनित प्रमादसे पतित होता है जैसे पानीमें मल देठ बैठ जाते हैं, तिस करके उपरसे निर्मल हो जाता है, फेर कोइ निमित्त पा कर मलीन हो जाता है ॥ यदाह ॥ सुय केवलि आहारग, उज्जुमइ अवसतगावि दु पमाय ॥ हिंसति नवमण तं, तं अणतरमेव चठ गइया ॥ १ ॥ अर्थ—१ श्रुतकेवली, २ आहारक शरीरी, ३ ऊज्जुमति, ४ उपशान्तमोह वाला यह सर्व प्रमादके वशसे अनत नव करते हैं, प्रमादके वशसे चार गतिमें बाल करते हैं

अथ उपशमक जीवोंको गुणस्थानोमें चढना, अरु पडना जिस तर होता है, सो कहते हैं अपूर्वकरण गुणस्थानसे अनिवृत्तिवादर गुणस्थानमें जाता है, अरु अनिवृत्तिवादरगुणस्थानसे सूक्ष्मसपराय गुणस्थानमें जाता है, अरु सूक्ष्मसपराय वाला उपशान्तमोह गुणस्थानमें जाता है तथा अपूर्वकरणावि चारो गुणस्थानसे उपशम श्रेणिवाला पडा दुआ, प्रथम मित्यात्व गुणस्थानमें आ जाता है, अरु जे कर चरमशरीरी होवे, तब सातमे गुणस्थान तक आ करके फेर सातमे गुणस्थानसे कृपकश्रेणि मांफता है, परंतु एक बार जिसने उपशमश्रेणि करी होवे, सो कृपक

नामक बारहवा गुणस्थान होता है यह पाचों गुणस्थानोंका सामान्य प्रकारें नामार्थ कदा.

अथ अपूर्वकरणादि अशसेंही दोनो श्रेणिका आरोह कहते हैं तहां अपूर्वकरणस्थानमें आरोह समयमें अपूर्वकरणके प्रथम अशसेंही उपशमक, उपशमश्रेणिमें चढता है, अरु रूपक, रूपकश्रेणिमें चढता है

अथ प्रथम उपशमश्रेणिके चढनेकी योग्यता कहते हैं. इहां उपशमक मुनि, शृङ्गध्यानका प्रथम पाया, जिसका आगें स्वरूप लिखेगे उसको ध्याता हुआ उपशमश्रेणिकों अंगीकार करता है कैसा वो मुनि है? कि पूर्वगत श्रुतका धारक, निरतिचार, चारित्रवान्, आदिके तीन सदनन शुक्त, ऐसा मुनि उपशमश्रेणि करता है

उपशमश्रेणिवाला मुनि जे कर अल्प आयुवाला होवे, तब काल करके “अहमिड्” अर्थात् पाच अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होता है, परंतु जिसके प्रथम सदनन होवे, वो अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होता है, क्योंकि अपर सदनन वाला अनुत्तर विमानमें उत्पन्न नहीं होता है, सेवार्त्त सदननवाला चौथे महेँड् स्वर्ग तक जा सकता है, अरु कीलिकादि चार सदनन वालोंके दो दो देवलोककी वृद्धि कर लेनी, अरु प्रथम सदनन वाला तो मोक्ष तक जाता है, अरु जिसकी आयु जे कर सात लव अधिक होती, तो मोक्ष जाता, सोइ सर्वार्थसिद्धि विमानमें उत्पन्न होता है ॥ यदाद् ॥ गाथा॥ सत्त लवा जइ आउं, पट्टण्णमाण तउं दु सिञ्जता ॥ तिसि यमिचं न दुय, तत्तो लव सत्तमा जाया ॥१॥ सव्वठ सिद्धिनामे, यक्कोसच्छिमु विजयमाईसु ॥ एणावसेस गप्पा, हवति लव सत्तमा देवा ॥ ५ ॥

प्रश्न—उपशमश्रेणिवाला मोक्षके योग्य कैसे हो सकता है ?

उत्तर—सात जो लव है, सो एक मुहूर्त्तका इग्यारवा हिस्सा है, तब तो लवसत्तमावशेष आयुवालाही खनिज उपशमश्रेणि करने वाला पराइसुं ख सातमे गुणस्थानमें आ करके फेर रूपकश्रेणिमें चढ कर सात लवके विचहीमें श्लीणमोह गुणस्थानमें हो कर अत रुत केवली हो कर मोक्ष हो जाता है, इस वास्ते दूषण नहीं तथा जो पुष्टायु उपशमश्रेणि करता है, सो अखनिज श्रेणि करके, चारित्र मोहनीयका उपशम करके इग्यारवे गुणस्थानमें पहुच कर उपशमश्रेणि समाप्ति करके गिर पडता है

ती हैं ॥ यदाह ॥ अन्यासेन जितादारो, अन्यासेनैव जितासनः ॥ अन्यासेन  
जितश्वासोऽन्यासेनैवानितत्रुटि ॥ १ ॥ अन्यासेन स्थिरं चित्त, मन्यासेन  
जितेंद्रिय ॥ अन्यासेन परानदोऽन्यासेनैवात्मदर्शन ॥ २ ॥ अन्यासवर्द्धि  
तैर्ध्यानै, शास्त्रस्थै फलमस्ति न ॥ नवेन्नहि फलैस्तृप्ति, पानीयप्रतिविवितै.  
॥३॥ तिस वास्ते अन्याससंही विद्यु-६ ( निर्मल ) तत्त्वानुयायि बुद्धि होती है

अथ अष्टम गुणस्थानमें शुक्लध्यानका आरंभ कहते हैं रूपक साधु  
यह आठमे गुणस्थानमें “ शुक्लसंस्थान ” शुक्ल नामक प्रधान ध्यानका प्र  
थम पाद पृथक्त्व वितर्क सप्रविचार नाम है, तिसका स्वरूप आगे लिखें  
गे ऐसा ध्यान ध्याता है, सो कैसा साधु है ? “ आद्यसहननसमन्वित ”,  
वज्ररूपजनाराचनामा प्रथम सहननयुक्त है

अथ ध्यान करने वालेका स्वरूप लिखते हैं योगीन्द्र रूपक मुनीन्द्र, व्य  
वहारापेक्ष्य, ध्यान करने योग्य होता है, क्या करके ? निबिड दृढ पर्यंकास  
न करके, कथनूत ? निश्चल आसन करके, क्योंकि आसनजयही ध्यानका  
प्रथम प्राण है ॥ यदाह ॥ आदारासननिदा, जयं च काकण जिणवरम  
एण ॥ जाइक निर्यं अण्णा, ठवइठ जिणवरिण ॥ १ ॥ तत्र पर्यंकासन, जंघा  
के अधोभागमें पग ठपर करनेसे होता है, तथा केईक सिंहासन कहते  
हैं, तिसका स्वरूप ऐसा है कि ॥ श्लोक ॥ योनिं वामपदाऽपरेण निबिडं, सपी  
मथ शिश्न हनु ॥ न्यस्योरस्यचर्लेन्द्रिय स्थिरमना, लोलां च ताड्वांतरे ॥ वश  
स्थैर्यतया सुनिश्चलतया, पश्यन् भ्रुवोरंतरं ॥ योगी योगविधिप्रसाधनकृते, सि  
ंहासन साधयेत् ॥ १ ॥ अथवा आसनका कोई नियम नहीं, चाहो कोई  
आसन होवे, जिस आसनमें चित्त स्थिर हो जावे, सोई आसन ठीक है,  
सो कैसा योगीन्द्र है कि नासिकाके अग्रमें बीनी है सत् नेत्रकी दृष्टि, अ  
से प्रसन्न नेत्र है जिसके, क्योंकि नासाग्रन्यस्तलोचनवालाही ध्यानका  
साधक होता है ॥ यदाह ॥ ध्यानदमकस्तुतौ ॥ नासावशाग्रजाग, स्थित  
नयनधुगो, मुक्तताराप्रचार ॥ शेषाङ्गहीणवृत्ति, स्त्रिष्ठवनविवरो, द्वांतयोगै  
कचक्रु ॥ पर्यंकातंकशून्य, परिगलितघनोद्भासनि श्वासवात ॥ संस्थानारंभमू  
र्त्ति, भिरजवतु जिनो, जन्मसंनूतिनीति ॥ १ ॥ फेर कैसा है योगीन्द्र ? किं  
चित् वन्मीलित अर्धविकसित है नेत्र जिसके, क्योंकि योगीयोंके समाधि  
समयमें अर्धविकसित नेत्र होते हैं ॥ यदाह ॥ गनीरस्तंजमूर्त्ति, व्यपगतक

श्रेणि कर सका है, अरु जिसने एक नवमें दो बार उपशमश्रेणि करी होवे सो कृपकश्रेणि तिस नवमें नहीं कर सका है ॥ यदाह ॥ गाथा ॥ जीवो ह्येक जन्ममि, इकसिं वसामगो ॥ खयति कुक्का नो कुक्का, दोवारे वसामगो ॥ १ ॥

अथ उपशमश्रेणि वालेके नवोंकी सख्या कहते हैं इस ससारमें बहुत नवोंमें चार बार उपशमश्रेणि होती है, अरु एक नवमें दो बार होती है ॥ यदाह ॥ अवसमसेणि चवक्क, जायइ जीवस्स आनव नूण ॥ तो पुण दो एणवे, खवगे स्सेणी पुणो एणा ॥ १ ॥ उपशमश्रेणिकी स्थापना इस अगले यंत्रसें जान लेनी इस यंत्रकी सवादक यह गाथा है ॥ गाथा ॥ अणदसण पुसिङ्गी, वेयण्ण च पुरिसवेयं च ॥ दो दो एगंतरिए, सरिसे सरिस्स अवसमेइ ॥ १ ॥ अर्थ — प्रथम अनतानुबधी क्रोध, मान, माया, अरु लोच इन चारोंको उपशम करता है, पीछें मिथ्यात्व मोह, मिश्रमोह, अरु सम्यक्त्व मोह, यह तीनोंका उपशम करता है, पीछें नपुसकवेद, पीछें सै खिवेद, फेर दास्य, रति, अरति, जय, शोक, जुगुप्सा, यह छे प्रकृतिका उपशम करता है फेर पुरुषवेद, फेर अप्रत्याख्यानी क्रोध अरु प्रत्याख्यानी क्रोध, फेर सज्जलनका क्रोध, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी मान, फेर सज्जलनका मान, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी माया, फेर सज्जलनकी माया, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी लोच, फेर सज्जलनका लोच, उपशान्त करता है ॥ इति उपशमश्रेणि स्वरूप ॥

अथ कृपकश्रेणिका स्वरूप लिखते हैं जिस कृपकश्रेणिमें चठ कर योगी (कृपक मुनि) कर्म क्य करणेमें प्रवृत्त होता है, अथ अष्टम गुणस्थान कसें पहिले जो कर्मप्रकृति कृपक मुनि क्य करता है, सो लिखते हैं च रमशरीरी, अबद्धाणु, अल्पकर्मी, कृपकके चौथे गुणस्थानमें नरकाणु क्य हो जाता है, नरक योग्य आणुका बध नहीं करता है, तथा पांचमे गुणस्थानमें तिर्यगाणु क्य होता है, अरु सातमे गुणस्थानमें देवाणु क्य हो जाता है, तथा इहां सातमे गुणस्थानमें वर्शनमोहसप्तककी क्य हो जाता है, तिस पीछें कृपक साधुके एक सौ अड़त्तीस कर्मप्रकृतिकी सत्ता रहती है, तब आठमे गुणस्थानको प्राप्ति होता है, कथनूतो ? उरुष्ट धर्मे ध्यान रूपातीत लक्षण विपे कीया है, अन्यास जिसने, जो बार बार सेव न करना उसको अन्यास कहते हैं, तिस अन्यास करकेही तत्त्वप्राप्ति हो



है, तब द्वादश अंगुल पर्यंत वारुणमण्डल प्रचार अमृतमय पवन आकर्षण करके इसका नाम पूरक ध्यानकर्म कहते हैं.

अथ रेचक प्राणायाम कहते हैं तब पूरक ध्यानके अनंतर साधक योगी योगसामर्थ्यसे अरु प्राणायाम अन्यासके बलसे रेचकनामा पवन नाभिकम लोदरसें हलुवे हलुवे बाहिर काढता है, तिसका नाम रेचकध्यान कहते हैं ॥ यदाह ॥ वज्रासन स्थिरवपु स्थिरधी सचित्त, मारोप्य रेचक समीरणजन्म चक्रे ॥ स्वांतेन रेचयति नाडिगतं समीरं, तत्कर्म रेचकमिति प्रतिपत्तिमेति ॥ १ ॥

अथ कुञ्जकध्यान कहते हैं. योगी कुञ्जकनामा पवन नाभिपकजकुञ्जक ध्यान अर्थात् कुञ्जककर्म प्रयोग करके कुञ्जवत् (घटाकार) करके अतिशय करके स्थिर करता है ॥ यदाह ॥ चेतसि श्रयति कुञ्जकचक्र, नाडिकासु निविडीकृतवात ॥ कुञ्जवत्तरति यज्जलमध्ये, तद्वति किल कुञ्जककर्म ॥ १ ॥

अथ पवनके जितनेसें मन जालिया जाता है, यह बात कहते हैं क्यों कि जहां मन है, तहां पवन है, अरु जहां पवन है, तहां मन वर्त्तता है ॥ यदाह ॥ ऊर्धांबुवत्समिलितौ सदैव, तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ हि ॥ यावन्मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्ति, यावन्मरुत्तत्र मन प्रवृत्ति ॥ १ ॥ तत्रैकनाशादपरस्य नाश, एकप्रवृत्तेरपरप्रवृत्ति ॥ विध्वस्तघोरैर्द्विवर्गशृङ्गि, स्तब्धसनान्मोक्षपदस्य सिद्धि ॥ २ ॥ इस प्रकार करके पूरक, रेचक, कुञ्जकके क्रम करके पवनोका आकुचन निर्गमन, साध्य करके वायुका समग्र, अरु चित्तका एकाग्रपणां चितन करके समाधिविषे निश्चलपणोको धारण करता है, क्योंकि पवनके जीतनेसेंही मन निश्चल होता है ॥ यदाह ॥ प्रचलति यदि, कोणी चक्र, चलत्यचला अपि ॥ प्रलयपवन, प्रेखालोला, अलति पयोधय ॥ पवनजयिन, स्वावष्टन, प्रकाशितशक्तय ॥ स्थिरपरिणते, रात्म ध्याना, अलति न योगिन ॥ १ ॥

अथ नावकीही प्रधानता कहते हैं इहां कृपकश्रेणि आरोहविषे जो प्राणायामका क्रम प्रौढि पवनका अन्यासक्रम कह्या है, सो प्रागल्भ्यता अर्थात् रुढि करके जो प्रसिद्ध है, सो दिखलाया है, परंतु जो प्राणायाम ही करे, तो कृपकश्रेणि चढे, असा कुछ नियम नहीं, क्योंकि कृपकका जावही केवल कृपकश्रेणिका कारण है, परंतु प्राणायामादि आनवर नहीं चर्पटिनापि ॥ नासाकद् नाडीवृद्ध, वायोश्चार त्रयाद्वार ॥ प्राणायामो वी

रण, व्यापृतिर्मदमदं ॥ प्राणायामोललाट, स्थलनिवृत्तमना, दक्षनात्ता  
 ग्रहृष्टि ॥ नाऽप्युन्मीलन्निमील, न्नयनमतितरा, बन्धपर्यंकवधो ॥ ध्याने प्र  
 ध्याय शुक्ल, सकलविद्वजवय स पायाङ्गिनो व ॥ १ ॥ फेर कैसा योगी  
 है? “मानस” (मन) चित्त अंत करण विकल्परूप वावरके बंधनसें दूर  
 करा है, क्योंकि विकल्पही दृढ कर्मबंधनका हेतु है ॥ यदाह ॥ शुजा वा ह्य  
 शुजा वापि, विकल्पा यस्य चेतसि ॥ स स्व बध्नात्यय स्वर्ण, बधना तेन क  
 र्मेणा ॥ १ ॥ वरं निज्ञा वरं मूर्च्छा, वर विकलतापि वा, नत्वा र्शरौऽङ्गर्जेश्या,  
 विकल्पाकृलितं मन ॥ २ ॥ फेर कैसा है योगी? सत्सारके छेद करने वा  
 स्ते शयम है जिसके क्योंकि नवछेदक ध्यानार्थ उत्साह वालोंकेही योग  
 सिद्धि होती है ॥ यदाह ॥ उत्साहान्निश्चयादैर्या, तसतोपाप्तस्त्वदर्शनात् ॥  
 मुनेर्जनपदव्यागा, त्पह्निर्योग प्रसिद्धयेदिति ॥ १ ॥ तथा मुनि योगी  
 निल (पवनको) कर्ध्व प्रचारासि दशम द्वार गोचरको प्राप्त करता है, क्या कर  
 के प्राप्त करता है? कि अपान द्वार मार्ग करके शुद्धाके रस्ते पवन अपनी  
 इच्छासें निकलतेको निरुद्ध (सकोच) करके, मूलबंध पुक्ति करके करता है  
 सो मूलबंध यद् है, कि ॥ श्लोक ॥ पार्श्विणजागेन सपीडय, योनिमाकुष  
 येजुद् ॥ अपानमूर्धमारुष्य, मूलवधो निगद्यते ॥ १ ॥ यद् आकुंचनक  
 र्मही प्राणायामका मूल है ॥ यदुक्त ॥ ध्यानदमस्तुतौ ॥ संकोच्यापानरंध्र,  
 द्रुतवद्वत्तदृश, तंतुवत्स्वरूप ॥ धृत्वा हृत्पद्मकोशे, तदनु च गलके, तालु  
 नि प्राणशक्ति ॥ नीत्वा शून्यानिशून्यां, पुनरपि खगतिं, दीप्यमान समता,  
 लोकालोकावलोकं, कलयति स कलां, यस्य तुष्टो जिनेश ॥ १ ॥

अथ पूरक प्राणायाम कहते हैं योगी पूरक ध्यानके योगसें अतिप्रयत्न  
 करके (कोष्ठ) सकल देहगत नाडीसमूहको पवन करके पूरता है, क्या करके?  
 दादशांगुल पर्यंत पवनको आकर्षण करके, वारां आंगुल प्रमाण बाहिरसें  
 सर्व श्चौरसें खेंच करके पूरता है इहां यद् तात्पर्यार्थ है कि पवन आका  
 श तत्त्वके बढ़ते हुये नासिकाके अंदरही पवन होता है, अरु अग्नि तत्त्व  
 के बढ़ते हुये चार अंगुल प्रमाण बाहिर कर्ध्वगति स्फुरत होता है, अरु  
 वायु तत्त्वके बढ़ते हुये वै अंगुल प्रमाण बाहिर तिर्यग् फिरता है, अरु  
 पृथिवी तत्त्वके बढ़ते हुये आठ अंगुल प्रमाण बाहिर मध्यम जागमें रह  
 ता है, अरु जल तत्त्वके बढ़ते हुये बारह अंगुल प्रमाण नीचेको बढ़ता

है, तब द्वादश अंगुल पर्यंत वारुणमंजुल प्रचार अमृतमय पवन आकर्षण करके इसका नाम पूरक ध्यानकर्म कहते हैं.

अथ रेचक प्राणायाम कहते हैं तब पूरक ध्यानके अनंतर साधक योगी योगसामर्थ्यसे अरु प्राणायाम अन्यासके बलसे रेचकनामा पवन नाजिकम लोदरसें हलुवे हलुवे बाहिर काढता है, तिसका नाम रेचकध्यान कहते हैं ॥ यदाह ॥ वज्रासन स्थिरवपु स्थिरधी सचित्त, मारोप्य रेचक समीरणजन्म चक्रे ॥ स्वांतेन रेचयति नाडिगतं समीरं, तत्कर्म रेचकमिति प्रतिपत्तिमेति ॥ १ ॥

अथ कुंजकध्यान कहते हैं योगी कुंजकनामा पवन नानिपंकजकुंजक ध्यान अर्थात् कुंजककर्म प्रयोग करके कुंजवत् (घटाकार) करके अतिशय करके स्थिर करता है ॥ यदाह ॥ चेतसि श्रयति कुंजकचक्र, नाडिकासु निविहीकृतवात् ॥ कुंजवत्तरति यज्जलमध्ये, तद्वदति किं कुंजककर्म ॥ १ ॥

अथ पवनके जितनेसें मन जीत्या जाता है, यह बात कहते हैं क्योंकि कि जहां मन है, तहां पवन है, अरु जहां पवन है, तहां मन वर्त्तता है ॥ यदाह ॥ दुग्धाबुवत्समिलितौ सदैव, तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ हि ॥ यावन्मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्ति, यावन्मरुत्तत्र मन प्रवृत्ति ॥ १ ॥ तत्रैकनाशादपरस्य नाश, एकप्रवृत्तेरपरप्रवृत्ति ॥ विध्वस्तघोरेंद्रियवर्गं हृदि, स्तब्धसनान्मोक्षपदस्य सिद्धि ॥ १ ॥ इस प्रकार करके पूरक, रेचक, कुंजकके क्रम करके पवनोंका आकुंचन निर्गमन, साध्य करके वायुका समग्र, अरु चित्तका एकाग्रपणां चित्तन करके समाधिविषे निश्चलपणको धारण करता है, क्योंकि पवनके जीतनेसें ही मन निश्चल होता है ॥ यदाह ॥ प्रचलति यदि, क्षोणी चक्र, चलत्यचला अपि ॥ प्रलयपवन, प्रेखालोला, श्वलंति पयोधय ॥ पवनजयिन, स्वावष्टन, प्रकाशितशक्तय ॥ स्थिरपरिणते, रात्म ध्याना, श्वलति न योगिन ॥ १ ॥

अथ जावकीही प्रधानता कहते हैं इहां रूपकश्रेणि आरोहविषे जो प्राणायामका क्रम प्रौढि पवनका अन्यासक्रम कहा है, सो प्रागल्भ्यता अर्थात् रुढि करके जो प्रसिद्ध है, सो बिखलाया है, परंतु जो प्राणायाम ही करे, तो रूपकश्रेणि चढे, तैसा कुछ नियम नहीं, क्योंकि रूपकका जावही केवल रूपकश्रेणिका कारण है, परंतु प्राणायामादि आनंदर नहीं चर्पटिनापि ॥ नास्ताकद् नाहीवृद्ध, वायोश्चार प्रत्याहार ॥ प्राणायामो बी

जग्रामो, ध्यानाभ्यासोमंत्रन्यास ॥ १ ॥ हृत्पद्मस्थं धूमध्यस्थ, नासाग्र  
स्थ श्वासांत स्थ ॥ तेज शुद्धं ध्यान बुद्ध, ॐकारारूपं सूर्यप्रजारूपं ॥ १ ॥  
ब्रह्माकाशं शून्यान्यास, मिथ्याजल्पं चित्ताकल्पं ॥ कायाक्रांतं चित्तघ्रातं, स्व  
क्त्वा सर्वं मिथ्यागर्वं ॥ ३ ॥ गुर्वादिष्टं चित्त तमिष्टं ॥ देहातीतं नाबोपेतं ॥  
त्यक्त्वा बुद्ध नित्यानंदं, शुद्ध तत्त्व जानीद्वि त्व ॥ ४ ॥ अन्यच्च ॥ ॐकाराऽन्यस  
न विचित्रकरैः, प्राणस्य वायोर्ज्ञाया, तेजश्चित्तनमात्मकायकमक्षे, शून्यांत  
रालंबन ॥ त्यक्त्वा सर्वमिदं कक्षेवरगतं, चितामनोविभ्रम ॥ तत्त्व पश्यत ब्र  
ह्मकल्पनकला, तीतं स्वभावस्थितं ॥ १ ॥ यद् सर्वं रुढिं करकं रूपकश्रेणि  
के आरुबर है, परंतु तत्त्वमें मरुवेवाविवत् जावही प्रधान है

अथ आद्य शुक्लध्यानका नाम कहते हैं मन, बचन, अरु कायाके योग  
वासे मुनिके प्रथम शुक्ल ध्यानका पाद होता है, सो कैसा है ? कि वितर्क कर  
कें सहित जो वर्त्ते, सो सवितर्क अरु सहविचार करकें जो प्रवर्त्ते, सो सविचा  
र तथा सह पृथक्त्वेन वर्त्तते इति सपृथक्त्व इन तीनों विशेषणों करके संयु  
क्त होनेसे सपृथक्त्व, सवितर्क, सप्रविचार नामक प्रथम शुक्लध्यानका नाम है

अथ विशेषण तीनोंका स्वरूप कहते हैं, यद् पूर्वोक्त प्रथम शुक्लध्यान  
त्रयात्मक क्रमोत्क्रम करकें गृहीत विशेष तीन रूप हैं, तहां श्रुतचिता रूप  
वितर्क है, तथा अर्थ शब्द योगांतरमें जो सक्रमण करना है, सो विचार  
है, अरु इव्य गुण पर्यायादि करकें जो अन्यपणा है, सो पृथक्त्व है

अथ इन तीनोंका प्रगट अर्थ कहते हैं, उसमें प्रथम वितर्कका  
स्वरूप कहते हैं, जिस ध्यानमें अंतरंग ध्वनिरूप वितर्कविचार रूप होवे,  
सो सवितर्कध्यान है, क्योंकि स्वकीय निर्मल परमात्मतत्त्व अनुभवमय  
अंतरंगजावगत आगमके अवलंबनसे यद् सवितर्क ध्यान है

अथ सविचार कहते हैं जिस ध्यानमें सपूर्वोक्त वितर्क विचारणरूप  
अर्थसे अर्थोत्तरमें सक्रम होवे, शब्दसे शब्दांतरमें सक्रम होवे, योगसे  
योगांतरमें सक्रम होवे, सो ध्यान, सविचारससक्रमण कहते हैं

अथ पृथक्त्वका स्वरूप कहते हैं जिस ध्यानमें वो पूर्वोक्त वितर्क सवि  
चार अर्थ व्यजन योगांतर सक्रमणरूपकी शुद्धात्मकी तरें इव्यसे इव्यांत  
रमें जाता है, अथवा गुणोंसे गुणांतरमें जाता है, अथवा पर्यायोंसे पर्या  
यांतरमें जाता है, तहां जो सहजात है, सो गुण है, जैसे सुवर्णमे स्निग्ध

ता पोतता है अरु जो क्रमचूत है, सो पर्याय है, जैसे सुवर्णमें मुद्रा कु म्लादिक तिन इव्य गुण पर्यायातरोमे जिस ध्यानमें अन्यत्व पृथक्त्व है, सो सपृथक्त्व है

अथ आद्य शुक्लध्यान करकें जो शुद्धि होती है, सो कहते है योगी समाधिवान् ऐसा पूर्वोक्त त्रयात्मक पृथक्त्व वितर्क सप्रविचाररूप जो प्र थम शुक्लध्यान है, उसका ध्याता हूथा परम प्ररुष्ट शुद्धिकों प्राप्त होता है, सो कैसी शुद्धिकों प्राप्त होता है ? कि जो शुद्धि मुक्तिरूप लक्ष्मीके मुखके दिखलाने वाली है, तिस शुद्धिकों प्राप्त होता है

अथ इसहीका विशेष स्वरूप कहते है यद्यपि यह शुक्लध्यान प्रतिपा ति (पतनशाल) उत्पन्न होता है, तोनी अतिविशुद्ध होनेसे औ अति निर्म ल होनेसे अगले गुणस्थानमें चढना चाहता है, एतावता अगले गुण स्थानकों दौडता है, तथा अपूर्वकरण गुणस्थानस्थ जीव निद्रादिक, देव दिक, पंचेंद्रिय जाति, प्रशस्त विद्यायोगति, त्रसनवक, वैक्रिय, आहारक, तै जस, कर्मण, वैक्रियोपांग, आहारकोपांग, आद्य सस्थान, निर्माण, तीर्थ करनाम, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात, उद्धास यह वत्तीस कर्म प्रकृतिका व्यवच्छेद होनेसे उब्बीस कर्मप्रकृतिका बध करता है तथा अतिम तीन सहनन अरु सम्यक्त्व मोद, इन चारके उदय व्यवच्छेद होने से बहत्तरी कर्मप्रकृति वेदता है अरु १३८ कर्मप्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति रूपक श्रेणिवालेका आत्मा गुणस्थानका स्वरूप ॥

अथ रूपक अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानकमें आरोहण करता हूथा जौनसी कर्मप्रकृति जहां जैसे हूय करता है, सो कहते है पूर्वोक्त आत्मे गुणस्थानसे अनंतर रूपक मुनि अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्था नमें चढता है, तब तिस नवमे गुणस्थानके नव जाग करता है, तिहां प्र थम जागमें सोलां कर्म प्रकृति हूय करता है, सो यह है ? नरकगति, १ नरकानुपूर्वी, २ तिर्यग्गति, ३ तिर्यैचानुपूर्वी, ४ साधारणनाम, ५ उद्यो तनाम, ६ सूक्ष्म, ७ ईंद्रिय जाति, ८ त्रींद्रिय जाति, ९ चक्षुरिंद्रिय जा ति, १० एकेंद्रियजाति, ११ आतप नाम, १२ स्थानार्द्ध त्रिक, अर्थात् निद्रा निद्रा, प्रचलाप्रचला, स्थानार्द्ध, यह त्रिक, १३ स्यावर नाम यह सोलां कर्म प्रकृतिका नवमे गुणस्थानके प्रथम जागमें हूय करता है,

तथा अप्रत्याख्यानकी चौकड़ी, अरु प्रत्याख्यानकी चौकड़ी, यह आठ मध्यकी कषायकों दूसरे जागमें क्षय करता है, तीसरे जागमें नपुसकवेद, अरु चौथे जागमें स्त्रीवेद क्षय करता है, तथा पांचमे जागमें हास्य, रति, अरति, जय, शोक, अरु छुगुप्ता, यह छे प्रकृतिका क्षय करता है शेष छे जागसें ले कर नवमे जाग तांइ चारों जागमें क्रमसे शुद्ध हुआ थका ध्यान की अति निर्मलतासें क्रम करके छे जागमें पुरुषवेद, सातमे जागमें सज्ज्वलनका क्रोध, आठमे जागमें सज्ज्वलन मान, नवमे जागमें सज्ज्वलनकी मायाकों क्षय करता है, तथा यह गुणस्थानमें वर्त्तता हुआ मुनि, हास्य, अरति, जय, छुगुप्ता इन चारोंके व्यवच्छेद होनेसें बावीस प्रकृतिका बंध करता है. अरु हास्य पदकके उदय व्यवच्छेद होनेसें बासठ प्रकृतिकों वेदता है, तथा नवमे अंशमें माया पर्यंत प्रकृतियोंके क्षय करनेसें पैंतीस प्रकृति के व्यवच्छेद होनेसें एक सौ तीन प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति रूपकके नवमे गुणस्थानका स्वरूप

अथ रूपकके दशमे गुणस्थानका स्वरूप लिखते हैं पूर्वोक्त नवमे गुणस्थानकसें अनंतर रूपकमुनि सूक्ष्मसपरायनामक दशमे गुणस्थानमें चढता है क्या करता हुआ चढता है? कि क्षणमात्रसें सज्ज्वलनके स्पृष्ट लोचनों सूक्ष्म करता हुआ चढता है, तथा सूक्ष्म सपराय गुणस्थानस्थ जीव, पुरुषवेद तथा सज्ज्वलन चतुष्कके बंध व्यवच्छेद होनेसें सत्तरां प्रकृतिका बंध करता है, अरु तीन वेद, तथा तीन सज्ज्वलन कषायके उदय व्यवच्छेद होनेसें साठ प्रकृति वेदता है, मायाकी सत्ता व्यवच्छेद होनेसें एक सौ दो प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति रूपकस्य दशम गुणस्थान ॥

अथ रूपकको झ्यारदवा गुणस्थानक नहीं होता है, किंतु दशमे गुणस्थानसें रूपक, सूक्ष्मलोचनोंको सूक्ष्मरुत लोचनस्पर्शोंको क्षय करता हुआ वारदमे क्षीणमोह गुणस्थानमें जाता है इहां रूपकश्रेणि समाप्त करता है उसका क्रम यह है, कि प्रथम अनतानुबधी चार क्षय करता है, फेर मिथ्यात्व मोहनीय, फेर मिश्रमोहनीय, फेर सम्यक्त्व मोहनीय, फेर अप्रत्याख्यान चार कषाय, तथा प्रत्याख्यान चार कषाय एव आठ क्षय करता है फेर नपुसकवेद, फेर हास्यपदक, फेर पुरुष वेद, फेर सज्ज्वलन क्रोध, फेर सज्ज्वलन मान, फेर सज्ज्वलन माया, फेर सज्ज्वलन लोच क्षय करता है

अथ तहां वारहमे गुणस्थानमें शुक्लध्यानके दूसरे अंशको आश्रित करता है, यह बात कहते हैं अथानंतर सो रूपकहीणमोहरूप हो करके हीणमोह गुणस्थानके मार्गमें परिणतिमान् हो करके, प्रथम शुक्लध्यानकी रीति करके दूसरे शुक्लध्यानको आश्रित होता है, कथनू त रूपक ? बीतराग विशेष करके “इतो ( गतो ) रागो यस्मात् स बीतराग ” फेर कैसा है रूपकमुनि ? महायति, यथाख्यातचारित्र्यी फेर कैसा है मुनि ? कि शुद्धतर जाव करके संयुक्त ऐसा रूपक, दूसरे शुक्ल ध्यानको आश्रित होता है

अथ सोइ शुक्लध्यान सनाम विशेषण कहते हैं, सो रूपक हीणमोह गुणस्थानवर्त्ता, दूसरा शुक्लध्यान एक योग करके ध्याता है ॥ यदाह ॥ एक त्रियोगजाजा, माद्य स्यादपरमेकयोगवतां ॥ तनुयोगिनां तृतीय, नि योगानां चतुर्थ हि ॥ १ ॥ कैसा ध्यान है ? कि “अष्टयत्त्व पृथक्त्व व र्जितं अविचारं विचार रहितं सवितर्कगुणान्वितं वितर्क मात्र गुण संयुक्त” दूसरा शुक्लध्यान ध्याता है

अथ अष्टयत्त्वका स्वरूप कहते हैं तत्त्वज्ञाता एकत्व अर्थात् अष्टयत्त्वज्ञानको धारण करता है, सो एकत्वपणा क्या है ? जो निजात्मइव्य एक केवल अपणा इव्य विशुद्ध परमात्मइव्य है, अथवा तिसही परमात्म इव्यका एक केवल पर्याय, अथवा एक केवल गुण, इस प्रकारसे एक इव्य, एक गुण, एक पर्याय, निश्चल, चलन वर्जित जहां ध्यावे, सो एकत्व है

अथ अविचारपणा कहते हैं इस कालमें सद्धानकोविद अर्थात् शुक्लध्यानका जो जननद्वारा है, सो पूर्वमुनिप्रणीत शास्त्राम्नायविशेष से है, परंतु शुक्ल ध्यानका अनुजवी इस कालमें कोई नहीं ॥ यदाहु ॥ श्रीदे मचड् सूरिपादा ॥ श्लोक ॥ अनविष्टित्याम्नाय , समागतोऽस्येति कीर्त्यते ऽस्मानि ॥ डुष्करमप्याधुनिकै , शुक्लध्यान यथाशास्त्र ॥ १ ॥ जिनसद्धानकोविदोंने शास्त्राम्नायसे शुक्ल ध्यानका रहस्य जान्या है, तिनोंने अविचार विशेषण संयुक्त दूसरे शुक्लध्यानका स्वरूप कहा है, सो क्या है ? जो पूर्वोक्त स्वरूपोंमें व्यंजन अर्थयोगोंमें एतावता शब्दार्थ योग रूपोंमें परावर्त्त विवर्जित शब्दसे शब्दान्तर, इत्यादि क्रमसे रहित चितन श्रुतानुसारेंही करिये हैं, सो अविचार है

अथ सवितर्क कहते हैं, सवितर्क एक गुणसंयुक्त दूसरा शुक्लध्यान किससेंति होता है ? तहां कहे हैं, कि जावश्रुतके आलबनसें होता है सूक्ष्म अतर्जल्यरूप जावगत अवलबनमात्र चितनसें होता है

अथ शुक्लध्यानजनित समरसी जाव कहते हैं इस पूर्वोक्त प्रकार करके एकत्वविचार सवितर्करूप तीन विशेषण संयुक्त दूसरा शुक्लध्यान कहा, तिस दूसरे शुक्लध्यानमें वर्त्तता हुआ ध्यानी समरसी जावको धारण करता है, सो यह समरसी जाव जो है, सो तदेकशरण मान्या है, कारणकि आत्मा जो अपृथक्त्व करके परमात्मामें लीन करीये, सोइ समरस जावका धारण करणां है, समरस किससेंति करे ? कि आत्माके अनुभवसें करे

अथ क्षीणमोहगुणस्थानके ढेहदे क्या करता है ? सो कहते हैं इस पूर्वोक्त ध्यानके योगसें ओ दूसरे शुक्लध्यानके योगसें प्लुप्यत कर्मधनोत्तर दह्यमान है, कर्मरूप धनका समूह, ऐसा योगीइ अतके प्रथम समय अर्थात् बारहवे गुणस्थानके दूसरे चरम समयमें निडा अरु प्रव ला, इन दो प्रकृतिका क्षय करता है

अथ अत समयमें जो करता है, सो कहते हैं क्षीणमोह गुण स्थानके अत समयमें १ चक्रुदर्शन, २ अचक्रुदर्शन, ३ अवधिदर्शन, ४ केवलदर्शन यह चार दर्शनावरणीय तथा पंचविध ज्ञानावरण, तथा पंचविध अतराय, यह चौदह प्रकृतिका क्षय करके क्षीणमोहाक्ष हो करके केवल स्वरूप होता है तथा क्षीणमोह गुणस्थानस्थ जीव, दर्शनचतुष्क, अरु ज्ञानांतरायदशक, वज्रैर्गोत्र, यशनाम यह सोला प्रकृतिका बंध व्यवहेद होनेसें एक शातावेदनीका बंध करता है, तथा १ सज्ज्वलनका लोचन, २ कृष्णनाराचसधरण, इनके शब्द विवेद होनेसें सत्तावन प्रकृति वेदता है तथा सज्ज्वलनके लोचनकी सत्ता दूर होनेसें एक सौ एक प्रकृति की सत्ता है इति रूपकस्य षादश गुणस्थानकस्वरूप ॥ १२ ॥

अथ क्षीणमोहांत प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं चौथे गुणस्थानसें ले कर क्षय होती दुइ त्रैसठ प्रकृति, क्षीणमोहमें संपूर्ण नइ है, सो कहते हैं एक प्रकृति चौथे गुणस्थानमें क्षय दुइ, एक पांचमें, आठ सा तमें, उत्तीस नवमें, सत्तरे बारहमें यह सर्व त्रैसठ नइ तथा शेष पंचासी



प्रकृति पुराणे वस्त्रकी तरें ( अत्यंत जीर्णवस्त्रसमान ) तेरहवे सयोगी केवली गुणस्थानमें रहती है.

अथ सयोगी केवलीके जो नाव होता है, अरु जो सम्यक्त्व चारित्र होता है, सो कहते हैं तिस केवल आत्मा जगत्को इहां सयोगी गुणस्थानमें नाव तो ह्यायिक शुद्ध ( निर्मल ) होता है, औ सम्यक्त्व परम प्रकृष्ट ह्यायिक होता है, तथा चारित्र ह्यायिक यथाख्या तनामक होता है, इसका तात्पर्य यह है, कि उपशम अरु ह्यायोपशमिक यह दो नाव नहीं होते हैं

अथ तिस केवलात्मकों केवल कहते हैं तिस केवल रूप सूर्यके प्रकाश करके चराचर जगत् हस्तामलक उपमावत् ( हस्त तलेमें ग्रहण करा आम लेंकी तरें ) प्रत्यक्ष ( साक्षात्कार ) करके जासन करते हैं. इहां प्रकाशमान सूर्यकी उपमा जो कही है, सो व्यवहार मात्र कही है, नतु निश्चयसंति कही है, कारण कि निश्चय करके तो केवलज्ञानका अरु सूर्यका बड़ा अंतर है

अथ जिसने तीर्थकरनाम उपाज्या है, तिसका विशेष कहते हैं विशेष करके अर्द्ध नक्ति प्रमुख बीश पुण्यके स्थानक जो जीव, आराधन करता है, सो तीर्थकरनामकर्म उपार्जन करता है सो बीश स्थानक यह है ॥ गाथा ॥ अरिहत सिद्ध पवयण, गुरु थेर बद्धस्तुष्ट तवस्तीष्ट ॥ वञ्जलयाष्टु, अनिष्कण एो वद्यग्गेय ॥ १ ॥ दंतण विणए आव, स्तए सीजवए निरइयारे ॥ खणलवञ्जियाए, वेयावञ्जे समादीपं ॥ २ ॥ अपुव नाण गहए, सुयनत्ती पवयण पजावणया ॥ एएहि कारयेहिं, तिञ्जयरत्त जहइ जीवो ॥ ३ ॥ इनका अर्थ आगे लिखेंगे, तिस वास्ते इहां सयोगी गुणस्थानमें तीर्थकर कर्मोदयसें वो केवली ( त्रिजगत्पति ) त्रिभुवनपति जिनेंइ होता है जिन, सामान्य केवलीयोंको कहते हैं, तिनमें जो इसकी तरें दो वे, सो जिनेंइ जाननां

अथ तीर्थकरकी महिमा कहते हैं, सो जगवान् तीर्थकर पूर्वोक्त च वत्तीस अतिशय करके सपुत्र होता है, औ सर्व देवता जिसको नमस्कार करते हैं, तथा सकल देव मानवोंने जिसको नमस्कार करा है, सो सर्वोत्तम, औ सकल शासनोमें प्रधान, औसा तीर्थप्रवर्त्तन प्रगट करता हू आ वल्लुष्ट देशोन पूर्वकोटि लग विद्यमान रहता है

अथ सो तीर्थंकर नामकर्म जैसे वेदनेमें आता है, तैसे कहते हैं तिस तीर्थकरनें सो तीर्थंकर नामकर्म जोगीयें हैं, क्या करनेसें ? सो कहते हैं पृथ्वीमण्डलमें जव्यजीवोंके प्रतिबोधनेसें, देशविरति औ सर्वविरति करनेसें, तीर्थंकर नामकर्म वेदनेमें आता है. जे कर तीर्थंकर नामकर्म का उदय न होवे, तब रुतकृत्य होनेसें जगवान्को उपदेश देनेका क्या प्रयोजन है ? इस वास्ते जे वादी जगवान्को नि शरीरी नैरुपाधिक मुख रहित सर्वव्यापी मानते हैं, सो देहादिकके अज्ञावसें धर्मका उपदेशक न ही हो सका है, जे कर उपाधि रहित सर्वव्यापी परमेश्वरजी उपदेशक होवे, तब तो अब इस कालमें अस्मदादिकोंको क्यों नहीं उपदेश करता है ? क्योंकि पूर्वकालमें अग्नि आदिक ऋषियोंको उसने प्रेरा, तथा ब्रह्मा वि द्वारा चार वेदका उपदेश करा, तथा मूसा, ईसा द्वारा जगत्को उपदेश करा, तो फेर अब क्यों नहीं उपदेश करता ? परोपकारीके क्या डील है ? जे कर कहोगेकि इस कालमें सर्व जीव उपदेश मानने योग्य नहीं है, इस वास्ते उपदेश नहीं देता, तब तो पूर्वकालमेंजी सर्व जीवोंने परमेश्वर का उपदेश नहीं माना है प्रथम तो कालासुर प्रमुख अनेक जीवोंने न ही माना, दूसरा अजाजीलने नहीं माना, औ यदूवाने, तथा कितनेक इसराइलियोंने नहीं माना, इस वास्ते पूर्वकालमेंजी परमेश्वरको उपदेश देना योग्य नहीं था जे कर कहोगेकि उसकी ओड़ी जाने क्यों कर उपदेश दिया अरु अब किस वास्ते उपदेश नहीं देता तो फेर तुम क्यों कर कहते हो कि परमेश्वरके मुख नहीं ? इस वास्ते यही सत्य है, कि जो तीर्थंकर नामकर्मके वेदने वास्ते जगवान् उपदेश करते हैं, अरु जिस वखत उपदेश करते हैं उस वखत वेदधारी होते हैं इत्यज प्रसंगेन ॥ केवली केवलज्ञानवान् पृथ्वीमण्डलमें उत्कृष्ट आठ वर्ष कणा पूर्वकोटि प्रमाण विचरता है, औ देवताओंके करे दूए कचनकमलोंके उपरि पग रख कर चलता है, अरु आठ प्रत्याहार करके सयुक्त अनेक सुरासुर कोटि ससेवित विचरता है यह स्थिति सामान्य प्रकारें केवलीयोकी कही है, अरु जिनेइ तो मध्यस्थिति वाला होता है

अथ केवलि समुद्धातकरण कहते हैं “असौ” वो केवली जब वेदनीय कर्मसेंती आसु कर्मकी स्थिति थोड़ी जानता है, तब तिसके तुल्य

करने वास्ते केवली, समुद्धात करता है, तिस समुद्धातका स्वरूप कहते हैं, तहा प्रथम समुद्धात पदका अर्थ कहते हैं यथास्वजावस्थित आत्मप्रदेशोंको वेदनादि सात कारणों करके समतात् उद्धातन स्व जावसें अन्यजावपणे परिणमन करना, तिसका नाम समुद्धात है. सो समुद्धात सात प्रकारें है १ वेदनास०, २ कषायस०, ३ मरणस०, ४ वैक्रियस०, ५ तेज स०, ६ आहारकस०, ७ केवलिस०, इन सातों समुद्धातोंमेंसू केवलिसमुद्धात इहा ग्रहण करणी तिस केवलिसमुद्धातके अर्थ केवली जगवान् आशु अरु वेदनी कर्मके सम करने वास्ते प्रथम समयमें आत्मप्रदेशों करके कर्ध्वलोकांत जगि दमत्व (दमाकार) जावे आत्मप्रवेश करता है दूसरे समयमें पूर्व, पश्चिम, दिशामें आत्मप्रदेशों करके कषाटाकार करता है, तीसरे समयमें उत्तर, दक्षिण, आत्मप्रदेशों का मथानाकार करता है, चौथे समयमें अंतर पूर्ण करनेसें सर्व लोक व्यापी होता है इस तरें केवली, चौथे समय विश्वव्यापी होता है

अथ इहांसें निवृत्ति कहते हैं इस प्रकार करके केवली आत्मप्रदेशोंको विस्तार करनेके प्रयोगसे कर्मलेशको सम करता है सम करके पीछें तिस समुद्धातसे उलटा निवर्त्तता है, सो अैसें है, कि केवली चार समयमें जगत् पूर्ण करके पांचमे समय पूर्णसें निवर्त्तता है उछे समयमें मथानपणा दूर करता है, सातमे समयमें कषाट दूर करता है, आठमे समयमें दमत्व उपसंहार करता हुआ स्वजावस्थ होता है ॥ य दादुर्वाचकमुख्या ॥ दम प्रथमे समये, कषाटमथ चोत्तरे तथा समये ॥ मथानमथ तृतीये, लोकव्यापी चतुर्थे तु ॥ १ ॥ सदरति पंचमे त्व, तराणि मथानमथ पुन षष्ठे ॥ सप्तमेके तु कषाट, सदरति तथाऽष्टमे दम ॥१॥

अथ केवली समुद्धात करता हुआ जैसा योगवान्, अरु अनाहारक होता है, सो कहते हैं केवली समुद्धात करता हुआ प्रथम अरु अत समयमें औदारिकाय योगवाला होता है, दूसरे, अरु उछे समयमें मिश्रौदारिकाय योगी होता है, मिश्रपणा इहां कार्मण करके औदारिका है, तथा तीसरे, चौथे, अरु पांचमे समयोंमें केवल कार्मणकाय योगवाला होता है, जिन समयोंमें केवली केवल कार्मण काययोग वाला होता है, तिनही समयोंमें अनाहारक होता है

अथ जौनसा केवली समुद्धात करता है, अरु जौनसा नहीं करता है, सो कहते हैं जिसकी है मद्दिनेसँ अधिक आयु शेष है, जे कर उसकों केवल ज्ञान होवे, वोतो निश्चय समुद्धात करे, अरु जिसकी है मद्दिनेके नीतर आयु होवे, उसकों जो केवल ज्ञान होवे, तो नजना है. वो केवल समुद्धात करेजी, अरु नहींजी करे ॥ यदाह ॥ ठग्मासाक सेसा, य प्यन्न जेसि केवलं नाण ॥ ते नियमा समुग्घाड्य, सेसा समुग्घाय नड्यथा ?

अथ समुद्धातसँ निवृत्त हो करके जो कुछ करता है, सो कहते हैं वो मन, बचन, अरु काययोगवान् केवली, केवल समुद्धातसँ निवृत्त हो कर योग निरोधनके वास्ते शुक्लध्यानका तीसरा पाद ध्याता है सोइ तीसरा शुक्लध्यान कहते हैं तिस अवसरमें तिस केवलीकों तीसरा सूक्ष्मक्रिया निवृत्तिक नाम शुक्लध्यान होता है सो कपनरूप जो क्रिया है, तिसकों सूक्ष्म करता है

अथ मन, बचन, कायाके योगोंकों जैसे सूक्ष्म करता है, सो कहते हैं सो केवली, सूक्ष्मक्रियानिवृत्तिनामक तीसरा शुक्लध्यान ध्याता, अधिता तमवीर्यकी शक्ति करके बाहरकाययोग स्वनावमें स्थित करके बाहर बचन योग, बाहर मनोयोग, यह युगलकों सूक्ष्म करता है, तिस पीछे बाहरकाय योगकों सूक्ष्म करता है, फेर सूक्ष्मकाययोगमें कृण मात्र रह करके तत्काल सूक्ष्म बचन, मनोयोग, यह युगलका अपचय करता है तिस पीछे सूक्ष्म काययोगमें कृण मात्र रह कर प्रगट सो केवली निजात्मानुजब सूक्ष्म क्रिया चिद्रूपकों स्वयमेवही अपणे स्वरूपका अनुजब करता है, (जानता है)

अथ जो सूक्ष्मक्रियावाले शरीरकी स्थिति है, सोइ केवलीर्योंका ध्यान होता है, ऐसी बात कहते हैं जिस प्रकार करके ब्रह्मस्थ योगीर्योंके मनके स्थिरताकों ध्यान कहते हैं, तैसेही शरीरकी निश्चलताकों केवलीर्योंके ध्यान होता है अथ शैलेशीकरणका आरंज करने वाला सूक्ष्म काययोगी जो कुछ करता है, सो कहते हैं केवलीके हस्ताक्षर पांचके च चारण करण मात्र काल जितना आयु शेष रहता है, तब शैजवत् निश्चलकायको चौथा ध्यानाऽपरिपातरूप शैलेशीकरण होता है तिस पीछे सो केवली शैलेशीकरणरंजी सूक्ष्मरूप काय योगमें रहता हुआ सीप्रही अयोगी गुणस्थानमें जाणेकी इछा करता है

अथ सो जगवान् केवली सयोगी गुणस्थानके अत्य समयमें औदारिक, अस्थिरदिक, विहायोगतिदिक, प्रत्येक त्रिक, सस्थान पट्क, अगु रुलघुचतुष्क, वर्णादिचतुष्क, निर्माण, तैजस, कर्मण, प्रथम सहनन, स्वरदिक, एकतर वेदनीय यह तीस प्रकृतिका उदय विच्छेद होता है. तब तो इहा अगोपांगके उदय व्यवच्छेद होनेसे अत्यांग सस्थानावगाहनासें तीसरे जाग कणी अवगाहना करता है, किस कारणसे ? अपने प्रदेशोंको धनरूप करनेसें चरम शरीरके अगोपांगमें जो नासिकादि बिड़ हैं, तिनको पूर्ण करता है, तब स्वात्मप्रदेशोंका धनरूप हो जाता है, तिस वास्ते स्व प्रदेशोंका धनरूप होनेसें तीसरा जाग कना होता है सयोगी गुणस्थान स्थ जीव, एकविध बंधक उपात्य समय तां५ अरु ज्ञानांतराय, दर्शन च तुष्कोदय व्यवच्छेद होनेसें बैतालीस प्रकृति वेदता है, तथा १ निद्रा, २ प्र चला, १२ ज्ञानांतराय दशक, १६ दर्शनचतुष्क रूप सोला प्रकृतियोंकी सत्ता व्यवच्छेद होनेसें पचासी प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति सयोगी गुणस्थान ॥ १३ ॥

अथ अयोगी गुणस्थानककी स्थिति कहते हैं तेरहवे गुणस्थानके अनंतर चौदहवे अयोगी गुणस्थानमें रहते हुए जिनेन्द्रकी लघु पंचाक्षर उच्चारणमात्र “अ इ उ ऋ लृ” ये पाच वर्ण उच्चारण करतां जितना काल लगता है, तितनी स्थिति है यह अयोगी गुणस्थानमें ध्यानका स नव कहते हैं इहां अनिवृत्ति नामक चौथा ध्यान होता है, इस चौथे ध्यानका स्वरूप कहते हैं जिस ध्यानमें सूक्ष्मकाययोग रूप क्रियानी “समुच्चिन्ना” सर्वथा निवृत्त हूई है, सो समुच्चिन्नक्रियं नाम “चतुर्थे” चौथा ध्यान कहते हैं, कैसा वो ध्यान है ? कि मुक्ति महिलका द्वार (दरवाजे) समान है

अथ शिष्यके करे दो प्रश्न कहते हैं, शिष्य पूछता है कि हे प्रभु ! वेद के दोतें दूथां अयोगी क्यों कर हो सका है ? यह प्रथम प्रश्न, तथा जे कर सर्वथा काय योगका अज्ञाव हो गया है, तब वेदके अज्ञावसें ध्यान क्यों कर घटेगा ? यह दूसरा प्रश्न है

अथ आचार्य इन दोनों प्रश्नोंका उत्तर देते हैं, आचार्य कहता है, कि जो शिष्य ! अत्र अयोगी गुणस्थानमें सूक्ष्म काययोगके दोतेंनी अयोगी कहते हैं, किस वास्ते ? कि १ काययोगके अति सूक्ष्म होनेसें सूक्ष्मक्रिया रूप होनेसे अरु वो काययोग शीघ्रही क्षय होनेवाला है, तथा कायके

कार्य करणोंमें असमर्थ होनेसे कायके होतेजी अयोगी है, तथा शरीराश्रय होनेसे ध्यानजी है, इस वास्ते विरोध नहीं किसके? कि अयोगी गुणस्थानवर्ती जगवत् परमेश्विके कैसे परमेश्वी जगवत्के? कि निज शुद्धात्मचिद्रूप तन्मयपणे उत्पन्न, निर्जर, परमानन्द विराजमानके विरोध नहीं

अथ ध्यानका निश्चय व्यवहारपणा कहते हैं तत्त्वसें निश्चय नयके मतसें आत्माही ध्याता, आत्माही करणरूप है, आत्माही कर्मरूपतापन्नकों ध्याता है, तिससेंती अन्य जो कुछ उपचाररूप अष्टांग योग प्रवृत्तिज्ञान, सो सर्वही व्यवहार नयके मतसें जाननां

अथ अयोगी गुणस्थान वर्तीका उपात्य समयका कृत्य कहते हैं केवल चिद्रूपमय आत्मस्वरूपका धारक योगी, अयोगी, गुणस्थानवर्तीही स्फुट प्रगट उपात्य समयमें शीघ्र युगपत् समकाल बहुतरि कर्मप्रवृत्ति कृत्य करता है, सो यह है, कि देह पांच, अर्थात् शरीर पांच, वधन पांच, सघात पांच, अगोपांग तीन, सस्थान ठे, वर्णपंचक, रसपंचक, संहनन पट्क, अधिर षट्क, स्पर्शाष्टक, गंध दो, नीचगोत्र, अगुरुलघुचतुष्क, देवगति, देवानुपूर्वी, खगतिद्विक, प्रत्येकत्रिक, सुस्वर, अपर्याप्तनाम, निर्माणनाम, दोनोमेंसू कोइजी एक वेदनी यह सर्व बहुतर कर्म प्रवृत्ति, मुक्तिपुरीके द्वारमें अर्गलजूनत है, सो उपात्यसमय द्विचरम समयमें कृत्य करता है

अथ अयोगी अंत समयमें जौनसी प्रवृत्ति कृत्य करके जो कुछ करता है, सो कहते हैं सो अयोगी अंत समयमें एकतर वेदनी, आदेयत्व, पर्याप्तत्व, त्रसत्व, बावरत्व, मनुष्यायु, यशनाम, मनुष्यगति, मनुष्यापूर्वी, सौभाग्य, उच्चगोत्र, पंचेंद्रियत्व, तीर्थकरनाम यह तेरा प्रवृत्ति कृत्य करके उसी समयमें सिद्धपर्यायकों प्राप्त होता है सो सिद्ध परमेश्वी, सनातन जगवान् शाश्वत लोकांतके पर्यंतकों जाता है तथा अयोगी गुणस्थानस्थ जीव अबधक है, तथा एकतर वेदनी, आदेय, यश, सुजग, त्रसत्रिक, पंचेंद्रियत्व, मनुष्यगति, मनुष्यायु, उच्चगोत्र, तीर्थकरनाम, यह बारह प्रवृत्ति वेदता है अतके दो समयसे पहिलां पंचासीकी सत्ता रहती है, उपात्य समयमें तेरह प्रवृत्तिकी सत्ता रहती है, अरु अंत समयमें सत्ता रहित होता है ॥ इति अयोगी चतुर्वश गुणस्थान स्वरूप ॥१४॥

आशका -“ नि कर्म ” ( कर्म रहित ) आत्मा, तिस समयमें लोकांत में कैसे जाता है ? इत्याशक्याह

समाधान -सिद्ध, कर्म रहितकी ऊर्ध्वगति होती है, “कस्मात् ” किस हेतुसे होती है ? तत्राह ॥ पूर्व प्रयोगसे अचिंत्य आत्मवीर्य करके उपात्य दो समयमें पचासी कर्म प्रकृतिके कृत्य करने वास्ते पूर्वे जो व्यापार प्रारंभ किया था, तिससें तो ऊर्ध्वगति होती है, यह प्रथम हेतु है तथा कर्मकी सगति रहित होनेसे ऊर्ध्वगति होती है, यह दूसरा हेतु है तथा गाढतर बंधनों करके रहित होनेसे ऊर्ध्वगति होती है, यह तीसरा हेतु है तथा कर्म रहित जीवका ऊर्ध्वगमन स्वभाव है, यह चौथा हेतु है यह चार हेतु, चार दृष्टांत करके सहित कहते हैं १ जैसे कुंजकारका चक्र पूर्व प्रयोगसे फिरता है, तैसे आत्माकी पूर्वप्रयोगसे ऊर्ध्वगति होती है, २ तथा जैसे माटीके छेपसे रहित होने करके तूबकी जलमें ऊर्ध्वगति होती है, तैसेही अष्टकर्मरूप छेपकी सगतिसे रहित धर्मास्तिकाय रूप जल करके आत्माकी ऊर्ध्वगति होती है, ३ तथा जैसे एरुफल बीजादि बंधनों से छुटा हुआ ऊर्ध्वगतिगामी होता है, तैसेही कर्मबंधके विच्छेद होनेसे सिद्धकीनी ऊर्ध्वगति होती है ४ तथा जैसे अग्निका ऊर्ध्व ज्वलन स्वभाव है तैसेही आत्माका नी ऊर्ध्वगमन स्वभाव है

अथ अथा अरु तिर्थांगनि कर्म रहितको नहीं होती है, यह बात कहते हैं सिद्धकी आत्मा, कर्म गौरवके अभावसे नीचेको नहीं जाती, तथा प्रेरक कर्मके अभावसे आत्मा, तिर्थांगनी नहीं जाती है, तथा कर्म रहित सिद्ध, लोकके उपरजी धर्मास्तिकायके न होनेसे नहीं जाता, क्योंकि ? लोकमेनी जीव, पुत्रजके चलनेमें धर्मास्तिकाय गतिका हेतु है मत्स्यादिकोंको जैसे जल है सो धर्मास्तिकाय अलोकमें नहीं इस वास्ते अलोकमें सिद्ध नहीं जाते

॥ अथ सिद्धोंकी स्थिति ॥ यथा सिद्ध शिलासें उपरि लोकांतमें सिद्ध रहते हैं, सा कहते हैं ईषत् प्राग्जाराणामा सिद्धशिला चोद रङ्गलोकके मस्तकके उपरि व्यवस्थित है, उसको सिद्धोंके निकट होने करके सिद्ध शिला कहते हैं, परंतु सिद्ध कुछ उस शिलाके उपर बैठे हुए नहीं हैं, सिद्ध तो उस शिलासें उचे लोकांतमें विराजमान हैं वो शिला कैसी है ? कि मनोहा मनोहारिणी है, फेर वो शिला कैसी है ? सुरजि कर्पूरसेंनी अ

धिक सुगन्धिवाली है, अरु कोमल है, सूक्ष्म है अवयव जिसके फेर वो शिला कैसी है ? पुष्पा, पवित्र, परमजासुरा, प्रकृष्ट तेजवाली है, मनुष्यक्षेत्र प्रमाण लंबी चौड़ी है, श्वेत उत्रके आकार है, उत्तान उत्राकार है, उसका बड़ा छत्र रूप है, वो ईषत् प्राग्जारा नामा पृथ्वी सर्वार्थ सिद्ध विमानसें बारा योजन उपरि है, अरु वो पृथ्वी, मध्य जागमें आठ योजनकी मोटी है, तथा प्रांतमें घटती घटती महीके पांखसें नी पतली है, तिस शिलाके उपरि एक योजन लोकांत है, उस योजनका जो चौथा कोस है, उस कोसके ठे जागमें सिद्धोंकी अवगाहना है, सोइ दो हजार धनुष प्रमाण कोशके ठे जागमें तीन सौ तेत्तीस धनुष अरु बत्तीस अंगुल होता है, उतनी सिद्धोंके आत्मप्रदेशोंकी अवगाहना है

अथ सिद्धोंके आत्मप्रदेशोंकी अवगाहनाका आकार लिखते हैं जैसें कुवाली (मूषा) तिसमें मोम जरकें गालिये, तिसके गलनेसें जो आकाशका आकार है, तैसा सिद्धोंका आकार है

अथ सिद्धोंके ज्ञान दर्शनका विषय लिखते हैं त्रैलोक्योदरवर्त्ती च उदह रज्ज्वात्मक लोकमें जो गुणपर्याय करके सयुक्त वस्तु है, तिन जीवा जीव पदार्थोंको सिद्धमुक्त जानते हैं, सामान्य रूप करके देखते हैं, विशेष रूप करके जानते हैं, क्योंकि वस्तु जो है, सो सर्व सामान्य विशेषात्मक हैं

अथ सिद्धोंके आठ गुण कहते हैं ? जिस हेतुसें सिद्धोंको ज्ञानावरण कर्मके ह्य होनेसें केवलज्ञान प्रगट हुआ है, तथा २ सिद्धोंको दर्शनावरण कर्मके ह्य होनेसें दर्शन अनतां हुआ है, तथा ३ सिद्धोंको छद्म, सम्यक्त्व चारित्र ह्यायिकरूप दूये हैं, किस हेतुसें दुये हैं ? कि दर्शन मोहनीय औ चारित्र मोहनीयके ह्य होनेसें दूये हैं, तथा ४ सिद्धोंको अनत अक्षयसुख अरु ५ अनत वीर्य शक्ति दूये हैं, किस हेतुसें दूये हैं ? कि वेदनी कर्मक्षय होनेसें अनत सुख दूये हैं, अंतराय कर्मके ह्य होनेसें अनत वीर्य प्रगट हुआ है तथा ६ सिद्धोंकी अक्षयगति दुइ है, किस हेतुसें ? कि आशु कर्मके ह्य होनेसें दुइ है, तथा ७ नामकर्मके ह्य होनेसें अमूर्त्तपणा सिद्धोंको प्रगट जया है, तथा ८ गोत्रकर्मके ह्य होनेसें सिद्धोंकी अनतावगाहना है

अथ सिद्धोंका सुख कहते हैं, जो सुख, चक्रवर्त्तीकी पदवीका, अरु जो



सुख, इंद्रादि पदवीका है, तिनसेंजी सिद्धोंका सुख अनंत गुण है, कैसा वो सुख है ? कि क्लेश रहित है “अविद्यास्मितता” राग, द्वेष, अजिनिवेश, ए क्लेश हैं, सो जिनमें नही है, फेर कैसा है सुख ? “अव्ययं न व्येति स्वस्वजावसेंती इति अव्ययं”

अथ तिन सिद्ध जगवतोंने जो पाया है, तिसका सार कहते हैं सिद्ध जगवतोंने परम पद पाया है, सो कैसा परम पद पाया है ? जो आराधकों को आराध्य है, सो पद पाया है, तथा जो पद, साधकोंने सम्यग् दर्शनज्ञान चारित्रादि करके साधीये हैं, तथा जो पद, ध्यायकोंको ध्येय है, तथा जो पद, सदाही नानाविध ध्यानोपाय करके ध्याये है, तथा जो पद, अनव्य जीवोंको सदा दुर्लभ है, अरु कितनेक नव्य जीवोंकोजी दुर्लभ है, अरु दुर्लभोंको कष्टसें प्राप्त होता है, असा दुर्लभ पद, तिन सिद्ध जगवतोंने पाया है सो पद कैसा है ? कि तत्परम पद है, चिदानंदमय चिद्रूप परमानंद रूप है

अथ मुक्तिका स्वरूप कहते हैं कोइ वादी अत्यन्ताऽज्ञावरूप मोक्ष मानते हैं, सो बौद्धोंकी मोक्ष है अरु कोइ वादी जडमयी, ज्ञान अज्ञावमयी मोक्ष मानते है, सो नैयायिक वैशेषिक मत वाले हैं अरु कोइक वादी मोक्ष हो कर फेर सत्सारमें अवतार लेना, फेर मोक्षरूप हो जाना, ऐसी मोक्ष मानते है, सो आजीवका मतवाले हैं ? अरु कोइ तो क्लिष्ट कर्म करके विषय सुखमय मोक्ष मानते हैं वे कहते हैं, कि मोक्षमें जोग करने वास्ते बहुत अप्सरा मिलती हैं, और खाने पीनेको बहुत वस्तु मिलती है, तथा पान करनेको बहुत अच्छी मक्खिरा मिलती है, और रहनेको सुंदर बाग मिलता है, इत्यादि तथा कोइक वादी कहते हैं कि मोक्ष, जीवकी क्वापि नहीं होती है, यह जैमिनीमुनिका मत है तथा कोइ खरड ज्ञानी ऐसे कहते हैं कि जो वेदोक अनुष्ठान करता है, वो सर्वथा उपाधि रहित तो नहीं होता, परंतु छान पुण्यफलसें सुंदर वेद पा कर ईश्वर के साथ मिल कर कितनेक कल्पों लगे सुख जोग करता है, जहां इच्छा होवे, तहां उड़ कर चला जाता है फेर सत्सारमें जन्म लेता है, फेर पूर्ववत् सुखजोग करता है, इसी तरें अनादि अनंतकाल लगे करता रहेगा, परंतु एक जगे स्थित न रहेगा, ऐसी मोक्ष कहता हैं अरु सर्वज्ञ यह त परमेश्वरनें तो सत्तरूप, ज्ञानदर्शनरूप, तथा असारनूत जो यह सत्सार

है, तिस्रें सारनूत, निस्सीम आत्यतिक सुखरूप, अनंत, अतींद्रियानंद अनुभवस्थान, अप्रतिपाति, स्वस्वरूपावस्थानरूप, मोक्ष कही है ॥ यह बृहज्जघीष श्रीवज्रसेनसूरिके शिष्य श्रीहेमतिलकसूरिपट्टप्रतिष्ठित श्रीरत्नशेखरसूरिने चौदह गुणस्थानकका स्वरूप लिखा है, तिसके अनुसारें नापामय किंचित् गुणस्थानकस्वरूप, मैंने लिखा है

प्रश्न — हे जैन ! तुमने सर्ववादीयोंकी कही दुः मोक्षकों तो अनुपादेय समजी, अरु अर्द्धैतकी कही दुः मोक्ष, उपादेय समजी, इनमें क्या हेतु है ?

उत्तर — हे जय्य ! इन सर्व वादीयोंकी मोक्ष, पीछें पट् दर्शनके निरूपणमें लिख आये हैं, सो जान लेनी क्यों कि इन वादीयोंकी कही मोक्ष ठीक नहीं, कारण कि जब अत्यन्ताज्ञावरूप मोक्ष होवे, तब तो आत्माहीका अज्ञाव हो गया, तो फेर मोक्षफल किसको होवेगा ? ऐसा कौन है जो आत्माके अत्यन्ताज्ञाव होनेमें यत्न करे ? तथा जो ज्ञानाज्ञावको मोक्ष मानते हैं, सोनी ठीक नहीं क्यों कि जब ज्ञानही न रहा, तब तो पाषाण नी मोक्षरूप हो गया, तो ऐसा कौन प्रेक्षावान् है, जो अपनी आत्मा को जड़ पाषाण तुल्य बनाना चाहे ? तथा जो सर्व व्यापी आत्माको मोक्ष मानते हैं, अर्थात् जब आत्माकी मोक्ष होती है, तब आत्मा सर्व व्यापी मोक्षरूप होती है, यह नी कदना प्रमाणाननिज्ञ पुरुषोंका है, क्योंकि आत्मा किसी प्रमाणसेनी सर्वलोकव्यापी सिद्ध नहीं हो सकती है, इसकी विशेष चर्चा देखनी होवे, तब साक्षादरत्नाकरावतारिका देख लेनी तथा जो मोक्ष हो कर फेर ससारमें जन्म लेना, फेर मोक्ष होना, यह तो मोक्षनी काहेकी ? यह तो नागोंका सांग दूआ, इस वास्ते यहनी ठीक नहीं अरु जो मोक्षमें स्त्रीयोंके योग मानते हैं, सो विषयके लोलुपी हैं, तथा जो खरडझानीने मोक्ष कही है, सो अप्रामाणिक है, किसी प्रमाणसे सिद्ध नहीं है इस वास्ते जो अर्द्धैत सर्वज्ञने मोक्ष कही है, सो निर्दोष है इति सक्षेपसे ज्ञानस्वरूप कहा ॥ इति श्रीतपगङ्गीये मुनिश्री ६ गणिविजय तच्चिष्य मुनि श्रीबुद्धिविजय तच्चिष्य मुनि आत्मराम आनन्द विजयविरचिते जैनतत्त्वादर्श धर्मतत्त्वनिरूपणाधिकारे चतुर्विंश गुणस्थान ज्ञाननिर्णयनामा षष्ठ परिच्छेद संपूर्ण ॥ ६ ॥

## ॥ अथ सप्तम परिच्छेद प्रारंभः ॥

यह परिच्छेदमें सम्यग्दर्शनका स्वरूप लिखते हैं। इन सम्यग् दर्शनका स्वरूप कबुक उपर लिखनी आये है, तोनी नव्य जीवोंके जानने वास्ते कबुक सम्यक्त्वका स्वरूप लिखते हैं। यह सम्यक्त्वके दो नेद हैं। एक व्यवहारसम्यक्त्व, अरु दूसरा निश्चयसम्यक्त्व, जो यथार्थतत्त्वरूप विज्ञानपूर्वक रुचि है, तिसका नाम सम्यक्त्व कहते हैं। सो सम्यक्त्व, तीन तत्त्वकी यथार्थ रुचि होनेसे होता है, सो तीन तत्त्व यह हैं, कि एक देव तत्त्व, दूसरा गुरुतत्त्व, तीसरा धर्मतत्त्व। इनकेविषे श्रद्धा (प्रतीति) जो पुरुष करे, सो सम्यक्त्ववान् होता है। तिस श्रद्धाके दो नेद हैं। एक व्यवहार, दूसरा निश्चय। इन दोनों श्रद्धायोंमें प्रथम व्यवहार श्रद्धाका स्वरूप लिखते हैं।

व्यवहारश्रद्धामें देव तो श्री अरिहत जिसका स्वरूप, प्रथम परिच्छेदमें लिख आये हैं, सो सर्व इहां जान लेना तथा तिस अरिहतके चार निक्षेप अर्थात् स्वरूप है, सो कहते हैं। १ नामनिक्षेप, २ स्थापनानिक्षेप, ३ इन्द्रियनिक्षेप, ४ नावनिक्षेप। इन चारोंका स्वरूप विस्तार पूर्वक देखना दो वे, तदा विशेषावश्यक देख लेना। तिनमें प्रथम, नाम श्रद्धेत, सो “नमो अरिहताय” ऐसा कहना, इस पदका जाप करके अनेक जीव सत्तार स मुझको तर गये हैं। तथा दूसरा स्थापनानिक्षेप, सो अरिहतकी प्रतिमा समस्त दोषके चिन्होंसे रहित, सहज, सुजग, समचतुरस्रसंस्थानवाली, पद्मासन, तथा कायोत्सर्गमुद्रारूप जो जिनबिंब, तिसको देख कर, तिसकी सेवा, पूजा करके अनंत जीव मोक्षको प्राप्त हुये हैं।

प्रश्न—अरिहतकी प्रतिमाको पूजणी, तथा उसको नमस्कार करणी, और स्थापना, निक्षेप, मान कर मुक्तिकी दाता समझणी, यह नि केवल मूर्खताइके चिन्ह है, क्यों कि प्रतिमा जडरूप क्या दे सकती है ?

उत्तर—हे नव्य ? तू किसी शास्त्रको परमेश्वरका रचा हुआ मानता है, या नहीं ? जे कर तू शास्त्रको परमेश्वरका वचन मानता है, अरु उस शास्त्रको सच्चा सत्तार समुझसे पार उतारने वाला मानता है, तब जिन प्रतिमाके माननेमें क्यों लज्जा करता है ? क्योंकि जैसा शास्त्र जडरूप है, उसमें स्याही अरु कागज रूप वर्जके और कुठनी नहीं है, तैसी जि

नप्रतिमाजी है, जे कर कहोगे कि कागजों उपर स्याहीके अक्षर संस्था नसयुक्त लिखे जाते हैं, उनके वाचनेसे परमेश्वरका कहनां मालुम हो जाता है, तब इसी तरें परमेश्वरकी मूर्ति देखनेसेंजी परमेश्वरका स्वरूप मालुम होता है

प्रश्न—प्रतिमाके देखनेसें अर्द्धत स्वरूप तो स्मरण होता है, परंतु प्रतिमाकी नक्ति करनेसें क्या जान है ?

उत्तर—शास्त्रके श्रवण करनेसें परमेश्वरके वचन तो मालुम हो गये, तो जी नक्त जन जैसे शास्त्रकों उच्चस्थानमें रखते हैं, कोइ शिर ऊपर छे कर फिरते हैं, कितनेक गलेमें लटका रखते हैं, और कितनेक मजी उपर, कितनेक चौकी आदि उपर शास्त्रोंको सुंदर सुंदर रुमालोमें लपेटके रखते हैं, और नमस्कारादि करते हैं, ऐसेंही जिनप्रतिमाकी नक्ति, पूजाजी जान लेनी

प्रश्न—जैसें पञ्चरकी गायसें दूधकी गरज पूरी नहीं होती है, ऐसें प्रतिमासेंजी कोइ गरज पूरी नहीं होती, तो फेर प्रतिमाको काहे को मानना चाहिये ?

उत्तर—जैसें कोइ पुरुष सुखसें गौ, गौ, सच्ची गौ कहता है, उस कहने से उसका बरतन क्या दूधसें जर जाता है ? अर्थात् नहीं जरता है ऐसें परमेश्वरके नाम लेने और जाप करनेसेंजी कुछ नहीं मिलता इस वास्ते परमेश्वरका नामजी न लेना चाहिये

प्रश्न—परमेश्वरका नाम लेनेसें तो हमारा अत करण शुद्ध होता है उत्तर—ऐसेंही श्रीजिनप्रतिमाके देखनेसेंजी परमेश्वरके स्वरूपका बोध होता है, ताते अत करणकी शुद्धि इहांजी तुल्यही है

प्रश्न—परमेश्वरके नाम लेनेसें पुण्य है, तो फेर प्रतिमा काहेको पूजनी ?

उत्तर—नामसें ऐसें शुद्धपरिणाम नहीं होते, जैसें स्थापना देखनेसें होते है क्यों कि ? जैसें किसी सुंदर यौवनवती स्त्रीका नाम लेनेसें राग जागता है, अरु जब उस सुंदर यौवनवती स्त्रीकी मूर्ति प्रगट सर्वाकार वा जी सन्मुख देखीये, तब अधिकतर विषयरोग उत्पन्न होता है, इसी वास्ते श्रीदशवैकालिकसूत्रमें लिखा है, “चित्तजित्ती न निज्जाए नारी वासुलकि यं” अर्थात् स्त्रीके चित्रामकी जीत देखेसेंजी विकार उत्पन्न होवेगा यह बात तो प्रगट (प्रसिद्ध) है, कि रागीकी मूर्ति देखनेसें राग उत्पन्न हो

ता है, तथा कोक शास्त्रोक्त स्त्री पुरुषके विषय सेवनके चौरासी चिन्ह दे खनेसे तत्काल विकार उत्पन्न होता है, ऐसेही निर्विकार स्थापनारूप शांतमुद्रा, श्रीवीतरागकी देखनेसे निर्विकार शांतिभाव उत्पन्न होता है, और सा नाम लेनेसे नहीं होता है

प्रश्न—जैसे किसी स्त्रीके चर्चरका नाम देवदत्त है, सो जब देवदत्त मर गया, तब तिसकी स्त्रीने अपने जरतार देवदत्तकी मूर्ति बनाई है, उस मूर्तिसे उस स्त्रीका सुहाग तथा सतानोत्पत्ति तथा काम इच्छा नहीं होती है, इसी तरे जगवान्की मूर्तिसेनी कुछ लाभ नहीं है

उत्तर—देवदत्तकी स्त्री देवदत्तके मरे पीछे आसन बिठाय कर देवदत्त के नामकी माला फेरे, तब उस स्त्रीका सुहाग नहीं रहता, तथा जरतार का नाम लेनेसे सतानोत्पत्तिनी नहीं होती? तथा कामेच्छाभी पूरी नहीं होती? इसी तरे जो कहेंगे तब तो जगवान्के नाम लेनेसेनी कुछ सिद्धि नहीं होगी इस दृष्टांतसे तो जगवान्का नामनी न लेना चाहिये

प्रश्न—प्रतिमा तो कारीगर बनाता है, उस कारीगरकोनी पूजना चाहिये?

उत्तर—वेदादि शास्त्रकोनी लिखारी लिखते हैं, उनकोनी पूजना चाहिये? तथा साधुके मात पिताकोनी साधुसे अधिक पूजना चाहिये?

प्रश्न—स्थापना कोइनी इस कालमें बुद्धिमान् नहीं मानता है

उत्तर—बुद्धिमान् तो सर्व मानते हैं, परंतु मूर्ख नहीं मानते हैं

प्रश्न—कौनसे बुद्धिमान् स्थापना मानते हैं? तिनोका नाम लेना चाहिये

उत्तर—प्रथम तो सांसारिक विद्यावाले सर्व बुद्धिमान्, जूगोल, खगोल,

द्वीप, अर्थात् युरोपखण्डमें विलायत प्रमुखका चित्र सर्व, स्थापनारूप मानते हैं, और बनाते हैं, तथा जो ककार आदि अक्षर हैं, वे सर्व पुरुषके (ईश्वरके) शब्दकी स्थापना करते हैं, तथा जैनीयोके मतमें एक सौ आठ मणिये, मालामें रखते हैं, परंतु अधिक न्यून नहीं रखते हैं, इसका हेतु यह है, कि जैन, बारह गुण तो अरिहत पदके मानते हैं, अरु आठ गुण, सिद्ध पदके मानते हैं, तथा ठीस गुण, आचार्यपदके मानते हैं, तथा पच्चीस गुण, उपाध्याय पदके मानते हैं, तथा सत्ताइस गुण, मुनि साधु पदके मानते हैं यह सर्व मिला कर एक सौ आठ गुण होते हैं इस वास्ते जैनीयोके मतमें मालामें जो मणिये हैं, सो एकेक मणिया एके

क गुणकी स्थापना है यह मालाजी स्थापना है, इसी तरें दूसरे म तोमेंनी जो माला तसबी है, सो सर्व किसीनकिसी वस्तुकी स्थापना है नहीं तो एक सौ आठ तथा एक सौ एकका नियम न चाहियें तथा पादरी लोकोंकीनी ढापी दूइ पुस्तकोंके उपर ईशामसीहकी मूर्ति व स बखतकी ढापी दूइ है, जिस अवसरमें मसीहकों शूली उपर देनेकों छे जाते थे, उस मूर्तिके देखनेसे ईशामसीहकी अवस्था सर्व मालुम होती है, बस, स्थापनाका यही तो प्रयोजन है, कि जो उसके देखनेसे असली वस्तु का स्वरूप याद (स्मरण) हो जाता है आश्चर्य तो यह है कि अब (इस कालमें) कितनेक तुष्टबुद्धिवाले अपनी बनाई पुस्तकमें यज्ञशाला तथा यज्ञोपकरणकी स्थापना अपने हाथोंसे करके अपने शिष्योंको जनाते हैं, जो यज्ञोपकरण इस आकृतिके चाहियें, फेर कहते हैं कि हम स्थापनाकों नहीं मानते हैं अब विचार करना चाहियें कि इनसेंनी कोइ अधिक मूर्ख जगत्में है ? जो आप तो स्थापना करते हैं अरु फेर कहते हैं कि हम स्थापनाकों नहीं मानते हैं, इस वास्ते जो पुरुष अपने शास्त्रके उपदेशकों वेदधारी मानेगा, वो अवश्य उसकी मूर्तिकूनी मानेगा, अरु जो अपने शास्त्रके उपदेष्टाओं वेद रहित मानते हैं, वेनी थोड़ी बुद्धि वाले हैं क्योंकि जिसके वेद नहीं, वो शास्त्रका उपदेष्टा कदापि नहीं हो सका है, कारण कि वेद रहित दोनों अरु शास्त्रका उपदेश देने वालानी दोनों, इस बातमें कोइनी प्रमाण नहीं है अरु निराकार सर्वव्यापी परमेश्वरका ध्याननी कोइ नहीं कर सका है जैसे आकाशका ध्यान नहीं हो सका है इस वास्ते अछारह द्रुपणसे रहित जो परमेश्वर है, तिसको मूर्ति अवश्य माननी पूजनी चाहियें सो ऐसा देव तो अर्हंतही है, इस वास्ते अर्हंतकी प्रतिमा माननी चाहियें परंतु किसी छुबुद्धिके कुहेतुओंसे ठोडनी न चाहियें ॥ इति स्थापना निरूपेण दूसरा

अब तीसरा इव्यनिरूपेण, सो जिस जीवने तीर्थंकर नामकर्मका निकाचित वध कीना है, तिस जीवमें जावि गुणोंका आरोप अर्थात् ऐसा आगेंकों तीर्थंकर जगवान् होवेगा ? ऐसा वर्तमानमें आरोप करके वदन (नमस्कार) पूजन करके, थनेक जीव, मोक्षको प्राप्ति दूये है

चौथा जावनिरूपेण, सो जो वर्तमान कालमें सीमधर प्रमुख तीर्थंकर

केवलज्ञानसंयुक्त समवसरणमें विराजमान नव्यजीवोंके प्रतिबोधक चतुर्विध सघके स्थापक, सो जाव अर्हत इनके चरण कमलकी सेवा करके अनेक जीव मोक्ष होते हैं, यह जावनिक्षेप है यह चार निक्षेप करके संयुक्त, ऐसा जो अरिहंत देवाधिदेव, महा गोप, महा माहण, महा निर्यामक, महा सार्थवाह, महा वैद्य, महा परोपकारी, करुणासमुद्, इत्यादि अनेक उपमा लायक सो नव्य जीवोंके अज्ञानाधिकार दूर करणोंको सूर्य समान, प्रमाण करके अविरोधि जिसके वचन हैं, औ मुनिमनमोहन, योगीश्वर, चिदानन्द धनरूप, ऐसे अरिहंतको मैं देव, अर्थात् परमेश्वर करिके मानता हूँ, तिसकी सेवा करूँ, तिसकी आज्ञा शिर धरूँ, ऐसा जो माने, सो प्रथम व्यवहारशुद्ध देवतत्त्व है

दूसरा निश्चयशुद्ध देवतत्त्व कहते हैं जो शुद्धात्मस्वरूपको अनुभव करेगा, सो शुद्धात्मस्वरूपही निश्चयदेवतत्त्व है, कैसा है वो आत्मस्वरूप? कि पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, आठ स्पर्श, शब्द, क्रिया, इनमें से रहित, तथा योगसे रहित, अतीन्द्रिय, अविनाशी, अनुपाधि, अवधी, अक्लेशी, अमूर्ति, शुद्धचैतन्य, ज्ञान, दर्शन, चारित्र्य आदि अनंत गुणोंका जाजन, सच्चिदानन्दस्वरूपी ऐसी मेरी आत्मा है, सोऽ निश्चयदेव है

अथ दूसरा गुरुतत्त्व कहते हैं तिसकेनी दो जेव हैं, एक शुद्धव्यवहारगुरु, दूसरा शुद्ध निश्चयगुरु उसमें शुद्धव्यवहारगुरुका स्वरूप तो गुरुतत्त्वनिरूपण परिच्छेदमें लिख आये हैं, तहांसे जान लेना, ऐसे साधुको गुरु करके माने ऐसे गुरुकी आज्ञासे प्रवर्त्ते, ऐसे मुनिकों पात्र बुद्धि करके शुद्ध अन्नादिक देवे इति व्यवहार शुद्धगुरुतत्त्व । तथा निश्चयगुरुतत्त्व तो शुद्धात्म विज्ञानपूर्वक है, जो हेयोपादेय उपयोगयुक्त परिहार प्रवृत्तिज्ञान, सो निश्चयगुरुतत्त्व है

अथ तीसरा धर्मतत्त्व कहते हैं धर्मतत्त्वकेनी दो जेव हैं, एक व्यवहारधर्मतत्त्व, दूसरा निश्चयधर्मतत्त्व तिनमें जो व्यवहाररूप धर्म है, सो दयामुख्य है कर्णों कि जो सत्यादि व्रत हैं, सो सर्व दयाकी रक्षा वास्ते हैं, इस वास्ते दयाका स्वरूप लिखते हैं यह दयाके आठ जेव हैं, सो कहते हैं १ इव्यदया, २ जावदया, ३ स्वदया, ४ परदया, ५ स्वरूपदया, ६ अनुपपदया, ७ व्यवहारदया, ८ निश्चयदया

१ तहां इव्यदया यसकों कहते हैं, कि जो यज्ञ पूर्वक सर्व काम करे, यह तो जैनमतवालेके कुलका धर्म है, सर्व जैन लोक, पाणी ठा नके पीते हैं, औ अन्न शोधके खाते हैं, जे कर कोइ जैनी ठल (कपट) करता है, फूव बोलता है, औ विश्वासघात करता है, वो पापी जीव है, सो जैनमतकों कलकित करता है, वो सर्व उस जीवकाही दोष है, परंतु उसमें जैनधर्मका कुछ दोष नहीं है, जैनधर्म तो ऐसा पवित्र है, कि जिसमें कोइनी अनुचित उपदेश नहीं है, यह बात सर्व सुहा जनकों विदित है, इस वास्ते जो काम करणां, सो यज्ञपूर्वक जीवरक्षा करके करे, सो इव्यदया है

२ दूसरी नावदया है, सो दूसरे जीवोंके गुणप्राप्ति वास्ते तथा ऊँ ति पढतेकों रक्षण वास्ते, अंत करणमें अनुकंपा बुद्धि सयुक्त जो परजीवकों हितोपदेश करनां, सो नावदया है

३ तीसरी स्वदया है, सो अपनी आत्मा अनादि कालसें मिथ्यात्व अष्टुं उपयोग, अष्टुं अज्ञानपूर्वक अष्टुं प्रवृत्ति, कषायादि नावशस्त्रों करी समय समयमें आत्माके ज्ञानादि गुणोंकी घातरूप नावप्राप्तियोंकी दिसा होती है, ऐसें जिनबचन सुननेसें पूर्वोक्त नाव शस्त्रोंका त्याग करके स्वसत्तामें प्रवृत्ति करके अष्टुं उपयोग धारके विषय कषायोंसें दूर रहनां, अरु अष्टुं, अष्टुं कर्मफलके उदयमें अव्यापक रहनां, अर्थात् सुखदुःख में हर्ष विषाद न करणां, प्रतिक्षण अष्टुं कर्मके निदान दूर करणोंकी जो चिंता, तिसका नाम स्वदया है इस स्वदयाकी रुचि वाला जीव अपनी परिणति अष्टुं करने वास्ते जिनपूजा, तीर्थयात्रा, रथयात्रा प्रमुख अष्टुं प्रवृत्ति करे, जिन गुण गावे, बहुमान करके असत् प्रवृत्तिसें घितकों दूटा करके तत्त्वालबी करे, पुञ्जावलबीपणां दूटावे, इस अष्टुंश्रवमें यद्यपि देखनेमें कितनेक जीवोंकी दिसा दीख पडती है, तोनी आत्माकी अष्टुं परिणति मिटनेसें आत्मा गुणग्राही हो जाती है, जब गुणग्राही नई, तब ज्ञानवान् हो गई इस वास्ते सर्व साधक जीवोंको यह स्वदया परम साधन है, इस स्वदयाके वास्ते साधुनी नवकटरी विदार करते हैं, औ उपदेश देते हैं, चर्चा करते हैं, तथा पूजन, प्रतिष्ठा स्तन करते हैं, यद्यपि न दी नाले वतरने पडत है, तहां योगोंकी अपलतासे आश्रय होता है, तोनी येत



न स्वरूपानुयायी रहता है, जिनाज्ञा पालता है, औ कषायस्थान मंद करता है, स्वच्छदता दूर करता है, तथा धर्मप्रवृत्तिकी वृद्धि करता है, यह स्वदयाके वास्ते शुनाश्रव साधुनी अपणे कल्प प्रमाणे आचरण करता है, परंतु यह आश्रव साधकदशामें बाधक नहीं है ॥ इति स्वदया ॥

४ चोथी परदया, सो जो ठै कायके जीवोंकी रक्षा करणी, जहां स्वदया है, तहां परदया तो नियम करके है, अरु जहां परदया है, तहां स्वदया की नजना है, अर्थात् होवेनी, नहींनी होवे

५ पांचमी स्वरूपदया, सो जो इहलोक परलोकके विषयसुख वास्ते तथा लोकोंकी देखा देखी करके जीवरक्षा करे, यह स्वरूप दया है इस दयासें विषय सुख तो मिल जाते हैं, परंतु मैरुक्त चर्णवत् सत्तारकी वृद्धि हो जाती है, यह देखनेमें तो दया है, परंतु जावे हिंसाही है

६ ठी अनुबधदया, सो आवक बड़े आम्बरसें मुनिकों बटना करने को जावे, तथा उपकार बुद्धिसें दूसरे जीवोंको सन्मार्गमें जाने वास्ते आक्रोश ( ताडनादि ) करे, कोइको शिक्षा देवे यहां देखनेमें तो हिंसा है, परंतु अतमें स्वपरको जानका कारण है, इस वास्ते ये दया है जैसें साधु, आचार्य, अपणे शिष्य शिष्यणीयोंको शिक्षा देता है, किसीको नून याद कराता है, तथा किसीको अनुचित कामसें मना करता है, किसीको एक बार कहता है, अरु किसीको बारवार शिक्षा देता है, किसी उपर क्रोध नी करता है, शासनके प्रत्यनीकको अपणी लब्धिसें दम देता है, इत्यादि कामोंमें यद्यपि हिंसा दीखती है, तोनी फल दयाका है इति अनुबधदया

७ सातमी व्यवहारदया, सो विधिमार्गानुयायी जीवदया पाले, सर्व क्रिया कलाप उपयोग पूर्वक करे, सो व्यवहार दया है

८ आठमी निश्चयदया, सो शुद्ध साध्य उपयोगमें एकत्व जाव, अनेदोपयोग साध्यजावमें एकताहान, सो जावदया. इस दयासेंती उपरिले गुण स्थानोंमें जीव चढता है, तिस वास्ते शरुष्ट है इत्यादि अनेक प्रकारसें दयाके स्वरूप, विज्ञानपूर्वक सूत्र, निर्युक्ति, जाष्य, चूर्णी, वृत्ति, इस पंचांगीसम्मत प्रत्यक्षादि प्रमाणपूर्वक नैगमादिनय, नामादि निक्षेप, सप्तजगी, ज्ञाननय, क्रियानय, तथा निश्चयव्यवहारनय, तथा दृष्ट्यार्थिक, पर्यायार्थिक, इत्यादि ठनय जावमें यथावसरें अर्पित, अनर्पित नयनिपु

१ तहां इव्यदया उसकों कहते हैं, कि जो यत्न पूर्वक सर्व काम करे, यह तो जैनमतवालेके कुलका धर्म है, सर्व जैन लोक, पाणी न के पीते हैं, औ अन्न शोधके खाते हैं, जे कर कोइ जैनी ठल (कपट) करता है, फुव बोलता है, औ विश्वासघात करता है, वो पापी जीव है, सो जैनमतकों कलकित करता है, वो सर्व उस जीवकाही दोष है, परंतु उसमें जैनधर्मका कुछ दोष नहीं है, जैनधर्म तो ऐसा पवित्र है, कि जिनमें कोइनी अनुचित उपदेश नहीं है, यह बात सर्व सुझ जनोंकों विदित है, इस वास्ते जो काम करणां, सो यत्नपूर्वक जीवरक्षा करके करणां, सो इव्यदया है

२ दूसरी नावदया है, सो दूसरे जीवोंके गुणप्राप्ति वास्ते तथा झूति पड़तेकों रक्षण वास्ते, अंत करणमें अनुकपा बुद्धि संयुक्त जो परजीवकों द्वितोपदेश करनां, सो नावदया है

३ तीसरी स्वदया है, सो अपणी आत्मा अनादि कालसें मिथ्यात्व अशुद्ध उपयोग, अशुद्ध श्रद्धानपूर्वक अशुद्ध प्रवृत्ति, कषायादि नावशस्त्रों करी समय समयमें आत्माके ज्ञानादि गुणोंकी घातरूप नावप्राणोंकी हिंसा होती है, ऐसे जिनबचन सुननेसें पूर्वोक्त नाव शस्त्रोंका त्याग करके स्वतन्त्रतामें प्रवृत्ति करके शुद्धोपयोग धारके विषय कषायोंसें दूर रहनां, अरु शुद्ध, अशुद्ध कर्मफलके उदयमें अव्यापक रहनां, अर्थात् सुखदुःख में हर्ष विषाद न करणां, प्रतिक्षण अशुद्ध कर्मके निदान दूर करणेकी जो चिंता, तिसका नाम स्वदया है इस स्वदयाकी रुचि वाला जीव अपनी परिणति शुद्ध करने वास्ते जिनपूजा, तीर्थयात्रा, रथयात्रा प्रमुख शुद्ध प्रवृत्ति करे, जिन गुण गावे, बद्धमान करके असत् प्रवृत्तिसें चित्तकों दृढ़ करके तत्त्वालंबी करे, पुज्यावलंबीपणां दृढ़ावे, इस शुद्धाश्रयमें यद्यपि देखनेमें कितनेक जीवोंकी हिंसा दीख पड़ती है, तोनी आत्माकी अशुद्ध परिणति मिटनेसें आत्मा गुणग्राही हो जाती है, जब गुणग्राही नई, तब ज्ञानवान् हो गई इस वास्ते सर्व साधक जीवोंकों यह स्वदया परम साधन है, इस स्वदयाके वास्ते साधुनी नवकल्पी विद्वार करते हैं, औ उपदेश देते हैं, चर्चा करते हैं, तथा पूजन, प्रतिष्ठा स्तन करते हैं, यद्यपि न दी नाखे उत्तरने पड़त है, तहां योगोंकी चपलतासे आश्रय होता है, तोनी चेत

हैं, सो मेरे ज्ञानमें क्षेत्र रूप है, परंतु मैं इन सर्वसं अन्य हूँ, ये मेरे न हीं हैं, मैं इनका नहीं, मैं इनका साथीजी नहीं, औ मैं अपने स्वरूपका स्वामी हूँ, मेरा स्वभाव सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप है, वर्णरहित, तथा गंधरहित, रस रहित, चैतन्य गुण, अनंत, अव्यावाय, अनंत दान, लाज, जोग, उपजोग वीर्यादिक अनंत गुण स्वरूप है तिनकी अक्षा नासन पूर्वक गुणस्वादिक रूप चिदानंद धन मेरा स्वभाव है, ऐसा जो मेरा पूर्णानंद स्वभाव, तिसके प्रगट करणे वास्ते सर्वशुद्ध व्यवहारनय निमित्तमात्र है, परंतु मुख्य तो मेरा स्वभाव जो है, तिसहीमें जो रमणता करणी, सोइ शुद्ध साधन है सोइ धर्म है, यद् निश्चय धर्म स्वरूप जानना॥ इति धर्मतत्त्व तीसरा॥

इन तीनों तत्त्वोंकी जो अक्षा, निश्चल परिणतिरूप, तिसकों सम्यक्त्व कहते हैं अरु जिस जीवकों इतना बोध न होवे, वो जीव जे कर ऐसों मनमें धारे, पक्षपात न करे, “तं सब निस्तक, ज जिणेहि पवेइयं इत्यादि” जो जिनेश्वर देवोंने कहा है अर्थ, सो सर्व निश्चित सत्य है, ऐसी तत्त्वार्थ अक्षाकोंनी सम्यक्दर्शन सम्यक्त्व कहते हैं, इस्में जो विपरीत होवे, तिसकों मिथ्यात्व कहते हैं, इस मिथ्यात्वका स्वरूप नव तत्त्वमें लिख आये हैं, तदांसें जान लेना, इस मिथ्यात्वकों त्यागे, तिसकों सम्यक्त्व कहते हैं इति व्यवहारसम्यक्त्व स्वरूप संपूर्ण ॥

अथ निश्चय सम्यक्त्वका स्वरूप लिखते हैं जो पूर्वे निश्चय देव, गुरु, और धर्मका स्वरूप कहा है, सोइ निश्चयसम्यक्त्व है चार अनतानुबधी, सम्यक्त्व मोह, मिश्रमोह, अरु मिथ्यात्व मोह, इन सातों प्रकृतिका उपशम करे, तथा क्षयोपशम करे, तथा क्षय करे, तिस जीवकों निश्चय सम्यक्त्व होती है परंतु निश्चय सम्यक्त्व परोक्ष ज्ञानविषय नहीं केवली जान सका है, जो इसके निश्चय सम्यक्त्व है, इस सम्यक्त्वके प्रगट जये जीव नरक अरु तिर्यच इन दोनों गतिका आशु नहीं बांधता है ॥ इति निश्चय सम्यक्त्वं संपूर्ण ॥

अथ सम्यक्त्वकी करणी लिखते हैं, नित्य योगवाइके मिले, अरु शरीरमें कोई विघ्न न होवे, तब जिनप्रतिमाका दर्शन करिकें पीछेसे नोजन करे, जे कर जिनप्रतिमाका योग न मिले, तो पूर्वदिशि तरफ मुख करके वरमान तीर्थकरोंका चैत्यवदन करे, अरु जे कर रोगादि कोई विघ्नसे दर्शन

एतासैं मुख्य गौण जावैं उन्नयनयसम्मत, शुद्धस्याद्वादशैली विज्ञानपूर्वक, श्रीसिद्धांतोक्त दान, शील, तप, जावनारूप शुन प्रवृत्ति, तिसका नाम शुद्ध व्यवहारधर्म कहिये हैं

तथा दूसरा निश्चयधर्म, सो अपणी आत्माकी आत्मताको जाणे, औ वस्तुके स्वभावको जाणे कि जो मेरी आत्मा है, सो शुद्ध चैतन्यरूप, असख्यातप्रदेशी, अमूर्ति, स्वदेहमात्रव्यापी, सर्व पुण्ड्रोंसैं निम्न अस्वर्ग, अलिप्त, हान, दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्य, अव्यावाध, सत्त्विदानशक्ति अन त गुणमयी, अविनाशी, अनुपाधि, अविकारी, ऐसी मेरी आत्मा है, सो इ उपादेय है इससैं विलक्षण जो परपुण्ड्रादिक सो मेरे नहीं तिस पुण्ड्र लके पांच विकार हैं, १ शब्द, २ रूप, ३ रस, ४ गंध, ५ स्पर्श. इन पांचोंके उत्तर जेद अनेक हैं इस लोकाकाशमें जो उद्योत, तथा अधकार तथा जो शब्द है, तथा सर्व रूपी वस्तुकी जो ढाया, रत्नकी कांति, छी त, धूप, नानाप्रकारके रूप, रंग, संस्थान, औ नाना प्रकारके सुगंध, डूर्ग ध, नाना प्रकारके रस, तथा सर्व सप्तारी जीवोंकी वेद, जाषा, औ मन के विकल्प, दश प्राण, बै पर्याप्ति, दास्य, रति, अरति, जय, शोक, जुष्ट प्ता, औ खुशी, उदासी, कषायद, दह, लडाइ, क्रोधादि, चार कषाय, तथा शाता, अशाता, उंच, नीच, निष्ठा, विकथा, तथा सर्व पुण्यप्रकृति, सर्व पापप्रकृति, तथा रीज, मोल, स्वीजना, खेद, तथा बै ज्ञेया, जानालान, यश, अपयश, मूर्ख, चतुरता, स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद, कामचेष्टा, गति, जाति, कुल इत्यादि आठ कर्मका विपाक फल, यह सर्व बातों जीवके अनुभवसैं सिद्ध हैं, अरु सूक्ष्मपुण्ड्र, इन्द्रिय अगोचर है, सो परमाणु आदि जेकें अनेक तरेंका है, इस पूर्वोक्त पुण्ड्रके सयोगसैं जीव चारों गतिमें नटकता है यह पुण्ड्र, मेरी जाति नहीं, इस पुण्ड्रका मेरे साथ कोइ वा स्तव सवध नहीं, औ यह पुण्ड्र सर्व त्यागने योग्य है, जो इस पुण्ड्रका ससर्ग है, सोइ सत्तार है, तथा इस पुण्ड्रकी सगतिसैं ज्ञान, दर्शन, चारि प्रादि गुण विगड जाते हैं, जो यह पुण्ड्र, इन्द्रियकी रचना है, सो मेरी आत्माका स्वभाव नहीं, तथा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, यह चारों इन्द्रिय द्वेष रूप है, इनसेनी मेरा स्वरूप अन्य है, अरु थौर जो सप्तारी जीव है, सो सर्व अपणी अपणी स्वभाव सत्ताके स्वामी

हैं, तो मेरे ज्ञानमें ज्ञेय रूप है, परंतु मैं इन सर्वसें अन्य हूं, ये मेरे न  
हीं हैं, मैं इनका नहीं, मैं इनका साथीजी नहीं, औ मैं अपने स्वरूपका  
स्वामी हूँ, मेरा स्वभाव सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप है, वर्णरहित, त  
था गंधरहित, रस रहित, चैतन्य गुण, अनंत, अव्याबाध, अनंत दान, ला  
ज, जोग, उपजोग वीर्यादिक अनंत गुण स्वरूप है तिनकी अज्ञा नासन  
पूर्वक गुणस्वाधिक रूप चिदानंद धन मेरा स्वभाव है, अैसा जो मेरा पू  
र्णानंद स्वभाव, तिसके प्रगट करणे वास्ते सर्वशुद्ध व्यवहारनय निमित्तमात्र  
है, परंतु मुख्य तो मेरा स्वभाव जो है, तिसहीमें जो रमणता करणी, सोइ शुद्ध  
साधन है सोइ धर्म है, यह निश्चय धर्म स्वरूप जानना॥ इति धर्मतत्त्व तीसरा॥

इन तीनों तत्त्वोंकी जो अज्ञा, निश्चल परिणतिरूप, तिसकों सम्यक्त्व  
कहते हैं अरु जिस जीवकों इतना बोध न होवे, वो जीव जे कर अैसे  
मनमें धारे, पक्षपात न करे, “तं सत्त्वं निस्तक, जं जिणेहि पवेइयं इत्यादि”  
जो जिनेश्वर देवोंने कहा है अर्थ, तो सर्व नि शकित सत्य है, अैसी त  
त्त्वार्थ अज्ञाकोंजी सम्यक्दर्शन सम्यक्त्व कहते हैं, इस्सें जो विपरीत हो  
वे, तिसकों मिथ्यात्व कहते हैं, इस मिथ्यात्वका स्वरूप नव तत्त्वमें लिख  
आये हैं, तहांसें जान लेना, इस मिथ्यात्वकों त्यागे, तिसकों सम्यक्त्व क  
हते हैं इति व्यवहारसम्यक्त्व स्वरूप संपूर्ण ॥

अथ निश्चय सम्यक्त्वका स्वरूप लिखते हैं जो पूर्वे निश्चय देव, गुरु,  
और धर्मका स्वरूप कहा है, सोइ निश्चयसम्यक्त्व है चार अनंतानुबधी,  
सम्यक्त्व मोह, मिश्रमोह, अरु मिथ्यात्व मोह, इन सातों प्रकृतिका उप  
शम करे, तथा ह्योपशम करे, तथा ह्य करे, तिस जीवकों निश्चय स  
म्यक्त्व होती है परंतु निश्चय सम्यक्त्व परोक्ष ज्ञानविषय नहीं केवली  
ज्ञान सका है, जो इसके निश्चय सम्यक्त्व है, इस सम्यक्त्वके प्रगट नये  
जीव नरक अरु तिर्यंच इन दोनों गतिका आयु नहीं बांधता है ॥ इति नि  
श्चय सम्यक्त्व संपूर्ण ॥

अथ सम्यक्त्वकी करणी लिखते हैं, नित्य योगवाइके मिले, अरु श  
रीरमें कोइ विघ्न न होवे, तब जिनप्रतिमाका दर्शन करिकें पीठसें चोजन  
करे, जे कर जिनप्रतिमाका योग न मिले, तो पूर्वदिशि तरफ मुख करकें व  
र्त्तमान तीर्थकरोंका चैत्यवदन करे, अरु जे कर रोगादि कोइ विघ्नसे दर्शन

न होवे, तो जिसका आगार है, उनका नियम नहीं टूटता है, थरु जगवान्के मंदिरमें मोटी दश आशातना न करे, यह दश आशातनाका नाम कहते हैं १ तंबोल पान, फल, प्रमुख सर्व खानेकी वस्तु जगवान्के मंदिरमें न खावे, २ पाणी, दूध, ढास, अर्क प्रमुख पीवे नहीं, ३ जिनमंदिरमें बैठके जोजन न करे, ४ जूती प्रमुख मंदिरके अंदर न ड्यावे, ५ रूपाविकसें मैथुन सेवे नहीं, ६ जिनमंदिरमें शयन न करे, ७ जिनमंदिरमें थूके नहीं, ८ जिनमंदिरमें लघुशका न करे, ९ जिनमंदिरमें विशा न जावे, १० जिनमंदिरमें जूआ, चोपट, सतरंज प्रमुख न खेले, ये दश आशातना टाळे, तथा ठळ्ठणी चौरासी आशातना वर्जे, तथा एक मासमें इतना फूल सेरादि चढा उ, अथेक मासमें इतना आदि घृत देऊ, (चढाऊ) एक वर्षमें इतना अंगनूदणं चढाव, वर्षमें इतना केशर, इतना चदन, इतना नीमसेनी बरास, कपूर प्रमुख जगवान्की पूजा वास्ते खरच करु, अपने धनके अनुसारें वर्ष प्रति धूप अंगरबत्ती, कपूर, चढाऊ वर्षमें अष्ट प्रकारी सत्तरे प्रकारी इतनीयां पूजा कराऊ तथा करु, और वर्षमें इतना रूपैया साधारण इव्यमें खरच, वर्षप्रति पूजावास्ते इतना इव्य खरचूं, दिन दिन प्रति एक नवक रवाली, अर्थात् माला, पंच परमेष्ठिमंत्रकी मोह्निमित्त जाप करूं, जेकर कोइ दिन न जपणं हो जावे, तो अगले दिन दूणा जाप करूं, परंतु रोगादि कारणें आगार है, दिन प्रति समर्थ होते नमस्कार संहित, अर्थात् दो घड़ी दिन चढे तक चार आहारका प्रत्याख्यान करु, रात्रिमें इविहार प्रत्याख्यान करूं, और रस्ते चलते रोगादि कारणसें न होवे, तो आगार वर्ष प्रति इतना साधर्मिवात्सल्य करु, (साधर्मि जिमावु) इस रीतीसें सम्यक्त्व पावु, थरु सम्यक्त्वके पांच अतिचार टालु, सो पांच अतिचार कहते हैं

१ प्रथम शका अतिचार, सो जिनवचनमें शका करणी, क्यों कि जिन वचन बहुत गनीर हैं, थरु तिनका यथार्थ अर्थ कहने वाला इस कालमें कोइ गुरु नहीं, थरु शास्त्र जो है, सो अनतनयात्मक है, तितकी गिणती, तथा सज्ञा, विचित्र तरेंकी है, कहीक जगें तो कोही शब्द कोइका वाचक है, थरु किसी जगें ऊठी वस्तुका वाचक है, क्योंकि श्रीजिनजगण्णि इमाश्रमण सर्वसयका सम्मत आचार्य, सययण नामा पुस्तकमें तथा बिशे

पणवती ग्रंथमें लिखने हैं, कि कोइक आचार्य कोही शब्दकों एक कोइ का वाचक नहीं मानते है, किंतु सझांतर मानते हैं, क्यो कि अथव वर्त्तमान कालमेंनी वीशकों कोही कहते हैं, तथा सौराष्ट्र देश अर्थात् सोरठ देशमें अथव वर्त्तमान कालमेंनी पांच आनेको एक कोही कहते हैं, यह जैसे कोही शब्दमें मतांतर हैं, ऐसेही शत सदस्य शब्दकी किसी सझाका वाचक होवे तो कुछ दोष नहीं तथा शत्रुजय तीर्थमें जहा मुनि मोक्ष गये हैं, तहांनी पांच कोही आदि शब्दोंकी कोइ सझा विशेष है ऐसेही ठप्पन कुछ कोही यादव कहते हैं, तोहांनी यादवोंके ठप्पन कुलोंकी कोही कोइ सझा विशेष है, इसी तरें सर्व जगें शास्त्रोंमें चक्रवर्तीकी सेना तथा कोणि क चेटक राजाओंकी सेनामें जो कोही, अरु शत सदस्य शब्द हैं, सो सझाविशेषके वाचक सज्जव होते हैं, इस वास्ते सर्व शब्दोंका सर्व जगें एक सरीखा अर्थ माननां युक्त नहीं, इस कथनमें पूज्यश्री जिनजङ्गलि द्दमाश्रमण पुरे साक्षी देने वाले हैं

तथा कितनेक जथ्य जीवोंने सामान्य प्रकारें ऐसा सुण रक्का है, जो पांचमे आरेमें ठळ्ठ एक सौ वीश वर्षका आयु है, जब वो जीव कीसी अग्रेज के मुखसें सुनते हैं, तथा और किसीके मुखसें सुनते हैं, कि ढैठ सौ तथा दो सौ, तथा अठाइ सौ वर्षकी आयुवालेनी जोष्टानादि किसी देशमें मनुष्य होते हैं, तब दृढ श्रद्धावाले जोले जीव तो कदापि किसीका कहनां नहीं मानते हैं, चाहो बड़ी आयु वाला मनुष्य उनके सन्मुखनी खडा कर दो, तोनी वे जूबदी मानेंगे, क्योंकि वे जानते हैं, कि जो हमारे जिनेंइ देवका कथन है, सो कदापि जूठा नहीं है, परंतु जिनकों जैनमतकी दृढ श्रद्धा नहीं है, वे कुछ सांसारिक विद्यामें निपुण है, चाहो जैनमत वालेही हैं, उनके मनमें अवश्य शका पड जायगी, क्यों कि उनोंनेनी सर्व जैन मतके शास्त्र सुने नहीं हैं, शास्त्रमें जो कथन है, सो सापेक्षिक है, बाहुल्यता करके कह्या दूथा है, सो कथंचित् जो अन्यथा होवे, तो आश्चर्य नहीं क्यों कि बहुत शास्त्रोंमें लिखा है, कि ज्योतिषचक्र, अर्थात् तारा मण्डल है, सो सर्व तारे मेरु पर्वतकों प्रवक्षिणा देते हैं, ये बात सर्व जैनो मानते हैं, परंतु ध्रुवका तारा कहींनी नहीं जाता है, अरु ध्रुवके पास जो तारे सप्त रुपि रूढिमें प्रसिद्ध हैं, जिनकों बालक मजी पदरेदार

कुत्ता, और घोर कहते हैं, तथा औरजी, कितनेक तारे ध्रुवके पार्श्ववर्ती हैं, वे सर्व ध्रुवकी प्रदक्षिणा देते हैं, परंतु मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा नहीं देते हैं, यह बात हमने आंखोंसे देखी है, अरु औरोंको दिखा सकते हैं, तो फेर प्रथम जो शास्त्रकारने कहा था कि सर्व तारे मेरुकी प्रदक्षिणा देते हैं यह कहना जैनी, क्यों कर सत्य मानते हैं ?

इसका समाधान ऐसा है, कि प्रथम जो कथन है, सो बाहुल्यताकी अपेक्षा है, क्योंकि बहुत तारा मग्नज ऐसा है, जो मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देता है, अरु कितनेक ऐसे हैं जो ध्रुवके ही आस पास चक्र देते हैं, यह समाधान, पूज्यश्री जिननङ्गणि कृमाश्रमणजीने सघयण, तथा विशेष एवती ग्रन्थमें लिखा है, कि मेरु पर्वतके चारों ओर चार ध्रुव हैं, अरु उन चारों ध्रुवोंके पास ऐसे ऐसे तारे हैं, जो सदा उन चारों ध्रुवोंके ही आस पास चक्र देते हैं इससे यह सिद्ध हुआ कि जो शास्त्रका कहना है सो बाहुल्यतासे अरु किसी अपेक्षा करके संयुक्त है, अरु किसी जगह स्थूल व्यवहार नयके मतसे कथन है, परंतु सूक्ष्म, अधिक न्यूनताकी विवक्षा नहीं करी है, इसी तरें सौ वर्षसे अधिक आयु जो पंचम कालमें कही है, सो बाहुल्यताकी अपेक्षा तथा आर्यखंन अर्थात् मध्यखंनकी अपेक्षा है, जे कर किसी पुरुषकी १५०, २००, २५०, इत्यादि वर्षोंकी आयु हो जावे, तो मनमें जिनवचनकी शका न करणी कि क्या जाने जिनवचन सत्य हैं कि जूठ हैं ? ऐसा विकल्प मनमें नहीं करना, क्यों कि शास्त्रका आशय अतिगनीर है, अरु ऐसा गीतार्थ कोइ गुरु नहीं है, जो यथार्थ बतलावे

इस आयुके कहनेका यह समाधान है, कि जगवान् श्रीमहावीरके निर्वाण पीछे ( ५८५ ) वर्षके लग जग जैनमतका आचार्य श्रीआर्यरक्षित सूरि साठे नव पूर्वका पाठक जिनोके पास शक्रइंद्र, निगोद जीवोंका स्वरूप सुनने आया था, तब शक्रइंद्रने प्रथम बृहद्ब्राह्मणका रूप करके श्रीआर्यरक्षित सूरिकों पूछा, कि हे जगवान् ! मैं बृहद् हो गया हों, जे कर मेरी आयु थोड़ी होवे, तो मुझे बता दीजियें, जो मैं अनशन करू, तब श्रीआर्यरक्षित सूरिजीने वशमे पूर्वके यवका अध्ययनमें उपयोग दे कर देखा, तो तिसकी आयु सौ वर्षसे अधिक जानी, फेर उपयोग दे कर



देखा, तो दोसैं वर्षसैं अधिक आयु जानी, फेर उपयोग दीया, तो तीन सैं वर्षसैं अधिक आयु जानी, तब आचार्य श्रीआर्यरक्षितसूरिजीने विचार कीया, जो यह चारत वर्षका मनुष्य नहीं है ये कथानक, आवश्यकसूत्रकी सामायिकअध्ययनकी उपोद्घात निर्युक्तिमें है, इस कथानकसे ऐसा निकलता है, जो चारत वर्षके मनुष्यको आयु तीन सौ वर्षकी होवे, तो आश्चर्य नहीं, क्यों कि श्रीआर्यरक्षितसूरिजीने जो तीन सौ वर्षसे जब अधिक आयु देखी, तब कहा, ये चारत वर्षका मनुष्य नहीं इसी कहनेसे कथचित् तीन सौ वर्षकी आयु चारत वर्षकी होवे, तो क्या आश्चर्य है ?

तथा कितनेक जीवोंके मनमें ऐसीनी शका होवे, तो उसका क्या समाधान है ? चरत खम जैनमतवाले कहा तक मानते हैं ? जो कुछ इस कालमें लोकोके देखने वा सुननेमें आता है, कि अमेरिकादि देश वे सर्व जैनलोक चारत वर्ष मानते हैं, रूप, वा चीनादि देश इन सर्वकों चारत वर्ष कहते हैं अरु अमेरिकादि विलायतादि सर्व मुलकोंके बीचमें जो समुद्र पड़ा है, सो रूपन देव अरु चरत चक्रवर्तीके समयमें नहीं था, किंतु जगती बाहिर जो महासमुद्र है, सोइ था, इस कारणसे अर्थात् समुद्रके अंदर था जानेसे असली चरत क्षेत्रका स्वरूप बिगड़ गया, कहीं समुद्र हो गया, और कहीं द्वीपें बन गये

इस विषे जैनमतका शत्रुजय महात्म्यनामा जो ग्रंथ है, तिसमें लिखा है कि दूसरा सगरनामा चक्रवर्ती हुआ है, वो इस समुद्रकों चारतवर्षमें जंबू द्वीपके दक्षिणदिशि के विजयंत नामक दरवाजेके रस्तेसे व्याया है, तिसके जानेसे बर्बरादि अनेक हजारो देश तो जलमें डूब कर समुद्रकी जूमिका बन गये, अरु जो उच्चस्थल थे, वे द्वीप और विलायतादि देशो बन गये, पीछे सैं असली देशोका नाम नष्ट होनेसे वहुत देशोंके नाम कल्पित रके गये, अरु चरतखम कुछ औरका और बन गया, कितनेक देशोंके चारों और समुद्र फिर गया, अरु कितनेक देशोंके उत्तर खमोंमें बर्फके पड़ जानेसे, और समयके बदलनेसे, सर्वथा पानी जम गया, अरु समुद्रके साथ मिल गया, तब तो चारों ओर समुद्रही देखने लगा है, तिस लिये आना जाना बढ़ हो गया, अरु हमारे शास्त्रकार तो प्रथम आरेमें तथा रूपन देव अरु चरतचक्रवर्तीके समयमें जो इस चारत वर्षका हाल था, सोइ सदासे लि

खते चले आये, परंतु जरत क्षेत्रके बिगड तिगडके औरका और बन व नसें किसीने विस्तार पूर्वक वृत्तांत ठीक ठीक नहीं लिखा, अरु जे कर लिखानी होवेगा, तोनी जैनमतके उपर बड़ी बड़ी विपत्तियों पड़ीयों है, नसें लाखों क्या, बलकि कोहों ग्रथ नष्ट हो गये है, इस वास्ते हम ठीक ठीक सर्व वृत्तांत बता नहीं सके हैं, परंतु जितनेक जैन मतके ग्रथ मेरे बाने में आये हैं, उनमेंसू जो मुझे ठीक पड़ी है, सो मैं इस ग्रथमें लिखता हूँ।

इस वास्ते सर्वक्षेत्र अवल बदल हो गये हैं, गंगा सिंधु असजस्थान बढ़नेमें रह गइ, क्योंकि अगला प्रवाह तो, समुद्रने रोक लीया, अरु पीछे से पाणी आना बंद हो गया, फेर जिस पर्वतसे अधिक नदीकी प्रवृत्ति है, वो नदी, उसी पर्वतसे निकलती लोकोने मान लीनी, इस वास्ते गंगा अरु सिंधुमें कुछक देमवत पर्वतसे जल आना बंद हो गया, नाममात्र गंगा सिंधु रह गइ, औ नगरीयोंमें बनिता नगरीकी कल्पना पर अयोध्या बनाइ गइ, अरु काबलके परे तक्षिला अर्थात् बाहुबलकी नगरीकी कल्पना करी गइ, इस समयमें वो तक्षिलानी नहीं रही उसका नाम गजप्रतिष्ठ है, क्योंकि जैनीयोंकी श्रद्धा अनुसारें प्रथम आरेकों अरु कृष्ण देव तथा जरत राजाके समयके व्यतीत होनेमें अस्त्रव्य वर्ष व्यतीत हो गये हैं, तो फेर नदी, पर्वत, देश, नगरोंके चलट पलट हो जाना क्या आश्चर्य है ?

औ समुद्रका वेशों उपर फिर जाना, तो तीरेत ग्रथसेनी ठीक ठीक सिद्ध होता है, अरु पुराणादि ग्रथोंमेंनी लिखा है, जो कोइ ऐसा समझनी था कि समुद्रमें पाणी नहीं था, पीछेसे आया है, इस वास्ते शत्रुघ्न य माहात्म्यमें जो लिखा है कि जरत क्षेत्रमें समुद्रका पाणी सगर चक्रवर्ती व्याया है, सो कहना ठीक है।

तथा विजयसेन सूरि श्रीतपगुहका आचार्य, अपने प्रश्नोत्तरोंमें जिस ते हैं, कि मागध, वरदाम, अरु प्रजासक नामक तीन जो तीर्थ हैं, सो जगतके बाहिरले समुद्रमें है, इससेनी यही सिद्ध होता है, कि जरतचक्रवर्ती जब पट्ट खन साधने, अरु मागधादि तीर्थोंको साधनेको गये थे, तब यह समुद्रका पानी रस्तेमें नहीं था, अरु शास्त्रकारोंने तो सर्व शास्त्रोंकी

शैली श्रीपञ्चदेवके कथानुसार रखी है, इस वास्ते चक्रवर्त्यादिकोंका कथन नरतचक्रवर्तीके सरीखा कह दीया है,

तथा इस कालमें कितनेक विद्वानोंने जूगोलके हिसाबसें जो कृतब बनाये है, अरु उनके अनुसारें शरद् तथा गरम देशोंका विभाग किया है, यद्यपि उनके देखने सुनने मूजब तथा उनके अनुमानके अनुसारें वर्तमान समयमें ऐसाही होवेगा, परंतु सदा ऐसाही था, यह कहना ठीक नहीं क्योंकि जूगोलहस्तामलक पुस्तकमें लिखा है, कि रूपदेशकी उत्तर के पासें जहां बरफके सिवाय और कुछनी नहीं है, तहां गरमीके दिनोमें बर्फके गलनेसें तथा किसी जगे बर्फके करार गिर पडनेसें उसके हेतुसें एक कि समके हाथी निकलते हैं, सोनी सैंकड़ो हजारों निकलते हैं, जिनका नाम उस देशवाले मेंमाथ कहते हैं, अब बड़ा आश्चर्य तो इन मेंमाथोंके देखनेसें ये आता है, कि ये जानवर गरम मुलकोंके रहनेवाले हैं, अरु यह शरद् मुलकमें कहाँसे आये ? अरु इनके खाने वास्तेनी कुछ नहीं, इस कालमें जो एकनी हाथी उस मुलकमें जा कर बांधीयें, तो थोड़ेसें काल में मर जायगा, नहीं तो ये लाखो मेंमाथ इस मुलकमें क्यों कर जाते होयंगे ? और क्या खाते होयंगे ? इसमें यही कहना पड़ेगा कि किसी समयमें ये मुलक गरम होवेगा, पीछे पवनकी तसीर बदलनेसें शरद् मुलक हो गया, इस वृत्तांतसें यह सिद्ध होता है, कि जो शरद् मुलक हैं, वे गरम हो सकते हैं, अरु जो गरम मुलक हैं, वे किसी कालमें शरद् हो जाते हैं, इस वास्ते जूगोलके अनुसारें जो शरदी गरमीकी व्यवस्था कल्पना करनी है, वे हमेशाके वास्ते छुरस्त नहीं, क्या जाने देशोंकी क्या क्या व्यवस्था बदल चुकी है ? और क्या क्या बदलेगी ? इसका पूरा स्वरूप तो सर्वज्ञ जान सक्ता है

तथा इस पृथ्वीको जूगोल कहते हैं अरु यहनी कहते हैं कि सूर्य नहीं फिरता, किंतु पृथ्वी, सूर्यके र्द्विर्गिध घूमती है, यह बात कुछ श्रेजोदीने नहीं निकाली है, किंतु श्रेजोसें पदिल्लेनी इस बातके मानने वाले नारत वर्षमें थे, क्यों कि जैनमतका श्रीजगाचार्य जो विक्रमके ४०० वर्षमें हुआ है, वे आचार्य आचारांगसूत्रकी वृत्तिमें लिखते हैं, कि कितनेक ऐसानी मानते हैं, जो जूगोल फिरता है, अरु सूर्य

य स्थिर रहता है, परंतु यह मत जैनीयोंका नहीं है, उनके शास्त्र जो प्रगट लिखा है कि सूर्य चलता है, अरु पृथ्वी स्थिर रहती औ सूर्यके घ्रमण करनेके एक सौ चौरासी ममल आकाशमें हैं, १ ममलोंमें प्रवेश करना, अरु दिनमानका रात्रिमानका घटना, वधना, २ मौसमोंका बदलना, ग्रहणका लगना, सूर्यके अस्त उदय होनेमें तोंका विवाद, इत्यादि बात सर्व सूर्यप्रज्ञप्ति वा चंद्रप्रज्ञप्ति शास्त्र पढ़नेसें अच्छी तरसें मालुम पड़ जाती है

अरु जो पृथ्वीके गोल होनेमें समुद्रके ऊढ़ाजकी ध्वजा प्रथम दीख है, इत्यादि कहते हैं, सो कहनेवालोंकी समझमें ऐसी आती होवेगी, रंतु हमारी समझमें तो नहीं आती है, हम तो ऐसे समझते हैं, कि मारे नेत्रोंमें ऐसी ही योग्यता है, कि जिस्सें वस्तु गोलादि दीख पड़ है, क्योंकि जब हम सूधी सड़क पर खड़े होते हैं, तब हमारे पगोंकी गें सड़क चौड़ी मालुम पड़ती है, अरु जब दूर नजरसें देखते हैं, तब ही सड़क सकुचित मालुम पड़ती है, अरु आकाशमें पक्षीको जब क्षिर उपर उड़ता देखते हैं, तब हमको उंचा दूर दीख पड़ता है, अरु ज वसी जानवरको थोड़ीसी दूर जातेको देखते हैं तब धरतीसें बहुत नि ट देखते हैं, इतनी दूरमें पृथ्वीकी इतनी गोलाइ नहीं हो सकी है, त आकाशको जब देखते हैं तब तंबूसा दिखलाइ वेता है, इसमें जो को यह बात कहे कि धरतीकी गोलाइके सबबसें आकाशनी गोल दीखत है, यह कहना ठीक नहीं, क्योंकि पृथ्वीकी इतनी दूर इतनी गोलाइ न हो सकि है, इस वास्ते नेत्रोंमें जिस वस्तुके जाननेकी जैसी योग्यता है वैसी वस्तु दीखती है, यह कहना ठीक मालुम होता है

तथा यह पृथ्वी, जरतखमादिककी बहुत जगें उची, नीची, मालुम होती है, क्योंकि श्रीहेमचंद्रसूरि प्रमुख आचार्य पद्मप्रजचरित्रादि ग्रंथों लिखते हैं, कि लकासेंति इतने योजन पश्चिम दिशिकों जाइयें, तब आ योजन नीचें पाताललका है, जे कर ये प्रमाण योजन होवें, तब तो क्या जाने अमेरिकाही पताललका होवे? अरु नीची जगा होनेसें बुद्धिमान को पृथ्वी गोल मालुम पड़ती होवेगी, इसी पाताल लकाकी तरें और उ गेंज धरती उची नीची होवे, तो क्या आश्चर्य है? क्योंकि पश्चिम महादि

देहकी धरती एक हजार योजन उंची लिखी है, इसी तरें और जगेंजी उंची नीची धरतीके सबवसें कुछ औरका और दीख पड़े, तो जैनमती को श्रीअर्हत जगवतके कहनेमें शका न करनी चाहियें

तथा कितनेक पुस्तकोमें लिखा देखा और सुनाजी है, जो अमेरिका दि मुलकोमें ऐसी विद्या निकाली है, कि जिस करके वो दो हजारदि वर्ष पहिलें जो मनुष्य मर गये थे, उनको बुलाते हैं, अरु उनसें उस वस्तुका सर्व हाल पूछते हैं, अरु वे सर्व अपनी व्यवस्था बतलाते हैं, परंतु परोक्ष शब्द उनका सुणाइ देता है, वे प्रत्यक्ष नहीं दीखते हैं, तथा अनेक तरेंके तमासे दीखाते हैं, कि जिनके देखनेसें अल्पबुद्धियोंकी बुद्धि अस्त व्यस्त हो जाती है, तब उनके मनमें अनेक शका कखा उत्पन्न हो जाती हैं. जिसके सबवसें अर्हतकथित धर्ममें अनादर हो जाता है, क्योंकि उन जीवोंने न तो पूरे जैनमतके शास्त्र पढ़े हैं, और न सुने हैं, इस वास्ते उनके मनको जलद अधीरज हो जाती है, परंतु अपने घरकी सर्व पुस्तकों विना वांचे, विना सुने, तुल्य बातके वास्ते एक बारगी जिनधर्ममें शका न जानी चाहियें, क्योंकि यह पूर्वोक्त सर्ववृत्तांत इज्जालकी पूर्णविद्या जिसको आती होवे, वो दिखा सकता है, मैंने किसी ग्रंथमें ऐसा लिखा देखा है, जो कुमारपाल राजाके समयमें एक बोधिदेव नामक ब्राह्मण था, उसने राजा कुमारपालकी भ्रक्षा जैन मतसें हटानेके वास्ते कुमारपालसें जो प्रथम उनके वशके मूलराज आदि सात राजाओं हो गये थे, उसको नरककुर्ममें पड़े हुए, विलाप करते हुए, अरु ऐसें कहते हुए, दिखपड़े, कि हे पुत्र ! जिस दिनसें तूने जैनधर्म अंगीकार किया है, उस दिनसें हम तेरे सात पुरुषों नरक कुर्ममें जा पड़े हैं, जे कर तू हमारा जला चाहे, तो जैनधर्म छोड़ दे, ऐसी बात देख कर राजा कुमारपाल चित्तमें घबराया, तब जा कर अपने गुरु श्रीहेम चंद्राचार्यको पूछा, कि महाराज ! यह क्या वृत्तांत है ? तब श्रीहेमचंद्र आचार्यजीने कहा कि हे राजेंद्र ! ये सर्व इज्जालकी विद्या है, आठ मैत्री तुमको कुछ तमासा दिखाऊ ? तब राजा कुमारपालको मकानके अंदर ले मकानमें ले जा कर चववीस तीर्थंकर समवसरणमें जूड़े जूड़े बैठे हैं, अरु कुमारपालके वेदीसात पुरुषों तीर्थंकरोंकी सेवा करते हैं, अरु राजा कुमारपाल

लकों कहते हैं, कि दे पुत्र ! तू बड़ा पुण्यात्मा है, कि जिसने जैनधर्म अंगीकार किया है, जिस दिनसे तूने जैनधर्म अंगीकार किया है, उस दिन से हम नरककुंभसे निकल कर स्वर्गवासी हुए हैं, इस वास्ते तू धर्ममें रुठ रहियो तद् पीछे श्री हेमचन्द्रसूरि, राजा कुमारपालकों बाहिर लाये, पीछे राजाने पूछी कि महाराज ! यह क्या तमासा आश्चर्यकारी है ? तब श्री हेमचन्द्रसूरि कहते जये कि दे राजा ! ये इन्द्रजालकी विद्या जिसको आती होवे, वो कर सका है, क्योंकि इन्द्रजाल विद्याके सचाईस पीठ, है, जिनमेंसू सत्तरे पीठ सत्सारमें प्रचलित हैं, परंतु सचाईस पीठ मैं जानता हू, और कोई नी नारत वर्षमें नहीं जानता है, अरु जिन गुरुवोने हमको ये विद्या दी थी, उनोने ऐसी आज्ञा दी है, कि आगेको तुमने किसीको ये विद्या न देनी, क्योंकि इस विद्यासे बड़े अनर्थ उत्पन्न हो जायगे, क्योंकि इस कालमें जीव तुल्लुबुल्लिवाले हैं, इस लिये उनको ये विद्या जरूरी नहीं, इसी वास्ते हमारे आचार्यानें योनिप्राज्ञत शास्त्र विज्ञेद कर दीया है, उसी योनिप्राज्ञतके अनुसार यह इन्द्रजाल रचा हुआ है, इस योनिप्राज्ञतका कथन व्यवहारनाथचूर्णीमें लिखा है, कि उस योनिप्राज्ञतमें तंत्रविद्या है, जिस्सें सर्प, घोड़े, हाथी, वगैरे जिंदे जानवर वस्तु वोंके मिलानेसे बन जाते हैं, तथा सुवर्ण, मणि, रत्नप्रमुख बन जाते हैं, उन मसालोंमें ऐसी मिलन शक्ति है, कि चाहे सो बना लो ? इस वास्ते कोई आज नवी वस्तु देख कर जैनधर्मसे चलायमान न होना चाहिये तत्त्वार्थकी महानाथमें सामतजन्म आचार्यजी लिखते हैं, कि इन्द्रजालिया तीर्थकरके समान बाह्य सिद्धि सर्व बना सका है, इस वास्ते कोई बातका चमत्कार देखके जिन वचनोमें शका कदापि न करनी

तथा कितनेक जैनमत वालोंको यहनी आश्चर्य है, कि जदा आर्यावर्तमें दो प्रहर दिन होता है, तदा अमेरीकामें अर्द्धरात्रि होती है अरु जदा अमेरीकामें दो प्रहर दिन होता है, तदा आर्यावर्तमें अर्द्धरात्रि होती है, कितनेक लोकोनें घड़ियोंके हिसाबसे तथा तारकी खबरोसे इस बात का निश्चय अच्छी तरेसें करा वतलाते है, इस बातका उत्तर मैं यथार्थ नहीं दे सका हू, मैरी श्रद्धा ऐसी नहीं है कि पूर्व आचार्योंके अनुसार बिना समाधान कर सकू ? क्योंकि मेरी कल्पनासे कुछ जैनमत सत्य नहीं

हो सका है, जैनमत तो अपने स्वरूपसे ही सत्य बनेगा, जे कर मेरी कल्पनाही सत्यका कारण होवे, तब तो किसी पूर्वाचार्योंकी अपेक्षा न रहेगी, तब तो जिसके मनमें जो अर्थ अज्ञा लगे, सो अर्थ कर लेवेगा जैसे वर्तमानमें किसी पाखानी मस्करीने ऋग्वेदादि वेदों उपर स्वकपोलकल्पित अर्थ बनाये हैं, सो हमने वाचनी लीये है, उनोंने वेद मंत्रादिकोंके उपर जो जाप्य बनाया है, उसमें मंत्रोंके अर्थोंमें ऐसा लिखा है कि “अग्निबोट” अर्थात् धूयेकी कलसे चलनेवाले ऊहाज तथा रेलगाडीके चलनेकी विधि, तथा पृथ्वी गोल है, अरु सूर्यके चारों ओर घूमती है, अरु सूर्य स्थिर है, इत्यादि जो अग्नेजोने अपनी बुद्धिके बलसे विद्या उत्पन्न करी है, इन सर्व विद्यायोंका वेदोंमेंनी कथन है, अपने शिष्योंको वेदका महत्त्व ज नानेके वास्ते स्वकपोलकल्पित अर्थ बना लीये हैं, अरु पूर्वे जो महीयरादि पंक्तियोने वेदोंके उपर दीपिका तथा जाप्य रचे हैं, उनकी नि वा अर्थात् मूर्खता प्रगट करी है, वे मूर्ख थे, उनको वेदका अर्थ न ही आता था

प्रश्न—पिछले अर्थ ठोड कर जो नवीन अर्थ बनाये गये, इनका क्या कारण है ?

उत्तर—प्रथम तो वेदोंके प्राचीन जाप्य और दीपिका माननेसे वेदोंकी सत्यता, अरु इश्वरोक्तता, तथा प्राचीनता सिद्ध नहीं होती इसी वास्ते ईशावास्य उपनिषद् वर्जके सर्व उपनिषदों, और सर्व ब्राह्मण जाग, तथा सर्व स्मृति, पुराणादि शास्त्र, जाप्य, दीपिकादि, मानने ठोड दीये, उनो ने यह विचार कीया है कि इन सर्व पूर्वोक्त ग्रंथोंके माननेसे हमारा मत दूसरे मतवाले खमन कर देंगे, क्योंकि ये पूर्वोक्त सर्व ग्रंथ युक्ति प्रमाणसे विकल हैं, अरु प्राचीनोने जो अर्थ करे हैं, उनमें बहुत अर्थ ऐसे हैं, कि जिनोके सुननेसे ओता जनोकोनी लज्जा उत्पन्न होती है, क्योंकि महीयरुत दीपिका जो वेदकी टीका है उसमें मंत्रादिकोंके जो अर्थ लिखे हैं, उनमें लिखा है कि यज्ञपत्नी घोडेका लिंग पकडके अपनी योनिमें प्रक्षेप करे इत्यादि अर्थ है, सो मैं आगे लिखुंगा इत्यादि अर्थोंके ठोडने वास्ते अरु वेदोंके खमन न होने वास्ते स्वकपोलकल्पित जाप्य बना कर मात्र अग्नेजोके चाल चलन, और इजिलके मतानुसार अर्थ बना

ये गये हैं, परंतु उसको बुद्धिमान् तो कोइनी मानता नहीं है, अरु जो मानते हैं, वो कुछ जानते नही है, क्योंकि जब पूर्वज्जे रुपि, मुनि, पंथित जूते हैं, अरु उनके बनाये दूये अर्थ असत्य हैं, तो अबके बनाये दूये क दापि सत्य नहीं हो सकेंगे ? जो जडमेंदी जूत है, वे नवीन रचनासे क दापि सत्य न होवेंगे, इस वास्ते अपनी बुद्धिका विचार सत्य मानना, अरु प्राचीन उन वेदोंके मानने वालोंका सप्रदाय अर्थको जूता मानना इस्से अधिक निर्विवेकी और अन्यायशिरोमणि कौन है ? क्योंकि जब प्राचीनोंके बनाये अर्थ जूते उहरेंगे, तब तिनके बनाये नये वेदनी जूतेदी उहरेंगे, इस वास्ते जो मतधारी है, यातो उनको अपने प्राचीनोंके कथन करे दूये अर्थ मानने चाहिये, नहीं तो उस मतको अरु उस मतके शास्त्रोंको गेड देना चाहिये इसी वास्ते मेरी ऐसी श्रद्धा है, कि जो जैन मतमें प्रामाणिक अरु पंचांगीकारक आचार्य लिख गये हैं, उनके अनुसा रही हमको कथन करना चाहिये, परंतु स्वकपोलकल्पित नहीं जे कर कोइ स्वकपोलकल्पित मानेगा, वो जैनमती कदापि नहीं बन सकेगा, अरु उसकी कल्पनानी सर्वथा सत्य नहीं होवेगी ? क्योंकि जब सर्व मतों के पूर्वाचार्य जूते उहरेंगे, तब नवी कल्पना करने वाले क्यों कर सबे बन वेवेंगे ? इस वास्ते पूर्वोक्त प्रश्नका उत्तर पंचांगीके प्रमाणसे नहीं वे स का हू, क्यों कि १ शास्त्र बहुत विवेद हो गये है, तथा २ आर्यरक्षित स्वरि के समयमें चारों अनुयोग तोडके पृथक्त्वानुयोग रचा गया है, तथा ३ स्कंधिल आचार्यके समयमें बारह वर्ष काल पडा था, उसमें शास्त्र क उसें जूल गये थे, फेर सर्व साधुओंका दक्षिण मधुरामें समाज करके जिस जिस आचार्य, साधुके जिस जिस शास्त्रका जो जो स्थल, कठ रह गया, सो सो स्थल एकत्र करके लिखा गया, ४ पोछे देवर्दि गणि कुमार ए प्रजृति आचार्योंने पत्रोंके उपरि एक कोड ग्रथ लिखा, शेष गेड दी ये, ५ प्रजावक चरित्रमें लिखा है, कि सर्व शास्त्रोंकी टीका लिखी थी, वो सर्व विवेद हो गइ, ६ तथा पीछेसे ब्राह्मणोंने तथा बौद्धोंने ग्रंथोंका नाश किया, ७ तथा मुसलमानोंने तो सर्वमतोंके शास्त्र मट्टीमें मिलाय दीये, तिनमेंसू जो रह गये, वे जमारोंमें गुप्त रहनेसे गल गये, तथा जो अब जमारोंमें है, वे सर्व हमने बांचे नहीं है, तो फेर इतने उपइव जैन शा



स्वोंमें वीतनेसे हम क्योंकर सर्व शंकायोंका समाधान कर सके? इस वास्ते जिनमतमें शंका न करनी चाहिये. हमने सर्वमतोंके शास्त्र देखे हैं, परंतु जैनमत समान अति उत्तम मत कोई नहीं देखा है, इस वास्ते इस मतमें दृढ़ रहना चाहिये, १ शंका अतिचार उसको कहते हैं, कि जो जिनवचनोंमें शंका करे, जैसेकि ए वाची जिनेश्वर देवकी कही सत्य है, वा नहीं? यह प्रथम अतिचार है

२ दूसरा आकाङ्क्षा अतिचार, सो अन्यमत वालोंका अज्ञान कष्ट देख कर तथा किसी पाखन्दीके पास किसी विद्यामंत्रका चमत्कार देख कर तथा पूर्व जन्मके अज्ञान कष्टके फल करके अन्यमत वालोंको सुखी अरु धनवान् देख कर मनमें विचारें जो अन्यमत वालोंका धर्म अरु ज्ञान अज्ञा है, जिसके प्रभावसे वे धनी, अरु पुत्र आदि परिवार वाले होते हैं, इस वास्ते मैनी इनहीका धर्म कर, कि जिस कर के मैनी धनी, अरु पुत्रादि परिवार वाला हो जाउगा, यह आकाङ्क्षा अतिचार, उन जीवोंको होता है, कि जिनको जिनधर्मका अज्ञा तीरेसे बोध नहीं है, क्योंकि जैनधर्मवालेनी सर्व दरिद्र अरु पुत्रादि परिवारसे रहित नहीं हैं, तैसे ही अन्यमत वालेनी सर्व धनी अरु परिवारवाले नहीं है, इस वास्ते सर्व अपने अपने पूर्व जन्म जन्मांतरके करे हुए पुण्य पापके फल है, क्योंकि जे जीव, मनुष्य जन्ममें सात कुब्यसनी हैं, अरु कसाइ, वागुरी (बुझड़) प्रमुख कितनेक धनी (धनवाले) अरु पुत्रादि परिवारवाले हैं, अरु कितनेक इस अवस्थासे विपरीत हैं, इस वास्ते यही सत्य है कि पूर्व जन्ममें करे हुए सुकृत दुकृतका फल है, प्रायः इस जन्मके कृत्यों का फल नहीं है, सर्व मतोंवाले राजा हो चुके है, अरु रंकनी बहुत हैं, इस वास्ते अन्यमतकी आकाङ्क्षा न करे, जे कर करे, तो दूसरा अतिचार

३ तीसरा वित्तिगिह्या नामक अतिचार है, सो कोई जीव अपने पूर्व जन्मके करे दिये पापोंके खदयसे दुःख पाता है, तब ऐसा विचार करे, जो मैं धर्म करता हूँ, तिसका फल मुझे कब मिलेगा? अर्थात् मिलेगा कि नहीं? अरु जो धर्म नहीं करते ह, वो सुखी हैं, अरु हम तो धर्म करते है, तोनी दुःखी हैं, इस वास्ते कौन जाने धर्मका फल दोगेगा कि नहीं दोगेगा? तथा साधुके मलिन वस्त्र तथा मलिन शरीर रखत देख कर मनमें

ये गये हैं, परंतु उसको बुद्धिमान् तो कोइनी मानता नहीं है, अरु वो मानते हैं, वो कुछ जानते नहीं हैं, क्योंकि जब पूर्वले ऋषि, मुनि, पंति जूते हैं, अरु उनके बनाये दूये अर्थ असत्य हैं, तो अबके बनाये दूये कदापि सत्य नहीं हो सकेंगे ? जो जडमेंही जूत है, वे नवीन रचनासे कदापि सत्य न होवेंगे, इस वास्ते अपनी बुद्धिका विचार सत्य मानना, अरु प्राचीन उन वेदोंके मानने वालोंका संप्रदाय अर्थको जूता मानना इस्से अधिक निर्विवेकी और अन्यायशिरोमणि कौन है ? क्योंकि जब प्राचीनोंके बनाये अर्थ जूते उढ़रेंगे, तब तिनके बनाये नये वेदनी जूतेही उढ़रेंगे, इस वास्ते जो मतधारी है, यातो उनको अपने प्राचीनोंके कथन करे दूये अर्थ मानने चाहिये, नहीं तो उस मतको अरु उस मतके शास्त्रोंको ढोड देना चाहिये इसी वास्ते मेरी ऐसी श्रद्धा है, कि जो जैन मतमें प्रामाणिक अरु पंचांगीकारक आचार्य लिख गये हैं, उनके अनुसारही हमको कथन करना चाहिये, परंतु स्वकपोलकल्पित नहीं जे कर कोइ स्वकपोलकल्पित मानेगा, वो जैनमती कदापि नहीं बन सकेगा, अरु उसकी कल्पनाजी सर्वथा सत्य नहीं होवेगी ? क्योंकि जब सर्व मतोंके पूर्वाचार्य जूते उढ़रेंगे, तब नवी कल्पना करने वाले क्यों कर सब बन वेतेंगे ? इस वास्ते पूर्वोक्त प्रश्नका उत्तर पंचांगीके प्रमाणसे नहीं दे सका हू, क्यों कि १ शास्त्र बहुत विष्टेद हो गये हैं, तथा २ आर्यरक्षित स्मृति के समयमें चारों अनुयोग तोडके पृथक्त्वानुयोग रचा गया है, तथा ३ स्कंधिल आचार्यके समयमें बारह वर्ष काल पड़ा था, उसमें शास्त्र क उससे जूल गये थे, फेर सर्व साधुओंका दक्षिण मथुरामें समाज करके जिस जिस आचार्य, साधुके जिस जिस शास्त्रका जो जो स्थल, कठ रह गया, सो सो स्थल एकत्र करके लिखा गया, ४ पीठे देवर्द्धि गणि हमाश्रण प्रवृत्ति आचार्योंने पत्रोंके उपरि एक क्रोड ग्रंथ लिखा, शेष ढोड दीये, ५ प्रजावक चरित्रमें लिखा है, कि सर्व शास्त्रोंकी टीका लिखी थी, वो सर्व विष्टेद हो गइ, ६ तथा पीठसे ब्राह्मणोंने तथा बौद्धोंने ग्रंथोंका नाश किया, ७ तथा मुसलमानोंने तो सर्वमतोंके शास्त्र मट्टीमें मिलाय दीये, तिनमेंसू जो रह गये, वे जमारोंमें गुप्त रहनेसे गल गये, तथा जो अब जमारोंमें है, वे सर्व हमने बांचे नहीं है, तो फेर इतने उपडब जैन शा

जायंगे कि जिनोके किसी बातका नियम नहीं, हाथी, घोड़े, रेल प्रमुख की असवारी करनी, तथा जो फल हैं, सो सर्व नक्षत्र करने, धन रखना, मकान बांधणे, खेती करणी, गौ, जैस, हाथी, घोड़े, रथ, शस्त्र रखने, बल बलसे लोकों पासों धन ले लेना, स्त्रियोंसे विषय सेवन करना, अन्धा खाना, मांसनक्षत्र करना, मदिरा पीना, जांगके रगड़े, चरसकी चिलमें उड़ाना, पगोंको तथा शरीरको वेश्याकी तरें माजना, चित्तमें बड़ा अजिमान रखना, दंभ पेले, गस्त करने जाना, इत्यादि अनेक साधुओंके अनुचित काम करने, फेर श्रीश्री स्वामीजी महाराज बन वैठना, हम म हंत हैं, हम गद्दीधर हैं, हम नटारक हैं, हम श्रीपूज्य हैं, हम जगत्का उद्धार करते हैं, हम बड़े अद्वैत ब्रह्मके वेत्ता हैं, हम शुद्ध ईश्वरकी उपासना बताते हैं, मूर्तिपूजन पाखमका नाश करते हैं

अब नव्य जीवोंको विचार करना चाहिये कि यह पूर्वोक्त कुगुरु क्या जलके स्नान करनेसे सत्सारसमुद्रसे तर जायंगे ? अरु जो जीवहिता, फूट, चोरी, स्त्री, अरु परीग्रह, इन पाचोंके त्यागी, शरीरमें ममत्व रहित, प्रतिबंध रहित, काम क्रोधके त्यागी, महातपस्वी, मधुकर वृत्तिसे निष्ठा लेने वाले इत्यादि अनेक गुण सुशोजित हैं, वे क्या जलमें स्नान न करनेसे पातकी हो जावेंगे ? कदापि न होवेंगे इस वास्ते साधुको देख के छु गुप्ता न करनी, जे कर करे, तो तीतरा अतिचार लागे ॥

चौथा मिथ्यादृष्टिकी प्रशसारूप अतिचार है, मिथ्यादृष्टि उसको कहते हैं, जो जिनप्रणीत आज्ञासे बाहिर है, क्यों कि सर्वज्ञके कहे दूए वचन को तो वो मानता नहीं, अरु असर्वज्ञके कहे दूए शास्त्रोंको सच्चा मानता है, उन शास्त्रोंमें जो अयोग्य बातें कही हैं, उनके बिपाने वास्ते स्वकपोलकल्पित ज्ञाप्य, टीका, अर्थ, बना करके मूर्खलोकोंको बहकाते गह्वर वजाते फिरते हैं, औ जिनके नियमधर्म कोइ नहीं, रुपण पशु योको मार जानते हैं, धूर्तपणेंते सच्चा बन कर मूर्खोंको मिथ्यात्व जानमें फसाते हैं, ऐसे मिथ्यादृष्टि दोते हैं, उनकी प्रशंसा करनी, तथा जो अज्ञानी जिनाज्ञासे बाहिर हैं, उनको कहना कि ये बड़े तपस्वी हैं ? महापुरुष है ? बड़े पंडित हैं ? इनके बराबर कौन है ? इनोंने धर्मकी वृद्धि वास्ते अवतार लीया है ? तथा मिथ्यादृष्टि कोइ व्रत यज्ञादि करे, तब ति

जुगुप्सा करे, कि यह साधु अश्वे नहीं है, जो मलिन वस्त्र तथा मलिन शरीर रखते हैं, इस वास्ते यह ससारसे क्यों कर तरेंगे ? जे कर वस्त्र जलसे स्नान कर लेवे, तो कौनसा महाव्रत जग हो जाता है ?

उत्तर—जे कर धर्मका फल न होवे, तो ससारकी विचित्रता कदापि न होवे, इस वास्ते धर्मका फल अवश्यमेव है, तथा जो साधु मलिन वस्त्र रखते हैं, उनका तो यह कारण है कि सुंदर वस्त्र रखनेसे मन भृगारसकू चाहाता है, अरु स्त्रीयोंकी सुंदर वस्त्र वालोंको देख कर उनसे जोग करनेकी इच्छा करती हैं, इस वास्ते शीघ्र पालने वाले साधुओंको शृंगार करना अश्वे नहीं, अरु स्नान जो है, सो कामका प्रथमांग है, इस वस्ते साधुओंको वचित नहीं, अरु कोइ कारण पढवेसे साधु हाथ पगादिकोंकू धोय लेवे, तो कुछ दूषण नहीं अरु साधुओंको आपणा शरीर वपर ममत्वकी नहीं है, अरु शुचिमात्र स्नान तो साधु करते हैं, परंतु शरीरके सुख वास्ते तथा शरीरके चमकाने (दमकानेके) वास्ते नहीं करते हैं, क्योंकि जैनीयोंकी ये श्रद्धा नहीं है, जो जलमें स्नान करनेसे पाप दूर हो जाते हैं, परंतु जलस्नानसे शरीरकी मैल दूर हो जाती है, शरीरकी तप्त मिट जाती है, आलस्य दूर हो जाता है, परंतु पाप दूर नहीं होते हैं, जे कर जलस्नानसे पाप मिट जावें, तो अनायास कर के सर्वकी मोक्ष हो जावेगी ? ऐसा कौन है, जो जलसे स्नान नहीं करता है ? अरु जो साधुको मैला समजना, यही बड़ी मूर्खता है, क्योंकि शरीरके मैले होनेसे आत्मा मैला नहीं होता है, मैला तो पाप करनेसे होता है, अरु जगत् व्यवहारमें स्त्रीसे सजोग करनेसे और किसी मलिन वस्तुका स्पर्श करनेसे, मैलापना मानते हैं, अरु साधु तो इन सर्व वस्तुओंका त्यागी है, इस वास्ते मैला नहीं, बलके साधुओंको अन्यथा देना चाहिये जो तप्त पडती है, लो चलती है, पसीना बहता है, तोनी साधु नगे पांय, अरु नगा शिर करके चलते हैं, और रातको ठन्डे दूये मकानमें सोते हैं, पखा करते नहीं तथा कोमल शय्या (पल्यंकादि) पर सोते नहीं और रात्रिको जल पीते नहीं, दिनमेंनी वस्त्र जल पीते हैं, यह तो बड़ा चारी तप है, परंतु जो कोइ साधु तो वन रहे है, अरु जब गरमी जगती है, तब मदिपकी तरे जलमें जा पडते है, ऐसे सुखशीलिये तो तर

जीविकाके वास्ते कोइ विरुद्ध आचरण करना पड़े, तो दूषण नहीं. एक तो यह है वस्तुके आगारोंको ठै ठंढी कहते हैं. तथा चार आगार और जी है, सो कहते हैं

१ “अन्नस्थणानोगेण” अस्वार्थ कोइ कार्य अजाण पणे उपयोग दीयां विना औरका और हो जावे, अरु जब याद आ जावे, तब वो कार्य फेरन करे, यह प्रथम आगार

२ “सदस्सागारेण” सो अकस्मात् कोइ काम करे, अपणे मनमें जानता है, यह काम मैंने नहीं करणां, परंतु योगोंकी चपलतासें तथा नित्य बहुत अन्याससेंती जानता हुआजी विरुद्ध कार्य हो जावे, तो सम्यक्त्वमें जग नहीं यह दूसरा आगार

३ “महत्तरागारेण” सो कोइ मोटा ज्ञान होता है, परंतु सम्यक्त्वमें दूषण लगता है, तथा कोइ मोटा ज्ञानीकी आज्ञासें कमवेशी करना पड़े, तो यहजी आगार है यह तीसरा आगार

४ चौथा “सर्वसमाहिवत्तिआगारेण” सो सर्व समाधिव्यस्यसें कोइ बड़ा सन्निपातादि रोगोंके विरुधसेंती बावरा हो जावे, तथा अतिवृद्ध हो जानेंसें स्मृतिचंग हो जावे, तथा रोगादिक आये मनमें आर्त्तध्यान हो जा नेंसें, तथा सर्पादिके रुक मारणेसें, इत्यादि असमाधिमें यह आगार है इस्सें सम्यक्त्व तथा व्रत जग नहीं होता है, परंतु किसी मूर्खके कहे सुनेंसें आर्त्तध्यानमें प्राण त्यागने योग्य नहीं, कितनेक जिनमतके अनजिज्ञों का यह जी कहनां है, कि चादो कुछ हो जावे, तोजी जो नियम लीया है, उसको कजी तोडनां न चाहिये, परंतु यह कहनां सर्वथा ठीक नहीं. क्यों कि जब पहिलादि आगार रके गये, तो फेर व्रतजग क्यों कर हुआ ? अरु जो आर्त्तध्यानमें मरजाते हैं, अरु आगार नहीं रखते हैं, वे जिनमार्गकी शैलीके अज्ञान हैं, इस वास्ते ठै ठंढी, अरु चार आगार, सर्व बारोही व्रतोमें जाननें, अरु साधुके सर्वप्रत्याख्यानोंमें अनशन पर्यंत यही चार आगार जानने ॥ इति श्री तपगङ्गोये गणिश्रीमणिविजय तद्धित्य मुनिश्री बुद्धिविजय तद्धित्य मुनि आत्माराम अनदविजयविरचिते जैनतत्त्वादशे सम्यग्दर्शननिर्णयनामा सप्तमपरिच्छेद संपूर्ण ॥ ७ ॥

सकी प्रशंसा करे कि तुम बड़ा अच्छा काम करते हो, तुमारा जन्म सफल है, इत्यादि प्रशंसा करे, सो चौथा अतिचार है

५ पांचमा मिथ्यादृष्टिकी परिचयकरनी सो अतिचार है, सो मिथ्या दृष्टिके साथ बहुत मेल (मिलाप) रख, एक जगें जोजन सवास करे, इत्यादि है, क्योंकि बहुत मिथ्यादृष्टिके साथ मेल रखनेसे मिथ्यादृष्टिकी वासना लग जानेसे धर्मसे घृष्ट हो जाता है, इस वास्ते मिथ्यादृष्टिका बहुत परिचय करना ठीक नहीं यह पांचमा अतिचार है.

अब जब गृहस्थको सम्यक्त्व देते हैं, तब उसको गुरु है आगार मत जाते हैं जे कर ये है कारणोंसे तुमको कोइ अनुचित कामनी करणा पड़े, तो तुमको ये है आगार रखाये जाते हैं, जिनसे तुमारा सम्यक्त्व कलकित न होवेगा, सो है आगार कहते हैं

१ प्रथम “रायानिर्गणेण” सो राजा उस नगरका स्वामी जे कर वो राजा कोइ अनुचित काम जोरावरीसे करावे, तो सम्यक्त्वमें दूषण नहीं.

२ दूसरा “गणानिर्गणेण” गणनाम ज्ञाति तथा पंचायत, वे कहे, जो यह काम तुम जरूर करो, नहीं तो ज्ञाति, तथा पंचायत तुमको बड़ा दुःख देवेगी, उस बखत जे कर वो काम करना पड़े, तो सम्यक्त्वमें अतिचार नहीं

३ तीसरा “बलानिर्गणेण” सो बलवत चोर म्लेच्छादि तिनोंके वल पड़नेसे वो कोइ अपनी जोरावरीसे अनुचित काम करवावे, तोनी दूषण नहीं

४ चउथा “देवानिर्गणेण” सो कोइ कुछ देवता क्षेत्रपालादि अंतरिक्ष में आवेश करके अनुचित काम करावे, तो जग नहीं तथा कोइ देव तो मरणांत डख देवे, तब मनमें धैर्य न रहे, तब मरणांत कुछ जानके कोइ विरुद्ध काम करना पड़े, तो सम्यक्त्वमें अतिचारभग नहीं

५ पांचमा “गुरुनिग्गहेण” गुरु सो माता, पितादि उनके आग्रहसे कुछ अनुचित करणा पड़े, तथा गुरु कहिये, धर्माचार्यादि, तथा जिनमदिर, सो कोइ अनार्य गुरुको सकट देता होवे, तथा जिनमदिरको तोड़ता होवे, जिनप्रतिमाको खनन करता होवे, सो गुरु निग्रह है तिनोंकी रक्षा वास्ते कोइ अनुचित काम करणा पड़े, तो सम्यक्त्वमें दूषण नहीं

६ छठा “चित्तिकतारेण” वृत्ति जे दुष्कालादि आपदा आ पड़े, तब आजीविकाके वास्ते किसी मिथ्यादृष्टिके अनुसार चलना पड़े, तथा आ

पेहिंसा है तीसरी प्रमादहिंसा, सो आकुट्टी अर्थात् जानके काम जोगमें तीव्र अजिलापासे कामका जोस चढाने वास्ते त्रस जीवकी हिंसा करे, किसी जीवकों मारके गोली मालूम प्रमुख बना करके खावे, सो आकुट्टी प्रमादहिंसा है चौथी कल्पहिंसा, सो अपना घरका काम काज, रक्षण, पीतणादि करते त्रस जीवकी हिंसा हो जावे, सो प्रमादहिंसा है इन चारो हिंसायोमें प्रथम हिंसा तो बिजकुल नहीं करणी, तिस वास्ते यहा सकल्प करके आकुट्टी, तथा दर्प करके त्रस जीव हणनेका त्याग करे, जैसें यह कीडी जाती है, इसकों मै मारु? ऐसे सकल्प करके दणे, हणा वे, तिसकों आकुट्टीसकल्प कहते हैं ऐसे सकल्प कर के निरपराधो जी वोंको बिना कारणके न हणुं न हणाउ, अरु सांसारिक आरज रंधनादि करते, तथा पुत्रादिकके शरीरमें कीडे आदिक जीव उत्पन्न होवे, तदा औ पथादि करते यत्नसें करे तथा घोडा, बलद, प्रमुखकों चावकादि मार णां पडे उसका आगार रक्के, तथा पेटमें छुमी, गमोजा, तथा पगमें नह रवा, अर्थात् वाला, तथा हरत, चम, जू, प्रमुख अपने शरीरमें उपजे, तथा मित्रादिक स्वजनादिकके शरीरमें उपजे, तिसके उपचार करणोकी जयणा रक्के, क्योंकि साधुको तो त्रस, अरु स्थावर, सूक्ष्म, अरु बादर, सर्व जीवोंकी हिंसा नवकोटी विष्णु-६ प्रमादके योगोंसें सर्व हिंसाका त्या ग है, इस वास्ते साधुकों तो बीस विश्वा दया है, अरु गृहस्थसें तो स वा विश्वा दया पल सकी है, तिसका स्वरूप लिखते हैं

॥ गाथा ह्रद ॥ जीवा सुदुमा शूला, सकप्पा आरजा नवे डुविहा ॥ सवरा द निरवराहा, साविस्का चेव निरविस्का ॥ १ ॥ अर्थ—जगत्में जीव दो प्र कारके हैं एक थावर, दूसरा त्रस, तिनमें थावरोंके दो जेद हैं एक सू क्ष्म, दूसरा बादर, तिनोमें सूक्ष्मजीवोंकी तो हिंसा होतीही नहीं है, क्यों की अति सूक्ष्म जीवोंके शरीरकों बाह्य शस्त्रका घाव नहीं लगता है, पर तु इहा तो सूक्ष्म शब्द, थावर जीव, पृथ्वी, पाणी, अग्नि, पवन, वनस्प तिरूप जो बादर पांच थावर हैं, तिनका वाचक है, अरु स्थूलजीव सो दीर्घिय तीक्ष्णिय, चतुरिंद्रिय, पंचिंद्रिय, जानना, इन दोनो जेदोंमें सर्व जीव आ गये, तिन सर्वकी त्रिकरणछ-६सें साधु, रक्षा करता है, तिस वास्ते साधुके बीस विश्वा दया हैं, अरु आवकसें तो पांच थावरकी दया पलती

## ॥ अथ अष्टम परिच्छेद प्रारंभः ॥

इस परिच्छेदमें चारित्रका स्वरूप लिखते हैं चारित्र धर्मके दो नेद हैं एक सर्वचारित्र, एक वेशचारित्र, उसमें सर्वचारित्र धर्म तो साधुमें होता है, तिसका स्वरूप गुरुतत्त्व परिच्छेदमें लिख आये है तहांसे जान लेनां अरु वेश चारित्रके बारह नेद हैं, सो गृहस्थका धर्म है, सो बारह व्रतोंका किंचित् स्वरूप लिखते हैं तिनमें प्रथम स्थूलप्राणातिपात व्रतका स्वरूप लिखते है

१ प्रथम प्राणातिपातविरमणव्रतके दो नेद हैं एक इव्यप्राणातिपात, दूसरा जावप्राणातिपात व्रत, तिनमें इव्य प्राणातिपात व्रत ऐसे है, कि पर जीवोंको अपना आत्मा समान जान करके तिनके दश इव्यप्राणोंकी रक्षा करे, सो इव्यप्राणातिपात विरमणव्रत कहिये ये व्यवहार दयारूप है, तथा दूसरा जावप्राणातिपात, सो अपना जीव कर्मके वश पडा हुआ दुख पाता है, अपने जे जाव, प्राण, ज्ञान, दर्शन, चारित्रादिक, तिनका मिथ्यात्व कषा यादिक अद्युः प्रवर्तनसें प्रतिकूल घात हो रही है, सो अपने जीवों कर्मशत्रुसें बुडाने वास्ते उपाय करणां, सो उपाय यह है, क आत्मरमण ता करे, परजाव रमणता ल्यागे, शुद्धोपयोगमें प्रवर्त्ते, कर्मके उदयमें अव्यापक रहे, एक स्वजावमग्नता, यही समस्त कर्मशत्रुके उद्भेद करनेको अमोघ शस्त्र हैं एतावता सकल परजाव इष्टता दूर करी, स्वरूप सन्मुख उपयोग रके, तिसका नाम जावप्राणातिपात विरमणव्रत कहिये, इसका नाम जाव दयाहै इहां स्थूल नाम मोटा दृष्टिगोचर हाले, चाले, असा जो त्रस जीव तिसको सकल्प करके न हणूगा

इहा हिंसा चार प्रकारकी है एक आकुट्टी, सो निषेध वस्तुकों उत्साहसे करे, जैसे सपूर्ण फलका नडथा करनां, आवककों निषेध है, अरु जिसने जितने फल खानेमें रके हैं, उन फलोंमेंसूजी किसी फलका नडथा नहीं करनां, अरु जो मनमें उत्साह धरके नडथा करे, तो आकुट्टी हिंसा होवे दूसरी दर्पहिंसा, सो चित्तके उद्वरंगसे (उन्मत्तपणसें) मनमें गर्व धरके दौड करे, जैसे गाडी घोडा प्रमुख दौडते है, यह आकुट्टी व



नोंके दूर करणो वास्ते कीड़ाओंकी जगामें औषधि लगानी पडती है, अरु इन जीवोंने श्रावकका कुछ अपराधनी नहीं करा है, क्योंकि वो बिचारे अपने कर्मोंके वशसें ऐसी योनिमें उत्पन्न हूयें हैं, कुछ श्रावकका बुरा करनेकी जावनासें उत्पन्न नहीं हूवे है, तो उनकी हिंसानी श्रावकसें ल्या गी नहीं जाती है, इस वास्ते फेर अर्ध जाता रहा शेष सवा विश्वाकी दया रह गइ, यह सवा विश्वा दयानी शुद्ध श्रावक होवे, सो पाल सकता है, एतावता सकल्पसें निरपराध त्रस जीवोंको कारण बिना हणुं नहीं, यह प्रतिज्ञा जहा लगि अपनी शक्ति रहे, तहां लगि पाजे, निर्ध्वंसपणा न करे, सदा मनमें यह जावना रके, कि मत मेरेसें कोई जीव मर जाय ?

तथा घरमें आरज करतेनी यत्न करे, तथा लकड़ी जलाने वास्ते लेवे, तब सड़ी हुई न लेवे, परंतु आगेंको जिसमें जीव न पड़े, ऐसी पक्की, सू की लकड़ी लेवे, और रसोईकी वखत लकड़ीको जटका कर जीव रहित करके जलावे, तथा घी, तेल, मीठा प्रमुख रस जरी वस्तुके वासणका मुख बांध कर यत्नसें राखे, उघाडा न रके, तथा चूलेके उपर अरु पाणीके स्थान उपर चढ़वा अर्थात् बत, उपर कपडा ताणो, तथा खानेको जो अन्न ब्यावे, सो नीजा हूया न ब्यावे, शुद्ध नवा अन्न खानेको ब्यावे, कदापि एक वर्षके उपरांतका अन्न ब्यावे, तो जिसमें जीव न पड़े होवे, सो ब्यावे, तथा पाणीके ढानने वास्ते बहुत गाढा दृढ बख रके, एक प्रहर पीछे पाणी को फेर ढान लेवे, जो जीव निकले, सो जीव जिस कूवेका पाणी होवे, उसी में माल देवे, तथा वर्षा ऋतुमें बहुत जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है, तिस वास्ते गाढी, रथकी अस्वारी न करे, क्योंकि जहां चक्र फिरता है, तहां असंख्य जीवोंका विध्वंस होता है, हरिकाय, बहुबीजा फल, त्रस स युक्त फल, न खावे, तथा खाटमें माकड़ प्रमुख जीव पड जाते हैं, इस वास्ते धूपमें न रके, दूसरी खाट बदल लेवे, तथा सड़्या हुआ अन्न धूपमें न रके, चूरा पाणी, अन्नके ससर्गवाला मोरीमें न गेरे, क्योंकि मोरीमें बहुत जीव उत्पन्न हो जाते हैं, अरु मोरीके सड़ जानेसें घरमें विमारी हो जाती है, तथा चैत्रवदि एकमसें ले कर पचौवाला शाक, आठ मास तक न खावे, क्योंकि पत्रशाकमें बहुत त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं, एक तो त्रस जीवोंकी हिंसा होती है, अरु दूसरा उन त्रस जी

नहीं है, सचित्र आहारादि कारणसें अवश्य हिंसा होती है इस वास्ते दश विश्वा दया दूर हो गई, शेष दश विश्वा रह गई, एतावता एक त्रस जीवकी दया रहे, उस त्रस जीवकेजी दो जेद हैं, एक सकल्पसें हनना, दूसरा आरंजसें हनना, तिनमें आरंज हिंसाका आवकको त्याग नहीं है, किंतु संकल्प हिंसाका त्याग है, अरु आरंज हिंसामें तो यत्न है, परंतु त्याग नहीं है, क्योंकि आरंज हिंसा तो आवकसें होती है, इस वास्ते दश विश्वामेंसू पांच विश्वा फेर जाता रह्या, एतावता संकल्प करके त्रस जीवकी हिंसाका त्याग है, फेर इसकेजी दो जेद हैं, एक सापराधी है, दूसरा निरपराधी है, तिनमें जो निरपराधी जीव हैं, उसको नहीं हनना, अरु सापराधी जीवकू हननेकी जयणा है, जिस वास्ते सापराधी जीवकी दया सदा सर्वथा आवकसे नहीं पलती है, क्योंकि घरमेंसें चोर चोरी करके वस्तु लीये जाता है, सो बिना मारे कूटे गड़ता नहीं, तथा आवक की स्त्रिसें कोई अन्य पुरुष अनाचार सेवता देखनेमें आवे, तिसको मारणा पड़े, तथा कोई आवक, राजा है, तथा राजाका आदेशसेंती युद्ध करनेको जावे, तब प्रथम तो आवक शस्त्र चलावे नहीं, परंतु जब शत्रु शस्त्र चलावे मारणेको आवे, तब तिसको मारणा पड़े, तथा सिंहादि जनावर खानेको आवे, तब उसको मारणा पड़े, तब सकल्पसेंजी हिंसाका त्याग नहीं इस वास्ते पांच विश्वामेंसूजी अर्द्ध जाते रहे, पीछे अठ्ठाई विश्वा दया रह गई, मात्र निरपराधी त्रस जीव दृष्टिगोचर आवे, तिसको न मारु ? यह नियम रहा, इसकेजी दो जेद हैं एक सापेक्ष, दूसरा निरपेक्ष, इनमेंजी सापेक्ष निरपराधी जीवकी आवकसें दया नहीं पलती है, क्योंकि आवक जब आप घोड़ा, घोड़ी, बैल, रथ, गाड़ी प्रमुखको अस्वारी करके घोड़ादिक को हांकता है, तब घोड़े आदिकको चावकादि मारता है, यहां घोड़े तथा बैलादिकोंने कुछ इसका अपराध नहीं करा है, उसकी पीठ ऊपर तो चढ़ रहा है, अरु यह जानता नहीं कि इस विचारे जीवकी चलनेकी शक्ति है, कि नहीं है ? जब वे जीव हलवे चलते हैं, तथा नहीं चलते हैं, तब अज्ञानके उदयसें उनको गालीयां देता है, मारताजी है, यह निरपराधीकोजी उत्तर देता है, तथा अपने शरीरमें, तथा आपणा पुत्र, पुत्री, न्याती, गोतीके म सुक्रमें तथा कर्णादि अवयवमें तथा अपने मुखके दांतमें कीड़ा पड़े, ति

अरु कदापि अग्रिका नय दूया तो जलवि बूट नहीं सकते हैं, तब मर नी जाते हैं, इस वास्ते कठिन बधननी अतिचार है, इस हेतुसे जनावर को ढीले बधनसे बांधना चाहिये अरु कोइ गुनेगार मनुष्य होवे, उस कोँजी निर्दय हो कर गाढा बंध न बांधना चाहिये, यह दूसरा अतिचार है

३ तीसरा ठविच्छेद अतिचार है सो बैल प्रमुखका कान, नाक, बिदा वे, नथ गेरे, खस्ती करे, यह तीसरा अतिचार है

४ चउथा अतिचारारोपण अतिचार है, सो बैल प्रमुखके उपर जितना नार जादनेकी रीती है, तिससे अधिक नार जादे, तब अतिचारा रोपण अतिचार होता है, आवकको तो सदा जिस बैल, रासज, गाढी प्रमुखमें नार जादते होवे, उससेंजी पांच सेर, दश सेर, नार कम जादना चाहिये, तो व्रत शुद्ध रहे, तिसमेंजी जे कर कोइ जानवरकी चल नेकी शक्ति कम होवे, तब बिवेकी होवे, सो तिस नारकोँजी थोड़ा कर वेवे, अरु जानवर डुर्बल होवे, तो तिसकी घास दाणेकी खबर लेवे, पर तु मनमें ऐसा विचार न करे कि, सर्व लोक जितना नार जादते हैं, तिन के बराबर मैनी जादता हू, यह तो व्यवहार शुद्ध है ऐसा न विचारे, अधिक बोझ होवे, तो और जाड़ा कर लेवे, आवकोंका यह व्यवहार है

५ पाचमा अतिचार जात पाणीका व्यवच्छेद करना, सो जो बलद घोड़ेके खाने योग्य होवे, सो बढ कर देवे, अथवा उसमेंसू कबुक काढ लेवे, अरु खानेका समय लघा कर पीठे खानेको देवे, तो अतिचार लगे, तथा किसीकी आजीविका नौकरी बढ करे, वोनी इसी अतिचारमें है आवक तो दासी, दास, कुटुब, चौपाये, बैलादि, इन सर्वके खाने पीनेकी खबर ले के पीठे आप नोजन करे अरु उपलक्षणसें हिंसाकारी मंत्र, तंत्रादि किसीको करे, वेनी अतिचार जानने यह पांच अतिचार, आवक जान तो लेवे, परतु करे नहीं यहा बारह व्रतोंके सर्व अतिचार जग होने के सनवासरवकी विशेष चर्चा देखनी होवे, तब धर्मरत्न प्रकरणकी टीका श्रीदेवेन्द्ररिक्त है, सो देख लेनी, इहां तो नि केवल अतिचारही मै लिखू गा ॥ इति आवक प्रथम व्रतं संपूर्ण ॥

अथ दूसरा स्थूलमृपावाद विरमणव्रतका स्वरूप लिखते हैं स्थूल नाम है, मोटेका उस मोटे फूलका विरमण (त्याग) करना, क्योंकि फूल

वोंके खानेसें अनेक रोग (बिमारीयां) उत्पन्न हो जातीयां हैं, अरु शीत कालमें एक मास तथा वर्षाकालमें बीस दिन, तथा वर्षा ऋतुमें पंद्रह दिनके उपरांतकी बनी दुइ मिठाई ( पकान्न ) न खावे, क्योंकि उसमें त्रस स्थावर जीव उत्पन्न होते हैं, अरु खानेवालेको रोगोत्पत्तिनी हो जाती है, तथा वासी अन्न, रोटी प्रमुख न खावे, क्योंकि इनमें जीवोत्पत्ति होती है अरु रोगनी हो जाता है, बुद्धि मंद हो जाती है, तथा घरमें सा वरणी अर्थात् बुहारी, कोमल शण प्रमुखकी रस्के, जिस्सें जीव न मरे, तथा स्नान, बहुते जलसें न करे, अरु रेतली नूमिकामें स्नान करे, तथा मोटी परातमें बैठके स्नान करे, अरु स्नानका पाणी मैदानमें थोड़ा थोड़ा करके गेर देवे, मोरी उपर बैठके स्नान न करे, तथा जहां पर्यंत थोड़े पापवाला व्यापार मिले, तहां लग महापापकारी व्यापार नौकरी आदिक न करे, तथा किसीका दूक तोड़े नहीं, घरमें जूते अन्नका पाणी दो घड़ी उपरांत न रस्के, क्योंकि उसमें जीव उत्पन्न हो जाते हैं, तथा जो वस्तु उगावे, तथा रस्के, तब पहिलां उस जगाको नेत्रोंसें देखे, पूज लेवे, पीनेसें वस्तु रस्के, मोटी मोरीमें जल गेरे नहीं, तथा बीवा बत्ती जलावे, तो फानसावि यत्नसें जीवरक्षा करे, तथा जिस पात्रसें पाणी पीवे, वो पात्र, फेर जलमें छूटा न मबोवे, क्योंकि मुखकी लालां लगनेसें जीव उत्पन्न होते हैं, अरु बहुतांकी छूट खाने पीनेसें बुद्धि त क्रमण हो जाती है, अरु केशक रोग ऐसें हैं कि जिस रोगीका छूटा खावे, पीवे, उस रोगीका रोग, खाने पीनेवालेको लग जाता है, सो रोग यह है कि कुष्ठ, क्षय, रेजस, शीतला वगरे इस वास्ते वस्तु छूटी न करनी, अरु बहुतांके साथ एकठा खावे नहीं, अरु मटकेसें पाणी काढने वास्ते दमोदार काठका चट्ट रस्के इत्यादि शुद्ध व्यवहारमें प्रवर्त्ते, तो श्रावकके दया, सवा विश्वा होवे, इसी रीतीसे प्रथम त्रत श्रावकके शुद्ध है, इस त्र तके पांच अतिचार हैं, अर्थात् पांच कलक हैं, तिनको वर्जे, सो लिखते है

१ प्रथम वधअतिचार सो क्रोधके उदयसें, अरु बलके अजिमानसे, निर्दय हो कर गाय, घोडा, प्रमुखको कूटे, मारके चलावे, सो प्रथम अतिचार.

२ दूसरा वधअतिचार सो गाय, बलद, बठडा प्रमुख जीवोंको कति न जवरा वधनसे वावे, वो जीव कठिन वधनसे अति डर पाते है,

अरु कदापि अग्रिका नय दूआ तो जलदि बूट नहीं सकते हैं, तब मर नी जाते हैं, इस वास्ते कठिन बधननी अतिचार है, इस हेतुसे जनावर कों ढीले बधनसे बांधना चाहिये अरु कोइ गुनेगार मनुष्य होवे, उस कोंनी निर्दय हो कर गाढा बंध न बांधना चाहिये, यह दूसरा अतिचार है

३ तीसरा ठविछेद अतिचार है सो बैल प्रमुखका कान, नाक, ठिदा वे, नथ गेरे, खस्ती करे, यह तीसरा अतिचार है

४ चउथा अतिचारारोपण अतिचार है, सो बैल प्रमुखके उपर जितना नार लादनेकी रीती है, तिस्से अधिक नार लादे, तब अतिचारारोपण अतिचार होता है, आवकको तो सदा जिस बैल, रासज, गाड़ी प्रमुखमें नार लादते होवे, उससेनी पांच सेर, दश सेर, नार कम लादना चाहिये, तो व्रत शुद्ध रहे, तिसमेंनी जे कर कोइ जानवरकी चल नेकी शक्ति कम होवे, तब विवेकी होवे, सो तिस नारकोंनी थोड़ा कर देवे, अरु जानवर दुर्बल होवे, तो तिसकी घास दाणेकी खबर लेवे, परं तु मनमें ऐसा विचार न करे कि, सर्व लोक जितना नार लादते हैं, तिन के बराबर मैनी लादता हूँ, यह तो व्यवहार शुद्ध है ऐसा न विचारे, अधिक बोण होवे, तो और जाड़ा कर लेवे, आवकोंका यह व्यवहार है

५ पांचमा अतिचार जात पाणीका व्यवच्छेद करना, सो जो बलद घोड़ेके खाने योग्य होवे, सो बंद कर देवे, अथवा उसमेंसुं कबुक काढ लेवे, अरु खानेका समय लया कर पीठे खानेको देवे, तो अतिचार लगे, तथा किसीकी आजीविका नौकरी बंद करे, वोनी इसी अतिचारमें है आवक तो दासी, दास, कुटुंब, चौपाये, बैलादि, इन सर्वके खाने पीनेकी खबर ले के पीठे आप नोजन करे अरु उपलक्षणसे हिंसाकारी मंत्र, तंत्रादि किसीको करे, वेनी अतिचार जानने यह पांच अतिचार, आवक जान तो लेवे, परंतु करे नहीं यहा बारह व्रतोंके सर्व अतिचार जग होने के सजवासजवकी विशेष चर्चा देखनी होवे, तब धर्मरत्न प्रकरणकी टीका श्रीवेङ्कटसूरिरुत है, सो देख लेनी, इहां तो नि केवल अतिचारही में लिखू गा ॥ इति आवक प्रथम व्रतं संपूर्ण ॥

अथ दूसरा स्थूलमृपावाक विरमणव्रतका स्वरूप लिखते हैं स्थूल नाम है, मोटेका उस मोटे फूतका विरमण (त्याग) करना, क्योंकि फूत

वोंके खानेसे अनेक रोग (विमारीयां) उत्पन्न हो जातीयां है, अरु शीत कालमें एक मास तथा वर्षाकालमें बीस दिन, तथा वर्षा ऋतुमें पंद्रह दिनके उपरांतकी बनी दुग्ध मिठाई ( पकान्न ) न खावे, क्योंकि उसमें त्रस स्थावर जीव उत्पन्न होते हैं, अरु खानेवालेको रोगोत्पत्तिनी हो जाती है, तथा वासी अन्न, रोटी प्रमुख न खावे, क्योंकि इनमें जीवोत्पत्ति होती है अरु रोगनीहो जाता है, बुद्धि मंद हो जाती है, तथा घरमें सा वरणी अर्थात् बुहारी, कोमल शृण प्रमुखकी रस्के, जिस्से जीव न मरे, तथा स्नान, बहुत जलसे न करे, अरु रेतली जूमिकामें स्नान करे, तथा मोटी परातमें बैठके स्नान करे, अरु स्नानका पाणी मैदानमें थोड़ा थोड़ा करके गेर देवे, मोरी उपर बैठके स्नान न करे, तथा जहां पर्यंत थोड़े पापवाला व्यापार मिले, तहां लग महापापकारी व्यापार नौकरी आदिक न करे, तथा किसीका हक तोड़े नहीं, घरमें जूते अन्नका पाणी दो घड़ी उपरांत न रस्के, क्योंकि उसमें जीव उत्पन्न हो जाते हैं, तथा जो वस्तु उठावे, तथा रस्के, तब पहिलां उस जगाको नेत्रोंसे देख लेवे, पूज लेवे, पीछेसे वस्तु रस्के, मोटी मोरीमें जल गेरे नहीं, तथा दीवा बत्ती जलावे, तो फानसादि यत्नसे जीवरक्षा करे, तथा जिस पात्रसे पाणी पीवे, वो पात्र, फेर जलमें जूग न रवोवे, क्योंकि मुखकी लाला लगनेसे जीव उत्पन्न होते हैं, अरु बहुतोंकी जूठ खाने पीनेसे बुद्धि त क्रमण हो जाती है, अरु केष्क रोग ऐसे हैं कि जिस रोगीका जूग खावे, पीवे, उस रोगीका रोग, खाने पीनेवालेको लग जाता है, सो रोग यह है कि कुष्ठ, क्षय, रजस, शीतला वगरे इस वास्ते वस्तु जूठी न करनी, अरु बहुतोंके साथ एकठा खावे नहीं, अरु मटकेसे पाणी काढने वास्ते दमीदार कातका चट्टू रस्के इत्यादि छद्म व्यवहारमें प्रवर्त्ते, तो आवकके दया, सत्ता विश्वा होवे, इसी रीतीसे प्रथम त्रत आवकके शुद्ध है, इस त्र तके पांच अतिचार हैं, अर्थात् पांच कलक हैं, तिनको वर्ज्य, सो लिखते हैं

१ प्रथम वधअतिचार सो क्रोधके उदयसे, अरु वलके अजिमानसे, निर्दय हो कर गाय, घोडा, प्रमुखको कूटे, मारके चलावे, सो प्रथम अतिचार

२ दूसरा वधअतिचार सो गाय, वलद, वठडा प्रमुख जीवोंको कठि न जवरा वधनसे बांधे, वा जीव कठिन वधनसे अति दुःख पाते हैं,

के त्यागी जीव तो षट् वर्शनमेंजी हो सके है, परंतु नावमृपावादका त्यागी तो एक श्रीजिनेंइदेवके मतमेंही मिलेगा, जो जीव श्रद्धारुचि शुद्ध धारेगा, सोइ होवेगा अब इस मृपावादके पांच मोटे जेठ हैं, सो श्रावककों अवश्य वर्जने चाहियें, सो कहते हैं

१ प्रथम कन्यालीकफूठ, सो अपणे मिलापीकी कन्या है, उसकी स गाइ होने लगी होवे, तब कन्याके लेने वाले पूछे कि यह कन्या कैसी है ? तब वो मिलापीकी प्रीतिसें उस कन्यामें जो दूषण होवे, सो ठिपावे, गुण न होवे, तोजी अधिक गुणवाली कह देवे, कि यह कन्या निर्दोष है, और सी कुलवान, लक्ष्णवान, साक्षात् देवांगना समान तुमकों मिलनी मुशकि ल है, औरसा कह देवे, और जे कर मिलापीके साथ देप होवे, तदा वो कन्या जो निर्दोष लक्ष्णवती होवे, तोजी कहे कि इस कन्यामें श्रद्धे लक्ष्ण नहीं है, विहालनेत्री है, इसके साथ जो सबध करेगा, वो पश्चात्ताप करेगा, औरसे अणहोये दूषण बोल देवे, यह कन्यालीक फूठ है प्रथम तो व्रतधारी श्रावक किसीकी सगाइ जगहमें पड़े नहीं, और जे कर आपणा सबधो मित्रादिक होवे वो पूछे, तब यथार्थ कहे, कि जाइ ! तुम अपना निश्चय कर जो, क्योंकि जन्मपर्यंतका सबध है, औरसे कहे, परंतु फूठ न बोले यह कन्यालीकमें उपलक्ष्णसेंती सर्व दोषगवालेका फूठ न बोले

२ दूसरा गवालीक फूठ सो सर्व चौपद जो हाथी, घोड़ा, बलद, गाय, नैंस, प्रमुख सबधी फूठ न बोले

३ तीसरा जूम्यालीक फूठ सो दूसरेकी धरतीको अपनी कहे, तथा औरकी जूमिको औरकी कहे, तथा धर, हवेली, वाही, बाग, (बगीचा) वृक्षादिक, सबधी तथा सर्व परीग्रह संबंधीजी फूठ न बोले.

४ चौथा थापणमोसाका फूठ है कोइ पुरुष श्रावकको प्रतीत वाला जान कर, उसके पास बिना साक्षी तथा लिखत करे बिना कोइ वस्तु रख गया है, फिर वो मांगने आवे, तब नामुकर जावे, कहे कि मैं तुम कों जानताही नहीं, तुम कौन हो ? औरसा फूठ बोलके उसकी वस्तु रख लेवे, यहजी श्रावकने नहीं करना

५ पांचमा फूठी साक्षी जरनी सो वो जणे आपसमें जगडते है, तिस में फूठे पासों धन ले कर अथवा उसके मुहलाह जैसें फूठी गवाही देनी,

बोलनेसें जगत्में उसकी अप्रतीति हो जाती हैं, अपयश होता है, धर्मकी निंदा होती है, तथा अपने मतलब वास्ते जो कम देख करना इसका जो त्याग, सो मृषावादविरमणव्रत कहते हैं. तिस मृषावादके दो नेद हैं, एक इव्यमृषावाद, दूसरा जावमृषावाद, तिनमें जो जान कर तथा अजान पणसें फूठ बोले, सो इव्यमृषावाद है, तथा सर्व परजाव वस्तुको अर्थात् पुद्गलादि जह वस्तुको आत्मत्व बुद्धि करके अपना कहे, तथा राग, द्वेष, कृष्णादि लेश्यासें आगमविरुद्ध बोले, शास्त्रका सञ्ज्ञा अर्थ क्युक्तिसें नष्ट करे, उत्सृज बोले, उसको जावमृषावाद कहते हैं

यह व्रत सर्वव्रतमें मोटा है, इसके पालनेमें बहुत छद्मउपयोग अरु दुस्यारी चाहियें, क्यों कि प्रथमव्रतमें तो जीव मात्रके जाननेसें दया पल सकती है अरु दूसरोंकी वस्तुको बिना दीये न लेनेसें अदत्तविरमण तीसरा व्रत पल जाता है, तथा स्त्री मात्रका सग त्यागनेसें चौथा व्रत पलता है, तथा नवविध परिग्रहके त्यागनेसें परिग्रहव्रतजी पलजाता है, इसी तरें एकेक इव्यके जाननेसें यह चारो व्रत पाले जाते हैं, अरु मृषावाद विरमणव्रत तो जहां लगि षट्इव्यकी गुणपर्यायसें तथा इव्य, क्षेत्र, काल, जात्रकी अष्टी तरेंसे पिढाण न होवे, सम्मति प्रमुख इव्यानु योगके शास्त्र न पढे, बहुत निष्ठुन ज्ञानवान् न होवे, तहां तलक पालना कठिन है, क्योंकि एक पर्यायमात्रजी विरुद्ध जाणण करनेसें यह व्रत जग हो जाता है, इसी वास्तेही साधुओंको बहुत बोलणां शास्त्रमें निषेध करा है, अरु जे पूर्वोक्त चारो महाव्रतोंमेंसू एक महाव्रत जेकर जग हो जावे, तब तो चारित्र जग होवे, अरु नर्हीजी जग होवे, क्योंकि जे कर एकही कुशील सेवे, तो सर्वथा चारित्र जग होवे, शेष व्रतो खमनसें देखजंग होवे, परंतु सर्वथा जग नर्ही होवे, यह व्यवहार जाण्यमें कहा है परंतु उस का ज्ञान, दर्शन, जग नर्ही होवे, अरु जब मृषावादविरमणव्रत जग होवे, तब तो ज्ञान, दर्शन, अरु चारित्र, यह तीनोही जठामूलसें जाते रहते है अरु मर करके दुर्गतिमें जाता है, अनंत ससारी कुर्जन बोधी हो जाता है, इस वास्ते जे कर यह व्रत पालनां होवे, तो षट्इव्य के गुण पर्याय जाननेमें यति उद्यम करे, जे कर बुद्धिकी मदता होवे, तब गीतार्थके कहने प्रमाण श्रद्धा प्ररूपणा करे, क्योंकि इव्यमृषावाद



हो जावे, तो राजदम, अपयश, अप्रतीति होवे, इस वास्ते श्रावक अदत्तादानका त्याग करे इस अदत्तादान व्रतके दो जेद हैं सो कहते हैं

प्रथम इव्य अदत्तादानविरमण व्रत सो पूर्वोक्त प्रकारसें दूसरायोंकी वस्तु पढी विसरी छेवे नहीं, सो इव्य अदत्तादान विरमणव्रत जाननां

दूसरा नावअदत्तादानविरमण व्रत सो पर जो पुजल इव्य, तिसकी जो रचना वर्ण, गध, रस, स्पर्शादि रूप, तेवीस विषय, तथा आठ कर्म की वर्गणा, यह सर्व पराइ वस्तु हैं, सो वस्तु तत्त्वज्ञानमें जीवकों अग्राह्य है, तिसकी जो उदय नाव करके बांठा करणी, सो नाव चोरी है तिस को जिनागमके सुननेसें त्यागनां, पुजलानवी पणा मिटाना, सो नाव अदत्तादानविरमणव्रत कहियें जो जो कर्मप्रकृतिका बध मिटा है, सो नाव अदत्तविरमणव्रत कहियें सामान्य प्रकारसें अदत्तके चार जेद हैं

प्रथम किसीकी वस्तु, विना दीये छे छेनी, इसका नाम स्वामीअदत्त है दूसरा सचित्त वस्तु अर्थात् जीववाली वस्तु फूल, फल, बीज, गुह्या, पत्र, कद, मूलादिक, तथा बकरा, गाय, सुअरादिक, इनको तोडे, ठेदे, जेदे, काटे, सो जीवअदत्त कहियें क्योकि फूलादि जीवोंने अपने शरीरके ठेदने जेदनेकी आज्ञा नहिं दीनी है, जो तुम हमको ठेदो, जेदो, इस वास्ते इसका नाम जीव अदत्त है तीसरा जो वस्तु, तीर्थकर अर्हत्तनें निषेध करी है, तिसका जो ग्रहण करणां, जैसे साधुको अष्ट-आहार छेनेका निषेध है, अरु श्रावकको अन्नद्वय वस्तु ग्रहण करणेका निषेध है, सो इन पूर्वोक्तको ग्रहण करे, तो इसका नाम तीर्थकर अदत्त है चौथा गुरु अदत्त सो जैसे कोइ साधु शास्त्रोक्त निर्दोष आहार व्यवहार छु-द व्यावे, पीछे उस आहारको जो गुरुकी आज्ञा विना खावे, सो गुरु अदत्त है

यह चारो अदत्त, सपूर्ण तो जैनका यतिही त्याग सका है, गृहस्थसे तो एक स्वामी अदत्तही त्यागा जाता है, इस वास्ते इसीकी यहां मुख्यता है, तिस वास्ते पराइ वस्तु पूर्वोक्त प्रकारसें छेनी नहीं, जेकर छे छेवे, तो चोर नाम पडे, राजदम होवे, अपयश, अप्रतीति होवे, इस वास्ते न छेनी चाहियें अरु जिस वस्तुकी बहुत मनाइ नहीं है, छेनेसें चोर नाम नहीं पडता है, तिसकी जयणा करे, अरु किसीकी गिरी पढी वस्तु मिल जावे, पीछे जेकर जान जावे कि यह वस्तु अमुककी है, तब तो उसको

यहजी काम आवश्यकने नहीं करनां, इस व्रतके पांच अतिचार आवश्यक बजें.

१ प्रथम सदसान्याख्यान अतिचार सो विना विचारे किसीको कलंक देनां कि तू व्यभिचारी है, फूटा है, चोर है, इत्यादि कहनां, जे कर आव क तो किसीका प्रगट कोइ अवगुण देखे, तोजी अपणे मुखसें न कहे, तो फेर कलंक देणां, वो तो महापाप है, सो कैसें करे ?

२ दूसरा रहसान्याख्यान अतिचार है सो केइ पुरुष एकांत बैठ कें कुछ मता करते हैं, उनको देखकें कहे, कि तुम राजविरुद्ध मता करते हो, ऐसें कह कर उनकी जमी करे, राजवंश दिलावे, ए दूसरा अतिचार है

३ तीसरा स्वदार मन्त्रजद अतिचार है, सो अपनी स्त्रीने कोइ बानी बात अपणे पतिसें कही है, वो बात लोकोमें प्रगट करे, उपलक्षणसें जाइ प्रमुखकी कही बात प्रगट करे, क्योंकि लज्जनीय बातके प्रगट होनेसें स्त्री आदिक कूपा दिकमें मूव भरती है

४ चौथा मृषाउपदेश अतिचार है सो दूरसयोंको फूठी वस्तुके करनेका उपदेश करे, तथा विषय सेवनेके चौरासी आसन लिखावे, तथा दूसरा योंको दुखमें पड़नेका उपदेश करे, तथा वीर्यपुष्ट होनेकी औषधि बत लावे, जिस्सें वो बहुत विषय सेवे, जिस्सें विषय कषाय उत्पन्न होवे, ऐसा उपदेश करे यह सर्व मृषाउपदेशनामा चौथा अतिचार है

५ पाचमा कूटलेखकरण अतिचार है सो किसीके नामका फूटा पत्र बही बना लेनां, अगले अकको तोहके और बना देनां, तथा अक्षर खुरच गेरनां, जूठी मोहर ठाप बना लेनी, इत्यादिक कूट लेख अतिचार हैं, यह पांच अतिचार थरु पांच प्रकारका पूर्वोक्त फूव, सो नरकादि गति के कारण जान कर आवक बजें ॥ इति दूसरा व्रत

३ अथ तीसरा स्थूल अवचादानविरमणव्रत लिखते हैं प्रथम मोटी चोरी नीत फोड़ी कुनल देकर अथवा एकलेकों, रस्तेमें ठल बल करकें ठग लेनां, जवर दस्तिसें किसीकी वस्तु खोस लेनी, नजर बचाके किसीकी वस्तु ठग लेनी, थरु कोइ वस्तु धर गया है, जब वो मांगने आवे तब, नामुकर जावे, तथा हीरा, मोती, पन्ना प्रमुख फूवे सच्चेका थकल बदल कर देवे, इत्यादि थदनादान अर्थात् चोरीका स्वरूप है इसके करनेसें परलोकमें खाटी नरकादि गति प्राप्त होती है थरु इस लाकर्मनी प्रगट

क्यो कि जो चोरीकी वस्तु जानके लेता है, वो लेने वालाजी चोर है, जे कर जैनमतके शास्त्रोमें सात प्रकारके चोर लिखे हैं ॥ यदाह ॥ चौरश्चौरापको मन्त्री, जेदङ्ग काणककयी ॥ अन्नद स्थानदश्चैव, चौर सप्तविध स्मृत ॥ १ ॥ यह प्रथम अतिचार है

१ दूसरा प्रयोगअतिचार सो चोरी करने बजोको प्रेरणा करणी कि - अरे! तुम चुप चाप निर्व्यापार आज कल क्यो बैठ रहे हो? जेकर तुमारे पास खरची नहीं होवे, तो मैं देता हूं, अरु तुमारी व्याइ दुइ वस्तु मै बेच देऊगा, तुम चोरी करणे वास्ते जाउ इत्यादि वचनो करके चोरोंको प्रेरणा करणी, यह दूसरा अतिचार है

२ तीसरा तत्प्रतिरूपकव्यवहार अतिचार सो सरस वस्तुमें नीरस वस्तु मिला करके बेचे, जैसे केशरमें कछुनादिमिला करके बेचे, धीमें ठाठादि, हिंगमें गुड़ादि, खोटी कस्तूरी खरी करके बेचे, अफयूनमें खोट मिजाने, पुराणा वस्त्र रंगा कर नवेके जाव बेचे, रुइको पाणीसैं निजो कर बेचे, दूधमें पाणी मिलायके बेचे, इत्यादि करे, तो तीसरा अतिचार लगे

४ चौथा राजविरुद्धगमन अतिचार है सो अपणे गामके वा देशके राजाने आज्ञा दीनी है, जो फलाणे गाममें जाणा नहीं इत्यादि जो राजाकी आज्ञा है, उसका उल्लंघन करना, वैरी राजाके देशमें अपने राजाके दुकुम बिना जाना, सो चौथा अतिचार है

५ पांचमा खोटा तोला, मापा, करणेका अतिचार है सो कूट तोला, मापा, करणा, कमती तोलसैं तो वेणा, अरु अधिक तोलसैं ले लेणा, यह पांचमा अतिचार है यह पांचो अतिचारको वर्जें ॥ इति तृतीयव्रतं संपूर्ण ॥

४ चौथा मैथुनसेवनेका त्याग करना तिसका नाम मैथुनत्याग व्रत कहते हैं तिस मैथुनके दो जेद हैं, एक इव्यमैथुनत्याग, दूसरा जाव मैथुन त्याग, उसमें इव्यमैथुन तो परस्त्री तथा परपुरुषके साथ सगम करना, सो पुरुष स्त्रीका त्याग करे, अरु स्त्री पुरुषका त्याग करे, रतिक्रीडा काम सेवनका त्याग करे तिसको इव्यब्रह्मचारी तथा व्यवहारब्रह्मचारी कहियें.

दूसरा जाव मैथुन है सो एक चेतन पुरुषके विषयविलास परपरिणतिरूप, तथा तृष्णा ममता रूप, इत्यादि कुवासना, सो निश्चय परस्त्रीको मिलनां तिसके साथ लाल पाल कामविलास करनां, सो जावमैथुन जान

दे देवे, जे कर उस वस्तुके स्वामीकों न जाने, अरु अपना मन दृढ रहे, तो लेवे नहीं, अरु कदाचित् बहुमोली वस्तु होवे, अरु मनदृढ न रहे, तो उस वस्तुको ले कर अपने पास कितनेक दिन रस्के, जे कर उसका मालक कोइ जान पड़े, तो उसको दे देवे, जे कर उसका स्वामी कोइ मालम न पड़े, तो धर्मस्वातेमें उस धनको लगा देवे, जेकर लोच अधिक होवे, तो अर्द्ध धर्ममें लगा देवे तथा अपनी जमीनकुं खोदता तिसमेंसूं धन निकल आवे, तो रखनेका आगार है, परंतु इसमेंनी अर्द्ध जाग अथवा चौथा हिस्सा धर्ममें लगावे, तथा दूसरेकी जगा मोलसें लीनी होवे, उसमेंसूं खोदतां जे कर धन निकल आवे, जे कर मनमें सतोष होवे, तब तो उस मकान वालेकों वो धन दे देवे, जे कर लोच होवे, तब आपा धर्ममें लगावे, अरु आपा अपने पास रस्के, तथा कोइ पुरुष अपने पास धन रस्क कर, पीठसें मर गया होवे, अरु उसका कोइ वारस न होवे, तब आवक उस धनको जेले पंचके आगे जाहर करे, जो कुछ पंच कहे, सो करे, कदापि देश कालकी विषमतासें उस धनको जाहर करते कोइ राजसबधी क्लेश उठता मालुम पड़े, कोइ डष्ट राजा लोचके वस्त्रसें कहे कि तेरे घरमें औरनी ऐसा धन है इत्यादि होवे, तब तो मौन करके उस धनको धर्मस्थानमें लगा देवे.

तथा घरकी चोरी सो यह है कि — घरकी सर्व वस्तुओंका मालक माता पिता है, तिनके पूछे बिना धन वस्त्रादि लेनेकी जयणा रस्के, अथवा जिस के साथ प्रेम होवे, तथा जो सबधी होवे, जिसके घरमें जाने आनेका अरु खाने पीनेका व्यवहार होवे, उसके बिना पूछे कोइ फलादि वस्तु खानेमें आवे, उसका आगार रस्के, परंतु जे कर उस वस्तुके खानेसें मालकका कोइ मन दुखे, तो न लेवे इसी रीतीसे तीसरा अदत्तव्रत पाछे यह व्यवहार शुद्ध अदत्तादान विरमणव्रत है

अरु निश्चयसेंती तो जितना अवधपरिणाम दुष्टा है, गुणस्थान की वृद्धि होनेसें बध व्यवधेव दुष्टा, सो निश्चय अदत्तविरमणव्रत क हिये है इस व्रतके पांच अतिचार है, उसको वजे सो कहते है

१ प्रथम तेनादृढ अतिचार है, सो चोरकी चोराइ वस्तु तिसको तेनादृढ कहते है सो वस्तु न लेवे, एतावता चोरीकी वस्तु जाण कर के न लेवे,

साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतजग नहीं होवेगा ? ऐसा विचार करके कुमारी तथा विधवा स्त्रीके साथ जोग विलास करे, तो प्रथम अतिचार जग जावे, तथा स्त्रीजी व्रत धारक हो कर कुमारे पुरुषसें तथा रंगे पुरुषसें व्यभिचार सेवे, तब तिस स्त्रीकोंजी अतिचार जगे

१ दूसरा इत्तरपरिच्छेदहीतागमन अतिचार है तिसका स्वरूप कहते हैं इत्तर नाम थोड़े कालका है, सो थोड़ेसे काल वास्ते किसी पुरुषने धन स्वरच के वेश्यादिकोंको अपनी करके रखी है, इहां कोइ अज्ञानके उदयसें मनमें ऐसा विचार करे कि मेरे तो परस्त्रीका त्याग है, अरु इस वेश्यादिकों तो मैंने अपनी स्त्री बना करके थोड़ेसे काल वास्ते रखी है, तो इसके साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतजग नहीं होवेगा ? ऐसे अज्ञानके विचारसें उसके साथ सगम (विषय सेवन) करे, तो दूसरा अतिचार जगे अरु स्त्रीकोंजी जब अपनी सौकणकी वारीके दिनमें अपने जर्तारसे विषय सेवे, वो अपने मनमें ऐसा विचार करे, कि अपने पतिके साथ विषय सेवनेसें, मेरा व्रतजग नहीं होवेगा, क्यों कि मैंने तो परपुरुषका त्याग करा है ? यह दूसरा अतिचार इन पूर्वोक्त दोनों अतिचारोंको जो श्रावक जानता है, कि ये श्रावकों करने योग्य नहीं अरु फेर जे कर करे, तो व्रतजग होवे, परंतु अतिचार नहीं

३ तीसरा अनगक्रीडा अतिचार है सो अनग नाम कामका है, तिस काम कदर्पको जागृत करनां, आलिंगन, चुबन प्रमुख करनां, नेत्रोंका हाव, नाव, कटाह, हास्य, उन्ना, मस्करी प्रमुख परस्त्रीसें करे, सो दिलमें शोचता है कि मैंने तो परस्पर एक शय्या उपरि विषय सेवनेका त्याग करा है, परंतु पूर्वोक्त अनगक्रीडा तो नहीं त्यागी है, परंतु वो मूढमति यह नहीं जानता है, कि ऐसा काम करने वालेका व्रत कदापि न रहेगा, अरु मनसें उस जीवने माहापाप खपार्जन कर लीया, निश्चय नयके मतसें उसका व्रतजगजी हो गया, तथा अपनी स्त्रीसें चौरासी आसनोसे जोग करे, तथा पंदरा तिथिके दिसाबसें स्त्रीके अगमर्दनादि कर के काम जगावे, तथा परम कामाजिलापी होनेसें जब अपनी स्त्रीका जोग न मिले, तब हस्तकर्म करे, स्त्रीजी काम व्याप्त हो कर गुह्यस्थानमें कोइ वस्तु संचार करके हस्तकर्म करे, तब स्त्रीकोंजी अतिचार है, तिस वास्ते श्रावकों जे

नां तिसकों जिनवाणिके उपदेशसें, तथा गुरुकी हितशिक्षासें ज्ञान हुआ, तब जातिहीन ज्ञान करके अनागत कालमें महा दुःखदायी ज्ञान कर पूर्वकालमें इसकी संगतसें अनन्त जन्म मरणका दुःख पाया, इस वास्ते इस विजातीय स्त्रीको तजना ठीक है, अरु मेरी जो स्वजाति स्त्री परम नक्त, उत्तम, सुकुलिनी, समतारूप सुंदरी, तिसका संग करना ठीक है अरु विनाव परिणतिरूप परस्त्रीनें मेरी सर्वविजृम्भित हर लीनी है, तो अब सज्जुकी सहायसेंती ए दुष्ट परिणामरूप जो स्त्री, संग लगी हुई थी, तिसका थोड़ा थोड़ा निग्रह कर, त्यागनेका जाव आदर, जिस्सें बुद्धस्वभाव घटरूप घरमें आ जावे, तथा स्वरूप तेजकी वृद्धि होवे, ऐसी समझ पा करके परपरिणतिमें मग्नता त्यागे, औ कर्मके उदयमें व्यापक न होवे, बुद्ध चेतनाका संगी होवे, सो जाव मैथुनका त्यागी कहियें इहां इव्यमैथुनके त्यागी तो षट् दर्शनमें मिल सकते हैं, परंतु जावमैथुनका त्यागी तो श्रीजिनवाणी सुननेसें जेवज्ञान जब घटमें प्रगट होता है, तब नवपरिणतिसें सद्गज उदासीन रूप जाव मैथुनका त्यागी जैनमत मेंही होता है इहां स्थूल परस्त्रीगमन व्रत सो परस्त्रीका त्याग करना, परपुरुषकी विवाहिता स्त्री, तथा परकी रक्ती हुई स्त्री, तिसके साथ अनाचार न सेवना, ऐसा जो प्रत्याख्यान करना, सो परदारगमन विरमणव्रत है अरु जो अपणी स्त्री है, तिसमें सतोष कर, ऐसा जो व्रत धारण करे, तिसको स्वदारसतोष व्रत कहियें

देवांगना तथा तिर्यंचणी इनके साथ तो कायासें मैथुन सेवनका निषेध है, तथा वर्तमान स्त्री वर्जके और स्त्रीसें विवाह न करे, तथा दिनमें अपणी स्त्रीसेंजी सजोग न करे, क्योंकि दिनसजोगसे जो सतान उत्पन्न होता है, सो निर्वल होता है, जे कर कामाधिक होवे, तो दिनकीजी मर्यादा कर लेवे, इसी तरें स्त्रीजी पर पुरुषका त्याग करे, इसी रीतिसें चौथा व्रत पाले, इस व्रतके पांच अतिचार है, उसको वर्जे, सो लिखते हैं

१ प्रथम अपरिगृहीतागमन अतिचार सो बिना विवाही स्त्री (कुमारी) तथा विधवा इनको अपरिगृहीता कहते हैं, क्योंकि इनका कोई नश्वर नहीं है, जे कर कोई अल्पमति विषयानिलापी मनम विचारे, कि मैंने तो परस्त्रीका त्याग करा है, अरु एतो किसीकीजी स्त्रीयां नहीं दे, इनके

साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतजग नहीं होवेगा ? ऐसा विचार करके कुमारी तथा विधवा स्त्रीके साथ जोग विलास करे, तो प्रथम अतिचार लग जावे, तथा स्त्रीजी व्रत धारक हो कर कुमारे पुरुषसें तथा रंमे पुरुषसें व्यभिचार सेवे, तब तिस स्त्रीकोंजी अतिचार लगे

१ दूसरा इत्तरपरिग्रहीतागमन अतिचार है तिसका स्वरूप कहते हैं इत्तर नाम थोड़े कालका है, सो थोड़ेसे काल वास्ते किसी पुरुषने धन खरच के वेश्यादिकोंको अपनी करके रखी है, इहां कोइ अज्ञानके उदयसें मनमें ऐसा विचार करे कि मेरे तो परस्त्रीका त्याग है, अरु इस वेश्यादिकों तो मैने अपनी स्त्री बना करके थोड़ेसे काल वास्ते रखी है, तो इसके साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतजग नहीं होवेगा ? ऐसे अज्ञानके विचारसें उसके साथ सगम (विषय सेवन) करे, तो दूसरा अतिचार लगे अरु स्त्रीकोंजी जब अपनी सौकणकी वारीके दिनमें अपने जन्तारसे विषय सेवे, वो अपने मनमें ऐसा विचार करे, कि अपने पतिके साथ विषय सेवनेसें, मेरा व्रतजग नहीं होवेगा, क्यों कि मैंने तो परपुरुषका त्याग करा है ? यह दूसरा अतिचार इन पूर्वोक्त दोनों अतिचारोंको जो श्रावक जानता है, कि ये श्रावककों करने योग्य नहीं अरु फेर जे कर करे, तो व्रतजग होवे, परंतु अतिचार नहीं

३ तीसरा अनगक्रीडा अतिचार है सो अनग नाम कामका है, तिस काम कदर्यको जागृत करना, आलिंगन, चुवन प्रमुख करना, नेत्रोंका हाव, नाव, कटाक्ष, हास्य, उष्ण, मस्करी प्रमुख परस्त्रीसें करे, सो दिलमें शोचता है कि मैंने तो परस्पर एक शय्या उपरि विषय सेवनेका त्याग करा है, परंतु पूर्वोक्त अनगक्रीडा तो नहीं ल्यागी है, परंतु वो भूढमति यह नहीं जानता है, कि ऐसा काम करने वालेका व्रत कदापि न रहेगा, अरु मनसें उस जीवने माहापाप उपार्जन कर लीया, निश्चय नयके मतसें उसका व्रतजगनी हो गया, तथा अपनी स्त्रीसें चौरासी आसनोसे जोग करे, तथा पदरातिथिके हिसाबसें स्त्रीके अगमईनादि कर के काम जगावे, तथा परम कामाजिजापी होनेसे जब अपनी स्त्रीका जोग न मिले, तब दस्तकर्म करे, स्त्रीजी काम व्याप्त हो कर गुह्यस्थानमें कोइ वस्तु संचार करके दस्तकर्म करे, तब स्त्रीकोंजी अतिचार है, तिस वास्ते श्रावकको जे

नां तिसकों जिनवाणीके उपदेशसें, तथा गुरुकी हितशिक्षासें ज्ञान हुआ, तब जातिहीन जान करके अनागत कालमें महा दुःखदायी जान कर पूर्वकालमें इसकी सगतसें अनन्त जन्म मरणका दुःख पाया, इस वास्ते इस विजातीय स्त्रीकों तजनां ठीक है, अरु मेरी जो स्वजाति स्त्री परम जक्त, उत्तम, सुकुलिनी, समतारूप सुंदरी, तिसका सग करना ठीक है अरु विनाव परिणतिरूप परस्त्रीनें मेरी सर्वविनूति हर लीनी है, तो अब सज्जुकी सहायसेंती ए इष्ट परिणामरूप जो स्त्री, सग लगी हुई थी, तिसका थोड़ा थोड़ा निग्रह कर, त्यागनेका जाव आवरु, जिस्सें शुद्धस्वभाव घटरूप घरमें आ जावे, तथा स्वरूप तेजकी वृद्धि होवे, ऐसी समझ पा करके परपरिणतिमें मग्नता त्यागे, औ कर्मके उदयमें आपक न होवे, शुद्ध चेतनाका सगी होवे, सो जाव मैथुनका त्यागी कहिये इहां इव्यमैथुनके त्यागी तो षट् दर्शनमें मिल सके हैं, परंतु जावमैथुनका त्यागी तो श्रीजिनवाणी सुननेसे जेदज्ञान जब घटमें प्रगट होता है, तब जबपरिणतिसें सद्गज उदासीन रूप जाव मैथुनका त्यागी जैनमत मेंही होता है इहां स्थूल परस्त्रीगमन व्रत सो परस्त्रीका त्याग करना, परपुरुषकी विवाहिता स्त्री, तथा परकी रस्की हुई स्त्री, तिसके साथ अनाचार न सेवनां, ऐसा जो प्रत्याख्यान करना, सो परदारगमन विरमणव्रत है अरु जो अपनी स्त्री है, तिसमें सतोष कर, ऐसा जो व्रत धारण करे, तिसकों स्वदारसतोष व्रत कहिये

देवांगना तथा तीर्थचणी इनके साथ तो कायासें मैथुन सेवनका निषेध है, तथा वर्जमान स्त्री वर्जके और स्त्रीसें विवाह न करे, तथा दिनमें अपनी स्त्रीसेंजी सजोग न करे, क्योंकि दिनसजोगसें जो सतान उत्पन्न होता है, सो निर्वल होता है, जे कर कामाधिक होवे, तो दिनकीजी मर्यादा कर लेवे, इसी तरें स्त्रीजी पर पुरुषका त्याग करे, इसी रीतिसें और या व्रत पाले, इस व्रतके पांच अतिचार है, उसको वर्ज, सो लिखते हैं

१ प्रथम अपरिगृहीतागमन अतिचार सो विना विवाही स्त्री (कुमारी) तथा विधवा इनको अपरिगृहीता कहते हैं, क्योंकि इनका काइ नशरि नहीं है, जे कर काइ अल्पमति विषयान्जिलापी मनमें विचारे, कि मैं न ता परस्त्रीका त्याग करा है, अरु एतो किसीकीजी स्त्रीयां नहीं है, इनके



साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतजंग नहीं होवेगा ? ऐसा विचार करके कुमारी तथा विधवा स्त्रीके साथ जोग विलास करे, तो प्रथम अतिचार लग जावे, तथा स्त्रीनी व्रत धारक हो कर कुमारे पुरुषसे तथा रमे पुरुषसें व्यभिचार सेवे, तब तिस स्त्रीकोंनी अतिचार लगे

१ दूसरा इत्तरपरिग्रहीतागमन अतिचार है तिसका स्वरूप कहते हैं इत्तर नाम थोड़े कालका है, सो थोड़ेसे काल वास्ते किसी पुरुषने वन खरच के वेश्यादिकोंको अपनी करके रक्की है, इहा कोइ अज्ञानके उदयसें मनमें ऐसा विचार करे कि मेरे तो परस्त्रीका त्याग है, अरु इस वेश्यादिकों तो मैने अपणी स्त्री बना करके थोड़ेसे काल वास्ते रक्की है, तो इसके साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतजंग नहीं होवेगा ? ऐसे अज्ञानके विचारसें उसके साथ सगम (विषय सेवन) करे, तो दूसरा अतिचार लगे अरु स्त्रीकोंनी जब अपणी सौकणकी वारीके दिनमें अपने जन्तारसे विषय सेवे, वो अपने मनमें ऐसा विचार करे, कि अपने पतिके साथ विषय सेवनेसें, मेरा व्रतजंग नहीं होवेगा, क्यों कि मैने तो परपुरुषका त्याग करा है ? यह दूसरा अतिचार इन पूर्वोक्त दोनों अतिचारोंको जो आवक जानता है, कि ये आवकको करने योग्य नहीं अरु फेर जे कर करे, तो व्रतजंग होवे, परंतु अतिचार नहीं

३ तीसरा अनगक्रीडा अतिचार है सो अनग नाम कामका है, तिस काम कदर्पको जागृत करना, आलिंगन, चुबन प्रमुख करना, नेत्रोंका हाव, नाव, कटाह, हास्य, उन्न, मस्करी प्रमुख परस्त्रीसें करे, सो दिलमें शोचता है कि मैने तो परस्पर एक शय्या उपरि विषय सेवनेका त्याग करा है, परंतु पूर्वोक्त अनगक्रीडा तो नहीं त्यागी है, परंतु वो मूढमति यह नहीं जानता है, कि ऐसा काम करने वालेका व्रत कदापि न रहेगा, अरु मनसें उस जीवने माहापाप उपार्जन कर लीया, निश्चय नयके मत से उसका व्रतजंगनी दो गया, तथा अपणी स्त्रीसें चौरासी आसनोसे जोग करे, तथा पंदरा तिथिके हिसाबसें स्त्रीके अगमर्दनादि कर के काम जगावे, तथा परम कामाजिलापी होनेसें जब अपनी स्त्रीका जोग न मिले, तब दस्तकर्म करे, स्त्रीनी काम व्याप्त हो कर गुह्यस्थानमें कोइ वस्तु संचार करके दस्तकर्म करे, तब स्त्रीकोंनी अतिचार है, तिस वास्ते आवकको जे

सैं तैसैं करके कामेष्ठा घटानी चाहियें क्यों कि विषयके घटामेंसैं अरु बीर्यके रखनेसैं बुद्धि, आरोग्य, दीर्घायु, बल प्रमुखकी वृद्धि होती है, अरु अधिक काम सेवनेसे मन मलिन, पापवृद्धि, राजयक्ष्मा, (क्षय) घ्नम, मूर्छा, कृम, स्वेदादि रोग उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते श्रावककों अत्यंत विषय मग्न होनां न चाहियें केवल जिस्में वेदविकार शांत हो जावें, तितनाही मैष्टुन करना चाहियें अरु जब काम उत्पन्न होवे, तब स्त्री सबधि काम सेवन की जगाकों जाजरू समान मलमूत्रसे जरी झूई विचारे, मलीन वस्तु है, मुखमें डुर्गंध जरी है, नाकमें सिघाणकी डुर्गंध है, कानोंमें मैल है, पेटमें विष्टा, मूत्र, जरा है, नसायोंमें खाये पीयेका रस, रुधिर, दाढ़, चाम, चर्बी, वाय, पित्त, कफ, जरा है, महा अशुविका पूतला है, जिस अगमें वास लेवेगा, वहां महा डुर्गंध उठलती है, अनित्य अशाश्वत है, सडन, पतन, विध्वसन हो जानां, यह इसका स्वभाव है, तो फेर दे मूढ जीव ! स्त्रीकों देखकर क्यों कामाकुल होता है ? ऐसे विचारसैं कामकों शांत करे, ए तीसरा अतिचार है

४ चौथा परविवाद करण अतिचार है सो अपणी पुत्र पुत्री विना, यश के वास्ते, पुण्यके वास्ते, और लोकोंके विवाद करावे, सो चौथा अतिचार

५ पांचमा तीव्रानुराग अतिचार है सो जे पुरुष स्त्री ऊपर तीव्र अनि लाष धरे, पराई स्त्रीकों देख कर मनमें बहुत चाहना धरे, उस स्त्रीके देखे विना कृणमात्र रहि न सके, चलतां, फिरतां, उस स्त्रीहीमें चित्त रहे, अथ वा देहमें कामकी वृद्धि वास्ते अफयून, माजूम, जांग, हरताल, पारा प्र मुख खावे, तीव्रकामसे प्रीति करे, तब पांचमा अतिचार लगे, अथवा स्त्रीजी कामकी वृद्धि करने वास्ते अनेक उपाय करे, बहुत हाव जाव विषय लालसा करे, तब पांचमा अतिचार लगे, यह पांच अतिचार श्रावक जाने, परंतु आदरे नहीं, इन पांचो अतिचारोंका विशेष स्वरूप धर्मरत्न प्रकरणकी टीकासैं जानना ॥ इति चतुर्थव्रतं समाप्त ॥

५ अथ पांचमा स्थूलपरिग्रहपरिमाण व्रत लिखते हैं परिग्रहके दो जेद हैं, एक तो वाह्यपरिग्रह अधिकरण रूप, सो इच्छपरिग्रह नव प्रकारका है दूसरा जाव परिग्रह, सो चौदह अन्यतर ग्रथिरूप जो परजावका ग्रहण समस्त प्रदेश सहित सफपाई पणे ग्रथ, सो जावपरिग्रह है, अरु

शास्त्रमें मूर्च्छाकों मुख्य वृत्ति करके जावपरिग्रह कहा है, तिनमेंसूं चौदह प्रकारका जो अन्यतर परिग्रह है, सो लिखते हैं १ हास्य, २ रति, ३ श्ररति, ४ जय, ५ शोक, ६ ज्ञुगुप्ता, ७ क्रोध, ८ मान, ९ माया, १० लोभ, ११ स्त्रीवेद, १२ पुरुषवेद, १३ नपुसकवेद, १४ मिथ्यात्व यह चौदह प्रकारकी अभ्यंतर ग्रंथि है, इहां ससारमें इस जीवकों केवल श्रविरतिके बलसें इच्छा, आकाश समान थनती है कदापि जरणोंमें आती नहीं, श्रविरतिके उदयसें इच्छा श्रु इच्छासेती कर्मवधनमें पडा हुआ चार गतिमें ब्रमण करता है सो कोई पुण्यके उदयसें मनुष्य जवादि सकल सामग्रीका योग पा कर, सद्गुरुकी सगतिसें श्रीजिनबाणी सुणी, तब चेतना जाग्रत नई, तब विचार करा कि अहो में समस्त परजावसे अन्य हूँ! श्रवधि, श्रवेद्य, श्रजेय, श्रदह्यधर्मी हूँ! परतु इच्छाके वश हो कर समस्त श्रवेदन, जे दन परित्रमणादि दु खोंको नोगने वाला परधर्मी बन रह्या हूं। ईत वास्ते समस्त परजावका मूल जो इच्छा है, तिसको दूर करे तब समस्त परजाव त्यागरूप चारित्र आदरे, साधुवृत्ति श्रगी कार करे श्ररुजिस जीवके इच्छा प्रबल होनेसें एक साथ सर्व परिग्रह त्यागनेका सामर्थ्य न होवे, श्ररु दोषसें मरे, तब गृहस्थ, धर्मइच्छा परिमाण रूप व्रत आदरे, सो इच्छा परिमाणव्रत नव प्रकारका है, सो कहते हैं—

१ प्रथम धन इच्छा परिमाण व्रत है सो धन चार प्रकारका है प्रथम गणिम धन, सो नालिकेर प्रमुख, जो गिणतीसें वेचनेमें आवे दूसरा धरिम धन, सो गुड प्रमुख जो तोलके वेचनेमें आवे तीसरा परिच्छेद्य धन, सो सोना, रूपा, जवाहिर प्रमुख जो परिक्षासें वेचनेमें आवे चौथा मेयधन, सो दूधादि वस्तु जो मापके वेचनेमें आवे, यह चार प्रकारका धन है इसका जो परिमाण करे, सो धनपरिमाण व्रत है

२ दूसरा धान्य परिमाण व्रत सो धान्य चौबीस प्रकारका है १ शालि, २ गेहू, ३ ज्वार, ४ बाजरी, ५ जव, ६ मूग, ७ मुठ, ८ उडक, ९ बूट, १० बोडा, ११ मटर, १२ तूशर, १३ किसारी, १४ कोडवा, १५ कगणी, १६ चणा, १७ वाल, १८ मेथी, १९ कुलथ, २० मसूर, २१ तिल, २२ मन्वा, २३ कूरी, २४ बरटी यह खाने वास्ते तथा व्यवहार वास्ते उपयोगी हैं तथा १ धनीया, २ जीमी, ३ सोवा, ४ अजवयन, ५ जीरा यह

सैं तैसैं करके कामेष्टा घटानी चाहियें क्यौं कि विषयके घटानेसैं अरु बीर्यके रखनेसैं बुद्धि, आरोग्य, दीर्घायु, बल प्रमुखकी वृद्धि होती है, अरु अधिक काम सेवनेसे मन मलिन, पापवृद्धि, राजयक्ष्मा, (क्षय) घ्नम, मूर्च्छा, क्लम, स्वेदादि रोग उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते आवककों अत्यंत विषय मग्न होना न चाहियें केवल जिस्सैं वेदविकार शांत हो जावें, तितनाही मैथुन करना चाहियें अरु जब काम उत्पन्न होवे, तब स्त्री सबधि काम सेवन की जगाकों जाजरू समान मलमूत्रसे जरी हुई विचारे, मलीन वस्तु है, मुखमें दुर्गंध जरी है, नाकमें सिंघाणकी दुर्गंध है, कानोंमें मैल है, पेटमें विष्टा, मूत्र, जरा है, नसायोंमें स्वाये पीयेका रस, रुधिर, दाढ़, चाम, चर्बी, वाय, पित्त, कफ, जरा है, महा अष्टविका पूतला है, जिस अंगमें वास लेवेगा, वहां महा दुर्गंध उठलती है, अनित्य अशाश्वत है, सदन, पतन, विध्वंसन हो जाना, यह इसका स्वभाव है, तो फेर दे मूढ जीव ! स्त्रीकों देखकर क्यौं कामाकुल होता है ? ऐसैं विचारसैं कामकों शांत करे, ए तीसरा अतिचार है

४ चौथा परविवाह करण अतिचार है सो अपणी पुत्र पुत्री विना, यक्ष के वास्ते, पुण्यके वास्ते, और लोकोंके विवाह करावे, सो चौथा अतिचार

५ पांचमा तीव्रानुराग अतिचार है सो जे पुरुष स्त्री ऊपर तीव्र अनि लाष धरे, पराई स्त्रीकों देख कर मनमें बहुत चाहना धरे, उस स्त्रीके देखे विना क्लृणमात्र रहि न सके, चलतां, फिरतां, उस स्त्रीहीमें चित्त रहे, अथवा देहमें कामकी वृद्धि वास्ते अफयून, माजूम, जांग, हरताल, पारा प्र मुख खावे, तीव्रकामसे प्रीति करे, तब पांचमा अतिचार लगे, अथवा स्त्रीजी कामकी वृद्धि करने वास्ते अनेक उपाय करे, बहुत हाव नाव विषय लालसा करे, तब पांचमा अतिचार लगे, यह पांच अतिचार आवक जाने, परंतु थादरे नहों. इन पांचो अतिचारोंका विशेष स्वरूप धर्मरत्न प्रकरणकी टीकासैं जानना ॥ इति चतुर्थव्रतं समाप्त ॥

५ अथ पाचमा स्थूलपरिग्रहपरिमाण व्रत लिखते हैं परिग्रहके दो चेद हैं, एक तो ग्रहपरिग्रह अधिकरण रूप, सो इक्ष्वपरिग्रह नव प्रका रता है दूसरा नाव परिग्रह, सो चोदह अन्यतर ग्रथिरूप जा परनायका ग्रहण समस्त प्रदेश सहित सकपाई पणे ग्रथ, सो नावपरिग्रह है, अरु

र इतने विग्रे धरती रखुगा, तथा घर, खिडकी वध, अरु खुल्ली डुकान, तवेला, वखारी, तथा परदेश संबधी डुकानकी जयणा, तथा इतना जाहे देणे वास्ते घरकी रखनेकी जयणा, तथा जाहे लीये हूये घरकों समराव एकी जयणा, तथा कुटुब सबधि घर बनानेमें उपदेशकी जयणा, तथा अपणा सबधी अरु गुमास्ता परदेश गया होवे, पीठेसैं तिसके घर प्रमुख समरावएकी जयणा, तथा आजीविकाके वास्ते किसीकी चाकरी करनी प डे, तब उसके घर प्रमुखके समरावएकी जयणा, तथा कुपदपरिमाणमें ताबा, पीतल, रांग, लोहखन, कांसी, जरत, सर्व मिलीके धातुके वर्तन, तथा और घाट, तथा बूटा, इतने मण रखणेकी जयणा, तथा डुपद परिमाणमें श्रावकने दासी, दासको मोल दे कर नहीं लेना, परंतु पगारवाले ( नौकर ) गिणतीमें इतने रखने चाहियें, तथा गुमास्ता रखनेकी जयणा, तथा चौपद परिमाणमें गाय, जैस, बकरी प्रमुख रखनेका परिमाण करे अब यह इज्ञा परिमाण व्रतके पांच अतिचार है, सो लिखते हैं

१ प्रथम तो धनपरिमाण अतिक्रम अतिचार इस रीतिसैं होता है सो जब इज्ञा परिमाणसैं धन अधिक हो जावे, तब लोनसज्ञासैं दिलमें ऐसा मनसुवा करे कि जो मेरा पुत्र बड़ा हो गया है, तिसकोंनी धन चाहियें है, अरु मैंनेनी पुत्रकों धन देनाही है? ऐसा कुविकल्प करकें पुत्रके नामके पांच हजारदि रूपक जूवे रके, तथा अन्न प्रमुख अपणे नियम परिमाण घरमें पडा है, तब अधिक रखनेकी इज्ञासैं दूसरायोंके घरमें रख बोडे, जब चाहियें तब ले आवे, अरु अज्ञानसैं ऐसा विचारे कि मैंने तो इज्ञा परिमाणसैं अधिक अपने घरमें रखनेका नियम करा है, अरु यह तो दूसरोंके घरमें रक्का है, इस वास्ते मेरे नियममें दूषण नहीं, तथा व्रत लेनेके वखतमें कच्चे मणके हिसाबसैं अन्न रक्का है, अरु जब परदे शांतरमें गया, तब पक्के मणका उहां तोल जान कर अन्ननी पक्के मणके हिसाबसैं रके, ऐसे विचार वालेकों प्रथम अतिचार लगता है

२ दूसरा क्षेत्रपरिमाण अतिक्रम अतिचार है सो जब इज्ञा परिमाणसैंती अधिक घर दाटादिक हो जावे, तब विचली जित तोडके दो तिनादि घरा दिकोंका एक घरादि बनावे, तथा दो तीनादि खेतोकी विचली मौली तोडकें एक बना लेवे, अरु मनमें यह विचारे कि मैंने तो गिणती रक्की है, सो तो

नी धान्यकी जातिमें है, परंतु ये औषध्यादिकमें काम आते हैं. तथा १ सामक, २ मणकी, ३ चुरट, ४ चेकरीया, ये मारवाड़ देशमें प्रतिष्ठ हैं और नी जो थड़क धान्य, विना बोयां ऊगता है, जिसको लोक काल ऊछ जमें खाते हैं, यह सर्व जातिका अन्न, तिसका परिमाण करे

३ तीसरा क्षेत्रपरिग्रह व्रत है सो बोनका खेत, तथा बाग ( बगीचादि क ) जाननां, इस क्षेत्रके तीन जेद हैं, उसमें एक क्षेत्र तो ऐसा है, कि जो वर्षाके पाणीसें होता है, दूसरा कूपादिकके जल सींचनेसें होता है, तीसरा तो यह पूर्वोक्त दोनों प्रकारसें होता है, इनका परिमाण करे

४ चौथा वास्तुक परिमाण व्रत है सो घर, हाट, हवेली प्रमुख तिन केनी तीन जेद हैं एक तो जूहरा प्रमुख, दूसरा ठड्डित सो उची हवेली, एक मजली, दो मजली, तीन मजली, यावत् सातजूमि तक, तीसरी हवेली जूहरा प्रमुख, उपर एक दो आदि मजल, तिसका परिमाण करे

५ पांचमारूपपरिग्रहपरिमाण व्रत है सो सिके विनाका काषा रूपा तिसका तोलका परिमाण करे

६ ठछा सुवर्णपरिग्रह परिमाण व्रत है सो विना सिकेका सोना, तिसके तोलका परिमाण करे

७ सातमा कूपद परिग्रह परिमाण व्रत है सो त्रांबा, पीतल, रांग, काष्ठ, सीसा, जस्त, जोड़ाप्रमुख सर्व धातुके बर्चनोंके तोलका परिमाण करे

८ आठमा डूपद परिग्रहपरिमाण व्रत है सो दासी, दास, अथवा पगारदार शुमास्ता प्रमुख रखणां, तिनकी गणतीका परिमाण करे

९ नवमा चौपदपरिग्रह परिमाण व्रत है सो गाय, महीषी, घोडा, बलद, बकरी, जेन प्रमुख, तिनकी गिणतीका परिमाण करे

अथ अपनी इछा परिमाणसें परिग्रह किस तरें ररे? सो कहते हैं रूपा घडा दूथा थरु थनघडा तथा नगद रूपक इतना ररकु, तथा सोनानी घडा थनघडा अस्फूर्ति तथा जवाहीर इतना ररकु, इस रीतिसें परिमाण करे, उपरांत पुण्यादयसें धन ग्रहे, तो धर्मस्थानमें लगावे, तथा वर्ष दिन में इतने इस जातके वस्त्र पहिरु, तथा एक वर्षमें इतना अन्न भै घरस्वर च वास्ते ररकु, थरु इतना वणिज वास्ते ररकु, तिसका स्वरूप सातमे व्रतम जियगे तथा क्षेत्रपरिमाणमें क्षेत्र, वाडी, बगीचा प्रमुख सर्व मित्र क

तहां दिशिप्रमाण व्रत. सों चारों दिशि, तथा चारों विदिशि, तथा ऊर्ध्व, अरु अधो, इन दश दिशिका परिमाण करे, तिसके दो जेद है एक व्यवहारसैं, सो अपनी कायासैं दशों दिशिमें जानेका, तथा मनुष्य जेजनेका, तथा व्यापार करनेका परिमाण करे, उसकों व्यवहार दिशि परिमाण व्रत कहियें

दूसरा निश्चयसैं सो जो कुछ नरकादि गतिमें गमन है, सो सर्व कर्मका धर्म है जिसके वश पढकें यह जीव चारो गतिमें नटकता है, परानुयायी चेतना हो रही है, इसी वास्ते जीव परजावानुसारी गतिभ्रमण करता है, परंतु जीव तो शुद्ध चैतन्य, अगतिस्वभाव, तथा निश्चल स्वभाव है, ऐसा श्री जिनवाणीके उपदेशसैं समझके चेतना शुद्धस्वरूपानुयायी होवे, तब अपना अगति स्वभाव जानिके सर्व क्षेत्रसैं उदात्त रहे, समस्त क्षेत्रसैं अप्रतिबधक जावसैं वर्त्ते, सो निश्चयसैं दिक्परिमाण व्रत कहियें यह दशों दिशिका परिमाण करे, तिसके दो जेद है

प्रथम जलमार्ग सो ऊहाज नावों करकें इतने योजन अमुक दिशिमें अमुक बंदर, तथा अमुक द्वीप तक जाऊ, जे कर पवन, तथा वर्षातिके वशसैं और दूर किसी बंदरमें ले जावे तो आगार, अर्थात् व्रतजग न होवे, अथवा अजाण पणे कर कें जूल चूकसैं किसी बंदरमें चला जाऊ, उसकाजी आगार है

दूसरा स्थलका मार्ग सो जिस जिस दिशिमें जितने जितने योजन तक जानेका परिमाण करा है, तदा तक जाणेकी जयणा, जे कर चोर, म्लेच्छ, पकडकें नियम क्षेत्रसैं बाहिर ले जावे, तिसका आगार है, तथा ऊर्ध्व दिशिमें बारा कोश तक जाणेकी जयणा रस्के, तथा अधोदिशिमें आठ कोश तक जाणेकी जयणा, परंतु जो उचा चढके फेर नीचा उतरें, वो अधोदिशिमें नदी, तथा जितने क्षेत्रका परिमाण करा है, तिसैं बाहिरका कोइ पिढाण वाले पुरुषका पत्र आवे, सो बांच कर उसका उत्तर लिखना पड़े, तिसका आगार है, परंतु मैं अपनी तरफसैं बिना कारण पत्र प्रमुख नदीं लिखुगा, तथा परदेशकी विकथा सुननेका आगार, इस व्रतके पांच अतिचार हैं सो कहते हैं

मेरा नियम अखण्डित है, बड़ा कर लेनेमें क्या दूषण है ? ऐसे करे, तो दूसरा अतिचार लगे

३ तीसरा रूपसुवर्णप्रमाण अतिक्रम अतिचार है सो जब इष्टा परिमाणसेंती अधिक होवे, तब अपणी स्त्रीके घेरो नारी तोलके बनवावे, तथा अपणे आनरण तोलमें नारी बनवावे, यह तीसरा अतिचार है

४ चौथा कुपदपरिमाण अतिक्रम अतिचार है सो त्रांबा, पीतल, कांसी प्रमुखके बर्त्तन राठ वगैरें जो गिणतीमें रस्के हैं, सो जब घरमें स पदा होवे, तब गिणतीमें तो उतनेही रस्के, परंतु तोलमें वजनदार दूगणे तिगुणे बनवावे, अरु मनमें ऐसा विचारे जो मेरा व्रत तो अखण्डित है ? क्योंकि बर्त्तनोकी गिणती तो मेरे तितनीही है ? तथा कश्चे तोल परिमाणें रस्के थे, फेर पक्के तोल परिमाण रस्क लेवे, सो चौथा अतिचार है

५ पांचमा विपदचतुष्पद प्रमाणातिक्रम अतिचार है सो दास, दासी, घोड़ा, गाय, बलद प्रमुख अपणे परिमाणसें जब अधिक हो जावे, तब वेच गेरे, अथवा गर्ने ग्रहण अवेरी करावे, जितने गिणतीमें हैं, उनमेंसे प्रथम वेचके फेर गर्ने ग्रहण करावे, अथवा जाइ पुत्रके नामके कर रस्के, तो पांचमा अतिचार लगता है इति पंचमव्रतं संपूर्ण ॥

६-४-८ अथ ब्रह्मा, सोतमा, अरु आवमा, इन तीनो व्रतोंको गुणव्रत कहते हैं तिनमें बड़े व्रतमें दिशांका विचार है, इस वास्ते इसका नाम दिक्परिमाण व्रत कहते हैं तिसका स्वरूप लिखते हैं

पूर्वें जो पांच अणुव्रत कहे हैं तिनको इन तीनो व्रतों करके गुण वृद्धि होती है, इस वास्ते इनका नाम गुणव्रत है, क्योंकि जब दिसिप रिमाणव्रत कीया, तब तिस क्षेत्रसे बाहिरले सर्व जीवोंको अन्नयदान दीया, यह पहिले प्राणातिपात व्रतको गुण पुष्टि नइ, तथा बाहिरले जीवोंके साथ ऊठ बोलनां मिट गया, यह मृपाचाद व्रतको पुष्टि नइ, तथा बाहिरले क्षेत्रकी वस्तुकी चोरीका त्याग दूया, यह तीसरे व्रतको पुष्टि नइ, तथा बाहिरले क्षेत्रकी स्त्रीयोंके साथ मेषुन सेवनेका त्याग दूया यह चौथे व्रतकी पुष्टि नइ, तथा नियम बाहिरके क्षेत्रमें क्रय विक्रयका निषेध नया, यह पांचमे व्रतकी पुष्टि नइ, इस वास्ते पांचो अणुव्रतोंको यह तीन व्रत गुणकारी है



तहां दिशिप्रमाण व्रत सों चारो दिशि, तथा चारों विदिशि, तथा ऊर्ध्व, अरु अधो, इन दश दिशिका परिमाण करे, तिसके दो जेद हैं एक व्यवहारसैं, सो अपनी कायासैं दशों दिशिमें जानेका, तथा मनुष्य जेजनेका, तथा व्यापार करनेका परिमाण करे, उसकों व्यवहार दिशि परिमाण व्रत कहियें

दूसरा निश्चयसैं सो जो कुछ नरकादि गतिमें गमन है, सो सर्व कर्मका धर्म है जिसके वश पढकें यह जीव चारो गतिमें जटकता है, परानुयायी चेतना हो रही है, इसी वास्ते जीव परजगवानुसारी गतिभ्रमण करता है, परंतु जीव तो शुद्ध चैतन्य, अगतिस्वभाव, तथा निश्चल स्वभाव है, ऐसा श्री जिनवाणीके उपदेशसैं समझकें चेतना शुद्धस्वरूपानुयायी होवे, तब अपना अगति स्वभाव जानिके सर्व क्षेत्रसैं उदास रहे, समस्त क्षेत्रसैं अप्रतिबधक जावसैं वरें, सो निश्चयसैं दिक्परिमाण व्रत कहियें यह दशों दिशिका परिमाण करे, तिसके दो जेद हैं

प्रथम जलमार्ग सो जहाज नावों करकें इतने योजन अमुक दिशिमें अमुक बंदर, तथा अमुक द्वीप तक जाऊ, जे कर पवन, तथा वर्षातिके वशसैं और दूर किसी बंदरमें ले जावे तो आगार, अर्थात् व्रतभंग न होवे, अथवा अजाण पणे कर कें जूल चूकसैं किसी बंदरमें चला जाऊ, उसकाजी आगार है

दूसरा स्थलका मार्ग सो जिस जिस दिशिमें जितने जितने योजन तक जानेका परिमाण करा है, तहां तक जाणेकी जयणा, जे कर चोर, म्लेच्छ, पकड़के नियम क्षेत्रसैं बाहिर ले जावे, तिसका आगार है, तथा ऊर्ध्व दिशिमें बारा कोश तक जाणेकी जयणा रखे, तथा अधोदिशिमें आठ कोश तक जाणेकी जयणा, परंतु जो उचा चढ़के फेर नीचा उतरें, वो अधोदिशिमें नहीं, तथा जितने क्षेत्रका परिमाण करा है, तिसैं बाहिरका कोइ पिठाण वाले पुरुषका पत्र आवे, सो बांच कर उसका उत्तर लिखना पड़े, तिसका आगार है, परंतु मैं अपनी तरफसैं बिना कारण पत्र प्रमुख नहीं लिखुंगा, तथा परदेशकी विकथा सुननेका आगार, इस व्रतके पांच अतिचार हैं सो कहते हैं

१ प्रथम कर्ध्वदिशापरिमाणातिक्रम अतिचार है सो अनानोगसे अपवा वे सुरतिसैं अधिक चला जावे, तो प्रथम अतिचार

२ दूसरा अधोदिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार पूर्ववत्

३ तीसरा तिर्होदिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार उपर वत् जे कर नियम जगके नयसैं गुमास्ता नेजे, तोनी अतिचार लगे

४ चौथा एक दिशिमें सौ योजन रक्के हैं, अरु एक दिशिमें पञ्चास योजन रक्के हैं, पीछे जब एकही दिशिमें नौदसौ योजन जाना पड़े, तब दूसरी तरफके पञ्चास योजननी वसी तरफ जोड़ लेवे, अरु अज्ञानसैं ऐसा विचारे कि मेरे नियमकेही पञ्चास योजन हैं, इस वास्ते मेरे व्रतका जग नहीं

५ पांचमा स्मृतिअतिथान अतिचार सो अपणे नियमके योजनको जूल जावे, क्या जाने पूर्वदिशिके सौ योजन रक्के हैं? कि पञ्चास योजन रक्के हैं? इत्यादि ऐसा सशयके दूए फेर पञ्चास योजनसैं अधिक जावे, तो पांचमा अतिचार लग जावे, यह पांच अतिचार वर्जे ॥ इति षष्ठव्रतं सपूर्ण

६ अथ सातमा नोगोपनोग व्रतका स्वरूप लिखते हैं यह दूसरा गुण व्रत है इस व्रतके अगीकार करणसैं सचित वस्तु खानेका त्याग करे, अथवा परिमाण करे, तथा जिसमें बहुत हिंसा होवे, ऐसा व्यापार न करे, तथा जिस काममें अवश्य हिंसा बहुत करनी पड़े, तिसका त्याग करे, अन्धक्य त्यागे, अरु चौदह नियमनी इस व्रतमें गिणे जाते हैं, इस वास्ते यह व्रत पूर्वोक्त पांचही अणुव्रतोंको गुणकारी है, इस व्रतके दो नेद हैं, सो कहते हैं

१ प्रथम व्यवहार सो नन्दयानन्दयका ज्ञान करी त्यागे, दूसरा आश्रव सवरका ज्ञान कर क खान पानादिक जो इन्द्रिय सुखका कारण है, उसमें थपणी शक्ति प्रमाण बहुत थारंज ठोडके थल्पारंजी होना, सो व्यवहार नोगोपनोगविरमण व्रत है

२ दूसरा निश्चयसे, तो श्रीजिनवाणी सुण कर वस्तु तत्त्वस्वरूप जान कर विचारे कि जा जगत्में परवस्तु है, सो सर्व देय है, इस वास्ते तत्त्व येना पुरुष परवस्तुको न खाये, न थपणे पास रक्के, तत्र शुद्ध चेतन्य नाय धार क परम शक्तिरूप हा कर जा वस्तु सद्, पद्, गिर, जाती रद्,

तब परवस्तु जान कर ऐसा विचार करे कि यह पुञ्जकी पर्याय है, सर्व जगत्की जूठ है, ऐसी वस्तुका नोगोपनोग करणां, सो तत्त्ववेत्ताकों उचित नहीं, ऐसे ज्ञानसें परजावकों त्यागे, स्वगुणकी वृद्धि करे, ऐसा ज्ञान पा कर आत्माकों स्वस्वरूपानंदी करे, चिद्विलासका अनुनवी होवे, सो निश्चय नोगोपनोगविरमण व्रत कहियें

अथ नोगोपनोग शब्दका अर्थ कहते हैं जो आहार, पुष्प, विक्षेप नादि, एक बार नोगनेमें आवे, सो नोग कहियें अरु जो खुवन, वस्त्र, स्त्रीयादि बार बार नोगनेमें आवे, सो उपनोग कहियें अरु कर्माश्रयी इस व्रतके अनेक चेद हैं, सो आगे लिखुगा

तथा श्रावककों वत्सर्ग मार्गमें तो निरवय आहार जेनां लिखा है, जे कर शक्ति न होवे, तब सचित्तका त्यागी होवे, जेकर यहजी न कर सके, तो बाईस अजह्य अरु बचीस अनतकाय इनका तो जरूर त्याग करे, तिनमें प्रथम बाईस अजह्य वस्तुका नाम लिखते हैं

१ बड़के फल, २ पीपलके फल, ३ पिलखणके फल, ४ कठवरके फल, ५ गूलरके फल, यह पांचतो फल अजह्य हैं, क्योंकि इन पांचों फलोंमें बहुत सूक्ष्म कीड़े त्रस जीव नरे दूये होते हैं, जिनोंकी गिणती नहीं हो सकी है, इस वास्ते धर्मात्मा जीव, इन पांचों फलोंकों न खावे, जे कर दौर्निहमें अन्न न मिले, तोनी विवेकी पूर्वोक्त पांच फल नह्यण न करे

६ मदिरा, ७ मांस, ८ मधु, ९ माखण, इन चारोंमें तदर्थ अस्त्रव्य जी व उत्पन्न होते हैं, अरु यह चारों विगय, महाविगय हैं सो महाविका रकी करनेवाली हैं, तिनमें प्रथम मदिरा त्यागने योग्य है, क्योंकि म दिराके पीनेमें जो दूषण है, सो हेमचंद्रसूरिकृत योगशास्त्रके दश श्लो कोंके अर्थसे लिखते हैं

१ मदिरा पीनेसें चतुर पुरुषकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, जैसे कुर्नागी पुरु पकों सुदर स्त्री ठोढ़ जाती है, तैसें इस पुरुषकों बुद्धि ठोढ़ जाती है, २ मदिरापानी पुरुष, अपणी माता, वहिन, बेटीकों अपणी नार्याकी तरें समऊ के जोरा जोरीसे विषयजी सेवन कर लेता है, अरु अपणी नार्या कों अपणी माता समऊता है, मदिरा पीनेवाला ऐसा निर्जङ्ग और महा पापके करने वाला होता है, ३ मदिरापानी, अपनेको अरु परकोनी नहीं

१ प्रथम ऊर्ध्वदिशापरिमाणातिक्रम अतिचार है सो अनानोगसें अथवा बे सुरतिसें अधिक चला जावे, तो प्रथम अतिचार

२ दूसरा अधोदिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार पूर्ववत्

३ तीसरा तिर्छीदिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार उपर वत् जे कर नियम जंगके नयसें गुमास्ता नेजे, तोनी अतिचार लगे

४ चौथा एक दिशिमें सौ योजन रस्के हैं, अरु एक दिशिमें पञ्चास योजन रस्के हैं, पीठें जब एकही दिशिमें मौढसौ योजन जाना पड़े, तब दूसरी तरफके पञ्चास योजननी उसी तरफ जोड़ लेवे, अरु अज्ञानसें ऐसा विचारे कि मेरे नियमकेही पञ्चास योजन हैं, इस वास्ते मेरे व्रतका जग नहीं

५ पांचमा स्मृतिअर्थान अतिचार सो अपने नियमके योजनको नूल जावे, क्या जाने पूर्वदिशिके सौ योजन रस्के हैं ? कि पञ्चास योजन रस्के हैं ? इत्यादि ऐसा सशयके दूए फेर पञ्चास योजनसें अधिक जावे, तो पांचमा अतिचार लग जावे, यह पांच अतिचार वर्जें ॥ इति षष्ठव्रतं सपूर्ण

६ अथ सातमा जोगोपजोग व्रतका स्वरूप लिखते हैं यह दूसरा गुण व्रत है इस व्रतके अंगीकार करणसें सचित वस्तु खानेका त्याग करे, अथवा परिमाण करे, तथा जिसमें बहुत हिंसा होवे, ऐसा व्यापार न करे, तथा जिस काममें अवश्य हिंसा बहुत करनी पड़े, तिसका त्याग करे, अथनह्य त्यागे, अरु चौदह नियमनी इस व्रतमें गिणे जाते हैं, इस वास्ते यह व्रत पूर्वोक्त पांचही अणुव्रतोंको गुणकारी है, इस व्रतके दो नेद हैं, सो कहते हैं

१ प्रथम व्यवहार सो नष्टयानद्वयका ज्ञान करी त्यागे, दूसरा आश्रय सचरका ज्ञान कर क खान पानादिक जा इन्द्रिय सुखका कारण है, उसमें थपणी शक्ति प्रमाण बहुत थारन गेडके थक्पारनी दानां, सो व्यवहार जोगोपजोगविरमण व्रत है

२ दूसरा निश्चयसे, तो श्रीजिनवाणी सुण कर वस्तु तत्त्वस्वरूप जाम कर विचारे कि जा जगत्तम परवस्तु है, सो सर्व देय है, इस वास्ते तरब बेचा पुरुष परवस्तुका न खारे, न अपने पास रस्के, तत्र युद्ध चेतन्य नाव धार क परम शान्तिरूप दा कर जा वस्तु सदे, पड़े, गिर, जाती रहे,

सर्व पापोंका मूल है, ४३ मदिरा पीने वाला निश्चय नरक गतिमें जावेगा, ४४ मदिरा सर्व आपदाका स्थान है ४५ मदिरा अकीर्तिका कारण है, ४५ मदिरा नीच स्लेष्ट लोक पीते हैं, ४६ गुणीजन लोक जो हैं, सो मदिरा पीनेवा लेकी निंदा करते हैं, ४७ मदिरा पछेमें लग जानेंसें तत्काल मरजाता है, ४८ मदिरा पीने वालेके मुखसें महाडुर्गंध आती है, ५० मदिरा सर्व शास्त्रोंमें नि दित है, ५१ मदिरा पीनेवाला ईश्वरका जक्त नहीं इत्यादि मदिरा पीनेमें अनेक दोष हैं, इस वास्ते आवक मदिरा न पीवे, यह ठछा अजड्य

सातमा अजड्य मांस है यह मांस नष्टण करनेमें जो दूषण है, सो लिखते हैं जो पुरुष मांस खानेकी इच्छा करता है, वो पुरुष, दयाधर्मरू पी वृद्धकी जड़ काटता है, क्योंकि जीवके मारे बिना मांस कदापि नहि हो सक्ता है, जे कर कोइ कहेगा कि हम मांसजी खा लेवेगा, अरु प्राणी योंकि दयानी करेंगा, अैसे कहने वालेको हम उत्तर देते हैं, कि सदा सर्वदा जो मांसके खानेवाले हैं, अरु वो अपने मनमें दयाधर्म बना चाहता है, वो पुरुष अग्रिमें कमल लगाना चाहता है, क्योंकि जब उसने मांस खाया, तब प्राणीयोंकी दया उसके मनमें कदापि नहीं हो सकती है, जै से अबका खानेवाला आम्रफल देखता है, तब उसकी मनसा आंब खा नेहीकों दोढती है, तैसें मासाहारी किसी गौ, जेढी, बकरी, प्रमुखकों देखता है, तब उन जीवोंका मांस खानेकी तर्फ उसकी चुरती दोढती है, अैसे पुरुषकों दयाधर्म, क्यों कर सजवे ? जे कर कोइ कहेगा कि जीवके मारने वाला सौकरिक अर्थात् कसाइ है, तिस पासों बना बनाया मांस ह्या कर खावे, तो क्या दोष है ? अैसे मूढमतिकों उत्तर देते हैं, कि जो मांस खानेवाला है, वोनी जीवका हिंसक है, क्यों कि जगवतने शास्त्रोंमें सात जनोंकों घातक (हिंसक) अर्थात् कसाइही कहा है, उसका नाम कहते हैं एक जीवके मारने वाला, दूसरा मांस बेचने वाला, तीसरा मांस रंधने वाला, चौथा मांस नष्टण करने वाला, पांचमा मांस खरीदने वाला, ठछा मांसकी अनुमोदना करने वाला, सातमा पितरोंके, देवताओं कों, अतिथिकों, मांस देने वाला, यह सात साक्षात् परंपरा करके घातक अर्थात् जीववधके करने वाले है, मनुजीजी मनुस्मृतिमें कहते हैं ॥ श्लोक ॥ अनुमता विशसिता, निहता क्रयविक्रयी ॥ सस्त्रता चोपहर्ता च, खाइकश्चेति

जानता, ४ मदिरापानी, अपणे स्वामीकों अपणा किंकर जानता है, अरु अपणेकों स्वामी जानता है, एसी निर्लेका बुद्धिवाला होता है, ५ मदिरा पीने वाले पुरुषकों चौकमें छेटा हुआ देख कर मुदरि जान कर, कुत्ते उसके मुदमें मूत जाते हैं, ६ मदिराके रसमें मग्न पुरुष चौकमें नंगा मादर जात, निर्लेका हो कर, सो जाता है ७ मदिरा पीने वालेने जो अगम्य गम्य, चोरी, यारी, खून प्रमुख कुकर्म करे हैं वो सर्व लोकोकें आ गें प्रकाश देता है ८ मदिरा पीनेसें शरीरका तेज, कीर्त्ति, यश, तात्कालिकी बुद्धि, यह सब नष्ट हो जाते हैं ९ मदिरापानी नूत लगेकी तरें नाचता है, १० मदिरा पीने वाला कीचड़ और गदकीमें लोटता है, ११ मदिरा पीनेसें अंग शिथिल हो जाते हैं, १२ मदिरा पीनेसें इन्द्रियोंकी तेजी घट जाती है, १३ मदिरा पीनेसें बड़ी मूर्खा आजाती है, १४ मदिरा पीनेवालेका विवेक नष्ट हो जाता है, १५ समय नष्ट हो जाता है, १६ ज्ञान नष्ट हो जाता है, १७ सत्य नष्ट हो जाता है, १८ शौच नष्ट हो जाता है, १९ दया नष्ट हो जाती है, २० ह्रमा नष्ट हो जाती है, जैसें अग्निसें तृण जस्म हो जाते हैं, तैसें पूर्वोक्त गुणजी उसका नष्ट हो जाते हैं, २१ मदिरा है, सो चोरी, अरु परस्त्रीगमनादिकोंका कारण है, क्योंकि मदिरा पीनेवाला कौनसा कर्म नहीं कर सक्ता है ? २२ मदिरा, आपदा तथा वध, वधनादिकोंका कारण है, २३ मदिराके रसमें बहुत जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते ब्याधर्मिकों मदिरा न पीनी चाहिये २४ मद्य पीने वाला दीयेकों अणदीपा कहता है, २५ लीयेकों नहीं लीया कहता है, २६ करेकों न करा कहता है, २७ मद्यपी, घरमें तथा बाहिर, पराये धनकों निर्जय हो कर लूट छेता है, २८ मदिराके वन्मादसे बालिका, यौवनवती, वृद्धा, ब्राह्मणी, घांमालिनी प्रमुख स्त्रीयोसें जोग कर छेता है, २९ मद्यप थरराट शब्द करता है, ३० गीत गाता है, ३१ लोटता है, ३२ दौड़ता है, ३३ क्रोध करता है, ३४ रोता है, ३५ हस्ता है, ३६ स्तंभवत् हो जाता है, ३७ नमस्कार करता है ३८ भ्रमता है, ३९ खड़ा रहता है, ४० नटकी तर थनेक नाटक करता है, ४१ ऐसी वो कौनसी दुर्दशा है जो मदिरा पीने वालेको नहीं होती है ? शास्त्रोंमें सुणते हैं कि सांज कुमारने मदिरा पी कर देपायन रुपिको सत्ताया, तब देपायनने द्वारकोंको बध किया, ४२ मदिरा पीना, वो

अथ निरुक्त बल करकेनी मांस त्यागने योग्य है, सो कहते हैं ॥ श्लोक ॥ मांसनक्षयितामुत्र, यस्य मांसमिहाक्यह ॥ एतन्मांसस्य मांसत्वे, निरुक्त मनुरब्रवीत् ॥ १ ॥ अर्थ - जिसका मांस मैं खाता हूँ, वो जीव मुझको परजन्ममें नक्षय करेगा, यह निरुक्तसें मनुजी मांस का अर्थ कहते हैं, मांसनक्षय वालेको महा पाप लगता है, जो पुरुष मांस नक्षयमें लपट है, वो पुरुष जिस जिस जीवों जलचर मत्स्यादिकों, स्थलचर मृग, स्रथर प्रमुखों, खेचर तित्तर लाल वटेरे प्रमुखों देखता है, तिस तिसको मारके खानेकी बुद्धि करता है, माकनकी तरें सर्वको खाया चाहता है, मांस खानेवाला उत्तम पदार्थोंका परिहार करके नीच पदार्थके लेनेमें उद्यत होता है, जैसे काग, पचामृत ढोड कर विष्टेमें बाँच देता है, तिसी तरें जान लेना इसका नाम तो निर्विवेकता है, ॥ श्लोक ॥ ये नक्षयन्ति पिशितं, दिव्यनोज्येषु सत्स्वपि ॥ सुधारसं परित्यज्य, जुंजते ते हलाहल ॥ १ ॥ अर्थ - सकल धातुओंके वृद्धि करने वाला दिव्य नोजन विद्यमान द्रव्यों, सर्व इन्द्रियोंके आह्लादजनक दूध, क्षीर, किलाट, कूर्चिका, रसाल, वृद्धि आदिक, मोदक, मदक, मम्बिका, खाजे, पापड, घेवर, इमरिका, खमवडे, पूरणवडे, गुडपापडी, इक्षुरस, गुड, मिसरी, झाङ्ग, आंव, केले, अनार, नालियर, नारंगी, सतरें, खजूर, अक्षौट, राजादनखिरणी, फनस, अलूचे, बबाम, पिस्ता इत्यादि अनेक दिव्य नोजनोंको ढोड के मूढमति, विस्वगंधि, सूगवाला, वमनका करनेवाला, ऐसा बिनत्स्य मांसको नक्षय करता है, वो जीव, जीवितव्यकी वृद्धि वास्ते अमृत रस ढोड कर जीवितांतकारी, हलाहल विष नक्षय करता है, बालक जे होता है, सोनी पञ्जरको ढोड कर सुवर्णको ग्रहण करता है, अरु जे मांसादारी पुरुष है, वो जे मांससेंनी अधिक पुष्टताके करने वाला ऐसे दिव्य नोजन हैं, तिनको ढोड के मांस खाता है, तो वो बालकसेंनी अज्ञानी है

और तरेंसें मांसनक्षयमें दूषण लिखते हैं जे निर्दय पुरुष है, उसको धर्म नहीं, क्योंकि धर्मका मूल दया है, ये बात सर्व सत्त जन मानते हैं, अरु मांसादारीको दया तो है नहीं, मांस खानेवालेको पूर्वं कसाइ कहा है, इस वास्ते मांसादारीके धर्म नहीं

घातका ॥ १ ॥ अर्थ - १ अनुमोदक केता अनुमोदन करने वाला, २ विशसिता केता मारे द्रुये जीवके अगका विनाग करने वाला, ३ निर्हता केता मारने वाला, ४ मांसका वेचनेवाला, ५ मांसका रांधने वाला, ६ मांसका परोसने वाला, ७ मांसका खाने वाला यह सातों घातकी हैं, अर्थात् जीवके वध करने वाले हैं, दूसरा श्लोकजी मनुस्मृतिका लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ अकृत्वा प्राणिनां हिंसां, मांसनोत्पद्यते क्वचित् ॥ न च प्राणिवधः स्वर्ग, स्तस्मान्मांसं विवर्जयेत् ॥ १ ॥ अर्थ - जितना चिर जीवकों न मारे, तहां तक मांस नहीं होता है, अरु जीववधसे स्वर्ग नहीं अपितु नरक गति होती है, इस वास्ते मांस खाना वर्ज्य ॥ १ ॥

अब मांस खाने वालेकोही वधकपणा है, यह बात कहते हैं दूसरा जीवोंका मांस जो अपने मांसकी पुष्टाईके वास्ते खाते हैं, वास्तवमें वेही कसाई हैं, क्योंकि जे कर खानेवाले न होवे, तो काहेको कोइ जीवकोंजी मारे ? जो पर प्राणीयोंको मार करके अपणोंको सप्राण करते हैं, वे जीवयोडीसी जिवगीके वास्ते अपणा नाश करते हैं, एक अपणे जीवने वास्ते कोडों जीवोंको जो ड ख देता है, तो वो क्या सदा काल जीता रहेगा ? जिस शरीरमें सुंदर मिष्टान्न, विष्ट हो जाता है, अरु वृद्ध प्रमुख अमृत वस्तुओं मूत्र हो जातीयां हैं, तिस शरीरके वास्ते कौन बुद्धिमान जीववध अरु मांस नष्ट करे ?

जे केइ महामूढ, निर्विवेकी, लिख गये हैं, कि मांसनष्टण करनेमें दूषण नहीं, बेची म्लेच्छ थे, क्योंकि वे लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ न मांसन कृणे दोषो, न मये न च मैथुने ॥ प्रवृत्तिरेषा नूताना, निवृत्तिस्तु महाफला ॥ १ ॥ इस श्लोकके कहने वालोने व्याघ्र, गृध्र, जेडीयें, श्वान, (कुत्ते), व्याघ्र, गोवृद्ध, काग प्रमुख हिंसक जीवोंको अपना धर्मोपदेश गुरु माने हैं, क्योंकि जे कर ये पूर्वोक्त गुरु न दोते तो इनको मांस खाने कौन सिखाता ? बिना गुरुके उपदेशके पूज्यजन उपदेश नहीं देते हैं, इस श्लोक बनाने वालोंकी अज्ञानता देखियें, वे कहते हैं कि मांस खानेमें, मदिरा पीनेमें, अरु मैथुन मेवनेमें पाप नहीं, परंतु निवृत्तिस्तु महाफला इनमें जा निवृत्ति करे ता महाफल है, यह सबचन विराध है, क्योंकि नित्तके करनेमें पाप नहीं, उसके त्यागनेमें धर्मफल कदापि नहीं हो सका है



अथ निरुक्त बल करकेनी मांस त्यागने योग्य है, तो कहते हैं ॥ श्लोक ॥ मांसनक्षयितामुत्र, यस्य मांसमिहाद्र्यहं ॥ एतन्मांसस्य मांसत्वे, निरुक्त मनुरब्रवीत् ॥ १ ॥ अस्यार्थ — जिसका मांस मैं खाता हूँ, वो जीव मुझको परजन्ममें नक्षय करेगा, यह निरुक्तसें मनुजी मांस का अर्थ कहते हैं, मांसनक्षय वालेको महा पाप लगता है, जो पुरुष मांस नक्षयमें लपट है, वो पुरुष जिस जिस जीवको जलचर मत्स्यादि को, स्थलचर मृग, सूअर प्रमुखको, खेचर तित्तर जाल वटेरे प्रमुखको देखता है, तिस तिसको मारके खानेकी वृद्धि करता है, माकनकी तरें सर्वको खाया चाहता है, मांस खानेवाला उत्तम पदार्थोंका परिहार करके नीच पदार्थके लेनेमें उद्यत होता है, जैसे काग, पंचामृत गूँठ कर विष्टेमें चाँच देता है, तिसी तरें जान लेना इसका नाम तो निर्विवेकता है, ॥ श्लोक ॥ ये नक्षयन्ति पिशितं, दिव्यजोज्येषु सत्स्वपि ॥ सुधारसं परित्यज्य, जुञ्जते ते हलाहलं ॥ १ ॥ अर्थ — सकल धातुओंके वृद्धि करने वाला दिव्य जोजन विद्यमान दूध, सर्व इन्द्रियोंके आह्लादजनक दूध, क्षीर, किलाट, कूर्चिका, रसाल, दधि आदिक, मोदक, मदक, ममिका, खाजे, पापड़, घेवर, इमरिका, खमवड़े, पूरणवड़े, गुडपापड़ी, इक्षुरस, गुड, मिसरी, डाढ़, आंव, केले, अनार, नालियर, नारंगी, सतरे, खजूर, अहोठ, राजादनखिरणी, फनस, अलूचे, बदाम, पिस्ता इत्यादि अनेक दिव्य जोजनोंको गूँठ के मूढमति, विस्वगधि, सूगवाला, वमनका करनेवाला, ऐसा बिजल्य मांसको नक्षय करता है, वो जीव, जीवितव्यकी वृद्धि वास्ते अमृत रस गूँठ कर जीवितान्तकारी, हलाहल विष नक्षय करता है, बालक जे होता है, सोनी पञ्चरको गूँठ कर सुवर्णको ग्रहण करता है, अरु जे मांसाहारी पुरुष है, वो जे मांससेंनी अधिक पुष्टताके करने वाला ऐसे दिव्य जोजन हैं, तिनको गूँठ के मांस खाता है, तो वो बालकसेंनी अह्वानी है

और तरेंसें मांसनक्षयमें दूषण लिखते हैं जे निर्वय पुरुष है, उसको धर्म नहीं, क्योंकि धर्मका मूल दया है, ये बात सर्व सत जन मानते हैं, अरु मांसाहारीको दया तो है नहीं, मांस खाने वालेको पूर्वं कसाइ कहा है, इस वास्ते मांसाहारीके धर्म नहीं

प्रश्न.—मांसाहारी आपने आपको अधर्मी क्यों बनाता है ?

उत्तर — मांसके स्वादमें लुब्ध हुआ वो धर्म, दया, कुछ नहीं जानता है, जें कर कदाचित् जानजी जाता है, तोजी आप मांसलुब्ध है, इस्सें मांसको त्याग करनेकूं समर्थ नहीं, इस वास्ते वो मनमें विचार करता है, कि मेरे समानही सर्व हो जावे, ऐसा जान कर औरोंकोजी मांसनरूप न कर नेका उपदेश नहीं करता है

अब मांस नरूप करनेवाचे महामूढ हैं, यह बात कहते हैं कितने क मूढमति आप तो मांस नहीं खाते हैं, परंतु देवता, पितर, अतिथि, इनको मांस चढा देते हैं, क्यों कि उनके शास्त्रकारक कहते हैं ॥ श्लोक ॥ क्रीत्वा स्वयं वा उत्पाद्य, परोपहतमेव वा ॥ देवान् पितॄन् समन्यचर्य, स्वादन् मांसं न दुष्यति ॥ १ ॥ यह श्लोक मृगपक्षीयोंके विषयमें है, इसका अर्थ कहते हैं कसाईकी दुकान बिना व्याध, शकुनिकादिकोंसें अर्थात् शिकारी और जानवरोंके मागने वालोंसें मांस मोलसें ले कर देवता, अतिथि, पितरोंको देना चाहिये क्यों कि वे लिखते हैं कि कसाईकी दुकानके मांससें देवता पितरोंकी पूजा नहीं होती है, तातें आप मांस उत्पन्न करके पितृ आदिकोंकू देवे तो पितृआदि प्रसन्न होते हैं, तो इस प्रकारसू मांस उत्पन्न करे, कि ब्राह्मण तो मांग कर मांस व्यावे, और क्षत्रिय शिकार मां रके मांस व्यावे, अथवा किसीने मांस जेट करा होवे, उस मांससें देवता पितरोंकी पूजा करके फेर मांस खावे, तो दूषण नहीं, यह सर्व महामूढ और भिष्यादृष्टियोंका कहना है, क्योंकि दयाधर्मी आस्तिकमत वालों को तो मांस दृष्टिसेंजी देखना योग्य नहीं, तो फेर देवता पितरोंकी पूजा मांससें करनी, यह तो धर्मोंको स्वप्नेमेंजी न होवेगी, इस वास्ते देवताओं को मांस चढाना यह बुद्धिमानोंका काम नहीं, कारण के देवता तो बड़े पुण्यवान् है, कबल आहार करते नहीं है, तो फेर लुगुप्तनीय मांस क्यों कर खावे ? जो कहते हैं कि देवता मांस खाते है, वे महा अज्ञानी हैं, थरु पितर जो है, वेतो थपणे थपणे पुण्य पापके प्रभावसें थप। वरी गतिको प्राप्त हो गये है, थपणे करे दूये कर्मोंका फल जागते हैं, व प्रक्रे करे हुए कर्मका उनका कुछनी फल नहीं लगता है, तब मांस इन रूप पापका ता म्पा कहना है ? पुत्रादिकाका सुखत करानो तिनका नह।

मिलता है, क्योंकि आंवके सींचनेसें केलेमें फल नहीं फलता है, थरु अतिथिकी जक्ति वास्ते जो मांस देना है, सोतो नरकपातका हेतु थरु म हा अधर्मका कारण है, यहां कोई ऐसे कहे कि जो वात श्रुति स्मृतिमें है, वो माननी चाहिये.

उत्तर —यह कहना ठीक नहीं है, जो वात श्रुतिमें अप्रामाणिक है, वो बुद्धिमान् कदापि नहीं मानेंगे, क्योंकि श्रुतिमें हम ऐसे सुनते हैं, “ व चांसि जूयांसि यथा पापघ्नो गोस्पृश्रं द्रुमाणां च पूजागादीनां च पूजागा दीनां च वध स्वर्ग्य ब्राह्मणजोजनं पितृप्रीणन मायावीन्यधिदेवतानि व न्हौ द्रुतं देवप्रीतिप्रद” ऐसा कथन जो श्रुतिमें है, तिसको युक्ति कुश ल पुरुष कदापि नहीं मानेंगे, तिस वास्ते यही महा अज्ञान है, कि जो मांस करके देवताओंकी पूजा करणी कितनेक कहते हैं कि जैसे मंत्रों क रके सस्कृत अग्नि, दाह नहीं करती है, तैसेंही मंत्रों करके मांसकी सस्कार करा हुआ दोषके वास्ते नहीं होता है, यह कथन मनुजीका है ॥२॥ जोक॥ असस्कृतान् पशून्मत्रै, नाद्यादिप्र कथचन ॥ मत्रैश्चसस्कृतानद्या, णाश्वेतं विधिना स्थित ॥ १ ॥ अर्थ —मंत्रों करके असस्कृत पशुओंका मांसकों ब्राह्मण न खावे, थरु जो मंत्रों करके सस्कृत पशु हैं, तिनका मांस खावे, तो शाश्वतो नित्यो वैदिक जानना

उत्तर — मंत्र करके जो मांस पवित्र कीया है, वो मांसकों धर्मी पुरुष कदापि नष्ट न करे, क्योंकि मंत्र जैसे अग्निका दाह शक्तियों रोकता है, तैसें नरकादि प्रापण शक्ति जो मांसकी है, उसको नहीं दूर कर सके, जेकर दूर कर दें तब तो सर्व पाप करके पीछे पापका दहनने वाला मंत्रके स्मरण मात्रसेंही सर्व पाप दूर हो जाने चाहिये, तब तो जो वेदोंमें पाप का निषेध करा है, सो सर्व निरर्थक हुआ, क्यों कि सर्व पापोंका मंत्रके स्मरणसेंही नाश हो गया, इस वास्ते यदनी अज्ञांहीका कहना है,

तथा कोई कहते हैं कि जैसे थोडासा मद्य पीनेसें नशा नहीं चढता है, तैसें थोडासा मांस खानेमेंनी पाप नहीं लगता है

उत्तर:— बुद्धिमान् यवमात्रकी मांस न खावे, क्यों कि थोडासी विष इ खदायी होता है, तैसें थोडासी मांस खाना सोनी दोषके तांइ है

अब मांस खानेमें अनुत्तर दूषण कहते हैं, तत्काल इस मांसमें संभ्रम, जीव उत्पन्न होते हैं, अरु अनन्त निगोद रूप जीव तिनका सत्त्व वारं वार होना तिस करके दूषित हैं, यदाहु आमासु अपक्कासु, अविष चमाणासु मसपेसीसु ॥ सयय चिय उववाठ, जणित निगोय जीवाण ॥ १ ॥ अर्थ—कच्ची तथा अपक्क ऐसी जो मांसकी पेसी बोटी रंधती है, तिसमें निरन्तर निगोदके जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते मांसका खाना जो है, सो नरकमें जाने वालोंको पूरी खरची है, इस कारण के लिये बुद्धिमान् पुरुष जो है सो मांस कदापि न खावे

अथ यह मांस खाना किन्होने कथन करा है, तिनोका नाम लिखते हैं, १ मांस खानेके लोभीयोंने, २ मर्यादा रहितोंने, ३ नास्तिकोंने, ४ थोड़ी बुद्धि वालोंने, ५ खोटे शास्त्रोंके बनाने वालोंने, ६ वैरीयोंने, मांस खाना कहा है तथा मांसाहारीसैं अधिक कोइ निर्दयी नहीं तथा मांसाहारीसैं अधिक कोइ नरककी अग्निका इधन नहीं गदगी खा कर जो सुखर अपणे शरीरको पुष्ट करता है, सो अच्छा है, परंतु जीवोंको मारके जो निर्दयी हो कर मांस खाता है, सो अच्छा नहीं है

प्रश्न — सर्व जीवोंका मांस खाना तो सर्व कुशास्त्रोंमें लिख दिया है, परंतु मनुष्यका मांस खाना तो कहीं किसी शास्त्रमें नहीं लिखा है, इसका क्या हेतु होगा ?

उत्तर — अपने मांसकी रक्षा वास्ते मनुष्यका मांस खाना नहीं लिखा, क्यों कि वे कुशास्त्रोंके बनाने वाले जानते थे कि जो मनुष्यका मांस खाना लिखेंगे, तो मनुष्य कबी हमकोही न खा लेवे ? इस शकासैं नहीं लिखा, तो जो पुरुषमांसमें अरु पशुमांसमें विशेष नहीं मानता है, तिस समान कोइ धर्मो नहीं, अरु तिसमें जो जिन मानके मांस खाते है इस समान कोइ पापीनी नहीं, तथा मांस जो है, तिसकी रुधिरसेती उत्पत्ति होती है, अरु विष्टके रससे वृद्धि होती है, तथा लड्डु जिसमें जरा रहता है, अरु रुमि जिसमें है, उत्पन्न होते है, ऐसे मांसको कौन बुद्धिमान् खाता है ? आश्चर्य तो यह है की गतिर्का प्रातः—चर्मूल तो धर्म कहते है, अरु सत् धातुसे जो मांस बाहर करे हुए कर्मका वेगडका मुखमें दांतास चगाते है, अथ उनका कुर्मा रूप पापका ता क्या कहना शुद्धिधर्मवाले मानीये ? यह आश्चर्य है, जिन

डुष्टोंकी ऐसी समझ है, कि अन्न और मांस यह दोनो एक सरीखे हैं, ति नकी बुद्धिमें जीवित अरु मृत्युके देनेवाले अमृत और विपत्ती तुल्यही हैं,

अरु जो जड़बुद्धि ऐसा अनुमान करते हैं, कि मांस खाने योग्य है, इति प्राणीका अंग होनेसे यह हेतु उदनादिवत् यह दृष्टांतसे यह मांसजी प्राणी का अंग है, इस वास्ते मांसजी खाने योग्य है, तब तो गौका मूत तथा माता, पिता, नार्या, वेटी, इनका मूत पुरिषजी क्यों नहीं पीते खाते हैं ? क्योंकि यहजी प्राणीका अंग है, तथा अपनी नार्याकी तरें अपनी माता, वहिन, वेटीको क्यों नहीं गमन करते हैं ? खील अरु प्राणी अगत्त्व सर्व जगे व रावर है, तथा जैसे गौका दूध पीते हैं, तैसे गौका रुधिर तथा माता पिता दिकोंका रुधिरजी क्यों नहीं पीते हैं ? क्योंकि प्राणी अंग हेतु तो सर्व जगगे तुल्य हैं, इस वास्ते जो अन्न और मांस इन दोनोको तुल्य जानते हैं, वेजी महा पापीयोके सिरदार हैं,

तथा शाखकों श्रुति मानते है, परंतु पशुके दाढकों कोइ श्रुति नहीं मानता, इस वास्ते अन्न और मांस यद्यपि प्राणी अंग हैं, तोजी अन्न नश्य है, अरु मांस अन्नक्षय है, एक पंचेन्द्रिय जीवका वध करके जो मांस खाता है, जैसी तिसकों नरकगति होती है, तैसी खोटी गति, अन्न खानेवालेको नहीं होती है, क्योंकि अन्न मांस नहीं हो सका है, मांसकी तसीरोंसे अन्नकी तसीरें और तरेंकी हैं, मांस महाविकारका करने वाला है, तैसा अन्न नहीं इत्यादि विजहण स्वभाव है, इस वास्ते मांस खाने वालोंकी नरकगति जान कर सत पुरुष अन्नके नोजनसे तृप्ति मानते हैं, अरु सरस पदकों प्राप्त होते हैं, यह तो मांसके दूषण श्रीदेमचइ स्मरित योगशास्त्रके अनुसार लिखे हैं अरु इस कालमेंजी शुरुपियन लोक जो बुद्धिमान् हैं, उनोनेजी मांस खानेमें चौबीस दूषण प्रगट करे हैं, अरु मदिरा पीनेसे जो खराबीयां होती हैं, तिनकी तो गिणतीजी नहीं है, इस वास्ते मदिरा अरु मांस यह दोनों अजक्षयको आवक त्यागे यह सातवा अजक्षय कहा

॥ आठमा अजक्षय माखण है, क्योंकि जैन मतके शास्त्रानुसारे ठाठसे बाहिर काढे माखणको जब अंतर मुहूर्त अर्थात् दो घडीके लगनग काल व्यतीत हो जाता है, तब उस माखणमें सूक्ष्म जीव तद्वर्णके उत्पन्न हो जाते हैं, इस वास्ते माखण खाना वर्जित है जैन लोकोंको ठाठसे बाहिर

अब मांस खानेमें अनुत्तर दूषण कहते हैं, तत्काल इस मांसमें सं-  
क्षिप्त जीव उत्पन्न होते हैं, थरु अनन्त निगोद रूप जीव तिनका सत्त  
वारं वार होना तिस करके दूषित हैं, यदाहु आमासु अपक्कासु, अवि-  
चमाणासु मसपेसीसु ॥ सयय चिय उववाउ, नणित निगोय जीवा  
॥ १ ॥ अर्थ—कच्ची तथा अपक्क ऐसी जो मांसकी पेसी बोटी रंधती है  
तिसमें निरन्तर निगोदके जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते मांसका खान  
जो है, सो नरकमें जाने वालोंको पूरी खरची है, इस कारण के लीये बु-  
मान् पुरुष जो है सो मांस कदापि न खावे

अथ यह मांस खाना किन्द्होने कथन करा है, तिनोका नाम लिखते है  
१ मांस खानेके लोचोयोने, २ मर्यादा रक्षितोने, ३ नास्तिको ने, ४ थो-  
दुद्धि वालोने, ५ खोटे शास्त्रोंके बनाने वालोने, ६ वैरीयोने, मांस ख-  
ना कहा है तथा मांसाहारीसैं अधिक कोइ निर्दयी नहीं तथा मांसाह-  
रीसैं अधिक कोइ नरककी अग्निका इधन नहीं गदगी खा कर जो सुख  
अपणे शरीरको पुष्ट करता है, सो अच्छा है, परंतु जीवोंको मारने  
जो निर्दयी हो कर मांस खाता है, सो अच्छा नहीं है.

प्रश्न — सर्व जीवोंका मांस खाना तो सर्व कुशास्त्रोंमें लिख दीया है  
परंतु मनुष्यका मांस खाना तो कहीं किसी शास्त्रमें नहीं लिखा है  
इसका क्या हेतु होगा ?

उत्तर — अपने मांसकी रक्षा वास्ते मनुष्यका मांस खाना नहीं लिखा  
अपों कि वे कुशास्त्रोंके बनाने वाले जानते थे कि जो मनुष्यका मांस खान  
लिखेंगे, तो मनुष्य कबी हमकोही न खा छेवे ? इस शकासैं नहीं लिखा, त  
जो पुरुषमांसमें थरु पशुमांसमें विशेष नहीं मानता है, तिस समान कोइ धर्म  
नहीं, थरु तिसमें जो जिन मानके मांस खाते है इस समान कोइ पापीन  
नहीं, तथा मांस जो है, तिसकी रुधिरसेंती उत्पत्ति होती है, थरु विष्टे  
रसस वृद्धि होती है, तथा लड्डु जिसमें जरा रहता है, थरु ठमि जिसमें  
उत्पन्न होते है, ऐसे मांसको कौन पुद्धिमान् खाता है ? आश्चर्य तो यह है  
कि ब्राह्मण लोक शुचिमूल तो धर्म कहते है, थरु सत्त धातुसे जो मांस बान  
वनते है, तिस मांस दाढरों मुखम दांतास चगाते है, अथ उनका कुत्ता  
के समान समजीव कि शुचिधर्मवाले मानीये ? यह आश्चर्य है, जिन

डणोंकी ऐसी समझ है, कि अन्न और मांस यह दोनों एक तरीके हैं, ति नकी बुद्धिमें जीवित अरु मृत्युके देनेवाले अमृत और विषकी तुल्यही हैं,

अरु जो जड़बुद्धि ऐसा अनुमान करते हैं, कि मांस खाने योग्य है, इति प्राणीका अग होनेसे यह हेतु उदनादिवत् यह दृष्टांतसे यह मांसकी प्राणी का अग है, इस वास्ते मांसकी खाने योग्य है, तब तो गौका भूत तथा माता, पिता, चार्या, वेटी, इनका भूत पुरिषकी क्यों नहीं पीते खाते हैं ? क्योंकि यहकी प्राणीका अग है, तथा अपनी चार्याकी तरे अपनी माता, बहिन, वेटीको क्यों नहीं गमन करते हैं ? स्त्रीत्व अरु प्राणी अंगत्व सर्व जगे वरावर है, तथा जैसे गौका दूध पीते हैं, तैसे गौका रुधिर तथा माता पिता दिकोंका रुधिरकी क्यों नहीं पीते हैं ? क्योंकि प्राणी अग हेतु तो सर्व जगे तुल्य हैं, इस वास्ते जो अन्न और मांस इन दोनोंको तुल्य जानते हैं, वेनी महा पापीयोके सिरदार हैं,

तथा शखकों छुचि मानते हैं, परतु पशुके दाडकों कोइ छुचि नहीं मानता, इस वास्ते अन्न और मांस यद्यपि प्राणी अग हैं, तोनी अन्न नश्य है, अरु मांस अन्नक्षय है, एक पंचेन्द्रिय जीवका वध करके जो मांस खाता है, जैसी तिसको नरकगति होती है, तैसी खोटी गति, अन्न खानेवालेको नहीं होती है, क्योंकि अन्न मांस नहीं हो सका है, मांसकी तसीरोंसे अन्नकी तसीरें और तरेंकी हैं, मांस महाविकारका करने वाला है, तैसा अन्न नहीं इत्यादि बिलक्षण स्वभाव है, इस वास्ते मांस खाने वालोंकी नरकगति जान कर सत पुरुष अन्नके नोजनसे तृप्ति मानते हैं, अरु तरस पदकों प्राप्त होते हैं, यह तो मांसके दूषण श्रीहेमचन्द्र स्वरिक्त योगशास्त्रके अनुसार लिखे हैं अरु इस कालमेंनी गुरुपियन लोक जो बुद्धिमान हैं, उनोंनेनी मांस खानेमें चौबीस दूषण प्रगट करे हैं, अरु मदिरा पीनेसे जो खराबीयां होती हैं, तिनकी तो गिणतीनी नहीं है, इस वास्ते मदिरा अरु मांस यह दोनों अन्नक्षयको आवक त्यागे यह सातवा अन्नक्षय कहा -

७ आठमा अन्नक्षय माखण है, क्योंकि जैन मतके शास्त्रानुसारे ठाठसे बाहिर काढे माखणको जब अंतर सुदूर्त अर्थात् दो घड़ीके लगनग काल व्यतीत हो जाता है, तब उस माखणमें सूक्ष्म जीव तद्वर्णके उत्पन्न हो जाते हैं, इस वास्ते माखण खाना वर्जित है जैन लोकोंको ठाठसे बाहिर

माखण निकालके तत्काल अग्निके संयोगसे घी बनाके ठानके देखके पीनेसे खाना चाहिये, क्योंकि एक तो इस रीतिसे शास्त्रोक्त जीव उत्पन्न नहीं होते हैं, तिनकी हिसाजी नहीं होती है, अरु मकड़ी, कसारी, मञ्जरादि, जानवरों के अवयव टांग प्रमुखजी घी भाणणोंसे निकल जाते हैं, अरु माखण काम कीजी वृद्धि करता है, तब मनमें खोटे विकल्प उत्पन्न होते हैं, इस वास्तेजी श्रावककों माखण न खाना चाहिये, तथा एक जीवके वध करनेसेजी जब पाप होता है, तब तो पूर्वोक्त रीतिसे माखन तो जीवोंकाही पिरा हो जाता है, तब माखनके खानेमें पापकी क्या गिनती है ?

प्रश्न -माखनमें तो दो घड़ी पीठें कोई जीव उत्पन्न हुआ हम नहीं देखते हैं, तो फेर माखनमे दो घड़ी पीठें हम क्योंकर जीव मान जेवें ?

उत्तर -जो जैनमतके शास्त्रोंको सत्य मानेगा वो तो शास्त्रकारका कथ न सत्यही मानेगा, अरु जो जैनके शास्त्रोंको सत्य नहीं मानता, वो चाहो सत्य माने, चाहो न माने परंतु हम आगम प्रमाणके बिना इस बातमें और प्रमाण नहीं वे सकते हैं, क्योंकि वस्तु दो तरेंकी होती है, एक हे तुगम्य, दूसरी आगमगम्य, तो माखनद्विदजाविमे जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे हेतुगम्य नहीं किंतु आगम गम्य हैं, इस वास्ते जो आगम सर्वज्ञ जिन अर्द्धत बीतरागका कहा हुआ है, उसीका कहा मानना चाहिये, जे कर कोई पुरुष किसीजी शास्त्रको न मानेगा, आखोसे देखी वस्तुही मानेगा, तब तो नरक स्वर्गादि जो अदृष्ट हैं, उनकोजी न मानना चाहिये, तथा परमेश्वर चौदवे तथा सातवे अतमान उपरि रहता है, तथा स्वर्ग अरु नरकमें पुण्य पाप करनेसे जीव जाता है, यहजी न मानना पड़ेगा, इस वास्ते आगम प्रमाणजी मानना चाहिये क्योंकि सर्ववस्तु हमारी दृष्टिमे नहीं आती है

एतवमाथ नदय मधु, अर्थात् सद्गत है, उसका स्वरूप लिखते हैं यह सद्गत जो है, सो अनेक जीवोंकी घात होनेसे उत्पन्न होता है, यह ता परलोक विरोध बाध है, अरु मधु (सद्गत) जुगुप्सनीय (निंदने योग्य) है, मुखकी लाजवत् यह इहलोक विरुद्ध बाध है, इस वास्ते आ यरूपर्मोंको मधु न खाना चाहिये

अथ मधु अर्थात् सद्गत खानेवालेको पापी पणा दिसाते हैं, ॥२॥  
जरूपन्माहिक रुद्धं, जतु नरुद्धपात्र ॥ स्त्रोकजतु निद्रतस्य, सोनिकं न्याः



तिरिच्यते ॥१॥ अर्थ - कुड्जतु जो ठोटे जीव अथवा दाढ़ रहित जीव, ति नोंके लाखोंका नाश उपलक्षणसे बहुत जीवोंका जब विनाश होता है, तब मधु उत्पन्न होता है, जब मधु नष्ट करता है, तब थोड़े पशु मारने वाले कसाइसेंजी उसको अधिक पाप लगता है, क्यों कि जो नष्टक है, सो नी घातक है, यह बात उपर लिख आये हैं तथा लोकमें यह व्यवहार है, जो जूठा नोजन नहीं खाना, थरु यह जो मधु है, सो तो महा जूठ है, क्योंकि एकेक फूलसें रस (मकरद) पी करके महीयों जो वमन करतीयों हैं सो सहत हैं मधु है इस वास्ते धर्मी पुरुषकों जूठ न खानी चाहियें यह लौकिक व्यवहारमें प्रसिद्ध है

कोइ कहेगा कि मधु तो त्रिदोषका दूर करने वाला है, इस लिये रोग दूर करने वास्ते औषधिमें नष्ट करे तो क्या दोष है? इत्याह

उत्तर - अथौषधकृतेजग्ध, मधुश्चन्ननिवधन ॥ नक्षितप्राणनाशाय, काल कूटोक्तोऽपि हि ॥१॥ अर्थ - जो कोइ रसको लंपटतासें मधु खावे, उस की बात तो दूर रही, परंतु जो औषधिके वास्तेजी मधु खावे, सो यद्यपि रोगादि अपहारक है, तोनी नरकका कारण है, हि यस्मात् प्रमादके उदय से जीवनेका अर्थो हो कर के जो कोइ कालकूट विपका एक कणजी खा यगा, सो जरूर प्राण नाशके तांइ होवेगा

प्रश्न - मधु तो खजूर झाड़ादि रसकी तरें मीठा है, सर्व इंसानोंको सुख कारी है, तो फेर इसको त्यागने योग्य क्यों कहते हो?

उत्तर - सत्य है, जो मधु मीठा है, यह व्यवहारसें है, परंतु परमार्थसें तो नरककी वेदनाका हेतु होनेसें अत्यंत कटू आ है,

अब जो मधुको पवित्र मान कर मदबुधि जीवों मधुको देवस्नानमें उ पयोगी समजते हैं, तिनका उपहास्य शास्त्रकार करते हैं ॥ श्लोका ॥ मक्षि कासुखनिष्ठयूतं, जलुघातोऽज्व मधु ॥ अहो पवित्र मन्वाना, देवस्नाने प्रयु जते ॥१॥ अर्थ - माखीयोंके मुखकी जूठ, थरु जीवघातमें अर्थात् हजारों वच्चे थरु अर्माके मारनेसें, उत्पन्न होता है वो वच्चे, अने जब मरते हैं, तब तिनके शरीरका लट्टु पाणीजी मधु (सहत) के बिच मिल जाते हैं, तब तो मधु महा अशुचिरूप है, अहो यह शब्द उपस्यार्थमें हैं, क्यों कि जैसे वे देवता है, तैसी तिनको पवित्र वस्तुजी चढाई जाती है यह उपहास्य है,

माखण निकालके तत्काल अग्निके सयोगसें घी बनाके ठानके देखके पीछेसें खाना चाहियें, क्यों कि एक तो इस रीतिसें शास्त्रोक्त जीव उत्पन्न नहीं होते हैं, तिनकी हिंसाजी नहीं होती है, अरु मकड़ी, कस्तारी, मधुरादि, जानवरों के अवयव टांग प्रमुखजी घी ठाणणोसें निकल जाते हैं, अरु माखण काम कीजी वृद्धि करता है, तब मनमें खोटे विकल्प उत्पन्न होते हैं, इस वास्तेजी श्रावकको माखण न खाना चाहियें, तथा एक जीवके वध करनेसेंजी जष पाप होता है, तब तो पूर्वोक्त रीतिसें माखन तो जीवोंकाही पिय हो जाता है, तब माखनके खानेमें पापकी क्या गिनती है ?

प्रश्न -माखनमें तो दो घड़ी पीछे कोई जीव उत्पन्न हुआ हम नहीं देखते हैं, तो फेर माखनमे दो घड़ी पीछे हम क्योंकर जीव मान लेंगे ?

उत्तर -जो जैनमतके शास्त्रोंको सत्य मानेगा वो तो शास्त्रकारका कथ न सत्यही मानेगा, अरु जो जैनके शास्त्रोंको सत्य नहीं मानता, वो चाहो सत्य माने, चाहो न माने परंतु हम आगम प्रमाणके बिना इस बातमें और प्रमाण नहीं दे सकते हैं, क्योंकि वस्तु वो तरकी होती है, एक हे तुगम्य, दूसरी आगमगम्य, तो माखनदिदलादिमे जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे हेतुगम्य नहीं किंतु आगम गम्य हैं, इस वास्ते जो आगम सर्वज्ञ जिन अर्हत बीतरागका कहा हुआ है, उसीका कहा मानना चाहियें, जे कर कोई पुरुष किसीजी शास्त्रको न मानेगा, आखोसें देखी वस्तुही मानेगा, तब तो नरक स्वर्गादि जो थट्ट हैं, उनकोजी न मानना चाहियें, तथा परमेश्वर चौदवे तथा सातवे थसमान उपरि रहता है, तथा स्वर्ग अरु नरकमें पुण पाप करनेसें जीव जाता है, यहजी न मानना पड़ेगा, इस वास्ते आगम प्रमाणजी मानना चाहियें क्योंकि सर्ववस्तु हमारी दृष्टिमे नहीं आती है

एनवमा थनद्वय मधु, थर्थात् सद्गत है, उसका स्वरूप दिसते है यह सद्गत जो है, सो थनेक जीवोंकी घात होनेसें उत्पन्न होता है, यह ता परलोक विरोध दोष है, थरु मधु (सद्गत) प्लुप्तनीय (निंदने योग्य) है, मुख्यकी लालचत् यह इहलोक विरुद्ध बाध है, इस वास्ते आ यरुधर्मोंको मधु न खाना चाहियें

थय मधु थर्थात् सद्गत खानेवालेको पापी पणा दिसाते है, ॥१॥  
नरुपन्माहिक रुद्ध, जतुनदृष्ट्यात्रव ॥ आकमत्तु निवृत्त्य, सोनिहेत्वा;

रात्रिकों खावेगा तब नित्य रात्रिकों चोजन करने वास्ते रसोइनी करनी पड़ेगी तिसमें जीवोंका सहार होवेगा आवकके कुलका आचार प्रष्ट होजा ता है सूक्ष्म त्रस जीव नजरमें नहीं आते हैं कदापि दीखनी जायें तोनी यत्न नहीं होता है जब अग्नि बलतीहै तब पासकी नीतमें रात्रिकों जो जीव आश्रित है वो तत्तसे आकुल व्याकुल होकर अग्निमें गिर पड़ते हैं सर्पादिकोंके मुखसे जेकर चोजनमें लाल गिरे तब कुटुबका तथा अप एी आत्माका विनाश होवे तथा पतंगीये प्रमुखपडे तथा ठतमें अरु ठप रमें रात्रिकों सर्प गिरली, ठपकली, मकड़ी मधुरादि बहुत जीव बसते हैं जेकर ये जीव चोजनमें खाये जायें तोजारी रोगोत्पन्न होजाते हैं यष्टुत योगशास्त्रे ॥ मेधापिपलिकाहति, यूकाकुर्याज्जलोदरां ॥ कुरुते मक्षिकावांति, कुष्ठरोगच कोलिका ॥ १ ॥ कटकोदारुखमच, वितनोतिगलव्यथां ॥ व्यज नांतर्निपतित, स्तालुविध्यति वृश्चिक ॥ २ ॥ विलग्नश्च गलेवाल, स्वरज गायजायते ॥ इत्यादयोदृष्टदोषा, सर्वेषां निश्चिजोने ॥ ३ ॥ अर्थ — कीड़ी अन्नादिमें खाइ जावेतो बुद्धिकों मव करती है तथा यूका (जूके) खाने से जलोवर करती है, मक्षी वमन करती है, मकड़ी कुष्ठ रोग करती है, अरु वेरी प्रमुखका कांटा तथा काटका टुकड़ा गलेमें पीडा करता है तथा वटेरे आदिके व्यंजनमें जेकर विषु आया जावेतो तालुयोंकों बांधता है इत्यादि रात्रिचोजन करनेमें दृष्ट दोष सर्वलोकोंके देखनेमें आते हैं तथा रात्रिचोजन करता हुआ अवश्य पाक अर्थात् रसोइ करनी पड़ेगी तिनमें आवश्य पट्कायके जीवोंका वध होवेगा नाजन धोनेसे जलगत जीवोंका विनाश होता है जलगेरनेसे जूमिमें कुष्ठ कीड़ा प्रमुख जीवोंकी घात होती है इसवास्ते जिसके जीव रक्षणेका आकांक्षा होवे वो रात्रि चोजन न करे

प्रश्न जहां अन्नजी रांधना न पड़े नाजनजी धोने न पड़े ऐसे जो व ने बनाये जमु खसुर झाझीदि नष्ट है तिनके खानेमें क्या दोष है ?

उत्तर — श्लोक ॥ नाप्रेक्ष्यसूक्ष्मजतूनि, निश्पाद्यात्प्राणुकान्यपि ॥ अप्यु त्केवलज्ञानै, नादृतंयन्निशाशनं ॥ १ ॥ अर्थ — मोदकादि फलादि यद्यपि प्राणुक अर्थात् अचेतनजी है तोनी रातकों न खाना चाहिये किस वास्ते कि सूक्ष्मजीव कुष्वादि देखे नहीं जाते हैं क्योंकि केवलीजी जिनकों सदा सर्वकुछ दीखता है सोनी रात्रिमें चोजन नहीं करते हैं केवली

अहो शब्द उपेक्षासे ॥ यथा ॥ करजाणां विवाहे तु, रासनास्तत्रगायना ॥ १ ॥  
 रस्परं प्रशंसन्ति, अहो रूपमदोष्वनि ॥ १ ॥ यह नवमा अजक्ष्य कक्षः.  
 १० दशमा पाणीकी बनी दूध बरफ अजक्ष्य है, क्योंकि यह असख्य अप्काप  
 जीवोंका पिण्ड है इसके खानेसे चेतना मर जाती है अरु तत्काल श्रद्धा  
 करती है कुछ बल वृद्धि नहीं करती है अरु वीतराग अर्द्धत सर्वज्ञ प  
 रमेश्वरने, निषेध करा है इस वास्ते यह अजक्ष्य है.

११ अफीम प्रमुख विषवस्तुके खानेसे पेटमें रुमि, गंमोलादिक जो जी  
 व होते हैं सो मरजाते हैं विष खानेसे चेतना मुरजा जाती है अरु जे  
 कर खानेका ठबपड जाता है तो फेर बूटना मुस्किल होता है वस्त्र  
 पर अमल न मिले तो क्रोध उत्पन्न होता है शरीर शिथिल होजाता है  
 अरु जो अमली होजाता है, उसको व्रत नियम अंगीकार करना दुष्कर है  
 अमलीका स्वभाव बदल जाता है जब अमल खाता है, तब एक रंग होता  
 है अरु जब अमल बतरजाता है तब दूसरा रंग होजाता है तथा स्वतंत्र  
 ता छोड़ कर पराधीन होना पड़ता है इसके खानेमे स्वादही बुरा है तथा  
 विष खाने वाला जहां लघुनीत बड़ीनीत करता है तिस क्षेत्रमें प्रस पा  
 वर जीवोंकी हिंसा होती है सोमल, वज्रनाग, मीन, तेजीया, संखीया,  
 हरताल, प्रमुख ये सर्व विषहीमें जानने इसके खानेका त्याग करना

१२ करकथोले ( घडे ) जे आकाशसे गिरते हैं यहनी अजक्ष्य है.

१३ सर्वजातकी कश्चिमट्टि अजक्ष्य हैं कश्चि सचित्तमट्टि नाना प्रकार  
 रका असख्य जीवात्मक जाननी मट्टी खानेसे पेटमें बहुतजीव उत्पन्न हो  
 जाते हैं तथा पांडु रोग, थाम वात पित्त पथरी प्रमुख बहुत रोग उत्पन्न  
 होजाते हैं बहुत मट्टी खाने वालेका पीला रंग होजाता है तथा कितनीकि  
 जातकी मट्टीमें मनुक प्रमुख जीवोंकी योनी है इस वास्ते अजक्ष्य है

१४ रात्रीनोजन अजक्ष्य है रात्रीनोजन में तो प्रत्यक्षसे दूषण इस  
 लोकमें है अरु परलोकमें दुखका हेतु है रात्रीमें चारों आहार अ  
 जक्ष्य है रात्रीमें जो जैसे रंगका आहार खाता है तिसमें तैसे रंगके जीव  
 निनफा नाम तमस्कण्य जीव हैं जो उत्पन्न होते हैं तथा आश्रित जीवनी  
 वधुत होते हैं तथा रात्रीमे उचित अनुचित वस्तुका चेतन मनेन खा जाता  
 है तथा रात्रीनोजन करनेसे प्रसंग बाध बहुत लगते हैं सो कितनीकि अजक्ष्य

क ॥ आयुर्वेदेषु ॥ दन्नाजि पद्मसंकोच, अमरो चिरपायत ॥ अतो नक्तं नोक्तव्य, सूक्ष्मजीवादनादपि ॥ १ ॥ अर्थ - इस शरीरमें दो पद्म अर्थात् कमल हैं एक तो रुद्ध पद्म सो अधोमुख है दूसरा नाभिपद्म सो उर्ध्वमुख है यह दोनों कमल सो सूर्यके अस्त होनेसे रात्रिमें सकोंच हो जाते हैं किस कारणसे संकोच होजाते हैं ? सूर्यके अस्त होजानेसे सकोंच हो जाते हैं इस वास्ते रात्रिकों न खाना चाहिये तथा रात्रिकों सूक्ष्म जीव खाये जाते हैं इस्से अनेक रोगोत्पन्न होते हैं यह पर पट्टका सवाद कथा

अब फेर स्वमतसे रात्रिजो जनकानिपेध कहते हैं श्लोक ॥ सप्तह्ना जीवसघातं जुजानानि शिजो जनं, राहसेन्यो विशिष्यते, मूढात्मान कथनु ते ॥ १ ॥ अर्थ - जब रात्रिमें खाता है तब जीवोंका समूह जो जनमें पड़ जाता है ऐसे अधरूप रात्रिके जो जनके खानेवालोंको राहसोसे नी क्योंकर विशेष नहीं कहना ? जब पुरुष जिन धर्मसे रहित होकर विरति नहीं करता है तब श्रृंग पुच्छसे रहित पशु रूपही है यदुक्त ॥ वासरे चरज न्याच, य खादन्नेव तिष्ठति ॥ श्रृंगपुच्छपरिच्रष्ट ॥ सस्पष्टपशुरेव हि ॥ १ ॥

अब रात्रिजो जन निवृत्तिके वास्ते पुण्यवर्तोंको अन्यास विशेष दिखाते हैं श्लोक ॥ अन्होमुखे वसाने च, यो देवेष्टिके त्यजेत् ॥ निशाजो जनदोषज्ञो, ऽभ्यात्मसौ पुण्यजा जन ॥ १ ॥ अर्थ - दिन उदयमें अरु अस्त समयमें दो दो घड़ी वर्जनी चाहिये क्योंकि रात्रि निकट होनेसे वर्जनी चाहिये इसी वास्ते आगममें सर्व जघन्य प्रत्याख्यान मुहूर्त्त प्रमाण नमस्कार सहित कहते हैं रात्रिजो जनके दूषणोंका जानकार श्रावक दो घड़ी जब शेष दिन रहे तब जो जन करे जेकर दो घड़ीसे थोड़ा दिन रहे जो जन करे तो रात्रि जो जनके प्रत्याख्यानका उसको फल नहीं होता है जेकर कोइ रात्रिकों नजी खावे परंतु जो उसने रात्रिजो जनका प्रत्याख्यान न करा है तो उसको नी कुछ फल नहीं मिलता है क्योंकि उसने प्रतिज्ञा नहीं करी है जैसे रूपये जमा करावे अरु व्याजका करार न करे उसको व्याज नहीं मिलता है इस वास्ते नियम जरूर करना चाहिये

अब रात्रिजो जन खानेका फल परलोकमें कहते हैं श्लोक ॥ उलूक काकमार्जार, गृध्रशबरशृकरा ॥ अद्विदुश्चिक गोधाश्च, जार्यते रात्रिजो नात् ॥ १ ॥ अर्थ - उलू, काग, बिल्ली, गृध्र, चीत, वारासिंगा, सूअर, सर्प,

सूक्ष्म जीवोंकी रक्षा वास्ते अरु अष्टादश व्यवहार दूर करने वास्ते रात्रि  
कों नहीं खाते हैं यद्यपि दीवेके चादणोंसे कीड़ी प्रमुख दोख जाती है  
तोनी मूलगुणकी विराधना टालने वास्ते रात्रि नोजन अनाचीर्ण है  
अब लौकीक मतवालोंकि सम्मति देकर रात्रिनोजनका निषेध करते  
हैं श्लोक ॥ धर्मविन्नेवजुंजीत, कदाचनविनात्यये ॥ बाह्याद्यपि निशी  
नोज्य, यदनोज्यप्रचक्ष्यते ॥ १ ॥ अर्थ - श्रुतधर्मका जानने वाला कदा  
चित् रात्रिनोजन न करे क्योंकि जो जिनशासनसे बाहिरले मतवाले हैं  
वेनी रात्रिनोजनको अचक्ष्य कहते हैं तिनका शास्त्रही लिखते हैं श्लोक ॥  
त्रयीतेजोमयोजानु, रितिवेदविदोविदुः ॥ तत्करै पूतमखिल, शुचिकर्मसमाचरे  
तु ॥ १ ॥ अर्थ - ऋग यजु साम जह्मण तीनो वेद तिनका जो तेज  
है सो सूर्य है आदित्य त्रयीतनु ऐसा सूर्यका नाम है ऐसावेदोंके  
जानने वाले जानते हैं तिस सूर्यकी किरणाकरके पि - पूत (पवित्र)  
संपूर्ण शुचिकर्म अंगीकार करे जब सूर्योदय न होवे तब शुचिकर्म न करे  
तिन शुचिकर्मोंका नाम लिखते हैं श्लोक ॥ नैवाहुतिर्नचस्नान, नश्राद्वेष  
तार्चन ॥ दानवाविदतरात्रौ, नोजनच विशेषतः ॥ २ ॥ अर्थ - आहुति  
सो अग्निमें घृतादि प्रक्षेप करना स्नानसो अंग प्रत्यंग प्रक्षाल करना श्राद्ध  
पितृकर्म देवपूजा दानदेना नोजन तो विशेष करकेही नज करना इतना  
काम रात्रिमें न करने

तथा परमतके यहनी दो श्लोक हैं ॥ देवैस्तुष्टुतपूर्वान्दे, मध्यान्हेरु  
पिनीस्तथा ॥ थपरान्हेतुपितृनि, सायान्हेदैत्यदानवै ॥ १ ॥ संध्यायां च  
हरहोनि, सदानुक्तकुलोद्ध ॥ सर्ववेला व्यतिक्रम्य, रात्रौशुक्तमनोज  
न ॥ २ ॥ अर्थ - सवेरेतो देवता नोजन करते हैं मध्यान्ह अर्थात् दो  
पहर दिन चढ़ें ऋषि नोजन करते हैं थपरान्ह अर्थात् दिनके पीछे  
नागमें पितर नोजन करते हैं थरु सायान्हे विकाल वेलामें दैत्य दान  
व नोजन करते हैं संध्यामें रातदिनकी तथिमं यह गुह्यक राजस  
खाते हैं ॥ कुलहै त्रिपुविष्टरस्यामत्रण ॥ सर्वदेवताओंका वसत कतबके  
रात्रिको जो खाना है सो अचक्ष्य है यह पुराणोंके श्लोकों करके रात्रि  
नोजनके निषेधका सबाव कहा

अथ वेदरु शास्त्रकानी रात्रिनोजनके निषेधका सबाव कहते हैं श्लो

का आकारनी अर्द्धा नहीं है तथा कफ रोगके करता हैं इनके अधिक खा  
नेसे चौथइयातप खइ रोगादि होजाते हैं और सब जातका फलतो सूकेनी  
खानेमें आता है परंतु यहतो सूकेनीखाने योग्य नहीं हैं क्योंकि सूके पीने  
ऐसे हो जाते हैं कि मानों चूड़ोंकी खलड़ी है ताते यह इव्य अष्टक है  
इस वास्ते अजह्य है इति वैगण अजह्य ॥१८॥

१९ तुल्य फल जो ठोस पीजु पेंचु तथा अत्यंत कोमल फल सोनी  
अजह्य है क्योंकि ऐसी वस्तु बहुतनी खावे तोनी तृप्ति नहीं होती है  
अरु खानेमें थोड़ा आता है और गेरना बहुत पडता है तथा फल  
खाया पीने तिनकी गुठली जो मुखमें चबोजके गेरते हैं उसमें असख्य  
पचेंडीय समूर्द्धिम जीव उत्पन्न होते हैं तथा जो पुरुष बहुत तुल्यफल  
खाता है तिसकों तत्काल रोग होजाता है इति तुल्यफल अजह्य ॥१९॥

२० अजाणा फल सो जिसका नाम कोइ न जानता होवे तथा न  
किसीने खाया होवे सो फलजो अजह्य है क्योंकि क्या जाने कनी जह  
र फल खाया जावे तो मरण हो जावे तथा बावला होजावे ॥ २० ॥

२१ चलित रस सो जिस वस्तुका काल पूरा होगया होवे अरु स्वाद  
बढ़ल गया होवे सो जब स्वाद बढ़ल जाताहै तब तिसका कालनी पूरा  
होजाता है जिसमेंसे दुर्गंध आने लगे, तार पड जावें, सो चलितरस व  
स्तु है यहनी अजह्य है रोटी, तरकारी, खीचड़ी, बड़ा, नरमपूरी, सीरा,  
हलवा इत्यादि रसोइकी अनेक वस्तु जिनमें पाणीकी सरसाइ है ऐसी  
वस्तु एक रात उपरांत अजह्य है तथा विदल (दाल,) बड़े, गुलगुले, छु  
जोये जिनमें पाणीकी सरसाइ है वे चार पहर उपरांत अजह्य है जूग  
लीकी राब (पेंस) जो विना विदलके और उदन ठाठमें रांधा है सो  
आठ पहर उपरांत अजह्य है तथा वर्षाकालमें अठोरातीसे जो मिठाइ  
बनी होवे तो पहर दिन उपरांत अजह्य है जेकर पहर दिनसे पहिले  
विगड जावे तो पहिजाही अजह्य है ऐसी तरें सर्वत्र जान लेना तथा  
उष्णकालमें मिठाइकी स्थिति बीस दिनकी है अरु शीतकालमें मिठाइ को  
स्थिति एक मासकी है उपरांत अजह्य है तथा बड़ी शोला पहर उपरांत  
अजह्य है ठाठनी बड़ीवत् जानलेनी इस चलित रसमें वे इडिय जीव  
उत्पन्न होवे हैं इस वास्ते यह अजह्य है ॥ २१ ॥

विष्णु, गोह, इत्यादि तिर्यंच योनीमें रात्रिजोजन खानेवाले मरके जाते हैं अरु जो रात्रिजोजन न करे उनको एक वर्षमें ठै महीनेका तपका फल होता है ॥ इतिरात्रिजोजन अजह्य संपूर्ण ॥ १४ ॥

१५ बहुबीजा फलजी अजह्य है जिसमें गिर थोड़ा अरु बीज बहुत होवे सो बङ्गण, पटोल, खसखस, पंपोटा प्रमुख फल, जिसमें जितने बीज हैं उसमें उतने पर्याप्त जीव हैं जेकर खानेमें तो थोड़ा आता है अरु जीवघात बहुत होती है तथा बहुबीजा फल खानेसें पित्त प्रमुख रोगों का हेतु होता है अरु जिनाहा विरुद्ध है इति बहु बीजा अजह्य ॥ १५ ॥

१६ सधान अथाणा (आचार) तीन दिनसें उपरांतका अजह्य है सो अथाणा (आचार) अंबका, निंबुका, पत्रका, कर्मदाका, आदेका, जिमीकका, गिरमिरका इत्यादिक अनेक वस्तुका अथाणा (आचार) बनता है चाहो घीका होवे वा तेलका होवे वा पाणीका होवे सर्व तीन दिन उपरांत अजह्य है परंतु इतना विशेष है कि — जो फल आप खट्टे हैं अथवा दू सरी वस्तुमें खट्टा अवाविकजो मेल देवे वेतो तीन दिन उपरांत अजह्य है अरु जिस वस्तुमें खट्टाई नहीं है उसका अथाणा (आचार) एक रात्रिसे उपरांत अजह्य है क्यो कि — इस आचार (अथाणामें) त्रस जीव उत्पन्न होते हैं अरु विघ्न प्रमुखतो प्रथमही अजह्य हैं तो फेर उनके अथाणे (आचारका) तो क्याही कहना है ? आचारमें चौथे दिन निश्चय दोइइयजीव उत्पन्न होते हैं तथा जूरा हाथ लग जावेतो पंचे झी, जीव उत्पन्न हो जाते हैं दूसरे मतवालोंके शास्त्रोंमेंजी अथाणा (आचार) नरकका हेतु लिखा है इति अथाणा अजह्य समाप्त ॥ १६ ॥

१७ दिवल जिसकी दो बाल होजावें अरु घाणीमें पीले जिसमेंसु तेल न निकले ऐसे सर्व अन्नको दिवल कहते हैं तिस दिवलके साथ जो गोरस अग्नि उपर नहीं चढ़ा है ऐसा कच्चा दही कच्चा दूध ठाठ इनके साथ नहीं जीमणा अरु जेकर दही दूध ठाठ गरम करी हाथे फेर पीले चाहो उमा हो जावे उसम जो दिवल मिलाकर खावे ता वाप नहीं है

१८ सर्व जातके वैगण एकतो बहु बीजे ह इत वास्ते अजह्य है तितके चीटमेंसु त्रस जीव रहते ह तथा वैगण कामकी बुद्धि करते ह बीज अधिक करते ह कुवर बुद्धिकाजी टीठ करते ह इनका नामनी बुरा है इन



इन अजहोंमें अफीम जांग प्रमुखका जिसको पहिला अमल लगा होवे, तब तिसके रखनेकी जयणा करे, तथा रात्रिनोजनमें चठविहार, ति विहार, डुविहार एक मासमें इतने करु ऐसा नियम करे, तथा रोगादिकके कारण किसी औपधिमें कोइ अजहू खाना पड़े, तिसकी जयणा रके, तथा बत्तीस अनंतकाय तो सर्वथा निषेध हैं, तोनी रोगादि कारणसे औपधिमें खानी पड़े, तिसकी जयणा रकै, तथा अजाण पणें किसी वस्तुमें मिली दुइ खानेमें आ जावे, तो तिसकी जयणा इति बावीश अनक्षय स्वरूप.

अथ चौदह नियमका विवरण लिखते हैं गाथा ॥ सचित्तद्वविगइ, वाणेइ तंजो ज वड कुसुमेसु ॥ वाहण सयण विलेवण, वनदिसि न्हाण जत्तेसु ॥१॥ अस्यार्थ —आवकके जावजीव पाचअणुव्रतमें इहा परिमाण सो कोइ आगेंकी अनेक तरेंकी कर्म परिणतिका सजव करकें अपणे निर्वाह सामर्थ्यका उदय अतिउत्तर विचारके इहा परिमाणमें वहुत वस्तु खुल्ली रकी है, तिनमेंसे फेर नित्यका आश्रव निवारनेके वास्ते सहेप करणार्थ चौदह नियमका धारण दिन प्रत्ये रखनां चाहियें, तिसका स्वरूप कहते है.

१ प्रथम सचित्त परिमाण सो मुख्यवृत्ती करकें तो आवककों सचित्तकों त्याग करणां चाहियें, क्योंकि अचित्त वस्तुके खानेमें चार गुण हैं, प्रथम तो अप्राप्तक जलादिकका पीना वर्द्धनैसे, सर्व सचित्त वस्तुका त्याग हो जाता है, जहां तक अचित्त वस्तु न होवे, तहां तक मुखमें प्रक्षेप न करे, दूसरा जीव्हा इडिय जीती जाती है, क्योंकि कितनीक वस्तु विना रांघे स्वादवाली होती है, तिनका त्याग दूथा तीसरा अचित्त जलादि पीनेसे काम चेष्टा भव हो जाती है, अरु चित्तमें ऐसा खटका हरदमेश रहता है, कि मेरेकुं मतकजी सचित्त वस्तु खानेमें आ जावे ? चौथा जलादिक इव्य अचेतन करनेमें जीवर्द्धिसा दूइ है, सोतो कर्मवधनका कारण बन चुकी, परतु जो कृण कृणमें असंख्य (अनंत) जीवोंकी उत्पत्ति होती थी, सो मिट गइ तिनकी हिंसा न होवेगी, अरु जो कोइ मूढमति अपनी मन कल्पनासें ऐसा विचार करे कि अचित्त करनेमें पट् कायके जीवोंकी हिंसा होती हैं अरु सचित्त जलादिक पीनेमें तो एक जलादिककी हिंसा है, इस वास्ते सचित्तका त्याग न करनां चाहियें ऐसा विचारके सचित्त त्यागे नहीं, सो भूख जिनमतके रदस्यकों नहीं

२२ बसीस अनंत काय सर्व अनन्य है क्योंकि सुर्किअप्रनाम अरु  
जितना टुकड़ा अनंतकायका आता है उस टुकड़ेमेंनी अनंत जीव है  
वास्ते अनन्य है तिसका नाम लिखते हैं १ नूमिके अंदर बितल  
कंद उत्पन्न होता है, सो सर्व अनंतकाय है, २ सूरणकंद, ३ ब्रजकंद,  
४ हरिहलदी, ५ अष्क, ६ हरिया कचूर, ७ सौंफकी जड़ा, तिस  
कानाम विराली कंद है, ८ सतावरवेल औषधि, ९ कुआर, १० थोहरकं  
द, ११ गलो, १२ लसण, १३ वांसका करेला, १४ गाजर, १५ लासा,  
जिसकी सझी बनती है, १६ लोढी पझनी सो लोढाकंद, १७ गिरमिर,  
(गिरिकरनी) कष्ट देशमें प्रसिद्ध है, १८ किसलयपत्र (कोमल पत्र) जो बड़ा  
अकूर उगता है, सर्व वनस्पतिका उगती वखतके अकूर, सो सर्व प्रथम  
अनंतकाय होते हैं, पीछे जब बढ़ते है, तब प्रत्येकनी हो जाते हैं, अरु  
अनंतकायनी रहते हैं, १९ खरसूयाकंद (कसेरु) अनंतकाय, २०  
थेग कंद विशेष है तथा थेग नामक जाजी, २१ हरे मोष, २२  
लवण वृक्षकी ठाल, २३ खिलोही, २४ अमृतवेल, २५ मूली, २६  
नूमिरुहा सो नूमिफोडा उत्राकार, जिनको वालक पद्मबहेड़े कहते  
हैं, तथा खुवां कहते हैं, २७ वधुवेकी प्रथम उगतेकी जाजी, २८ करु  
दार, २९ सूरवरवल्ली जो जंगलमें बड़ी वेलही हो जाती है, ३० पल  
ककी जाजी, ३१ कोमल आवली, जहांतक उसमें बीज नहीं पड़ा है,  
तहांतक अनंतकाय है, ३२ थालुख, रतालु, पिंमालु, यह बसीस अनंत  
कायका नाम सामान्य प्रकारसें कहा है, अरु विशेष नाम तो अनेक हैं,  
क्योंकि कोईक वनस्पति तो पचांग अनंतकाय है, कोईका मूल अनंतकाय  
है, कोईका पत्र, कोईका फुज, कोईकी ठाल, कोईका काष्ठ, जैसें को  
ईके एकथग, कोईके दोथग, कोईके तीन थग, कोईके चार थग, कोईके  
पांच थग, अनंत काय है यह वत्रीश अनंतकाय अनन्य है ॥ २२ ॥

अथ यह अनंतकायके जानने वास्ते लक्षण लिखते है जिसके पत्ते,  
फुज, फल प्रमुखकी नसां गूठ होवें, दीखे नदीं, तथा जिसकी लथि घुम  
हाये, जो तोड़नेसे बराबर टूटे, अरु जो जड़में काटी हुई फेर बरि  
दा जाये, जिसके पत्ते मोटे बलदार चीरुणे होवें, जिसके पत्ते अरु फल  
बहुत कोमल होवें, ये सर्व अनंतकाय जाननी.

जावे, परंतु उदर जरण नहोवे, तिसकों तंबोल कहते हैं तिसका परिमाण करे  
६ ठाववस्त्र नियम है सो पुरुषके पांचो अंगोके वस्त्रोंका वेष पहरने  
का तिसकी सख्या करे, कि आजके दिनमें मेरेकों इतने ? वेष रखने हैं,  
तथा इतने खुल्ले वस्त्र उढने है, तथा रात्रिकों पहरेनेका वस्त्र तथा स्नान  
समय पहरेनेका वस्त्रकी वेषमे गिणती नहीं तथा समुच्चय वस्त्रकी  
सख्या रख लेवे, अजाण पणो जेल सजेल हो जावे तो आगार

७ सातमां फूलोंके जोगका नियम करे, सो मस्तकमें रखनेवाले, अरु ग  
छेमें पहरने वाले, तथा फूलोंकी शय्या, फूलोंका तकीया, फूलोंका पखा,  
फूलोंका चड्वा, जाली प्रमुख जो जो वस्तु जोगमें आवे, फूलकी ठडी  
सेहरा, कलगी, अरु फूल जो सूधनेमें आवे, तिनका तोल परिमाण रखनां

८ आठमां वाहन नियम करे, सो रथ, गाडी, घोडा, पालखी, उट, बल  
व, नाव, प्रमुख जिसके उपर बैठके जहां जाना होवे, तहां जावे, सो  
वाहन सर्व तीन तरेंका है, १ तरता, २ फिरता, ३ उडता, तिनकी  
संख्याका नियम करे कि इसतरेकी अस्वारीमें आज चढनां

९ नवमां शयन शय्याका नियम करे सो खाट, चौकी, पाट, तखत,  
कुरसी, पालकी, सुखासन प्रमुख जितने रखने होवे सो मनमें धार लेवे

१० दशमां विलेपनका नियम करे सो जोगके अर्थें केसर, चदन,  
चोवा, अतर, फूलेल, गुलाबादिक जो वस्तु अंगके लगानी होवे, तिसका  
नाम मनमें धार लेवे, तथा अंगलूहणाची इत्तीमें रक्क लेनां इसमें इतना  
विशेष है कि देवपूजा, देवदर्शन, इत्यादि धर्म करणी करतां हाथमे धूप,  
अगरवत्ती लेनी पड़े, तथा अर्पणें मस्तकमें तिलक करनां पड़े, तथा जग  
वानकी प्रतिमाकों तिलक करनां पड़े, तिसका आवककों नियम नहीं है

११ इग्यारवां ब्रह्मचर्यका नियम करे, सो दिनमे अरु रात्रिमें इतनी  
वार स्वस्तीसैं मैथुन सेवनां, उपरात स्वस्तीसैंची नहीं सेवनां, अरु हास्य  
विनोद आलिंगन चुवनादिक करनेका जांगा राखे

१२ बारहवां दिशिका नियम करे, सो अमुक दिशिमें आज मैंने इत  
ने कोस उपरात नहीं जानां, इसमें आदेश, उपदेश, माणस जेजना,  
चिछो लिखनी, ये सर्व नियम था गये, जैसे पाल सके, तैसे नियम करे

१३ तेरहवां स्नानका नियम करे, सो आजके दिनमें तैलमर्दनपूर्वक तथा

जानता, क्योंकि संचितके त्यागनेसे आत्मदमनता, औत्सुक्य निवारण ता, विषय कषायकी मदता होती है, अरु जिसमें स्वदयागुण बद्धत है, सोनी वो नहीं जानते इस वास्ते सचित त्यागनेमें बद्धत जान है

१ दूसरा इव्य नियम सो धातुका वा शिला, काष्ठ, मट्टीका पात्र प्रमुख तथा अपणी अगुली प्रमुख विना जो मुखमें खावे सो इव्य कहते है, “परिणामांतरापन्न इव्यमुच्यते” तिनमें खीचडी तो मोदक, पापड, वडा, प्रमुख बद्धत इव्यसे बनते हैं, तोनी परिणामांतरसें ? एकही इव्य है, तथा एकही गेहूँकी बनी रोटी, पोली, गूगरी, बाटी प्रमुख है, तोनी यह सर्व निन्न इव्य है, क्योंकि नामांतर स्वादांतर रूपांतर परिणामांतरसें इव्यांतर हो जाते हैं, तथा कोइक आचार्य और तरेंजी इव्यका स्वरूप कहते हैं, परंतु जो उपर लिखा है, सो बद्धत वृद्ध आचार्योंको यही सम्मत है इस वास्ते इव्योंका परिमाण करे कि आजमें इतने इव्य खाऊंगा ?

३ तीसरा विगय नियम सो विगय दश प्रकारका है, तिनमें १ मधु, २ मांस, ३ माखन, ४ मदिरा, यह चार तो महाविगय हैं, इन चारोंका त्याग तो बावीश अन्नरूपमें लिख आये हैं, शेष ठै विगय रहो, तिसका नाम कहते हैं १ दूध, २ दही, ३ घृत, ४ तैल, ५ गुल, ६ सर्वजातका पकवान, इस ठै विगयमेंसे नित्य एक, दो, तीनादि विगयका त्याग करे, अरु ए केरु विगयके पाच पांच निवीताजी विगयके साथ त्यागना चाहिये, जे कर निवीता त्यागनेकी मनमें न होवे, तब प्रत्याख्यान करनेके अवसर में मनमें धारे कि मेरे विगयका त्याग है, परंतु निवीताका त्याग नहीं

४ चौथा उपानह सो जूता पहिरनेका नियम करे, पगरखी, खडावा, भोजा, चुट, प्रमुख सर्वका नियम करे, क्योंकि यह सर्व जीवहिसाके अधिकरण हैं, तिनमें श्रावकने जिनपूजादि कारण विना खडावां तो कदापि नहीं पहिरनी, क्योंकि इनके हेतु जो जीव था जाता है, वो जीता नहीं रहता है, अरु गृहस्थ लोगोंको जुते विना सरता नहीं इस वास्ते मर्यादा कर लेवे, फेर दूसरेके जुतेमें पग न वेरे चूज चूक हा जायता आगार.

५ पांचमां तंजोत्र सा चौथा स्वादिम नामा आहार है, उसका नियम करे, वसम पान, सोपारी, लगन, एनापची, तन दारनानी, जातिकन, जायत्री, पीपनामून, पीपल, प्रमुख करियाणेंको चीज, तिसम सुख सुद हा

३ तीसरा साडीकर्म सो गाडी, वहिल तथा अस्वारीका रथ, नावों, जहाज, तथा हल, दताल, चरखा, घाणीका अग, तथा धूसरा, चक्की, खजली, मूशल, प्रमुख बना करके वेचे, यह सर्व शकटकर्म हैं ।

४ चौथा जाडीकर्म सो गाढा, बलद, उंट, जैस, गधा, खच्चर, घोडा, नाव, रथ प्रमुखसे दूसरोका वोण वहे जाहे करी आजीविका करे

५ पांचमा फोडीकर्म सो आजीविका वास्ते कूप, वावडी, तलाव, खोदावे, हल चलावे, पत्थर फोडावे, खान खोदावे, इत्यादिक स्फोटिक कर्म है इन पांचों कर्मोंमें बहुत जीवोंकी हिसा होती है इस वास्ते इन पांचोंको कुकर्म कहते हैं अब पांच कुवाणिज्य लिखते हैं

१ प्रथम दतकुवाणिज्य, सो हाथीका दांत, उधूके नख, जीन, कले जा, पक्षीयोका रोम, तथा गायका चमर, हरणके सींग, बारासिंगेके सींग, कुम जिस्सें रेसम रंगते हैं, इत्यादिक जो त्रस जीवका अंगोपांग वेचना है, सो सर्व दतकुवाणिज्य है जब इन वस्तुओंके लेने वास्ते आगरमें जावे, तब निह्नादिक लोक तत्काल हाथी, गैमा, प्रमुख जीवोंकी हिसामें प्रवर्त्त होते हैं, महा पाप अनर्थ करे, तहां जानेंसे अ पणा परिणामजी मजिन हो जाते हैं, कदाचित् लोनपीडित हो कर निह्ना व्याधियोंको कहना पड़ेकि, हमको मोटा नारी दांत चाहीता है, तब वो लोक तत्काल हाथीको मारके वैसा दांत व्यावैगे, इस वास्ते जे कर वस्तु लेनी पड़े, तब व्यापारीके पाससे लेवे, परंतु आगरमें जाकर न लेवे, क्योंकि आगरमें जा कर एक चमर लेवे, तो एक गाय मरे इस वास्ते विचार करके वाणिज्य करे यह प्रथम दत कुवाणिज्य है

२ दूसरा लाखकुवाणिज्य सो लोहा, धावडी, नील, सल्लीखार, सा वन, मनसिल, सोदागा, इत्यादि तथा लाख, ये सर्व लाख कुवाणिज्य हैं, प्रथम तो त्रस जीवोंका समूहहीसे लाख बनती है, अरु पीछे जब रग काढते हैं, तब तिसको अन्नसे सढाते हैं, तब त्रस जीवकी उत्पत्ति होती है, अरु महा दुर्गंध रुधिर सरीखा वर्ण दीखता है, तथा धावडीमें त्रस जीव उपजते हैं, कुण्डयेनी बहुत होते हैं, अरु यह मक्खिरेके अंग है, तथा नीलको जब प्रथम सढाते हैं, तब त्रस जीव उत्पन्न होते हैं, पीछेनी नीलके कुममें त्रसजीव बहुत उत्पन्न होते हैं, अरु नीला वस्त्र पहि

बिनमर्दनपूर्वक कितनी वखत स्नान करना, सो धार लेवे, इसमें वेव पू जाके वास्ते नियमसे अधिक स्नान करना पड़े, तो व्रतभग नहीं

१४ चौदहवां जात पाणीका नियम सो चार आहारमेंसुं स्वादिमका तो तंबोलके नियममें परिमाण रख्या है, शेष तीन आहार हैं, तिनमें प्रथम अशन, सो जात,रोटी,कचौरी,सीरा प्रमुख, तिसका परिमाण करे, कि आजके दिनमें इतना सेर मैरेको खाना है उपरांत त्याग है यहां घरमें बहुत परिवार होवे तिसके वास्ते बहुत अशनादि कराने पड़े, तिसकी जयणा रखे, तथा औरोंके घरमें पंचायत जीमें तहां जाना पड़े, उहां बहुत आदमीउकी रसोई बना रस्की है, उसका दूषण नियम धारीको नहीं, क्योंकि नियम धारीने तो अपणोही खानेकी मर्यादा करी है, परंतु न्यातिके खानेकी मर्यादा नहीं करी है, इस वास्ते अपणो खानेका परिमाण करे कि इतने सेर उपरांत मैं आज नहीं खावगा, तथा दूसरा पाणीतिसके पीनेका परिमाण करे, कि इतने कलसो उपरांत पाणी मैंने आज नहीं पीना, तथा तीसरा स्वादिम, सो मिठाई अथवा मिष्ठान्न मोदकादिक तिनका परिमाण करे, यह चौदह नियम हैं, इहां अधिक नाव वाला श्रावक होवे, सो सचित्तादि परिमाणमें इव्यका परिमाण जूवा जूवा नाम ले कर रके, तो बहुत निर्झरा होवे ॥ इति चौदह नियमका स्वरूप सपूर्ण ॥

अथ पंदरा कर्मादानका स्वरूप लिखते हैं यह पंदरह व्यापार श्रावकको निषेध है, सो करणों नहीं, क्यों कि इनके करणोंसे बहुत पाप लगता है, जे फर श्रावककी आजीविका न चलती होवे तो परिमाण कर लेवे सो पंदराकर्मादानका नाम कहते है

१ प्रथम श्मालकर्म, सो कोयले बना कर पेचने इट बनाकर बेचने, जाहे खिलोने बनापका करके बेचे, लोहारका कर्म, सोनारका कर्म, बगडी कार, सीतकार, कजाल, जगीपारा, जडजूजा, दलवाई, धातुगालक, इत्यादि जा व्यापार यन्त्रि करके होंगे, सो सर्व श्मालकर्म है इसम पाप बहुत लगता है, थरु लाज थोडा दीता है, इस वास्ते यहकर्म श्रावक न करे.

२ दूसरा वनकर्म सो ठेया थनठेया वन बेचे, वगीपेके फल पत्र बेचे फल, फूल, कदमूल, तृण, काष्ठ, लकडी, वशादिक बेचे, तथा जो हरि वनस्पति बेचे, यह सब वनकर्म है

३ तीसरा साडीकर्म सो गाढी, वहिल तथा अस्वारीका रथ, नावौं, जहाज, तथा हल, दताल, चरखा, घाणीका अंग, तथा धूसरा, चक्री, ठखली, मूशल, प्रमुख बना करके वेचे, यह सर्व शकटकर्म हैं ।

४ चौथा जाडीकर्म सो गाढा, बलद, उट, जैस, गधा, खच्चर, घोडा, नाव, रथ प्रमुखसे दूसरोका वोण वहे जाडे करी आजीविका करे

५ पांचमा फोडीकर्म सो आजीविका वास्ते कूप, वावडी, तलाव, खोदावे, हल चलावे, पछर फोडावे, खान खोदावे, इत्यादिक स्फोटिक कर्म है इन पांचों कर्मोंमें बहूत जीवोंकी हिंसा होती है इस वास्ते इन पांचोंको कुकर्म कहते हैं अब पांच कुवाणिज्य लिखते हैं

१ प्रथम दतकुवाणिज्य, सो हाथीका दांत, ठड्डूके नख, जीन, कलें जा, पक्षियोंका रोम, तथा गायका चमर, हरणके सींग, बारासिंगेके सींग, कुम जिस्सें रेसम रंगते हैं, इत्यादिक जो त्रस जीवका अंगोपांग वेचना है, सो सर्व दतकुवाणिज्य है जब इन वस्तुओंके लेने वास्ते आगरमें जावे, तब निह्नादिक लोक तत्काल हाथी, गैना, प्रमुख जीवोंकी हिंसामें प्रवर्त्त होते हैं, महा पाप अनर्थ करे, तहां जानेंसे अपणा परिणामनी मलिन हो जाते हैं, कदाचित् लोनपीडित हो कर निह्न व्याधियोंको कहना पड़ेकि, हमको मोटा नारी दांत चाहीता है, तब वो लोक तत्काल हाथीको मारके वैसा दांत ल्यावेंगे, इस वास्ते जे कर वस्तु लेनी पड़े, तब व्यापारीके पाससे लेवे, परंतु आगरमें जाकर न लेवे, क्योंकि आगरमें जा कर एक चमर लेवे, तो एक गाय मरे इस वास्ते विचार करके वाणिज्य करे यह प्रथम दत कुवाणिज्य है

२ दूसरा लाखकुवाणिज्य सो लोढा, धावडी, नील, सल्लीखार, सा वन, मनसिल, सोहागा, इत्यादि तथा लाख, ये सर्व लाख कुवाणिज्य हैं, प्रथम तो त्रस जीवोंका समूहहीसे लाख बनती है, अरु पीछे जब रंग काढते हैं, तब तिसको अन्नसे सडाते हैं, तब त्रस जीवकी उत्पत्ति होती है, अरु महा दुर्गंध रुधिर सरीखा वर्ण दीखता है, तथा धावडीमें त्रस जीव उपजते हैं, कुपुयेनी बद्धत होते हैं, अरु यह मदिरके अंग हैं, तथा नीलको जब प्रथम सडाते हैं, तब त्रस जीव उत्पन्न होते हैं, पीछेनी नीलके कुर्ममें त्रसजीव बद्धत उत्पन्न होते हैं, अरु नीला वस्त्र पहि

रनेमें उसमें जू जीखादि त्रसजीव उत्पन्न होते हैं, तथा हरताल मनसिलकों पीसती वखत जो यज्ञ न करे, तो मक्की प्रमुख अनेक जीव मर जाते हैं.

३ तीसरा रस कुवाणिज्य. सो मक़िरा, मांस, इत्यादि वस्तुका व्यापार महा पापरूप है, तथा दूध, वहीं, घृत, तेल, गुह, खानं प्रमुख जो ठीली वस्तु है, इसका जो व्यापार करना सो रसकुवाणिज्य है इसमें अनेक जीवोंकी घात होती है वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे.

४ चौथा केशकुवाणिज्य है सो द्विपद जो मनुष्य, दास, दासी प्रमुख, खरीद कर बेचनें, तथा चौपद जो गाय, घोड़ा, जैस प्रमुख खरीदके बेचनें तथा पंखीयोंमें तीतर, मोर, तोता, मैनां, बटेरा प्रमुख बेचे, इस वाणिज्यमें पाप बहुत है इस वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे

५ पांचमा विष कुवाणिज्य सो शखीया (सोमल) वृक्षनाग, अफीम, मनसिल, हरताल, चरस, गांजा प्रमुख तथा शस्त्र जो धनुष, तलवार, कटारी, बुरी, बरडी, फरसी, कुहाडी, कुशी, कुदाल, पेसकबज, बंदूक, ढाल, गोली, दारु, वक्कर, पाखर, जिलम, तोप प्रमुख जिन करके सन्नाह म करते हैं, तथा हल, मृशाल, उखल, दंताली, कर्वत, दात्री, गोला, इवाइ, पटाका, कुहक, शतग्री प्रमुख सर्व हिंसादीका अधिकरण है इनका जो व्यापार करना, सो सब विषवाणिज्य है. इसमें बहुत हिंसा होती है, ये पांच कुवाणिज्य हैं अब पांच सामान्य कर्म कहते हैं

१ प्रथम यत्रपीजन कर्म सो तिल सरसों, इकुआदि पीलाय करके बेचना, यह सर्व जीवहिंसाके निमित्तरूप यत्रपीजन कर्म है

२ दूसरा निर्लोठन कर्म सो बैज घोड़ाको खस्ती करणां, घोड़े, कत्तड़, कट प्रमुखको दाग वेनां, कोतवालकी नौकरी, जेलखानेका दरोणा ठेका लेनां, मसूल इजारे लेनां, चोरोंके गाममें वास करनां, इत्यादि जो निर्बयपणेका काम है, सो सर्व निर्लोठन कर्म है

३ तीसरा दावाग्रिदान कर्म सो कितनेक मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव धर्म मानके वनमें त्याग लगा देते हैं, वो अपने मनमें जानते हैं कि नया घात उत्पन्न होवेगा तब गो चरगी, निह्रादिक लोक सुखम रखें, यन्न उपजेगा, इत्यादि कार्य अज्ञानपणसे धर्म जाणक करे, त्याग लगा नस लाखों जीव मरजाते हैं, उस वास्ते त्याग न लगानी चादिय



५ शौचाशोषणकर्म. सो वावडी, तलाव, सरोवर, इनका जल अपणे खेतमें देवे, जब पाणीकों बहार काढे, तब लाखों जीव जल रहित त डफडके मर जाते हैं, इस वास्ते सर्वपाणी शोषण न करना.

५ पांचमा असतीपोषण कर्म. सो कुतूहलके वास्ते कुत्ते, बिल्ले, हिसक जीवोंकों पोपे, तथा डुष्ट जायाँ, अरु डुराचारी पुत्रकों मोहसें पोषण करे, साचा जूग जाणे नही, जो मनमें आवे सो करे, तिनकों राजी रखे, तथा बेचणे वास्ते डुराचारी दास दासीको पोपे, सो असती कर्म कहियें तथा माढी, कसाई, वागुरी, चमार प्रमुख बहु आरंजी जीवोंके साथ व्यापार करे, तिनकों ड्य तथा खरची प्रमुख देवे, यहजी डुष्ट जीवोंका पोषण है, जे कर अनुकपा करके श्वान (कुत्ते) प्रमुख किसी जीवकों पुण्य जान कर देवे, तो उसका निषेध नही, तथा अपणे महेज्जमें जो जीव दोष तिनकी खबर लेनी पड़े, तथा अपणे कुटुंबका पोषण करना पड़े, इसमें पूर्वोक्त दोष नही क्योंकि यह लोकनीति राजनीतिका रस्ता है, यह पांच सामान्य कर्म कहा इति पदरा कर्मादान सपूर्ण.

अब यह सातमें जोगोपजोग व्रतका पांच अतिचार लिखते हैं

१ प्रथम सचित्त आहार अतिचार, सो मूलनांगमें तो आवक सर्व सचित्तका त्याग करे, जेकर नही करे, तो परिमाण कर लेवे, तहां सर्व सचित्तके त्यागी तथा सचित्तके परिमाणवाले जो अनाजोगादिकसें सचित्त आहार करे, तथा जल, तीन ठकाली आजानेसें शुद्ध प्राणिक होता है, तिनमें एक ठकाला, दो ठकालाका पाणी तो मिश्र ठक्क कहा जाता है, तिस पाणीकों अचित्त जाणके पीवे तथा सचित्त वस्तु अचित्त दोनेमें देर है, उस वस्तुकों अचित्त जान कर खावे, तो प्रथम अतिचार लागे

२ दूसरा सचित्त प्रतिबन्धाहार अतिचार सो जिसके सचित्त वस्तुका नियम है, सो तत्काल खैरकी गांवसें गूढ ठखेडके खावे, गूढ तो अचित्त है परंतु सचित्तके साथ मिला दूथा या सो दूषण लगता है, तथा पक्का दूथा अब खिरणी वेर प्रमुखकों मुखसें खावे, अरु मनमें जानता है कि मैं तो अचित्त खाता हूँ, सचित्त खुलीकों तो गेर देखगा, इसमें क्या दोष है ? ऐसा विचार करके खावे तब दूसरा अतिचार लागे

३ तीसरा अपकौपयि नष्टण अतिचार सो बिना ठाण्या थाटा, अ

रनेसें उसमें जू जीखादि त्रसजीव उत्पन्न होते हैं, तथा हरताल, मनसिजकों पीसती वखत जो यत्न न करे, तो मक्की प्रमुख अनेक जीव मर जाते हैं.

३ तीसरा रस कुवाणिज्य. सो मविरा, मांस, इत्यादि वस्तुका व्यापार महा पापरूप है, तथा दूध, बर्ही, घृत, तेल, गुड, खाम, प्रमुख जो ठीली वस्तु है, इसका जो व्यापार करना सो रसकुवाणिज्य है इसमें अनेक जीवोंकी घात होती है वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे.

४ चौथा केशकुवाणिज्य है सो द्विपद जो मनुष्य, दास, दासी प्रमुख, खरीद, कर बेचनें, तथा चौपद जो गाय, घोड़ा, जैस प्रमुख खरीदके बेचनें तथा पंखीयोंमें तीतर, मोर, तोता, मैना, बटेरा प्रमुख बेचे, इस वाणिज्यमें पाप बहुत है इस वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे.

५ पांचमा विष कुवाणिज्य सो शखीया (सोमल) वज्रनाग, अफीम, मनसिज, हरताल, चरस, गांजा प्रमुख तथा शस्त्र जो धनुष, तलवार, कटारी, बुरी, बरठी, फरसी, कुदाही, कुशी, कुदाल, पेसकबज, बंदूक, ढाल, गोली, दारु, वक्तर, पाखर, जिलम, तोप प्रमुख लिन करके सभा म करते हैं, तथा दल, मूशल, खल, दंताली, कर्वत, दात्री, गोला, इवाइ, पटाका, कुहक, शतग्री प्रमुख सर्व हिंसाहीका अधिकरण है इनका जो व्यापार करना, सो सब विषवाणिज्य है. इसमें बहुत हिंसा होती है, ये पांच कुवाणिज्य हैं थव पांच सामान्य कर्म कहते हैं.

१ प्रथम यत्रपीलन कर्म सो तिल सरसों, इकुआदि पीजाय करके बेचना, यह सर्व जीवहिंसाके निमित्तरूप यत्रपीलन कर्म है.

२ दूसरा निर्जाठन कर्म सो बैज घोडाको खस्ती करणां, घोड़े, बज्र, कट प्रमुखको दाग वेनां, कोतवालकी नौकरी, जेलखानेका दरोगा ठेका लेनां, मसूल इजारे लेनां, चोरोके गाममें वास करनां, इत्यादि जो निर्बपणेका काम है, सो सर्व निर्जाठन कर्म है.

३ तीसरा दावाप्रिवान कर्म सा कितनेक मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव धर्म मानके वनमें त्याग लगा देते हैं, वो अपने मनमें जानते हैं कि नवा घास उत्पन्न होवेगा तब गो चरगी, जिघ्रादिक लाक सुखम रखें, थन्न उपजेगा, इत्यादि कार्य अज्ञानपणेसे धर्म जाणके कर, आन जना नैस लाखों जीव मरजाते हैं, यस वास्ते आन न जगानी चाहिये.

रूप धन, व्यवहार है, तिस्र व्यवहारके वास्ते जो पाप करना पड़े, सो अर्थदंन है तीसरा अपणा स्वजन कुटुंब परिवारादिकके वास्ते अवश्य जो जो पाप सेवना पड़े, सो सो सब अर्थ दंन है चौथा पांच प्रकारकी इन्द्रियोंके जोग वास्ते जो पाप करे, सोनी अर्थ दंन है, इन पूर्वोक्त चारों प्रयोजनों बिना जो पाप करे, सो अनर्थदंन जानना तिसके चार जेद हैं, सो कहते हैं प्रथम अपध्यान अनर्थदंन, दूसरा पापोपदेश अनर्थदंन, तीसरा हिसप्रदान अनर्थदंन, चौथा प्रमादाचरित अनर्थदंन है इनमेंसू प्रथम जो अपध्यान अनर्थदंन है, उसके फेर दो जेद है, एक आर्त्तध्यान दूसरा रौद्ध्यान, तिनमें फेर आर्त्तध्यानके चार जेद हैं, सो एषक् एषक् कहते हैं

१ प्रथम अनिष्टार्थ सयोगार्त्तध्यान. सो इन्द्रिय सुखका विघ्नकारी ऐसे अनिष्ट शब्दादिकके सयोग होनेकी चिन्ता करे कि मत मेरेको अनिष्ट शब्द मिले

२ दूसरा इष्टवियोगार्त्तध्यान सो हमको नवविध परिग्रह अरु परिवार जो मिला है, इसका वियोग मत होवे, ऐसी चिन्ता करे, अथवा इष्ट जो माता, पिता, स्त्री, पुत्र, मित्र प्रमुख हैं, इनके विदेश गमनसें तथा मरण होनेसें बहुत चिन्ता करे, खाए पीए नहीं, वियोगके ड खसें आत्मघात करनेका विचार करे, अथवा सर्वदिन क्रोधहीमें रहे, तथा घरमें यह कुपूत है, यह नाई वेदिल है, मेरे पिताका मेरे उपर मोह नहीं है, यह स्त्री मुझे कों बहुत खराब मिली है, सो मेरे उपर दिल नहीं देती है, इसका कोई उपाय होवे तो अच्छा है, अरु स्त्री मनमें विचारे कि मुझे शौकन खराब करती है, मेरे पतिकों जूलाती है, क्या जाने किसी दिन पतिसें मुझे दूर करेगी? इस वास्ते इस रामका कुछ उपाय करना चाहिये, तथा सेवक ऐसा विचार करे कि—मेरे स्वामीके आगें फलाना मेरा इरमन गया है, सो जरूर मेरी खोटी करेगा, मेरी रीत जातको अदल बदल कर देवेगा, मेरे स्वामीको जूत साच कह कर मेरी नौकरी कुड़ा देवेगा, तब मैं क्या करूंगा? इसका कुछ उपाय करना चाहिये, तिसके तिग्रह वास्ते यंत्र, मन्त्र, कामन, मोहन, वशीकरण करे, तिसको फूटा कलक देवे, बलिदान देने वास्ते त्रस जीवको मारे, यह सब अपने शत्रुके तिग्रह वास्ते करे तथा मूत चलाके मारा चाहे, परंतु वो मूर्ख यह नहीं विचारता कि—जे कर तू अपणो दिलसे सच्चा है, तो तुजे क्या फिकर है? अरु जहां तक अगलेका पु

श्रिकासंस्कार जिसको करा नहीं, ऐसा कच्चा आटा खावे, क्योंकि श्री सिद्धांतमें आटा पीस्या पीठे विना भाष्या, कितनेही दिन मिश्र रहता है, सो कहते हैं श्रावण, जादव मासमें अनगन्या आटा पीस्या पीठे पांच दिन मिश्र रहता है, आश्विन और कार्तिक मासमें चार दिन मिश्र रहता है, मगसिर और पौष मासमें तीन दिन मिश्र रहता है, माघ और फागुण मासमें पांच प्रहर मिश्र रहता है, चैत्र अरु वैशाख मासमें चार प्रहर मिश्र रहता है, ज्येष्ठ अरु आषाढ मासमें तीन प्रहर मिश्र रहता है, पीठे अचिच हो जाता है, सो मिश्र खावे, तो तीसरा अतिचार लागे

४ चौथा दुपकौषधि नरुण अतिचार सो कबुक कच्चा, कबुक पक्का जैसें सर्व जातके पोंक अर्थात् सिट्टे जो मक्की, जवार, बाजरे, गेहूं प्र मुखके बीजोंसें नरें हुए होते है, इनको अश्रिका संस्कार कच्चा, कबुक पक्के हो जावे तिनको अचिच जान कर खावे, तो चौथा अतिचार लागे

५ पांचमा तुडौपधि नरुण अतिचार सो तुड नाम इहां असारण है, जिसके खानेसें तृप्ति न होवे, तिसके खानेमें पाप बहुत है, जैसें पणका फूल खावे, तथा बेरकी गुठलीमेंसें गिर निकालके खावे, तथा वाल, समा, मूग, चवलाकी फली खावे, इसके खानेसें प्रसंग दूषणजी लग जाते है, क्योंकि कोइ बनस्पति अतिकोमल अवस्थामें अनतकाय नी होती है, तिसके खानेसें अनतकायका व्रतजग हो जाता है, यह पांचमा अतिचार कहा ॥ इति सप्तम जोगोपजोग व्रतं संपूर्ण ॥ ४ ॥

अथ थावमा थनर्थदम विरमणव्रतका स्वरूप लिखते है प्रथम अर्थ दम उसको कहते हैं, कि जो थपणे प्रयोजनके वास्ते करे, सो धन, धान्य, क्षेत्रादि नवविध परिग्रहमें दानी वृद्धि होवे, तब करे, क्योंकि धनवृद्धिके निमित्त सत्तारी जीवकों बहुत पापके कारन सेवने पडते है, तब सत्य पूर सोले बिना रखा नहीं जाता है, पापके उपकरणजी मेलने पडते है, जब कोइ मनसूवा करना पडता है, तब थनेक विकल्प रूप आर्त्तभ्यान करना पडता है, क्योंकि धनादिक परिग्रह आजीविकाके अर्थ है, तिस वास्ते धनकी वृद्धि वास्ते जो जो पाप करता है, सो सा सर्व अर्थ दम है दूसरा जब धनकी दानि होती है, तब धनदानि दूर करणे बारीक अनेक विकल्प रूप पाप करता है, सोनी अर्थ दम है, क्योंकि सत्तारक सुखका कारण

जावे तो ठीक है मुझे बहुत नफा मिल जावे, इत्यादि अनागत कालकी अपेक्षा अनेक कुविकल्प शोखशीलीकी तरें चिंते, इसका नाम अग्रशोच नामा आर्त्तध्यान है इति आर्त्तध्यानका संक्षेप स्वरूप लिखा ॥

अथ रौडध्यानका स्वरूप कहते हैं ? प्रथम हिंसानव रौड. सो त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा करके मनमें आनंद माने, तथा बहुत पाप करके सुंदर हाट, हवेली, बाग प्रमुख बनावे, उसको देखके जब लोक प्रशंसा करे, तब मनमें सुख माने कि मैंने कैसी हिकमतसे बनाया है, मेरे समान अकल किसीमेंनी नहीं है, तथा रसोइ प्रमुख खानेकी वस्तु बनावे, तब बहुत मसाले माले, नरक वस्तुकों अनरक सदृश बनाके खावे, तथा मानके उदयसे ऐसी जमणवार (ज्यौनार) करे, कि जिसको सर्व लोक सराहें, तथा राजाओंकी जहाइ सुन कर खुसी माने, एक राजा का पट्टी बन कर महिमा करे, दूसरेकी निंदा करे, तथा अमुक योद्धेने एक तरवारसे सिंहादिक मारा है, वाह रे सुनट ! ऐसी प्रशंसा करे, तथा अपणे दुश्मनको मरा सुन कर राजी होवे, मुख मरोड़े, मूठ ठपर हाथ फेरे, हाथ घसे, अरु मुखसे कहे कि ये हरामखोर मेरे पुण्यसे मर गया, ऐसी ऐसी खोटी चिंतवणा करके कर्म बांधे, परंतु ऐसा न विचारे कि - दूसरा कोइ किसीका मारणे वाला नहीं है, उसकी आयु पूरी हो गई इस वास्ते मर गया, एक दिन इसीतरें तुझी मर जायगा फूटा अग्नि मान करना ठीक नहीं, ऐसा विचार न करे, सो हिंसानव रौडध्यान कहिये

१ दूसरा मृपानव रौडध्यान सो फूट बोलके खुशी होवे अरु मनमें ऐसा चिंते कि मैंने कैसीकवात बनाके करी किसीकोनी खबर न पड़ी, मैं बड़ा अकलवत हूँ ? मेरे समान कौन है ? मेरे सन्मुख कौन जवाब करनेको समर्थ है ? बोलना है, सो करामात है, बोलना किसीको आता है, इस अवसरमें जेकर मैं ना होता, तो देखते क्या होता ? ऐसा मन में फूले और अपने दुश्मनको सकटमें गेरके मनमें आनंद माने अरु कहे कि देखा मैंने कैसी हिकमत करी ? राज दरबारमें लोकोंकी चुगली करके स्थानघ्न करे, मनमें खुसी माने इत्यादि मृपानव रौड है

३ तीसरा चौर्यानव रौड सो नरक जीवोंसे कूड कपटकी वार्ता बना करके बहु मूर्खी वस्तु थोड़े वाममें ले लेवे, तथा पराया धन, लेखेसे अधि

एवोदयः है, तहां तक तूं यंत्र, मंत्रसे उसका कुछ बुरा नहीं कर सकता है, ये सर्व ससारी जीवकी मूर्खता है, यह सर्व अनर्थदंम है तथा प्रथम पणी आतुरतासेंति मनसें कुविकल्प करे, कि मेरे वैरीके कुलमें अमुक जब रवस्त उत्पन्न हुआ है, सो मेरेकों दुःख देवेगा, इसकी राजदरबारमें आकर जावे, अरु दंड होवे, तो ठीक है, तथा इसका कोई बिड़ मिले तो सरारमें कह कर इसकों गामसें निकलवाय देव तो ठीक है, ऐसा विचार सूठ अज्ञानी करता है, तथा यहां चोर बहुत पड़ते हैं, सो पकड़े जाय, फांसी दीये जाय, तो बड़ा अच्छा काम होवे, तथा अमुक पुरुष, मेरे घर हो कर चलता है, इस दरगमजावेका कुछ बदोबस्त करना चाहिये, जुं फेर कदापि शिर न उठावे, इत्यादि खोटे विकल्प करके अनर्थदंम करे, क्योंकि किसिकी चितवणासें दूसरोका बिगाड नहीं होता है, जे कुछ होना है, सो तो सब पुण्य पापके अधीन है, तो फेर तू काहेकों बिज्जीबत मनोरथ करता है ? क्यों कि - यह विना प्रयोजनके पाप लगता है, सो अनर्थदंम है, ये दूसरा आर्त्तध्यानका चेद कहा

३ तीसरा रोगनिदानार्त्त ध्यान सो मेरे शरीरमें किसी बखत रोग होता है, वो न होवे तो अच्छा है, लोकोको पूछे कि अमुक रोग क्यों कर न होवे ? तब कोइ कहेकि अमुक अमुक अन्नरू वस्तु खानेसें नहीं होता है, तब अन्नरूजी खा लेवे, तथा जब शरीरमें रोग होवे, तब बहुत दाय दाय बन्द करे, बहुत थारंज करे, घड़ी घड़ीमें ज्योतिषीकों पूछे, कि मेरा रोग कब जायगा ? तथा वैद्यको वार वार पूछे, तथा मेरे उपर किसीने जाडु करा है ? थैसी शका करे, अरु रोग दूर करने वास्ते कुछ विरुद्ध, धर्मविरुद्ध करे, तथा अन्नरू खानेमें तत्पर होवे, रोग दूर करनेके वास्ते औषधि, बड़ी, चूटी, मंत्र, यंत्र, तंत्र, सीखे तथा सीखे हुए किसी बखत मेरेकाम आवेगा, यह रोगनिदानार्त्तनामा आर्त्तध्यानका तीसरा चेद है

४ चौथा अमशोचनामा आर्त्तध्यान, सो अनागत कालकी चिंता करे, कि आवता वर्षमें यह विवाह करुगा, तथा थैसी दाद, हवेली बनाऊंगा, कि जिसकों देख कर सबे लाक आभय करे, तथा अमुक होयम बनीका लगाना दे, जिसके आगे सबे बाग निरुद्धे होनाव सबे दरमनकी जाती जजे, तथा अमुक वस्तुका नैने सोदा करा है, सो यस्तु खानेका कबानी दा

जावे तो ठीक है मुझे बहुत नफा मिल जावे, इत्यादि अनागत कालकी अपेक्षा अनेक कुविकल्प शंखशीलिकी तरें चिंतें, इसका नाम अग्रशोच नामा आर्त्तध्यान है इति आर्त्तध्यानका सङ्क्षेप स्वरूप लिखा ॥

अथ रौडध्यानका स्वरूप कहते हैं ? प्रथम हिंस्तानद रौड. सो त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा करके मनमें आनंद माने, तथा बहुत पाप करके सुंदर हाट, हवेली, बाग प्रमुख बनावे, उसको देखके जब लोक प्रशंसा करे, तब मनमें सुख माने कि मैंने कैसी हिकमतसे बनाया है, मेरे समान अकल किसीमेंजी नहीं है, तथा रसोड प्रमुख खानेकी वस्तु बनावे, तब बहुत मसाले माले, नरक वस्तुको अनरक सदृश बनाके खावे, तथा मानके उदयसे ऐसी जमणवार (ज्योनार) करे, कि जिसको सर्व लोक सराहें, तथा राजाओंकी जडाइ सुन कर खुसी माने, एक राजा का पट्टी बन कर महिमा करे, दूसरेकी निंदा करे, तथा अमुक थोड़ेने एक तरवारसे सिंहादिक मारा है, वाद रे सुनट ! ऐसी प्रशंसा करे, तथा अपणे डडमनको मरा सुन कर राजी होवे, मुख मरोडे, मूठ ठपर हाथ फेरे, हाथ घसे, अरु सुखसे कहे कि ये हरामखोर मेरे पुण्यसे मर गया, ऐसी ऐसी खोटी चिंतवणा करके कर्म बांधे, परंतु ऐसा न विचारे कि - दूसरा कोइ किसीका मारणे वाला नहीं है, उसकी आयु पूरी हो गई इस वास्ते मर गया, एक दिन इसीतरें तुजी मर जायगा फूटा अजि मान करना ठीक नहीं, ऐसा विचार न करे, सो हिंस्तानद रौडध्यान कहिये

१ दूसरा मृषानद रौडध्यान सो फूट बोलके खुशी होवे अरु मनमें ऐसा चिंतें कि मैंने कैसीकवात बनाके करी किसीकोजी खबर न पड़ी, मैं बड़ा अकलवत हू ? मेरे समान कौन है ? मेरे सन्मुख कौन जवाब करनेको समर्थ है ? बोलना है, सो करामात है, बोलना किसीको आता है, इस अवसरमें जेकर मैं ना होता, तो देखते क्या होता ? ऐसा मन में फूले और अपने डडमनको सकटमें गेरके मनमें आनंद माने अरु कहे कि देखा मैंने कैसी हिकमत करी ? राज दरवारमें लोकोंकी चुगली करके स्थानभ्रष्ट करे, मनमें खुसी माने इत्यादि मृषानद रौड है

३ तीसरा चौर्यानद रौड सो नरक जीवोंसे कूड कपटकी धाता बना करके बहु मृजी वस्तु थोड़े दाममें ले लेवे, तथा पराया धन, लेखेसे अधि

क्र लेवे, तथा चोरी करके किसीकी वहीमें अधिका उठा जिसके आप पैसा खाय जावे, अनेक कपटकी कलासे शेरको राजी कर दे, पीछे विचारे कि मैं कैसा चतुर हू, कि पैसाजी खाया, अरु सेठके सखाजी बन गया ? तथा व्यापार करे, तब खोटी छूठी सौगद लावे, मीठा बोल कर दूसरोंको विश्वास उपजा कर न्यून अधिक देवे, लेवे, अरु मनमें राजी होके कहेकि मेरे समान कमाऊ कौन है ? तथा चोरी करके मनमें आनंद माने कि मैंने कैसी चोरी करी, कि जिसकी किसकी खबरजी नहीं पड़ी ? तथा छूठे खत पत्र बनाकर सरकारसे फने पावे, तब मनमें बड़ा आनंदित होवे, जो मैं बड़ा चलाक हू, मैंने हाकमकोंजी धोखा दीया, इत्यादि चौंरानंद, सो रौड़ ध्यानका तीसरा नेद है

४ चौथा सररूपानंद रौड़ सो परिग्रह, धन, धान्य, बहुत बढ़ावे, पीछे औरजी इच्छा करे, पाप कुटुंबके पोषणे वास्ते परिग्रहकी वृद्धि करे, बहुत कुबुद्धि करे, जैसे तैसे कामको अंगीकार करे, लोक विरुद्ध, राजविरुद्ध, कुलविरुद्ध, धर्मविरुद्धादिक कामकी उपेक्षा न करे, ऐसे करता पूर्व पुण्योदयसे पाप परिग्रह पावे, धन बहुत हो जावे, तब मनमें बहुत सुखी माने कि इतना धन मैंने एकिलाने पैदा कीया है, ऐसा और कौन दुस्तार है, जो पैदा कर सके ? ऐसा अहंकार करे, अहंकारमें मग्न रहे, रातदिन मनमें चिंता रहे, कि मत कजी मेरा धन नष्ट हो जावे, रातको पूरा सो वेजी नहीं, हाट हवेलीके ताळे टटोलता रहे, सगे पुत्रकाजी विश्वास न करे, जोकाको कुबुद्धि सिखावे, इत्यादि सररूपानुबधी रौड़ध्यान है, ये आनंद धरु रौड़ मिलकर प्रथम अथपध्यानायंदमके नेद है, सो न करना चाहिये.

२ अथ दूसरा पापकर्मोपदेश अथनयेदम कहते हैं सो हरेक अबसरमें न सवधि तथा वाक्स्थिता वर्ज्यके पापोपदेश करे, जैसे तुमारे परम बड़े बड़े हो गये हैं, इनको बन्धीया करके समारो, नाकमे नथ गेरो, पोहेको चावक अस्वारको देवों, वो ईसको फेरके सिखावे, तथा तुमारे क्षेत्रमें ठ बट्टत हा रहा है, उसका काटना तथा जजाना चाहिये, इत्यादि जो पापकारी काम है, तिसका बिना प्रयाजन अज्ञानपणसे उपदेश करे, यह दूसरा पापकर्मोपदेश अथनयेदम है.

३ तीसरा हिंस्रप्रदान अथनयेदम, सो हिंसाकारी बस्तु गादी, दंत, कण



तलवारादि, अग्नि, मूशल, खल, धनुष, तरकस, चक्र, छुरी, दाट प्रमुख दूसरोंको दाहिणता विना, मागे विना, देवे सो हिंसप्रदान.

४ चौथा प्रमादाचरण अनर्थदंभ सो कुतूहलसे गीत, नाटक, तमाशा, मेला प्रमुख सुनने देखने जाना, इन्द्रियोंकी विषय पोषणी, इहां कुतूहल कहनेसें जिनयात्रा, सघ, अष्टाश्महोत्सव, रथयात्रा, तीर्थयात्रा, इनके देखने वास्ते जावे, तो प्रमादाचरण नही, किंतु यह तो सम्यक्त्व पुष्टिके कारण हैं, तथा कामशास्त्र वात्सायनादिकोंके कर्म तिनमें अत्यंत गृहि वार वार उसका अन्यास करना तथा जूआ खेलना, मद्य पीना, शिकार मारने जाना, तथा जलक्रीडा (तलाव प्रमुखमें कूदना) जल उठाना, तथा वृद्धशाखाके साथ रस्ता बांधकर फूजना (हिंचना) हिंमोले (फुजाना) हिंचना, तथा जाल, तीतर, वटेरे, कूकड़े, मिंढे, जैसैं, दाथी, बुलबुल, इनको आपसमें लडाना तथा अपने शत्रुके बेटे पोतेसैं बैर रखना, बैर लेना, तथा नक्तकथा सो “मांस, कुलमाप, मोदक, उदनादि बहुत अष्टा नोजन है, जो खाते हैं, व नको बड़ा स्वाद आता है, अरु हमनी यह खायंगे” इत्यादि कहना, तथा स्त्री कथा, सो स्त्रियोंके पढ़नेकी तथा अंगप्रत्यंग हावनावादि कथन रूप, तथा “कर्णाटी सुरतोपचारकुशला, जाटी विदग्धा प्रिये” इत्यादि तथा स्त्री के रूपोत्पादन, कुच कठन करणा, योनिसकोच, इत्यादि स्त्री कथा करणी ति था देशकथा सो जैसैं दक्षिण देशमें अन्न, पाणी, अरु स्त्रियोंसैं सजोग करना बहुत अष्टा है इत्यादि तथा पूर्वदेशमें विचित्र वस्तु गुड, खम, शाल, मद्यादि प्रधान चीजें होती हैं, तथा उत्तरदेशके लोक सूरमे हैं, घोड़े बड़े शीघ्र चलने वाले अरु दृढ़ होते हैं, तथा गेहू प्रमुख धान्य बहु त होता है, तथा केशर, मीठी झाङ्ग, दाहिम, कौठादि जहां सुलज हैं इत्यादि तथा पश्चिम देशमें इन्द्रियों सुखकारी सुख स्पर्शवाले वस्त्र हैं, इत्यादि तथा राजकथा सो जैसैं हमारा राज बड़ा सूरमा है, बड़ा धनवान् है, अश्वपति तुरक इत्यादि है यह जैसैं चार अनुकूल कथा कही, ऐसे ही चारो प्रतिकूल कथानी जान लेनी, तथा ज्वरादिरोग अरु मार्गका थ केवा, यह दोनों वर्जके संपूर्ण रात्रिकों सो रहना ( निद्रा लेनी ) यह सर्व पूर्वोक्त प्रमादाचरणको आवक वर्ज, तथा देशविशेषमेंनी प्रमाद न करना, तथा जिनमदिरमें कामचेष्टा, दांसी, लडाइ, हसना, थूकना, निंद

लेनां, चोर परदारिकादिकी खोटी कथा करनी, चार प्रकारका आहार खानां, यह चौथा अनर्थदम है इस व्रतके पांच अतिचार कहते हैं

१ प्रथम कंदर्पचेष्टा सो मुखविकार, भ्रूविकार, नेत्रविकार, हाथकी संज्ञा बतावे, पगकों विकारकी चेष्टा करके औरोंको हसावे, किसीको क्रोध उत्पन्न हो जावे, कुठका कुठ हो जावे, अपनी लघुता होवे, धर्मकी निंदा होवे, ऐसी कुचेष्टा करे, सो प्रथम कंदर्पचेष्टा अतिचार है

२ दूसरा मुखसेंती मुखरता करे, असबध वचन बोले, जिसें दूसरों का मर्म प्रगट होवे, कष्टमें गेरे, अपनी लघुता करे, वैर वधे, डीठ, लबा ड, चुगल खोरु, इत्यादि नाम धरावे, लोकोमें लज्जनीय होवे, इती तरें बहुत वाचालपणा करणां, सो दूसरा मुखारिवचन अतिचार

३ तीसरा जोगोपजोगातिरिक्त अतिचार है, सो यहां स्नान, पान, जोजन, चदन, कुकुम, कस्तूरी, वस्त्र, आभरणादिक अपणो शरीरके जोगसें अधिक करणो, सो अनर्थदम है इहां वृद्ध आचार्योंकी यह संप्रदाय है, कि - तेज, आमले, दही प्रमुख, जे कर स्नानके वास्ते अधिक ले जावे, तो तद् लोभ्यता करके स्नान वास्ते बहुत लोक तलाव आदिकमें जायगे, तहां पाणोंके पूरे, तथा अप्कायके जीवोंकी बहुत विराधना होवेगी, इस वास्ते श्रावककों ऐसे स्नान न करनां चाहिये क्योंकि श्रावकके स्नानका यह विधि है कि - श्रावकने प्रथम तो घरमेंही स्नान करनां चाहिये तिसके अन्यावसें तेज, आमले, आकदिसे घरमेंही शिर घस करके मैल गेर करके तलावके कांठे वपरि बैठके अजलिसे पाणी शिरमें माल करके स्नान करनां, तथा जिस फूनादिकमें जीवोंकी ससक्ति जाने, तिनको परिहरे, ऐसे सर्व जगे जान लेनां यह तीसरा जोगाधिक आरंज अतिचार है

४ चौथा कौकुच्य अतिचार. सो जिसके बोलने करनेसें अपनी तथा औरोंकी चेतना, कामकांथरूप हो जावे, तथा विरहकी बात सयुक्त कथा, दाहा, साखी, वंत, फूलना, कवित, उद, परजराग, श्लोक, शृंगाररसकी न री हूइ कथा कहनी, यह चौथा काममर्म कथन अतिचार है.

५ पांचमा सयुक्ताधिकरण अतिचार सो खलजके साथ मूसज, दजके साथ फाला, गाठीसें पुग, धनुषसें तीर, झुपादि इत्यादि श्रावकने सयुक्त अधिकरण नहीं रखनां, क्योंकि सयुक्त रखनेस काइ छे छेव, ता कर ना

नहीं करी जाती है, अरु जब अलग-अलग होंगे, तब उसको सुंखसे उत्तर दे सकेगा, ये पांचमा अतिचार कहा ॥ इति अष्टमव्रतं संपूर्ण ॥

अथ नवमा सामायिकव्रतका स्वरूप लिखते हैं इन पूर्वोक्त आठों व्रतोंको तथा आत्मगुणोंको पुष्टिकारक अविरति कषायमें तादात्म्यभावसे मिली अनादि अष्टु-दता रूप विज्ञाव परिणति, तिसके अन्यासको मिटाने वास्ते अरु आत्मअनुभव करने वास्ते तथा सहजानन्द स्वरूपरस प्रगट करने वास्ते यह नवमा शिक्षाव्रत है, अर्थात् अष्टु-द अन्यासरूप नवमा सामायिक व्रत लिखते हैं दो घड़ी काल प्रमाण समतामें रहना, राग द्वेषरूप हेतुओंमें मध्यस्थ रहना, तिसको पंक्ति सामायिक व्रत कहते हैं, (सम) नाम है राग द्वेषरहित परिणाम होनेसे जो ज्ञान दर्शन चारित्ररूप मोक्ष मार्ग, तिसका “आय” नाम जान होवे प्रथमसुख रूप इनका जो एक केतां नाव सो सामायिक है, मन, वचन, कायकी खोटी चेष्टा एतावता आर्त्तध्यान तथा रौडध्यान त्यागके अरु सावद्य मन, वचन, काया, पाप चितन, पापोपदेश, पापकरणरूप वर्जके श्रावक सामायिक करे. इहां आवश्यक शास्त्रमें लिखा है, कि जब श्रावक सामायिक करता है, तब साधुकी तरें हो जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमें देवस्नात्र, पूजादिक, न करे, क्यों कि नावस्तवके वास्ते इध्यस्तव करना है, सो नावस्तव सामायिकमें प्राप्त हो जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमें इध्यस्तव रूप जिनपूजा न करे, सामायिक करने वाला मनुष्य बत्तीस दूषण वर्जके सामायिक करे, सो बत्तीस दूषणमें प्रथम कायाके बार दूषण कहते हैं

१ सामायिकमें पग उपर पग चढा करके उंचा आसन ( पालवी ) जगाकर बैठे, सो प्रथम दूषण है, कारण कि गुरुविनयकी हानि कारक होने तें यह अजिमानका आसन है, इस वास्ते जिस बैठनेसे विनयगुण रहे, और उदता मालुम न होवे, तथा अजयणा न होवे, ऐसे आसन उपर बैठे

२ दूसरा चलासन दोष सो आसन स्थिर न रखे, बार बार आगे पीछे हलावे, चपलाइ करे, मुख्य मार्ग तो यह है, कि श्रावक एक जगे एकही आसन उपर सामायिक पूरा करे, अन्तिग पणसे रहे, कदापि रोग निर्वल तादि कारण करके एक आसन उपर टिका न जाय, फिरना पड़े, तो व

पयोग संयुक्त जयणा पूर्वक चरवलासैं जहां तहां पूजना प्रमार्जना करकें  
आसन फिरावे, यह पूर्वोक्त विधि न करे, तो दूसरा दोष लगे

३ तीसरा चलदृष्टि दोष है सो सामायिक करे, पीछे नासिका कपरदृष्टि  
राखे, अरु मनमें छु-छ उपयोग राखे, मौन पणोसैं ध्यान करे, अरु सा  
मायिकमें शास्त्रान्यास करना होवे, तो यत्नपूर्वक मुख आगें मुखवस्त्र  
का दे कर, दृष्टि पुस्तक उपर रख कें पढे, अरु सुणे, तथा जब काणो  
त्सर्ग करे, तब चार अंगुल पीछें पग चौड़ा राखे, ऐसी योग मुद्रासैं  
खड़ा हो कर दोनो बाहु प्रलंबित करे, दृष्टि नासिका उपर रखे, अथवा  
सङ्के (दहिने) पगके अंगूठे कपर रखे, यह छु-छ सामायिक करनेकी विधि  
है, इस विधिकों ढोडके चपल पणोसे चकितमृगकी तरें चारोंदिशि  
थांखे फिरावे, सो तीसरा दोष है

४ चौथा सावयक्रियादोष सो क्रिया तो करे, परंतु तिसमें कबहु  
सावय क्रिया करे, अथवा सावय क्रियाकी सज्ञा करे, सो चौथा दोष

५ पांचमा आलबन दोष सो सामायिकमें जीतादिकका आलबन,  
अर्थात् पीठ लगा कर बैठे, यह बिना पूजी जीतमें अनेक जीव बैठे  
हूए होते हैं, सो मर जाते हैं, तथा आलबनसैं नींदनी आ जाती है

६ छठा आकुचन प्रसारण दोष सो सामायिक करकें बिना प्रयोजन  
हाथ, पग, सकोचे, लांवा करे, सामायिकमें तो महोटे कारण बिना  
हलनां नही, जरूरी काममें चरवलासे पूजन प्रमार्जन करकें हलावे

७ सातमा आलस दोष सो सामायिकमें थगमै आलस मोडे, अंगुली  
योंके कडाके काढे, कमर वांकी करे, ऐसी प्रमादकी बाहुव्यतासे व्रतमें  
थनावर होता है, कायामें थरति उत्पन्न हो जाती है, जब कठे, तब आल  
स मोड कर अतिथिशननिक वठे यह सातमा आलस दोष

८ आठमा मोटन दोष सो सामायिकमें अंगुली प्रमुख टेढ़ी  
करी कडाका काढे ए पण प्रमादकी प्रव्रजतासे होता है

९ नवमा मज्ज दोष सो सामायिक से करकें खाज करे, मुख्यवृत्ति तो  
सामायिकमें खाज नहीं करणी, परंतु जब लाचार होवे, तब चरवला  
प्रमुखसे पूजन प्रमार्जन करकें हलनें हलनें खान करे यह नौवां दोष

१० दशमा विमासण दोष सो सामायिकमें गजेम हाथ व कर के

११ इग्यारवा निष्ठा दोष. सो सामायिकमें नींद लेवे

१२ बारमा शीत, प्रमुखकी प्रवलतासें अपणे समस्त अंगोपांग वस्त्र करके ढांके, यह बारा दोष कायासे उत्पन्न होते हैं, इनको सामायिकमें वर्ज्य. अब बचनके दश दोष हैं सो लिखते हैं

१ प्रथम कुबोल दोष सो सामायिकमें कुवचन बोले

२ दूसरा सहसात्कार दोष सो सामायिक ले करके विना विचारे बोले

३ तीसरा असदारोपण दोष सो सामायिकमें दूसरोंको खोटी मति देवे

४ चौथा निरपेक्ष वाक्य दोष सो सामायिकमें शास्त्रकी अपेक्षा विना बोले

५ पांचमा सक्षेप दोष सो सामायिकमें सूत्र, पाठ, सक्षेप करे, अक्षर पाठ हीना कहे यथार्थ कहे नहीं, सो पांचमा दोष है

६ छठा कलह दोष सो सामायिकमें साधर्मियोंसें क्लेश करे, सामायिकमें तो कोइ मिथ्यात्वी गालीया देवे, उपसर्ग करे, कुवचन बोले, तोजी तिसके साथ लडाइ नहीं, करनी चाहिये, तो फेर अपने साधर्मिके साथ तो विशेष करके लडाइ करणीही नहीं, जेकर करे, तो छठा दोष लगे

७ सातमा विकथा दोष सो सामायिकमें बैतके वेशकथादि चार विकथा करे, सामायिकमें तो स्वाध्याय अथ ध्यानही करना चाहिये

८ आठमा दास्य दोष सो सामायिकमें दूसरोंकी दांती करे, मस्करी करे

९ नवमा अशुद्धपाठ दोष सो सामायिकमें सामायिकका सूत्रपाठ शुद्ध न उच्चारै, हीनाधिक उच्चारै, यद्वा तद्वा सूत्र पढे

१० दशमा मुणमुण दोष सो सामायिकमें प्रगट स्पष्ट अक्षर न उच्चारै, दूसरोंको तो जैसा मञ्जर नणनणाट करता होवे, अैसा पाठ मालुम पढे, पद अथ गाथाका कुछ ठिकाना मालुम न पढे गडबड करके उतावलसें पाठ पूरा करे, यह दश दोष बचनके हैं अब मनके दश दोष लिखते हैं

१ प्रथम अविवेक दोष सो सामायिक करके सर्वक्रिया करे, परंतु मनमें विवेक नहीं निर्विवेकतासे करे, मनमें अैसा विचारे कि सामायिक करनेसें कौन तरा है ? इसमें क्या फल हैं ? इत्यादि विकल्प करे

२ दूसरा यशोवाढा दोष सो सामायिक करके यश कीर्तिको इच्छा करे

३ तीसरा धनवांग दोष सो सामायिक करनेसें मुजे धन मिलेगा

४ चौथा गर्वदोष सो सामायिक करके मनमें गर्व करे कि मुजे

लोक धर्मी कहेंगे, मैं कैसे सामायिक करता हूँ, मूर्ख लोक क्या समझे।

५ पांचमा जय दोष सो लोकोंकी निंदासें मरता दूथा सामायिक करे, क्योंकि लोक कहेंगे कि देखो श्रावकके कुलमें उत्पन्न दूथा है, बड़ा पुरुष कहनेमें आता है, परंतु धर्म कर्मका नामजी नहीं जानता, धर्म तो दूर रहा, परंतु हररोज सामायिकजी नहीं करता, ऐसी निंदासें मरता दूथा करे

६ ठठा निदान दोष सो सामायिक करके निदान करे कि इस सामायिकके फलसें मुझे धन, स्त्री, पुत्र, राज्य, जोग, इष्ट, चक्रवर्तिका पद मिले।

७ सातमा सशय दोष सो क्या जाने सामायिकका फल होवेगा कि नहीं होवेगा ? जिसको तत्त्वकी प्रतीति न होवे, सो यह विकल्प करे

८ आठमा कषाय दोष सो सामायिकमें कषाय करे, अथवा क्रोध करके तुरत सामायिक करके बैठ जाय सामायिकमें तो कषाय त्याग ना चाहिये

९ नवमा अविनय दोष सो विनय हीन सामायिक करे

१० दशमा अवदुमान दोष सो सामायिक बहुमान नक्तिनाव उत्साह पूर्वक न करे यह दश मनके दोष कहे अरु पूर्वोक्त बारह कापाके तथा दश वचनके मिल कर बत्तीस दूषण रहित सामायिक करे, इस सामायिक व्रतके पांच अतिचार टाले, सो पांच अतिचार कहते हैं

१ प्रथम कायडु प्रणिधान अतिचार सो शरीरके अवयव हाथ, पंख प्रमुख, बिना पूजे प्रमार्जे हलावे, नीतके पीठ लगा कर बैठे।

२ दूसरा मनोडु प्रणिधान अतिचार सो मनमें कुव्यापार चितन क्रोध, लोभ, ईर्ष्या, अहिंसा, ईर्ष्या, व्यासंग, सन्नमचित्त सहित सामायिक करे।

३ तीसरा वचन डु प्रणिधान अतिचार सो सामायिकमें सावध वचन जोले, सूत्राक्षर हीन पढ़े सूत्रका स्पष्ट उच्चारन करे

४ चौथा अथनवस्या दोषरूप अतिचार सो सामायिक बखत स्तिर न करे, जेकर करेजी तोजी वे मर्यादासे आदर पिना उतावजसे करे

५ पांचमा स्मृतिविहीन अतिचार सो सामायिक करी, कि नहीं ? सामायिक पारीकि नहीं ? ऐसी चूज करे इति नवम सामायिक व्रत संपूर्ण ॥

अथ दशमा दिशवसागिक व्रत लिखते हैं उक्त व्रतमें जो दिशाका वरिमाण करा है, सो जावड्डीवे तहां तक है, वसमें तो क्षेप्र उद्युत नष्ट रण्य है, तिसका ता रात्र काम पडता नाहि, इस वास्ते दिन दिन प्रार्थना

करे, जैसें आजके दिन दश कोश वा पंदरां कोश वा पांच कोश, अथवा नगरके दरवाजे तक, वा कोश, अर्धकोश, बाग बगीचे तक, घरका हृद तक जानां आनां है, उपरांत नियम करना, सो दिशावकाशिकव्रत है ए ठे व्रत का संक्षेपरूप है, उपलक्षणसें पांच अणुव्रतादिकका संक्षेप थोड़े कालका सोजी इसी व्रतमें जान लेनां, यह व्रत चार मास, एक मास, वीश दिन, पांच दिन अहोरात्रि, अथवा एक दिन, एक रात्रि, तथा एक मुहूर्तमात्रजी हो सका है, इसका नियम ऐसे करे कि मैं अमुक ग्रामादिकमें काया कर के जाउगा, उपरांत जानेका निषेध है, इस व्रत वाले प्राणीके देश परदेशका जिनके व्यापार होवे, सो ऐसें कहे कि मुजकों काय करके इतने द्वे त्र उपरांत जाना नहिं, परंतु दूर देशका कागज प्रमुख लिखा हुआ आवे, सो बांधु अथवा कोइ मनुष्य नेजनां पड़े, उसका आगार है परदेशकी बात सुननेका आगार है, अरु जिसका दूरका व्यापार नहिं होवे, सो चीन्ही खत, पत्रजी न बांचे, अरु आदमीजी न नेजे, तथा चित्तकी वृत्तिसें जे कर सकल्प विकल्प न होवे, तो परदेशकी बातजी न सुने. जेकर नहिं रहा जावे, तो आगार रखे, परंतु जान करके दोष न लगावे यह देशवकाशिक व्रत सदा सवेरके वखत चौदह नियमकी यादगिरीमें उपयोगसें रखे, अरु रात्रिकों जूदा रखे, यह व्रत जैसें गुरुमुखसें धारे, तैसें करे (पाले) अरु इस व्रतके पांच अतिचार ठाले, सो कहते हैं

१ प्रथम आणवण प्रयोग अतिचार सो नियमकी जूमिकासें बाहिरकी कोइ वस्तु होवे, तिसकी गरज पड़े, तब बिचारेकी मेरे तो नियमकी जूमिकासें बाहिर जानेका नियम है, तब कोइ जाता होवे, तदा तिसकों कह करके वो वस्तु मगवा लेवे, अरु मनमें यह बिचारेकी मेरा व्रतजी नग नहिं हुआ, अरु वस्तुजी आ गइ, यह प्रथम अतिचार है

२ दूसरा पेसवण प्रयोग अतिचार सो दूसरे आदमीके हाथ नियमसें बाहिरजी जूमिकामें कोइ वस्तु नेजे, सो दूसरा अतिचार है

३ तीसरा सहाणुवाय अतिचार सो नियमकी जूमिकासें बाहिर, कोइ आदमी जाता है, तिस्सें कोइ काम है, तब तिसकों खुखारादि शब्द कर के बोलावे, फेर कहे कि अमुक वस्तु ले आनां, तब तीसरा अतिचार लगे

४ चौथा रूपानुपाती अतिचार सो कोइक पुरुष उसके नियमकी जूमि

लोक धर्मी कहेंगे, मैं कैसे सामायिक करता हूँ, मूर्ख लोक क्या समझे  
 ५ पांचमा नृप दोष. सो लोकोंकी निंदासें मरता हुआ सामायिक करे  
 क्योंकि लोक कहेंगे कि देखो श्रावकके कुलमें उत्पन्न हुआ है, बड़ा पुरुष  
 कहनेमें आता है, परंतु धर्म कर्मका नामजी नहीं जानता, धर्म तो दूर रहा,  
 परंतु हररोज सामायिकजी नहीं करता, ऐसी निंदासें मरता हुआ करे.

६ ठठा निदान दोष. सो सामायिक करके निदान करे कि इस सामा  
 यिकके फलसें मुझे धन, स्त्री, पुत्र, राज्य, जोग, इष्ट, चक्रवर्तिका पद मिले.

७ सातमा सशय दोष. सो क्या जाने सामायिकका फल होवेगा  
 कि नहीं होवेगा ? जिसको तत्त्वकी प्रतीति न होवे, सो यह विकल्प करे

८ आठमा कषाय दोष. सो सामायिकमें कषाय करे, अथवा क्रोध करके  
 तुरत सामायिक करके बैठ जाय सामायिकमें तो कषाय त्याग ना चाहिये

९ नवमा अविनय दोष. सो विनय हीन सामायिक करे

१० दशमा अवदुमान दोष. सो सामायिक बहुमान नक्तिनाव उत्सा  
 ह पूर्वक न करे. यह दश मनके दोष कहे अरु पूर्वोक्त बारह काषाके  
 तथा दश वचनके मिल कर बचीस दूषण रहित सामायिक करे, इस सा  
 मायिक व्रतके पांच अतिचार टाळे, सो पांच अतिचार कहते हैं

१ प्रथम कायडु प्रणिधान अतिचार. सो शरीरके अवयव हाथ, पं  
 प्रमुख, बिना पूजे प्रमार्जे हज़ावे, नीतके पीठ लगा कर बैठे.

२ दूसरा मनोडु प्रणिधान अतिचार. सो मनमें कुव्यापार चितन क्रोध,  
 लोभ, ईर्ष्या, अस्मिन्, ईर्ष्या, व्यासंग, सप्रमचित्त सहित सामायिक करे.

३ तीसरा वचन डु प्रणिधान अतिचार. सो सामायिकमें सावध वचन  
 मोले, सूत्राक्षर हीन पढ़े सूत्रका स्पष्ट उच्चारण न करे

४ चौथा धनवस्या दोषरूप अतिचार. सो सामायिक वखत स्त्रि न  
 करे, जेकर करेजी तोजी वे मर्यादासें आदर बिना उतावजसें करे

५ पांचमा स्मृतिविहीन अतिचार. सो सामायिक करी, कि नहीं ? सामा  
 यिक पारीकि नहीं ? ऐसी चूल करे इति नवम सामायिक व्रत संपूर्ण ॥

अथ दशमा दिशायकाशिक व्रत ज्ञाते हैं. उक्त व्रतम जो दिशायका  
 रिमाण करा है, सो जायझीरे तदां तरु है, उसमें तो क्षेत्र बहुत बृहत्तर  
 है, तिसरा तो रोज काम पढ़ता नहीं, इस बारते दिन दिन प्रत्येक



१ दूसरा शरीरसत्कार पोषध. सो सर्वथा शरीरका सत्कार, स्नान, धो वन, धावन, तैलमर्दन, वस्त्राञ्जरणादि शृंगार प्रमुख कोइनी श्रुश्रूपा न करे, साधुकी तरें अपरिर्कर्मित शरीर रहे, तिसकों सर्वथा शरीर सत्कार पोषध कहते हैं तथा पोषधमें हाथ, पग प्रमुखकी श्रुश्रूपा करनी, तिसका आगार ररेके, उसकों देशसत्कार पोषध कहते हैं

२ तीसरा अन्नपोषध सो त्रिकरण श्रु-६ ब्रह्मचर्यव्रत पाजे, वो सर्वथा ब्रह्मचर्य पोषध है अरु मन, वचन, दृष्टि प्रमुखका आगार ररेके, अथवा परिमाण ररेके, सो देशसें ब्रह्मचर्य पोषध है

४ चौथा सर्वथा सावद्य व्यापारका त्याग सो सर्वसें अव्यापार पोषध है. अरु जे एकादि व्यापारका आगार ररेके, सो देशसें अव्यापार पोषध जाननां.

एव चार प्रकारके पोषधके दो दो जेद हैं, सो प्रथम जब आगम व्यवहार गुरु होते थे, अरु श्रावकनी श्रु-६ उपयोग वाले होते थे, तब जो जो प्रतिज्ञा लेते थे, सो सो प्रतिज्ञा अखण्डित तैसीही पालते थे, परंतु नूलते नहीं थे, अरु न्यूनाधिकनी नहीं करते थे, और गुरुनी अतिशय ज्ञानके प्रभावसें योग्यता जान कर देश, सर्व, पोषधका आवेश देते थे, तथा श्रावक कदाचित् नूलनी जाते थे, तो नी तत्काल प्रायश्चित्त ले लेते थे, अरु इस कालमें तो ऐसे उपयोगी जीव हैं नहीं, इत्थमकालके प्रभावसें जडबुद्धि जीव बहुते हैं, इस वास्ते पूर्वाचार्योंने उपकारके अर्थ आधार पोषध तो दोनो करने, अरु शेष तीन पोषध जीतव्यवहारके अनुसारें निषेध कर दीये हैं यही प्रवृत्ति वर्तमान सधमें प्रचलित है, पोषध तो श्रावककों जरूर करना चाहिये, कारणकि कर्मरूप जावरोगकी यद् औपधि है, तातें जब पर्वदिन आवे, तब जरूर पोषध करे. इसका पांच अतिचार टाले, सो कहते हैं

१ प्रथम अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सिंघासथारक अतिचार सो जिस स्थानमें पोषध सत्थारक करा है, तिस जूमिकी तथा सथाराकी पडिलेहणा न करे, एतावता सथारेकी जगा अञ्ची तरें निगाह करिकें नेत्रोंसें देखे नहीं अरु कदापि देखे, तोनी प्रभावके अवयवसें कुछ देखी कुछ न देखी ऐसें करे

२ दूसरा अप्पमधिय दुप्पमधिय सिंघासथारक अतिचार सो सथाराकों रजोद्धरणादिक करके पूजे नहीं, कदापि पूजे, तोनी यथार्थ न पूजे, गड बड कर देवे, जीवरक्षा न करे, तो दूसरा अतिचार लागे

कासें बाहिर जाता है, तिसके साथ कोइ काम है, तब हाट हवेली ऊपर चढकें उसको अपना रूप दिखावे, तब वो आदमी उसके पास आवे, पीछे आपणे मतलबकी उससें बातें करे, तब चौथा अतिचार लगे

५ पांचमा पुञ्जलक्षेप अतिचार सो नियमकी नूमिकासे बाहिर कोइ पुरुष जाता है, तिसके साथ कोइ काम है, तब तिसको ककरा मारे, जब वो देखे, तब तिसके पास आवे, तब उसके साथ बात चीत करे, यह पांचमा अतिचार ॥ इति दशम देशवकाशिक व्रत संपूर्ण ॥

अथ इग्यारहवा पौषधोपवास नामा व्रत लिखते हैं यह पौषधव्रतके चार जेद हैं, उसमें प्रथम आहार पोषध है, तिसकेनी दो जेद हैं एक देशत दूसरा सर्वत तहां देशसें तो त्रिविदार उपवास करके पोषध करे, अथवा आचाम्ल करके पोषध करे, अथवा त्रिविदार एकाशनां करके पोषध करे, यह तीन प्रकारसें देश पोषध होता है, तिसकी विधि लिखते हैं

पोषध करनेसें पहिले अपने घरमें कह रेके कि मै आज पोषध करुगा, इस वास्ते आचाम्ल अथवा एकाशना करा है, जोजनके अवसरमें आहार करनेको आजा, अथवा तुमने पोषधशालामें ले आना, पीछेसें पोषध करने को जावे, तहां पोषध करके देववदन करके, पीछे चरवजा, मुखवस्त्रिका, पूठणा, ये तीन उपकरण साथ ले करके चादर ओढ करके साधुकी तरें उपयोग सयुक्त मार्गमें यत्नसे चल कर जोजनके स्थानकमें जा करके, इ रियावहिया पडिक्रमे, गमनागमनकी आलोचना करे, पीछे पूठणा उपर बैठके आहार करनेका जाजन प्रतिलेखके पीछे अपने लेने योग्य आहार लेवे, साधुकी तरें रसगुहिसें रहित आहार करे, मुखसे आहारको अछा घूरा न कहे, आहारका छूत गेरे नहीं, आहार करे पीछे ठण्डा जल से आहारका वरतन धो कर पी जावे, वरतन शुद्ध करके सूका करके उपयोग सयुक्त पोषधशालामें आवे, पूर्वस्थानमें जा कर बैठे, परंतु मार्गमें जाते आते किसीके साथ बात न करे, इस रीतसे स्वस्थानकमें आवे इति यावद्ही पडिक्रमके चैत्यवदन करके धर्मक्रियामें प्रवर्ते, तथा आहार अपना कोइ संबंधी अथवा सेवरु ले आवे, तोनी पूर्वांक रीतसे आहार करके वरतन पीछे वे देवे, पीछे धर्मक्रियामें प्रवर्ते, तिसको देशत पोषध कहते हैं तथा जो चरविदार करके पोषध करे, सा सर्वमें पोषध कहिये, यह प्रथम जेद.

गोपांग, स्तन, जघनादि देखे, यह अछारह दूषण पोषधमें वर्जे, तो शुद्ध पोषध जानना अन्यथा पांचमा अतिचार लागे इति एकादश व्रत॥

अथ बारहवा अतिथिसविनागव्रत लिखते हैं अतिथि उसको कहते हैं, कि जिसने लौकिक पर्वोत्सवादि तिथियोंको त्याग दिया है, सो अतिथि है, जैसे प्रादुणा विनातिथि आता है, एतावता तिथि देखके नहीं आता है, ऐसेही जो साधु अण चित्याही आ जावे है, सो अतिथि जानना ऐसे मधुकर वृत्तिवालेसे जो विनाग करे, एतावता शुद्ध व्यवहार न्यायोपार्जित धन करके अपना उदर पूरण योग्य जो रसोई करी है, उत्तम कुल आचार पूर्वक पूर्वकर्म पश्चात्कर्मादि दोष रहित ऐसा शुद्ध निर्दोष आधार नक्तिपूर्वक जो देवे, सो अतिथिसविनाग व्रत है तहां प्रथम दान देनेवालेमें पांच गुण होवे, तो वो दाता र शुद्ध होता है, सो पांच गुण लिखते हैं

१ प्रथम जैनमार्गी वातारकू, शुद्ध पात्रकी प्राप्ति पा करके अपने घरमें मुनिका दर्शन मात्र होनेसे अतरंगमें बहुत दिनकी चाहनाके उल्लाससे आनंदके आसु आवे, जैसे अपना प्यारा अति हितकारी वल्लभ विठ्ठलके परदेशमें गया है, उसको मनसे कभी विसरता नहीं, मिलाही चाहता है, उस मित्रके अकस्मात् मिलनेसे आनंद आसु आवे, तैसे मुनिकों घरमें आया देखके आनंद आसु ल्यावे, अरु मनमें विचारे कि मेरा बड़ा नाग्य है, जो ऐसा मुनि मेरे घरमें आया है ? अरु मैं कैसा दुःखी ? अनादिका जूल्हा, इव्य सबल रहित, दरिद्रपीडित, ज्ञानलोचनरहित, अधजाव करि पीडित, अपार सत्सारचक्रमें नटकता हुआ, बहुत अकथनीय दुःख सयुक्त देख कर मेरे पर परमदया दृष्टि करके प्रथम मेरेको ज्ञानाजन शलाकासे ज्ञानरूप देखने वाला नेत्र खोल बीना, अरु तीन तत्त्व सेवा रूप व्यापार लिखलाया, तथा मुझको रत्नत्रयीरूप पूजा (रास) दे कर मेरा अनादि दरिद्र दूर करा, मुझे जले आदमीयोंकी गिणतीमें करा, ऐसे गुरु मुनिराज विना गरजके परोपकारी मेरे घराणमें आया, ऐसी पुष्ट जावना प्रशस्त राग जावके उल्लाससे आनंदके आसु आवे, यह वातारका प्रथम गुण है,

२ दूसरा जैसे सत्सारमें जीवको अत्यंत इष्ट वस्तुके सयोगसे रोमावली

३ तीसरा अण्विच्छेदिय इण्विच्छेदिय उच्चारपासवण नूमि अतिचार सो लघुशका, बडीशका, परिष्ठवशेकी नूमिका, नेत्रोंसें अवलोकन न करे, अरु अवलोकन करे, तोनी अलसु पलसु करके काम चलावे. जी वयत्न विना करे, परिष्ठवे, तो तीसरा अतिचार लागे

४ चौथा अण्वमखियइण्वमखिय उच्चारपासवणनूमि अतिचार. सो जहां मूत्र, विष्ठा करे, उस नूमिकाको उच्चारप्रस्त्रवण करनेसें पहिला पूजे नही, जे कर पूजे, तोनी यद्वा तद्वा पूजे, परंतु यत्नसें न पूजे

५ पांचमा पोसहविद्विविचरीए अतिचार सो पोषधमें कुधा लगे, तब पारणकी चिंता करे, जैसेकि प्रजातमें अमुक रसोइ अथवा अमुक वस्तुका आहार करुंगा, तथा अमुक कार्य करणा है, तहां जाना पड़ेगा, अमुक उपर तगादा करुंगा, तथा प्रजातमें पोषध पारके अच्ची तरें तेजम र्वन कराकगा, अच्चे गरम पानीसें स्नान करुंगा, तथा अमुक पोसाक करु गा, स्त्रीके साथ जोग करुगा, इत्यादि सावद्य चितवणा करे, तथा सध्या समयें पोषधके ममल शोधन न करे, सर्व रात्रि सूता रहे, विकथा करे, पोषधके अछारह दूषण हैं, सो वर्जे नही, सो अछारह दूषण लिखते हैं.

१ विना पोषेवालेका व्याया दूथा जल पीवें, २ पोषध वास्ते सर स आहार करे, ३ पोषधके अगले दिन विविध प्रकारका सयोग भिलाष के आहार करे, ४ पोषध निमित्त अथवा पोषधके अगले दिनमें बिजु पा करे, ५ पोषध वास्ते वस्त्र धोवावे, ६ पोषध वास्ते आजरण घडाके पहिरे, स्त्रीजी नथ, ककणादि सोदागके चिन्ह वर्जके दूसरा नवा गहना घडाके पहिरे, ७ पोषध वास्ते वस्त्र रंगा कर पहिरे, ८ पोषधमें करीर की मल उतारे, ९ पोषधमें विना काल निडा करे, १० पोषधमें स्त्रीक था करे, स्त्रीको नज्जी घरी कहे, ११ पोषधमें आहार कथा करे, जोअ नको अद्या बुरा कहे, १२ पोषधमें राजकथा करे, युद्धकी बात सुने, कहे, १३ पोषधमें देश कथा करे, अद्या बुरा देश कहे, १४ पापधमें लघुशका अरु बडीशका सा नूमिका पूज्या विना करे, १५ पापधमें वृत्त रोकती निदा करे, १६ पापधमें स्त्री, पिता, माता, पुत्र, नाइ प्रमुख पानाजाप करे, १७ पापधमें चारकी कथा करे, १८ पापधमें बर्ज्य

की कमी नहीं, किसीके साथ प्रतिबंध नहीं, पवनकी तरें अप्रतिबंध हो, तोजी मेरे उपर जरूर कृपा करणी, ऐसे मुखसें कहता हुआ अपने घरकी सीमा तक पहुंचावे, यह तीसरा गुण है.

४ चौथा तहांसें वदना करके पीछे आकर जोजन करे, परंतु मनमें आनंद समावे नहीं, विचारे कि मेरा बड़ा जाग्योदय हुआ, आज कोई नली बात होवेगी क्योंकि आज मुनि, निस्पृही, सहजवदासी, स्वसुख विज्ञासीकों में वित्तिकरी आहार दीया, अरु आहार देतां बिचमें कोई विघ्न न हुआ, इस वास्ते मेरा बड़ा जाग्य है, फेरजी कहे ऐसे मुनिका योग मिलेगा ? ऐसी अनुमोदना वारंवार करे, यह चौथा गुण है

५ पांचमा जैसें कोई मदजाग्यवान् व्यापार करतां थोड़ा थोड़ा कमाता है, तिसको किसी दिन कोई सौदेमें लाख रुपयैकी प्राप्ति होवे, तब वो कैसा आनंदित होवे है, अरु फेर उस व्यापारकी कितनी चाहना रखता है, तिससेंजी अधिक साधुको दान देनेकी चाहना श्रावक रस्के, यह पांचमा गुण है यह पांच गुणयुक्त बुद्ध दान देवे, तो अतिथि सविनाग व्रत होवे इस व्रतके पांच अतिचार बजें, सो लिखते हैं

१ प्रथम सच्चिनिर्द्वेष अतिचार सो सच्चि सजीव पृथ्वी, जल, कुन, चुझा, इधनादिकोंके उपर न देनेकी बुद्धिसें आहारको रख ठोड़े अरु मनमें ऐसा विचारे कि ए आहार साधु तो नहीं लेवेगा, परंतु निमत्रणा करनेसें मेरा अतिथि सविनागव्रत पल जावेगा, यह प्रथमातिचार

२ दूसरा सच्चि पीदण अतिचार सो सच्चि करके ढक ठोड़े, सूरण, कद, पत्र, पुष्प, फलादि करके न देनेकी बुद्धिसें ढक ठोड़े

३ तीसरा कालातिक्रम अतिचार सो साधुओंके निष्काका काल लय करके अथवा निष्काके कालसे पदिलां अथवा साधु आहार कर चुके तब आहारकी निमत्रणा करे, सो तीसरा अतिचार है

४ चौथा परव्यपदेश मत्सर अतिचार सो जब साधु मागे तब क्रोध करे, तथा वस्तु पासमें है, तोजी मांग्या न देवे, अथवा इस कगालने ऐसा दान दीया, तो मैं क्या इस्सें दीन हूँ, जो न देऊ ? इस जावनासें देवे

५ पांचमा गुह, खम प्रमुख अपनी वस्तु है, सो न देनेकी बुद्धिसें औरोंकी कहे, यह पांचमा अतिचार ॥ इति श्रीअतिथिसविनागव्रतं संपूर्णं॥

खड़ी होती है, तैसैं बड़ी जकिके प्रजावसैं मुनिकों देखकें  
विकस्वर होवे, हृदयमें दर्ष समावे नहीं, यह दूसरा गुण है

३ तीसरा मुनिकों देखकें, बहुमान करे, जैसे किसी गरीबके घरमें रा  
जा आप चल कर आवे, तब वो गरीब गृहस्थ जैसा राजेका आवर क  
रे, थरु मनमें विचारे कि महाराजा मेरे घरमें आया है, तो मैं अही व  
स्तु इनकों जेट करूं तो ठीक है, क्योंकि राजाका आवना वारंवार मेरे  
घरमें कहां है? अइसा विचारकें जैसे वस्तु जेट करे, तैसैं आवकनी साधु  
कों घरमें आया देखकें बहुत मान करे, थरु मनमें अइसा विचारे कि यह  
अइसा नि सृष्टीयोमें शिरोमणि, जगद्गुरु, जगत् हितकारी, जगद्गत्सल, निष्क  
मी, आत्मानदी, करुणासागर, सत्तारजलधि उद्धारण, परोपकार करणमें  
चतुर, क्रोधादि कषाय निवारक, आप तरे परतारक, अइसा मुनिराज, मेरे  
घरमें चल कर आया, इस्तें मेरा अहो जाग्य है? अइसा जान कर संभ्रम  
सयुक्त सन्मुख जावे, त्रिकरण छुड़ परिणामसैं कहे कि हे स्वामी! वीनह  
पाल! पधारो, मेरे गृह अंगण पवित्र करो, अइसा बहुमान दे कर घरमें प  
धरावे, मनमें विचारे कि मेरे बड़ा पुण्योदय है, जो साधु आधार पाणी  
अनुग्रह करते हैं, क्योंकि साधुके आधार छेनेमें बड़ी विधि है, साधु छ  
नात पाणी जाणे, तो छेवे, इस वास्ते मत मेरेसैं कोई दोष उपजे?  
अइसा विचार कें त्रिकरण छुड़ बहुमान पूर्वक उपयोग सयुक्त विधिपूर्व  
क आधार व्यावे, थरु मधुरस्वरसैं विनति करे, कि हे स्वामी! यह छुड़  
आधार है, इस वास्ते सेवक उपर परम रुपा नजर करकें पात्र पसारकें  
मेरा निस्तार करो अइसे वचन बोलता दूथा आधार देवे, मुनिजी कस  
आधारकों योग्य जाण कर छे छेवे, थरु आवकनी जितनी दान देने बो  
ग्य वस्तु है, उसके सर्वकी निमज्जणा करे, इस विधिसें दान दे कर हा  
थ जोडकें पृथिवी उपर मस्तक लगा कर नमस्कार करे, पीठ मति बचनोसैं  
विनति करे की हे रुपानिधान! सेवक उपर बड़ी रुपा करी, आज मेरा कर प  
वित्र दूथा, क्योंकि पुण्योदयगिना मुनिका योग कहां दोता है? फेरनी दे ला  
मी! रुपा करकें अन्न, पान, स्वादिम, स्वादिम, औषध, वस्त्र, पात्र, बट्ना,  
सत्तारकादिसें प्रयोजन दावे, तब अहंस्थ सेवक उपर अनुग्रह करकें  
पधारना, तुम तो मुनिराज गुणवान् दे परवाह हा, मुमर्का किसी बात

की कमी नहिं, किसीके साथ प्रतिबंध नहिं, पवनकी तरें अप्रतिबंध हो, तोजी मेरे उपर जरूर रुपा करणी, ऐसे मुखसे कहता हुआ अपने घरकी सीमा तक पहुँचावे, यह तीसरा गुण है.

४ चौथा तद्वासें वदना करके पीछे आकर जोजन करे, परंतु मनमें आनंद समावे नहिं, विचारे कि मेरा बड़ा नाग्योदय हुआ, आज कोइ नली वात होवेगी क्योंकि आज मुनि, निष्ठही, सहजवदासी, स्वसुख विलासीकों में विनतिकरी आहार दीया, अरु आहार देतां बिचमें कोइ विघ्न न हुआ, इस वास्ते मेरा बड़ा नाग्य है, फेरनी कदे ऐसे मुनिका योग मिलेगा ? ऐसी अनुमोदना बारंवार करे, यह चौथा गुण है

५ पांचमा जैसे कोइ मंदनाग्यवान् व्यापार करतां थोड़ा थोड़ा कमाता है, तिसको किसी दिन कोइ सौदेमें लाख रुपयैकी प्राप्ति होवे, तब वो कैसा आनंदित होवे है, अरु फेर उस व्यापारकी कितनी चाहना रखता है, तिससेंजी अधिक साधुको दान देनेकी चाहना आवक रस्के, यह पांचमा गुण है यह पांच गुणयुक्त छु-५ दान देवे, तो अतिथि सविनाग व्रत होवे इस व्रतके पांच अतिचार बजें, सो लिखते हैं

१ प्रथम सचित्तनिष्क्रेष अतिचार सो सचित्त सजीव पृथ्वी, जल, कुंज, चुल्हा, श्यनादिकोंके उपर न देनेकी बुद्धिसें आहारको रख ठोड़े अरु मनमें ऐसा विचारे कि ए आहार साधु तो नहिं लेवेगा, परंतु निमत्रणा करनेसें मेरा अतिथि सविनागव्रत पल जावेगा, यह प्रथमातिचार

२ दूसरा सचित्त पीढ़ण अतिचार सो सचित्त करके ढक ठोड़े, सूर्य, कद, पत्र, पुष्प, फलादि करके न देनेकी बुद्धिसें ढक ठोड़े

३ तीसरा कालातिक्रम अतिचार सो साधुओंके निष्काका काल लेंध करके अथवा निष्काके कालसें पहिलां अथवा साधु आहार कर चुके तब आहारकी निमत्रणा करे, सो तीसरा अतिचार है

४ चौथा परव्यपदेश मत्सर अतिचार सो जब साधु मागे तब क्रोध करे, तथा वस्तु पासमें है, तोजी मांग्या न देवे, अथवा इस कगालने ऐसा दान दीया, तो मैं क्या इस्सें हीन हूँ, जो न देक ? इस जावनासें देवे

५ पांचमा गुह, खंम प्रमुख अपनी वस्तु है, सो न देनेकी बुद्धिसें औरोंकी कहे, यह पांचमा अतिचार ॥ इति श्रीअतिथिसविनागव्रत संपूर्ण ॥

यह सम्यक्त्वपूर्वक बारह व्रतरूप गृहस्थधर्मका स्वरूप धर्मरत्न तथा योगशास्त्रादि ग्रन्थोंसे सङ्क्षेप लिखा है जे कर विशेष देखनां होके तो धर्मरत्नशास्त्रवृत्ति तथा योगशास्त्र देख लेना

इति तपोगृहीये गणि श्रीमणिविजय तद्धित्य श्रीमुनि बुद्धिविजय  
प्य मुनिश्चात्माराम आनदविजयविरचिते जैनतत्त्वाददर्शे आवकव्रतनिरूपण नामा अष्टम परिच्छेद संपूर्ण ॥ ८ ॥

## ॥ अथ नवम परिच्छेद प्रारंभ ॥

यह परिच्छेदमें आवकोंका जो दिनकृत्य, रात्रिकृत्य, पर्वकृत्य, चातुर्मासिककृत्य, सवत्सरकृत्य, जन्मकृत्य, यह वै प्रकारका कृत्य हैं तिनमेंसू प्रथम दिनकृत्यविधि, आठविधि ग्रथ तथा आवक कौमुदी शास्त्रके अनुसार लिखते हैं

प्रथम तो आवकों निज्ञा थोड़ी लेनी चाहियें, जब एक प्रहर रात्रि शेष रहे, तब निज्ञा ठोडके कठनां चाहियें, जेकर किसीकों बहुत नींद आती होवे, तब जघन्य चौदमे ब्राह्म मुहूर्तमें जरूर कठनां चाहियें, क्योंकि सवेरे उठनेसे इस लोक थरु परलोकके थनेक कार्य सिद्ध होते हैं, उस अवसरमें बुद्धि ठीकी हुई थरु निर्मल होती है, पूर्वापर अच्छी तरेसे विचार कर सका है, थरु ग्रथकार ऐसेनी कहते हैं कि जिसके नित्य सूतेके सूय ऊम जावे, तिसकी आयु थल्प होती है, इस वास्ते ब्राह्म मुहूर्तमें अवश्य सूता उठनां चाहियें, जब सूता उठे, तब मनमें विचारे कि मैं आवक हूँ, अपने घरमें तथा पर घरमें इन दोनोंनसू कहां सूता था ? तथा हेठले मकानमें सूता था कि चोखारे प्रमुखमें सूता था ? दिनमें सूता था कि रात्रिकों सूता था ? इत्यादि विचार करतेनी जेकर निज्ञाका वेग न मिटे तथा नाक थरु मुखका उग्रास रोरे, उस करक निज्ञा तत्काज दूर हो जाती है, पीठ दरवाजा थण्डा तरेमें देखके पायुशालादि करे तथा रात्रिमें किसीकों कुठ कठनां पड़े, तब मद स्वरम कदे, परंतु उषे स्वरम न कदे, क्योंकि रात्रिमें उषा शब्द करनेस उपकनी प्रमुख सिद्ध जीव जान



जाते हैं, फेर वो मच्छीपों आदिक जीवोंकी हिंसा करते हैं, तथा कसाइ जाग जावे तो गौ, बकरी, जेडी प्रमुखकों मारने वास्ते चला जावे तथा माछी, जाल ले कर मछली मारनेकों चला जावे, तथा बावरी, अदेही, खून करनेवाला, मदिरा बनाने वाला, परखी गमन करने वाला, तस्कर, लूटेरा, धाडी, धोवी, कुनार, अरु जूथारी प्रमुख, अनेक हिंसक जीव जाग कर अनेक तरेंके पाप करनेमें प्रवृत्त हो जाते हैं, यह रात्रिमें उचे शब्दसें बोलने वालोंकों सर्व पाप लगे वास्ते रात्रिमें उचे शब्दसें न बोलना चाहिये.

जब सवेरकी बखत निडा छेद होवे, तब तत्त्वोंके जानने वाले आ वककों तत्त्वविचार करना चाहिये. सो तत्त्व पांच है, तिसका नाम कह ते हैं. १ पृथ्वी, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु, ५ आकाश, उसमें निडा छेद समयमें जेकर पृथ्वी तत्त्व अरु जल तत्त्व बहे, तब तो छुन है, अरु जे कर अग्नि, वायु, तथा आकाश तत्त्व बहे, तो इ खदायक है छुक्क पक्क की पडिवाके दिन जेकर वामी नासिकाका स्वर चले, तो पंदरा दिन तक आनंद आरोग्य रहे, अरु कृष्ण पक्क की एकमके दिन जेकर दक्षिण नासिकाका स्वर बहे, तो पंदरा दिन तक सुख आनंद रहे इस्सें विपर्यय हो वे, तो विपर्यय फल होवे

तथा छुक्क पक्क के प्रथम तीन दिन वामी नासिका सवेरे उठते बहे, तो छुन है आगले तीन दिन दक्षिण स्वर चले तो छुन है, फेर आगले तीन दिन वाम स्वर चले तो छुन है, ऐसेही क्रमसे पंदरा दिन तक जान लेने अरु कृष्ण पक्क की पडिवाके दिनसें लेकर जेकर तीन दिन तक दक्षिण स्वर चले तो छुन है, आगले चौथे दिनसें लेकर तीन दिन तक वाम स्वर चले तो छुन है, फेर आगले तीन दिन दक्षिण स्वर चले तो छुन है, ऐसें पंदरा दिन तक जान लेना तथा चडस्वरमें सूर्य उगे अरु सूर्यस्वरमें सूर्य अस्त होवे तो छुन है तथा सूर्यनाडीमें सूर्य उदय होवे अरु चडनाडीमें अस्त होवे, तोनी छुन है, किसी शास्त्रके मतमें रवि, मंगल, गुरु, अरु शनि, इन चार वारोंमें दक्षिण स्वरमें सूर्यनाडी दिन उग तां चले, तो छुन है, अरु सोम, बुध तथा शुक्र, इन तीनों वारोंके दिन सू ता, उठतां, चडस्वर वामस्वर चले, तो छुन है विपर्यय चले, तो अछुन है तथा किसीके मतमें सकांतिके क्रमसें सूर्य चड नाडी बहे तो छुन है,

यद् सम्यक्त्वपूर्वकं वारहं व्रतरूपं गृहस्थधर्मका स्वरूपं धर्मरत्नं  
तथा योगशास्त्रादि ग्रन्थोक्तं सङ्क्षेपं लिखा है जे कर विशेष देखनां  
तो धर्मरत्नशास्त्रवृत्ति तथा योगशास्त्र देख लेनां

इति तपोगङ्गायै गणि श्रीमणिविजय तस्मिन् श्रीमुनि बुद्धिविजय  
पुं मुनिआत्माराम आनन्दविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्थे श्रावकव्रतनिर्ण  
पण नामा अष्टम परिच्छेद संपूर्ण ॥ ८ ॥

## ॥ अथ नवम परिच्छेद प्रारम्भ ॥

यद् परिच्छेदमें श्रावकोंका जो विनयकृत्य, रात्रिकृत्य, पर्वकृत्य, चातुर्मासिक  
कृत्य, सवस्तरकृत्य, जन्मकृत्य, यद् है प्रकारका कृत्य हैं तिनमेंसू प्रथम वि  
नयकृत्यविधि, श्राद्धविधि ग्रन्थ तथा श्रावक कौमुदी शास्त्रके अनुसार लिखते हैं

प्रथम तो श्रावकों निष्ठा थोड़ी लेनी चाहियें, जब एक प्रहर रात्रि शेष  
रहे, तब निष्ठा ठोडके ऊठना चाहियें, जेकर किसीको बहू नोंद आती होवे,  
तब जघन्य चौदमे ब्राह्म मुहूर्तमें जरूर ऊठना चाहिये, क्योंकि सवेरे उठनेसे  
इस लोक थरु परलोकके अनेक कार्य सिद्ध होते हैं, वस अवसरमें बुद्धि  
टोकी दुइ थरु निर्मल होती है, पूर्वापर अच्छी तरेसे विचार कर सका  
है, थरु ग्रन्थकार ऐसेनी कहते हैं कि जिसके नित्य सूतेके सूर्य ऊभ  
जावे, तिसकी आशु श्रृंखला होती है, इस वास्ते ब्राह्म मुहूर्तमें अवश्य  
सूता उठना चाहियें, जब सूता उठे, तब मनमें विचारे कि मैं श्रावक  
हूँ, अपने घरमें तथा पर घरमें इन दोनोअसू कदा सूता था ? तथा हेतुअ  
मकानमें सूता था कि चौबारे प्रमुखमें सूता था ? दिनमें सूता था कि रा  
त्रिकों सूता था ? इत्यादि विचार करतेनी जेकर निष्ठाका वेग न मिटे तथा  
नाक थरु मुखका चूगास रोके, वस करक निष्ठा तत्काज पूर दा जाती  
है, पीछे दरवाजा थरुनी तरेसे देखके लघुश्राद्ध करे तथा रात्रिमें कि  
सीको कुछ कहना पड़े, तब मद्र स्वरमें कहे. पानु उभे स्वरमें न कहे,  
क्याहि रात्रिमें उवा दुइ करनसे उपकती प्रमुख दिशतक जाय जान

खेती करनेके वखत, शत्रुके जीतनेमें, विद्यारजमें, राज्यानिषेकमें इत्यादि शुनकार्यमें चङ्नाही वहे, तो कल्याणकारी है

प्रश्नके समय कार्यके आरजमें पूर्ण वामी नाही प्रवेश करती होवे, तदा निश्चय कार्यकी सिद्धि जाननी इसमें संदेह नहीं, तथा कैदसें कद बूटे गा ? रोगी कब अस्वा होवेगा ? अरु जो अपने स्थानसें चष्ट हुआ है, तिस का प्रश्नमें तथा युद्ध करनेके प्रश्नमें, वैरीकों मिलती वखत, थकस्मात् नय हुआ, स्नान करण लगे, नोजन, पाणी पीने लगे, सोने लगे, गद्द वस्तुके खोज करनेमें, मैथुन करने लगे, विवाद करणमें, कष्टमें, इतने कार्यमें सूर्य नाही शुन है कोइक आचार्य ऐसेजी कहते हैं कि विद्या रंजमें, दीहामें, शास्त्रान्यासमें, विवादमें, राजाके देखनेमें, मंत्र यंत्रके साधनेमें, सूर्यनाही शुन है अथवा जो चङ्गादि स्वर चलता होवे, निरंतर तिस पासेंका पग उठाके प्रथम चले तो कार्य सिद्धि होवे

पापी जीवोंके शत्रुओंके चार प्रमुख जे क्लेशके करने वाले हैं, तिनके सन्मुख जो नासिका बध होवे, सो पाप्मा, इनके सामने करे, जो मुख लाज जयार्थी है, उसमें प्रवेश करता हुआ पूरा स्वर, वामा पग छुट्ट पङ्कमें, अरु जीमणा पग रुष्ण पङ्कमें, शय्यासें उठता हुआ धरती ऊपर रख ता इसविधिसें श्रावक निंद त्यागे

अरु श्रावक अत्यंत बहुमान पूर्वक मगलके वास्ते पंचपरमेष्टि नमस्कार स्मरण-करे, शय्यामें बैठे हुआ मनमें पंचपरमेष्टि नमस्कारमंत्र स्मरण करे, परंतु वचनसें उच्चारण न करे, जेकर मुखसें उच्चार करे, तो शय्या ठोड कर धरती ऊपर बैठ कर नमस्कार मंत्र पढे, ऐसे नमस्कार मंत्र हृदयमें स्मरण करता हुआ शय्यासें उठे, पवित्र जूमिका ऊपर बैठे, तथा पूर्व अथवा उत्तरदिशि सन्मुख मुख करके खड़ा रह कर चित्त की एकाग्रताके वास्ते कमलवध कर जपादि करके नमस्कार मंत्र पढे, तहां आठ पांखड़ीका कमल चिते, उसकी कर्णिकामें अरिहत पदका स्थापन करे, पूर्व पांखड़ीमें सिद्ध, दक्षिण पांखड़ीमें आचार्य, पश्चिम पांखड़ीमें उपाध्याय, उत्तर पांखड़ीमें साधु स्थापन करे, अरु बाकी चूजिकाके चार पद जो हैं, सो अनुक्रमें अग्न्यादि चारों कूणोंमें स्थापन करे उक्तचाष्टमप्रकाशे योगशास्त्रे ॥ श्रीदेमचन्द्रसूरिनि ॥ अष्टपत्रे सितांजोजे,

जैसें मेष संक्रांतिके दिन सूर्यस्वर चले, अरु वृषसंक्रांति दिन चंड नाली चले, तो शुभ जाननी इत्यादि तथा किसीके मतमें चडमा राशि पक्षे तिस क्रम करके अढ़ाई घड़ी तक एक नाडी बढ़ती है इत्यादि परंतु मैं नाचार्य श्री हेमचंद्रादिकोंका तो प्रथम जो लिखा है, सो मत है क्योंकि गुरु अक्षरोंके उच्चारणमें जितना काल लगता है तितना काल वायु नाडीको दूसरी नाडीमें संचार करते लगता है

अब पांच तत्त्वोंकी पहिचान इसी तरें है, सो कहते हैं नासिकाकी पवन जेकर उची जावे, तब तो अग्नि तत्त्व है, जेकर नीची जावे, तो जल तत्त्व है, तिहीं जावे, तो वायुतत्त्व, जेकर नासिकासें निकलके सूषी तिहीं जावे, तो पृथ्वीतत्त्व, जेकर नासिकाके दोनो पुटोंके अंदर बहे, बाहिर नहीं निकले तो आकाश तत्त्व जाननां

पहिला पवन तत्त्व बढ़ता है पीठें अग्नि तत्त्व बढ़ता है, पीठें जल तत्त्व बढ़ता है, पीठें पृथ्वीतत्त्व बढ़ता है, पीठें आकाश तत्त्व बढ़ता है क्रम इनका सदा यही है दोनोही नाडीयोंमें पांचो तत्त्व बढ़ते हैं, व समें पृथ्वी तत्त्व पंचाश पल प्रमाण बढ़ता है, जल तत्त्व चालीश पल प्रमाण बढ़ता है, अग्नितत्त्व तीस पल प्रमाण बढ़ता है, वायुतत्त्व बीस पल प्रमाण बढ़ता है, आकाश तत्त्व दश पल प्रमाण बढ़ता है

पृथ्वी थरु जल तत्त्वमें शान्तिकार्य करणां, थरु अग्नि, वायु, तथा आकाश इन तीन तत्त्वमें दीप्तिमान् थरु स्थिरकार्य करणां, तो फलोन्नति शुभ होवे है, तथा जीवणेका प्रश्न पूठनां, जयप्रश्न, लाजप्रश्न, धन उत्पन्न करणे का प्रश्न, मेष वर्पनेका प्रश्न, पुत्र होनेका प्रश्न, युद्धका प्रश्न, जाने आने का प्रश्न, इतने प्रश्न जेकर पृथ्वी थरु जलतत्त्वमें करे, तो शुभ होवे, जेकर अग्नितत्त्व थरु वायु तत्त्वके बढ़ता ये प्रश्न करे, तो शुभ नहीं, पृथ्वी तत्त्वमें प्रश्न करेतो कार्यकी सिद्धिस्थिरपणेदावेथरुजलतत्त्वमें शीघ्रकार्य दावे

जब पहल पहिलां जिनपूजा करे, तथा धन कमावनेके वास्ते जावे, पाणिप्रक्षालनी (विवाहकी) वेजां, गढ़ खेनेकी वेजां, नदी उतरनेकी वेजां, नवा दे सो यावेगाकि नहीं? थसे प्रश्न करते वेजां जीवनेक प्रभवं तथा पर हो आदि खेती वेजां, क्रियाणां खेतां, पेचतां, वरके प्रभवं, नाचरी करखेकी वेजां,

मंत्रके “अरिदंत सिद्ध आयरिय उवसाय साहू” इन सोलां अक्षरका जाप करे, तथा “अरिदंतसिद्ध” इन पड़ वर्ण (वै अक्षर) का जाप करे, तथा “अरिदंत” इन चार अक्षरका जाप करे, तथा आकार जो वर्ण है, सोनी मंत्र है इनके जापसें स्वर्ग मोक्षका फल होता है, अरु व्यवहार फल ऐसा जानना, कि - पड़वर्णका जाप तीन सौ बार करे, तथा चार वर्णका जाप चार सौ बार करे, अरु सोलां अक्षरका जाप दो सौ बार करे, तो एक उपवासका फल होता है, तथा नाजिकमलमें स्थित तो अकार ध्यावे, अरु सि वर्ण, मस्तक कमलमें स्थित ध्यावे, तथा आकार मुख कमलमें स्थित ध्यावे, उकार हृदय कमलमें स्थित ध्यावे, तथा साकार कंठ पिंजरमें स्थित ध्यावे, सर्व कल्याणकारी यह जाप है, अतिशय उता यह पांच बीज है. इन पांचों बीजोंका उँकार बनता है

तथा और बीज मंत्रोंकानी जाप करे, जैसे “नम सिद्धेन्य.” ऐसा मंत्र तो जे कर इस लोकके फलकी इच्छा होवे, तब तो उँकार पूर्वक पठनां चाहिये, अरु मोक्ष वास्ते जपे, तो उँकाररहित पठनां चाहिये, यह जपादि करनेसें बहुत फल होता है ॥ यत ॥ पूजाकोटिसम स्तोत्र, स्तोत्रकोटिसमोजप ॥ जपकोटिसम ध्यान, ध्यानकोटिसमो जय ॥ १ ॥ ध्यान की सिद्धि वास्ते श्रीजिनजन्मबोक्षादि कल्याणक नूमिरूप तीर्थमें जावे, अथवा और कोइ विविक्त स्थान होवे, तहां ध्यान करे, ध्यानका स्वरूप देखनां होवे, तब आवश्यकसूत्रांतर्गत ध्यानशतक देख लेनां नमस्कार मंत्रका जो जाप है, सो इस लोक परलोकमें बहुत गुणकारी है, ॥ वक्तुमिहानिशीये ॥ नासेइ चोर सावय, विसहर जल जलण वधण जयाइ ॥ चितिकुतो रक्कस, रण राय जयाइ जावेण ॥ १ ॥ अर्थ - चोर, सिद्ध, सूर्य, पाणी, अग्नि, वधन, सग्राम, राजनय, इतने जय पंचपरमेष्ठि मंत्रके स्मरणसें नष्ट हो जाते हैं एकाग्रता जावसें जपे, तो यह फल होता है पंच परमेष्ठि मंत्र सर्व जगें पठनां चाहिये, नमस्कार मंत्रका एक अक्षर जपे, तो सात सागरोपमका करा दूआ पाप नष्ट होता है जे कर संपूर्ण पंच परमेष्ठिमंत्र जपे, तो पांच सौ सागरका करा दूआ पाप नष्ट हो जाता है, तथा जो पुरुष एक लक्ष बार पंच परमेष्ठि मंत्रका जाप करे, अरु यह नमस्कार नामक मंत्र जो है, तिसकी विविध पूजा

कर्णिकायां करस्थिति ॥ आद्यं सप्ताक्षर मंत्रं, पवित्रं चितयेत्ततः ॥ १ ॥  
 सिद्धादिकचतुष्क च, विष्णुत्रेणु यथाक्रम ॥ चूलापादचतुष्क च, विद्विष्णुत्रेणु  
 चितयेत् ॥ २ ॥ त्रिष्टुप्चितयन्नस्य, शतमष्टोत्तरं मुनि ॥ जुजानोपि जन  
 त्येव, चतुर्थतपस्त फलम् ॥ ३ ॥

हाथके आवर्त्त करके जो पंच मंगल मंत्र स्मरण नित्य करे, उसको  
 पिशाचादिक नहीं उलते हैं, बधनादि कष्टमें विपरीत शाखावर्त्तकादिक  
 अङ्गों करके अथवा विपरीत पदों करके पंचमंगल मंत्र लक्षादि जाप  
 करे, तो शीघ्र क्लेशादिकोंका नाश होवे, जे कर हाथ उपर जाप न कर  
 सके तो सूतकी, रत्नकी, रुद्राक्षादिककी, माला उपर जाप करे, माला  
 बाजा हाथ, हृदयके सामने रखे, शरीरसे तथा शरीरके वस्त्रोंसे  
 तथा नूमिकासें माला न लगने देनी, अंगुठके उपर माला रख करके  
 तर्जनी अंगुलीसें नख, बिना लगाया मणका फेरे, मेरु उल्लघन न करे,  
 शास्त्रकार लिखते हैं कि जो अंगुलीके अग्रसें जाप करे, अरु जो मेरु  
 उल्लघके जाप करे, तथा जो विखरे हुए चित्तसें जाप करे, यह तीनों  
 जाप थोड़ा फल देते हैं, जाप करने वाला बहुतोसें एकला अष्टाशब्द  
 करके जाप करनेसे मौन करके करे, सो अष्टा है, जेकर जप करतां थक  
 जावे, तो ध्यान करे, ध्यान करनेसे थक जावे, तो जप करे, दोनोंसें  
 थक जावे, तो स्तोत्र पढ़े

श्रीपादजित्थ अचार्यकृत प्रतिष्ठाकल्प पद्धतिमें लिखा है, कि जाप तीन  
 तरेंका है, एक मानस, दूसरा उपांशु, तीसरा जाप्य, इन तीनमें मानस  
 उसको कहते हैं कि जो मनही विचारणासें होवे, स्वसवेद्य होवे, अरु  
 उपांशु उसको कहते हैं कि जा दूसरा तो न सुणे, परंतु अतर्जण्य  
 रूप होवे, तथा जो दूसरोंको सुनाइ देवे, सो जाप्य यद्द तीनों क्रम  
 करके उत्तम, मध्यम, अरु अधम जान लेने, उत्तम मानसम शान्ति  
 दाती है, एतावता शान्तिके रास्ते मानस जाप करणां अरु पुष्टिके रास्ते  
 उपांशु जाप करणां तथा आर्च्यणादिद्वय जाप्यजाप करणां

नमोऽक्षर मंत्रक पांच पद, नारपद, अथवा आनुपूर्वी, त्रितही एका  
 यताके रास्ते गुणे, तथा जा नादर मंत्रका एक अक्षर एक पानी जपे,  
 तोनी जाप हो सता है ॥ मनुके मागशास्त्रे अष्टमशकांश ॥ पंचपरमहि

एक तो अनुजव करी दुइ वस्तुका स्वप्न आता है, दूसरा सुणी दुइ वातका, तीसरा देखा दुआ, चौथा प्रकृति वात, पित्त, अरु कफके विकारसैं, पांचमा चितित वस्तुका उछा सहज स्वनावसैं, सातवा देवताके उपदेशसैं, आठमा पुण्यके प्रनावसैं, नवमा पापके प्रनावसैं, इसमें आदिके ठै कारणोसे, जो स्वप्न आवे, सो निरर्थक है, अरु अगले तीन कारणोंसे जो स्वप्न आवे तो सत्य होवे

रात्रिके पहिले प्रहरमें स्वप्न आवे, तो एक वर्षमें फल देवे, अरु दूसरे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो ठै महीनेमें फल देवे, तीसरे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो तीसरे महीनेमें फल देवे, चौथे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो एक मासमें फल देवे, सवरे दो घड़ी रात्रिमें स्वप्न आवे, तो दश दिनमें फल देवे, सूर्योदयमें स्वप्न आवे, तो तत्काल फल देवे

एक जो स्वप्नमें बहुत आल जजाल देखे, तथा दूसरा जो रोगोदयसैं स्वप्न आवे, तथा तीसरा जो मलमूत्रकी बाधासैं स्वप्न आवे, यह तीनों स्वप्न निरर्थक हैं जे कर पहिला अशुन स्वप्न आवे, अरु पीछेसैं शुन स्वप्न आवे, तो शुन फल देवे, तथा पहिना शुन स्वप्न आवे, पीछे अशुन आवे, तो अशुन फल देवे, जेकर खोटा स्वप्न आवे, तो शांति अर्थात् देवपूजा दानादिक करणा, तथा स्वप्नचिंतामणि नामक ग्रन्थमें लीखा है, कि अनिष्ट स्वप्न देख कर सो जावे, अरु किसीको कहे नहीं, तो फेर वो स्वप्न, फल नहीं देता है, सूता उसके जिनेश्वरदेवकी प्रतिमा को नमस्कार करके जिनेश्वरका ध्यान करे, स्तुति करे, स्मरण करे, पंच परमेश्वर पढे, तो खोटा स्वप्न वितथ हो जाता है अरु जो पुरुष देव गुरुकी पूजा करते हैं, तथा निजशक्त्यनुसार तप करते हैं, निरंतर धर्मके रागी हैं, तिनोंको खोटा स्वप्ननी अज्ञा फल देता है तथा जो पुरुष, देवगुरुका स्मरण करके अरु शत्रुजय समेत शिखर प्रमुख शुन तीर्थोंका नाम, तथा गौतमस्वामी, सुधर्मस्वामी प्रमुख आचार्योंका नाम स्मरण करके सोवे, उसको कवापि खोटा स्वप्न नहीं होता है

थूकनां होवे, तो राखमें थूकनां चाहियें, शरीरको दृढ करने वास्ते दार्थी करके वज्रीकरण करे, अग्नि तत्त्व, अरु पवनतत्त्व, जब वहता होवे, तब धाप करके आकट तांड़ दूध पीवे, केइ आचार्य कहते हैं कि

करे, तो तीर्थंकर नाम कर्मगोत्रका बंध करे, इस बातमें संदेह नहीं, तथा आठ कोड़ी, अथ लाख, आठ हजार, आठ सौ, आठ वार, जो पंच परमेश्वरका जाप करे, वो जीव, तीसरे जन्ममें सिद्ध हो जाता है, इस वास्ते सूते, उठते, प्रथम नमस्कार स्मरण करणां तिसके पीछे धर्मजागरणा करणी, सो इसी तरेंकि -

यथा में कौन हूं ? क्या मेरी जाति है ? क्या मेरा कुल है ? कौन मेरा इष्ट देव है ? कौन मेरा गुरु है ? क्या मेरा धर्म है ? क्या मेरे अजिग्रह है ? क्या मेरी अवस्था है ? क्या मैंने सुरुतादि करा है ? क्या मैंने डक तादि नहीं करा है ? क्या मैं करने समर्थ हूँ ? क्या मैं नहीं कर सका हूँ ? मुझको कोइ देखता है कि नहीं ? अपनी नूलको आत्मा जानता है, फेर क्यों नहीं छोड़ता ? तथा आज कौनसी तिथि है ? क्या अर्द्धतका कल्याणिक दिन है ? आज मेरा क्या कृत्य है ? मैं किस देशमें तथा किस कालमें हूँ ? सबेरें उनके ऐसे स्मरण करणसे जीव सावधान हो जाता है, जो विरुद्ध कृत्य हैं, उसका परिहार करता है अथवा नियमका निर्बाध अरु नवोन गुणकी प्राप्ति होती है, येही धर्मजागरणा, आणद कामदेवा दि श्रावकोंने करके प्रतिमादि विशेष धर्मकरणी करी है

तस पीछे जो श्रावक प्रतिक्रमण करनेवाला होवे, सो प्रतिक्रमण करे, अरु जो प्रतिक्रमण न करे, सोजी रागादिमय कुस्वप्न प्रदेपादिमय अनिष्ट फलका सूचक तिसके दूर करणे वास्ते तथा स्वप्नमें स्वप्ने प्रस गादि करनेका खोटा स्वप्न उपजज हूआ होवे, तब एक सौ आठ उच्छ्वास प्रमण कायोत्सर्ग करे, अन्यथा सौ उच्छ्वास प्रमाण कायात्सर्ग करे, चार लोगस्सका काचस्सग करे यह फयन व्यवहार जाप्यमें हे, तथा गिवेक विलासादि ग्रयोमें ऐसा जिला है, कि स्वप्न देख्या पीछे फेर नही सोवणां, अरु स्वप्न, दिनमें सज्जुके त्यागें कहना, जे कर साटा स्वप्न थावे तो फेर सोगनां ठीक है, कितीके त्याग रुदनां न बाधिये, तथा समधातुवाजा, प्रशांतचिन्तवाजा, धर्मा और नोरागी, जितेंदिय, इसमें ना गुनागुन स्वप्न थाव, सा सत्यही होता है, स्वप्न जो आता है, सा नव कारणसे आता है, सा नव कारण कहते हैं-



सो, थोवस्सवि पालणा गुणकारि ॥ गुरु लाघव च नेयं, धम्ममिअ उ आ गारा ॥ १ ॥ अस्यार्थ — व्रतजग करनेसें महा दूषण होता है, अरु जो पालन करे, तो थोडा व्रतजी गुणकारी है, इस वास्ते गुरु लघु जानके धर्ममें आगार जगवाननें कहे हैं

तथा नियम औसैं ग्रहण करणां, सो कहते हैं प्रथम तो मिथ्यात्व त्यागणे योग्य हैं, तिस पीछें नित्य यथाशक्ति एक, दो, तीन वार जिन पूजा, जिनदर्शन, सपूर्ण देववदन, चैत्यवदन करे, औसेही गुरुका योग मिले दीर्घ, लघु वदन करे, जेकर गुरु हाजर न होवे, तब धर्माचार्यका नाम लेके वदना करे, तथा नित्य वर्षा ऋतुमें (चौमासेमें) पाच पर्वके दिन अष्ट प्रकारी पूजा करे, जहा लग जीवे, तदा लग नवा अन्न, नवा फल, पक्वान्नादिक देवकों चढावे विना खावे नहीं, नित्य नैवेद्य, सो पारी, वदामादि देवके आगें चढावे, तथा तीन चौमासें सवत्सरी दीवा ली प्रमुखमें चावलोंके अष्ट मंगल जरके ढावे नित्य अथवा पर्वके दिन तथा वर्षमें खादिम, स्वादिम, सर्व वस्तु देव गुरुकों दे कर नोजन करे, प्रतिमास, प्रतिवर्ष, महाध्वजादि उत्सव आम्बर करके चढावे, स्नात्र मद्गोत्सव, अष्टोत्तरी पूजा, रात्रिजागरण करे, नित्य चौमासे आदिकमें कितनोक वार जिनमदिर, धर्मशाला, प्रमार्जन करे, देहरा समरावे, पौषशाला लीपे, प्रतिवर्ष प्रतिमास जिनमदिरमें अगलूहनां तथा दीपकके वास्ते पूणी देवे, दीवे वास्ते तेल देवे, चदन खमादि मदिरमें देवे, पोष धशालामें मुखवस्त्रिका, जपमाला पूठणा, चरवला, कितनेक वस्त्र, सूत, कबली, कनादि देवे, वर्षमें आवकोंके बैठने वास्ते कितनेक पाट, चौकी प्रमुख देवे, जेकर निर्धन होवे, तो जी वर्ष दिन पीछें सूत मोरा अष्टी प्रमुख दे कर सघ पूजा करे, कितनेक साधर्मीयोंको शक्ति अनुसार नोजन देके, साधर्मीवात्सल्यादि करे, दररोज कितनेक कायोत्सर्ग करे, स्वाध्याय करे नित्य जघन्य नमस्कार सहित प्रत्याख्यान करे, रात्रिमें दिवस चरम प्रत्याख्यान करे, दोनों वखत प्रतिक्रमण करे, यह करणी प्रथम कर लेवे, तो पीछेंसें वारां व्रत स्वीकार करे, तिन व्रतोंमें सातमे व्रतमें सचित्त, अचित्त, अरु मिश्र वस्तुका स्वरूप अष्टी तरें जाननां चाहियें

जैसैं प्राय सर्व धान्य, अन्न, अरु धनीया, जीरा, अजवयन, सौंफ,

१२६  
 अथ पसली पाणीकी पीवे, इसका नाम वज्रीकरण कहते हैं तथा  
 वेरे उसके माता, पिता, पितामह, बडा चाइ प्रमुखकों नमस्कार  
 तो तीर्थयात्रा समान फल है इस वास्ते दिन दिन प्रत्ये करणी चाहि  
 तथा जिसने वृद्धोंकी सेवा नहीं करी है, उसकों धर्मकी प्राप्ति न  
 होती है, वृद्ध उसकों कहते हैं कि जो शीलमें, सतोषमें, तथा ज्ञा  
 ध्यानादिकमें बडे दोवे, तिनकी सेवा अवश्य करनी चाहिये तथा  
 सने राजाकी सेवा नहीं करी है, अरु जिसने उत्पन्न होते हुए अ  
 शत्रुकों बंद नहीं करा, तिस पुरुषसें धर्म, अर्थ, अरु सुख दूर हैं

श्रावककों सवेरे उठ करके चौदह नियम धारण करणे चाहिये,  
 नका स्वरूप उपर लिख आये हैं तथा विवेकी पुरुष प्रथम सम्यक्त्व  
 र्वक द्वादश व्रत, विधि पूर्वक गुरुके मुखसें धारण करे, अरु विरति  
 पलती है, सो अन्याससें पलती है, इस वास्ते धर्मका अन्यास कर  
 चाहिये विना अन्यासके कोइ क्रियाजी अच्छी तरे नहीं करी जाती  
 ध्यान मौनादि सर्व अन्यास करनेसें हु साध्य नहीं जो जीव, इस जन्म  
 अघा वा बुरा जैसा अन्यास करता है, सोइ प्राय अगले जन्ममें पा  
 है, तथा पचमी, अष्टमी, चतुर्विंश्यादिकीके दिनमें तपादि नियम जो  
 धर्म पुरुषने अंगीकार किया है, उसमें जो तिथ्यतरकी प्रांत्यादि कर  
 सचित्त जलादि पान, तंबोल नष्टण, कितनाक नोजननी कर लीया  
 पीठेसें ज्ञान दूथा कि थाज तो तपका दिन था? तब जो कुछ मुखमें हो  
 उनको राखादिकमें गेर देवे, प्राणुक पाणीसें मुखशुद्धि कर तप करे  
 तरे रहे, तो नियम जग नहीं होता है, अरु जे कर सपूर्ण नाज  
 करा पीठे जान पडे कि थाज तपका दिन है, तब अगले दिन दमके  
 मित्त सा तप करे समाप्ति दूथा उसके उपर पोरिसी एकाशनादि त  
 अधिक करे, अरु जे कर तपका दिन जान कर एक दाणाजी खावे, ता  
 तजग हो जाता है, अरु जो व्रतका जग जान करक करना है, सो नरक  
 दिक्का हेतु है, तथा जे कर तप करे पीठ गाथा मांदा ना जावे, अथवा  
 नृतादि वापसें परवश हो जावे, अथवा सप्पादिक छोटे, ऐसी असमाधि  
 तप करने समय न हो, तानी चार आगार उच्चारण करनेमें व्रत  
 नहीं होता है, ऐसे सर्व नियमोंम जान लेना ॥ अथ ॥ वयर्चने प्रकार

लूण, सक्को जन्तीमें पकाया लूण, वनावटका खार, कुंजारकी कमाइ हूइ मट्टी, एलायची, लवंग, जावत्री, सूकी मोथ, कोकणदेश प्रमुखके केलें, क दलीफल, उवाले दूये सगाढे, सोपारी, इन सर्वका प्राशूक व्यवहार है, साधुजी कारण पडे ले लेवे यह बात कल्पनाप्यमेंनी लिखी है “जोय ए सयं तु गतु, अणादारे जम सकति” इत्यादि इनमेंसू हरढ, पीपल प्रमुख तो आचीर्ण है, इस वास्ते लेते हैं, अरु खर्जूर, डाढ़ा प्रमुख अ नाचीर्ण है, तथा उत्पलकमल, पद्म कमल, धूपमें रक्के, एक प्रहरके अ न्यतरही अचिन्त हो जाते हैं तथा मोगरेके फूल, छुहिके फूल, यह धूपमें बहुत चिरनी पडे रहे, तोनी अचिन्त नहीं होते हैं तथा मगदतिना अर्थात् मोगरेके फूल पाणीमें गेरे रहें तो एक प्रहरके अवरही अचिन्त होजाते हैं, तथा उत्पल, नीलकमल अरु पद्मकमल, ये दोनो पाणीमें गेर रखनेसें बहुत कालमेंनी अचिन्त नहीं होते हैं, “शीतयोनिकत्वात्” तथा पत्रोंका फूलोंका जिनफलोमें अनीतक गुठली बंध नहीं हुइ, तिनका तथा वधुआ प्रमुख हरित वनस्पतिका, इन सबनका वृत्त, ( मंजी ) कुमलाय जावे, तब जीव रहित दूये जानने यह कथनश्रीकल्पनाप्य वृत्तिमें लिखा है

तथा श्रीपञ्चमांगके ठेके शतकके पांचमे उद्देशमें सचिन्ताचिन्त वस्तुका स्वरूप ऐसा लिखा है, शालि, त्रिहि, गेहू, जव, जवजव, ये पांच धान्य की जाति कठोरमें तथा ठेके पालेमें तथा मचा, माला, कोठारविशेषोंमें मुख ढांकके रक्के, लीप्या होवे, तथा चारो तर्फसें लीप्या होवे, उपर कोइ और ढकणा दीया होवे, मुद्रित लांठित करके रक्के, तो कितने काल तांइ जीवयोनि रहे ? ऐसा प्रश्न पूछनेसें जगवान् कहते हैं कि हे गौतम ! जघन्य तो अंतर्मुहूर्त्त रहे, अरु उत्कृष्ट तो तीन वर्ष रहे, फेर अचिन्त हो जावे तथा मटर, मसूर, तिल, मूग, उहद, वाल, कुलथी, चवला, तूयर, गोल चणे, इत्यादि धान्य सर्व उपर वत् जाननां नवरं, उत्कृष्टसें पांच वर्ष उपरांत अचिन्त होते हैं, तथा अलसी, कुसुमेकी करढ, कोछ, कणु नी, बरटी, राज, कोरुसक, सण, सरसों, मूलीके बीज, इत्यादि धान्यजी उपरवत् नवरं, उत्कृष्टसें सात वर्ष उपरांत अचिन्त हो जाते हैं तथा कर्प्पा सके विनौले, उत्कृष्ट तीन वर्षसें उपरांत अचिन्त जीव रहित हो जाते हैं यहजी कल्पनाप्यवृत्तिमें है तथा विना ठाण्ठा थाटा (चून) श्रावण, जा

सोआ, राइ, खसखस प्रमुख सर्व कण, सर्व पत्र, सर्व दरे फल, तप्त लूण, खारी, खारक, अर्थात् बुधारे, रक्त (लाल) रंगका सिंधालूण, सा का सौचल लूण, खारा, मट्टी, खरी, हिरमची, दरे दांतण, इत्यादि । सर्व व्यवहारसे सचित्त सजीव हैं तथा पाणीमें निजोये चणे, गेहू, अर्थात् अन्न, तथा चणे, मूग, उड़व तूश्रर प्रमुखकी दाल, जिसमें नकू रह गये होवे, ये सर्व मिश्र है, तथा पहिला लूण लगा करके अग्निकी बाष्पा दीया बिना तप्त वालु (रेतके) बिना गेरें चणे, गेहू, चूवारादि नूजे, तथा खारादि दीया बिना मसले दूये तिल, होलां, कवियां, सिट्टे, पट्टक ईषत सेकी फली मिरच, राइ, द्विग प्रमुख करके चिर्नटादि फल, वधारे, तथा जिसके अंदर बीज सचित्त है, ऐसे पके दूये सर्व फल, यह सब मिश्र है तथा तिलवट, तिलकूट, जिस दिन करे उस दिन मिश्र है, अरु जेका तिलोंमें अन्न रोटी प्रमुख गेरके कूटे, तो एक मुहूर्त पीठें अचित्त होवे तथा दक्षिण मालवादि देशोंमें बहुत गुड प्रक्षेप करनेसे उसी दिन अचित्त हो जाते हैं, तथा वृद्धसे तत्कालका खड्या गूद, लाख, ठिन्नक, तत्कालका फोड्या नालियर, तथा निवू, दाडिम, अनार, थांव, नींब, इत्यादि इनका तत्कालका काढ्या रस, तथा तत्कालका काढ्या तिलादिका तेल, तत्कालका जांग्या दूया बीज, तथा काटे दूये नलेर, सिघाड़े, सोपारी आदि, तथा बीज रहित कीया पक फल खरबूजादि, गाढा मईन करके कण काढ्या जीरादि, ये सर्व अतर्मुहूर्त लग मिश्र है, पीठे प्राणुकका व्यवहार है, तथा औरनी प्रवल अग्निके योगविना प्राणुक करे दूये अतर्मुहूर्त ताई मिश्र है, पीठे प्राणुकका व्यवहार है, तथा अग्राणुक पाणी, कच्चा फल, कच्चा अन्नको जेकर बहुत मईननी करे दे, तोनी जवण अग्न्यादिक प्रवल शस्त्र विना प्राणुक नहीं होता है क्योकि श्रीपचमांग जगवतीसूत्रके उल्लेख में शतकके तीसरे उद्देशमें लिखा है, कि - वज्रमयी शिजा, वज्रमयी लोटा, यामले प्रमाण पृथ्वीकाय लेऊ एकवीस बार पीसे, तब कितनेक पृथ्वीके जीवोहो लोटेहा स्पर्शनी नहीं दूया है, ऐसी वनजीगाही सूक्ष्म काया है, तथा सा योजनमें उपरांत थाये दूये दूरठां, खारक, किसमिरा, लाज साहा, मेगा, खजूर, काजी मिरगी, पापर, जायफन, बराम, अलाह में वना, जसोना, पिस्ता, सोतज, चीनी, स्कटिक समान योजन सिंधा

शुंठ, हलद, नाम अरु स्वाद जेह होनेसँ अन्नद्वय नहीं है तथा उष्ण जल, तीन उवासे आ जावें, तब अचित्त होता है, यह कथन पिप्पलिन्युक्तिमें है, चावलके धोवणका पाणी जब नितरके निर्मज हो जावे, तब अचित्त होता है, तथा उष्णजलकी मर्यादा प्रवचनसारो द्वारादि ग्रन्थोंमें ऐसी लिखी है, सो कहते हैं त्रिदमोद्धृत उष्ण जल, उष्णकालके चारों मासमें पांच प्रहर अचित्त रहता है, यह चुब्देसँ वतारे पीठेकी मर्यादा है तथा वर्षाके चारों मासमें तीन प्रहर अचित्त अरु शीत कालके चारों मासमें चार प्रहर अचित्त रहता है, पीठे सचित्त होता है, जे कर ग्लान, बाल, वृद्धादि साधुके वास्ते मर्यादा उपरांत रखना होवे, तब द्वारादि वस्तुका प्रक्षेप करके रखना, फेर सचित्त नहीं होता है प्रवचनसारोद्वाराके (१३६)में द्वारमें यह कथन है तथा कोकडु मोठ, मूग अरु हरडादिककी मीजी (गिटक) यह यद्यपि अचेतन है, तांजी यो नि रखने वास्ते तथा नि शूकतादिके परिहार वास्ते दांतोंसँ तोड़ना (जांगना) न चाहिये इत्यादि सचित्त वस्तुका स्वरूप जानके सातमा व्रत अंगीकार करना चाहिये

आवकको प्रथम तो निरवय (दूषण रहित) आहार खाना चाहिये जैसे न कर सके तो सर्व सचित्त खानेका त्याग करे, जैसे न कर सके तब बावीश अन्नद्वय अरु वचीस अन्नतकाय तो अवश्यमेव त्यागने चाहिये, तथा चौदह नियम धारने चाहिये जैसे सूना उसके यथाशक्ति नियम ग्रहण करे, पीठे यथाशक्ति प्रत्याख्यान करे, नमस्कार सहित पौरुष्यादि काल प्रत्याख्यान जो है, सो जेकर सूर्य उगनेसँ पहिला उच्चारण करिये, तो शुद्ध है, अन्यथा शुद्ध नहो अरु शेष प्रत्याख्यान सूर्योदयसँ पीठे नो हो सके हैं, यह तथा नमस्कार सहित जेकर सूर्योदयसँ पहिला उच्चारण करा हुआ होवे, तब तिसके पूर्व हूआ तिसके बीचही पौरुषी साधू पौरुष्यादि काल प्रत्याख्यान हो सका है, जे कर नमस्कार सहित सूर्योदयसँ पहिला उच्चारण न करिये, तब तो कोइनी काल प्रत्याख्यान करना शुद्ध नहीं, अरु जे कर प्रथम नमस्कारादि प्रत्याख्यान मुष्टि सहतादि करे, तब सर्वकाल प्रत्याख्यान करे, तो शुद्ध है

तथा रात्रिमें चौविहार करे अरु दिनमें एकासना करे, पीठे ग्रन्थि स

इवाके महिनेमें पांच दिन तक मिश्र रहता है, पीठें अचिन्त होता है, अ  
सोज, कार्तिक मासमें चार दिन तक मिश्र रहता है, पीठें अचिन्त हो  
जाता है तथा मगसिर, पौष मासमें तीन दिन मिश्र रहता है, पीठें अचिन्त  
होता है, तथा माघ, फागून मासमें पांच प्रहर मिश्र रहता है. तथा चैत्र,  
वैशाख मासमें चार प्रहर मिश्र रहता है, तथा ज्येष्ठ आषाढमें तीन प्रहर  
मिश्र रहता है, उपरांत अचिन्त हो जावे, जे कर तत्काल भान लेवे, तब  
अतर्मुहूर्त लग मिश्र रहे, पीठें अचिन्त होवे

शिष्य प्रश्न करता है, कि पीस्या दूध्या आटा कितने दिनका अचिन्त नोगी  
कों तथा श्रावकको खाना चाहियें ?

उत्तर - सिद्धांतमें हमने आटेकी मर्यादाका नियम नहीं देखा है परंतु  
बुद्धिमान् नवा, जीर्ण अन्न, तथा सरस नीरस क्षेत्र, तथा वर्षा शीत, उष्णा  
दि ऋतु, तिनमें तिस आटेका पंद्रहा दिन मासादि कालमें वर्ण, गंध, रस  
स्पर्शादि विगडा देखे, तथा सुरसली प्रमुख जीव पडा देखे, तब न खावे, जे  
कर खावे, तो जीवहिता थरु रोगोत्पत्तिका कारण है

तथा मिठाईकी मर्यादा, थरु विदलका निषेध, उपर सातमे व्रतमें  
जिल्ल थाये ह, तहांसे जान लेना तथा वहीमें सोला प्रहर उपरांत  
जीव उत्पन्न होते है. तथा विवेकी जीवको वैगन, टाँबरु, जामन, बिस्व,  
पीन्, पक्क कर्मदा, पक्का गूदा, जसूडा पेचु, मधुक, (महुया) मौर, वालोल,  
वडे वोर, जाडीके वोर, कच्चा कौतफल, खसखस, तिल, इत्यादि न  
खाने चाहियें, इनमें त्रस जीव होते हैं तथा जो फल रक्त (लालरंग)  
देखनेमें बुरा लगे, पक्क, गोल, ककोडा, फणस, कटेल प्रमुखजीव  
री जायनाके हेतु होनेसे, न खाने चाहिये तथा जो फल जिस देसमें  
खाना विरुद्ध हावे, जसे कटूया वूना, कूष्माण्द थयात् काहला दनुग (कड)  
सोजी न खाना चाहिय, थरु थनक्षय, थनतकाय, कदमूल, परपरके  
अग्नि करे, रांधे दूयेनी न खाने चाहियें स्फोटि एक ता नि शुकता  
थरु दूसरी रस लपटता तथा वृद्ध्यादि दोषका प्रसंग होता है. इसी कारण  
न खाना, तथा उकाजा दूध्या सेजरा, रांध्या दूध्या आटादि कर, मूरण,  
वेगनादि, पद्यपि अग्नि है. तानी श्रावक, प्रसंग दूधण त्यागने चाहते न  
खावे, तथा मुजी ता पंचांगही खाने पाय्य नहीं. निषिद्धता, तथा

सुयंमि तद्वि द्नु, तितीजणमंति नायरिअ ॥ १ ॥ स्त्रीकें साथ जोग करने से चौविहार जग नहीं होता है, परंतु बालकके तथा स्त्रीके होठ मुखमें ले कर चर्चण करे, तो जंग होवे, अरु द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें यह जी करे तो जंग नहीं होता, प्रत्याख्यान जो है सो कवल आहारका है, परंतु रोम आहारका नहीं है, इस वास्ते लेपादि करनेसे जंग नहीं

तथा इतनी वस्तु किसी आहारमेंजी नहीं है उसका नाम लिखते हैं पंचांग नींब, गोमूत्र, गलोय, कडु, चिरायता, अतिविष, कुड़ेकी ठाल, चीड, चदन, राख, हरिडा, रोहणी, उपजोट, वज, त्रिफला, बांबूलकी छिन्नक, धमासा, नाहि, आसध, रींगणी, एलुवा, गुगल, हरडा, दाल, कर्पास की जड़, जाड़, वैरी, कथैरी, करीर, इनकी जड़, पुआड, बोहथोरी, आठि मजीठ, बोल, बीठकाष्ठ, कूंथार, चित्रक, कुंदरु प्रमुख जो वस्तु खानेमें अनिष्ट लगे, वो सर्व अनाहार है, यह अनाहार वस्तु रोगादि कष्टमें चौ विहार प्रत्याख्यानमेंजी खा लेवे, तो जंग नहीं, इस तरें आहारके जेद जानके प्रत्याख्यान करे

पीठें मजोत्सर्ग, दत्तावन, जिह्वासेखन, कुरला करना, यह सर्व देश स्नान करके पवित्र होवे, यह कदना अनुवाद रूप है क्योंकि यह पूर्वोक्त कर्म सबेरे ठठके प्राय सर्व एहस्थ करते हैं, इसमें शास्त्रोपदेशकी अपेक्षा नहीं स्वत ही सिद्ध है, परंतु इनकी विधि शास्त्र कहता है, उसमें प्रथम मजोत्सर्ग विधि यह है, कि मजोत्सर्ग मौनसे करना चाहिये, सो निर्दूषण योग्य स्थानमें करे ॥ यत उक्त-विवेकविज्ञासंग्रहे ॥ मूत्रोत्सर्ग मजोत्सर्ग, मैथुन स्नानजो जने ॥ सध्यादि कर्म पूजा च, कुर्यात्कृत्यं च मौनवान् ॥ १ ॥ अर्थ.— मूतना, दिसा फिरना, मैथुन करना, स्नान, जोजन, सध्यादि कर्म, पूजा, जाप, यह सर्व मौनपणे करने, तथा दोनो सध्या वस्त्र पहिरके करे, तथा दिनमें उत्तरके सन्मुख मुख करके, अरु रात्रिकों दक्षिणदिशि सन्मुख मुख करके जघु शंका उच्चार करे, तथा सर्व नक्षत्रोंका तेज सूर्य करके जब च्रष्ट हो जावे, जहां तक सूर्यका आधा मांमजा उगे, तहां तक सबेरेकी सध्या करणी, तथा सूर्य आधा अस्त होवे, तब पीठें दो तीन नक्षत्र जहां तक नजर न पड़े, तहां तक सायंकाल कहते हैं, तथा राखका ढेर, गोबरका ढेर, गौके वैठनेके स्थानमें, सर्पकी बची कपर तथा

हित प्रत्याख्यान करें, तब तिसको प्रतिमास एगुन तीस उपवासका फल होता है, दो बार जोजन एक रीतिसें करे, तो अष्टावीस उपवासका फल होता है, क्योंकि दो घड़ोका काल जोजन करतां जगता है, शेष काल तपमें व्यतीत दूया, यह कथन पद्मचरित्रमें है, प्रत्याख्यान ठप योग पूर्वक पूरा हो जावे, तो पारे

अरु चार प्रकारके आहारका विभाग ऐसें है, एक तो अन्न, पक्का, ममक, सत्तूआदि जो कुधा दूर करनेकू समर्थ होवे सो प्रथम अन्न नामक आहार है, दूसरा ठाठका पाणी, तथा वण्ण जलादि, यह सर्व पानक नामक आहार है तीसरा फल, फूल, इक्षुरस, पटुक, सूखडी, आदिक यह सर्व खादिम नामक आहार है चौथा सूत, हरडे, पिप्पली, काली मिरच, जीरा, अजमक, जायफल, जावत्री, असेलक, कड्डा, खयरवडी, ज्येष्ठी मधु, तज, तमालपत्र, एजायची, कौठ, विडग, विडलवण, अजमोद, लंजण, पिप्पलीमूल, चीणकवाव, कचूर, मुस्ता, कटासेलिउं, कर्पूर, सौं चल, हरड, बहेडा, कुठनउं, बबूल, धव, खदिर, खेजकी ठाल, पान, सोपारी, द्विगुलाष्टक, द्विगु, त्रेवीसउं, पंचकूल पुष्करमूल, जवासामूल, वावची, तुलसी, कपूरिकवादिक, जीरा यह सर्व जाप्य अरु प्रवचनसारो द्वारादिक ग्रंथोंके लेखसें स्वादिम नामक आहार है, अरु कल्पवृत्तिमें उनकू खादिम लिखा है कोइक अजवयनकोनी स्वादिम कहते हैं यह मतांतर है, यह सर्व स्वादिम नामक आहार है, तथा एजायची कर्पूरादि वासित जल द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें पीनां कल्पता है, तथा वेशण, सोफ, सोय, कोठयडी, थामलागांव, थांवकी गुटली, निवूके पत्र प्रमुख स्वादिम होनेसें द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें नहीं कल्पते हैं अरु त्रिविध आहार प्रत्याख्यानमें तो जलही पीनां कल्पता है, तिसमनी फूकारा दूया पाणी, साकर, कर्पूर, एजायची, कड्डा, खदिर, चुणैक, मेजक, पाइलादि वासित जल, जे कर नितार अरु गानके लेवे ता कउपे, अन्यथा नहीं

तथा शाखोंमें मधु, गुड, साकर, स्रग्नादिनी स्वादिम कहे हैं. अरु दारु, गदरेादि, जल, तक्र, गागादिका पानक कहे हैं तानी द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें नहीं कल्पते हैं ॥ उक्त च नामपुरीय महर्षी कही कहे हैं प्रत्याख्यानमात्र ॥ दारु पाणार्थ, पाण तद सादिम पुरास्मृत ॥ वशिष्ठ



मौन युक्त दातण करे, डुर्गंध, पोली, सूकी, खट्टी, खारी, वस्तु दांतकों न घसे, तथा, व्यतीपात, रविवार, सक्रांति दिनें ग्रहण लगेमें, नवमी, अष्टमी, पडवा, चौदश, पूर्णमासी, अमावस, इन दिनोमें दातण न करे, जे कर दातण न मिले, तब मुखशुद्धिके वास्ते वारा कुरले करे, अरु जिब्हा उल्लेखन तो सदा करे, दातणकी फाकसे जिब्हाका मैल हलवे हलवे सर्व उतारके शुचिस्थानमें दातण धो करके आपणे मुखके सामने गेरे, तथा खांसी, खास, तप, अजीर्ण, शोक, तृषावाला, मुख पकेवाला, मस्तक, नेत्र, हृदय, कान, इतने रोग वाला, दातण न करे

मस्तकके केशोंको सदा समारे, जिस्में चूआं न पड़े, जे कर तिलक करे कें आरीसा देखे, उसमें मुख नदीं दीखे, सिर नहिं दीखे, तो पाच दिनके अंदर उसका मरना जानना अरु जिसने उपवास पौरुष्यादिक प्रत्याख्यान करा होवे, वो दांत योया विनाजी शुद्ध है, क्योकि तपका बड़ा फल है, लौकिक शास्त्रों मेंजी उपवासादि करे, तो दातण विनाही देवपूजा करते है, इस वास्ते लौकिक शास्त्रोंमेंजी उपवासादिमें दातण करनेका निषेध है ॥ यदुक्त विष्णुजक्तिचंद्रोदयग्रन्थे ॥ प्रतिपदार्शश्छीपु, मध्यांते नवमीतिथौ ॥ सक्रांति दिवसे प्राप्ते, न कुर्यादितथावन ॥ १ ॥ उपवासे तथा आदे, न कुर्यात् द तथावन ॥ दतानां काष्ठसयोगो, हति सप्त कुजानि वै ॥ २ इत्यादि

तथा जब स्नान करे, तब उत्तिग पनक कुशुआदि जीवोंसे रहित नू मिमें करे, सो नूमि उची, नीची, पोली, न होवे, प्रथम तो उष्ण प्राशु क जलसे स्नान करे, जेकर उष्ण जल न मिले, तब बल्लसे ठान करके प्रमाण सयुक्त शीतल जलसे स्नान करे, तथा व्यवहार शास्त्रमें ऐसा लिखा है, कि - नग्न हो कर तथा रोगी तथा परवेशसे आया हुआ नोजन न करे पीछे आनूपण पहरेके किसीकों विदा करके पीछे आ करके मगल कार्य करके स्नान न करे, तथा अन्नजाने पानीमें, दुष्प्रवेश जलमें, मैले जलमें, वृद्धों करके आघ्रादित जलमें, शैबल करके आघ्रादित जल में, स्नान न करे, तथा शीतल जलसे स्नान करके उष्ण नोजन न खाना चाहिये अरु उष्ण जलसे स्नान करके शीतल नोजन न खाना चाहिये तैलमर्दन सदाही करना चाहियेतथा स्नान कछां पीछे जिसकी कांति फाकी दीसे तथा जिसके दांत परस्पर घसे, अरु शरीरसे मृतक कैसी

जहां बहुत लोग पुरीशोत्सर्ग करते हों, तथा उत्तम वृक्षों के देव, रस्ते के वृक्ष देव, तथा रस्ते में, तथा सूर्य के सम्मुख, तथा पाणी की जगामें, तथा मसाणों में, तथा नदी के कांटे उपर, तथा जिस जगहों स्त्री पूजती होवे, इत्यादि स्थानों में मलोत्सर्ग न करे परंतु जहां बैठने से कोई मार पीट न करे, पकड़के न ले जावे, धर्म की निंदा न होवे, तथा जहां बैठने से गिरे, फिसले नहीं, पोली नूनि न होवे, मासादि न होवे, त्रस जीव बीज न होवे, इत्यादि उचित स्थान में मलोत्सर्ग करे, गाम के तथा किसी के घर के समीप मलोत्सर्ग न करे, तथा जिस तर्फ से पवन आती होवे, तथा गाम की सूर्य की पूर्व दिशिके तरफ पीठ करके मलोत्सर्ग न करे दिसा थरु मूत्र का वेग रोकना नहीं, क्योंकि मूत्र का वेग रोकने से नेत्रों में हानी होती है, तथा दिसा का वेग रोकने से काल हो जाता है, तथा वमन रोकने से कुष्ठ रोग हो जाता है, जेकर ये तीनों बातें न हों वेगी तो रोग तो जरूर हो जावेगा, श्लेष्मादि करके ऊपर धूनि गेर देवे, क्योंकि श्रीप्रज्ञापनोपांग के प्रथम पद में लिखा है कि चौदह जगें सम्पूर्ण म जीव उत्पन्न होते हैं सो चौदह स्थानक कहते हैं, १ पुरीष में, २ मूत्र में, ३ मुख के ध्रुव में ४ नाक के मैत्र में, ५ वमन में, ६ पित्तों में, ७ वीर्य में, ८ वीर्य धर दोनो में, ९ राध में १० वीर्य का पुजन श्रलग निकल पड़े उत्तम, ११ जीव रहित कलेवर में, १२ स्त्री पुरुष के सयोग में, १३ नगरी की मोरों में, १४ सर्व श्रुति स्थान में, कान का मैल, थाख की गीड़ में, काख की मैल प्रमुख में, यह सर्व चौदह बोल मनुष्य के ससर्ग गाले ग्रहण करणें, थरु जब शरीर से श्रलग आवे, तब जीव उत्पन्न होते हैं

तथा दातन की निरवय स्थान में करे, दातण अचित्त जाने हुए वृक्ष की फांस करे, तथा दांतों के टूट करने वास्ते तर्जनी अंगुली करके दांतों की पीठ पसे, जा दांतों की मैल पड़े, उसके ऊपर धूनि गेर देवे, तथा दातण की जैसी करे जा दातण सुधी आवे, पीरम गांठ न आवे, कृन् बड़ा होवे, थागे से पतली आवे, चेंटी अंगुली समान मोटी होवे, तुनू मिठा न होवे, दातण कनिशा अनामिका के बीच से करे, दातण दातनी दात पगे, फेर वाली पगे, उरपागरत सरथ, दात दात पीठ न मोसही पीठ न दूरे, उत्तर तथा पूरे सम्मुख करके निश्चिन्तन.

करता है, तिसकोनी शरीर शुद्धिके शिवाय और कुछ फल नहीं होता है, यह बात, अन्यदर्शनके शास्त्रोंमेंनी कही है ॥ उक्त च ॥ स्कन्दपुराणे काशी खने पष्ठाध्याये ॥ श्लोक ॥ मृदोन्नारसहस्रेण, जलकुनशतेन च ॥ न शुद्ध्यते घुराचारा, स्नानतीर्थशतैरपि ॥ १ ॥ जायते च त्रियते च, जलेष्वेव जलौकस ॥ नच गच्छति ते स्वर्ग, मविशुद्धमनोमला ॥ २ ॥ चित्त स माधिनि शुद्ध, वदन सत्यजापणै ॥ ब्रह्मचर्यादिनि काय, शुद्धोगंगाविनाप्यसौ ॥ ३ ॥ चित्त रागादिनि क्लिष्ट, मलोकवचनैर्मुख ॥ जीवहिंसादिनिःकायो, गंगा तस्य पराङ्मुखी ॥ ४ ॥ परवारापरद्वय, परशोदपराङ्मुख ॥ गंगाप्याह कदागत्य, मामयं पावयिष्यति ॥ ५ ॥ जलसे स्नान करनेसे अस्वस्थ जीवोंकी विराधना होती है, इस वास्ते पुण्य नहीं है, जलमें जीवोंका होना मीमांसा शास्त्रसेनी सिद्ध होता है यदुक्त उत्तरमीमांसायां ॥ श्लोक ॥ जूतास्यतंतुगलिते, ये कुडा सति जंतव ॥ सूदमा त्रममाणास्ते, नैव यांति त्रिविष्टपं ॥ १ ॥ इत्यादि

किस्तीके स्नान करनेनी जे कर गुमढादिमेंसे राधादि श्रवे, तदा तिसने अंगपूजा फूलाविकसे आप नहीं करनी, दूसरोंसे करावे अरु अंगपूजा तथा नावपूजा आपनी करे, तो कुछ दोष नहीं, थोडासानी अपवित्र होवे, तब देवका स्पर्श न करे, तथा स्नान कक्षा पवित्र मृच्छ, गंध, काषायिकादि वस्त्र, अंगलूहणा, पोतीयां ठोढ करके पवित्र वस्त्रांतर पहिरनेकी शुक्तिसे पाणीके नीजे पगोंसे धरतीको अस्पर्शता हुआ पवित्र स्थानमें आ करके उत्तर सन्मुख मुख करके अष्टी तरे मनोदर नवा वस्त्र जो फाटा हुआ तथा सिवाया हुआ न होवे, अरु वर्षमें धवला होवे, ऐसा वस्त्र पहिरे, तथा जिस वस्त्रको कटिमें पहिरा होवे, तथा जिस वस्त्रसे दिला गया होवे, तथा जिस वस्त्रसे मैथुन सेव्या होवे, तिस वस्त्रको पहिरके पूजादि न करे, तथा एक वस्त्र पहिनके जोजन तथा देवपूजादि न करे, तथा स्त्री, कछुकी विना पहने देवपूजा न करे, इस रीतिसे पुरुषों को वस्त्र तथा स्त्रीको तीन वस्त्र विना पूजा करनी नहीं कहे है, देवपूजामें धोती अतिविशिष्ट धवली करनी चाहिये, निशीथचूर्णी तथा आदिनरुचादि शास्त्रोंमें ऐसाही लिखा है, तथा पूजा पोडशमें असानी लिखा है, कि रेशमी आविक जो सुंदर वस्त्र लाल पीला होवे,

गद्य आवे, तिसका मरण तीन दिनके अंदर होगा, तथा स्नान कक्षा पीठे जिसके हृदयमें, तथा दोनों पर्गोंमें तत्काल पाणी शोष जावे, तब ठे दिनोंके बीच उसका मरण जानना मैथुन सेवकें तथा वमन करकें इन दोनोंमें कठुक वें पीठे स्नान करे, तथा मृतककी चिताके धूम लगनेसें मस्तक मू मवा करकें, ठाने दूये छुट जलसें स्नान करे, तथा तेलमईन करी स्नान कक्षा पीठे उज्ज्वल वस्त्र आचरण पहिरनां पीठे प्रयाण करनेके दिनमें, संग्राममें जातां दूया, विद्यामत्र साधतां, रातकों, सांजकों, पर्वदिनमें, नवमे दिनमें स्नान न करे, मस्तक मुंमनजी न करावे, तथा पक्षमें एक बार बाढी मस्तकके केश तथा नख दूर करावे, परंतु अपणे दांतों करी तथा अपणे हाथ करकें नख न कतरे, स्नान करनेसें शरीर पवित्र चैतन्यसुख कर जाव शुद्धि का हेतु हो जाता है ॥ उक्त च द्वितीये अष्टकप्रकरणे ॥

श्लोक ॥ जजेन देहदेशस्य, कृण यशुद्धिकारण प्रायोऽन्यानुपरोधेन, इ व्यस्नान तदुच्यते ॥ १ ॥ अस्यार्थ - देहदेश त्वचामात्रहीकी कृणमात्र शुद्धि है, परंतु प्रनूत काल नहीं, शुद्धि जो है, सोनी प्राये है, कुछ एकांत नहीं है, क्योंकि अतिसारादि रोग वालोंको कृण मात्रनी शुद्धि नहीं हो सकती है, धोने योग्य मैलसे अन्य दूसरा मैल नासिकादि अंतर्गत जो है, सोनी स्नानसें दूर नहीं होता है, अथवा पाणी बिना थौर जीवोंकी हिंसा न करनेसे जो स्नान है, सो बाह्य स्नान है, जो पुरुष स्नान करकें जगवानकी तथा साधुकी पूजा करे, तिसका स्नानजी अष्टा है, क्योंकि जावशुद्धि निमित्त है, स्नान करनेमें अपूकायके जोषों की विराधनानी है, तोनी सम्यग्दर्शनकी शुद्धि रूप गुण है ॥ यदुक्त ॥ पूयाए कायवद्दो, पडिक्खो सोच कितु जिणपूया ॥ सम्मत्त सुद्धिहेतु, नि जाणणीयाउ निरवज्झा ॥ १ ॥ अर्थ - कोइ कहते हैं कि पूजा करनेसे जीववध होता है, थरु जीववध तो शास्त्रमें निषेध करा है, इस वास्ते पूजा न करणी चाहिये इसका उत्तर कहते हैं, कि पूजा जो जितरात्र सो है, सो सम्यक्त्व निर्मज करने वाली है, इस वास्ते चिनपूजा निरवय है, थसें देवपूजाके वास्ते गृहस्थको स्नान करनां कहा है, तथा शरीरके चैतन्य सुखके वास्तेनी स्नान है, परंतु जो स्नान करनेमें दूषण गते है, सो बात मिथ्या है, क्योंकि जा कोइ तीर्थमेंनी जाव कर स्नान

करता है, तिसकोँजी शरीर छुदिके शिवाय और कुछ फल नहीं होता है, यह बात, अन्यदर्शनके शास्त्रोंमेंनी कही है ॥ उक्त च ॥ स्कंदपुराणे काशी खरने पद्याध्याये ॥ श्लोक ॥ मृदोचारसहस्रेण, जलकुंजशतेन च ॥ न शुद्ध्यते पुराचारा, स्नानतीर्थशतैरपि ॥ १ ॥ जायते च म्रियते च, जलेष्वेव जलौकस ॥ नच गच्छति ते स्वर्ग, मविष्टुद्मनोमजा ॥ २ ॥ चित्तं स माधिनि शुद्ध, वदन सत्यनापयै ॥ ब्रह्मचर्यादिनि काय, शुद्धोगंगाविनाप्यतौ ॥ ३ ॥ विच रागादिनि क्लिष्ट, मलीकवचनैर्मुखं ॥ जीवहिंसादिनि कायो, गंगा तस्य पराङ्मुखी ॥ ४ ॥ परद्वारापरद्वय, परदोहपराङ्मुख ॥ गंगाप्याह कदागत्य, मामयं पावयिष्यति ॥ ५ ॥ जलसें स्नान करनेसें असंख्य जीवोंकी विराधना होती है, इस वास्ते पुण्य नहीं है, जलमें जीवोका होना मीमांसा शास्त्रसेंनी सिद्ध होता है यद्युक्त उत्तरमी मांसाया ॥ श्लोक ॥ जूतास्यतनुगलिते, ये क्रुद्धा सति जंतव ॥ सूदमा ब्रममाणस्ते, नैव यांति त्रिविष्टपं ॥ १ ॥ इत्यादि

किस्तीके स्नान करनेजी जे कर गुमडादिमेंसें राधादि श्रवे, तदा तितनै अगपूजा फूलाविकसें आप नहीं करनी, दूसरोंसें करावे श्रु अग्रपूजा तथा जावपूजा आपनी करे, तो कुछ दोष नहीं, थोडासाजी अपवित्र होवे, तब देवका स्पर्श न करे, तथा स्नान कछा पवित्र सृष्ट, गंध, काषायिकादि वस्त्र, अंगलूहणां, पोतीयां ठोड करके पवित्र वस्त्रांतर पहिरनेकी युक्तिसें पाणीके नीचे पगोसें धरतीको अस्पर्शता दूथा पवित्र स्थानमें आ करके उत्तर सन्मुख मुख करके अष्टी तरें मनोहर नवा वस्त्र जो फाटा दूथा तथा सिवाया दूथा न होवे, श्रु वर्णमें धवला होवे, असा वस्त्र पहिरे, तथा जिस वस्त्रको कटिमें पहिरा होवे, तथा जिस वस्त्रसें दिसा गया होवे, तथा जिस वस्त्रसें मैथुन सेव्या दावे, तिस वस्त्रको पहिरके पूजादि न करे, तथा एक वस्त्र पहिनके जोजन तथा देवपूजादि न करे, तथा स्त्री, कच्ची विना पहने देवपूजा न करे, इस रीतिसें पुरुष को वा वस्त्र तथा स्त्रीको तीन वस्त्र विना पूजा करनी नहीं कव्ये है, देव पूजामें धोती अतिविशिष्ट धवली करनी चाहिये, निशीयचूर्ण तथा श्राद्धदिनरुयादि शास्त्रोंमें असाही लिखा है, तथा पूजा पोडशमें असाजी लिखा है, कि रेशमी आविक जो सुंदर वस्त्र लाल पीला होवे,

गंध आवे, तिसका मरण तीन दिनके अंदर होगा, तथा स्नान कक्षा पीठे  
जिसके हृदयमें, तथा दोनो पगोंमें तत्काल पाणी शोष जावे, तब ठे दिनोंके  
बीच उसका मरण जानना मैथुन सेवकें तथा वमन करकें इन दोनोमें  
कबुक बैर पीठे स्नान करे, तथा मृतककी चिताके धूम लगनेसें मस्तक मुं  
नवा करकें, ठाने दूये छुद जलसें स्नान करे, तथा तेलमर्दन करी स्नान  
कक्षा पीठे वज्जवल वस्त्र आचरण पहिरनां पीठे प्रयाण करनेके दिनमें, सं  
ग्राममें जातां दूआ, विद्यामंत्र साधता, रातकों, सांझकों, पर्वदिनमें, नवमे  
दिनमें स्नान न करे, मस्तक मुंननी न करावे, तथा पक्षमें एक बार  
दाढी मस्तकके केश तथा नख दूर करावे, परंतु अपणे दांतों करी तथा  
अपणे हाथ करकें नख न कतरे, स्नान करनेसें शरीर पवित्र चैतन्यसुख  
कर जाव छुदिका हेतु हो जाता है ॥ उक्त च द्वितीये अष्टकप्रकरणे ॥

श्लोक ॥ जलेन देहदेशस्य, कृण यष्टुदिकारण प्रायोऽन्यानुपरोधेन, इ  
व्यस्नान तदुच्यते ॥ १ ॥ अर्थ— देहदेश त्वचामात्रदीकी कृणमात्र  
छुदि है, परंतु प्रनूत काल नहीं, छुदि जो है, सोनी प्राये है, कुछ एकांत  
नहीं है, क्योंकि अतिसारादि रोग वालेंको कृण मात्रानी छुदि नहीं  
हो सकी है, धोने योग्य मैलसे अन्य दूसरा मैल नासिकादि अंत  
गत जो है, सोनी स्नानसें दूर नहीं होता है, अथवा पाणी बिना  
थौर जीवोंकी हिंसा न करनेसे जो स्नान है, सो बाह्य स्नान है, जो पुरु  
ष स्नान करके जगवानकी तथा साधुकी पूजा करे, तिसका स्नाननी  
अष्टा है, क्योंकि जावछुदिका निमित्त है, स्नान करनेमें अपकायके जीवों  
की विराधनानी है, तोनी सम्पग्वर्शनकी छुदि रूप गुण ह ॥ यदुक्त ॥  
पूथाए कायवहो, पडिकुछो सोच कितु जिणपूथा ॥ सम्मत्त सुदिदेव, नि  
जावणीयाउ निरवज्जा ॥ १ ॥ अर्थ— कोई कहते हैं कि पूजा करनेसे जी  
ववध होता है, थरु जीववध तो शास्त्रम निषेध करा है, इस वास्ते  
पूजा न करणी चाहिये इसका उत्तर कहते हैं, कि पूजा जो जिनरात्र  
सी है, सो सम्पत्त्य निर्मेज करने वाली है, इस वास्ते जिनपूजा निरव  
ध है, ऐसे देवपूजाके वास्ते गृहस्थकों स्नान करना कहा है, तथा  
शरीरके चैतन्य सुखके वास्तेनी स्नान है, परंतु जो स्नान करनेसे पुनः  
नते है, सो बात मिथ्या है क्योंकि जो कोई तीर्थमेंगो जान कर स्नान

जा, तिनोसैं पूजकें प्रत्याख्यान जो पूर्वे करा था, सो यथाशक्ति देवकी सा  
क्षीसैं वञ्चारण करे, तद् पीठें विधिसैं बड़े पंचायती मंदिरमें जा कर पूजा  
करे, सो इत विधिसैं करे.

यदि राजादि महार्द्धिक होवे, सो तो सर्व रुद्रि, सर्वदीप्ति, सर्वयुक्ति,  
सर्वसैन्या, सब उद्यमसे जिनमतकी प्रभावना वास्ते महा आम्बर पूर्वक  
जिनमंदिरमें पूजा करनेको जावे, जैसे दशार्णजः राजा श्रीमहावीर जग  
वतको वदना करने गया था तैसें जावे

अरु जो सामान्य रुद्रिवाला होवे, सो अनिमान रहित लोकोपहास्य  
त्यागके यथायोग्य आम्बर जाइ, मित्र, पुत्रादिकोंसैं परिचृत हो कर जावे,  
औसैं जिनमंदिरमें जा कर १ पुष्प, तंबोल, सरस, दुर्वादि त्यागे, तथा २  
बूरी, पावड़ी, मुकुट, दाथी प्रमुख सच्चित्तचित्त वस्तु शरीरके जोगकी त्यागे,  
तथा ३ मुकुट वर्जकें शेष आभरणादि अचित्त वस्तु न त्यागे, अरु एक  
बड़े बल्लका उत्तरासंग करे, ४ जिनेश्वरकी मूर्ति दीखे अजलि बांधकें म  
स्तक उपर चढाकें 'नमो जिणाण' औसा कहे, ५ मन एकाग्र करे, इत री  
तिसैं पांच अजिगम सजालके ( सांचके ) नैपेधिकी पूर्वक प्रवेश करे

जे कर राजा जिनमंदिरमें प्रवेश करे, तब तत्काल राजचिन्ह दूर करे,  
१ तलवार, २ डत्र, ३ असवारी, ४ मुकुट, ५ चामर ये पांचो चिन्ह रा  
जाके त्यागे, अग्रद्वारमें प्रवेश करतां घर व्यापारका निषेध करने वास्ते  
नैपेधिकी तीन करे, परंतु तीनो निस्तहीकी एक नैपेधिकी गणतीमें कर  
णी, क्योंकि एकही घर व्यापार एककाही निषेध कीया है तद् पीठें मूल  
बिंबको नमस्कार करके सर्व कृत्य, कल्याणवांछक पुरुषनें दक्षिणके पास  
करणां, इत वास्ते मूलबिंबको दक्षिणके पास करता दूआ ज्ञान, दर्शन,  
अरु चारित्र, इन तीनोंके आराधनार्थ प्रदक्षिणा तीन देवे, प्रदक्षिणा देता  
दूआ समवसरणस्थ चाररूप सयुक्त जिनेश्वरजोको व्यावे, गजारामें पूर्वे  
वामा दक्षिणा दिशिमें जो बिंब होवे, तिनको वदे, इसी वास्ते सर्व मंदिर  
में चारों तर्फ समवसरणके आकारें तीन तर्फ तीन बिंब स्थापे जाते हैं,  
औसैं करनेसैं जो अरिद्वंद्वकी पीठें वसणोमें दोष था, सो दूर हो गया, पीठ  
किसी पासंजी न रही, तिस पीठें चैत्यप्रमार्जनादि जो आगें लिखेगे, सो  
करे, पीठें सर्व प्रकारकी पूजा सामग्री प्रत्ये तथा वेदराके समारनेके कामके

सोनी। पूजामें पहिरे तो ठीक है, तथा “ एगसाडियं उत्तरासंगं करे, इ  
 त्यादि आगमके प्रमाणसें उत्तरासंग अखंड वस्त्रका करे, दो टुकड़े सीसा  
 वस्त्र न कल्पे, तथा रेशमी कपड़ेसें जोजनादि करे, अरु मनमें समजे कि  
 यह तो सदा पवित्र है, तोनी तिस्सें पूजा न करे तथा जिस वस्त्रको प  
 हिरके पूजा करे, उसकोनी बारंबार पहिननेके अनुसार धोवावे, धूप दे  
 कर पवित्र करे, धोती थोड़ाही काल तक पहननी चाहिये, उस धोतीसें प  
 सीना श्लेष्मादि न दूर करना चाहिये क्योंकि उससें अपवित्रता हो  
 जाती है, तथा पहिने हुए वस्त्रोंके साथ पूजाके वस्त्र ढुहाने (थढ़ाने)  
 नहीं चाहिये, दूसरायोंकी पहनी हुई धोती पहननी न चाहिये, तथा  
 बाल, वृद्ध, स्त्रीके पहननेमें आइ होवे, तो विशेष करके न पहननी चा  
 हिये, तथा जले स्थानसें ज्ञातगुण, सुमनुष्य पासों पवित्र जाजन आवा  
 वनसयुक्त रस्तेमें लानेकी विधिसयुक्त पाणी अरु फूज, पूजा वास्ते मगाव  
 ने चाहिये अरु फूजादि लाने वालेको अङ्गी तरें मोल दे कर प्रसन्न कर  
 ना चाहिये, ऐसे मुखकोश बांध के पवित्रस्थानादि युक्तिसें जिसमें कोई  
 जीव पड़ा न होवे, ऐसा शोथ्या ढुवा केशर कर्पूरादिकसे मिश्र, चंदन पत्ते,  
 शोथ्या दूध्या सुंदर धूप, प्रदीप, अखंड चावलादि नूत रहित प्रशस्ता करने  
 योग्य ऐसा नैवेद्य फलादि सामग्री मेलके इस रीतें इव्यसे शुचि करके  
 अरु जावसे शुचि तो राग, द्वेष, कपाय, ईर्ष्या रहित तथा इस लोक पर  
 लोकके सुखोंकी इन्ना रहित हो कर अरु कुतूहल चपलादि त्याग करके  
 एकाग्र चिन्तारूप जावशुचि करे ॥ उक्त च ॥ श्लोक ॥ मनोवाक्कायवस्त्रोर्वा,  
 पूजापकरणस्थिते ॥ शुचि सप्तविधा कार्या, श्रीचर्द्धतपूजनक्षणे ॥ १ ॥

यसं इव्य जाग करके शुद्ध हो कर जिनघर (वेदरेमें) दक्षिणदिशि पुरुष,  
 अरु वामादिशि स्त्री, पन्न पूर्वक प्रवेश करे, प्रवेशके अचतरमें दक्षिण पक्ष  
 पड़िजा धरे, पोत्रें सुगंध वाले मोठे सरस इव्यो करके पराङ्मुख वामाक्षर  
 चरते नानसे वेगपूजा करे इत्यादि तीन नपेयिकी करण, तीन प्रदक्षिणा,  
 श्रृयादि विधिस शुचि पाट उपर पद्यासनादि सुलासन पर बैठके, चंदनका  
 नाजास चंदन ले कर दूसरी कटोरीमें तथा दमेजीमें ले कर मस्तकमें  
 तिलक करके दस्तकृष्ण, श्रीचंदनचर्चित धुवित, दायी करी जिन जइ  
 तरों पूजके आग नित्यने इ ना १ अक्षपूजा, २ अक्षपूजा, ३ अक्षपूजा



कपाय वस्त्र, करकेँ एक सौ आठ जिनप्रतिमाके अंग क्यों कर लूँदे ? इस वास्ते जिनविवारोपित जो वस्तु, शोभा-रहित सुगंध रहित दीख पड़े, अरु नव्य जीवोंको प्रमोदका हेतु न-होवे, तिसहीकोँ बहुश्रुत निर्माल्य कहते हैं यह कथन सघाचारवृत्तिमें लिखा है, चढे दूये चावलादि निर्माल्य नदीं, कोइ आचार्य निर्माल्यजी कहते हैं, तत्त्व केवली जाणे क्यों कर दें ?

चदन फूलादि पूजा तैसेँ करणी, जैसेँ जगवानके नेत्र मुखादि ढकेँन जावे, अरु बहुत शोजनिक दीखे, जिस्सेँ देखने वालोंकोँ प्रमोद पुष्पादिककी वृद्धि होवे

तथा १ अग्रपूजा, २ अग्रपूजा, ३ नावपूजा, यह तीन प्रकारकी पूजा है, तिनमें जो निर्माल्य दूर करना, प्रमार्जना करना, अग्रप्रक्षालन करना, वालकूचीका व्यापारण, पूजना, कुसुमांजलिमोचन, पंचामृतस्नात्र, शुद्धोदकधारा देनी, धूपित स्वच्छ मृदुगंध कपायकादि वस्त्रसे अंगलूहण करना, कपूर कुकुमादि मिश्र गोशीर्ष चदन विलेपन अंगी रचनी, तथा गोरोचन कस्तूरीसेँ तिलक करणां, पत्र, वेल, फूल प्रमुखकी रचना करनी, बहुत मोल रत्न सुवर्ण मोती रूपेँ पुष्पादिकेँ आनरण (अलंकार) पहिरावे, जैसे श्री वस्तुपालने अपने कराये दूये सवालक्ष विंवोंके तथा श्रीशत्रुजयजीमें सर्व विंवोंके रत्न सुवर्णके आनरण कराये थे, तथा दमयंतीने पिठले नवमें अष्टापद पर्वतपर चौबीस अर्द्धतोके तिलक कराये होते, क्योंकि प्रतिमाजी की जितनी वस्त्रुष्ट सामग्री होवे, उतनेही अधिक नव्य जीवोंके धुन जावोंकी वृद्धि होती है तथा पद्मावली, चंद्रादि विचित्र डकूजादि वस्त्र पहिरावे, तथा १ ग्रथिम, २ वेष्टिम, ३ पूरिम, ४ सघातिम रूप, चतुर्विध प्रधान अम्लान विधिसेँ ध्याया दूआ शतपत्र, सदस्त्रपत्र, जाइ, केतकी, चपकादि विशेष फूलों करी माला, मुकुट, सेहरा, फूजधरादिककी रचना करे तथा जिनजीके हाथमें बिलोरा, नालियर, सोपारी, नागवल्ली, मोहोर, रूपइया, जम्बु प्रमुख रखनां अरु धूपद्वेप, सुगंध, वासप्रक्षेपादि, यह सर्व अग्रपूजाकी गणतीमें है. महाजाप्यमेंजी कहा है ॥ गाथा ॥ न्दवण वि लेव आदरण, वड फल गंध धूप पुष्फेदि ॥ कोरइ जिणगपूया, तड विही एस नायवो ॥ १ ॥ वडेण वधिउणना, स अहवा जहा समाहीए ॥ व

निषेध करने वास्ते दूसरी मुखममपादिकमें नैवेदिकी करे, पीठें मूलविंध्यकों तीन प्रणाम करके पूजा करे, जाण्यकारनेंजी अैसा कहा है, कि निस्तहो तीन करके प्रवेश करी ममपमें जिनेश्वरके आगे धरती उपर स्थापन करके, हाथ गोढे करे, विधिसें तीन वार प्रणाम करे, तिस पीठें दृषेसें षड्दास दो करके मुखकोश बांध करके जिनप्रतिमाका निर्माव्य, फूल प्रमुख मोर पीठी करके दूर करे, जिनमदिरका प्रमार्जन आप करे, अथवा औरोंसें करावे, पीठें जिनविवकी पूजा विधिसें करे, मुखकोश आठ पुडका करे, जिस्से नासिका अरु मुखका निश्वास निरोध होवे, वर्षातमें निर्माव्यमें कुंघुआदि जीवन्ती होते हैं इस वास्ते निर्माव्य अरु स्नात्र जल न्यारा न्यारा पवित्र स्थानमें गेरे, गिरा वे, अैसें आशातनाजी नहीं होती है पूजा, कलशजलसें करता हुआ अैसी जावना ल्यावे, सो लिखते हैं

हे स्वामिन् ! बालपणेमें मेरु शिखर पर सुवर्णकलशों करी इइ देवताने स्नान कराया था, सो धन्य थे, जिनोनें तुमारा दर्शन करा था, इत्यादि विं तवणा करके पीठें सुयत्नसें बालाकूचीसे जिनविंवके अग उपरसें चडनादि उतारे, पीठें जलसें प्रक्षालन करके दो अगलूहणेसे जिनप्रतिमाको निर्जल करे, पग, जानु, कर, मस्तकें पूजा यथाक्रमसे नव अगमें श्रीचवनादि करके चर्चें, (पूजे) कोई थाचार्य कहते हैं, कि पहिला मस्तकमें तिलक करके पीठें नवांग पूजा करणी, श्रीजिनप्रज्ञसूरिकृत पूजाविधि ग्रंथमें अैसा लिखा है कि— सरस सुरजि चदन करी देवके, दाहिण जानु, दाहिण स्कंध, नि जाड, वामा स्कंध, वामा जानु, इत क्रमसे पूजा करे, हृदय प्रमुखमें पूजा करे, तब नव अगकी पूजा होती है, अगोंमें पूजा करके पीठें सरस पांच बणके प्रस्पय फूर्जों करके चदन सुगंध वास करी पूजे, जे कर पहिला कितोने बडे ममाणसें पूजा करी होये, अरु अणणे पास बैसी सामग्री पूजाकी न आवे, तब पहिली पूजा उतारे नहीं, क्योंकि विशिष्ट पूजा देखनेस जय्याकों जो पुष्पानुबधी पुष्प होता था, तिसको थंतराय दा जाती है, किंतु तिस वास्ते तिसी पूजाको शोचनिक करे, यह कथन वृद्धजाण्यमें है

तथा जो पूजा उपर पूजा करणी, सो निर्माव्यकृतज्ञान न दानेन नि नांश्य नहीं, जा जोगविनष्ट इय्य द्, सोइ निर्माव्य गीतापाम कहा है, जाण्य पण्य बार बार पहराये जाते हैं, परंतु निर्माव्य नहीं दाते हैं, नहीं सो कथ,

है, तैसैंही मूजविबकी विशेष पूजा करता आशातना नहीं होती है, जिनमदिरमें जिनविबकी जो पूजा करते हैं, सो तीर्थकरोंके वास्ते नहीं करते हैं, किंतु अपणे छुन नावोंके निमित्त है, जिस निमित्तसैं आत्माका उपादान समर जाता है, अरु दूसरोकों बोधकी प्राप्ति होती है कोइ जीव तो श्रीजिनमदिरकों देखकें प्रतिबोध हो जाता है, अरु कोइ जीव जिनप्रतिमाका प्रशान्तरूप देखकें प्रतिबोध हो जाता है, कोइ पूजा की महिमा देखके, अरु कोइ गुरुके उपदेशसैं प्रतिबोध हो जाता है इस वास्ते चैत्य जिनविबकी रचना बहुत सुंदर बनानी चाहिये अरु अपणी शक्ति अनुसार मुख्यविबकी विशेष अद्भुत शोभा करनी चाहिये

तथा घर देहरासर तो अबनी पीतल ताम्र रूपामय करावनेकू समर्थ है, जहां पीतलादिकका बनानेका सामर्थ्य न होवे, तदा दातादि मय पीतल सिंगरफकी रंगावे, कोरणी विशिष्ट काष्ठादिमय करावे घरचैत्य तथा चैत्य समुच्चयमें दिनप्रत्ये सर्व जगें प्रमार्जन तैलादिसैं काष्ठ चोपड़े, जिस्सैं धुण न लगे, तथा खडियासैं धवला करे, श्रीतीर्थकरके पंचकल्याणकादिकका चित्राम करावे, समय पूजाके उपकरण समरावे, पडवा, कनात, चडुवादि देवे, अैसैं करे कि, जैसैं जिनमदिरादिककी अधिक अधिक शोभा होवे. घर देहरेके उपर धोती प्रमुख न गेरे, घर देहरेकीनी चौरासी आशातना टाखे, पीतल पाषाणादिमय जो प्रतिमा होवे, तिन सर्वकों एक अगलूदहोसैं सर्व विबोका पाणी लूहे, पीठें निरंतर दूसरे सुकोमल अगलूदहोसैं वारं वार सर्व अगो उपर फेरकें पाणीकी गोलास्त बिलकुल रहने न देवे, अैसैं करनेसे प्रतिमा उज्ज्वल हो जाती है, जहां जहां प्रतिमाके अगोपांग पर जल रहि जावे, तहां तहां प्रतिमाके श्यामता हो जाती है, इस वास्ते पाणीकी स्निग्धता सर्वथा प्रकारें टाखे, केशर बहुत अरु चंदन थोड़ा, अैसा विलेपन करनेसैं प्रतिमा अधिक अधिक उज्ज्वल हो जाती है

नव, पंचतीर्थी, चोवीसीका पट्टादिमें स्नात्रजलका जो प्रतिमाजीकों पर स्पर्श होनेसैं आशातना होती है? अैसी आशका न करणी चाहिये, अशक्य परिहार होनेसैं १ एक अर्द्धतकी प्रतिमा होवे, तिसका नाम व्यक्त है. २ एकही पाषाणादिकमें नरत ऐरवत क्षेत्रकी चोवीसी बनवावे, तिनका नाम क्षेत्रप्रतिमा है ३ अैसेही एक सौ सित्तर प्रतिमा माहारण्य

क्षेयं तु तथा, देहमवि कंठुअणमाई ॥ २ ॥ अन्यत्रापि गाथा ॥ क्व  
कहुअण वळे, तद् खेलविर्गेचण ॥ शुद्ध सुसजणण चेव, कुअतो जगत्तु  
णो ॥ १ ॥ देवपूजनके अवसरमें मुख्यवृत्ति तो मौनही करणी चाहियें, वे  
कर न कर सके तो जी पापहेतु वचन तो सर्वथाही त्यागे, नैवेधिकी कर  
नेसें गृहादि व्यापारका निषेध करनेसें इस वास्ते पापकी संहारणी वळे, मूल  
बिंबकी विस्तार सहित पूजा करे, पीठें अनुक्रमसें सर्व और बिंबोंकी  
पूजा करे, द्वारविष समवसरण बिंबोंकी पूजाकी मूलबिंबकी पूजा कक्षा  
पीठें, गनारासें निकलती वस्तु करनी चाहियें, असा सजव है, परंतु प्रवे  
श करता तो मूलबिंबकीही पूजा करणी, उचित मालुम होती है, संघा  
घारमें ऐसेही लिखा है, इस वास्ते मूलनायककी पूजा, सर्व बिंबोंसें पहि  
ला और सविशेष करनी चाहियें ॥ उक्तमपि ॥ उचित्यत्त पूआए, विसे  
सकरण तु मूजबिंबस्त ॥ जं पढऽ तड पढम, जणस्त विछी सहमणेण ॥ १ ॥

शिष्य प्रश्न करता है कि - चढ़नादि करके प्रथम एक मूलनायकको  
पूजीयें और दूसरे बिंबोंकी पीठें पूजा करनी, यह तो स्वामी सेवक नाव व  
हारा, सो तो लोकनाथ तीर्थकरमें है नहीं, क्योंकि एकबिंबकी बहुत आद  
रसे पूजा करणी, और दूसरे बिंबोंकी थोड़ी पूजा करणी, यह बड़ी नारी  
आशातना मुण्को मालुम पडती है ?

गुरु उत्तर कहते हैं - अर्हत प्रतिमाओंमें नायक सेवककी बुद्धि का  
नवत पुरुषको नहीं होती है, क्योंकि सर्व प्रतिमाओंके एक तरीकाही  
परिवार प्रातिहार्य प्रमुख दीख पडते हैं, यह व्यवहार मात्र है, जो बिंब  
पहिलाही स्थापन कीया गया है, सो मूलनायक है, इस व्यवहारसें शेष  
प्रतिमाओंका नायक नाव दूर नहीं होता है

एक प्रतिमाको चढ़न करना, पूजा करनी, नैवेद्य चढ़ाना, यह उचित  
प्रवृत्तिवाले पुरुषको आशातना नहीं है, जैसे माटीकी प्रतिमाकी पूजा  
छायादि रहित उचित है, और सुवर्णादिककी प्रतिमाओं स्नान विज्ञेयता  
दि उचित है, तथा कल्याणक प्रमुखका महोत्सव एकही बिंबका विशेष  
करके कीया जाता है, परंतु जो महोत्सव दूसरी प्रतिमाओंकी आशातना  
कारण नहीं होता है, उस धर्मी पुरुषका पूजता और आशातना  
नहीं, इस प्रकारकी उचित प्रवृत्ति करता जब आशातना नहीं होता।

है, तैसैंही मूर्तविंबकी विशेष पूजा करता आशातना नहीं होती है, जिनमंदिरमें जिनविंबकी जो पूजा करते हैं, सो तीर्थकरोंके वास्ते नहीं करते हैं, किंतु अपने छुन जावोंके निमित्त है, जिस निमित्तसैं आत्माका उपादान समर जाता है, अरु दूसरोकों बोधकी प्राप्ति होती है कोइ जीव तो श्रीजिनमंदिरकों देखकें प्रतिबोध हो जाता है, अरु कोइ जीव जिनप्रतिमाका प्रशान्तरूप देखकें प्रतिबोध हो जाता है, कोइ पूजाकी महिमा देखके, अरु कोइ गुरुके उपदेशसैं प्रतिबोध हो जाता है इस वास्ते चैत्य जिनविंबकी रचना बहुत सुंदर बनानी चाहियें अरु अपनी शक्ति अनुसार मुख्यविंबकी विशेष अद्भुत शोभा करनी चाहियें

तथा घर देहरासर तो अबनी पीतल ताम्र रूपामय करावनेकूं समर्थ है, जहां पीतलादिकका बनानेका सामर्थ्य न होवे, तदा दांतादि मय पीतल सिंगरफकी रंगावे, कोरणी विशिष्ट काष्ठादिमय करावे घरचैत्य तथा चैत्य समुच्चयमें दिनप्रत्येक सर्व जगें प्रमार्जन तैलादिसैं काष्ठ चोपड़े, जिस्सैं घुण न लगे, तथा खडियांसैं धवला करे, श्रीतीर्थकरके पंचकव्या एकादिकका चित्राम करावे, समग्र पूजाके उपकरण समरावे, पढवा, कनात, चडुवादि वेवे, अिसैं करे कि, जैसैं जिनमंदिरादिककी अधिक अधिक शोभा होवे घर देहरेके उपर धोती प्रमुख न गेरे, घर देहरेकीनी चौरासी आशातना टाळे, पीतल पाषाणादिमय जो प्रतिमा होवे, तिन सर्वकों एक अंगजुहणेसैं सर्व विंबोका पाणी लूहे, पीठें निरंतर दूसरे सुकोमल अंगजुहणेसैं बारं बार सर्व अंगो उपर फेरकें पाणीकी गीलास बिजकुल रहने न वेवे, अिसैं करनेसे प्रतिमा उज्ज्वल हो जाती है, जहां जहां प्रतिमाके अंगोपांग पर जल रहि जावे, तहां तहां प्रतिमाके श्यामता हो जाती है, इस वास्ते पाणीकी स्निग्धता सर्वथा प्रकारें टाळे, केशर बहुत अरु चंदन थोड़ा, अिसा विलेपन करनेसैं प्रतिमा अधिक अधिक उज्ज्वल हो जाती है

नव, पंचतीर्थी, चोवीसीका पट्टादिमें स्नात्रजलका जो प्रतिमाजीकों पर स्पर्श होनेसैं आशातना होती है? अैसी आशका न करणी चाहियें, अशक्य परिहार होनेसैं १ एक अर्द्धतकी प्रतिमा होवे, तिसका नाम व्यक्त है. २ एकही पाषाणादिकमें नरत ऐश्वर्य क्षेत्रकी चोवीसी बनवावे, तिनका नाम क्षेत्रप्रतिमा है ३ अैसैंही एक सौ सित्तेर प्रतिमा माहारम्

क्षेयं तु तथा, वेदमवि कंमुश्रणमाई ॥ ५ ॥ अन्यत्रापि गाथा ॥  
 कमुश्रण वक्त्रे, तद् खेलविर्गंचण ॥ शुद्धं युक्तजणं चैव, दुश्चरितं जगत्सु  
 णो ॥ १ ॥ देवपूजनके अवसरमें मुख्यवृत्ति तो मौनही करणी चाहियें, के  
 कर न कर सके तो जी पापहेतु वचन तो सर्वथाही त्यागे, नैवेधिकी कर  
 नेसें गृहादि व्यापारका निषेध करनेसें इस वास्ते पापकी सज्ञानी बर्जे, मू  
 लबिंबकी विस्तार सहित पूजा करे, पीछे अनुक्रमसें सर्व और बिंबोंकी  
 पूजा करे, द्वारबिंब समवसरण बिंबोंकी पूजानी मूलबिंबकी पूजा कक्षा  
 पीछे, गनारासे निकलती वस्त्र करनी चाहियें, असा सजव है, परंतु प्रवे  
 श करता तो मूलबिंबकीही पूजा करणी, उचित मालुम होती है, संफ  
 चारमें ऐसेही लिखा है, इस वास्ते मूलनायककी पूजा, सर्व बिंबोंसें पहि  
 ला और सविशेष करनी चाहियें ॥ उक्तमपि ॥ उचिश्चत्त पूज्याए, वित्ते  
 सकरणं तु मूलबिंबस्त ॥ जं पडइ तच्च पढम, जणस्स दिट्ठी सदमणेण ॥ १ ॥

शिष्य प्रश्न करता है कि - चदनादि करके प्रथम एक मूलनायकको  
 पूजीये थरु दूसरे बिंबोंकी पीछे पूजा करनी, यह तो स्वामी सेवक जाव ठ  
 हरा, सो तो लोकनाथ तीर्थकरमें है नहीं, क्योंकि एकबिंबकी बहुत आ  
 रसे पूजा करणी, थरु दूसरे बिंबोंकी थोड़ी पूजा करणी, यह बड़ी जारी  
 थाशातना मुझको मालुम पडती है ?

गुरु उत्तर कहते है - अर्द्धत प्रतिमाथोंमें नायक सेवककी बुद्धि का  
 नवत पुरुषको नहीं होती है, क्योंकि सर्व प्रतिमाजीके एक सरीसाही  
 परिवार प्रातिहार्य प्रमुख दीख पडते है, यह व्यवहार मात्र है, जो बिंब  
 पहिलाही स्थापन कीया गया है, सो मूलनायक है, इस व्यवहारसें शेष  
 प्रतिमाथोंका नायक जाव दूर नहीं होता है

एक प्रतिमाको वंदन करना, पूजा करनी, नैवेद्य चढाना, यह उचित  
 प्रवृत्तिवाले पुरुषको थाशातना नहीं है, जैसे माटोकी प्रतिमाकी पूजा  
 धूनादि रहित उचित है, थरु सुवर्णादिककी प्रतिमाको स्नान विशेषका  
 दि उचित है, तथा कम्पाणक प्रमुखका महोरसव एकही विषका विशेष  
 करके कीया जाता है, परंतु जो महोत्सव दूसरी प्रतिमाथोंकी थाशातना  
 कारण नहीं जाता है, उनमें भी पुष्पका पूजा और नाचका थाशातना  
 नहीं, इस प्रकारकी उचित प्रवृत्ति करता ज्ञान थाशातना नहीं होता।

है, " कीरऽ बलि " ऐसा पाठ आवश्यक निर्युक्तिमें है, तथा निशीथचूर्णी मेंनी बलि चढानी लिखा है, तथा कल्पजाप्यमेंनी लिखा है, कि जो जिन प्रतिमाके आगें चढाने वास्ते नैवेद्य करा है, सो साधुको न कल्पे, तथा प्रतिष्ठाप्राप्तसे रची श्रीपादलित आचार्यकृत प्रतिष्ठापद्धतिमेंनी लिखा है, कि आरति उतारणी, मंगलदीवा करकें पीठें चार स्त्री मित्र कर नैवेद्य, गीतगान, विधिसें करे ॥ तथा च माहानिशीथे तृतीये अव्ययने ॥ अरिहंताणं जगवताण गथ मद्भ पञ्च समक्लणोवलेवण विचित्त बलि वञ्च धूर्वऽएहि पू आ सक्कारेहि पञ्चिणमच्चणपि कुवाणा तिबुपण करेमोत्ति ॥ इति अग्रपूजा ॥

जावपूजा जो है, सो इव्यपूजाका जो व्यापार है, तिसके निषेधने वास्ते तोसरी निस्तही तीन बार करे, श्रीजिनेश्वरजीके दक्षिणके पासे पुरुष अरु वामी दिशा स्त्री रह कर आशातना टालने वास्ते जघन्य मदि रमें नूमिके सजव हुए नव हाथ प्रमाण अरु घर देहरेमें जघन्य एक हाथ प्रमाण अरु उल्कष्टसें तो साठ हाथ प्रमाण अवग्रह है, तिससें बाहिर वैठकें चैत्यवदना, विशिष्ट काव्यों करकें करे, श्रीनिशीथमें तथा व सुदेवहिममें तथा अन्यशास्त्रोंमें आवकोंनेंनी कायोत्सर्ग युऽ आदि करी चैत्यवदना करी है, सो चैत्यवदानां तीन तरेंकी जाप्यमें कही है, सो कहते हैं एक तो जघन्य चैत्यवदना, सो अजलि बांध कर शिर नमा कर प्रणाम करणा, यथा 'नमो अरिहंताण' इति अथवा एक श्र्लोकादि पढकें नमस्कार करणा, अथवा एक शक्रस्तव पढे, तो जघन्य चैत्यवदना होवे दूसरी मध्यम चैत्यवदना, सो चैत्यस्तवदमक युगल 'अरिहत चेऽयाण' इत्यादि कायोत्सर्गके पीठें एक स्तुति कहनी, यह मध्यम चैत्यवदन है, अरु तीसरा उल्कष्ट चैत्यवदन सो पंचदम, जो १ शक्रस्तव, २ चैत्यस्तव, ३ नामस्तव, ४ श्रुतस्तव, ५ सिद्धस्तव, प्रणिधान, जयवीराराय, इत्यादि यह सर्व उल्कष्ट चैत्यवदना है तथा कोऽ आचार्यका ऐसा मत है कि — एक शक्रस्तव करी जघन्य चैत्यवदना हाती है, दो तीन शक्रस्तव करी मध्यम चैत्यवदना हाती है, तथा चार अथवा पांच शक्रस्तव करी उल्कष्ट चैत्यवदना हाती है, इसकी विधि चैत्यवदनजाप्यसे जान लेनी यह तो न प्रकारकी चैत्यवदना कही

अब यह चैत्यवदना नित्यप्रत्ये सात बार करणी, महानिशीथमें साधुकों

कहते हैं, ४ फूलकी वृष्टि करता जो मालाधर देवता है, तिसका रूप पंचतीर्थोंके ऊपर बनाते हैं, जिनप्रतिमाओं न्द्वय करता पहिजां मालाधरकों पाणी स्पर्शके पीछे जिनबिंब ऊपर पढ़ता है, सो दोष नहीं है, यह वृक्षोंकी आचरणा है, इसी तरें चौबीसी गठे आदिकमेंनी जान लेना, बंधोंमेंनी ऐसी रीति देखनेमें आती है ॥ बृहन्नाय्येप्युक्त ॥ नाय्यकारक कहना यहां लिखते हैं ? जिनराजकी कृति देखने वास्ते कोइ नक्तन एक प्रतिमा बनवाता है, प्रगटपणे अष्ट प्रातिहार्य देवागमसुशोजित ॥ दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी आराधना वास्ते कोइ तीन तीर्थी प्रतिमा बनवाता है ३ कोइ नक्त पंचपरमेष्ठिके आराधनार्थ उद्यापनमें पंचतीर्थी प्रतिमा नराता है ४ चौबीस तीर्थिकरोंके कव्याणक तप उजमने वास्ते नक्त क्षेत्रमें जो रूपजावि चौबीस तर्ककर हुए हैं, तिनके बहुमान वास्ते कोइ चौबीसी बनवाता है, कोइ नक्ति करके मनुष्य लोकमें उत्कृष्टे एक काल में एक सौ सित्तेर तीर्थिकर विद्वरमानकी एक सौ सित्तेर प्रतिमा बनवाता है, तिस वास्ते तीन तीर्थी, पाचतीर्थी, चौबीसी आदिकका बनाना युक्ति युक्त है, यह पूर्वोक्त सर्व अंगपूजा है

अथाग्रपूजा लिख्यते ॥ रूपेके, सुवर्णके, चावल धवला सरसब प्रमुख अक्षतों करके अष्टमंगल आलेखन करे, जैसे सैनिकराजा रोजकी रोज एक सौ आठ सोनेके यवां करी त्रिकाल जगवान्की प्रतिमा आगे साधना करता था, अथवा ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी आराधनाके वास्ते कमसे पट्टादिकमें चावजोंके तीन पूज करणे, तथा एक जातप्रमुख अक्षन, दूसरा सफर गुडादि पान, तीसरा पक्वान्न फजादि खादिम, चौथा तंबोलादि स्वादिम, इनका चढ़ाना, तथा गोशोर्ष चढ़नके रस करी पचायुनी तलेसें मन्त्री ल आलेखनादि पुष्पप्रकर आरती प्रमुख करणी, यह सर्व अंगपूजाकी निष्पत्ती है ॥ यन्नाय्य ॥ गाथा ॥ गंध नट वाइप, लरण जनारतिवाइ दोराई ॥ न किंच सवपिउ, थरई थग्य पुथाए ॥ १ ॥ नैव्यपूजा तो दिन दिन प्रये करणी सुत्तानी दे, थरु इसमें फज्जनी माटा है, काग बज्र तापील तथा रांपा दुया चढ़ाये, नोदित शास्त्रामेंनी निस्सा दे ॥ २ ॥ पूजापति पापानि, शोभामुसुगिनाशकः ॥ नैव्य विपुन रात्रि, निद्रिरात्री प्रकृति ॥ २ ॥ नैव्यपूजा चढ़ाना, आरति करणी प्रमुख अंगपूजाकी निष्पत्ती



तहां पूजा पंचोपचार सहित, अष्टोपचार सहित, अरु धनवान् होवे, त वा सर्वोपचारसैं पूजा करै, तहां फूल, अर्कृत, गंध, धूप अरु दीपसैं पूजा करै, सो पंचोपचार पूजा जाननी, तथा फूल, अर्कृत, गंध, दीप, धूप, नैवेद्य, फल अरु जल, यह अष्टोपचार पूजा है, सो अष्टविध कर्मकी मयने वाली है, तथा स्नात्र, विलेपन, वस्त्र, आनूपणादिक, फल, दीप, गीत, नाटक, आरति आदिक करै, सो सर्वोपचार पूजा है इति वृद्धज्ञाप्ये॥

तथा पूजाके तीन जेद हैं एक आपही कायासैं पूजाकी सामग्री ल्यावे, दूसरी वचनो करकें दूसरोसे मगवावे, तीसरी मन करके जला फूल फल प्रमुख करी पूजा करै, असैं काया, वचन अरु मन, यह तीनों योगों करकें करै, करावे अरु अनुमोदे, यह तीन तरसैं पूजा है

तथा एक फल, दूसरा नैवेद्य, तीसरी शुद्ध, अरु चौथी प्रतिपत्ति, सो वीतरागकी आज्ञापालन रूप, यह चार प्रकारैं पूजा, यथा शक्तिसैं करै जलितविस्तरादिक ग्रंथोंमें “पुष्यामिपस्तोत्र प्रतिपत्ति” अर्थात् फूल, नैवेद्य, स्तोत्र, अरु आज्ञा आराधनीय, ये उत्तरोत्तर प्रधान हैं ॥ इत्यागमोक्त पूजाजेदचतुष्टयं ॥

तथा पूजा दो प्रकारकी है, एक इव्यपूजा, दूसरी जावपूजा, जो फूलादिकसैं जिनराजकी पूजा करणी, सो इव्यपूजा है, दूसरी श्रीजिनेश्वरकी आज्ञा पालनी, सो जावपूजा है तथा पुष्पारोहण गंधारोहण इत्यादि सत्तरह जेदसे तथा स्नात्रविलेपनादि एकवीश जेदें पूजा है, परंतु अगपूजा, अग्रपूजा अरु जावपूजा, यह तीनों पूजा, सर्व पूजायोंके अतर्जाव हैं, तिनमें सत्तरह जेद, पूजाके लिखते हैं

एक १ स्नात्र करना, जिनप्रतिमाको विलेपन करना, २ चक्षुजोडा, वास सुगंध, ३ फूल चढाने, ४ फूलकी माला चढानी, ५ पंच रंगें फूल चढाने, ६ बरास जीमसेनी प्रमुखका चूर्ण चढाना, ७ आनरण चढाने, ८ फूलोंका घर करना, ९ फूलपगर सो फूलोंका ढेर करना, १० आरति, मगल दीवा, ११ दीपकपूजा, १२ धूपोपक्षेप, १३ नैवेद्य, १४ गुनफल ठोकन, १५ गीतपूजा, १६ नाटक करणा, १७ वार्जत्र यह सत्तरह जेदों करि पूजा है अथ पूजाके एकवीश जेद लिखते हैं

तहां प्रथम तो पूजा करणकी विधि लिखते हैं, १ पूजा करने वाला पु

कही है, तथा श्रावककोंजी उत्कृष्ट सात वार करणी कही है ॥ यन्नाप्यं ॥ एक प्रतिक्रमणमें, दूसरी मंदिरमें, तीसरी आहार करणसें पहिलां करणी, चौथी दिवसचरिम करतां, पाचमी देवसी पडिक्कमणमें, ठी सोती बखत, सातमी सूता खे, उस बखत यह सात वार चैत्यवदन साधुकों करणी कही है, तथा जो श्रावक आगों प्रहरमें प्रतिक्रमण करता होवे, वोतो निश्चयें सात वार चैत्यवदन करे, वो प्रतिक्रमणमें वो चैत्यवदन करे, तीसरी सोतां बखत, चौथी कततां बखत, तथा तीन काल पूजा कक्षां पीडें, तीन वार, एव सात वार श्रावक चैत्यवदन करे, तथा जो श्रावक एकही वार पडिक्कमणां करे, सो ठे वार चैत्यवदन करे, तथा जो पडिक्कमणां न करे, सो पांच वार चैत्यवदन करे, तथा जो सूतां कततांजी चैत्यवदन न करे, सो तीन वार करे, जे कर नगरमें बहुत जिनमंदिर होवे, तदा सातसे अधिक जी करे, तथा जे कर त्रिकाल पूजा न कर सके, तो त्रिकाल देववदना करे, क्योंकि महानिशीथमें लिखा है, कि -जिसको गुरु प्रथम जैनमतकी श्रद्धा करावे, उसको प्रथम ऐसा नियम देवे कि -सबरेकी बखत जिन प्रतिमाका दर्शन करे बिना पाणीजी नही पीतां, तथा मध्यान्ह कालमें जहां तक देव, (जिनप्रतिमा) थरु साधुओंको वदना न करे, तहां तक नोजन क्रिया न करे, तथा सध्याके समय चैत्यवदन करे बिना शय्या उपर पग न देवे, ऐसा नियम करावे

तथा गीत, नृत्य, जो थयपूजामें कहे है, सो जावपूजामेंजी बन सके है सा गीत, नृत्य, मुख्यवृत्ति करिकें तो श्रावक थाप करे, जैस निशीथपूणोंमें उदायनराजाकी राणी प्रजावतीका कथन है तथा पूजा करणके थयस्तरमें श्रीथर्दतकी तीन थवस्याकी कडपना करे, उसमें स्नान करती वखत उसस्य थवस्याकी कडपना करे, तथा थाठ प्रातिहार्यकी सोना करता केवजी थवस्याकी कडपना करे, तथा पयेंकासन हायास्तगासन व खरें सिद्धायस्याकी कडपना करे, इसमें उसस्य थवस्या तीन तरकी कडप, एक जन्नावस्या, दूसरी राग्यावस्या, तीसरी साधुपणकी थवस्या तदा स्नानकी वखत जम थवस्या कडपे, तथा माता, फा, आनरण, बंदिरा नरी वखत, राग्यावस्या कडप, तथा दाढी, मूत्र, गिरक बाजाक न बाजनें साधु थवस्या विगारे, इनन साधु, केवजी मोह थवस्याकी वदना करे

तहां पूजा पंचोपचार सहित, अष्टोपचार सहित, अरु धनवान् होवे, तदा सर्वोपचारसें पूजा करे, तहां फूल, अक्षत, गंध, धूप अरु दीपसें पूजा करे, सो पंचोपचार पूजा जाननी. तथा फूल, अक्षत, गंध, दीप, धूप, नैवेद्य, फल अरु जल, यह अष्टोपचार पूजा है, सो अष्टविध कर्मकी मथने वाली है, तथा स्नात्र, विलेपन, वस्त्र, आनूषणादिक, फल, दीप, गीत, नाटक, आरति आदिक करे, सो सर्वोपचार पूजा है इति बृहन्नाय्ये॥

तथा पूजाके तीन नेव हैं एक आपही कायासें पूजाकी सामग्री ल्यावे, दूसरी वचनो करके दूसरोसे मगवावे, तीसरी मन करके जला फूल फल प्रमुख करी पूजा करे, ऐसें काया, वचन अरु मन, यह तीनो योगों करके करे, करावे अरु अनुमोदे, यह तीन तरेंसें पूजा है

तथा एक फल, दूसरा नैवेद्य, तीसरी शुद्ध अरु चौथी प्रतिपत्ति, सो बीतरागकी आज्ञापालन रूप, यह चार प्रकारें पूजा, यथा शक्तिसें करे लजितविस्तरादिक ग्रथोमें “पुष्पाभिपस्तोत्र प्रतिपत्ति” अर्थात् फूल, नैवेद्य, स्तोत्र, अरु आज्ञा आराधनीय, ये उत्तरोत्तर प्रधान हैं ॥ इत्यागमोक्त पूजानेदचतुष्टयं ॥

तथा पूजा दो प्रकारकी है, एक इव्यपूजा, दूसरी जावपूजा, जो फूलादिकसें जिनराजकी पूजा करणी, सो इव्यपूजा है, दूसरी श्रीजिनेश्वरकी आज्ञा पालनी, सो जावपूजा है तथा पुष्पारोहण गंधारोहण इत्यादि सत्तरह नेवसें तथा स्नात्रविलेपनादि एकवीश नेवें पूजा है, परंतु अगपूजा, अग्रपूजा अरु जावपूजा, यह तीनों पूजा, सर्व पूजायोंके अतर्जाव हैं, तिनमें सत्तरह नेव, पूजाके लिखते हैं

एक १ स्नात्र करना, जिनप्रतिमाको विलेपन करना, २ चक्रजोडा, वास सुगंध, ३ फूल चढ़ाने, ४ फूलकी माला चढ़ानी, ५ पंच रंगें फूल चढ़ाने, ६ बरास नीमसेनी प्रमुखका चूर्ण चढ़ाना, ७ आचरण चढ़ाने, ८ फूलोंका घर करना, ९ फूलपगर सो फूलोंका ढेर करना, १० आरति, मंगल दीवा, ११ दीपकपूजा, १२ धूपोपक्षेप, १३ नैवेद्य, १४ अन्नफल ठोकन, १५ गीतपूजा, १६ नाटक करणी, १७ वार्जत्र यह सत्तरह नेवों करि पूजा है अथ पूजाके एकवीश नेव लिखते हैं

तहां प्रथम तो पूजा करणोकी विधि लिखते हैं, १ पूजा करने वाला पू

कही है, तथा श्रावककोंजी वस्त्रुष्ट सात वार करणी कही है ॥ यन्नाप्यं ॥ एक प्रतिक्रमणमें, दूसरी मंदिरमें, तीसरी आहार करणसे पहिला करणी, चौथी दिवसचरिम करता, पांचमी देवसी पडिक्रमणमें, ठछी सोती बखत, सातमी सूता ठठे, उस बखत यह सात वार चैत्यवदन साधुकों करणी कही है, तथा जो श्रावक आठों प्रहरमें प्रतिक्रमण करता होवे, वोतो निश्रयें सात वार चैत्यवदन करे, दो प्रतिक्रमणमें दो चैत्यवदन करे, तीसरी सोता बखत, चौथी कठतां बखत, तथा तीन काल पूजा कक्षां पीछे, तीन वार, एव सात वार श्रावक चैत्यवदन करे, तथा जो श्रावक एकही वार पडिक्रमण करे, सो ठे वार चैत्यवदन करे, तथा जो पडिक्रमण न करे, सो पांच वार चैत्यवदन करे, तथा जो सूतां कठतांजी चैत्यवदन न करे, सो तीन वार करे, जे कर नगरमें बहुत जिनमंदिर होवे, तदा सातसे अधिक जी करे, तथा जे कर त्रिकाल पूजा न कर सके, तो त्रिकाल देववदना करे, क्योंकि महानिशीथमें लिखा है, कि -जिसको गुरु प्रथम जैनमत्तकी श्रद्धा करावे, उसकों प्रथम ऐसा नियम देवे कि -सवेरेको बखत जिन प्रतिमाका दर्शन करे विना पाणीजी नही पीनां, तथा मध्यान्ह कालमें जहां तक देव, (जिनप्रतिमा) थरु साधुथोको वदना न करे, तहां तक नोजन क्रिया न करे, तथा सध्याके समय चैत्यवदन करे विना शय्या उपर पन न देवे, ऐसा नियम करावे

तथा गीत, नृत्य, जो थयपूजामें कहे है, सो जावपूजामेंजी बन तके हे सो गीत, नृत्य, मुख्यवृत्ति करिक तो श्रावक थाप करे, जैसे निशीथपूजांमें उदायनराजाकी राणी प्रजावतीका कथन है तथा पूजा करणके थयस्तरमें श्रीथर्हंतकी तीन थवस्याकी कल्पना करे, उसमें स्नान करती बखत उसस्य थवस्याकी कल्पना करे, तथा थाव प्रातिहार्यको स्नान करतां केरजी थवस्याकी कल्पना करे, तथा पर्यकासन हापारसगासन देखके मिद्रावस्याकी कल्पना करे, इसमें उसस्य थवस्या तीन तरका कल्प, एक जन्मावस्या, दूसरी राग्यावस्या, तीसरी साधुपणकी थवस्या तदा स्नानकी बखत जन्म थवस्या कल्पे, तथा माजा, क्ता, आनरण, पहिरा पहिनी पन्नत, राग्यावस्या कल्प, तथा दाटी, मुज, गिरक बागाई न बामेमें साधु थवस्या विचारे, इनन साधु, केवां मोक्ष थवस्याका वदना करे

निष्फल होवे । ३२ पद्मासन बैठकें, नासाग्र लोचन स्थापन करकें मौन धारी वस्त्रसें मुखकोश करके जिनराजकी पूजा करे

अथ इकोत्त प्रकारकी पूजाका नाम लिखने हैं १ स्नात्रपूजा, २ विलेपन पूजा, ३ आनरण पूजा, ४ फूजन, ५ वासपूजा, ६ धूप, ७ प्रदीप, ८ फल, ९ अक्षत, १० नागरवेलके पान, ११ सोपारी, १२ नैवेद्य, १३ जलपूजा, १४ वस्त्रपूजा, १५ चामर, १६ उत्र, १७ वाजित्र, १८ गीत, १९ नाटिक, २० स्तुति, २१ जम्भारवृद्धि यह एरुवीश प्रकारकी पूजा है, जो वस्तु बहुत अच्छी होवे, सो जिनराजकी पूजामें चढानी चाहिये ॥ इति ॥ यह पूजा प्रकार, श्री उमास्वातिवाचककृत पूजाप्रकरणमें प्रतिष्ठ है

तथा ईशानकूणमें देवधर बनाना, यह बात विवेकविलासमें है, तथा विषमासन बैठकें, पग उपर पग बरकें, उकडुआसन बैठकें, वामा पग उचा करकें तथा वामे हाथसें इतने करिकें पूजा न करे, सूके दूए फूलों से पूजा न करे, तथा जो फूल धरतोंमें गिरा होवे, तथा जिसकी पांखड़ो सड़ गई होवे, नीच लोकोंका जिसको स्पर्श हुआ होवे, जो शुच न होवे, जो विकसे दूए न होवे, जो कीड़ेने खाये दूए, सड़े दूए, रातको वासी रहे, मकड़ीके जाले वाले, जो देखनेमें अच्छे न लगे, दुर्गंधवाले, सुगंधरहित, खट्टी गंधवाले, मलमूत्रकी जगामें उत्पन्न दूये होवे, अपवित्र करे दूए, ऐसे फूलोंसें जिनेश्वर देवकी पूजा न करणी तथा विस्तार सहित पूजाके अवसरमें, तथा नित्य, अरु विशेष करकें पर्वदिनमें, सात तथा पांच कुसुमांजलि चढावे, पीछें जगवान्की पूजा करे, तहां यह विधि करे, सो कहते हैं

प्रजात समय पहिला निर्मात्य उतारे, पीछें प्रक्षाल करे, संक्षेपसें पूजा करे, आरति मंगल दीवा करे, पीछें स्नात्रादि विस्तार सहित दूसरी बार पूजाका प्रारंभ करे, तब देवके आगे केसर जल सयुक्त कलश स्थापन करे, पीछें “सुकालकार विकार सार सौम्यत्वकातिकमनीय ॥ सहजनिजरूपनिर्झित, जगद्यर्थ पातु जिनविब ॥ १ ॥” यह आर्या कह कर अलंकार उतारे, पीछें “अवणयि कुसुमादरण, पयइ पश्चिम मनोहर घाय ॥ जिणरूप मङ्गलपीठ, सतिप वो सिव विसउ ॥ १ ॥” यह कह कर निर्मात्य उतारे, पीछें प्रायुक्त कलश ढालन पूजा करे, कलश धो कर, धूप दे कर,

वैदिशकी तर्फ मुख करके स्नान करे, २ पश्चिम दिशकों मुख करके स्नान  
 करे, ३ उत्तरदिशके सन्मुख श्वेद वस्त्र पहिरे, ४ पूर्वोत्तर मुख करके पूजा करे,  
 ५ घरमें प्रवेश करतां वामे पासें शल्य रहित जूमिमें देहरातर करावे, ६ मेढ  
 हाय-जूमिकासैं कचा देहगसर करावे, जेकर देहरातर नीची जूमिकामें क  
 रावे, तब तिसका सतान दिन दिन नीचा होता जावेगा, ७ दक्षिणदिशि  
 तथा विदिशिके सन्मुख मुख न करे, ८ घर देहरेमें पश्चिम सन्मुख मुख  
 करके, पूजा करे, तो चौथी पेढीमें सतानोद्धेद होवे, ९ दक्षिण दिशिकी  
 तर्फ मुख करी करे, तो सतान हीन होवे, १० अग्निकूणे करे, तो धन हानी  
 होवे ११ वायुकूणे करे, तो सतान न होवे १२ नैऋत्यकूणे कुजकूण  
 होवे, १३ ईशानकूणे करे, तो एक जगे रहणां न होवे, १४ दोनो पग,  
 दोनो जानु, दोनो हाय, दोनो स्कंध, मस्तक, ये नव अंगमें क्रमसे पूजा  
 करे, १५ चदन विना पूजा नही होती है, १६ मस्तकमें, कठमें, हृदयमें,  
 पेटमें, तिलक करे १७ नव अंगमें, नव तिलक करके निरंतर पूजा करे,  
 १८ सवेरे पहिला वास पूजा करे, १९ मध्याह्नमें फुजोंसे पूजे, २० स  
 ध्याको धूप, दीप, करक पूजा करे, २१ जो फूज, हायसे धरतीमें गिर  
 पड़े, तथा पगोंहों लग जावे, तथा जो मस्तकसे कचा चला जावे, तथा  
 जो मैले वस्त्रसे रक्का होवे, तथा जो नानीसे नीचे रक्का होवे, तथा जो  
 झट जनोने स्पर्शा होवे, जो बहुत ठेकाणोंमें दूत होवे, जो जीवोने स्पर्  
 या होवे, थैसा फूज, फल, नक्त जनोन जिनपूजामें नही रखनां, २२ एक  
 फूजके दो ठुठडे न करे, २३ कलीहो ठेवे नही, चपक, उत्पल, फूजके नां  
 गनेमें बड़ा दोष है, २४ गर, धूप, अक्षत, फूजमाला, दीपक, नैऋत्य,  
 पाणी, प्रधानफन, इनो करके निरराजकी पूजा करे, २५ शान्तिरुकार्यमें  
 श्वेत वस्त्र पहिरके पूजा करे, २६ इत्यज्ञानके वास्ते पीत वस्त्र पहिरके  
 पूजा करे, २७ शत्रु नीतने वास्ते काले वस्त्र पहिरके पूजा करे, २८ मा  
 गनिरुकार्य वास्ते लाल वस्त्र पहिरके पूजा करे, २९ मुक्तिके वास्ते पांशु व  
 र्णक वस्त्र पहिरके पूजा करे, ३० शान्ति कार्यके वास्ते पद्मामृतका दाम,  
 सोया, पी, गुड, गवणना अग्निम प्रक्षेप, शान्ति पुष्टिक वास्ते जाननां, ३१  
 काया दृष्टा नाश दृष्टा, जिह्वा नाश, साया दृष्टा, तिसका नाश, त्रिपाश, ३२  
 श्वेत वस्त्र पहिरके स्नान, पूजा, तप, दाम अथ सामाधिक प्रमुख कर ता

निष्फल होवे ॥ ३२ ॥ पद्मासन बैठकें, नासाग्र लोचन स्थापन करकें मौन धारी वस्त्रसें मुखकोश करके जिनराजकी पूजा करे

अथ इकोस प्रकारकी पूजाका नाम लिखने है १ स्नात्रपूजा, २ विलेपन पूजा, ३ आचरण पूजा, ४ फूजन, ५ वासपूजा, ६ धूप, ७ प्रदीप, ८ फल, ९ अक्षत, १० नागरवेलके पान, ११ सोपारी, १२ नैवेद्य, १३ जलपूजा, १४ वस्त्रपूजा, १५ चामर, १६ उत्र, १७ वाजित्र, १८ गीत, १९ नाटिक, २० स्तुति, २१ जम्भारवृद्धि यह एम्बीश प्रकारकी पूजा है, जो वस्तु बहुत अच्छी होवे, सो जिनराजकी पूजामें चढानी चाहिये ॥ इति ॥ यह पूजा प्रकार, श्री उमास्वातिवाचकरुत पूजाप्रकरणमें प्रतिष्ठ है

तथा ईशानकूणमें देवधर बनानां, यह बात विवेकविलासमें है, तथा विपद्मासन बैठकें, पग उपर पग धरकें, उकडुआसन बैठकें, वामा पग उचा करकें तथा वामे हाथसें इतने करिकें पूजा न करे, सूके दूए फूलों से पूजा न करे, तथा जो फूज धरतीमें गिरा होवे, तथा जिसकी पांखड़ो सड़ गइ होवे, नीच लोकोंका जिसको स्पर्श हुआ होवे, जो शुन न होवे, जो विकसे दूए न होवे, जो कीड़ेने खाये दूए, सड़े दूए, रातको वासी रहे, मकड़ीके जाले वाले, जो देखनेमें अस्व न लगे, डुर्गंधवाले, सुगंधरहित, खट्टी गंधवाले, मलमूत्रकी जगामें उत्पन्न दूये होवे, अपवित्र करे दूए, ऐसे फूलोंसे जिनेश्वर देवकी पूजा न करणी तथा विस्तार सहित पूजाके अवसरमें, तथा नित्य, अरु विशेष करकें पर्वदिनमें, सात तथा पांच कुसुमांजलि चढावे, पीठें जगवान्की पूजा करे, तहां यह विधि करे, सो कहते है

प्रजात समय पहिलां निर्माद्य उतारे, पीठें प्रक्षाल करे, संक्षेपसें पूजा करे, आरति मगज दीवा करे, पीठें स्नात्रादि विस्तार सहित दूसरी बार पूजाका प्रारंभ करे, तब देवके आगे केसर जल सयुक्त कलश स्थापन करे, पीठें “सुकालकार विका,र सार सौम्यत्वकातिकमनीय ॥ सद्जनज रूपनिर्जित, जगन्नाथ पातु जिनविब ॥ १ ॥” यह आर्या कह कर अलंकार उतारे, पीठें “अवणयि कुसुमादरण, पयइ पइष्ठिय मनोहर धाय ॥ जिणरूप मङ्गलपीठं, सविष्य वो सिव दिसत ॥ १ ॥” यह कह कर निर्माद्य उतारे, पीठें प्रायुक्त कलश, ढालन पूजा करे, कलश धो कर, धूप दे कर,

स्नात्र योग्य सुगंध जल प्रक्षेप करे, पीठें कलश, श्रेणीविध स्थापन करे  
 सो सुंदर वस्त्रसें ढक देने, पीठें साधारण केसर, चंदन, धूप करके हाथ  
 पवित्र करे, मस्तकमें तिलक, हाथमें चंदनका कंकण करे, हाथ धूपन क  
 रकें श्रेणीविध स्नात्री श्रावक कुसुमांजलिका पाठ पढ़े, तिस कुसुमांजलिकी  
 गाथा लिखते हैं “ सयवत्त कुव मालइ, वडुविह कुसुमाइ पचवसाइ ॥  
 जिणनाह न्हवण काले, विंति सुरा कुसुमांजलि हिंता ॥ १ ॥ यह कह कर  
 देवके मस्तक उपर पुष्पारोपण करे ॥ गाथा ॥ गधायड्डिय मडुयर, मणह  
 र जकार सइ सगीया ॥ जिणचलणोवरि मुक्का, हरउ तुम्ह कुसुमांजलि डुरि  
 यं ॥ १ ॥ इत्यादि पाठ करकें जिन चरणों उपरि एक श्रावक कुसुमांजलि  
 चढ़ावे, सर्व कुसुमांजलिके पाठोंमें तिलक करणां, फूल, पत्र, धूपादि सर्व, ए  
 कत्र करी चढ़ावे, पीठें उदार मधुर स्वर करकें जिस जिनेश्वरका नाम स्था  
 पना करा होवे, तिसही जिनेश्वरका जन्मानिपेक कलशका पाठ कहनां,  
 पीठें घी, श्कुरस, दूध, वहाँ, सुगंधजल, ये पचामृत करी स्नात्र करावे,  
 स्नात्रके बीचमें धूप देवे, स्नात्रकालमेंनी जिनराजका शरीर फूलों करकें  
 शून्य न करणा, यदाहुर्वादिवेतालश्रीशान्तिसूरयथाचार्या ॥ जहां तक स्ना  
 त्र समाप्ति न होवे, तहां तक जगवान्का मस्तक शून्य न रखना, निरंतर  
 पाणीकी धारा थरु उत्तम फूलोंकी दृष्टि जगवान्के मस्तक उपर गेरे, त  
 था स्नात्र करती वखत चामर, सगीत, तूर्याद्यामवर सर्व, शक्तिसे करे

सर्व श्रावक, जब स्नात्र कर चुके, पीठें निर्मल जलकी धारा देनी, तिस  
 का पाठ यह है ॥ श्लाक ॥ अनिपेकतोपधारा, धारेव ध्यानममताम  
 स्य ॥ जयजयनजित्तिजागान्, जूयोपि जिन्नतु जागवती ॥ १ ॥ पीठें अग  
 लूदे, विज्ञेपनादि पूजा पढ़नी पूजास्य अधिक करणी, सर्व प्रकारका धान्य,  
 पक्कात्र, शाक, विरुतिफलादि, करके नैवेद्य ढोवे, ज्ञानादि तीना सद्धित ती  
 न जारुके लामी जगवान्के थागे तीन पुन नक्त जन श्रावक करक पीठें  
 स्नात्रपूजा करे, पढ़िनां वडा श्रावक तीन पुन करे, पीठें गोंडा श्रावक  
 करे, पीठें श्राविका करे, कपाकि जिनजन्ममहासतमनी पढ़िना अष्टपुत्रे  
 अष्टपुत्रे देवता मपुक स्नात्र करता ॥ पीठें पयाक्रमस इतर ३६ स्नात्र कर  
 ते ३ स्नात्र तन अष्टपुत्रे मस्तकम जे कर श्रावक प्रहृष्ट कर, तो वाच न  
 हो ॥ यद्वा ॥ आहमनश्चार्य श्रीशिवरिते ॥ अनिपेकतं



रोगा ॥ ववदिरें मुहुर्मुहु, सर्वांगं परिचिक्षिपु ॥ १ ॥ तथा श्रीपद्मचरित्रे  
 एकुण तीसमें वहेसेमें राजा वहरथने अपणी राणीयोको स्नात्रजल नेज्या  
 है, तथा वृहद्दशांतिस्तोत्रमें “ शांतिपानीय मस्तके दातव्यमित्युक्त ” तथा  
 सुणते हैं कि जरासधने जब जरा विद्या गेही, तब तिस करकें पीडित नि  
 ज सेनाको देखके श्रीनेमिनाथके कहनेसें श्रीकृष्णने धरणेंडको आराध्या,  
 धरणेंडने पातालमें रही श्रीपार्श्वप्रतिमा शखेश्वरपुरमें व्या करकें तिसके  
 स्नात्रका जल, ठिकेके सेना सचेत करी, तथा श्रीजिनदेशनाके पीठें राजा  
 प्रमुख जो चावलोंकी बली उठालते है, तिसमेंसें आधे चावल धरतीमें  
 अणपडे देवता ले लेते हैं, तिसका अर्ध, उछालने वाला लेता है, अरु  
 बाकीका चावल सर्व लोक लूट लेते हैं, उसमेंसें एक दाणानी जे कर म  
 स्तकमें रस्के, तो सर्व रोग उपशांत हो जावे हैं, अरु ठ महीने आगेको रोग  
 न होवे, यह कथन आवश्यक शास्त्रमें है पीठे सजुरुकी प्रतिष्ठी दुइ बहुत  
 सुंदर हीरागल प्रमुख वस्त्रकी मोटी श्वजा, वडे उत्सव पूर्वक तीनादि प्रदक्षि  
 णा करकें विधिसें देवे, सर्व सघ यथाशक्ति परिधापनका नैवेद्यप्रमुख चढावे  
 अथ आरति, मंगलदीवा श्रीछरिहंतजीके सन्मुख करनां, सो लिखते  
 हैं मंगलदीवेके पास अग्निका पात्र स्थापन करना, तिसमें लवण जल गे  
 रनां होवेगा, “उवणेव मंगल वो, जिणायमुद्द जालि जाल सचलिया ॥ ति  
 ष पवत्तण समए, तियसवि व मुक्का कुसुम बुछी ॥ १ ॥” यह पठ कर प्रथम  
 कुसुमवृष्टि करे ॥ गाथा ॥ उअह पडिजग्गापसर, पयाहिण सुणिवई करे  
 वण ॥ पडइस लोणत्तण, लळिअ च लोण दु अवहमि ॥ इत्यादि पाठसें  
 विधिपूर्वक जिनराजके तीन बार फूल सहित लवणजल उत्तारणादि कर  
 णां, तिस पीठें अनुक्रमें पूजा करके आराधिका धूपोपक्षेप सहित दोनों  
 पासें अत्यंत कलशके पाणीकी धारा देते हुए आवक फूलोंकों बिखेरे, “म  
 रगय मणि घडिय विसा, ल थालमाणिक मणिअ पईवा ॥ नवणयर करु खित्त, न  
 मउ जिणारत्तिअ तुम्ह ॥ १ ॥ इत्यादि पाठ पूर्वक प्रधान जाजनमें रखकें उत्स  
 व सहित तीन बार उतारे, यह कहनां, त्रेशठ शिलाका चरित्रादिकमें है,  
 मंगलदीपकनी आरतिको तरें पूजे, तब यह पाठ पठे ॥ गाथा ॥ नामिळ्ळ  
 तो सुरा, सुरिहिं तुदनाह मंगलपईवो ॥ कणयायलस्स नजई, जाणुव पया  
 दिण दिंतो ॥ १ ॥ इति ॥ यह पाठ पूर्वक मंगलदीवा उतारकें, दीप्यमान जिन

चरणोंके आगे रख देना, आरति बूजा देनेमें दोष नहीं, आरति अरु मंगल दीवा मुख्यवृत्तिसँ घृत, गुड, कर्पूरादिकसे करे, विशेष फल होनेसे यहाँ मुकालंकार इत्यादि जो गाथा है, सो श्रीहरिजङ्घ्रिकी करी दूह मा लुम होती है, क्योंकि श्रीहरिजङ्घ्रिकृत समरादित्यचरित्र नामक ग्रन्थकी आदिमें “ववणेव मगलेवो ॥ इति नमस्कारस्य दर्शनात्” अरु यह माया तपगन्धमें प्रसिद्ध है इस वास्ते सर्व गाथा इहा नही लिखी

स्नात्रादिकमें समाचारि विशेषसँ विविध प्रकारकी विधि देखनेसे व्या मोह न करणां, क्योंकि सर्व आचार्योंको अर्द्धनक्तिरूप फलकी सिद्धि वा स्तेही प्रवृत्त होनेसे गणधरादि समाचारीयोमेंनी बहुत नेद होता है, तिस वास्ते जो जो धर्मसे विरुद्ध न होवे, अरु अर्द्धत नक्तिका पोषक होवे, वो कार्य किसीकोनी असम्मत नहीं, ऐसेही सर्वधर्म कार्यमें जाण लेना यहां लवण, आरति प्रमुखका उतारणां, सप्रदायसे सर्व गन्धोंमें अरु परब शीनोमेंनी करते दुबे दीखते हैं, तथा श्रीजिनप्रजसूरिकृत पूजाविधिसास्त्रमें तो ऐसे लिखा है ॥ गाथा ॥ लवणाई उतारण, पालित्तय सूरिमाइ पुबपुरिते हि ॥ सहारेण अणुन्नर्याप, सपयं सिछी एकारिङ्गई ॥ १ ॥ अस्यार्थ - लवणादि उतारणां श्रीपादलिप्तसूरि प्रमुख पूर्व पुरुषोने एक बार करने की आज्ञा दीनी है, हम इसकालमें उनके अनुसारे कराते है. स्नात्रके करणेमें सर्व प्रकार विस्तार सहित पूजा प्रनावनादिकके करणेसे परजो कम बल्लहट मोह प्रप्तिरूप फल होता है, जैसे चौसठ इशने जिनजम्म स्नात्र करा है, तिसहीके अनुसारे मनुष्य करते है, इस वास्ते इस जाक में पुण्य निर्झरा अरु परनाकमें मोह फल होता है, यह कथन राजप्र ओप उपांगम निखा है ॥ इति स्नात्राविधि समाप्त ॥

अथ प्रतिमानी अथक प्रफारकी है, तिनकी गुजाकी विधि सन्ध्यास प्रहरणमें असे कही है ॥ गाथा ॥ गुरु कारियाइ कइ, अनेसय कारियाइ न पिति ॥ निद्रिकारियाइ अन्नपडिमाण पुथणगियाण ॥ १ ॥ व्याख्या - गुरु कहिये माता, पिता, दादा, बड़दादा प्रमुख तिहो रगाइ दूइ प्रति ना पुत्रो चादिय काइ अम कहते है, तथा काइ कहते है कि अथनी रगाइ प्रतिदो दूइ पुत्रो चादिय, काइ कहते हैं कि रिमि कगाइ प्रतिदो प्रतिमा पुत्रो चादिय, जामे पयाये पद ता कह है, [ - मन्त्र ]

त सर्वप्रतिमाकों विशेष रहित पूजना चाहियें, क्योंकि सर्व जगे तीर्थकर का आकार देखनेसे तीर्थकर बुद्धि उत्पन्न होती है, जे कर ऐसे न मानीयें, तब जिनविंवकी अवज्ञासे इतंत ससारमें भ्रमण रूप उत्तकों निश्चयही दम होवेगा

तथा ऐसेजानी कुविकल्प न करणां कि - जो अविधिसें जिनमंदिर जिनप्रतिमा बनी है, उसके पूजनेसे अविधि मार्गकी अनुमोदनासे जगवत की आज्ञाजग रूप दूषण लगता है, तथाही श्रीकल्पजाष्ये ॥ गाथा ॥ निस्त कड मनिस्तकडे, चेइए सबहि शुइतिनि ॥ वेलं च चेईश्राणिय, नाउ इकि किया बावि ॥ १ ॥ व्याख्या - एक निश्चाकृत उसकों कहते हैं, कि - जो गड्डके प्रतिबधसे बनी है, जैसाकि यह हमारे गड्डका मंदिर है, दूसरा अ निश्चाकृत, सो जिस उपर किसी गड्डका प्रतिबध नहीं है, इन सर्व जिनमंदिरोंमें तीन शुइ पढनी, जे कर सर्वमंदिरोंमें तीनतीन शुइ देता बहुत काल लगता जाणे, तथा जिनमंदिर बहुत होवें, तदा एक एक जिनमंदिरोंमें एक एक शुइ पढे, इस वास्ते सर्व जैनमंदिरोंमें विशेष रहित न कि करे

तथा जिनमंदिरमें मकडीका जाला लग जावे, तिसके उतारनेकी विधि, जिनके सपूर्व जिनमंदिर होवे, तिनकों साधु निर्घ्रबना करे, कि - जिनमंदिरकी नोकरी खाते हो, तो सार सजाल क्यों नहीं करते हो ? मकडीका जालाजी तुम नहीं उतारते हो ? तथा जिनकी कोइ सार सजाल न करे, तिनको असविग्र देवकुलिका कहते है, तिन मंदिरोंमें जो मकडीका जाला होवे, तिसके दूर करणे वास्ते सेवकोंको प्रेरणा करे, कि तुम जिनमंदिरों मखफलफकी तरें चमक दमक वाला रसको, जेकर वे सेवक लोभ न माने, तब निर्घ्रबना करे, पीछें साधु जगणासें थाप दूर करे, क्योंकि जिनमंदिर ज्ञानजंमारादिककी सर्वथा साधुजी अपेक्षा न करे, यह पूर्वोक्त चैत्यगमन पूजा स्नात्रादि विधि जो कही है, सो सब धनवान् आवश्यककी अपेक्षा कही है, अरु जो आवश्यक धनवान् न होवे, वो अपणे घरमें सामायिक करके किसीके साथ छेणे देणेका णगडा न होवे, तद्व्यपयोग सयुक्त साधुकी तरें ईयां शोधता हूया नैपेधिकी तीन करी जाव पूजानुयायि विधिसें जावे, पूजादि सामग्रीके अभावसें इव्यपूजा करणे असमर्थ है, इस वास्ते सामायिक पारके कायासें जो कुछ फलगुथनादिक कृत होवे सो करे

प्रश्न - सामायिक त्यागके इव्यपूजा करणी उचित नहीं?

उत्तर - सामायिक तो तिसके स्वाधीन है, चाहे जिस वखत कर लेवे, परंतु पूजाका योग उसको मिलना दुर्लभ है, क्योंकि पूजाका ममाण तो सद्य समुदायके आधीन है, कवेइ होता है, इस वास्ते पूजामें विशेष गुण है ॥ यदागम ॥ “जीवाण बोहि जानो, सम्मदिहीण होइ पिअकरण ॥ आणाजिणिदज्जति, तिहस्स पजावणा चेव ॥ १ ॥ इस वास्ते अनेक गुण हैं, तातें चैत्यकार्य करे, यह कथन दिनरुत्य सूत्रमें है, दश त्रिक, पांच अजिगम, इत्यादिविधि प्रधानही सर्वदेवपूजा वदनकादि धर्मानुष्ठानका महाफल होता है, अन्यथा अल्प फल है, तथा अविधिसे करता उपज्वनी हो जाता है ॥ उक्त च ॥ धर्मानुष्ठानवैतथ्या, त्प्रत्यवायो महान् जवेत् ॥ रौइ दुखौघजननो, दुष्प्रयुक्तादिचौपधात् ॥ १ ॥ चैत्यवदनादि अविधिसे कर तां आगममें प्रायश्चित्त कहा है, महानिशीयके सातमे अध्ययनमें अविधिसे चैत्यवदना करे, तो प्रायश्चित्त कहा है, देवता, विद्या मंत्रजी विधिसेही सिद्ध होते हैं

जो कोइ कहे कि विधि न होवे, तब न करणां श्रेष्ठ है? यह कहना अयुक्त है ॥ यदुक्त ॥ अविद्विषया वरमकर्म, असूया वयण नणति समम ॥ पायश्चित्त थकए, गुरुथ वितहं कए लहुप ॥ १ ॥ अस्यार्थ - अविधि करणेसे न करणां श्रेष्ठ है, जैसे जो कहते हैं, सो असूया वयन है, यह कहने वाजा जैन सिद्धांतको जानता नहीं, क्योंकि जैनशास्त्रके ज्ञाता तो ऐसे कहते हैं, कि - जो न करे, उसको गुरु प्रायश्चित्त याता है, थरु जो अविधिमें करे, उसको लघु प्रायश्चित्त याता है, इस वास्ते धर्म जरूर करना चाहिये थरु विधिमार्गकी अन्येयणा करणी, यही तत्त्व है, यही श्रद्धावतका लक्षण है, सर्व कृत्य करके अविधि आशतना निमित्त सिध्दादुष्कृत दातव्य ॥

अथ अमादि तीनों पूजाके फल. शास्त्रमें ऐसे त्रिने १. १ - निम्र पशुगत करणेवाजी अथ पूजा १. तथा माटा अमृदय गुण्यही तापत्र पानी अमपूजा २. तथा माह्छा जाता नागपूजा ३. पूजा करी गता सत्तार प्रधान नाग नागरु पाउ सिद्धपद पाता २. अथादि पूजा करणेन

मन शांत होता है, अरु मन शांतसें उत्तम शुभ ध्यान होता है, अरु शुभ ध्यानसें मोक्ष होता है, मोक्ष हुए अबाध सुख है

तथा श्रीजिनराजकी जक्ति पांच प्रकारें है ॥ श्लोक ॥ पुष्पाद्यर्चा तदाज्ञा च, तद्रव्यपरिरक्षण ॥ उत्सवास्तीर्थयात्रा च, जक्ति पञ्चविधा जिने ॥ १ ॥  
इव्यपूजा आनोग अरु अनाजोगसें दो प्रकारें है, तिसमें श्रीवीतराग देवके गुण जानकें वीतरागकी जावना करकें आदर सयुक्त जिनप्रतिमाकी जो पूजा, सो प्रथम आनोगइव्यपूजा है, इस्से चारित्रका जान होता है, कर्मका नाश होता है, इस वास्ते बुद्धिमान् ऐसी पूजा अवश्य करे तथा जो पूजाकी विधि जानता नहीं तथा श्रीजिनराजके गुणजी नहीं जानता सो दूसरी अनाजोग पूजा है यह शुभपरिणाम पुण्यका कारण है, अरु बोधिजाजका हेतु है, पापक्षय करणेका कारण है, उस पुरुषका जन्म धन्य है, आगमे कालमें उसका कल्याण है, क्योंकि यद्यपि वो वीतरागके गुण नहीं जानता, तोनी जक्ति प्रीतिका उद्भास उसके अदर उबलता है, अरु जिस पुरुषको अरिहतबिबमें डेप है, वो पुरुष नारीकर्मों तथा नवा जिनदी है, जैसे रोगीको अपथ्यमें रुचि अरु पथ्यमें डेष होवे, तदा मरणका समय होता है, ऐसेही जिनबिबमें जिसको डेष है, तिसकाजी दीर्घ ससार जानना

इहां सर्व जो जावपूजा है, सो श्रीजिनाज्ञाका पालना है, सो जिनाज्ञा दो प्रकारकी है, एक अगीकार करणां, एक त्यागनां, तदा सुकृतका अगीकार करणां, अरु निषेधका त्याग करणां, परंतु स्वीकार पक्षसें परिहार पक्ष बहुत श्रेष्ठ है, क्योंकि जो निषिद्ध आचरण करता है, उसका सुकृतजी बहुत गुणवायक नहीं होता है, जेकर दोनों बातां होवे, तदा पूर्ण फल है, इव्यपूजाका फल अच्युत देवलोक है, अरु जाव पूजाका फल अतर्मुहूर्त्तमें मोक्ष है

इव्यपूजामें यद्यपि षट्कायकी किंचित् विराधना होती है, तोनी कूवेके दृष्टांत करके गृहस्थको करणे योग्य है, क्योंकि करनेवाले अरु देखनेवालोंको गिणती रहित पुण्यबधनेका कारण होनेसें करने योग्य है, जैसे नवे गाममें स्नान पानादिके वास्ते लोक कूवा खोदते हैं, तिनको प्यास, श्रम, अरु कीचडसें मलिनादि होते हैं, परंतु कूवेके जल निकलनेसें तिनकी तथा

प्रश्न - सामायिक त्यागके इव्यपूजा करणी उचित नहीं?

उत्तर - सामायिक तो तिसके स्वाधीन है, चाहे जिस वखत कर खेवे, परंतु पूजाका योग उसको मिलना दुर्लभ है, क्योंकि पूजाका मनाए तो सध समुदायके आधीन है, कवेइ होता है, इस वास्ते पूजामें विशेष पुण्य है ॥ यदागम ॥ “जीवाण बोदि जानो, सम्महिणीण होइ पिअकरण ॥ आणाजिणिदज्जति, तिष्ठस्स पजावणा चेव ॥ १ ॥ इस वास्ते अनेक गुण हैं, तातें चैत्यकार्य करे, यह कथन दिनकृत्य सूत्रमें है, दश त्रिक, पांच अणिगम, इत्यादिविधि प्रधानही सर्वदेवपूजा वदनकादि धर्मानुष्ठानका महाफल होता है, अन्यथा अल्प फल है, तथा अविधिसे करता उपड्वनी हो जाता है ॥ उक्त च ॥ धर्मानुष्ठानवैतथ्या, त्प्रत्यवायो महान् जवेत् ॥ रौइडु खौघजननो, दुष्प्रयुक्तादिचौपधात् ॥ १ ॥ चैत्यवदनादि अविधिसे करता आगममें प्रायश्चित्त कहा है, महानिशीयके सातमे अध्ययनमें अविधिसे चैत्यवदना करे, तो प्रायश्चित्त कहा है, देवता, विद्या मंत्रजी विधिसेही सिद्ध होते हैं

जो कोइ कहे कि विधि न होवे, तब न करणां श्रेष्ठ है? यह कहना अयुक्त है ॥ यदुक्त ॥ अविहिफया वरमकपं, असूया वयण नणति समस नू ॥ पायघित्त अकए, गुरुअ वितह कए लहुय ॥ १ ॥ अस्यार्थ - अविधि करणेसे न करणां अग्रा है, ऐसे जो कहते हैं, सो असूया वचन है, यह कहने याज्ञा जैन सिद्धांतको जानता नहीं, क्योंकि जैनशास्त्रके शांता तो ऐसे कहते हैं, कि - जो न करे, उसको गुरु प्रायश्चित्त आता है, अरु जो अविधिसे करे, उसको लघु प्रायश्चित्त आता है, इस वास्ते धर्म जरूर करना चाहिये. अरु विधिमांगकी अन्येषणा करणी, यही तत्त्व है, यही श्रद्धावतका लक्षण है, सर्व कृत्य करके अविधि आशातना निमित्त मिथ्यादुष्कृत दातव्य ॥

अग अमादि तीनों पूजाके फल, शास्त्रमें ऐसे लिखे हैं, कि - निमिष पश्चांत करणेवाली अग पूजा है, तथा माटा अत्यदृश्य गुणकी लापने वाली अग्रपूजा है, तथा नाशही जाता नाशपूजा है, पूजा करने वाला सत्तार प्रधान नाम नागक पाउं सिद्धइ पावा है, क्योंकि पूजा करनेसे

मन शांत होता है, अरु मन शांतसें उत्तम शुचि ध्यान होता है, अरु शुचि ध्यानसें मोक्ष होता है, मोक्ष दूए अबाध सुख है.

तथा श्रीजिनराजकी जक्ति पांच प्रकारें है ॥ श्लोक ॥ पुष्पाद्यर्चा तदाज्ञा च, तद्रूपपरिरक्षण ॥ उत्सवास्तीर्थयात्रा च, जक्ति पञ्चविधा जिने ॥ १ ॥ इव्यपूजा आनोग अरु अनानोगसें दो प्रकारें है, तिसमें श्रीवीतराग देवके गुण जानकें वीतरागकी जावना करकें आदर सयुक्त जिनप्रतिमाकी जो पूजा, सो प्रथम आनोगइव्यपूजा है, इस्सें चारित्रका जान होता है, कर्मका नाश होता है, इस वास्ते बुद्धिमान् ऐसी पूजा अवश्य करे तथा जो पूजाकी विधि जानता नही तथा श्रीजिनराजके गुणजी नही जानता सो दूसरी अनानोग पूजा है यह शुचिपरिणाम पुण्यका कारण है, अरु बोधिजानका हेतु है, पापद्वय करणका कारण है, उस पुरुषका जन्म धन्य है, आगमे कालमें उसका कल्याण है, क्योंकि यद्यपि वो वीतरागके गुण नहीं जानता, तोनी जक्ति प्रीतिका उद्भास वसकें अदर उबलता है, अरु जिस पुरुषको अरिद्वतविबमें द्वेष है, वो पुरुष जारीकर्मी तथा नवा जिनदी है, जैसें रोगीको अपथ्यमें रुचि अरु पथ्यमें द्वेष होवे, तदा मरणका समय होता है, ऐसेंही जिनविबमें जिसको द्वेष है, तिसकानी दीर्घ ससार जाननां

इहां सर्व जो नावपूजा है, सो श्रीजिनाज्ञाका पालनां है, सो जिनाज्ञा दो प्रकारकी है, एक अगीकार करणां, एक त्यागनां, तहां सुरुतका अगीकार करणां, अरु निषेधका त्याग करनां, परंतु स्वीकार पक्षसें परिहार पक्ष बहुत श्रेष्ठ है, क्योंकि जो निषिद्ध आचरण करता है, उसका सुरुतजी बहुत गुणदायक नहीं होता है, जेकर दोनों बातों होवे, तदा पूर्ण फल है, इव्यपूजाका फल अच्युत देवलोक है, अरु नाव पूजाका फल अतर्मुहूर्त्तमें मोक्ष है

इव्यपूजामें यद्यपि षट्कायकी किंचित् विराधना होती है, तोनी कूवेके दृष्टांत करके गृहस्थको करण योग्य है, क्योंकि करनेवाले अरु देखनेवालोंको गिणती रहित पुण्यवधनेका कारण होनेसें करने योग्य है, जैसें नवे गाममें स्नान पानादिके वास्ते लोक कूवा खोदते हैं, तिनको प्यास, भ्रम, अरु कीचडसें मलिनादि दोते हैं, परंतु कूवेके जल निकलनेसें तिनकी तथा

औरोंकी तृप्ति, पूराणा मैल, सर्व अगला पिठजा दूर हो जाता है, यह सर्वांगीण सुख हो जाता है, ऐसेही इव्य पूजामें जान लेना, यह कथन आवश्यक निर्युक्तिमें है, तथा और जगोजी लिखा है ॥ गाथा ॥ आरंभ पत चाण, गिहोणव जीव वद अविरयाणं ॥ नवअहवि निवडियाण, वडवड वेव आलवो ॥ १ ॥ श्लोक ॥ वृत्त शार्दूलविक्रीडितं ॥ स्थेयोवायुबलेन निर्वृत्ति कर निर्वाणनिर्घातिना, स्वायत्तं बहुनायकेन सुबहुस्वप्नेन सार परं ॥ नि.ता रेण घनेन पुण्यममलकृत्वा जिनाच्यर्चन, योग्यह्माति वणिक् स एव निपुणो वाणिज्यकर्मण्यलम् ॥ १ ॥ यास्याम्यायतन जिनस्य जनते, ध्यायेन्मनुष्य फल, पष्ठ चोचितव्यतोऽष्टममथो गतु प्रवृत्तोऽध्वनि ॥ अ.दालुर्वसम् ॥ द्विजिनगृहात्प्राप्तस्ततो वावश, मध्ये पाक्षिकमीकृते जिनपतौ, मासोपवास फलम् ॥ २ ॥ पञ्चचरित्रमें तो ऐसे लिखा है, कि १ जब जिनमदिरमें आनेका मन करे, तब एक उपवासका फल होता है, २ यदि उठे, तो ३ लाका फल होता है, ३ चल पढ़नेका वयमीकों तेलेका फल होता है, ४ चल पड़े, इनकू चौलेका फल, ५ किंचित् गयेकू पंचौलेका फल, ६ अर्द्ध मार्गमें गये एक पद्धके उपवासका फल होता है, ७ जिनराजके देलेसे एह मासके तपका फल होता है, ८ जिनसुवनमें सप्राप्त हुए ठमासी तपका फल होता है, ९ जिनमदिरके दरवाजे पर स्थित हुआ एक वर्षके तपका फल होता है, १० जिनराजको प्रदक्षिणा दीयां तो वर्षके तपका फल होता है, ११ पूजा करे हजार वर्षके तपका फल होता है, १२ स्तुति करे, अथतगुणा फल होता है, १३ जिनमदिर पूजे, तो गुणा पुण्य होता है, १४ लीये, तो हजार गुणा पुण्य होता है, १५ फूनमाला बढाये, लाख गुणा पुण्य होता है, १६ गीत वाजित्र पूजा करे, अथतगुणा पुण्य होता है.

पूजा दिनप्रत्ये तीन सध्यामें करणी चादियें ॥ यत ॥ जिनस्य पूजनं दत्ति, प्रातः पाप निशानत्र ॥ याजन्मविदितं मध्ये, सततजन्मरुतं निजि ॥ १ ॥ चनादारावपस्वाप, विद्यारतगैरुपिक्रिया ॥ सत्कृता हरस्वका जेन्नु, एव पूजा जिनेश्वरे ॥ २ ॥ गाथा ॥ निण पूयाण तिमर, कुणमाणा साद्वण्य सम्मन ॥ निउपरमान मोल, पारई मेषीय गरिइइ ॥ १ ॥ ता पुणइ निजम, जिनइयाय सपा निणय शंस ॥ सा तइय तरे भिजई, यइरा समइ ॥



म्मे ॥ १ ॥ सवायरेण नयव, पूर्वकृतोवि देवनाहेहि ॥ नो होइ पूइउ खलु,  
जम्हाण त गुणो नयव ॥ २ ॥ यह गाथा सुगम हैं

तथा देव पूजादिकमें हृदयमें बद्धमान अष्टी विधिसें नक्ति करे, तथा  
जिनमतमें चार प्रकारका अनुष्ठान कहा है, एक प्रीतिसहित, दूसरा न  
कि सहित, तीसरा वचन प्रधान, अरु चौथा असग अनुष्ठान, तिनमें जि  
सके प्रीतिका रस बढे, अरु कृष्ण नइक स्वभाव वाला होवे, जैसे बाल  
कोंकों रतनमें देखके प्रीति होती है, ऐसी जिसको प्रीति होवे, सो प्रीति  
अनुष्ठान है, तथा बद्धमान सयुक्त शुद्ध विवेकवाला होवे, अरु बाकी  
शेष पहिले अनुष्ठानकी तरे करें, सो नक्ति अनुष्ठान है, यद्यपि स्त्रीका  
अरु माताका पालणां, पोषणां, सरीखा है, तोजी स्त्री उपर प्रीति राग  
हैं, अरु माता उपर नक्तिराग है, यह प्रीति अरु नक्तिका स्वरूप कहा,  
तथा जो जिनगुणका जानकार, सूत्रोक्तविधि करके जिनप्रतिमाको वदना  
करे, सो वचनानुष्ठान है, यह अनुष्ठान चारित्रवतको निश्चय करके होता है,  
तथा जो अन्यासके रससे सूत्रालोचना विनाही फलमें निश्चय हो कर क  
रे, सो असगानुष्ठान है जैसे कुनार चक्रको पहिला तो दमसे फिराता  
है, पीछेसे दम दूर करे, तोजी चाक फिरता है, यह दृष्टांत, वचनानुष्ठान  
अरु असगानुष्ठानमें है

इन चारोंमें प्रथम तो जावनाके लेशसे प्राय बालक प्रसुखोंको होता  
है, आगे अधिक अधिक जान लेना यह चारों प्रकारका अनुष्ठान बद्धमा  
न विधिसयुक्त करे, तो रूपइयाजी खरा अरु खरे सन समान, प्रथम जेद  
है दूसरा जो पुरुष, नक्तिराग बद्धमान सयुक्त होवे, अरु विधि जानता  
न होवे, तिसका कृत्य एकांत छुट नहीं, अशत पुरुषका अनुष्ठान अतिचा  
र सहितजी छुटिका कारण है, क्योंकि जो रतन अदरसे निर्मल है, उस  
का बाह्यमल सुखे दूर हो सकता है, यह रूपइया खरा, अरु सिक्का खोटा  
समान, दूसरा जेद है, तथा जो पुरुष, कपट जूठादि दोष सयुक्त है, अरु  
अपणी महिमा पूजाके वास्ते तथा लोकोंके उगने वास्ते विधिपूर्वक सर्वा  
नुष्ठान करता है, उसको बड़ा अनर्थ फल होता है, यह रूपइया खोटा,  
अरु सन खरा समान, तीसरा जेद जानना तथा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जी  
वका जो कृत्य है, सो तो रूपइयाजी खोटा, अरु सनजी खोटा समान, चौ

थानेद है इस वास्ते जो देवपूजादिक करणको बहुमान अरु विधिपूर्वक करे, उसको सपूर्ण फल होता है

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जिस जगेंसे मंदिर मिर कर विगड गया होवे, उसका समराना, प्रतिमा प्रतिमाके परिवारको निर्मल करणा, विशिष्ट पूजा दीपोत्सव फूल प्रमुखकी शोभा करणां, तथा आगें लिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अहृत नैवेद्यादि चिंता, चदन, केशर, धूप, दीप, तेलका सग्रह करे, विनाश न होवे, ऐसी रीतिसे चैत्यइव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि आवकके सामने देवइव्यकी उधराणी करे, देवइव्यको बहुत यत्नसे अही जगे स्थापन करे, देवइव्यके लान अरु खरचका नाम प्रगट पणे लिखे, आप तथा औरोंसे देवइव्य देवे, देवावे, देव इव्य किसी पासों लेहणा होवे, तहां देवके नौकरको जे कर जिसी रीतिसे देवइव्य जाय नहों, तैसे करे, उधराणी वास्ते नौकर रके, इसी तरे इव्यकी चिंता सार सनाज करे

देहरा प्रमुखकी चिंता अनेक तरेकी है, तिनमें धनाढ्यको धनसे, तथा स्वजनके बलसे, चिंता सुकर है अरु धन रहितको अपणे शरीर तथा स्वजनके बलसे साध्य है, जिसका जहां जैसा बल होवे, वो विशेष तैसा यत्न करे, जो चिंता थोड़े कालमें हो सके तिसको दूसरी निस्तहीसे पहिलां करे, श्रंगको यथायोग्य पीठें करे, ऐसेही धर्मशाला, गुरुज्ञानादि फकीनी यथाचित सर्व शक्तिसे चिंता करे, क्योंकि देव गुरु आदिको सार सनाज आवक बिना और कोइ करने वाजा नहों, इस वास्ते आवकको देवादि नकि सार सनाजमें शिथिल नहाना चाहिये, देव गुरु प्रमुखकी नकि, सेवा, सार सनाज, जेरु आरु न करे, तो उसको सम्पत्त्य कनकित हो जाती है अरु जो आवक देव गुरुका नक है, उसमें कदाचित् कोइ आशातनानीदा जावे, तो नो अत्यंत दुःखदायी नही, इस वास्ते चर्यादि रुपमें निरप प्रवृत्त जावे ॥ अयोग्याम च ॥ देवे इव्य कुटुंबे च, सर्वे सत्कारिणां रति ॥ निने निनमते सय, पुनर्मां ज्ञानिनां विना ॥ देव गुरु प्रमुखकी आशातना नां है, सा अयन्यादि नद करके तीन प्रकारें है, तदा प्रथम ज्ञानकी आशातना इदत है, पुनर, १३६, १३७, १३८, १३९, १४०, १४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६, १५७, १५८, १५९, १६०, १६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६८, १६९, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७, १७८, १७९, १८०, १८१, १८२, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १८९, १९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९८, १९९, २००, २०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३६, २३७, २३८, २३९, २४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २४९, २५०, २५१, २५२, २५३, २५४, २५५, २५६, २५७, २५८, २५९, २६०, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २६६, २६७, २६८, २६९, २७०, २७१, २७२, २७३, २७४, २७५, २७६, २७७, २७८, २७९, २८०, २८१, २८२, २८३, २८४, २८५, २८६, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, २९३, २९४, २९५, २९६, २९७, २९८, २९९, ३००, ३०१, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३०६, ३०७, ३०८, ३०९, ३१०, ३११, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ३१९, ३२०, ३२१, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२६, ३२७, ३२८, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४, ३३५, ३३६, ३३७, ३३८, ३३९, ३४०, ३४१, ३४२, ३४३, ३४४, ३४५, ३४६, ३४७, ३४८, ३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५३, ३५४, ३५५, ३५६, ३५७, ३५८, ३५९, ३६०, ३६१, ३६२, ३६३, ३६४, ३६५, ३६६, ३६७, ३६८, ३६९, ३७०, ३७१, ३७२, ३७३, ३७४, ३७५, ३७६, ३७७, ३७८, ३७९, ३८०, ३८१, ३८२, ३८३, ३८४, ३८५, ३८६, ३८७, ३८८, ३८९, ३९०, ३९१, ३९२, ३९३, ३९४, ३९५, ३९६, ३९७, ३९८, ३९९, ४००, ४०१, ४०२, ४०३, ४०४, ४०५, ४०६, ४०७, ४०८, ४०९, ४१०, ४११, ४१२, ४१३, ४१४, ४१५, ४१६, ४१७, ४१८, ४१९, ४२०, ४२१, ४२२, ४२३, ४२४, ४२५, ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३१, ४३२, ४३३, ४३४, ४३५, ४३६, ४३७, ४३८, ४३९, ४४०, ४४१, ४४२, ४४३, ४४४, ४४५, ४४६, ४४७, ४४८, ४४९, ४५०, ४५१, ४५२, ४५३, ४५४, ४५५, ४५६, ४५७, ४५८, ४५९, ४६०, ४६१, ४६२, ४६३, ४६४, ४६५, ४६६, ४६७, ४६८, ४६९, ४७०, ४७१, ४७२, ४७३, ४७४, ४७५, ४७६, ४७७, ४७८, ४७९, ४८०, ४८१, ४८२, ४८३, ४८४, ४८५, ४८६, ४८७, ४८८, ४८९, ४९०, ४९१, ४९२, ४९३, ४९४, ४९५, ४९६, ४९७, ४९८, ४९९, ५००, ५०१, ५०२, ५०३, ५०४, ५०५, ५०६, ५०७, ५०८, ५०९, ५१०, ५११, ५१२, ५१३, ५१४, ५१५, ५१६, ५१७, ५१८, ५१९, ५२०, ५२१, ५२२, ५२३, ५२४, ५२५, ५२६, ५२७, ५२८, ५२९, ५३०, ५३१, ५३२, ५३३, ५३४, ५३५, ५३६, ५३७, ५३८, ५३९, ५४०, ५४१, ५४२, ५४३, ५४४, ५४५, ५४६, ५४७, ५४८, ५४९, ५५०, ५५१, ५५२, ५५३, ५५४, ५५५, ५५६, ५५७, ५५८, ५५९, ५६०, ५६१, ५६२, ५६३, ५६४, ५६५, ५६६, ५६७, ५६८, ५६९, ५७०, ५७१, ५७२, ५७३, ५७४, ५७५, ५७६, ५७७, ५७८, ५७९, ५८०, ५८१, ५८२, ५८३, ५८४, ५८५, ५८६, ५८७, ५८८, ५८९, ५९०, ५९१, ५९२, ५९३, ५९४, ५९५, ५९६, ५९७, ५९८, ५९९, ६००, ६०१, ६०२, ६०३, ६०४, ६०५, ६०६, ६०७, ६०८, ६०९, ६१०, ६११, ६१२, ६१३, ६१४, ६१५, ६१६, ६१७, ६१८, ६१९, ६२०, ६२१, ६२२, ६२३, ६२४, ६२५, ६२६, ६२७, ६२८, ६२९, ६३०, ६३१, ६३२, ६३३, ६३४, ६३५, ६३६, ६३७, ६३८, ६३९, ६४०, ६४१, ६४२, ६४३, ६४४, ६४५, ६४६, ६४७, ६४८, ६४९, ६५०, ६५१, ६५२, ६५३, ६५४, ६५५, ६५६, ६५७, ६५८, ६५९, ६६०, ६६१, ६६२, ६६३, ६६४, ६६५, ६६६, ६६७, ६६८, ६६९, ६७०, ६७१, ६७२, ६७३, ६७४, ६७५, ६७६, ६७७, ६७८, ६७९, ६८०, ६८१, ६८२, ६८३, ६८४, ६८५, ६८६, ६८७, ६८८, ६८९, ६९०, ६९१, ६९२, ६९३, ६९४, ६९५, ६९६, ६९७, ६९८, ६९९, ७००, ७०१, ७०२, ७०३, ७०४, ७०५, ७०६, ७०७, ७०८, ७०९, ७१०, ७११, ७१२, ७१३, ७१४, ७१५, ७१६, ७१७, ७१८, ७१९, ७२०, ७२१, ७२२, ७२३, ७२४, ७२५, ७२६, ७२७, ७२८, ७२९, ७३०, ७३१, ७३२, ७३३, ७३४, ७३५, ७३६, ७३७, ७३८, ७३९, ७४०, ७४१, ७४२, ७४३, ७४४, ७४५, ७४६, ७४७, ७४८, ७४९, ७५०, ७५१, ७५२, ७५३, ७५४, ७५५, ७५६, ७५७, ७५८, ७५९, ७६०, ७६१, ७६२, ७६३, ७६४, ७६५, ७६६, ७६७, ७६८, ७६९, ७७०, ७७१, ७७२, ७७३, ७७४, ७७५, ७७६, ७७७, ७७८, ७७९, ७८०, ७८१, ७८२, ७८३, ७८४, ७८५, ७८६, ७८७, ७८८, ७८९, ७९०, ७९१, ७९२, ७९३, ७९४, ७९५, ७९६, ७९७, ७९८, ७९९, ८००, ८०१, ८०२, ८०३, ८०४, ८०५, ८०६, ८०७, ८०८, ८०९, ८१०, ८११, ८१२, ८१३, ८१४, ८१५, ८१६, ८१७, ८१८, ८१९, ८२०, ८२१, ८२२, ८२३, ८२४, ८२५, ८२६, ८२७, ८२८, ८२९, ८३०, ८३१, ८३२, ८३३, ८३४, ८३५, ८३६, ८३७, ८३८, ८३९, ८४०, ८४१, ८४२, ८४३, ८४४, ८४५, ८४६, ८४७, ८४८, ८४९, ८५०, ८५१, ८५२, ८५३, ८५४, ८५५, ८५६, ८५७, ८५८, ८५९, ८६०, ८६१, ८६२, ८६३, ८६४, ८६५, ८६६, ८६७, ८६८, ८६९, ८७०, ८७१, ८७२, ८७३, ८७४, ८७५, ८७६, ८७७, ८७८, ८७९, ८८०, ८८१, ८८२, ८८३, ८८४, ८८५, ८८६, ८८७, ८८८, ८८९, ८९०, ८९१, ८९२, ८९३, ८९४, ८९५, ८९६, ८९७, ८९८, ८९९, ९००, ९०१, ९०२, ९०३, ९०४, ९०५, ९०६, ९०७, ९०८, ९०९, ९१०, ९११, ९१२, ९१३, ९१४, ९१५, ९१६, ९१७, ९१८, ९१९, ९२०, ९२१, ९२२, ९२३, ९२४, ९२५, ९२६, ९२७, ९२८, ९२९, ९३०, ९३१, ९३२, ९३३, ९३४, ९३५, ९३६, ९३७, ९३८, ९३९, ९४०, ९४१, ९४२, ९४३, ९४४, ९४५, ९४६, ९४७, ९४८, ९४९, ९५०, ९५१, ९५२, ९५३, ९५४, ९५५, ९५६, ९५७, ९५८, ९५९, ९६०, ९६१, ९६२, ९६३, ९६४, ९६५, ९६६, ९६७, ९६८, ९६९, ९७०, ९७१, ९७२, ९७३, ९७४, ९७५, ९७६, ९७७, ९७८, ९७९, ९८०, ९८१, ९८२, ९८३, ९८४, ९८५, ९८६, ९८७, ९८८, ९८९, ९९०, ९९१, ९९२, ९९३, ९९४, ९९५, ९९६, ९९७, ९९८, ९९९, १०००

उच्चारें, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवाली प्रमुख पास हुए, अथो वात नि सर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है तथा अकालमें पठनादि, उपधान बिना सूत्र पठना, त्राति करकें अर्थ अन्यथा कल्पना करणा, पुस्तकादिककों प्रमादसें पगादिकका स्पर्श करणां, जूमिमें गेरनां, ज्ञानोपकरण के पास हुए आहार मूत्रादि करना, सो मध्यम आशातना है तथा थूक करकें अक्षर मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणकें उपर बैठना दि करे, ज्ञानोपकरण पासें हुए उच्चारादिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी निदा प्रत्यनीक पणा उपधात करे, उत्सूत्र जापणादि करे, सो उत्कृष्ट आशातना है

अब देवकी आशातना कहते हैं तदा जघन्य देवाशातना सो वास, वरास, केसर प्रमुखके मन्वेकों वजावे, श्वास तथा वस्त्रके ढेहड़े करकें देवका स्पर्श करणां, सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वस्त्र, धोती प्रमुख करे बिना पूजा करे, पूजाके वस्त्र जूमिमें गेरें, इत्यादि मध्यम आशा तना है, तथा प्रतिमाकों पगसें सघटना, श्लेष्म अरु थूकका लगाना, प्रतिमा कों नग करणां, जिनेश्वर देवकी हेलनादि करणां, सो उत्कृष्ट आशातना है, अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चाजीश आशातना तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना है, सो क्रम करकें कहते हैं

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी, सो लिखते हैं जिनमद्विर्ममें १ पान सोपारी खावे, २ पाणी पीवे, ३ नोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५ स्त्रीसें नोग करे, ६ सोवे, ७ थूके, ८ सूत्रे, ९ उच्चार करे, १० जूया खेले. जघन्यसें यह दश जिनमद्विर्ममें वर्जें, तो आशातना न होवे

दूसरी मध्यम चाजीश आशातना वर्जें, तिसका नाम कहते हैं १ मूत ना, २ दिशा जाना, ३ जूता पहरना, ४ पानी पीना, ५ खाना, ६ सोना, ७ मैथुन, सेवनां ८ तंबोल खाना, ९ थूकना, १० जूआखेलना, ११ जूया देखे, १२ विकथा करे, १३ पालती करी बैठे, १४ पग जूजूआ पसारे, १५ जगडा करे, १६ हांसी करे, १७ किसी उपर ईर्ष्या करे, १८ उच्चे आसने बैठे १९ केश शरीरकी विजृपा करे, २० शिर पर उत्र लगाना, २१ खड्ग रके, २२ मुकुट धरना, २३ चामर कराने, २४ स्त्रीसें कामविलास सहित हांसी करणी, २५ धरणां लगाना, २६ क्रीडा (खेल) करणा, २७

सुखकोश विना पूजा करणी, २८ मैले शरीरसें मैले वस्त्रोंसें पूजा करणी,  
 २९ पूजा करतां मन चपल करणी, ३० शरीरके जोगके सचित्त इच्छकों  
 विना उतारे मंदिरमें जाना, ३१ अचित्तइच्छ आनूषणादि उतारकें जावे,  
 ३२ एकसाड़ीका उत्तरासंग न करे, ३३ जगवान्कों देखके हाथ न जोड़े,  
 ३४ शक्तिके दूये पूजा न करे, ३५ अनिष्ट फूलोंसें पूजा करे, ३६ पूजा  
 प्रमुख आदर रहित करे, ३७ जिनप्रतिमाके निदककों हटावे नहीं, ३८  
 मंदिरके इच्छकी सार सजाल न करे, ३९ शक्तिके दूयेनी अस्वारी उपर चढ़  
 के मंदिरमें जावे, ४० देहरेमें बडासें पहिजा चैत्यवदन करे, जिनेंइनवनमें  
 तथा जहा प्रतिमा होवे, तिहा यह चालीश मध्यमसें आशातना टाळे

अब उत्कृष्ट चौरासी आशातनाका नाम कहते हैं १ जिनमंदिरमें  
 खेल खखार गेरे, २ जूए आदिककी क्रीडा करे, ३ कलह करे, ४ धनुष्यादि  
 कला शिखे, ५ कुरजा करे, ६ तंबोल खावे, ७ तंबोलका उगाल गेरे,  
 ८ गात्री देवे, ९ दिसा मात्रा करे, १० हस्तादि अंग धोवे, ११ केश समारे,  
 १२ नख समारे, १३ रुधिर गेरे, १४ सुखड़ी प्रमुख देहरेमें खावे, १५ गुंम  
 डे आदिककी त्वचा गेरे, १६ औषधि खाके पित्त गेरे, १७ वमन करे, १८  
 दांत गेरे, १९ हाथ, पग, मसलावे, २० घोडादि बांधे, २१ दांतका मैल  
 गेरे, २२ आखका मैल गेरे, २३ नखका मैल गेरे, २४ गालका मैल गेरे,  
 २५ नाकका मैल गेरे, २६ माथाका मैल गेरे, २७ शरीरका मैल गेरे,  
 २८ कानका मैल गेरे, २९ नूतादिके स्त्रीजने वास्ते मंत्र साधे, अथवा  
 राजा प्रमुखका काम द्वावे, तिसका विचार करे, ३० मंदिरमें विवाहादिक  
 की पचायत करे, ३१ व्यापारका लेखा करे, ३२ राजका काम बांटक  
 देवे, अथवा नाइ प्रमुखको धनका हिस्सा बांटके देवे, ३३ घरका जगार  
 मंदिरमें रखे, ३४ पगापरि पग ररकक डटासन करके धेठे, ३५ मंदिरकी  
 नीतम गणना लगावे, गोबरका ढेर लगावे, ३६ राख सुकावे, ३७ दान  
 दत्ते, ३८ पाण्डुरंगी सुकावे, ३९ बडा रनावे, उगाहणम कपरे, नीनडा,  
 गारु प्रमुख सुकाने राख गेरे, ४० राजा, नाइ, नहुषो वातेते नयम नाउक  
 नूतनगारन उरु गार, ४१ पुत्ररुनत्रादिके मरणोपम मंदिरमें राखे, ४२  
 खिलवा नखदया, राखदया, इतरुया, यह चार विहवा क।, ४३ बाल  
 मंदिरमें राखे, तथा धनुष्यादि शस्त्र यह, ४४ नाथ बेतादि मंदिरमें

रखे, ४५ शीत दूर करणोंको अग्नि तापे, ४६ धान्यादि रांधे, ४७ रूपश्ये परखे, ४८ विविधे नैपेधिकी न करे, ४९ ठत्र, ५० पगरखी, ५१ शस्त्र, ५२ चामर, यह चार, मंदिरके बाहिर न गोडे, ५३ मन एकाग्र न करे, ५४ तैलादिकका मर्दन करे, ५५ शरीरके जोगके सचित फूलादिकका त्याग न करे, ५६ द्वार, मुड़ा, कुंमलादि, तिनको बाहिर गोड आवे, तो आशातना लगे, क्योंकि लोकोंमें ऐसा कहनां हो जावे, कि अर्हतके जक सर्व कगाल निष्काचर हैं, ऐसी तरें जिनमतकी लघुता होती है, ५७ जग वानकों देखकें हाथ न जोडे, ५८ एक साडीका उत्तरासग न करे, ५९ मुकुट मस्तकमें राखे, ६० मौलि शिरका लपेटनां रखे, ६१ फूलका सेह रा रखे, ६२ नालियर आदिकका ढोत गेरे, ६३ गेंदसैं खेले, ६४ पिता प्रमुखको जुहार करे, ६५ जांम चेष्टा करे, ६६ तिरस्कारके वास्ते रेका रा तुकारा देवे, ६७ छेदणे वास्ते धरणां देवे, ६८ सग्राम करे, ६९ मस्तकके केश सुकावे, ७० पालवी मारी बैठे, ७१ काष्ठ पाडुकादि पगमें रखे, ७२ पग पतारे, ७३ सुखके वास्ते पुड पुडी देवावे, ७४ देहरमें शरीरका अवयव धोके कीचड कूडा करे, ७५ पगादिकके लयी दूइ धूल जाडे, ७६ मैथुन, (कामक्रीडा) करे, ७७ जूआं गेरे, ७८ जोजन जीमे, ७९ गुह्य चिन्ह ढकके न बैठे, ८० वैदकका काम करे, ८१ क्रय विक्रय रूप वाणिज्य करे, ८२ शय्या बनाके सोवे, ८३ पानी पीनेके वास्ते जल का मटका रखे, तथा मंदिरके पतनालेका पाणी छेवे, ८४ स्नान करने की जगा बनावे, यह उल्लेख चौरासी आशातना जिनमंदिरमें वर्जे

अब गुरुकी तेजीस आशातना वर्जे, सो लिखते हैं १ गुरुके आगे चले, तो आशातना है जेकर रस्ता बतावनेके वास्ते चले, तो आशातना नहीं होती है, २ गुरुके बराबर चले, ३ गुरुके पीछे अडके चले, यह जैसे चलनेकी तीन आशातना कही हैं, ऐसेंही बैठनेकीनी तीन आशातना जान लेनी, तथा खड़ा होनेकीनी तीन आशातना जान लेनी, यह सर्व नव आशातना दूइ १० जोजन करतां गुरुसे पहिलां शिष्य चलु करे, ११ गमनागमन गुरुसे पहिलां आलोचे, १२ रात्रिमें कौन जागता है, ऐसें गुरुके कहेको सुन कर जागता हुआनी शिष्य उत्तर न देवे, तो आशातना लगे, १३ जब किसीको कुछ कहनां होवे, सो गुरुसें

पहिलाही शिष्य कह देवे, १४ दूसरे साधुवोंके आगे पहिला असनादि आलोवे पीछे गुरु आगे आलोवे, १५ ऐसेही असनादिक पहिला दूसरे साधुवोंको दिखाके पीछे गुरुको दिखावे, १६ अन्नादिककी पहिला औरोंको निमंत्रणा करके पीछे गुरुको निमंत्रणा करे, १७ गुरुके बिना पूठे स्वेच्छासे औरोंको स्निग्ध मधुरादि आहार दे देवे, १८ गुरुको क्वचित् अन्नादि दे कर पीछे यथेच्छासे स्निग्धादि आहार आप खावे, १९ गुरु बोलावे, तब बोले नहीं, २० गुरुको बहुत कर्कश (कठोर) वचन बोले, २१ जब गुरु बोलावे, तब आसन उपर बैठाही उत्तर देवे, २२ गुरु बोलावे तब कहे, क्या कहते हो ? २३ गुरुको तूकारा देवे, २४ गुरुने प्रेरणा करी तब गुरुकी प्रेरणाको उत्तर करके हूँ, जैसे गुरु कहे कि - हे शिष्य ! तुमने ग्लानकी वैयावृत्य क्यों नहीं करी ? तब शिष्य कहे कि तुम क्यों नहीं करते ? २५ गुरुकथा कहते हुए मनमें प्रसन्न न होवे, किंतु निमग्न होवे, २६ सूत्रादि कहते गुरुको कहे तुमको अर्थ याद नहीं है ? यह अर्थ जैसे नहीं होवे है ? २७ गुरु कथा कहता है, तिस कथाको बीचमें ठेद करे, थरु कहे, मैं कथा करुगा ? ऐसे कहे, २८ पर्पदाको जामे जैसे कहेकी अत्र तो निद्राका अवसर है, इत्यादि कहे, २९ पर्पदाके बिना वरषा गुरुकी कही कथाको थपणी चतुराई दिखलाने वास्ते बिज्ञाप करके कहे, ३० गुरुकी शय्या सथारकादिकों पगोंसे सघटा करे, ३१ गुरुकी शय्यादि उपर बैठनादि करे, ३२ गुरुसे उचे आसन उपर बैठे, ३३ गुरुके बराबर आसन करे, यह तेजीस गुरुकी आशातना है

ये गुरुकी आशातनानी तीन प्रकारकी है, एक पगादिसे सघटा करे, सो जपन्य आशातना, दूसरी श्लेष्म धूरादि गुरुके लयमात्र लगावे, ता मध्यम आशातना है, तीसरी गुरुका आदेश न करे, जेकर कर, तानी वनश करे, कठोर वचन जाके, गुरुका स्था न सुणे, इत्यादि उदरुष्ट आशातना है

स्वापनागार्थकी आशातनानी तीन प्रकारकी है, एक ता स्पर्श तथा ह जाके पगोंसा स्पर्श करे, ता जपन्य आशातना, दूसरी गुमिम गेर, खवशाज पर, ता मध्यम आशातना, तीसरी स्वापनागार्थका स्पर्श, तथा ता ह ता उदरुष्ट आशातना है येमेंही ज्ञानावहरण, दर्शनावहरण, तथा चार्त्तव्य करण तथा दूरगादि, गुप्ताधिष्ठा, दमक, दमिका अभ्युपगोत्री आशातना शक

आवककों सर्वधर्मोपकरण चरवला मुखवस्त्रिकादि विधि पूर्वक स्वस्था नमें स्थापना प्रमुख करणी चाहियें, अन्यथा धर्मकी अवज्ञादि प्रमुख दूषणोंकी आपत्ति होवे, शास्त्रमें लिखा है कि जो उत्सृज नांखे, तथा अर्हंतकी अरु गुरुकी अवज्ञादि महा आशातना करे, तो सावयाचार्य, मरीचि, जमाली, कुजवालिकादिककी तरें अनंत जन्म मरणकी वृद्धि होवे ॥ यत ॥ उस्सुत्त नासगाण, वोहीनासो अणत ससारो ॥ पाणञ्चएवि धीरा, उस्सुत्त ता न नासति ॥ १ ॥ तिष्ठयर पवयण सुयं, आयरियं गणहर म हिदुरियं ॥ आसायंतो बहुसो, अणत ससारिउ होइ ॥ २ ॥ अस्यार्थ सुगम ॥

ऐसेही देव, ज्ञान, साधारण इव्यका तथा गुरुका इव्य, वस्त्र, पात्रादिकका विनाश तिनकी उपेक्षादिक जो करनी है, सोनी महा आशातना है, यदूचे ॥ गाथा ॥ चेइअ दव विणासे, इ सिधाए पवयणस्त उडाहे ॥ सजई चवञ्चनगे, मूलगी वोहिलाजस्त ॥ १ ॥ तथा आवकदिनकृत्य दर्शनछु दि आदि शास्त्रोंमेंनी लिखा है ॥ गाथा ॥ चेइअ दवं साहा, रण च जो उहइ मोहिअमईउ ॥ धम्म च सो न याणाइ, अहवा बडाउ उ नरए ॥ १ ॥ अर्थ — चैत्यइव्य तथा साधारण इव्य जो नाश करे, मोहितमति जातों वो धर्म नहीं जानता है, अथवा उसने नरकका आयु बांधा है, उसके वास्तेही ऐसा अयोम्य काम करता है, तथा चैत्यइव्यका नाश, नक्ष्त्रण, उपेक्षण कोइ करे, तिसकों जेकर साधु न हटावे, तो वो साधुजी अनंत ससारी हो जावे

- प्रश्न — मन, वचन अरु काया करकें जिसने सावय त्यागा है, ऐसे यतिकों चैत्यइव्यकी रक्षामें क्या अधिकार है ?

उत्तर — जे कर राजा तथा वजीरकों याचना करकें तिनोके पाससें घर, हाट, गामादि लेकर विधिसे नवा पेदास उत्पन्न करे, तब तेरा विवक्षित दूषण होवेगा, परंतु यथा नइकादि करकें जो किसीने पहिला दीया होवे, उसका नाश देखकें रक्षा करे, तब कोइ दूषण नहीं होता हैं, बलिके जि नाइकाकी आराधना होनेसें धर्मकी पुष्टि हांती है.

नवे जिनमदिरके बनानेसें जो पूर्वे बना दूया है उसके प्रतिपंथि अर्थात् शत्रुकों जो साधु हटावे, तो वो साधुकों न प्रायश्चित्त है, तथा न वो साधुकी प्रतिज्ञा जग होती है, आगमनी ऐसाही कहता है, इस वास्ते

जिनइव्य जो खावे, उपेक्षा करे, वो श्रावक, आगले जन्ममें बुद्धिहीन होवे, अरु पापकर्मसें लेपायमान होता है

॥ तथा ॥ आयेण जो जंजइ, पडिवन्न धण न देइ देवस्स ॥ नस्स तं स मुविरक्कइ, सोविट्ठ परिजमइ ससारं ॥ १ ॥ अर्थ — जो पुरुष मदिरकी आमदनी जागे, अरु जो मुखसें कह कर जिनइव्य न देवे, सोजी ससारमें मग्न करे ॥ तथा ॥ जिणवयण बुद्धिकरं, पचावगं नाणदसण गुणाण ॥ नत्त तोजिणद्व, अणत्त ससारीउ होइ ॥ २ ॥ अर्थ — जो जिनमतकी वृद्धि करे, चैत्यपूजा, चैत्यसमारणां, महापूजा सत्कारादि करके ज्ञान दर्शनकी प्रभावना करे, परंतु जिनइव्यका नाश करे, तो अनंत ससारी होवे, अरु जे कर जिनइव्यकी रक्षा करे, तो अल्प ससार हो जावे, देवइव्यकी वृद्धि करे, तो तीर्थंकर नामकर्म बांधे, परंतु पंचरा कर्मादान, खोटा वणिज्य व जेके सद व्यवहार करके जिनइव्यकी वृद्धि करे ॥ यत् ॥ जिणवर आण रद्धिय, वक्षरंतावि केवि जिणद्व ॥ बुद्धि नवसमुदे, मूढा मोहेण अज्ञाणी ॥ १ ॥ इसका अर्थ सुगम है

कोइ कहते है कि श्रावक विना औरोको अधिक गहनां रखके कालांतरमें व्याजकी वृद्धि करे, सो वचित है, ऐसे कहनांकी ठीक है, क्योंकि सम्पत्ति पचीती आदिक ग्रथोंमें सकाशकी कथामें तैसेही लिखा है चैत्यइव्यके खानेसें बहुत कष्ट होते है, सागर श्रेणीवत् यह कथा श्रावकविधि ग्रंथसें जान लेनी ज्ञान इव्यकी देव इव्यकी तर अकटपनीय है, अथात् नाश करनां, नष्टण करनां, मिगडतेकी सार सजाल न करणी ऐसेही साधारण इव्यकी सपका दीया दूयादो कटपता है, विना दीया काममें लानां न कटपे, सपकांकी सात क्षेत्रमेंही साधारण इव्य तगानां आदिय, मगने यात्राकां वसमें देना न चादिय, ऐसेही ज्ञान संपत्ति सागर पत्रादि साधुका दीया दूया आरुदन अण्णे कार्यमें नदी तगानां, संपत्ति पोषीमेंनी न रखता, स्थापनाकार्य अथ जगमगादि ने नेनेका व्यवहार ता रीयता है, तथा गुह्यो याज्ञा विना साधु साधुका विनागी वास निस्थानो अथ वस्त्र गुहादिस्था नेनां नदी कटपता इत्यादि विचार लेना जिस वास्त दोहातानी ज्ञान अथ साधारण इव्यका नाश न करनां आदि.



जो देवके नामका बोले, सो इव्य तत्काल देवे, क्योंकि देवइव्य जि तना शीघ्र देवे, उतना श्रद्धा है, कदापि विलंब करे, तो पीठें क्या जाने धनहानि मरणादि होवे ? तदा देवइव्यका ऋण रहजाये, और सत्तारीका देनांजी श्रावककों शीघ्र दे देना चाहियें, तो फेर देवइव्यका क्या कहना है ? जिस वखत माला पहराइ तथा और कुछ इव्य देवके जंमारेमें देना करा, उसी वखतसें वो देव इव्य हो चुका, उस इव्यसें जो लाज होवे, सोनी देवइव्य है, उस इव्यकों श्रावकनें नोगनां नहीं, इस वास्ते शीघ्र दे देना चाहियें, जे कर मासादिक पीठें देनेका कौल करे, तदा करार उपर बिना माग्या जरूर दे देवे, जे कर करार उल्लंघन देवे, तो देवइव्य खायेका दूषण है देवइव्यकी उग्राहीजी श्रावक अपनी उग्राहीकी तरें यत्नसें करे, जेकर देवइव्य छेनेमें ढोल करे, अरु कदाचित् दुर्जिह्म दरिद्रादि अवस्था आ जावे, तो फेर मिलना डुष्कर हो जावे, तथा देने वालाजी उत्साह पूर्वक कपट रहित हो कर शीघ्र दे देवे, नहीं तो देव इव्यजह्णका दोष है

तथा देव ज्ञान साधारण सबधी हाट, खेत, बाड़ी, पापाण, ईंट, काष्ठ, बांस, मिट्टी, खड़ीया, चदन, केसर, बरास, फूल, फूलचगेरी, धूपपात्र, कलश, वासकूपी, उत्रसहित सिद्धासन, चमर, चक्षोदय, जालर, जेरी, चानणी, तंबू, कनात, पडवे, कबल, चौकी, तखत, पाटा, पाटी, घड़ा, बड़ा उरसा, कल्लज, जल, दीवा प्रमुख चैत्यशाला, प्रनालादिकका पाणी, ये सर्व पूर्वोक्त वस्तु देवकी अपने काममें न वर्तनी चाहियें, टूट फूट मलीनादि हो जावे, तो महापाप होवे, देव आगें दीवा वालकें उस दीवेके चानणोमें कोइ सासारिक काम करे, तो मरकें तिर्यच होवे, उस वास्ते देवके दीवेसे खतपत्रजी न वांचना चाहियें, रूपकजी न परखणा, घरका कामजी देवके दीवेसें न करणां, तथा देवके चदन, केसरसें तिलक न करे, देवके जलसें हाथ न धोवे, स्नात्रजलजी थोडासा लेना चाहियें, तथा देवसबधी ऊल्लरी, मृदग, जेरी प्रमुख गुरुके तथा सघके न बजावे, जे कर कोइ देवके उपकरण ऊल्लरी आदिकसें कोइ कार्य करना होवे तो बहुत निकराणां देव आगें रक्कें लेवे, कदाचित् कोइ उपकरण टूट जावे, तब अपणां धन खर्चकें नवा बनवावे, देवका दीवा लालटैन (फानूप) प्रमुखमें झुदाही राखे,

तथा साधारण इव्यसें जो ऊल्लरी प्रमुख बनावे, तब तो सर्वप्रथम कार्यमें वर्त्ते, तो दोष नहीं जैसे जावोंसें करे, सोई प्रमाण है

देवका तथा ज्ञानका घरादिकनी आवश्यककों नि शूकतादि दोष होनेसें जाहे लेना न चाहिये साधारण सबधि घरादिक सघकी अनुमतिसें लोक व्यवहार का जाडा दे कर वरते, तो दोष नहीं, परंतु जाडा करारके दिनमें स्वयमेव दे देवे, वस मकानके समरानेमें जो धन लगे, तिसकों जाडेमें गिन लेवे, तो दोष नहीं अरु जो साधर्मि सकट ( निर्धनपणसें डुखी ) होवे, वो सघकी आज्ञासें विना जाडे दीयांजी रहे, तो दोष नहीं तथा तीर्थादिकमें अरु वेद रेमें जो बहुत काल रहना पड़े, वहा सोवे, तो तहांजी लेखे अनुसार अधिक जाडा दे देवे, थोडा देवे, तो दोष है जाडा विना दीयां देव, ज्ञान, साधारण सबधी वस्त्र नालियर सोने रूपेकी पाटी, कलश, फूल, पक्वान्न, सूखडी प्रमुख वजमणोंमें, पुस्तक पूजामें, नदी मांझनेमें, न मेलनी चाहिये, क्योंकि वजमणादि तो वसन अपणे नामका करा है फेर देव, ज्ञान, अरु साधारण सबधी पूर्वोक्त वस्तु जाडे विना वर्त्ते, तो स्पष्ट दोष है

तथा घर देहरेमें अश्रुत, सोपारी, फल, नैवेद्यादिकके वेचनेसें जो धन हांवे, तिसके लीये फूलादिकको घर देहरेमें न चढावे, तथा पचायती बड़े मंदिरमेंनी आपन चढावे, पूजारी आगे सर्व स्वरूप कहे कि यह मंदिरही का इव्य है, परंतु मेरा नहीं, पूजारी न हांवे, तो सघ समझ कह देवे, अथ न कहे, तो दूषण है घर देहरेका नैवेद्यादि मालीकों देवे, परंतु वो मालीकी नौकरीमें न गिन लेवे, जे कर पहिलांही सामग्री नौकरीमें देणी कह लेवे, तो दोष नहीं मुख्यवृत्तिमें तो नौकरी चढावेसें अलग देनी चाहिये

घर देहरेके चढे हुए चायजादि उहे मंदिरमें नेज देवे, अन्यथा पर देहरेके इव्यस पर देहरेकी पूजा दावेगी, नतु स्वइव्य करक दावेगी, तब अनादर अयज्ञादि दाव है, असा करणा पुक्त नहीं, क्याहि इव्यसेंही पूजा करणी नित्त है, तथा देहरेका नैवेद्य अश्रुतादि अपणे धाका तर रखने पादिय, पूरे मूनाम वेचक इव इव्यका वगारता चाहिय, परंतु 'मैं' 'तैं' नाममें न जाने देवे, नहीं तो इव्यकनाम करका दूषण तब जायगा तदा तैं तर रहा करताता, अथि आदिहक पत्रपुग ११५ अ १८ हा पात्र, ता रिता कारदहा दाव नहीं

तथा देव, गुरु, यात्रा, तीर्थ श्रु सघकी पूजा, साधर्मिवात्सल्य, स्नात्र, प्रज्ञावना, ज्ञान लिखानां इत्यादिक कारणो वास्ते दूसरोंके पाससें जब धन लेवे, तब चार पांच पुरुषोंकी साक्षीसें लेवे, फेर खरचनेके अवसरमें जी गुरु सघादिकके आगे प्रगट कह देवे, कि यह धन मैंने श्रमुकका दीया खरचा है, परंतु मेरा नहीं है

तथा तीर्थादिमें श्रु पूजा स्नात्र ध्वजा चढाने आदि आवश्यक कर्त्तव्यमें दूसरोंका सीर न करे, किंतु स्वयमेवही यथाशक्ति करे, जेकर कि सीने धर्म खरचमें धन दीया होवे, तब तिसका प्रगट नाम ले कर सर्व समस्त न्याराही खरच करना चाहियें, यदा बहुतें मिल कर यात्रा साधर्मि वात्सल्य सघपूजादि करे, तब जितना जितना जिसका हिस्सा होवे, उतना उतना प्रगट कह देवे, नहीं तो पुण्यफलकी चोरी लगे

तथा मरणांत समयमें माता, पितादिक जो धर्मका खरच करना कहे, तथा पुत्रादि जो खरच करना माने, सो बहुत आवकादिकोंके आगे क हनां चाहियें, जैसे मैं तुमारे नामसें इतने दिनोंके बीचमें इतना धन खर चुगा, तुम उसकी अनुमोदना करो, पीछें, सो धन सर्व समस्त श्रपणे ना भसें नहीं, किंतु माता पितादिके नामसें तत्काल खरच कर देना चाहियें, धर्मका खरच मुख्यवृत्ति करके तो साधारण इव्यहीका करना चाहियें, क्योंकि जहां जहां काम पड़े, तहां तहां खरचमें जावे, सात क्षेत्रोंमें जौनसा क्षेत्र सीदाता देखे, तिसमें धन खरचके तिसको उपपन्न देवे, कोइ आवक निर्धन हो जावे, तोजी उसको उसी धनसें उपपन्न देवे, लोकेप्युक्त ॥२॥ लोक॥ दरिद्र नर राजेंद्रमा समृद्ध कदाचन ॥ व्याधितस्यौषध पथ्यं, नीरोगस्य किमौषध ॥ १ ॥ इती वास्ते प्रज्ञावना सघ पहिरावणी, सम्यक्त्वका लमुलज नादिकमें जो निर्धन साधर्मी हूवे, तिनको विशेष वस्तु देनी चाहियें, श्रान्य या यर्मावज्ञादि दोष होवे यह बात युक्त है, जो धनवानसें निर्धनको अधिक वस्तु देनी चाहियें, यदा शक्ति न होवे, तदा दोनोको बराबर देवे

अपणा खरच धर्मइव्यसे न करणां, यात्रादिकके निमित्त जो धन काढे, सो सर्व देवादि निमित्त हो गया, जे कर वो इव्य श्रपणे जोजनमें श्रथवा गाढी आदिकके नाढेमें लगावेगा, तब जरूर उसको देवइव्य खा

तथा साधारण इव्यसें जो ऊहरी प्रमुख बनावे, तब तो सर्वप्रथम कार्यमें वर्त्ते, तो दोष नहीं जैसें जावोंसें करे, सोई प्रमाण है.

देवका तथा ज्ञानका घरादिकजी आवश्यकों नि श्रुतादि दोष होनेसें जाड़े लेना न चाहिये साधारण सबधि घरादिक सघकी अनुमतिसें लोक व्यवहार का जाड़ा दे कर वस्ते; तो दोष नहीं, परंतु जाड़ा करारके दिनमें स्वयमेव दे देवे, उस मकानके समरानेमें जो धन लगे, तिसको जाड़ेमें गिन लेवे, तो दोष नहीं अरु जो साधर्मी सकट (निर्धनपणेसें डुखी) होवे, वो सघकी आज्ञासें विना जाड़े दीयांजी रहे, तो दोष नहीं तथा तीर्थादिकमें अरु देवरेमें जो बहुत काल रहना पड़े, उहा सोवे, तो तहांजी लेखे अनुसार अधिक जाड़ा दे देवे, थोड़ा देवे, तो दोष है जाड़ा विना दीयां देव, ज्ञान, साधारण सबधि वस्त्र नालियर सोने रूपेकी पाटी, कलश, फूल, पक्वान्न, सूखड़ी प्रमुख उजमणमें, पुस्तक पूजामें, नदी मांमनेमें, न मेलनी चाहिये, क्योंकि उजमणादि तो उसने अपणे नामका करा है फेर देव ज्ञान, अरु साधारण सबधि पूर्वोक्त वस्तु जाड़े विना वर्त्ते, तो स्पष्ट दोष है

तथा घर देहरेमें अकृत, सोपारी, फल, नैवेद्यादिकके बेचनेसें जो धन होवे, तिसके लीये फूलादिकको घर देहरेमें न चढावे, तथा पचायती बड़े मंदिरमेजी आपन चढावे, पूजारी आगे सर्व स्वरूप कहे कि यह मंदिरही का इव्य है, परंतु मेरा नहीं, पूजारी न होवे, तो सघ समझ कह देवे, थैसें न कहे, तो दूषण है घर देहरेका नैवेद्यादि मालीको देवे, परंतु वो मालीकी नौकरीमें न गिन लेवे, जे कर पहिलाही सामग्री नौकरीमें देणी कर लेवे, तो दोष नहीं मुख्यवृत्तिमें तो नौकरी चढावेसें अलग बेनी चाहिये

घर देहरेके चढे हुए चावलादि बड़े मंदिरमें जेज देवे, अन्यथा घर देहरेके इव्यसें घर देहरेकी पूजा दावेगी, नतु स्वइव्य करके होवेगी, तब अनादर अयज्ञादि दोष है, थैसा करणां युक्त नहीं, क्योंकि स्वइव्यसेंही पूजा करणी उचित है, तथा देहरेका नैवेद्य अकृतादि अपणे धनकी तर रखने चाहिय, पूरे मूलासें बेचक द्रव इव्यको बचाना चाहिये, परंतु जस तैसें नाजमे न जाने देवे, नहीं तो देवइव्यके नाश करेका दूषण लाग जावेगा

तथा सर्व तरें रक्षा करतानी चार, यग्रि, आदिकक उपहाम इव्य नष्ट हो जावे, ता चिता कारकदां दोष नहीं.

तथा देव, गुरु, यात्रा, तीर्थ अरु सघकी पूजा, साधर्मिवात्सल्य, स्नात्र, प्रजावना, ज्ञान लिखानां इत्यादिक कारणो वास्ते दूसरोंके पाससें जब धन लेवे, तब चार पांच पुरुषोंकी साक्षीसे लेवे, फेर खरचनेके अवसरमें नी गुरु सघादिकके आगें प्रगट कह देवे, कि यह धन मैने अमुकका दीया खरचा है, परंतु मेरा नहीं है

तथा तीर्थादिमें अरु पूजा स्नात्र ध्वजा चढाने आदि आवश्यक कर्त्तव्यमें दूसरोंका सीर न करे, किंतु स्वयमेवही यथाशक्ति करे, जेकर कि सीने धर्म खरचमें धन दीया होवे, तब तिसका प्रगट नाम ले कर सर्व समस्त न्याराही खरच करना चाहिये, यदा बहुते मिल कर यात्रा साधर्मि वात्सल्य सघपूजादि करे, तब जितना जितना जिसका हिस्सा होवे, उत ना उतना प्रगट कह देवे, नहीं तो पुण्यफलकी चोरी लगे

तथा मरणांत समयमें माता, पितादिक जो धर्मका खरच करना कहे, तथा पुत्रादि जो खरच करना माने, सो बहुत आवकादिकोंके आगें क हनां चाहिये, जैसे मैं तुमारे नामसें इतने दिनोंके बीचमें इतना धन खर चुगा, तुम उसकी अनुमोदना करो, पीछे, सो धन सर्व समस्त अपने ना मसें नहीं, किंतु माता पितादिके नामसें तत्काल खरच कर देना चाहिये, धर्मका खरच मुख्यवृत्ति करके तो साधारण इव्यहीका करना चाहिये, क्योंकि जहां जहां काम पड़े, तहां तहां खरचमें लावे, सात क्षेत्रोंमें जौनसा क्षेत्र सीदाता देखे, तिसमें धन खरचके तिसको उपपन्न देवे, कोइ आवक निर्धन हो जावे, तोनी उसको उसी धनसें उपपन्न देवे, लोकेप्युक्त ॥ श्लोक॥ दरिद्र नर राजेंद्र, मा समृद्ध कदाचन ॥ व्याधितस्यौपध पथ्य, नीरोगस्य किमौ पथ ॥ १ ॥ इसी वास्ते प्रजावना सघ पहिरावणी, सम्यक्त्वका लभुजेन नादिकमें जो निर्धन साधर्मि दूवे, तिनको विशेष वस्तु देनी चाहिये, अन्य या धर्मावज्ञादि दोष होवे यह बात युक्त है, जो धनवानसें निर्धनको अधिक वस्तु देनी चाहिये, यदा शक्ति न होवे, तदा दोनोको बराबर देवे

अपणा खरच धर्मइव्यसें न करणां, यात्रादिकके निमित्त जो धन काटे, सो सर्व देवादि निमित्त हो गया, जे कर वो इव्य अपने जाजिनमें अथवा गाढी आदिकके जाडेमें लगावेगा, तब जरूर उसको देवइव्य खा

नेका पाप लगेगा, कदाचित् अज्ञान करके चूकिके बे समझीसें इत्यादि कारणोंसें कोई श्रावकादि देवादि इव्यका उपनोग कर लेवे, तो तिसके प्रायश्चित्तमें जितना इव्य खाया होवे, उतना इव्य देव साधारण सबधि करे, मरण अवस्थामें शक्तिके अभावसें धर्मस्थानमें थोड़ाही खरचे, परंतु देशा किसीका न रहे, देवादि इव्य तो विशेष करके न रहे, इसी रीतिसें श्री जिनराजजीकी पूजा दृढभावोंसें करनी चाहिये ॥ इति सक्षेपतो जिनेश्वर परमेश्वर पूजनविधि संपूर्ण ॥

अब गुरु वदनाकी विधि लिखते हैं, जो ज्ञानादि पांच आचार करके सयुक्त होवे, और शुद्ध प्ररूपक होवे, सो गुरु है, पांच आचारका स्वरूप देखनां होवे, तदा श्री रत्नशेखरसुरिकृत आचारप्रदीप ग्रंथ देख लेनां

यह पूर्वोक्त गुरु आचार्यादिकके पास जो प्रत्याख्यान पूर्वे अपणे आप करा था, सो विशेष करके विधि पूर्वक गुरु मुखसें उच्चारवे, क्योंकि प्रत्याख्यान तीन तरसें करा जाता है, एक आत्मसाहिक, दूसरा देवसाहिक, तीसरा गुरुसाहिक, तिसकी विधि यह है, कि -

मदिरमें देववदनार्थ, स्नात्रादि देखनेके अर्थ, धर्मोपदेश देनेके अर्थ, गुरु जिनमदिरमें आया होवे, तथा वस्तिमें होवे, तदां मदिरकी तरें तीन निस्तही पंचाजिगमनादि यथायोग्य विधिसें जा करके गुरुके धर्मोपदेशसें पहिजां तथा पीठें, यथाविधिसें पचवीश श्रावश्यक शुद्ध षादशावर्त्त वदना देवे, वदनाका बड़ा फल कहा है, कृष्णवासुदेववत् तथा जाप्यमें वदना तीन तरकी कही है, एक तो मस्तक नमावणादि सो फेटा वदना, दूसरी संपूर्ण दो खमासमण पठनेसें स्तोत्रवदना होती है, तीसरी षादशावर्त्त करनेमें षादशावर्त्त वदना होती है, तिसमें प्रथम वदना तो सर्व सघको करणी, दूसरी वदना सर्व स्वदर्शनी साधुउक्त करणी, अरु तीसरी वदना जो है, सो पदवीधर आचार्यादिकों करनी

जिसने सबरेका पडिकमणां न करा होवे, तिसने विधि पूर्वक वदना करणी, क्योंकि जाप्यम अस्तही निस्वा दे १ जाप्याक्तविधि इयांपचप्रतिक्रम २ पीठें हुनप्रसा कायात्सर्ग करे, सो उगास प्रमाण करे, जहर सप्तम स्त्रीस हागम करा होवे, तदा अष्टविधा सरी जगा धारु पीठें एक सो आब आसोश्रुता प्रमाण कायात्सर्ग करे, ३ पीठें पेत्य ४ कर, ४ पीठें ५

माश्रमण पूर्वक मुखवस्त्रिका प्रतिलेखे, ५ पीठें दो बंदना देवे, ६ पीठें दे वसिश्वादि आलोवे, ७ फेर वदना दो देवे, ८ पीठें अष्टुष्टिर्मि कहे, ९ पीठें दो वदना करे, १० पीठें प्रत्याख्यान करे, ११ पीठें नगवन् अह २ त्यादि चार क्रमाश्रमण देवे, १२ पीठें स्वाध्याय सदिसावर्त कहे, फेर क्र माश्रमण पूर्वक सध्या करू, ऐसें कहे, पीठें स्वाध्याय करे, यह स वेरकी वदनाविधि है

तथा प्रथम १ ईर्षापथ पडिक्कमे, २ पीठें चैत्यवदना करे, ३ पीठें क्रमाश्र मण पूर्वक मुखवस्त्रिकाका प्रतिलेखन करे, ४ पीठें दो वदना करे, ५ पी ठें दिवसचरिमका प्रत्याख्यान करे, ६ पीठें दो वदना करे, ७ पीठें देव सि आलोव कहे, ८ पीठें दो वदना करे, ९ पीठें अष्टुष्टि कहे, १० पीठें नगवन् इत्यादि चार स्तोत्रवदना करे, ११ पीठें दैवसिक प्रायश्चित्त का कायोत्सर्ग करे, १२ पीठें पूर्ववत् दो क्रमाश्रमण देकर स्वाध्याय करे, यह सध्याकी वदन विधि है

जे कर किसी कार्य करणाविसैं गुरुका चित्त और तर्फ होवे, तदा सद्धेप मात्र वदना करे, ऐसें वदना पूर्वक गुरु पासों प्रत्याख्यान करावे, क्योंकि श्रावकप्रज्ञासिद्धिमें लिखा है, कि प्रत्याख्यान करणेके परिणाम दृढनी होवे, तोनी गुरुके पासों करावे, गुरु पासों प्रत्याख्यान करानेमें यह गुण है, सो लिखते हैं १ दृढता होती है, २ आज्ञाका करणा होता है, ३ कर्म का ह्य होता है, ४ उपशमकी वृद्धि होती है

ऐसेंही दैवसिक चातुर्मासिक नियमादिनी गुरुका सजव होवें, गुरु सा श्लिकही करना चाहियें, योगशास्त्रमें गुरुकी नक्ति ऐसें लिखी है ॥ श्लोक ॥ अन्युद्धान तदालोके, ऽनियान च तदागमे ॥ शिरस्पंजलिसंश्लेष, स्वयमा सनढोकन ॥ १ ॥ आसनाजिग्रहो नक्त्या, वदना पर्युपासन ॥ तद्वधानेऽनुगम भेति, प्रतिपत्तिरियं गुरौ ॥ २ ॥ अस्यार्थ — १ गुरुको आता देखकें खड़ा हो जाना, २ सन्मुख लेने जाना, ३ मस्तक उपर अजलि बांध कर प्रणाम करणा, ४ गुरुको आसन देना, ५ जब गुरु आसन उपर बैठा जावेगा, तब मैं आसन उपर बैठुगा, ऐसा अजिग्रह लेवे, ६ नक्तिसें व दना पर्युपासना करे, ७ जब गुरु जावे, तब पौडुचाने जावे, ८ यह गुरुकी नक्ति है तथा १ थडके गुरुके बराबर न बैठे, २ आगें न बैठे, ३ गुरुको

नेका पाप लगेगा, कदाचित् अज्ञान करके चूकिके वे समजीसें इत्यादि कारणोंसे कोइ श्रावकादि देवादि इव्यका उपजोग कर लेवे, तो तिसके प्रायश्चित्तमें जितना इव्य खाया होवे, उतना इव्य देव साधारण सबधि करे, मरण अवस्थामें शक्तिके अज्ञावसें धर्मस्थानमें थोड़ाही खरचे, परंतु देणा किसीका न रहे, देवादि इव्य तो विशेष करके न रहे, इसी रीतिसें श्री जिनराजजीकी पूजा दृढजावोंसें करनी चाहिये ॥ इति सक्षेपतो जिनेश्वर परमेश्वर पूजनविधि सपूर्ण ॥

अब गुरु वदनाकी विधि लिखते हैं, जो ज्ञानादि पांच आचार करके सशुक्त होवे, और शुद्ध प्ररूपक होवे, सो गुरु है, पांच आचारका स्वरूप देखनां होवे, तदा श्री रत्नशेखरसुरिकृत आचारप्रदीप ग्रंथ देख लेनां

यह पूर्वोक्त गुरु आचार्यादिकके पास जो प्रत्याख्यान पूर्वे अपणे आप करा था, सो विशेष करके विधि पूर्वक गुरु मुखसें उच्चारवे, क्योंकि प्रत्याख्यान तीन तरेंसे करा जाता है, एक आत्मसाक्षिक, दूसरा देवसाक्षिक, तीसरा गुरुसाक्षिक, तिसकी विधि यह है, कि -

मंदिरमें वेववदनार्थे, स्नात्रादि देखनेके अर्थे, धर्मोपदेश देनेके अर्थे, गुरु जिनमंदिरमें आया होवे, तथा वस्तिमें होवे, तहां मंदिरकी तरें तीन निस्सही पंचांगिगमनादि यथायोग्य विधिसें जा करके गुरुके धर्मोपदेशसें पहिजां तथा पीठें, यथाविधिसें पंचवीश आवश्यक शुद्ध दावशावर्त्त वदना वेवे, वदनाका बड़ा फल कहा है, रुण्णवासुदेववत् तथा जाप्यमें वदना तीन तरेंकी कही हैं, एक तो मस्तक नमावणादि सो फेटा वदना, दूसरी सपूर्ण दो खमासमण पढनेसें स्तोत्रवदना होती है, तीसरी दावशावर्त्त करनेसें दावशावर्त्त वदना होती है, तिसमें प्रथम वदना तो सर्व सघको करणी, दूसरी वदना सर्व स्वदर्शनी साधुओंको करणी, अरु तीसरी वदना जो है, सो पदवीधर आचार्यादिकको करनी

जिसने सवेरेका पहिक्कमणां न करा होवे, तिसने विधि पूर्वक वदना करणी, क्योंकि जाप्यमें ऐसेही लिखा है १ जाप्योक्तविधि ईर्यापयप्रतिक्रमे २ पीठें कुस्मण्डला कायोत्सर्ग करे, सो उच्चास प्रमाण करे, जेकर स्वप्नमें स्त्रीसे लगन करा होवे, तदा अशुचिकी सर्वजगा धोके पीठें एक सो आठ आठोच्चास प्रमाण कायोत्सर्ग करे, ३ पीठें चैत्यवदन करे, ४ पीठें ५



माश्रमण पूर्वक मुखवस्त्रिका प्रतिलेखे, ५ पीठें दो बंदना देवे, ६ पीठें देवसिद्धादिक आलोवे, ७ फेर वदना दो देवे, ८ पीठें अष्टुच्छिन्नि कहे, ९ पीठें दो बंदना करे, १० पीठें प्रत्याख्यान करे, ११ पीठें जगवन् अह इत्यादि चार कृमाश्रमण देवे, १२ पीठें स्वाध्याय सदिसावठ कहे, फेर कृमाश्रमण पूर्वक सदाय करू, ऐसे कहे, पीठें स्वाध्याय करे, यह सवेरकी वदनाविधि है

तथा प्रथम १ ईर्षापथ पढिकमे, २ पीठें चैत्यवदना करे, ३ पीठें कृमाश्रमण पूर्वक मुखवस्त्रिकाका प्रतिलेखन करे, ४ पीठें दो वदना करे, ५ पीठें दिवसचरिमका प्रत्याख्यान करे, ६ पीठें दो वदना करे, ७ पीठें देवसि आलोव कहे, ८ पीठें दो वदना करे, ९ पीठें अष्टुच्छिन्नि कहे, १० पीठें जगवन् इत्यादि चार स्तोत्रवदना करे, ११ पीठें दैवसिक प्रायश्चित्त का कायोत्सर्ग करे, १२ पीठें पूर्ववत् दो कृमाश्रमण देकर स्वाध्याय करे, यह सध्याकी वदन विधि है.

जे कर किसी कार्य करणाविसैं गुरुका चित्त और तर्फ होवे, तदा सक्षेप मात्र बंदना करे, ऐसे वदना पूर्वक गुरु पासों प्रत्याख्यान करावे, क्योंकि श्रावकप्रज्ञप्तिस्त्रुत्रमें लिखा है, कि प्रत्याख्यान करणके परिणाम दृढनी होवे, तोनी गुरुके पासों करावे, गुरु पासों प्रत्याख्यान करानेमें यह गुण है, सो लिखते हैं १ दृढता होती है, २ आज्ञाका करण होता है, ३ कर्म का क्षय होता है, ४ उपशमकी वृद्धि होती है

ऐसेही दैवसिक चातुर्मासिक नियमाविनी गुरुका सजव होवें, गुरु साक्षिकही करना चाहियें, योगशास्त्रमें गुरुकी जक्ति ऐसे लिखी है ॥ श्लोक ॥ अन्युद्धान तदालोके, ऽनियान च तदागमे ॥ शिरस्यंजलिसंश्लेष, स्वयमासनढोकन ॥ १ ॥ आसनानिग्रहो जक्त्या, वदना पर्युपासन ॥ तदधानेऽनुगममेति, प्रतिपत्तिरियं गुरौ ॥ २ ॥ अथार्थ - १ गुरुको आता देवकें खड़ा हो जाना, २ सन्मुख लेने जाना, ३ मस्तक उपर अजलि बाध कर प्रणाम करणां, ४ गुरुको आसन देना, ५ जब गुरु आसन उपर बैठा जावेगा, तब मैं आसन उपर बैठुंगा, ऐसा अनिग्रह लेवे, ६ नकिसे वदना पर्युपासना करे, ७ जब गुरु जावे, तब पौडुचाने जावे, ८ यह गुरुकी जक्ति है तथा १ अङ्कके गुरुके बराबर न बैठे, २ आगे न बैठे, ३ गुरुकी

तर्फ पीठ दे कर न बैठे, ४ पग उपर पग चढा करके गुरुके पास न बैठे, ५ पालती मारके न बैठे, ६ हाथोसे जघाकों लपेटके न बैठे, ७ पग पसारके न बैठे, ८ विकथा न करे, ९ बहुत दसे नहीं, १० नींद न लेवे, ११ मन-वचन, काया गोप करके हाथ जोड़ी नक्ति बहुमान पूर्वक उपयोग सहित सुणे। क्योंकि गुरु पासों धर्म सुननेसे इस लोक परलोकमें बहुत गुण होता है।

तथा गुरुकों पूढे, किसी साधुकों रोगादि होवे, तदा बैद्यकों बोलाउ ? औषधिका योग मिलावु ? इत्यादि गुरु गृहकी सर्व तरेंसें खबर सार लेवे, नोजनके अवसरमें उपाश्रयमें जा करके साधुओंको निमंत्रणा करे, तथा औषधि पथ्यादि जो जिसको योग्य होवे, सो देवे, जब साधु, आवकके घरमें आवे, तब जो जो वस्तु साधुके योग्य होवे, सो सो सर्व वस्तुकों देने वास्ते निमंत्रणा करे, सर्व वस्तुओंका नाम लेवे, जेकर साधु नहीं जो लेवे, तो जो दाताको जीर्णशेववत् पुण्य फल है। रोगी साधुकी प्रतिचर्या करणोंसें जीवानद वैद्यवत् महापुण्य फल होता है। साधुओंके रहनेकों स्थान देवे, तथा जिनशासनके प्रत्यनीकको सर्वशक्तिसे निवारण करे, तथा साधवीयोंकों डष्ट, नास्तिक, ड शक्ति जनोंसें रक्षा करे, अपने घरके पास बबोबस्त वाला गुप्त उपाश्रय रहनेकों देवे, उनोंको अपणी स्त्री, बहू, बहिन, बेटी प्रमुखसें सेवा नक्ति करावे, अपणी बेटीयोंकों साधवीयोंसें विद्या शिखलावे, जेकर किसी बेटीकों वैराग्य चढे, तब साधवीयोंकों दे देवे, जे कर कोइ साधवी धर्मकृत्य जूल जावे, तदा स्मरण करा देवे, जेकर कोइ साधवी अन्यायमें प्रवृत्त होवे, तो निवारण करे, तथा आप रोज गुरुपासो नवीन नवीन शास्त्र पढे, जेकर बुद्धि थोड़ी होवे, तदा ऐसा विचारे कि सुरमेंदानीमेंसें थोड़ा थोड़ा अजनन निकलनेसें अजनन हूय हो जाता है, तथा वर्मीका बधना, ऐसे परिश्रम अन्यास करणोंसें नि फल दिन न जाने देवे, थोड़ी बुद्धिजी हावे तो जो पढनेका अन्यास न ठोढे, इत्यादि धर्मकृत्य करके पीठें जेकर राजा आवक होवे, तदा राजसजामें जावे, प्रधान होवे, तो न्याय सजामें जावे, बणिया हावे, तदा दह्रीबजारमें जावे, इत्यादि उचित स्थानमें जा करके यमसे विरुद्ध न हावे, उसी रीतिसे धन उपार्जनको चिता करे।

प्रथम राजा किस रीतिसे प्रवर्त्ते, सो लिखते हैं १ जो राजा हावे, सो दरिद्रि, मान्य, अमान्य, उन्नम, अधममादि सर्वलाकोका पक्षपात रहित मध्य

स्थ हो कर व्याप्य करे, १ राजाके कारनारी (मन्त्री) आदिक तिनका धर्माविरोध यह है, कि राजाका अरु प्रजाका नुकसान न होवे, तैसें प्रवर्त्ते, क्योंकि जो मन्त्री राजाका हित वाढता है, उस उपर प्रजा देप करती है, अरु जो प्रजाका हितकारी है, उसको राजा गेह देता है, इसी वास्ते राजमन्त्री आदिकोंको दोनोका हितकारी होना चाहिये

वणिक् व्यापारी लोकोंका धर्माविरोध यह है जो व्यापारकी छुद्दि करे ॥ तथैव चाह ॥ विवहारसुद्दि देसा, १ विरुद्ध ज्ञाप्य उचिय चरणोद्दि ॥ तो कुण्ड अश्वचित्त, निवाहितो निय वम्म ॥ १ ॥ अस्त्यार्थ - व्यापारकी छुद्दि, देशावि विरुद्धका त्याग, उचित आचरण, इन तीनों प्रकारें करके धन उपार्जनकी चिता करे, अरु अपने धर्मकानी निर्वाह करे, क्योंकि ऐसा कोई कार्य नहीं है, कि - जो धनसे लिद्ध न होवे ? तिस वास्ते बुद्धिमान धन उपार्जनमें यत्न करे ॥ यदाह ॥ नहि तद्विद्यते किंचि, यदर्थेन न लिद्धयति ॥ यत्नेन मतिमांस्तस्मा, दर्शमेक प्रतापयेत् ॥ १ ॥ इहां जो अर्थ चिता है सो अनुवादरूप है, क्योंकि धन उपार्जनकी चिता लोकमें स्वत ही लिद्ध है, कुछ शास्त्रकारके उपदेशसे नहीं, 'अरु धर्म निर्वाहयन' यह जो कहना है, सो विधेय करने योग्य है, क्योंकि इसकी आगे प्राप्ति नहीं है, शास्त्रका जो उपदेश है, सो अप्राप्त अर्थकी प्राप्ति वास्ते है, शेष सर्व अनुवादादि रूप है अथ आजीविका चलानेके प्रकार कहते है

आजीविका जो है, सो सात प्रकारसे है १ व्यापार करनेसे, २ विद्यासे, ३ खेती करनेसे, ४ पशुओंके पालनेसे, ५ कारीगरी करनेसे, ६ नौकरी करनेसे, ७ ज़ोख मांगनेसे, तिनमें वणिज्य करनेसे वणिक् लोकोंकी आजीविका है, १ विद्यासे बैद्यादिकोंकी आजीविका है, २ खेती करनेसे जाटादिकोंकी है, ४ पशुपालनेसे गोपाल अजापालादिकोंकी है, ५ शिल्प करके चितारादिकोंकी है, ६ नौकरी करनेसे सिपाही लोकोंकी है, ७ निष्ठा करके मांग खानेवालोंकी आजीविका है तिनमें १ वणिज्य सो धान्य, घृत, तैल, कार्पास, सूत्र, वस्त्र, धातु, मणि, मोती, रूपड्या, सोनड्या प्रमुख जितनी जातका किरियाणा है, सो सर्व व्यापार है अरु जो व्याज देना है, सोजी व्यापार है

१ विद्याजी औपधि, रस, रसायन, चूर्ण, अजनादि, वास्तुक शास्त्र, पखी

का शकुन, नूत नविष्यतादि निमित्त, सामुद्रिक, चूडामणि, जवाहिर पत्त नैका शास्त्र, धर्म, अर्थ, काम, ज्योतिष तर्कादि जेदसे अनेक प्रकारकी है, इस वैद्यविद्यामें अतारपणा, पसारीपणां करनां ठीक नहीं, क्योंकि इसमें प्राय दुर्ध्यान होनेसे बहुत गुण नहि दिखता है, क्योंकि जिसको जिससे जान होता है, वो उसी बातको चाहता है ॥ तद्धुक्त ॥ आर्या ॥ विग्रहमि षति जटा, वैद्याश्च व्याधिपीडितं लोक । मृतक बहुल विप्रा, हेम सुनिष्क ष निर्गथा ॥ १ ॥ अर्थ - सुनट सग्राम चाहते हैं, वैद्य रोगपीडित लोकों को चाहते हैं, अरु ब्राह्मण बहुत लोकोंको मरणां चाहते हैं, तथा निरुप ष्व, सुकालको साधु निर्गथ चाहते हैं, परंतु जो वैद्य अत्यंत लोनी होवे, धन लेने वास्ते उलटा औषधि जानके देवे, जिसके मनमें दया न होवे, जो त्यागी साधुओंकी औषधि न करे, जो दरिड़ी, अनाथादि लोकोंको म रते जानकेनी धन खोस लेवे, मांस मद्यादि अनर्ह्य वस्तुका नष्टण क रनां बतावे, जूरी औषधि बनाके लोकोंको उगे, वो वैद्यविद्या नरककी देने वाली है, सो न करनी चाहिये अरु जो वैद्य सत् प्रकृति वाला होवे, लोनी न होवे, पूर्वोक्त दूषण रहित होवे, परोपकारी होवे, ऐसेकी वैद्य विद्या श्रीकृष्णदेवजीके जीव जीवानंद वैद्यकी तरें दोनों नवोंमें गुण देने वाली है, ऐसी वैद्यविद्यासें आजीविका करे, तो अच्छी है

३-४ तीसरी खेती, चौथा पशुपालक, इसमें खेतीजी तीन तरेंसें होती है, एक मेघसें, दूसरी रूप नदराविसें, तीसरी दोनोंसें चौथा पशु पालक पणा, सो गौ, मदिष, बकरी, ऊट, बैल, घोड़ा, हाथी, इनकों वेश वेशके आ जीविका करणी, ये खेती अरु पशुपाल्य, यह दोनों काम बिबेकोकों क रने उचित नहीं जे कर इनके करे विना निर्वाह न होवे, तदा बीज बो नेका काल जाणे, जूमि सरस नीरस जाणे, अरु जो खेत पहिला बाह्यां विना बोया न जावे, दूसरा रस्तेका क्षेत्र, यह दोनों, क्षेत्रकों वर्जें, तो धन की वृद्धि होवे, अरु जो पशुपाल्य पणां करे, तो पशुओं ऊपर निर्वय न होवे, पशुका कोइ अवयव न ठेवे इसी तरें पशुपालपणा करे

५ पांचमी शिल्प आजीविका है, सो शिल्पसौ तरेंका है, मूल शिल्प तो पांच है, १ कुनार, २ लोहार, ३ चितारा, ४ वणकर, अर्थात् बुनने वाला, ५ नाइ, इन पांचोंके वीश वीश जेद है, यद्यपि इस कालमें न्यूनाधि

कनी होवेंगें, परंतु श्रीकृष्णदेवजीने प्रथम सौ तरेंहीका शिल्प पर्याकों शिखलाया था, इस वास्ते सौही लिखा है जो सासारिक विद्या है, सो स र्वकोइ शिल्पमें है, कोइ कर्ममें है, शिल्प, गुरु उपदेशसें आता है, सोही है, अरु कर्म स्वयमेवही आ जाता है, यह कर्मजी सामान्यसें चार प्रकारें है, १ उत्तम बुद्धिसें धन कमाता है, २ मध्यम दाधोंसे कमावे, ३ अधम पगोंसें कमावे, ४ अग्रमाधम मस्तकसे बोजा ढो कर कमावे

६ सेवा करकें आजीविका करे, सो सेवा राजाकी, मंत्रीकी, शेरकी, सामान्य लोकोकी, नोकरी यह चार प्रकारें है प्रथम तो नौकरी किसी कीनी न करनी चाहियें, क्योंकि नौकर परवश हो जाता है, जे कर नि र्वाह न होवे, तदा नौकरीजी करे, परंतु जिसकी नौकरी करे, उसमें यह कहे हुए गुण होवे, तो उसके वहां नौकर रहे, जो १ कानोंका डुर्बल न होवे, २ सूरमा होवे, ३ कृतज्ञ होवे, ४ सात्विक, गजीर, वीर, उदार, शीलवान्, गुणोंका रागी होवे, उसकी नौकरी करे, अरु जो क्रूर प्रकृति वाला होवे, कुव्यसनी होवे, लोनी होवे, चतुर न होवे, सदा रोगी रहे, मूर्ख होवे, अन्यायी होवे, अैसोंकी नौकरी न करे, क्योंकि कामवकीय ना मक नीति शास्त्रमें लिखा है, कि जिस राजाको वृद्ध पुरुषोंने सेवा करी होवे, सो राजा अज्ञा है, स्वामीकोंनी चाहियें कि जैसा सेवक होवे, तैसा उसका सन्मान करे, सेवकजी थके हुए, नुखे दूये, क्रोधमें दूये, व्याकुल होये, तृपावत होये, शयन करने लगें, दूसरेके अर्ज करते दूये, इन अथ स्थायोंमें स्वामीकों विनति न करें, तथा राजाकी माता, राजाकी राणी, राजकुमार, मुख्यमंत्री, अदालती, राजेका दरवाजेवान, इनके साथ रा जाकी तरें वर्तना चाहियें इस रीतीसें प्रवर्त्ते, तो वनकी प्राप्ति डुर्लभ नहीं ॥ यदूचे ॥ श्लोक ॥ इष्टुं क्षेत्रं समुद्रं च, योनिपोषणमेव च ॥ प्रसादो नृभुजां चैव, सद्योव्रति वरिष्ठां ॥ १ ॥ निदत्तु मानिनां सेवा, राजादीनां सु खैपिण ॥ स्वजना स्वजनोद्धार, सहारो नविनातया ॥ २ ॥ मंत्री, श्रेष्ठी, सेनानी इत्यादि व्यापारजी सर्व नृपसेवाके अतर्जविही हैं, परंतु जेदलखा नेका दरोगादि, नगरका कोटवाल पणों, सीमापाल, इत्यादि नौकरी न करणी चाहियें, क्योंकि यह नौकरीयों निर्दयी लोकोंके करनेकी हैं, तिस वास्ते श्रावककों नहीं करनी जे कर कोइ श्रावक राजाधिकारी हो जावे,

तब वस्तु पालादिक मंत्रीयोंकी तरें महाधर्म कीर्तिका करनेवाला होवे, श्रावक मुख्यवृत्ति करकें तो सम्यग्दृष्टिकोही नौकरी करे

४ सातमी जीख मांगनेसें आजीविका है, सो जीख मांगनेकेनी अनेक जेद हैं, तिनमें धर्मोपष्टेन मात्र आधार, वस्त्र, पात्रादिककी निष्का लेवे, सो जी जिस साधुने सर्वससार और परिग्रहका सग त्यागा है, तिसको मांगनी व चित है, क्योंकि उसकी जीख मांगनेसें और गति नहीं है, श्रीहरिजिह्व रिजीने पाचमे अष्टकमें निष्का तीन प्रकारकी लिखी है, प्रथम निष्का सर्व सपत्करी, दूसरी पौरुषघ्नी, तीसरी वृत्तिनिष्का है, जो साधु परिग्रहका त्या गी, धर्मध्यान सयुक्त, जिनाज्ञासहित होनेसें पट्कायके आरनसें रहित, तिसकी निष्का सर्व सपत्करी है, तथा जो साधु तो बन गया है, परंतु साधु के गुण उसमें नहि हैं, तथा जो गृहस्थावासमें लष्ट पुष्ट पट्कायका आर जी पहिमावदे बिनाका श्रावक, तथा और गृहस्थ जो मांगकें खावे, तिसकी पौरुषघ्नी निष्का है, वो पुरुष धर्मकी लाघवताका करने वाला है, पूर्वजन्ममें जिनाज्ञा खमने वाला है, आगे अनंत जन्म लग डूखी रहेगा, तथा जो निर्धन, अधा, पांगला, असमर्थ, और कोइ काम करने समर्थ नहीं, वो जीख मांगकें खावे, तो तीसरी वृत्तिनिष्का है, यह निष्का डुष्ट नहीं इस जी खके मांगनेसें लघुतावि धर्मके दूषण नहीं होते हैं, क्योंकि जो इनको दे ता है, वो अनुकंपा (दया) करकें देता है, देनेवाला पुण्य उपार्जन करता है, इस वास्ते गृहस्थको जीख न मांगनी चाहिये धर्मो श्रावकको तो वि शेष करकें जीख न मांगनी चाहिये, निष्का मांगनेसें धर्मकी निंदा, अरु ध र्मकी निंदासें डर्लेनबोधी होता है, जीख मांगनेसें खदर पूर्ण तो हो जा ता है, परंतु लक्ष्मी नहीं होती है ॥ यत ॥ लक्ष्मीर्वसति वाणिज्ये, किंचिद स्ति च कपेणे ॥ अस्ति नास्ति च सेवाया, निष्काया न कदाचन ॥ १ ॥

मनुस्मृतिके चौथे अध्यायमेंनी लिखा है, कि जब वाणिज्य करे, तब कष्टमें सहायक, पूजीका बल, स्वनाग्योदय, वेश, काल, देखकें करे, वाणिज्य करणे लगे, तब पहिला थोड़ा करे, पीछें लग्न जाणे, तो यथायोग्य करे, कदाचित् निर्वाहके न दूये खरकर्मजी करे, तोजी श्रमणे थापकों निवृत्ता दूया करे, बिना देखा बिना परीक्षाके सोदा न लेवे, जा सोदा सबह बाला

होवे, वो बहुतोंके साथ मिल कर लेवे, जहां स्वचक्र परचक्रादिका उपद्रव न होवे, अरु धर्म सामग्री होवे, तिस क्षेत्रमें व्यापार करे

कालसें अष्टाही तीन, पर्वतिथिके दिन व्यापार न करे, जो वस्तु वर्षा कालके साथ विरोधि होवे, सो त्यागे, जावसेंती जो ह्मत्रिय जातिका व्यापारी राजा प्रमुख होवे, तिसके साथ व्यापार न करे, अपणे विरोधीकों उधारा न देवे, तथा नट विट वेश्या, जुथारी प्रमुखकों तो विशेष करके उधारा नहीही देवे, हथोपारबंधके साथ तथा व्यापारी ब्राह्मणके साथ छेन देन न करे, मुख्य तो अधिक मोलका गहना रखके व्याज देवे, क्योंकि वस्से मांगनेका क्लेश, विरोध, धर्महानी, धरणादिक कष्ट नहीं होते हैं, जे कर ऐसे निर्वाह न होवे, तदा सत्यवादीकों व्याज उधार देवे, व्याज नी एक, दो, तीन, चार, पांच प्रमुख सैंकड़े पीछे महीनेमें नले लोक जि सकों निंदे नहीं, ऐसा लेवे,

जेकर देना होवे, तदा करार उपर बिन मांग्याही देना चाहियें, कदा चित् निर्धनपणसें एकवारमें दे न सके, तो किशत प्रमाणें जरूर दे देवे, क्योंकि देना किसीका न रखना चाहियें ॥ यद्भक्त ॥ धर्मरिंजे कृणुष्वेदे, कन्यादाने धनागमे ॥ शत्रुघातेऽग्निरोगे च, कालक्षेपं न कारयेत् ॥१॥ जे कर देना न उत्तरे, तब उसका नौकर रहकर नी देना उत्तर देवे, नहीं तो नवांतरोंमें उसका कर्मकर (चाकर) महिष, बैल, उट, खर, खच्चर, घोडा प्रमुख ब न कर देना पड़ेगा, छेने वालाजी जब जान लेवे, कि यह देने समर्थ नहि तब बिलकुल मागना ठोड देवे, ऐसे कहै कि जब तू वेने समर्थ होवेगा, तब वे देना, नहीं तो यह धन मैं अपणें धर्ममें लगाया, वहीमें लिख ले ता हू, तेरेसें मैं कुछ नहीं लेवुगा ?

श्रावककों मुख्यवृत्ति तो धर्मांजनोंसेंही व्यवहार करना चाहियें, क्योंकि दोनों पास धन रहेगा तो धर्ममें लगेगा, अरु किसी स्नेह पास धन रहि जावे, तदा व्युत्सर्जन कर देवे, व्युत्सर्जन करा पीछे जेकर वो स्नेह फेर न दे देवे, तदा वो धन धर्ममें खरचणे वास्ते सघकों सौंप देवे, अरु व्युत्सर्जन करा है, ऐसाजी कह देवे, ऐसेही जो कोइ वस्तु खोइ जावे, अरु दुदनेसें न मिले, तो तिस वस्तुफाजी व्युत्सर्जन कर देवे, पीछे कदाचित् अपने पास

धनहानी हो जावे, धनकी अप्राप्ति हो जावे, तोजी खेद न करे, क्योंकि सेवक न करणां, यही लक्ष्मीका मूल कारण है,

बहुत धन जाता रहे, तोजी धर्म करणोंमें आलस न करे, क्योंकि पदा श्रु आपत् वहे आदमीकोही होती है, सदा एक सरिखे दिन के नहीं जाते हैं, पूर्व जन्म जन्मांतरके पुण्यपापोदयसे सपदा, होती है, इस वास्ते धैर्यका अवलबनां श्रेष्ठ है, यदा अनेक उपाय नैसेंजी दरिद्र दूर न होवे, तदा किसी नाग्यवान्का आधार लेवे, अर्थात् सांजो बनके व्यवहार करे, क्योंकि काष्ठके सग लोहाजी तर जाता है

जे कर बहुता धन हो जावे, तदा अजिमान न करे, क्योंकि लक्ष्मीके साथ पांच वस्तु होती हैं, १ निर्वयत्व, २ अर्हकार, ३ तृष्णा, ४ कठिन बचन बोलनां, ५ वेश्या, नट, विट, नीच पात्र, वध्नन होते हैं, इस वास्ते बहुत धन हो जावे, तो इन पांचोंको अवकाश न देवे, किसीके साथ लडाइ न करे, जबरदस्तेके साथ तो विशेष करके लडाइ नहिं करे, तथा १ धनवत, २ राजा, ३ पट्टवाला, ४ बलवान्, ५ दीर्घरोषी, ६ गुरु, ७ नीच, ८ त पस्वी, इन आठोंके साथ वाद न करे, जहां तक नरमाइसें काम बने, तहां तक कठिनाइ न करे, लेने देनेमें त्रांति जूलादिकसें अन्यथा हो जावे, तो विवाद न करे, किंतु न्यायसें जगहा मिटावे, न्याय करनेवालेकोंजी नि लोंजी पट्टपात रहित होनां चाहिये, तथा जिस वस्तुके महंगे होनेसें पर्यायको पीडा होवे, ऐसी वस्तुके महंगे होनेकी चिंता न करे, परंतु कर्मयोगसें दुर्निष्काविक हो जावे, तबजी सौदेमें डुणे तिणे जान हो जावे, तदा अन्नमें अधिक न लेवे, तथा एक, दो, तीन, चार, पांच रूपये सैंकडेसें अधिक व्याज न लेवे, किसीका गिर पडा धन न लेवे, तथा का लांतरमें क्रयविक्रयादिमें देशकालादि अपेक्षा उचित शिष्टजन अनिवित जान होवे, सो लेवे, यह कथन प्रथम पंचाशकसूत्रमें लिखा है तथा खोटा तोल, खोटा मापा, न्यूनाधिक वाणिज्य रसमें जेल सजेन न करे, वस्तुका अनुचित मौल, अनुचित व्याज, लचा अर्थात् घूस, कोढवट्टी न लेवे, घसा दूध्रा तथा खोटा रूपकादि किसीको खरेमें न देवे, दूसरोंके व्या पारमें जग न करे, ग्राहक न बकावे, वानकी थौर न दिखावे, अघेरा करके वस्तु न बेचे, जाली खत पत्रादि न बनावे, इत्यादि परवचन प



एाकों वर्जे, सर्वथा प्रकारें व्यवहार शुद्धि करे, क्योंकि व्यवहार शुद्धिही गृहस्थ धर्मका मूल है

तथा स्वामिदोह, मित्रदोह, विश्वासघात, बालदोह, वृद्धदोह, देवगृहदोह न करे, थापणमोसा न करे, ये सर्व महापापके काम वर्जे, तथा कूडी साह्वी, रोष, विश्वासघात, कृतघ्नपणा, ये चारो, कर्मचमालपणा है, तिसको वर्जे, फूठ जो है, सो सर्व पापोसे बड़ा पाप है, इस वास्ते फूठ सर्वथा न बोले, न्यायसे धन उपार्जन करे, अरु जो अन्यायी लोक सुखी दिखते हैं, वो अन्यायसे सुखी नहीं है, किंतु उनके पूर्व जन्मके पुण्यके फलसे सुखी है, क्योंकि कर्मफल चार तरेंका है ॥ यदाद्धर्मघोषसूरीपादा ॥ एक पुण्यानुबधी पुण्य है, दूसरा पापानुबधी पुण्य है, तीसरा पुण्यानुबधी पाप है, चौथा पापानुबधी पाप है यह चार प्रकार जो है, तिनको किंचित् विस्तार पूर्वक कहते हैं

१ जिसने जिनधर्म नहीं विराध्या है, किंतु सपूर्ण आराधकें जो ससारमें जवांतरमें माहा सुखी धनाढ्य उत्पन्न होवे, नरत बाहुबलकी तरें, सो पुण्यानुबधी पुण्य है

२ जो पुरुष नीरोगादि गुणयुक्त होवे, अरु धनाढ्यनी होवे, परंतु कोणिकराजाकी तरें पाप करणोंमें तत्पर होवे, यह पुण्य पूर्व जन्ममें अज्ञान कष्ट करणोंसे होता है, सो पापानुबधी पुण्य है

३ जो पुरुष पापके वट्यसें दरिद्री अरु दुखी होवे, परंतु श्रीजिनधर्ममें बड़ा अनुरक्त होवे, धर्म करणोंमें तत्पर होवे, सो पुण्यानुबधी पाप है, यह दुमकमदुर्षिवत् पूर्व जन्ममें लेश मात्र ब्यादि सुरुत करणोंसे होता है

४ पापी चम कर्मका करनेवाला निर्धर्मो, निर्वय, पाप करके पश्चात्ताप रहित यह पुरुष दुखीया है तोनी पाप करणोंमें तत्पर है, सो पापानुबधी पाप है, काल सौकरिकादिवत्

बाह्य जो नव प्रकारका परिग्रह रूप रुद्धि है, अरु अतरंग जो आत्माकी अनंत गुण रूप रुद्धि है, सो पुण्यानुबधी पुण्यसें होती है, ऐसें जेकर कोऽ जीव पापानुबधी पुण्यके प्रभावसे इस लोकमें सुखी दीखता है, तोनी आगले जन्ममें महा आपदा पावेगा, अरु जो मद्सूलकी चोरी है, सो स्वामिदोहमें है, यह चोरी इस लोक अरु परलोकमें अनर्थकी दाता

धनहानी हो जावे, धनकी अप्राप्ति हो जावे, तोनी खेद न करे, क्योंकि न करणां, यही लक्ष्मीका मूल कारण है,

बहुत धन जाता रहे, तोनी धर्म करणोमें आलस न करे, क्योंकि पदा अरु आपत्त बड़े आदमीकोही होती है, सदा एक सरिखे दिन के नहीं जाते हैं, पूर्व जन्म जन्मातरके पुण्यपापोदयसँ सपदा, होती है, इस वास्ते धैर्यका अवलवनां श्रेष्ठ है, यदा अनेक उपाय नेसँनी दरिद्र दूर न होवे, तदा किसी जाग्यवान्का आधार लेवे, सांजी वनके व्यवहार करे, क्योंकि काष्ठके सग लोहाजी तर जाता है

जे कर बहुता धन हो जावे, तदा अजिमान न करे, क्योंकि लक्ष्मीके साथ पांच वस्तु होती हैं, १ निर्दयत्व, २ अहंकार, ३ तृष्णा, ४ कठिन बचन बोलनां, ५ वेश्या, नट, विट, नीच पात्र, बहजन होते हैं, इस वास्ते बहुत धन हो जावे, तो इन पांचोंको अवकाश न देवे, किसीके साथ लड़ाई न करे, जबरदस्तके साथ तो विशेष करके लड़ाई नहिं करे, तथा १ धनवत, २ राजा, ३ पक्षुवाला, ४ बलवान्, ५ दीर्घरोशी, ६ गुरु, ७ नीच, ८ त पक्षी, इन आठोंके साथ वाद न करे, जहां तक नरमाइसँ काम बने, तहां तक कठिनाई न करे, लेने देनेमें त्रांति नूलादिकसँ अन्यथा हो जावे, तो विवाद न करे, किंतु न्यायसँ जगहा मिटावे, न्याय करनेवालेकोनी नि लौंजी पक्षपात रहित दोनों चाहियें, तथा जिस वस्तुके मद्द्गे होनेसँ पर्यायको पीडा होवे, ऐसी वस्तुके मद्द्गे होनेकी चिंता न करे, परंतु कर्मयोगसँ दुर्निष्ठादिक हो जावे, तबनी सौदेमें डूणे तिणो लाज हो जावे, तदा अन्नमें अधिक न लेवे, तथा एक, दो, तीन, चार, पांच रूपइये सैंकडसँ अधिक व्याज न लेवे, किसीका गिर पडा धन न लेवे, तथा का लांतरमें क्रयविक्रयादिमें देशकालादि अपेक्षा उचित शिष्टजन अनिवित लाज होवे, सो लेवे, यह कथन प्रथम पंचाशकसूत्रमें लिखा है तथा खोटा तोल, खोटा मापा, न्यूनाधिक वाणिज्य रसमें जेल सजेला न करे, वस्तुका अनुचित मौल, अनुचित व्याज, लघा अर्थात् घूस, कोठवट्टी न लेवे, घसा दूध्या तथा खोटा रूपकादि किसीको खरेमें न देवे, दूसरोंके व्या पारमें जंग न करे, ग्राहक न बकावे, वानकी और न दिखावे, अघेरा करके वस्तु न बेचे, जाली खत पत्रादि न बनावे, इत्यादि परवचन प

णाकों वर्जें, सर्वथा प्रकारें व्यवहार छुड़ि करे, क्योंकि व्यवहार छुड़िही ए दृश्य धर्मका मूल है

तथा स्वामिज्ञोह, मित्रज्ञोह, विश्वासघात, बालज्ञोह, वृद्धज्ञोह, वेवगु रुज्ञोह न करे, थापणमोसा न करे, ये सर्व महापापके काम वर्जें, तथा कूडी साह्नी, रोप, विश्वासघात, कृतघ्नपणा, ये चारो, कर्मचमालपणा है, तिसकों वर्जें, छूठ जो है, सो सर्व पापोसें बड़ा पाप है, इस वास्ते छूठ सर्वथा न बोले, न्यायसें वन उपाचन करे, अरु जो अन्यायी लोक सुखी दिखते है, वो अन्यायसें सुखी नहीं हैं, किंतु उनके पूर्व जन्मके पुण्यके फलसें सुखी है, क्योंकि कर्मफल चार तरेंका है ॥ यदाहुर्धर्मघोषसूरिपादा ॥ एक पुण्यानुबधी पुण्य है, दूसरा पापानुबधी पुण्य है, तीसरा पुण्यानुबधी पाप है, चौथा पापानुबधी पाप है यह चार प्रकार जो है, तिनकू किंचित् विस्तार पूर्वक कहते है

१ जिसने जिनधर्म नहीं विराध्या है, किंतु सपूर्ण आराधकें जो संसारमें नवांतरमें माहा सुखी बनाढ्य उत्पन्न होवे, जगत बाहुबलकी तरें, सो पुण्यानुबधी पुण्य है

२ जो पुरुष नीरोगादि गुणयुक्त होवे, अरु धनाढ्यनी होवे, परंतु कोणिकराजाकी तरें पाप करणोंमें तत्पर होवे, यह पुण्य पूर्व जन्ममें अज्ञान कष्ट करणोंसें होता है, सो पापानुबधी पुण्य है

३ जो पुरुष पापके उदयसें दरिडी अरु दुखी होवे, परंतु श्रीजिनधर्ममें बड़ा अनुरक्त होवे, धर्म करणोंमें तत्पर होवे, सो पुण्यानुबधी पाप है, यह दुमकमदुर्षिवत् पूर्व जन्ममें लेश मात्र दयादि सुरुत करणोंसें होता है

४ पापी चम कर्मका करनेवाला निर्धर्मो, निर्दय, पाप करके पश्चात्ताप रहित यह पुरुष दुखीया है तोनी पाप करणोंमें तत्पर है, सो पापानुबधी पाप है, काल सौकरिकादिवत्

बाह्य जो नव प्रकारका परिग्रह रूप रुद्रि है, अरु अतरंग जो आत्माकी अनंत गुण रूप रुद्रि है, सो पुण्यानुबधी पुण्यसें होती है, ऐसें जे कर कोऽ जीव पापानुबधी पुण्यके प्रभावसें इस लोकमें सुखी दीखता है, तोनी आगले जन्ममें महा आपदा पावेगा, अरु जो महसूलकी चोरी है, सो स्वामिज्ञोहमें है, यह चोरी इस लोक अरु परलोकमें अनर्थकी दाता

है जिसमें दूसरोंको पीडा होवे, ऐसे व्यवहार न करे ॥ यत् ॥ इद्वज्जा  
वृत्त । शावधेन मित्र कपटेन धर्म, परोपतापेन समृद्धिनाय ॥ सुखेन विद्या परुषे  
ण नारी, वाठति ये व्यक्तमपमितास्ते ॥ १ ॥ तथा जिसतरे लोकोंको राम  
जाव होवे तैसे यत्न करे ॥ यत् ॥ वशस्थ वृत्त ॥ जितेद्दियत्त्व विनयस्य का  
रण, गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते ॥ गुणप्रकर्षेण जनानुरज्यते, जनानुरागप्र  
जवाहि सपद ॥ १ ॥ तथा धनदानिवृद्धि, सग्रहादि, गुह्य, दूसरोके आर्मे  
प्रकाश न करे ॥ यत् ॥ अनुपपृष्ट वृत्त ॥ स्वकीय दारमाहार, सुकृतं इविण  
गुण ॥ दुष्कर्म मर्म मत्र च, परेषां न प्रकाशयेत् ॥ १ ॥ तथा ऊवनी न  
बोजे, जेकर राजा गुरु आदिक पूठे, तो सत्य कह वेवे सत्य बोजना सोही  
पुरुषकी परमवशा है

तथा यथार्थ कहनेसे मित्रका मन दरे, तथा बांधव जनोको सन्मानसे  
वश करे, तथा स्त्रीको प्रेमसे वश करे, तथा चाकरोको दान देनेसे वश  
करे, तथा दाक्षिण्यता करके इतर लोकोंका मन दरे, तथा किसी जगे अ  
पणे कार्यकी सिद्धि करने वास्ते पुष्ट जनोकोनी अगुवे, (आगही) करे,  
तथा जिस जगे प्रीति होवे, तहां छेने देनेका व्यापार न करे, यह क  
थन सोमनीतिमेंनी है

तथा साक्षी विना मित्रके घरमेंनी धनादिक रखना न चाहिये, क्योंकि  
लोन बडा दुर्दात है, तथा जो धन रखनेवाला मर जावे तो वो धन उसके  
पुत्रादिकों दे देना चाहिये, जे कर धन रखने वालेका कोइनी सबधी न  
होवे, तब वो धन सर्वलोकोंके समस्त धर्मस्थानमें लगा देवे, तथा आ  
वक, देवगुरु, चैत्य, जिनमदिरकी चाहे सच्ची, चाहे ऊवनी शपथ अर्थात्  
सौगद न खावे, तथा दूसरोका साक्षीनी न बने, यत् कर्णसिक रूपि क  
हता है ॥ श्लोक ॥ अनीश्वरस्य दे नार्ये, पथि क्षेत्र दिग्ग रुषि ॥ प्रातिना  
व्य च साक्ष्य च, पंचानर्या स्वयं कृता ॥ १ ॥

तथा श्रावक मुख्यवृत्तिसे तो जिस गाममें रहे, तहांही व्यापार करे, क्यों  
कि ऐसे करनेसे कुटुंबका अविद्योग तथा घरका कार्य अरु धर्मकार्यादिक सर्व  
बने रहते हैं, कदापि अपने गाममें निर्वाह न होवे, तदा निकट देशांतरमें  
व्यवहार करे, जहांसे कोइ योग्य काम पड़े तो शीघ्र घरमें आ जावे, अ  
सा कौन पामर है । कि - जिसका स्वदेशमें निर्वाह हावे, तोनी परदे

शमें जावे, उक्तमपि ॥ जीवतोपि मृता पच, श्रूयंते किल नारते ॥ दरिद्रा  
व्याधितो मूर्ख, प्रवासी नित्यसेवक ॥ जे कर निर्वाह न होवे, तदा आप  
तथा पुत्रादिकों परदेशमें न नेजे, किंतु सुपरीक्षित गुमास्तेकों नेजे, जे  
कर स्वयमेव देशांतरमें जावे, तदा नला मुहूर्त शुक्ल निमित्त देखकें अरु  
देव गुरुकों बदना करके मंगलपूर्वक जाग्यवान् साथके बीचमें निडादि प्र  
माद वर्जकें कितनेक अपने ज्ञातियोंकों साथ ले कर जावे, क्योंकि जाग्य  
वान्के साथ जाता विघ्न टल जाता है, तथा लेना, ठेना, गडा दूवा धन,  
सर्व, पिता, नाइ, पुत्रादिकोंकों कह जावे, अपणे सवधीयोंको नली शिक्षा  
दे जावे, बहुमान पूर्वक सर्वकों बोलाके जावे, परंतु जो जीवनेकी इच्छा  
होवे, तो देव गुरुका अपमान करकें, किसीको निर्भ्रंशिके, स्त्रीयादिको ता  
डना कूटना करकें, बालको रुदन करवा करकें न जावे कदापि कोइ पर्व  
महोत्सवादिकका दिन निकट होवे, तदा उत्सव करके जावे ॥ यत ॥ उत्स  
वमशन सर्व, प्रगुण चोपेक्ष्य मंगलमंगेष ॥ असमापिते च सूतक, युगेंऽग  
नर्त्तौ च नो यायात् ॥ १ ॥ तथा दूध पीकें, मैथुन करकें, स्नान करकें, अ  
पणी स्त्रीको हणके, वमन करकें, शूककें, रुदन करकें, कठिन शब्द सु  
णके, गालीया सुणके, प्रदेशको न जावे, तथा शिर मुमन करवाकें, आंसु  
गिराकें, खोटे शुक्लके हूयें ग्रामांतर न जावे

तथा कार्यके वास्ते जब चले, तब जौनसा स्वर बढ़ता होवे, उस पा  
सैंका पग पहिला उठाकें धरे, जिस्से कार्यसिद्धि होवे, तथा रोगी, बूढा,  
ब्राह्मण, अधा, गौ, पूजनिक, राजा, गर्जवती स्त्री, नार उठानेवाला, इनकों  
कुठ दे कर ग्रामांतरमें जावे, तथा गान्ध पक्का वा कच्चा पूजा योग्य मंत्र  
ममल, इनकों त्यागे नहीं, तथा स्नानका जल, रुधिर, मुरदा, शूंक, श्लेष्म,  
विष्टा, मूत्र, बलती अग्नि, साप, मनुष्य, शस्त्र, इनकों छेदये नहीं, तथा  
नदीके कांठे, गौश्योंके गोकुलमें, बड वृक्षके देव, जलाश्रयमें, अरु कूपकांठे,  
इतने जगो पर विष्टा न करे, तथा रात्रिको वृक्ष देव न रहे, उत्सव, सूतक,  
पूरा हूये परदेशको जावे, विना साथके न जावे, दासके साथ न जावे,  
मध्यान्हमें तथा अर्धरात्रिमें मार्गमें न चले, तथा क्रूर प्रकृतिवाला मनु  
ष्य, कोटवाल, चुगल, दरजी, धोबी प्रमुख अरु कुमित्र, इतनेके साथ  
गोष्टि न करे, इनोके साथ थकालमें चले नहीं, तथा महिष, गर्जन, अरु

गौ, इनकी अस्वारी न करे, तथा हाथीसे हजार हाथ, गाड़ेसे पांच हाथ अरु घोड़े तथा सिंग वाले जनावरोसेनी पांच हाथ दूर रहे, तथा खरबी बिना रस्तेमें न चले, बहुत सोवे नहि, रस्तेमें किसीका विश्वास न करे, एकीजा किसीके घरमें न जावे, जीर्ण नावां ऊपर चढ़े नहीं, एकला नदीमें न पैसे, कठिन जगामें उपाय बिना न जावे, अगाध पाणीमें प्रवेश न करे, जहा बहुतते मोयी होवे, अरु बहुतते सुखोके इत्तक होवे, तथा जहा धणो सूख होवे ऐसे सथवाराके साथ कदापि परदेश न जावे, तथा बाधनेके, मारणेके, जुथ्या खेलनेके, पीडाके, खजानेके, अतेउरके, स्थान में न जावे, तथा बुरे स्थानमें, श्मशानमें, शून्यस्थानमें, चौकमें, शूके घासमें कूड़ेमें, ऊची नीची जगामें, ठकड़डीमें, रुद्धायमें, पर्वतायमें, नदीके कांठमें, कूपके कांठमें, इतने स्थानोंमें वैवे नहीं, तथा जो जो कृत्य जिस जिस कालमें करना है, सो करे, परंतु गड़े नहि

तथा पुरुषकों जो जला वस्त्रादि पहननेका आभार चाहियें सो न गड़े, परवेशमें तो विशेष करके आभार, नहीं गड़नां, क्योंकि आभारसे अनेक कार्य सिद्ध हो जाते हैं, तथा जो कार्य करणां सो पंच परमेश्वरस्मरण पूर्वक तथा गौतमादि गणधरोका नामग्रहण पूर्वक करे, तथा देव गुरु की जक्ति वास्ते धनकी कल्पना करे, क्योंकि जब धन कमावनेका प्रारंभ करनां, तबही नफेमेंसू इतना हिस्सा सात क्षेत्रमें लगावुगा ? ऐसी जावना जरूर करनी चाहियें

जदा ज्ञान हो जावे, तदा चिंता अनुसारें मनोरथ सफल करे, क्योंकि व्यापारका फल यह है, कि —धन होना, अरु धन होनेका फल यह है, कि धर्ममें धन लगानां, नहीं तो व्यापार करनां सो नरक तिर्यचगति होनेका कारण है, जे कर धर्ममें खरचे, तो धर्मधन कहा जावे, जेकर नहीं खरचे तो पापधन कहा जावे क्योंकि रुद्धि तीन प्रकारकी है, एक धर्मरुद्धि, दूसरी जोगरुद्धि, तीसरी पापरुद्धि उसमें जो धर्मकार्यमें लगावे, सो धर्मरुद्धि तथा जो शरीरके जोगमें आवे सो जोगरुद्धि अरु धर्म तथा जोगसे जो रहित, सो पाप रुद्धि जाननी, इस वास्ते नित्य प्रत्ये स्वधनकों दानादि धर्ममें लगानां चाहियें, जेकर थोड़ा धन होय तो थोड़ा लगाने, क्योंकि किसीको इष्टानुसारिणी शक्ति होती है तथा धन उत्पन्न करनेका उपाय

नित्य करना चाहियें, परंतु अत्यंत लोभ न करना चाहियें, तथा धर्म, अर्थ, अरु काम यथा अवसरमें सेवनां, परंतु अत्यंत कामासक्त न होनां चाहियें, अरु जो वन उत्पन्न करना सोनी न्यायसे उत्पन्न करना चाहियें, यहां न्यायार्जित वन सत्पात्रमें देनां, लगानां, तिसके चार जग है, सो लिखते हैं

१ न्यायोपार्जित सत्पात्रविनियोग रूप प्रथम जग पुण्यानुबधी पुण्यका हेतु होनेसे वैमानिक देवतापणा नोगनूति मनुष्यपणा सम्यक्त्वादिककी प्राप्ति निकट मोक्ष फल है, धनसार्थवाह तथा शालिजडादिवत्

२ न्यायोपार्जित असत्पात्रविनियोगरूप दूसरा जग पापानुबधी पुण्यका हेतु होनेसे नोग मात्र फलनी है, तोनी डेकड विरम फल है, जैसे लक्ष्य नोज्यकरणे वाला ब्राह्मण बहुत नवोंमें किंचित्सुख नोगके सेवनक ना मा सर्वांग सुलक्षणो नष्ट हस्ती हुआ.

३ अन्यायसे आया सत्पात्रपरिपोषरूप तीसरा जग है, तिसका अश्वे खेतमें जैसे सामक वो देने वत् फल है, यह सुखानुबधी होने करके राजके कारनारीयोंके बहुत आरजोपार्जित धनवत् है परंतु ऐसा धनजी धर्ममें लगावे, तो अज्ञा है, जैसे आनूके पर्वतोपरि जिनमदिर बनाने वाले विमलचंद्र अरु तेजपाल मंत्रीकी तरें अज्ञा है, जेकर ऐसा धनजी धर्ममें न लगावे, तो दुर्गति अरु अपकीर्तिका फल है, मम्मन शेववत्

४ अन्यायार्जित कुपात्रपोष रूप चौथा जग है, यह जग सर्वथा प्रका कारें त्यागने योग्य है, क्योंकि अन्यायार्जित जो धन कुपात्रकों देनां, सो ऐसा है, कि - जैसा गौकों मारके उसके मांससे कागोंका पोषण करना, इस वास्ते गृहस्थकों न्यायसे वनार्जन करना चाहिये

आश्विनकृत्य सूत्रमें लिखा है, कि - व्यवहारशुद्धि जो है, सोही धर्मका मूल है, जिसका व्यापार शुद्ध है, उसका वनजी शुद्ध है, जिस का धन शुद्ध है, उसका आहार शुद्ध है, जिसका आहार शुद्ध है, उसकी देह शुद्ध है, जिसकी देहशुद्ध है, वो धर्मके योग्य है, ऐसा पुरुष जो जो कृत्य करे, सो सर्व सफल होवे, अरु जो व्यवहार शुद्ध न करे, वो धर्मकी निंदा करानेसे सपरकों दुर्लजबोधी करे, इस वास्ते व्यवहार शुद्धि जरूर करनी चाहियें ॥ इति व्यवहारशुद्धिस्वरूप समाप्त ॥

तथा देशादि विरुद्ध त्यागे, सो देश, काल, राजविरुद्धादि परिहरे,

गौ, इनकी श्रमवारी न करे, तथा हाथीसे हजार हाथ, गाड़ेसे पांच हाथ श्रम घोड़े तथा सिंग वाले जनावरोसेनी पांच हाथ दूर रहे, तथा खरषी विना रस्तेमें न चले, बहुत सोवे नहि, रस्तेमे किसीका विश्वास न करे, एकीला किसीके घरमे न जावे, जीर्ण नावा कपर चढ़े नहीं, एकला नदीमें न पैसे, कठिन जगामें उपाय विना न जावे, अगाध पाणीमें प्रवेश न करे, जहा बहुते क्रोधी होवे, श्रम बहुते सुखोके इत्क होवे, तथा जहा घणे सूम होवे ऐसे सथवाराके साथ कदापि परदेश न जावे, तथा बाधनेके, मारणेके, जुथ्या खेलनेके, पीडाके, खजानेके, अंतैउरके, स्थान में न जावे, तथा बुरे स्थानमें, श्मशानमें, शून्यस्थानमें, चौकमें, शूके घातमें कूहेमें, ऊंची नीची जगामें, उकरूडीमें, वृद्धाश्रममें, पर्वताश्रममें, नदीके काठमें, कूपके काठमें, इतने स्थानोंमें वैवे नहीं, तथा जो जो कृत्य जिस जिस कालमें करना है, सो करे, परंतु गड़े नहि

तथा पुरुषकों जो जला वस्त्रादि पहननेका आभार चाहिये सो न गड़े, परवेशमें तो विशेष करके आभार, नहीं गड़ना, क्योंकि आभारसे अनेक कार्य सिद्ध हो जाते हैं, तथा जो कार्य करणा सो पच परमेश्वरस्मरण पूर्वक तथा गौतमादि गणेशोंका नामग्रहण पूर्वक करे, तथा देव गुरु की जक्ति वास्ते धनकी कठपना करे, क्योंकि जब धन कमावनेका प्रारंभ करना, तबही नफेमेंसू इतना हिस्सा सात क्षेत्रमें लगावुगा ? ऐसी जावना जरूर करनी चाहिये

जदा जान हो जावे, तदा चिंता अनुसारें मनोरथ सफल करे, क्योंकि व्यापारका फल यह है, कि —धन होना, श्रम धन होनेका फल यह है, कि धर्ममें धन लगाना, नहीं तो व्यापार करना सो नरक तिर्य्यचगति होनेका कारण है, जे कर धर्ममें खरचे, तो धर्मधन कहा जावे, जेकर नहीं खरचे तो पापधन कहा जावे क्योंकि रुद्धि तीन प्रकारकी है, एक धर्मरुद्धि, दूसरी जोग रुद्धि, तीसरी पापरुद्धि उतमें जो धर्मकार्यमें लगावे, सो धर्म रुद्धि तथा जो शरीरके जोगमे आवे सो जोगरुद्धि श्रम धर्म तथा जोगसे जो रक्षित, सो पाप रुद्धि जाननी, इस वास्ते नित्य प्रत्ये स्वधनकों दानादि धर्ममें लगाना चाहिये, जेकर थोडा धन होय तो थोडा लगाने, क्योंकि किसीको इष्टानुसारिणी शक्ति होती है तथा धन उत्पन्न करनेका उपाय



मोंका वेप रखना, मैले वस्त्र पहिरने, इत्यादि लोकविरुद्ध है यह सर्व इस लोकमें अपयशका कारण है ॥ यद्वाच वाचकमुख्य ॥ लोक खल्वाधार, सर्वेषां धर्मचारिणां यस्मात् ॥ तस्माद्लोकविरुद्ध, धर्मविरुद्ध च सत्याज्यं ॥ १ ॥ अर्थ—उमास्वाति पूर्वधारी आचार्य कहते हैं, कि—सर्वधर्म करने वालोके लोकजन समुदाय आधार है, तिस वास्ते लोकविरुद्ध अरु धर्म विरुद्ध यह दोनों, त्यागने योग्य हैं, क्योंकि अैसें करनेसे धर्मका सुखे निवाह होता है, लोक विरुद्धके त्यागनेसें सर्व लोकोको वद्वज्न होता है, अरु जो लोकोको वद्वज्न होना है, सोइ सम्यक्त्व तरुका बीज है

अथ धर्म विरुद्ध लिखते हैं मिथ्यात्वकी करणी, सर्व गौ आदिकको निर्दय होके ताड़नां, बांधनां, जू, मांकडादिकों निराधार गेरणे, धूपमें गेरणे, शिरमें कपीसें लीख फोडनी, उष्ण कालमें तथा शेष कालमे चौड़ा, लंबा, गाढा गलनां पाणी गलनेके वास्ते न रखनां, पाणी ठानके पीठें जीवोको युक्तिसें पाणीमे न गेरनां, तथा अन्न, इधन, शाक, दाल, तांबूल, अरु फलादिकोंको विना शोधे खानां, तथा अकृत, सोपा री, खारीक, वाब्द, उलि, फली प्रमुख सपूर्ण मुखमें गेरे, टूटीके रस्ते, तथा पाणी आदिकको धारा बांध कर पीवे, तथा चलतेमे, बैठनेमें, स्नान करतां, हरेक वस्तु रखतां, लेतां, रांतां, धान ठडता, पीसतां, औपधि घसतां, तथा सूत्र, श्लेष्म, कुरलादि, काजल, तंबोलका उगाल गेरतां, उपयोगसें न करे, तथा धर्ममे अनादर करे, देव, गुरु, अरु साधर्मिसें देष धरे, जिनमदिरका धन खावे, अधर्मकी सगति करे, धर्मियोंका उपहास करे, कषाय बहुलता होवे, तथा बहुत पापकारी क्रय विक्रय खरकर्म करनां, पापकी नौकरी करनी, इत्यादि सर्व धर्मविरुद्ध है, यह पांच प्रकारका विरुद्ध श्रावककों त्यागनां चाहियें

अथ उचित आचरण कहते हैं उचित आचरण सो, पितादि नव प्रकारकी है स्नेहवृद्धि कीर्त्यादि हेतु, सो हितोपदेशमाला ग्रन्थसे लिखते हैं एक पिताके साथ उचित, दूसरा माताके साथ उचित, तीसरा नाइयोंके साथ, चौथा स्त्रीके साथ, पांचमा पुत्रके साथ, ठछा स्वजनके साथ, सातमा गुरुके साथ, आठमा नगरवालोंके साथ, नवमा परतीर्थी अर्थात् दूसरे मतवालोंके साथ, यह नवके साथ उचित आचरण करणां,

यह कथन द्वितोपवेशमालामे लिखा है, कि देश, काल, राज, अरु विरुद्ध जो त्यागे, सो पुरुष सम्यग्-धर्मको प्राप्त होता है

तिनमे देशविरुद्ध तो जैसे कि—सौबीरदेशमे खेती करणी, जाट देशमे दिरा बनानी, यह देश विरुद्ध है, तथा औरजी जो जिस देशमें नोके अनाचीसु है, सो तिस देशमे विरुद्ध जानना जाति कुलादि जो अनुचित होवे, सो देशविरुद्ध है, जैसे ब्राह्मण जातिकों सुरापान रना, तिल जूणादि बेचना, सो कुजापेक्षा विरुद्ध है, तथा जैसे मद्यपान करना, तथा और देशवालोके थागे और देशवालोंकी निंदा रणी, यहजी देशविरुद्ध है

तथा कालविरुद्ध, सो जैसे हिमालयके पास अत्यंत शीतगर्मी बगल तथा मरुदेशमें वर्षातमें अत्यंत पिबिल (पंक) सयुक्त दक्षिण समुद्रके पर्यंत जागोमें, तथा अति छर्जिकमे, दो राजाओंका परस्पर विरोध होनेसे, बाढने रस्ता रोका होवे, छरुत्तार महाअटवीमें, सांजकी बेला न यमें, इतने स्थानकोंमें तैसा सामर्थ्य सदायादि दृढ बल विना जावे, तो प्राण धन नाशदि अनर्थकारि है, तथा फागुण मास पीठे तिलोंका व्यापार, तिल पीलाने, तिल नक्ष्ण करने वर्षाकृत चउमासेमें पत्र शाकका ग्रहण करणां, तथा बडुजीवाकुल नूमिमें दल फेराना, यह महा दोषका कारण है, यह सर्व कालविरुद्ध जान लेना

तथा राजविरुद्ध यह है कि—राजाके दोष बोलना, जिसको राजा माने तिसको न मानना, तथा राजाके वैरीयोसें मेल करना, राजाके शत्रुके स्थानमें लोभसे जाना, राजाके शत्रुके पासो आयेके साथ व्यापार करना, राजाके काममें अपणी इच्छासे विधि निषेध करणां,

तथा लोकविरुद्ध यह है कि—नगरनिवासियोंके साथ प्रतिकूल पणा करणां, तथा स्वामिछोड़ करणां, लोकोंकी निंदा करणी, गुणवान् अरु धनवान्की निंदा करणी, अपणी बढाई करणी, सरलकी दांसी करणी, गुणवान्में मत्सर रखनां, रुतघ्नत्व करणां, वदुत लोकोंके जो विरोधी होवे, उसकी सगति करणी, लोकमान्यकी अवज्ञा करणी, नले आचारवालेको कष्ट पड़े, तब राजी दोनों, अपनी शक्तिके दुये साधर्मिके कष्टकों दूर न करनां, देशादि उचितचारा लघन करना, थोड़े धनके हुए गु

मोंका वेप रखना, मैले वस्त्र पहिरने, इत्यादि लोकविरुद्ध है. यह सर्व इस लोकमें अपयशका कारण है ॥ यद्वाच वाचकमुख्य ॥ लोक खड्वाधार, सर्वेषां धर्मचारिणा यस्मात् ॥ तस्माद्लोकविरुद्ध, धर्मविरुद्ध च सत्याज्यं ॥ १ ॥ अर्थ -उमास्वाति पूर्वधारी आचार्य कहते हैं, कि -सर्वधर्म करने वालेके लोकजन समुदाय आधार है, तिस वास्ते लोकविरुद्ध अरु धर्म विरुद्ध यह दोनों, त्यागने योग्य हैं, क्योंकि अैसे करनेसे धर्मका सुख निवाह होता है, लोक विरुद्धके त्यागनेसे सर्व लोकोको वध्न होता है, अरु जो लोकोको वध्न होना है, सोइ तम्यक्त्व तरुका बीज है

अथ धर्म विरुद्ध लिखते हैं मिथ्यात्वकी करणी, सर्व गौ आदिको निर्दय होके ताड़नां, बांधनां, जू, मांकडादिकों निराधार गेरणे, धूपमें गेरणे, शिरमें कधीसें जीख फोडनी, उष्ण कालमें तथा श्रेष कालमें चौड़ा, लंबा, गाढा गलनां पाणी गलनेके वास्ते न रखनां, पाणी ठानके पीठें जीवोको युक्तिसें पाणीमें न गेरनां, तथा अन्न, इधन, शाक, दाल, तांबूल, अरु फलादिकोंको विना शोधे खानां, तथा अकृत, सोपारी, खारीक, वाल्ड, उलि, फली प्रमुख सपूर्ण सुखमें गेरे, टूटीके रस्ते, तथा पाणी आदिकको धारा बाध कर पीवे, तथा चलतेमें, बैवनेमें, स्नान करतां, हरेक वस्तु रखतां, लेता, रांगतां, धान ठढतां, पीसतां, औपधि घसतां, तथा मूत्र, श्लेष्म, कुरलादि, काजज, तंबोलका उगाल गेरतां, उपयोगसें न करे, तथा धर्ममें अनावर करे, वेव, गुरु, अरु साधर्मिसें देप धरे, जिनमदिरका धन खावे, अधर्मीकी सगति करे, धर्मियोंका उपहास करे, कषाय वदुलता होवे, तथा बद्धत पापकारी क्रय विक्रय खरकमें करनां, पापकी नौकरी करनी, इत्यादि सर्व धर्मविरुद्ध है, यह पांच प्रकारका विरुद्ध आवककों त्यागना चाहिये

अथ उचित आचरण कहते हैं उचित आचरण सो, पितादि नव प्रकारकी है स्नेहवृद्धि कीर्त्यादि हेतु, सो हितोपदेशमाला ग्रन्थसे लिखते हैं एक पिताके साथ उचित, दूसरा माताके साथ उचित, तीसरा नाश्योंके साथ, चौथा स्त्रीके साथ, पांचमा पुत्रके साथ, छठा स्वजनके साथ, सातमा गुरुके साथ, आठमा नगरवालोंके साथ, नवमा परतीर्थी अर्थात् दूसरे मतवालोंके साथ, यह नवके साथ उचित आचरण करणां.

१ तिनमें प्रथम पिताके साथ उचित आचरण सो मन, वचन, चरु काया करक तीन प्रकारे हे, तिसमें काया करक तो पिताके शरीरकी गृथ्रूपा करे, किंकर दासकी तरें विनय करे, विना मुखसे निकलाही पिताका वचन प्रमाण करे, पिताके शरीरकी गृथ्रूपा करे, पिताके चरण बोवे, मुछि चांपी करे, उठावे, बैठावे, देश काल उचित नोजन, शय्या, वस्त्र, शरीरविलेपनादिका योग मिलावे, विनयसे करे, परंतु आग्रहसे न करे, थाप करे, परंतु नौकरोंसे न करावे, पिताके वचन प्रमाण करणे वास्ते श्रीरामचण्डी राज्याजिपेक ठोडके बनवासमें गये, तणा पिताका वचन सुण्या अणसुण्या न करे, मस्तक धुनना, कालक्षेप करे नहीं, पिताके मनके अनुसारें प्रवर्त्ते, तथा सर्व कृत्योंमें यज्ञपूर्वक जो अग्नि पने मनमें कार्य करणां उत्पन्न हूया है, सो पिता थागे कह देवे, पिताके मनकों जो कार्य गमे, सो करे, क्योंकि माता, पिता, गुरु, बहुश्रुत, ये आराधे हूये सर्व कार्यका रहस्य प्रकाश देते हे, माता, पिता, कदाचित् कलिन वचनजी बोले, तोजी क्रोध न करे, जो जो धर्मका मनोरथ माता पिताके होवे, सो सो पूरे करे, इत्यादि माता पिताके साथ उचित आचरण करे

माताके साथ उचित आचरण, सोजी पितावत् करे, परंतु माताके मनोरथ पितासेंजी अधिक पूरे, देवपूजा, गुरुसेवा, धर्म सुनना, देशविरति अंगीकार करणी, आवश्यक करणा, सात क्षेत्रोंमें धन लगाना, तीर्थ यात्रा, अनाथ दीनका उद्धार करणा, इत्यादि माताके मनोरथ विशेष करके पूर्ण करे, क्योंकि यह करणे योग्यही है, ये पूर्वोक्त कृत्य जले त पूत पुत्रोंको इस लोकमें गुरु, माता, पिता है, सो माता पिताको जो पुत्र श्रीश्रद्धतके धर्ममें जोडे, तो ऐसा और कोइ उपकार जगत्में नहीं है, उस पुत्रने माता पिताका सर्व कृण दे दीया, और किसी प्रकारसेंजी माता पिताका वेणां पुत्र नहिं दे सकता है, यह कथन श्रीस्थानांग सूत्रमें है

अब यह मातपिताके उचित आचरणमें जो विशेष है, सो लिखते हैं माताके चित्तके अनुसार प्रवर्त्ते, क्योंकि स्त्रीका स्वभावही ऐसा होता है, कि जलदी पीडाको प्राप्त हो जाना, इस वास्ते जिस कामसें माताको पीडा होवे, सो काम न करे, क्योंकि पितासेंजी माता विशेष पूज्य है ॥ यन्मनु ॥ श्लोक ॥ उपाध्यायादशाचार्य, आचार्येभ्य शतं

पिता ॥ सहस्रं तु पितुर्माता, गौरवेणातिरिच्यते ॥ १ ॥ तथा औरोंनेंजी कदा है कि जहा तक दूध पीवे, तहां तक अपनी माता जैसे पशु जानते हैं, तथा आहार न खावे तहां तक अधम पुरुष, माता जानते हैं, तथा जहा तक घरका काम करे, तहां तक मध्यम पुरुष, माता जानता है, और जहा तक जीवे, तहां तक तीर्थकी तरें माताको उत्तम पुरुष, मानते हैं पशुओंकी माता पुत्रसें सुख मानती है, धन उपाजें तो मध्यम पुरुषकी माता सुख मानती है, तथा पुत्र वीर होवे, सपूर्ण धर्माचरण करके सयुक्त होवे, निर्मलचरितवाला होवे, तब उत्तम पुरुषको माता सतोष पावे है

अथ-सहोदरके साथ उचित आचरण लिखते-हैं बड़े जोईको तो पिता समान जाने, और ठोटे जाइको सर्वकार्योंमें माने, तथा जे कर दू सरी माताका बेटा होवे, तो जैसे श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणकी परस्पर प्रीति थी, तैसी प्रीति करणी चाहिये, जैसें दो बड़े जाइ और ठोटे जाइकी स्त्रीयोंके साथ तथा पुत्र पुत्रीयोंके साथजी उचितचरण यथायोग्य करे, परंतु पृथग्भाव न करे, जाइको व्यापारमें पूढे, बानी बात न रक्के, तथा धनजी जाइसें गुप्त (बानी) न रक्के, अपणे जाइको ऐसी शिक्षा देवे, जिसें उसको कोइ धूर्त न ठल सके, जे कर जाइको खोटी सगति लग जावे, तथा अविनीत होवे, तदा क्या करे ? सो कहते हैं जेकर अविनीत होवे, तदा आप शिक्षा देवे, तथा जाइके मित्र पालों उलाना दे वावे, तथा सगा सबधीयोंसें शिक्षा देवावे, काकासें, मामासें, सुसरासें, इनके पुत्रोंसें अविनीत जाइको शिक्षा देवावे, अन्योक्ति करके शिक्षा देवावे, परंतु आप तर्जना न करे, और जे कर आप तर्जना करे, तब क्या जाने निर्लज्ज होकर निर्मर्याद हो जावे ? सन्मुख बोल खे ? तिस वास्ते हृदयमें स्नेह सहित उपरसें जब जाइको देखे, तब ऐसे जान पड़े जो जाइ मेरे उपर बहुत वे राजी है, जब जाइ विनयमार्गमें आ जावे, तदा नि कपट मीठे वचन बोलके प्रेम धरे, कदाचित् जाइ अविनीतपणा न ठोड़े, तब चित्तमें ऐसा विचारे की - इसकी प्रकृतिही ऐसी है, तब उदासीन पणेसें प्रवर्त्ते, तथा जाइकी स्त्री और पुत्रोंके साथ दान सन्मान देनेमे स मट्टि होवे, तथा दो मातके पुत्रके साथ विशेष करके दान सन्मान प्रे मादि करे, क्योंकि उसके साथ थोढानो अंतर करे, तो उसको वे प्रतीति

१ तिनमे प्रथम पिताके साथ उचित आचरण सो मन, वचन, काया करके तीन प्रकारे हे, तिसमें काया करक तो पिताके शुश्रूषा करे, फिकर दासकी तरे विनय करे, पिना मुखसँ निकलाही पिताका वचन प्रमाण करे, पिताके शरीरकी शुश्रूषा करे, चरण धोवे, मुछि चापी करे, उठावे, बैठावे, देश काल उचित नोजन, शय्या, वस्त्र, शरीरविलेपनादिका योग मिलावे, विनयसे करे, परतु आग्रहसे न करे, आप करे, परतु नौकरोंसे न करावे, पिताके वचन प्रमाण करणे वास्ते श्रीरामचन्द्रजी राज्यानिपेक ठाँडकें वनवासमें गये, तथा पिताका वचन सुण्या अणसुण्या न करे, मस्तक धुनना, कालक्षेप करे नहीं, पिताके मनके अनुसारें प्रवर्त्ते, तथा सर्व कृत्योंमें यज्ञपूर्वक जो अपने मनमें कार्य करणा उत्पन्न दूथा है, सो पिता आगें कह देवे, पिताके मनकों जो कार्य गमे, सो करे, क्योंकि माता, पिता, गुरु, बडुश्रुत, ये आराधे दूये सर्व कार्यका रदस्य प्रकाश देते हे, माता, पिता, कदाचित् कठिन वचनजी बोले, तोजी क्रोध न करे, जो जो धर्मका मनोरथ माता पिताके होवे, सो सो पूरे करे, इत्यादि माता पिताके साथ उचित आचरण करे

माताके साथ उचित आचरण, सोजी पितावत् करे, परतु माताके मनोरथ पितासँजी अधिक पूरे, देवपूजा, गुरुसेवा, धर्म सुनना, देशविरति अंगिकार करणी, आवश्यक करणा, सात क्षेत्रोंमें धन लगाना, तीर्थ यात्रा, अनाथ दीनको उदार करणा, इत्यादि माताके मनोरथ विशेष करके पूर्ण करे, क्योंकि यह करणे योग्यही है; ये पूर्वोक्त कृत्य जज्ञे स पूत पुत्रोंको इस लोकमें गुरु, माता, पिता है, सो माता पिताको जो पुत्र श्रीअर्हतके धर्ममें जोड़े, सो ऐसा और कोई उपकार जगत्में नहीं है, उस पुत्रने माता पिताका सर्व कृण दे दीया, और किसी प्रकारसँजी माता पिताका देणा पुत्र नहिं दे सका है, यह कथन श्रीस्थानांग सूत्रमें है

अब यह मातपिताके उचित आचरणमें जो विशेष है, सो लिखते हैं माताके चित्तके अनुसार प्रवर्त्ते, क्योंकि स्त्रीका स्वभावही ऐसा होता है, कि जलदी पीडाकों प्राप्त हो जाना, इस वास्ते जिस कामसे माताकों पीडा होवे, सो काम न करे, क्योंकि पितासँजी माता विशेष पूज्य है ॥ यन्मनु ॥ श्लोक ॥ उपाध्यायादशाचार्य, आचार्येभ्य शतं

वो स्त्रीका नरतार उपर अत्यंत प्रेम हो जाता है, तथा स्त्रीकों न देख नेंसें, अतिदेखनेंसें, देख कर न बुलानेसें, अपमान देनेसें, अहंकार कर नेसें, इन पूर्वोक्त बातोंसें प्रेम टूट जाता है

तथा नरतार बहुत परदेशमें रहे, तब स्त्री कदाचित् अनुचित काम कर लेवे, इस वास्ते बहुत काल परदेशमेंनी न रहना चाहिये, तथा स्त्रीका अपमान न करे, स्त्री जूल जावे, तो शिक्षा देवे, रूस जावे, तो मना लेवे, तथा धनकी हानी वृद्धि, घरका गुह्य, स्त्रीके आगें प्रगट न करे, तथा क्रोधमें आ करके दूसरी स्त्री न विवाहे, क्योंकि वो स्त्री करनी महा ड खों का कारण है, कदाचित् सत्तानादिकके वास्ते वो स्त्रीनी कर लेवे, तदा दोनों उपर समजावसें प्रवर्त्ते, तथा स्त्री किसी काममें जूल जावे, तदा ऐसी शिक्षा देवे, कि जे कर फेर वो स्त्री, उस कामकों न करे, तथा रूसी स्त्रीकों जे कर नहि मनावे, तो सोमजट नार्या अबावत् कूवेमें गिर पड़े, इत्यादि अनर्थ करे इस वास्ते स्त्रीसें सर्वकाम, स्नेहकारी वचनोंसें करावे, नतु कठिनातासें

जेकर निर्गुण स्त्री मिले, तब विशेष करके नरमाइसें प्रवर्त्ते, परंतु स्त्रीकों घरमें प्रधान न करे, जिस घरमें पुरुषकी तरें स्त्री सामर्थ्य प्रधान पणा करे, वो घर नष्ट हो जाते हैं, यह कहना, बाहुल्यतासें है, क्योंकि को इक स्त्री तो ऐसी बुद्धिमान होती है, कि - जेकर उसकों पूढके कार्य करे, तो बहुत गुणके तांइ होता है, जैसे तेजपालकी नार्या, अनुपदे वीकों तेजपाल अरु वस्तुपाल पूढके काम करते थे, तथा स्त्री जब धर्म कार्योंमें तप करे, चारित्र लेवे, व्यापन करे, दान देवे, देवपूजा, तीर्थयात्रादि करे, तथा यह धातोंकों करनेका मनमें उत्साह धरे, तब धन देवे, सुशील सहायक वे के उसका मनोरथ पूर्ण करे, परंतु अतराय न करे, क्योंकि स्त्री जो धर्मकृत्य करेगी उसमेंसें पतिकोंनी पुण्य होगा, क्योंकि पति उस कृत्य करणेमें बहुत राजी रहे है ॥५॥ ॥५॥

५ अथ पुत्रके साथ उचिताचरण लिखते हैं पिता अपने पुत्रकों बाल अवस्थामें बहुत मनोइ पुष्टादारसें पोषे, स्वेच्छा नाना प्रकारकी क्रीडा करावे, क्योंकि मनोइ पुष्ट आहार देनेसें बालकको बुद्धि, बल, अरु कातिकी वृद्धि होती है, स्वेच्छा क्रीडा करानेसें शरीर पुष्ट होता है, अरु अ

हो जावे, अरु लोकोमें निदा होवे ऐसेही माता, पिता अरु नाइके स मान जो और जन है, तिनोंके साथनी यथोचित उचिताचरण विचार छे नां ॥ यत् ॥ जनकश्चोपकर्त्ता च, यस्तु प्रिया प्रयउति ॥ अन्नद प्राणद श्वैव, पचैते पितर स्मृता ॥ १ ॥ राजपत्नी गुरो पत्नी, पत्नीमाता तपैव च ॥ स्वमाता चोपमाता च, पचैता मातर स्मृता ॥ २ ॥ सहोदर सहा ध्यायी, मित्र वा रोगपालक ॥ मार्गे वाक्यसखा यश्च, पचैते भ्रातर स्मृता ॥ ३ ॥ अस्थार्थ सुगम ॥ तथा अपणे नाइको धर्मकार्यमें अवश्य प्रेरणा करे, नाइकी तरें मित्रके साथनी उचिताचरण करे

४ अथ स्त्रीके साथ उचित कहते हैं स्त्री विवाहिताके साथ स्नेह स युक्त वचन बोलकें स्त्रीकों अनिमुख करे, वद्वज्ज, और स्नेह सयुक्त वचन, निश्चय प्रेमका जीवन है, तथा स्त्री पासों स्नान करावे, अपणा स्नान प गचपी प्रमुखमें स्त्री प्रत्ये प्रवर्त्तावे, जब स्त्री विश्वास पा करकें सच्चा स्नेह धरेगी, तब कदापि बुरा आचरण न करेगी, तथा देश काल कुटुंब धना दि उचित वस्त्राचरण देवे, क्योंकि अजकार सयुक्त स्त्री लक्ष्मीकी वृद्धि करती है, तथा स्त्रीकों रात्रिमें कहीं जाने न देवे, तथा कुशील पुरुषकी अरु पारख्मी जगत योगी योगीकोंकी सगति न करणे देवे, स्त्रीकों घरके काममें जोड़ देवे, तथा राजमार्गमें वेश्याके पादमें न जाने देवे, धर्मरुत्प पडिक्कमणा सामायिकादिक जे कर करणे वास्ते धर्मशाला उपाश्रयमें जावे, तदा माता बहिनादि सुशील धर्मिणी स्त्रीयोंकी टोलीमें जावे, आवे घरका काम, दान देनां, सगे सबधीका सन्मान करणां, रसोष्का कारण करणां, यह सब करे, तथा प्रजात समयें शय्या छावे, घर प्रमार्जन करे, दूधके वर्त्तन धोवे, चौकादि चुल्हेकी क्रिया करे, तथा जामे धोने, अन्न पीसणां, गौ, जैस दोहनी, बहिं विलोनां, रसोई करणी, खाने वालोंकों पुरोसनां, जूठे वर्त्तन छुचि करने, सासु, जरतार, नणद, देवर, इतनोका विनय करनां, इत्यादि पूर्वोक्त कामोंमें स्त्रीकों जोड़े, अर्थात् काम करणोंमें तत्पर करे, जे कर स्त्रीकों पूर्वोक्त कामोंमें न जोड़े, तब स्त्री, चपलतासें विकारकों प्राप्त हो जाती है, काममें लगे रहनेसे स्त्रीकी रक्षा, गोपना होती है, तथा जरतार स्त्रीके सन्मुख देखे, धोलावे, गुणकीर्त्तन करे, धन, वस्त्र, आ नूपण देवे, जिस तरें स्त्री कहे, उस तरें करे, स्त्रीकों दूर न ढाड़े, तब



करे, क्योंकि प्रयोजनके वशसे कदा काल देशांतरमेंनी जाना पड़े, तो कोइ कष्ट न होवे, तथा दो मातके पुत्रके साथ विशेष उचित करे

६ अब सर्गोंके साथ उचित करणां लिखते हैं, पिता, माता, स्त्रीके पक्षके जो लोक हैं, तिनको स्वजन कहते हैं, यह स्वजनोंका कोइ घरके बड़े काममें तथा सदा काल सन्मान करे, तथा आपनी स्वजनोंके काममें अग्रेस्वरी बने, जो स्वजन धनहीन होवे, रोगातुर होवे, तिसका उद्धार करे, क्योंकि स्वजनका जो उद्धार करणां है, सो तत्त्वसे अपणाही उद्धार करणां है तथा स्वजनके परोक्ष उनकी निंदा न करे, तथा स्वजनके वैरीयोंसे मित्राचारी न करे, स्वजनादिकसे प्रीति करणी होवे, तदा शुष्क कलह, हास्यादि, वचनकी लड़ाइ न करे, स्वजन घरमें न होवे, तो उसके घरमें एकिला न जावे, देव, गुरु, धर्म अरु धनके कार्यमें स्वजनोंके साथ सामिल रहे, जिस स्त्रीका पति परदेशमें गया होवे, ऐसे स्वजनके घरमें एकिला न जावे, तथा स्वजनोंके साथ लेने देनेका व्यापार न करे ॥ तथाह ॥ यदीष्टे द्विपुलां प्रीतिं, त्रीणि तत्र न कारयेत् ॥ वाग्वादमर्थसं बध, परोक्षे दारदर्शनम् ॥ १ ॥ तथा इस लोकके कार्यमें स्वजनोंके साथ एक चित रहै, अरु जिनमदिरादि कार्यमें तो विशेष करके स्वजनसेही मिलके करे, क्योंकि ऐसे कार्य जे कर बहुतांसे मिलके करे, तोही शोना है इत्यादि स्वजनोचित जाननां

७ अब गुरुउचित कहते हैं धर्माचार्यके साथ उचित नक्ति आंतरंगकी बहुमान, वचन, कायाका आवश्यक प्रमुख कृत्य करणां, गुरु पासों शुद्ध श्रद्धा करके धर्मोपदेश श्रवण करणां, गुरुकी आज्ञा माने मनसेनी गुरुका अपमान न करे, गुरुके अवर्णवाद किसीको बोलने न देवे, गुरुकी प्रशंसा सदा प्रगट करे, गुरुके प्रत्यक्ष वा परोक्ष स्तुति करे, गुरु स्तुति जो है, सो अगणित पुण्यवधनेका कारण है, गुरुके छिड़ कदापि न देखे, गुरुसे मित्रकी तरें अनुवर्त्तेन करे, गुरुके प्रत्यनीक निदकको सर्व शक्तिसे निवारण करे, कदाचित् गुरु, प्रमादके वशसे कहीं चूक जावे, तब एकांत दितशिक्षा देवे, अरु कहे कि हे जगवन् ! तूम सरीखोंको यह काम करणां उचित नहि, गुरुका विनय करे, गुरुके सन्मुख जावे, गुरु निकट आवे, तो आसन ढोढके खड़ा हो जावे, गुरुको आसन देवे, गुरुकी पग

गोपांग संकुचित नहीं होते हैं ॥ पठति ॥ श्लोक ॥ जालयेत् पंच वर्षाणि,  
 वश वर्षाणि ताडयेत् ॥ प्राप्ते षोडशमे वर्षे, पुत्रमित्रवदाधरेत् ॥ १ ॥  
 तथा गुरु, देव, धर्म अरु सुखी स्वजन, इनकी सगति करावे, जली जाति,  
 कुलआचार, शीजवान् अैसा पुरुषके साथ मित्राचार करावे, क्योंकि गुरु  
 आदिकका परिचय होनेसे बाल्यावस्थामें जली वासनावाला हो जाता है,  
 बल्कलचीरीवत् जाति, कुज, आचारशील सयुक्तकी मित्रतासे, दैवयोगसे  
 कदापि अनर्थनी आ पड़े, तोनी जले मित्रकी सहायसे कष्ट दूर हो जाता  
 है, जैसे अनयकुमारके साथ मित्रता करनेसे आर्क्षकुमारकों जली बसना,  
 हो गइ, तथा जब अठार वर्षका पुत्र हो जावे, तब उसका विवाह करे,  
 क्योंकि बाल्यावस्थामें वीर्यहृय हो जानेसे बुद्धि, पराक्रम अरु आयु,  
 अधिक नहीं होता है, सर्व जैनमतके शास्त्रोंमें ऐसेही लिखा है, कि जब  
 पुत्रकों जोगसमर्थ जाने, तब पुत्रका विवाह करे, तथा जिस क  
 न्यासे विवाह करावे, उस कन्याका कुल, जन्म, रूप, सरिखा होवे, तब वि  
 वाह करावे, तथा पुत्रके उपर घरका नार सर्व गेरे, घरका स्वामी बना देवे,  
 तथा जिस कन्यामें सरिखे गुण न होवे, उसके साथ विवाह कराना महा  
 विडबना है, विवाहजेव आगे लिखेंगे, जब पुत्रके उपर घरका नार हो  
 वेगा, तब चित्ताक्रांत होनेसे कोइनी स्वहृद वन्मादादि न करेगा, क्योंकि  
 वो जान जावेगा कि धन, बडे क्लेशोंसे प्राप्त होता है, इस वास्ते अतु  
 चित व्यय न करना चाहिये, अैसा वो आपसे जान जावेगा, परंतु पुत्रकी  
 परीक्षा करके पीछे उसके घरका नार माल देवे, जैसे प्रसेनजित राजाने अे  
 णिकपुत्रकों दीया, तथा पुत्रकी तरें पुत्रीके साथ अरु नत्तीजादिकके साथ  
 नी यथायोग्य उचित जान लेना, अैसेहीबेटेकी बहूके साथनी धनअे  
 छीकी तरें उचिताचरण करे, तथा प्रत्यक्ष पणे पुत्रकी प्रशंसा न करे, तथा  
 जब कष्ट पड़े, तब सुख सुखकी बात कहे, तथा आय व्ययका स्वरूप  
 कहे, तथा पुत्रकों राजसजा देखावे, क्योंकि क्या जाने बिना विचारों  
 कोइ कष्ट आ पड़े, तब क्या करे ? तथा कोइ छुटजन उपड्व कर देवे,  
 तब राजसजा बिना बूटकारा नहीं होता है ॥ श्लोक ॥ तस्य पति ॥ आर्या ॥ गत  
 व्य राजकुले, इष्टव्याराजपूजितालोका ॥ यद्यपि न जवत्यर्था, सथाप्यनर्था  
 विलीयन्ते ॥ १ ॥ तथा पुत्रकों परदेशका आचार, व्यवहारादिकसे जानकार

कर कुशल होवेंगे ? तिस वास्ते अवश्य धर्मार्थीयोने उचिताचरणमें नि  
पुण होना चाहिये ॥ इति नवविध उचिताचरण समाप्त ॥

अब अवसरमें उचित बोलना, यही बड़ा गुणकारी है, तथा औरजी  
जो कुशोभाकारी होवे, सो त्यागे ॥ उक्तं च विवेकविलासादौ ॥ जंनाइ, ठीक,  
मकार, तथा हसनां, यह सब मुख ढांकके करे, तथा सजाके बीच नाकमें  
अगुली मालके मैल न काढे, हाथ मोढे नहीं, पर्यस्तिका न करे, पग न प  
सारे, निडा विकथा न करे, सजामें कोई बुरी चेष्टा न करे, जो कुलीन  
पुरुष है, सो अवसरमें हसे, तो होठ फरकने मात्र हसे, परंतु मुख फा  
डके न हसे, अण्णा अग बजावे नहि, ठण तोडे नहि, व्यर्थ नूमिमें लि  
खे नहि, नखों करकें दांत घसे नहिं, दांतों करी नख न तोडे, अजिमान  
न करे, नाट चारणकी करी दुइ प्रशसा सुनके गर्व न करे, अपणे गु  
णोंका निश्चय करे, बातकों ममऊके बोले, नीच जन जो अपनेकों हीन  
वचन कहे, तो उसकों बदलेका हीन वचन न बोले, जिस वस्तुका निश्चय  
न होवे, सो बात प्रगट न कहे, जो कोई पुरुष कार्य करे, अरु उस  
कार्य करणेमें वो समर्थ न होवे, तिसकों पहिलां वर्ज देवे, कहे कि यह  
काम तुम न करो, तथा किसीका बुरा न बोले, जेकर वैरीका बुरा बोले, तो  
उसका अटकाव नहि, परंतु सोनी अन्याकि करकें बोले, तथा माता,  
पिता, रोगी, आचार्य, पराद्वुणा, अन्यागत, जाइ, तपस्वी, वृद्ध, बाल,  
स्त्री, वैद्य, पुत्र, गोत्री, पामर, बहिन, बहिनोइ, मित्र, इन सर्वके साथ  
वचनकी जडाइ न करे, सदा सूर्यकों न देखे, तथा चंद्र सूर्यके ग्रहणकों  
न देखे, कमे (गहिरे) कूवेकों फूककें न देखे, सथा समय आकाश न  
देखे, तथा मैथुन करतेकों, शिकार मारतेकों, नगी स्त्रीकों, यौवनवती  
स्त्रीकों, पशुकीडाकों, कन्याकी योनिकों, इतनेकों देखे नहीं तथा तेजमें,  
जलमें, शस्त्रमें, मूतमें, रुधिरमें, इतनी वस्तुओंमें अण्णा मुख न देखे,  
क्योंकि इस कामसें आशु टूट जाती है, तथा अगीकार करेकों त्यागे  
नहि, नष्ट दो गइ वस्तुका शोक न करे, किसीका निडाछेद न करे, बहु  
तोसें वैर न करे, जो बहुतोकों सम्मत होवे, सो बोले, जिस काममें रस  
न होवे, सो न करे, कदापि करना पड़े, ताजी बहुतोसें मिलकें करे, तथा  
धर्म, पुण्य, दया, दानादि अज काममें बुद्धिमान् मुख्य होवे, अग्नेश्वरी

चपी करे, गुरुको शुद्ध, निर्दोष, वस्त्र, पात्राद्वारादि देवे, यह इव्योपचार करे, अरु जावोपचार सो गुरुका परवेशमें सदा स्मरण करे, इत्यादि

८ अथ नगर निवासी जनोका उचित कहते हैं जिस नगरमें रहे, उस नगर के निवासी जनोके साथ उचित इसी प्रकारसे करना कि - अपने से सखी जीन व्यापारीयोकी वृत्ति होवे, उनके साथ जो एकचित्तसे सुख, दुःख, व्यसन, कष्ट, राजउपड्वादिमें बराबर रहे, उनके उत्साहमें उत्साहवान् होवे, राजदरबारमें किसीकी चुगली न करे, तथा नगरनिवासीयोसे फटे नहीं, सर्वसे मिल कर राजका दुकुम करे, क्योंकि जब निर्वल पुरुष वहुते एकिते होके कार्य करे, तब तृणरज्जुवत् बलवान् हो जाते हैं, जब विवाद हो जावे, तब निपट्ट होके कार्य करे, किसीसे लचा ले के फूला काम न करे, तथा किसीसे थोड़ीसी लडाइ हो जावे, तो उसका राजमें पुकार न करे, तथा राजाके कारनारीयोसे लेने देनेका व्यापार न करे, क्योंकि उनलोकोंको नाणा देनेके अवसरमें क्रोध आ जाता है, तब वो कोइ और अनर्थ कर देते हैं, तथा समानवृत्ति नागरोकी तरें असमान वृत्ति वाले नगरनिवासीयोके साथनी यथायोग्य उचिताचरण करे-॥९॥

९ अथ परतीर्थी परमत वालोके साथ उचिताचरण लिखते हैं जो परमतवाला जिज्ञाके वास्ते उसके घरमें आवे, वो सर्वका उचित करे, तथा राजाका माननीयका विशेष उचित करे, उचित कृत्य सो यथायोग्य दान देना चाहे, जे कर उन साधुओंकी मनमें जकि नहींनी होवे, तोनी घरमें मांगने आयेको देना चाहिये, क्योंकि - दान देना यह गृहस्थका धर्मही है, तथा मर्दंत कोइ घरमें आ जावे, तो आसन, दान, सन्मुख जाना, उसके खडा होना प्रमुख करे, तथा परमतवाला किसी कष्टमें पडा होवे, तदा उसका उद्धार करे, दुखी जीवोंकी दया करे, पुरुषापेक्षा मधुर आलापादि करे, तथा अन्यमतवालेको कामका पूछनादि करे, जैसे कि आपका आना किस प्रयोजनके वास्ते हुआ है ? पीछे जो कार्य वो कहे, सो कार्य जे कर उचित होवे, तो पूरा कर देवे, तथा दुखी, अनाथ, अधीर, रोगी प्रमुख दीन लोकोंकी वीनताको यथाशक्तिसे प्रतिकार करे, जो आवकादि पूर्वोक्त लौकिक उचिताचरणमें कुशल नहीं होवे, तो वो जिनमतमेंनी क्यों

फल हो जावे, इस वास्ते दिशावलोकन करे, जो नोजन साधुकों न दीया होवे, सो नोजन आवक न खावे, तथा जो आवक जष्ट पुष्ट साधुकों बिना कारण अष्ट-६ आहार देवे, तो लेने देने वाले दोनोंकों रो गीके दृष्टांत करिकें हितकारी नहिं है तथा जिस साधुका निर्वाह न होवे, उर्जिह्न होवे, साधु रोगी होवे तथा और कोइ कारण होवे, तो उस साधुकों अष्ट-६ अप्राष्टक आहार देवे, तो लेने देने वाले दोनोंकों हितकारी होवे, तथा रस्तेके थकेकों, रोगीकों, शास्त्र पढने वालेकों, जोच करेकों, पारपोके दिनकों, दान देवे, तो बहुत फल होता है, इस सु पात्रदानका नाम अतिथिसविज्ञाग कहते हैं ॥ यदागम ॥ अतिथि सविज्ञा गो नाम नायगयाण ॥ इत्यादि पातका अर्थ कहते हैं, अतिथि सविज्ञाग व सकों कहते हैं, कि जो न्यायसे आया कल्पनीय अन्न, पाणी प्रमुख, देश, काल, अक्षा सत्कार क्रमयुक्त उत्कृष्ट नक्तिसें आत्माकों अनुग्रह बुद्धिसें, सयत साधुकों दान देवे, सुपात्र दानसें देवता संबंधी तथा औदारिकादि सबधी अद्भुत नोग इष्ट सर्व सुखसमृद्धि राज्य प्रमुख मनगमतासयोगादि प्राप्ति, और निर्विलंब, निर्विघ्न, मोक्षफलप्राप्ति है, क्योंकि अन्नयदान, अरु सुपात्र दान, तो मोक्ष देते है, और अनुकपादान, उचितदान, अरु कीर्त्ति दान, यह तीनों सांसारिक सुखनोगोंके देने वाले हैं

पात्रजी तीन तरेंका कहा है एक उत्तम पात्र साधु है, दूसरा मध्य मपात्र आवक है, तीसरा अविरतिसम्यग्दृष्टि, सो जघन्यपात्र है तथा अनादर, कालविलंब, विमुख, खोटा वचन बोलना, अरु दान देके पश्चा चाप करणां, ये पांच सत्दानके कलक है तथा आनंदके आंगु आवे, रो मांच होवे, बहुमान देवे, मीठा बोले, दान दीये पीठें अनुमोदना करे, यह पांच सुपात्र दानके नूपाण है, सुपात्रदानका परिग्रह परिमाण कर नेका फल, रत्नसार कुमारकी तरें होता है, यह कथा आ-६विप्रि ग्रंथसें जान लेनी इस वास्ते ऐसे साधु आदि सयोगके मिलेसें सुपात्रदान, दिन प्रतिदिन विवेकवान् अवश्य करे

तथा यथाशक्ति नोजनावसरमें आये साधर्मियोंकों अपने साथ नोजन करावे, क्योंकि वोनी पात्र हैं, तथा अथे आदि मांगनेवालोंकोंनी यथा योग्य देवे, परंतु किसी मांगनेवालेकों निराश न जाने देवे, धर्मकी निदा

बने, तथा किसीके बुरे करनेमें जलदी अग्रेश्वरी न बने, तथा सुपात्र सा धुमें कदापि मत्सर ईर्ष्या न करे, तथा अपणे जातिवालेके कष्टकी व पेक्षा न करे, पंच एकिछे मिल कर आदरसे उनकी कष्ट दूर करे, तथा माननीयका मानत्रश न करे, तथा दरिद्रपीडित, मित्र, साधर्मिक, न्यातिमें बुद्धिवाला होवे, तथा गुणो करके बड़ा होवे, बहिन सतान रहित होवे, इन सर्वकी पालना करे, अपने कुलमें जो काम करने योग्य न होवे, सो न करे, इत्यादि तथा नीतिशास्त्रोक्त तथा और शास्त्रोंमें जो उचिताचरण होवे, सो करे, अरु अनुचित होवे, सो वर्जे, मध्यान्हमें पूर्वोक्त विधिसे विशेष करके प्रधान शाब्दोदनादि निष्पन्न निशेष रसवती होवे, दूसरी वार जिनपूजा, जो मध्यान्हकी पूजा, अरु नोजन, इन दोनोंका कालनियम नहीं, क्योंकि जब नूख लगे, सोइ नोजनकाल है, इस वास्ते मध्यान्हसे पहिलांजी प्रत्याख्यान पारके देव पूजापूर्वक नोजन करे, तो दोष नहीं, वैदकग्रन्थोंमेंजी लिखा है, कि - एक प्रहरमें दो वार नोजन न करे, तथा दो प्रहर उछये नहीं, क्योंकि एक प्रहरमें दो वार खानेसें रसोत्पत्ति होती है, अरु जेकर दो प्रहर पीठें न खावे, तो बलहय होता है

अब सुपात्रदानादिककी युक्ति लिखते हैं, सो ऐसे है कि - नोजन घेलांमें नक्ति सहित साधुओंको निमंत्रणा करके, साधुके साथ घरमें आवे, अथवा साधु स्वयमेव आता होवे तब सन्मुख जाके आदर करे, विनयसहित सविज्ञा नावित अजावित क्षेत्र देखे, तथा सुनिश्चिर्जिज्ञासक काल देखे, तथा सुलज झुलजादि वेने योग्य वस्तु देखे, तथा आचार्य, उपाध्याय, गीतार्थ, तपस्वी, बाल, वृद्ध, ग्लान, सह असहादि अपेक्षा करके महत्त्व, स्पर्धा, मत्सर, स्नेह, लज्जा, जय, दाक्षिण्य, परानुयायिपणा, प्रत्युपकार, इष्टा, माया, विलब, अनादर, बुरा बोलनां, पश्चात्तापादि ये सर्व दानके दूषण वर्जके आत्माको ससारसें तारनेके वास्ते ऐसी बुद्धिसें बैतालाश दूषण रहित जो कुछ घरमें अन्न, पक्वान्न, पाणी, वस्त्रादि होवे, तिसकी अनुक्रमसें सर्व निमंत्रणा करे, अपणे हाथमें पात्र लेके पास रही नार्यादिकसें दान दिलावे, पीठें वंदना करके अपने घरके दरवाजे तक साथ जावे, फेर पीठा आवे, जे कर साधु न होवे, तदा बिना वादजों मेघकी तरें साधुका आनां देखे, जे साधु आ जावे, तो मेरा जन्म स

सर्वं नोजन बराबर हो जाता है, इस वास्ते एक झुणमात्रका स्वादके वास्ते अति लोप्यता न करनी चाहिये, तथा अजक्ष्य अनतकाय, बहु सावध्य वस्तु, अर्थात् बहुत पापवाली वस्तु न खावे, तथा जो थोड़ा खाता है, सो बहुत बलादिवान् होता है, तथा जो बहुत खाता है, सो अप्र खानेके फलवाला होता है, तथा अधिक खानेसें अजीर्ण वमन विरेचनादि मरणांत कष्टजी हो जाता है ॥ श्लोक ॥ हितमितविपक्वजो, वामशयी नित्यचक्रमणशील ॥ उक्षितमूत्रपुरीष, स्त्रीषु जितात्मा जयति रोगान् ॥ १ ॥ अर्थ—जो नूख लगे तो हितकारी ऐसा अन्न थोड़ा जीमे, वामा पासा हेतु करके सोवे, नित्य चलनेका स्वभावशील होवे, जब बाधा होवे, तबही दिसामात्रा करे, स्त्रीसें जोग न करे, वो पुरुष रोगोंको जीत लेता है

अथ नोजनविधि, व्यवहार शास्त्रादिकोंके अनुसार लिखते हैं अतिप्र जातमें, अतिसध्यामें, तथा रात्रिमें नोजन न करना चाहिये, तथा सड़ा, वास्या, अन्न न खावे, चलता दूआ न खावे, तथा जीमणा ( दाहिण ) पग कपर हाथ रखके न खावे, हाथ उपर रखके न खावे, खुल्ले आकाशमें न खावे, धूपमें बैठके न खावे, अधारेमें घृहके तले न खावे, तर्जनी अंगुली उची करके कदापि न खावे, मुख, हाथ, पग, अरु वस्त्र, विना धोयां न खावे, नगा हो कर मैले वस्त्रोंसें, दाहिणे हाथसें, थालकों विना पकड़े, न खावे, धोती आदिक एक वस्त्र पहिरके न खावे, नीजे वस्त्र पहिरके न खावे, नीजे वस्त्रसें मस्तक लपेटके न खावे, यदा अपवित्र होवे, तदा न खावे, अति गृह रस लपट हो कर न खावे, तथा जूते सहित, व्यग्रचित्त, नि केवल जूमि उपर बैठके, अरु मजे उपर बैठके न खावे, विदिशिकी तर्फ तथा दाहिणकी तर्फ मुख करके न खावे, पतले आसनपर बैठके नोजन न करे, तथा आसन उपर पग रखके नोजन न करे, चमालके देखते न खावे, जो धर्मसें पतित होवे, उसके देखते न खावे, तथा फूटे पात्रमें अरु मलीन पात्रमें न खावे, जो शाकादिक वस्तु विष्टासें उत्पन्न होवे, सो न खावे, बालहत्यादि जिसने करी होवे इनने तथा रजस्वला स्त्रीने जो वस्तु स्पर्शी होवे, तथा जो वस्तुको गाय, श्वान, पक्षीने सूधी होवे, तथा जो वस्तु अजाणी होवे, तथा जो वस्तु फेरके उष्ण करी होवे, सो न खावे,

न कराये, कठिन हृदयवाला न होवे, नोजनके अगसरमें क्यावतकों क पाट लगाने न चाहिये, उसमेंनी धनयान् तो विशेष करके कपाट ल गावेही नहिं ॥ आगमेऽप्युक्त ॥ नेव दारं पिहारेई, जुजमाणो सुतावउ ॥ अ णुकपा जिणदेहि, सङ्गाण न निवारिया ॥ १ ॥ दिङ्खण पाणिनिवई, नीमे नव सायरमि डुक्कत्त ॥ अविसेस अणुरूप, उद्दावि सामवउ कुणई ॥ १॥ अ स्यार्थ — नोजन करता दूआ दरवाजा जहे नहिं, क्योंकि अनुकपादान आवककों जिनेश्वर जगवान्ने मने नहीं करा है, जीवोंका समूहकों नषा नक ससारमें डु खपीडित देखकें विशेष रहित इव्य अरु नाव दोनों तरसें अनुकपा करे, उसमें इव्यसे तो यथायोग्य अन्नादि देवे, अरु नावसें उ नकों सन्मार्गमें प्रवर्त्तावे, श्रीपचमांगादिकमें जहा आवकोंका वर्णन करा है, तहा ऐसा पाठ है, “अवशुंविअ डुवारा” इस विशेषण करकें जिहुका दिकोंके प्रवेश वास्ते सदा किंवाह उघाढे ररेक, दीनोद्धार तो सबत्सरी दान देनेसें तीर्थिकरोनेजी करा है, कदापि काल डुकाल पढ जावे, तब तो आ वक जो होवे, सो विशेष करकें दीनोद्धार, दानादिसे करे, क्योंकि आगेजी विक्रमादित्यके सवत् १३१५ में जडेसर गामके बसनें वाला श्रीमाल जाति शाह जगहु आवकने (११२) एक सौ बारह दानशाला करकें दान दीया है, तथा विक्रमादित्यके सवत् १४१९ में सोनी सिहा आवकने १४००० मण अन्न, दीन जीवोंकों डुकालमें दीया है, तथा निर्दूषण आ हार देवे, तो सुपात्र दान शुद्ध है

तथा माता, पिता, नाइ, बहिन, पुत्र, बहू, सेवक, ग्लान, अरु बांधे हूये गौ प्रमुख इन सर्वकी चिन्ता करकें अर्थात् इन सर्वकों नोजन कराकें पीठें पंच परमेष्टि स्मरण करकें, प्रत्याख्यान पारके, सर्व नियम स्मरण क रकें, साम्यतासें नोजन करे साम्यता ऐसें जाननी कि जो अन्न, पाणी, आपसमें विरुद्ध न होवे, तथा चलटा न परिणमे, आपणे स्वजावके मा फक होवे, तिसकों साम्य कहते हैं जो पुरुष सपूर्ण जन्म तक साम्य तासें नोजन करे, वो कवी विपजी खावे, तोजी अमृत हो जावे, अरु अ साम्यतासें अमृत खायानी विष हो जाता है, परंतु इतना विशेष है, कि — साम्यतासेंनी पथ्यही खाना चाहिये, नतु अपथ्य तथा खानेका अत्पत गृह न दोनों चाहिये, कव नाडिसें जब देख उतर जाता है, तब



करनां, ये सर्व नोजन कीया पीठें न करे, तथा कितनेक काल तांइ बुद्धिमान् पुरुष नोजन करकें बैठ जावे, तो पेट बढा हो जाता है, तथा उपरि कों मुख करकें चित्त हो कर सोवे, तो बल बधे, वामे पासें सोवे, तो आशु बधे, नोजन करकें दौढ़े, तो मरण होवे, नोजन कीयां पीठें वामे पासें दो घड़ी तांइ सोवे, परंतु निद्रा न लेवे, अथवा सोवे नहीं तो सौ पग (सौ मिंग) चले, (फिरे) अन्यत्रनी कहा है कि देवकों, साधुकों, नगरका स्वामी राजाकों तथा स्वजनोको, जब कष्ट होवे, तब तथा चंद्रसूर्यके ग्रहणमें जे कर शक्ति होवे, तो विवेकवान् पुरुष नोजन न करे अैसेही “अजीर्ण प्रज्वारोगा” इस वास्ते अजीर्णमेंनी नोजन न करे

ज्वरकी आदिमें लघन करनां श्रेष्ठ है, परंतु वायुज्वर, श्रमज्वर, क्रोध ज्वर, शोकज्वर, कामज्वर, घावकीज्वर, इतने ज्वरकों वर्जकें शेष ज्वर तथा नेत्ररोगके दूये लघन करे

तथा देव गुरुके वदनादिके अयोगसें, तथा तीर्थ अरु गुरुकों नमस्कार करण जाते बखत, तथा विशेष धर्मीगोकार करतां, बड़ा पुण्य कार्य प्राप्त करतां, अरु अष्टमी, चतुर्दशी आदि विशेष पर्वके दिन, नोजन न करनां चाहिये तपका जो करणां है, सो इस लोक अरु परलोकमें बहुत गुणकारी है, तथा नोजन करा पीठें नमस्कार स्मरण करके उठे, चैत्यबढ़ना करकें देव गुरुकों यथायोग्य वदना करे, तथा नोजनके पीठें गवित्त दित दिवसचरिम प्रत्याख्यान विधिसें करे, पीठें गीतार्थ साधु, गीतार्थ आचक, तथा सिद्धपुत्रादिकोंके समीपें स्वाध्याय (पठन पाठन) यथायोग्य करे, योगशास्त्रमें लिखा है, कि जो गुरुमुखसें पढा होवे, सो औरोंको पढावे, स्वाध्याय करे, पीठें संध्यामें जिनपूजा करे, पीठें पढिक्रमणां करे, पीठें स्वाध्याय करे, पीठें वैयावृत्य अर्थात् मुनिकी पगचपी करे, पीठें घर जा कर सकल परिवारकों जोडकें धर्मका स्वरूप कथन करे, उत्सर्गमार्गें तो श्रावककों एक बारही नोजन करनां चाहिये ॥ यदज्ञाणि ॥ उत्सर्गोण तु सद्गोय, सचिन्ताहारं बह्नुत ॥ इकासणग जोइअ, बजयारि तहेव य ॥ १ ॥ जेकर एक श्रुत न करने सामर्थ्य होवे, तदा दिनका अष्टमा जाग अर्थात् चार घड़ी दिन जब रहे, तब नोजन कर लेवे, (जीम लेवे) दो घड़ी दिन रहनेसें पहिलांही नोजन कर लेवे, पीठें यथाशक्ति चार आहार, तीन

तथा वचवचाट शब्द करके न खावे, तथा मुख फाटे तो बुरा लगे बैसै  
 मुख करके न खावे, तथा जोजनके अवसरमें दूसरोंको बुलाके प्रीति उप  
 जावे, अथपणे देवगुरुका नामस्मरण करके समासन उपर बैठके, जो अन्न  
 अपनी माता, बहिन, ताड़, (पितासे बड़े चाइकी औरत) चाणजी, स्त्री प्रभु  
 खनें राध्या होवे, सो पवित्र पणे जोजन परोसा दूया उसको, मौन करके  
 दाहिना स्वर चलते खावे, जो जो वस्तु खावे, सो नासिकासें सूघके खावे,  
 इसमें दृष्टिदोष नष्ट हो जाता है, तथा अति खारा, अति खट्टा, अति उष्ण,  
 अति शीतल, अति शाक, अति मीठा, ये सर्व न खावे, मुखके स्वाद  
 मात्र खावे, क्योंकि अति उष्ण खावे, तो रस दूया जाता है, अति  
 खट्टा खावे, तो इन्द्रियोंकी शक्ति कम हो जाती है, अति लवण खावे, तो  
 नेत्र बिगड़ जाते हैं, अति स्निग्ध खावे, तो नासिका विषय रहित हो  
 जाती है, तथा तीक्ष्णइव्य अरु कौड़ा इव्य खावे, तो कफ दूर हो जाता  
 है, तथा कपायेला अरु मीठा खावे, तो पित्त नष्ट हो जाता है, स्निग्ध  
 घृतादिक खानेसें वायु दूर हो जाता है, बाकी शेष रोग जो हैं, सो  
 न खानेसें दूर हो जाते हैं

जो पुरुष शाक न खावे, अरु घृतसें रोटी खावे, तथा जो दूधसें चावल  
 खावे, तथा बहुत पाणी न पीवे, अजीर्ण होवे, तदा खावे नहिं, सो पुरुष,  
 रोगोको जीत लेता है, जोजन करती बखत पहिला मीठा अरु स्निग्ध जो  
 जन करे, बीचमें तीक्ष्ण जोजन करे, पीछे कौड़ी वस्तु खावे ॥ उक्त च ॥ सुमि  
 ग्धमधुरै पूर्व, मश्नीयादन्वितं रसै ॥ इव्याम्ललवणैर्मध्ये, पर्यते कटुतिकै ॥

तथा जो पहिला इव अर्थात् नरम वस्तु खावे, मध्यमें कटु अरु रस  
 खावे, अतमें फेर नरम रस खावे, सो बलवत अरु नीरोगी रहे, तथा  
 पाणीको जोजनसें पहिला पीवे, तो मवाग्निका जनक है, तथा जोजनके  
 बिचमें पीवे, तो रसायन समान गुणकारी है, तथा जोजनके अतमें पीवे,  
 तो विष समान है, जोजनके अनंतर सर्वरससें लिप्त हुये दाथसें एक चबु  
 रोज पीवे, पशुको तरे पाणी न पीवे, पीया पीछे जो पाणी रहे सो गेर  
 देवे, अजलिसें पाणी न पीवे, पाणी थोड़ा पीया पथ्य है, पाणीसें जीजे हुये  
 दाथोंको गला, तथा कपोल, दाथ, नेत्र, इतने स्थानोंमें न लगावे, न पूजे, गोमे  
 (जानु) का स्पर्श करे, तथा अगमर्दन, दिसा जानां, चार ठगनां, बैठनां, स्नान

य्यामें विग्रिसें निष्ठा अल्पमात्र करे, गृहस्थ वाहुल्यता करके मैथुनसें व र्जित होवे, जे कर गृहस्थ जावजीव तक ब्रह्मव्रत पालने समर्थ न होवे, तदा पर्व तिथिके दिन तो अवश्य ब्रह्मचर्यव्रत पालना चाहिये

नींद लेनेकी विधि नीतिशास्त्रके अनुसारें यह है - जिस मांछेमें जीव पड़े होवे, जो खाट गोटो होवे, जांगी दुइ होवे, मैली होवे, दूसरे पाये सधु क होवे, तथा अग्निके बले काष्ठकी खाट होवे, सो त्यागे, खाटमें तथा आसनमें चार जातकी लकड़ी लगे, तब तांइ तो चुन है, परंतु पाचादि काष्ठ लगे, तो अचुन है, तथा पूजनिक वस्तुके उपर न सोवे, तथा पाणीसे पग नीजे न सोवे, तथा उत्तर दिशि अरु पश्चिमदिशि तर्फ शिर करके न सोवे, बांसकी तरें न सोवे, पगोंके ठिकाणे न सोवे, हाथीके दांतकी तरें न सोवे, देवताके मंदिरके मूलगनारेमे, सर्पकी बबी उपर, वृद्धके देठ, तथा इमशानमें सोवे नहीं, किसीके साथ लडाइ दुइ होवे, तदा मिटाके सोवे, सोने वखत पाणी पास रस्के, तथा दरवाजा जडके, इष्टदेवकों नमस्कार करके बड़ी शय्यामें अङ्गी तरें उठनेके बख्त समारके, सर्वाङ्गार त्यागके, वामा पासा नीचें करके सोवे

दिनकों सोवे नहीं, परंतु क्रोध, शोक, अरु मद्यके मिटाने वास्ते तथा स्त्रीकर्म, अरु नारके थकेवेके मिटाने वास्ते तथा रस्तेके खेदके मिटाने वास्ते तथा अतिसार, श्वास, द्विजकी प्रमुख रोग दूर करने वास्ते सोवे, तथा जो बाल होवे, वृद्ध होवे, बलक्षीण होवे, सो सोवे, तथा तृषा, शूल, गद, गूमडकी वेदना करके विव्दल होवे, सो सोवे, तथा जिसको अजीर्ण दुवा होवे, वाय दुवा होवे, जिसको खुसकी दुइ होवे, तथा जिसको रात्रिमें निष्ठा थोड़ी आती होवे, वो दिनमेंनी सो जावे तथा ज्येष्ठ अरु आषाढ महीनेमें दिनमेंनी सोना अङ्गा है, और महीनोमें सोवे, तो कफ अरु पित्त करता है, तथा बद्धत नींद लेनी बद्धत काल लग सूता रहना, अङ्गा नहीं, तथा रातकों सोवे तदा दिशावकाशिक व्रत उच्चारके सोवे, तथा चार सरणां लेवे, सर्व जीवराशिसें खामणां करे, अष्टारह पाप स्थानक व्युत्सर्जन करे, झुल्लतकी निवा करे, सुकृतानुमोदन करे, तथा ॥ जइ मे दुक्क पमाउं, इमस्त वेहस्त इमाइ रयणीये ॥ आदा रमुवदि देहं, सबं तिविदेण वोसरियं ॥ १ ॥ नमस्कार पूर्वक इत गा

आहार, दो आहारका त्यागरूप दिवसचरिम सूर्य उगते ताँइ करे, तो मुष्ण वृत्तिसे तो दिन होतेही करना चाहिये, परंतु अपवादमें रातकोजी करे इति श्री तपगङ्गीय गणिश्रीमणिविजय तद्विषय मुनिश्रीबुद्धिविजय तद्विषय मुनि आत्माराम आनंदविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्थे आहविधिशास्त्रानुसारेण आवश्यक दिनकृत्यप्रकाशक नामा नवम परिच्छेद संपूर्ण ॥ ९ ॥

## ॥ अथ दशम परिच्छेद प्रारभ ॥

इस परिच्छेदमें आवश्यकोंका एक रात्रिकृत्य, दूसरा पर्वकृत्य, तीसरा चौमासिककृत्य, चौथा सवत्सरीकृत्य, अरु पांचमा जन्मकृत्य, यह पांच कृत्य अनुक्रमसें लिखेंगे तिसमें प्रथम रात्रिकृत्य लिखते हैं

साधुके पास तथा पौपधशालादिमें यज्ञपूर्वक प्रमार्जना पूर्वक सामा यिक करके प्रतिक्रमण करे, पीछे साधुओंकी पगचपी करे, यद्यपि साधुने आवश्यकके पासों उत्सर्गमार्गमें विश्रामणादि नहीं करावणी, तोजी आवश्यक विश्रामणा करणेके जाव करे, तो महाफल है पीछे आहदिनकृत्य, आवश्यकविधि, उपदेशमाला अरु कर्मग्रंथादि शास्त्रोंकी स्वाध्याय करे, पीछे सामायिक पारके घरमें जावे

पीछे सम्यक्त्वमूल बारह व्रतमें, सर्वशक्तिसें यज्ञ करणादिरूप तथा सर्वथा अर्हत् चैत्य, अरु साधर्मिक वर्जित वासस्थानमें अनिवासरूप तथा पूजा प्रत्याख्यानादि अजिग्रहरूप, यथाशक्ति सप्त क्षेत्रमें धन स्वरचनरूप ऐसा यथायोग्य सकल परिवारकों धर्मोपदेश कथन करे, जेकर आवश्यक अपणे परिवारकों धर्म न कहे, तब उन परिवारकों धर्मकी प्राप्ति न होवेगी, तो इस लोक परलोकमें जो वे पापकर्म करेंगे, सो सर्व उस आवश्यकों लगेंगे, क्योंकि लोकमें यह व्यवहार है कि - जो चोरकों खाने पीनेकों देवे, सोजी चोर गिना जाता है ऐसे धर्ममेंजी जान लेना, इस वास्ते आवश्यकने इच्छ तथा जावसें अपने कुटुम्बकों शिक्षा देनी चाहिये, उसमें इच्छसे तो पुत्र, कलत्र, बेटी प्रमुखकों यथायोग्य वस्त्रादि देवे, अरु जावसें तिनकों धर्मका उपदेश करे, तथा इ स्त्रीये सुखीयेकी चिंता करे ॥ अन्यत्राप्युक्त ॥ राक्षि राष्ट्रकृतं पापं, राक्ष पापं पुरोहिते ॥ नर्त्तरि स्त्रीकृतं पापं, शिष्यपापं गुरावपि ॥ १ ॥ धर्म देशना दीये पीछे, रात्रिका प्रथम प्रहर वीत्या पीछे, शरीरकों हितकारी श

उसीमें महा सहे हुये कुत्तेके कलेवर समान डुँध आती है, तो फेर कामोजन क्यों कर उन स्त्रीके शरीरमें रागांध होते हैं? इत्यादि स्त्रीके शरीरकी अशुचि विचारे, वो पुरुषकों धन्य है, वो पुरुष जबुकुमार, जिसने न वपरिणीत आठ पद्मिनी स्त्री, अरु निनानवे क्रोड सौनश्ये ठिनकमें त्याग दीया, तिसका माहात्म्य विचारे, तथा श्रीभूजिनऽ अरु सुदर्शन शेठके शक्तिका माहात्म्य विचारे

कषाय जीतिनेका उपाय इस तरें करे—क्रोधकों क्षमा करकें जीते, मानकों नरमाइसे जीते, मायाकों सरलताइसे जीते, लोभकों सतोषसे जीते, रागकों वैराग्यसे जीते, द्वेषकों मित्रतासे जीते, मोहकों विवेकसे जीते, कामकों स्त्रीके शरीरकी अशुचि जावनासे जीते, मत्सरकों परकी सपदा देखके पीडा न करनेसे जीते, विषयकों समयसे जीते, अशुच मन, वचन, अरु काया इन तीनोंकों तीन गुप्तिसें जीते, आलसकों उद्यमसे जीते, अवि रतिपणाकों विरतिपणासे जीते, इस प्रकार करकें यह सब, सुखसे जीते जाते हैं, आर्गेजी बहुत महात्माउने इनकों इसी तरे जीता हैं

जवस्थिति महाडु खरूप है, क्योंकि चारों गतिमें जीव नाना प्रकारके डु ख पा रहे हैं, तिनमें नरकगतिमें तो सातों नरकोंमें क्षेत्रवेदना है, तथा पांच नरकोंमें परस्पर शस्त्रों करकें उदीरी वेदना है, तथा तीन नरकमें पर साधर्मिक देवताकृत वेदना है आंख मींचके उघाड़े, इतना कालजी नरकवा सी जीवोंकों सुख नहीं है नि कवेज डु खहो पूर्व जन्मका करा हुआ पा पोंसे उदय हुआ है रात, अरु दिन, एक सरीखे डु खमें जाते हैं, जित ना नरकगतिमें जीव डु खकों पावे है, वस्से अनंतगुणा डु ख निगोदमें जीव पावे है, तथा तिर्थचगतिमें अकुश, पराणा, लाठी, सोटा, शृंगमोडन, गजमोडन, तोडन, छेदन, जेदन, बदन, अंकन, परवशादि, अनेक डु ख पावे है तथा मनुष्य गतिमें गर्ज, जन्म, जरा, मरण, नानाप्रकारकी पी डा, रोग, व्याधि, दरिद्रता, माता, पिता, स्त्री, पुत्रका मरणादि अनेक डु ख पावता है, तथा देवगतिमें चवनका डु ख, वासपण्येका डु ख, पराजव, ईर्ष्यादि अनेक डु ख है, इत्यादि जवस्थिति विचारे

तथा धर्ममनोरथ जावना सो आचकके घरमें जो ह्यान, दर्शन, व्रत सहित जैं तामजी वो जान्क, तोनी अज्ञा है, परंतु मिथ्यादृष्टिमें चक्रवर्ती राजाजी

थाकों तीन बार पढे साकार ध्यानसन करे, पंच नमस्कार स्मरण सोनेके अवसरमें पढे, स्त्रीसे दूर अलग शय्यामें सोवे, जेकर निकट सोवे, तब ए क तो विकार अधिक जागता है, तथा दूसरा जिस वासना युक्त पुरुष सोवे, सो जितना चिर जागे नहीं, उतना चिर उही वासना उस पुरुषको रहती है। इस वास्ते स्त्रीसे अलग दूसरी शय्यामें सोवे, तथा पागल (दीवाना) हो जावे, तथा मरणावसरमें गफलत हो जावे, तोनी तिसके जो सचित्त अवस्थामें वासना थी, उही वासना है, ऐसे जानना ॥ इत्याप्तोपदेश ॥ इस वास्ते सर्वथा उपशांतमोह हो करके, धर्म वैराग्यादि जावना करके, वासित हो करके निद्रा करे, तो खोटा स्वप्न न होवे, जिस रीतिसे अच्छा धर्ममय स्वप्न देखे, इसी रीतिसे सोवे, जे कर कदाचित् उसका आयु समाप्तिनी हो जावे, तोनी वो अच्छी गतिमें जावे

तथा सूता पीठे रात्रिमें जब जाग जावे, तब अनादि कालका अन्यास रससे कदाचित् काम पीडा करे, तब स्त्रीके शरीरका अशुचिपणा विचारे, अरु श्रीजबूस्वामी तथा यूनजिनडादि महा ऋषियोंका तथा सुदर्शनादि महा श्रावकोंकी डुष्कृत शील पालनेमें दृढता विचारे, तथा कषायादि दोषके जीतनेका उपाय जो नवस्थिति अत्यंत दुखदाता है, धर्म मनोरथ इनकी चितवणा करे, तिनमें स्त्रीके शरीरको अपवित्रता, छुगुप्त नीयादि सर्व विचारे, जैसे श्रीहेमचन्द्रसूरिजीने योगशास्त्रमें लिखा है तथा पूज्यश्री मुनिमुंदर सूरिजीने अध्यात्मकल्पद्रुममें लिखा है, तैसें विचारे, सो छेशमात्र इहां लिखते हैं

चाम, दाढ, भङ्गा, आंवरा, चरबी, नसा, रुधिर, मांस, विष्टा, मूत्र, खेज, खकारादि अशुचि पुञ्जलका, पिंम स्त्रीका शरीर है, इस पिंममें तु क्या रमणिक वस्तु देखता है? जो विष्टेको दूरसे देख कर लोक यूयूकार करते हैं, वेही मूढ लोक विष्टे अरु मूत्रसे पूर्ण, ऐसे स्त्रीके शरीरकी अनिजापा करते हैं? विष्टेकी फोयली बहुत ठिड़ोवाली जिसके ठिड़ द्वारा रुमीजाल निकलते हैं, अरु रुमीजालसे जरी है, ऐसी स्त्री है, तथा चपलता, माया, फूठ, उगी, इनो करके सस्कारी दुष्ट है, ताते जो पुरुष मोहसे इस का संग करे, नोगविलास करे, तिसको नरकके तांड़ है, ऐसी स्त्री विष्टे की फोयली जिसके इग्यारों द्वारोंसे अशुचि जरती है, जिस द्वारको सूयो,

तथा सर्व सच्चिदाहार न त्याग सके, तो नाम छेकें कितनीक वस्तु खानेकी बूट रस्के, उपरांत त्याग देवे तथा बैहों अछाइयोंमें जिनवर पूजा करना, तप करना ब्रह्मचर्य पालना, बैहो अछाइयोमें चैत्र तथा आसोजकी यह जो दो अछाइ है, सो शाश्वती है, इन दोनोमें वैमानिक देवताजी नदी श्वरादिमें यात्रोत्सव करते हैं, तथा तीन चौसासेकी तीन अछाइ अरु चौषी पर्युषणकी तथा दो चैत्र अरु आसोजकी, यह सब मिल कर बै अछाइ है

तथा तिथि जो प्रजातसमय प्रत्याख्यानकी बेलामें होवे, सो जैनमतमें माननी प्रमाण है, सूर्योदय अनुसारें लोकमेंनी दिनका व्यवहार होनेसें माननी प्रमाण है, तथा च निशीथनाय्ये ॥ चवमासी अ वरीसे, पत्तिक पंच छमीसु नायवा ॥ ताउ तिहिउ जाति, उदेइ सूरु न अछाउ ॥ १ ॥ पूआ पञ्चकाण, पडिक्कमण तदय नियम गहण च ॥ जीए उदेइ सूरु, तीए ति दिए उ कायव ॥ २ ॥ उदयग्मि जा तिहि सा, पमाणमिथरी कीरमाणी ए ॥ आणाजगणवडा, मिञ्चन विराहण पावे ॥ ३ ॥ अस्यार्थ — चौ मासी, सवत्सरी, पक्षी, पचमी, अष्टमी, ये तिथियां सूर्योदयमें होवे, त ब प्रमाण है, नान्यथा पूजा, पडिक्कमणा, प्रत्याख्यान, तैसेंही नियम ग्रहण करनां सो जिस तिथिमें सूर्योदय होवे, तिसमें करनां चाहियें, जो तिथि सूर्योदयमें होवे, सो प्रमाण है, तथा उदय तिथि बिना जो कोइ और तिथि करे, माने, सो आज्ञाका विराधक, अनवस्था कारक, मिथ्या दृष्टि है पाराशरस्मृत्यादिमेंनी जिखा है ॥ २ ॥ आदित्योदयवे जायां, या स्तोकापि तिथिर्नवेत् ॥ सा संपूर्णेति मतव्या, प्रसुता नोदयं विना ॥ १ ॥ अमास्वातिवाचकप्रयोगश्चैव श्रूयते ॥ कुर्ये पूर्वा तिथि कार्या, वृत्तौ कार्या तथोत्तरा ॥ श्रीवीरज्ञाननिर्वाण, कार्यं लोकानुगैरिह ॥ २ ॥

तथा श्रीअर्द्धतोंके जन्मादि पचकल्याणकके दिनकी पर्व हैं, जब दो, तीन, कल्याणक होवे, तब तो विशेष करके पर्व माननां चाहियें, शास्त्रों में सुनते हैं, कि श्रीरुष्ण वासुदेव सर्व पर्व आराधनेमें अपणोकों असमर्थ जान कर श्रीनेमिनाथ अरिहतकों पूछता दूआ कि, उत्कृष्ट पर्व कौनसा है? तब जगवान् कहते नये कि हे रुष्ण वासुदेव! मगसिर शुक्ल एकादशी, यह पर्व सर्वोत्तम है, क्योंकि इस दिन श्रीजिनेशोंके पांच कल्याणिक नये हैं, सर्व क्षेत्रोंके भेठ सौ कल्याणिक दूये हैं, तब श्रीरुष्ण वासुदेवने

न होवें ? तथा कब मैं सविज्ञ सो सपेगी वैराग्यवत गीतार्थ गुरुके चरणोंमें  
स्वजनादि सग रहित प्रव्रज्या ग्रहण करुगा ? तथा कब मैं तिर्यचके पिशा  
चके जयसें नि प्रकप हो कर श्मशानादिमें विधिपूर्वक कायोत्सर्ग करुगा ?  
तथा कब मैं तपसे रुश शरीर हो कैं उत्तम पुरुषोके मार्गमें चलुगा ? इत्या  
दिक जावनासें कामके कटककों जीते ॥ इति श्राद्धविधि ग्रथानुसार रात्रिकृत्य ॥

अथ श्रावकका पर्वकृत्य लिखते हैं पर्व जो अष्टमी, चतुर्दशी आदिक बि  
वस, तिसमें धर्मकी पुष्टि करे तिसका नाम पौषध है, सो पौषधक नखे  
व्रतवाले श्रावककों पर्वके दिनमें अवश्य करना चाहियें, जे कर पर्वके दि  
न शरीरमें शाता न होवे तदा पौषध न कर सके, तो दो बार प्रतिक्रमण  
करे, तथा बद्धत बार सामायिक अरु विशावकाशिक व्रत अंगीकार करे,  
तथा पर्वदिनोंमें ब्रह्मचर्य पाले, आरज वर्जे, विशेष तप करे, चैत्यपरिवा  
ही करे, सर्वसाधुओंको नमस्कार करे, तथा सुपात्रदान, देवपूजा अरु पु  
रुजकि, यह सर्व, और दिनोंसें विशेष करे, धर्मकरणी तो सर्वदिनोंमें कर  
णी अष्टमी है, जे कर सदा न करी जावे, तो पर्वके दिन तो अवश्यमेव कर  
णी चाहियें सो, पर्व ये हैं अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णमासी, अमावास्या, यह  
एक मासमें है पर्व, अरु पक्षमें तीन पर्व, तथा दूज, पंचमी, अष्टमी, एका  
दशी, चतुर्दशी, यह पांच तिथि, तीर्थकरोंने कही है उसमें दूजके दिन  
दो प्रकारका धर्म आराधना करना पंचमीके दिन ज्ञानकों आराधना, अष्ट  
मीको अष्टकर्मका नाश करणा, एकादशीमें इग्यारह अंगकों आराधना,  
चतुर्दशीको चौदह पूर्वकों आराधना, यह पांच तथा पूर्वोक्त अमावास्या  
अरु पूर्णमासी एव षट् पर्व हूये अरु वर्षमें है अष्टाद पर्व है चौमासी प  
र्वदि पर्वोंमें जेकर सर्वथा आरज न त्याग सके, तो स्वल्प स्वल्पतर आर  
ज करे तथा पर्वके दिन सर्व सचिन्ताद्वार वर्जे, श्रावककों तो नित्यही  
सचिन्ताद्वार वर्जना चाहियें, जेकर शक्ति न होवे, तदा पर्वके दिन तो अ  
वश्य वर्जे, तथा ऐसे पर्वके दिनोंमें स्नान, शिर दिखाने, गूथन कराना,  
वस्त्र धोना, वस्त्र रंगना, गाढा दलादि चलाना, धान्यका मूढक बधना, को  
ठ्ठु, अरद्ध चलाना, दलना, ठडना, पीपणा, पत्र, पुष्प, फल तोडना,  
सचिन्त खड़ी हरमजीका मर्दन करना, धान्य काठना, लीपना, माटी खो  
दनी तथा घर बनाना, इत्यादि आरज सर्व यथाशक्तिसें त्यागना चाहियें,



तुर्विंशतिस्तवका कायोत्सर्ग करे, अपूर्वज्ञान पढे, गुरुकी वैद्यावृत्त्य करे, ब्रह्मचर्य पाळे, अचित्त पाणी पीवे, सचित्तका त्याग करे, बासी, विदल, रोटी, पूरी, पापड़, वढी, सूका साग, पत्ररूप हरिया साग, खारक, खजूर, डाढ़, खाम, छुठ्यादि यह सर्व, नीजी फूलण, कुंथुआदि लट कीड़े पडनेसें खाने योग्य नहिं रहते है, इस वास्ते इनका त्याग करे, कदाचित् औषधादि विशेष कार्यमें लेनी पड़े, तो सम्यग्रीतिसें शोधकें लेवे, तथा खाट, स्नान, शिरगुंदानां, दातण, पगरखा, इनका त्याग करे, तथा नूषण, वस्त्र रंगनेका निषेध करें, तथा घर, हाट, जौत, स्तन, खाट, पाट, पट्टक, पट्टिका, ढोका, अरु धृत तैलादिकका वासण, इधन धान्यादि सर्व वस्तुमें नीजी फूजी हो जाती है, तो इसकी रक्षा वास्ते पढिलांही चूना आदि खार लगा देवे, मैल दूर करे, धूपमें न गेरे, शीतल स्थानमें रख देवे, तथा दिनमें दो तीन बार जल ठाणे, स्नेह, गुड, ठाठ प्रमुखके वासणका मुख यन्नसें ढककें रक्के, तथा उंसामणका अरु स्नानका पाणी, जहां जीव न होवे, तदा पृथक् पृथक् जूमिमें थोड़ा थोड़ा गेरे, तथा चूला अरु दीपक प्रमुख उधाडा न छोड़े, तथा खमनां, पीसना, रांधनां, वस्त्र जा जन धोने, इत्यादि कामो देख कें यन्नसें करे, तथा जिनमदिर अरु धर्म शा लाकों समराकें रक्के, तथा यथाशक्ति उपधान तप प्रतिमा मासादि बदै, तथा कपाय अरु इड्यकों जीते, तथा योगष्टुदि तप, बीशस्थानक तप, अमृत अष्टमी तप, एकादशांग तप, चौदह पूर्वतप, नमस्कार तप, चौबीश तीर्थक रके कढ्याणिक तप, अक्षयनिधि तप, वसयंती तप, जड्महानडादि तप, ससारतारण अछाड तप, पक्ष मासादि विशेष तप करे, तथा रात्रिकों चतुर्विध आहार, त्रिविध आहार त्याग करे, पर्वदिनमें विरुति त्यागे, पर्व दिनमें पौषधोषवासादि करे, तथा निरंतर पारणोमें अतिथिसविजाग करे, चातुर्मासिक अजिग्रह पूर्वाचार्योंनें इस तरेसें लिखा है, ज्ञानाचारमें, दर्श नाचारमें, चारित्राचारमें, तपश्चाचारमें, तथा वीर्याचारमें इव्यादि अनेक प्रकारका अजिग्रह करे, सो इस रीतिसें है—ज्ञानाचारमे शक्ति अनुसारें सूत्र पढे, सुने, चिते, तथा शृङ्ग पचमीकों ज्ञानकी पूजा करे, तथा दर्शनाचारमें काजा काढे अर्थात् समार्जना करे, देहरेमें जीये, गुहली करे मांजली करे, चैत्यजिनप्रतिमाकी पूजा करे, देववदना करे, जिनविधोंकों निर्मल करे,

मौन पौषधोपवास करके तिस दिनको माना, तबसेही “यथा राजा तथा प्रजा” यह रीतिसे सब लोक एकादशी मानने लगे, सो आज तांड़ प्रतिष्ठ है

तथा दूज, पचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, इन तिथियोंमें प्राय जी वोंका परजवायु बंधता है, इस वास्ते इन तिथियोंमें विशेष धर्मकरणी करे, तथा पर्वके महिमाके प्रजावसें अधर्मी निर्वयादिनी धर्मी अरु क्या वान् हो जाता है, रुपणजी धन खरच देते हैं, कुशीलजी सुशील हो जाते हैं वो जयवत रहो, कि जिसने सवत्सरी, चातुर्मासी आदि अष्ट पर्व कथ न करे हैं, क्योंकि जो अनायाँके चलाये पर्व हैं, तिनमें आग जलाना, जीव मारने, रोना, पीटना, धूल उड़ानी, वृक्षोंके पत्रादि तोड़ने, इत्यादि नाना प्रकारके पाप होते हैं, अरु जो पर्व, परमेश्वर अरिदत्तने कहे हैं, उनमें तो नि केवल धर्मरुत्यही करना कहा है, इस वास्ते पर्वदिनमें पौषधादि करे, पौषधके जेद, अरु विधि, यह सब आश्वविध्यादि शास्त्रोंसे जान लेना ॥ इति

अथ चौमासिककृत्य विधि लिखते हैं, चौमासेमें विशेष करके नियम व्रत परिग्रह परिमाण करना चाहिये, वर्षा (चौमासेमें) बहुत जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते विशेष नियमादि करना चाहिये, वर्षावमें गाढ़ा ख जलाना, तथा हल फेरना न करे, तथा राजादन, अर्थात् क्षिरनी आंबा दिमें कीड़े पड़ जाते हैं, सो न खाने चाहिये, देशोंका विशेष अपनी बु द्धिसें समझ लेना, तथा नियमजी वो तरके है, एक सुनिर्वाह, दूसरा उ निर्वाह, तिनमें धनवर्तकों व्यापार, अरु अविरतियोंको सचित्तका त्याग, रसका त्याग, तथा शाकका त्याग करना, अरु सामायिकादि ये अंगीकार क रना, यह उर्निवाह है अरु पूजा, दान, महोत्सवादि सुनिर्वाह है, अरु निर्धनोंको इस्से विपरीत जान लेना, तथा चित्त एकाम्र करना यह तो सर्वहीकों दुष्कर है, इनमें उर्निर्वाह नियम न हो सके तो सुनिर्वाह नि यम अंगीकार करे, तथा चौमासेमें ग्रामांतर न जावे, जे कर निर्वाह न होवे तो जिस गाममें अवश्य जाना है, तिसकों वर्जके और जगें न जावे, सर्व सचित्तका त्याग करे, निर्वाह न होवे, तो परिमाण करे, तथा वो, तीन बार जिनराजकी अष्टप्रकारी पूजा करे सपूर्ण देवबदन सर्व जिन मदिरोंमें जिनविंबोंकी पूजा वदना करनी, स्नात्रपूजा महामहोत्सव, प्रजा वनादि करे, गुरुकों वृद्धत्वदना तथा और साधुओंको प्रत्येक बचनाकरे, व

अथ आचकोंका वर्षकृत्य द्वादश द्वारों करी लिखने हे

१ प्रथम सघपूजा करे, सो स्वइव्यकुजादि अनुसारें बहुत आदर मा नसैं साधु साध्वी योग्य निर्दोष वस्त्र, कञ्ज, पूंठणां सूत, कन, पाणीका पात्र, तुवकादि, दम, दमिका, सूइ, कागद, दवात, लेखिनी, पुस्तकादिक, श्रीगुरुको देवे, औरजी जो सयमका उपकारी उपकरण होवे, सोनी देवे, थैसैंही प्रातिहारक, पीठ, फलक, पट्टिकादि सर्व साधुओंको देवे, थैसैंही आवक, आविकारूप सघको नक्ति यथाशक्तिसे पहरावणादि करकें स त्कार करे, देवगुरुके गुण गाने वाले ग-र्वादिक याचकोंकोनी यथोचित दान देवे, सघकी पूजा तीन प्रकारकी है, एक जघन्य, दूसरी मध्यम, ती सरी उत्कृष्ट, तिसमें सर्वदर्शन सर्व सघको करे, सो उत्कृष्टी पूजा, तथा सू त मात्रादि देवे, तो जघन्य पूजा, तथा श्रेष्ठ सर्व मध्यम पूजा है, तहां अ धिक खरच करनेकी शक्ति न होवे, तो गुरुकों सूत, मुखवस्त्रिका देवे, तथा एक दो तीन आवक आविकाकों सोपारी प्रमुख वर्ष वर्ष प्रत्ये देवे, इत रीतिसे सघ पूजा करे, तो निर्धनकोंनी महाफल है ॥ यत् ॥ सप्तौ निय माशक्तौ, सहन यौवने व्रतं ॥ दारिद्र्ये दानमप्यल्पं, महालाजाय जायते ॥ १ ॥

२ दूसरी साधर्मिक वात्सल्य करे, सो सर्व साधर्मियोंकी अथवा कितनेक कोंकी यथाशक्ति यथायोग्य नक्ति करे, तथा पुत्रके जन्मोत्सवमें, विवाहमें, तथा और किसी कार्यमें पहिले तो साधर्मियोंको निमंत्रण करकें विशिष्ट जोजन, तांबूल, वस्त्राजरणादि देवे, तथा किसी साधर्मियों कोइ कष्ट पड़े, तब अथपण धन खरचके उसका कष्ट दूर करे, जे कर कोइ साधर्मी निर्धन होवे, तो धनसैं सहाय करे, परदेशसैं देशमें पडुचावे, तथा धर्मसैं सीद ताकों जैसे बने तैसे स्थिर करे, जे कर कोइ साधर्मी प्रमादी होवे, तो तिसको प्रेरणादि करे, साधर्मियोंको विद्या पढावे, पूठना, परिवर्चना, श्रु प्रेक्षा, धर्मकथामें यथायोग्य जोडे, तथा धर्मकरणे वास्ते साधारण पौषध शालादि करावे, तथा आविकाके साथजी आवकोंवत् वात्सल्य करे, क्योंकि आविकाजी ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शील सतोष वाली होती हैं तथा स धवा विधवा जो जिनशासनमें अनुरक्त होवे, वो सर्वको साधर्मिकपणे मा नना चाहिये, तिसकाजी माताकी तरें बहिनकी तरें बेटोकी तरें हितक रना चाहिये, बहुत करके राजाका तो अतिथि सविजाग व्रत साधर्मिवा

तथा चारित्र्यमें जूयांकी यत्ना करे, वनस्पतिमें कीड़े पड़े खार न देवे, ईश  
 नमें, जलमें, अग्निमें, धान्यमें जीव होवे, तिनकी रक्षा करे, किसीको क  
 लक न देवे, कठिन वचन न बोले, रूखा वचन न बोले, तथा देवकी  
 अरु गुरुकी सोगंद न खावे, किसकी चुगली न करे, किसीके अवर्णवाह न  
 बोले, माता पितासे ठाना काम न करे, निधान तथा पडा दूआ धन बेख  
 के जैसे शरीर और धर्म न विगड़े, तैसे करे, दिनमें ब्रह्मचर्य पाले, रात्रिकों  
 स्वदारासे सतोष करे, तथा धनधान्यादि नव प्रकारके परिग्रहका इष्टा प  
 रिमाण व्रत करे, दिशावकाशिक व्रत करें, तथा स्नानका, उवटनेका, वि  
 लेपनका, आनरणका, फूलका, तंबोलका, बरासका, अंगरका, केशरका, क  
 स्तूरिका, इतनी जोगनेकी वस्तुओंका परिमाण करे तथा मजीठ, लाख,  
 कुसुमा, नील, इनसे रंगे वस्त्रोंका परिमाण करे, तथा रत्न, वज्र, नील  
 मणि, सुवर्ण, रूपा, मोती प्रमुखका परिमाण करे, तथा जंबीर, जंबूद,  
 जंबू, राजवन, नारंगी, शतरा, बीजोरां, काकडी, अखोट, बदाम, कोठफल,  
 टींबरू, विल, खजूर, डाढ़, दाढिम, उत्तिजका फल, नालिअर, अबली,  
 बोर, वीजूक फल, चीनडा, चीनडी, कयर, कर्मदां, जोरड, निंबू, आंवली  
 अथाणा (आचार) तथा अकूरिया दूआ नाना प्रकारके फूल, पत्र, सवित्त,  
 बहुबीजा, अततकाय, इतनी वस्तु वजें, तथा विगय अरु विगयगतका  
 परिमाण करे, तथा वस्त्र धोनेका, लीपणेका, हल बाहनेका, स्नानकी व  
 स्तुका परिमाण करे, तथा खमनां, पीसनां, इत्यादिकका परिमाण करे, फूली  
 साख न देवे, तथा पाणीमें कूदनां अरु अन्न रांधनेका परिमाण करे, आ  
 पारका परिमाण करे, चोरीका त्याग करे, तथा स्त्रीके साथ सजापण क  
 रना, स्त्रीको देखनां त्यागे, तथा अनर्थदम त्यागे, सामाधिक, पौपथ करे,  
 अतिथिसविज्ञा करे, इन सर्व वस्तुओंका प्रतिदिन परिमाण करे, तथा जि  
 नमदिरको देखे, तथा जिन मदिरकी वस्तुकी सार सजाल करे, पर्वमें तप  
 करे, उजमणे करे, धर्मके वास्ते मुखवस्त्रिका अरु पाणीका ठजनां देवे, तथा  
 औपधी देवे, साधर्मिबत्सल यथाशक्तिसे करे, गुरुकी विनय करें, मास मा  
 समें सामाधिक करे, वर्षमें पौपथ करे ॥ इत्यादि ॥ इति आद्विआदिका चातु  
 र्मासिक नियमस्वरूप कथन समाप्त ॥

पाल, मेरा, तंबू, कड़ाहिया साथ लेवे, चलता कूपादिकों सज करे, तथा गाढा, सेजवाला रथ, पर्यंक, पालखी, कंठ, घोड़ा प्रमुख साथ लेवे, तथा श्रीसयकी रक्षा वास्ते बड़े योर्धोंकों नौकर रक्के, योर्धोंकों कवच अगकादि उपस्कर देवे, तथा गीत, नाटक वाजित्रादि सामग्री मेलवे, तथा अष्टे मुहूर्तमें, शुभ शकुनमें प्रस्थान (चलना) करे, योजनाविसें श्रीसयका सत्कार करके सयप तिका तिलक देवे, आगे पोछे रखवाला रक्के, संधके चलने उतरणेका संकेत करे, तथा सयवालोंकी गाढी आदिक टूट जावे, तो समरा देवे, अपनी शक्तिअनुसार सर्वसयकों सहाय देवे, तथा गाम नगरमें जहां जिनमदिर आवे, तहां महाध्वज देवे, चैत्यपरिवाही आदि बड़ा महोत्सव करे, जीर्णचैत्यका उद्धार करे, तथा जब तीर्थोंकों देखे, तब सुवर्ण, रत्न, मोती आदिकसें वर्द्धापना करे, लापसी, जम्बु प्रमुखका लादण करे, तथा साथ मिवात्सव्य, यथोचित दान देवे, बड़े उत्सवसें जब तीर्थकों प्राप्त होवे, तब प्रथम हर्षपूजा धन चढावे, तथा अष्टोपचारविधि, स्नात्रमालोद्घटन, धोकी धारा देवे, पहरावणी मोचन करे, तथा नवांगजिनपूजन, फूजघर कवलीघरादि महापूजा करे, झकूलादिमय महाध्वज देवे, मांगनेवालोंकों नार्द्धा न करे, तथा रात्रिजागरण नाना प्रकारके गीतनृत्यादि उत्सव करे, तथा तीर्थोपवास ठठ प्रमुख तप कोढि लाख अक्षुगदि विविध प्रकारका यजमणां होवे, तथा नाना प्रकारकी वस्तु फल एक सौ आठ. चौबीश, ब्यासी, बावन, बहत्तरादि होवे, सर्व नश्य जोजनके पाल होवे, झकूलादि मय चडुवा पहरावणी करे, तथा अगलूदणां, दीपक, तेल, धोतो, चदन, केसर, कस्तूरी, चंगेरी (ठाबडी) कलश, धूपधाणां, आरति, आनरण, प्रदीप, चामर, जृगार, स्याल, कचोलक, घंटा, फालरी, पढदादि विविध प्रकारके वाजित्र देवे, वेद्वरी करावे, कारीगरोंकों सत्कार देवे, तीर्थके बिगड़े कामकों समरावे, सार सजाल करे, तीर्थके रक्षकोंकों बड्ड सन्मान देवे, जैनके मगतोंकों, दीनोंकों, उचित दान देवे, तथा साधमिवात्सव्य गुरुजकि करे, इस रीतिसें यात्रा करके तैसेंही पोढा फिरे, वर्षादि तक तीर्थ व्रत करे ॥ इति यात्राविधि ॥ इति यात्रात्रयस्वरूप समाप्तम् ॥३॥

॥ अथ स्नात्रविधिर्लेख्यते ॥ मदिरमें स्नात्र महोत्सवनी घृतका मेरु

सकल करनेसें ही हो सका है, क्योंकि मुनिको तो राजपिण्ड नेनांही नहीं है तिस वास्ते श्रीनरतचक्रो, तथा दक्षगोत्र राजादिकोंने ऐसेही करा है, तथा श्रीसज्जननाथ अर्द्धतके जीवन तीसरे जन्ममें धातकीखंड ऐरावतके त्रमें हेमापुरी नगरीमें विमलगाहनराजाने महा दुर्भिक्षमें सकल सार्धर्मिकादिकोंको नोजनादिक देनेसे तीर्थहरनामकर्म उपार्जन करा है, तथा वेवगिरि मानव गढमें शाह जगत्सिद्धने तथा थिरापड नगरमें श्रीमाल आचूने तीन सौ साठ साधर्मियोंको धन देकें अथणें तुल्य करा, तथा शाह सारंगादि अनेक पुरुषोंने बड़ा बड़ा साधर्मिवात्सल्य करा है ॥ इति ॥ १ ॥

३ तीसरी यात्राविधि कहते हैं, वर्ष वर्षमें जघन्यसें एक यात्रा तो अवश्य करनी चाहियें, यात्राजी तीन तरेंकी है, एक अछाडयात्रा, दूसरी रथयात्रा, तीसरी तीर्थयात्रा, तिसमें अछाडमें विस्तार सहित सर्व वैत्यपरिवाही करे, इसका नाम चैत्ययात्राजी कहते हैं, तथा रथयात्रा श्रीहेमचन्द्रसुरिष्ठत परिशिष्ट पर्वमें जैसी सांप्रतिराजाने करी है, तैसें करे, तथा महापद्मचक्रवर्त्तने जैसे माताके मनोरथ पूरणे वास्ते करी है, तैसें करे, तथा जैसी कुमारपाल राजाने रथयात्रा करी तैसें करे ॥ इति ॥ २ ॥

तीसरी तीर्थयात्राका स्वरूप लिखते हैं, तहां श्रीशत्रुंजय रैवतादि तीर्थ तथा तीर्थकरोंके जन्म, दीक्षा, ज्ञान, निर्वाण, अरु विहारचूमि, यह सर्व प्रचूत जघ्यजीवोंको छुजनावका सपावक है, इस वास्ते ससारसें तारणों का कारण होनेसें इसको तीर्थ कहना चाहियें तिन तीर्थोंमें जानेसें सम्यक्त्व निर्मल होता है, अब जिनशासनकी उन्नति करनेके वास्ते जिस विधिसें यात्रा करे, सो विधि यह है, कि—चलनेके स्थानसें छे कर यात्रा करे, तहां तक, एक वार नोजन करे, दूसरा सचित्त परिहार, तीसरा नूमिशयन, चौथा ब्रह्मचारी, पांचमा सर्व सामग्रीके दूयेजी पंगें चलना, ठछा सम्यक्त्वधारी पणा तथा यात्रा वास्ते राजासें आज्ञा छेवे, विशिष्ट मंदिरोंको सजावे, विनय बहुमान सहित स्वजन और साधर्मियोंको बुलावे, तथा गुरुको साथ छे जाने वास्ते निमंत्रणा करे, अमारी ठढेरा फिरावे, मंदिरमें महापूजा महोत्सव करावे, खरची सहितोंको खरची देवे, वाहन विनाको वाहन देवे, निराधारोंको यथायोग्य आधार देवे, सार्यबाहकी तरें दौनी फिराके लोकोंको उत्साहवत करे, तथा आमबर सहित बड़ा चरु, षडा,

थाल, मेरा, संबू, कड़ाहिया साथ लेवे, चलतां कूपादिककों सज करे, तथा गाढा, सेजवाला रथ, पर्यंक, पालखी, ऊंट, घोडा प्रमुख साथ लेवे, तथा श्रीसंधकी रक्षा वास्ते बड़े यो-द्धोंकों नौकर ररेके, यो-द्धोंकों कवच अगकादि उपस्कर देवे, तथा गीत, नाटक वाजित्रादि सामग्री मेलवे, तथा अष्टे मुहूर्तमें, शुभ शकुनमें प्रस्थान (चलना) करे, जोजनाविसें श्रीसंधका सत्कार करके संधप तिका तिलक देवे, आगे पीछे रखवाला ररेके, संधके चलने उतरणेका सकेत करे, तथा संधवालोंकी गाढी आदिक टूट जावे, तो समरा देवे, अपनी शक्तिअनुसार सर्वसंधकों सहाय देवे, तथा गाम नगरमें जहां जिनमंदिर आवे, तहां महाध्वज देवे, चैत्यपरिवाही आदि बड़ा महोत्सव करे, जीर्णचैत्यका उत्धार करे, तथा जब तीर्थोंकों देखे, तब सुवर्ण, रत्न, मोती आदिकसें व-र्धापना करे, लापसी, जङ्गु प्रमुखका लादणा करे, तथा साथ मिवात्सल्य, यथोचित दान देवे, बड़े उत्सवसें जब तीर्थकों प्राप्त होवे, तब प्रथम दर्शपूजा धन चढावे, तथा अष्टोपचारविधि, स्नात्रमालोद्घटन, धीकी धारा देवे, पहरावणी मोचन करे, तथा नवांगजिनपूजन, फूलधर कदलीधरादि महापूजा करे, डकूजाविमय महाध्वज देवे, मांगनेवालोंकों नार्हो न करे, तथा रात्रिजागरण नाना प्रकारके गीतनृत्यादि उत्सव करे, तथा तीर्थोपवास बठ प्रमुख तप कोढि लाख अङ्कगदि विविध प्रकारका यज्ञमणां ठोवे, तथा नाना प्रकारकी वस्तु फल एक सौ आठ चौबीश, व्यासी, बावन, बद्धरादि ठोवे, सर्व नक्षत्र जोजनके थाल ठोवे, डकूजादि मय चडुवा पहरावणी करे, तथा अगलूहणां, दीपक, तेल, धोतो, चदन, केसर, कस्तूरी, चंगेरी (ठाबही) कलश, धूपघाणां, आरति, आनरण, प्रदीप, चामर, नृगार, स्थाल, कवोजक, घंटा, फालरी, पढहादि विविध प्रकारके वाजित्र देवे, वेदरी करावे, कारीगरोंकों सत्कार देवे, तीर्थके बिगड़े कामकों समरावे, सार सजाल करे, तीर्थके रक्षकोंकों धड्डु सन्मान देवे, जैनके मगतोंकों, बीनोंकों, उचित दान देवे, तथा साधर्मिवात्सल्य गुरुनक्ति करे, इस रीतिसें यात्रा करके तैसेंही पीडा फिरे, वर्षादि तक तीर्थ व्रत करे ॥ इति यात्राविधि ॥ इति यात्रात्रयस्वरूपं समाप्तम् ॥३॥

॥ अथ स्नात्रविधिर्ज्ञेयते ॥ मंदिरमें स्नात्र महोत्सवजो घृतका मेरु

करे, अष्ट मांगलिक नैवेद्यादि ढोवे, बहुत बहुत जातिवत चदन, केसर, पुष्प, अवरदि ल्यावे, सकल आवस्समुदाय मेले, गीत नृत्यादि और मन्त्र रचावे, डुकूजादि महाध्वज देवे, प्रौढामन्त्रसे प्रनावनादि, निरंतर तथा पर्वदिनमें करे, जेकर निरंतर अथवा पर्वदिनमेंजी न कर सके, तोनी वर्षमें एक बार तो अवश्य करे स्नात्र महात्सवमें स्वयनकुलप्रतिष्ठादि अनुसारें सर्वशक्तिसें करे, जिनमतका महा उद्योत करे ॥ इति स्नात्रविधि ॥ ३॥

तथा देवद्व्यकी वृद्धि वास्ते प्रतिवर्ष मोलोदघटन करे, इमाला तथा और मालानी यथाशक्ति करे, ऐसेही पहरावणी, नवीन योती, विचित्र प्रकारका चडुआ, अगलूहणां, दीपक, तेल, जातिवत, केसर, चदन, बरास, कस्तूरी प्रमुख चैत्योपयोगी वस्तु, प्रतिवर्ष यथाशक्तिसें देवे ॥ ५॥

तथा सुंदर अंगी, पत्रजगी, सर्वांगजरण, पुष्पगृह, कदलीगृह, पूतली, पाणीके यंत्रादिककी रचना करे, तथा नाना गीत नृत्यादि उत्सवसें महापूजा रात्रि जागरण करे ॥ ६॥ ७॥

तथा श्रुतज्ञानकी पुस्तकादिककी पूजा कर्पूरादिसें सदा सुकर है, अरु प्रशस्त्र वस्त्रादिकसें विशेषपूजा तो प्रतिमास शुक्लपंचमीके दिन आवकको करनी योग्य है, जे कर शक्ति न होवे, तोनी वर्षमें एक बार तो अवश्य करे, इसका विस्तार, जन्मरुत्यमें ज्ञानजकि द्वारमें लिखेंगे ॥ ८॥

तथा पंचपरमेष्ठि नमस्कार, आवश्यकसूत्र, उपदेशमाला, उत्तराव्यय नादि ज्ञान दर्शनका तप, श्रद्धादिमें जघन्य एक बार उद्यापन करे, जिससें जक्षी सफल होवे, जब जप तपका उद्यापन करे, तब चैत्य उपर कलशारोपण करे, फल चढावे, अर्कृत पात्रके मस्तक उपर अर्कृत-देवे, जैसें जो जन उपर तांबूल देते हैं, तैसी तरें यहनी जान लेना यह उपधान, उद्यापनविधि, शास्त्रांतरसें जान लेनी ॥ इति उद्यापनविधि ॥ ९॥

तथा तीर्थकी प्रनावना वास्ते वाजे गाजे प्रौढामन्त्रसें गुरुका प्रवेश करे, यह व्यवहारनाप्यमें कहा है, क्योंकि इस्ते जिनमतकी प्रनावना होती है, तथा यथाशक्ति श्रीसषका बहुमान करणां, तिलक करणां, चदन, बरास, कस्तूरी प्रमुखसें विलेपन करे, तथा सुगंधि फूज, नक्तिसं नाजियरादि विविध तांबूलप्रदानरूप, नक्ति करे, क्योंकि शासनकी उन्नति करनेसे तीर्थकर गोत्र उपार्जन करता है, यह कथन ज्ञातासूत्रम है ॥ १०॥



तथा गुरुके योग मिले हुए जघन्यसेनी एक वर्षमें-एक बार आलोचना लेवे, अपणे करे, हुए सर्व पापकों गुरुके आगे कह देवे, पीछे गुरु जो प्रायश्चित्त देवे, सो लेवे, फेर उस पापकों न करे, तिसका नाम आलोचना लेनी है, ऐसी आ ६ जितकल्यादिमें विधि लिखी है पक्ष पीछे, चार मास पीछे एक वर्ष पीछे, उत्कृष्ट वारा वर्ष पीछे, निश्चेही आलोचना करे, अपणा शय्य काढनेकों क्षेत्रसे सात सौ योजन, अरु कालसे वारा वर्ष तक गीतार्थ गुरुका श्रवण करे, तथा जिस गुरुके आगे आलोचना करे, सो गुरु कैसा होवे, सो लिखते हैं गीतार्थ होवे, मन, वचन, काया स्थिर होवे, चरित्रवत् होवे, आलोचना ग्रहणमें कुशल होवे, प्रायश्चित्त का जाणकार होवे, विपाद रहित होवे, ऐसा गुरु होवे, सो आलोचना प्रायश्चित्त देने योग्य होता है

तिनमें गीतार्थ उसको कहते हैं, कि जो १ निशीथादि छेद शास्त्रोंका मूलपाठ, निर्युक्ति, जाण्य, चूर्णी, इनका जानकार होवे, तथा ज्ञानादि पंचाचार-युक्त होवे, तथा २ आधारवत् आलोचितपापका धारण वाला होवे, ३ आगमादि पांच व्यवहारका जानने वाला होवे, तिसमेंनी इस कालमें तो जितव्यवहार मुख्य है, तिसका जानने वाला होवे, ४ प्रायश्चित्त आलोचककी लज्जा दूर करानेवाला होवे, ५ आलोचककी शुद्धि करने वाला होवे, ६ आलोचकके पापकर्म, औरके आगे न कहे, ७ जैसे वो आलोचक निर्वाह कर सके, तैसे प्रायश्चित्त देवे, ८ जो प्रायश्चित्त न करे, तिसको इस लोक अरु परलोकका नय दिखावे, यह आठ गुण युक्त गुरु होता है

साधुने तथा आचरने-१ प्रथम तो अपणे गङ्गमें गङ्गके आचार्य आगे, २ तदयागे (तदजावे) उपाध्यायके पास, ३ तदजावे प्रवर्तकके पास, ४ तदजावे स्थविरके पास, ५ तदजावे गणावज्ञेयके पास, स्वगङ्गमें इन पांचोंके अज्ञावसे सजोगी एकसमाचारी वाले गङ्गांतरमें पूर्वोक्त आचार्यादि पांचोंके पास क्रमसे आलोचे, तिनकेनी अज्ञावसे असजोगी सवेगी गङ्गमें पूर्वोक्त क्रमसे आलोचे, तिनकेनी अज्ञाव दूआ गीतार्थ पार्श्व स्थके पास आलोचे, तिसके अज्ञावसे गीतार्थ सारूपीके पास आलोचे, तिसके अज्ञावसे पश्चात्कृतके पास आलोचे, सारूपी उसको कहते हैं, कि

जो शुक्लवस्त्रधारी होवे, शिरमुंनित, अम्बकृच्छ, रजोहरण रहित, ब्रह्म चारी, स्त्रीरहित निष्ठावृत्ति होवे, अरु जो तिष्ठपुत्र होता है, सो निष्ठा सहित, अर्थात् चोटो सहित, स्त्री सहित होता है, तथा जो पश्चात्कृत होता है, सो चारित्र्य ठोढ़कें गृहस्थके वेषवाला होता है. आलोचनाके अवसरमें पार्श्वस्थादिककोंजी गुरुकी तरें वदना करे, क्योंकि विनयमूल धर्म है, इस वास्ते वदना करे, जे कर वो पार्श्वस्थादिक अपने आपको गुणहीन जान कर वदना न करावे, तब तिसको आसन उपर बैठा कर प्रणाम मात्र करकें आलोचना लेवे, तथा पश्चात्कृतको इत्तर सामाधिक आरोपण लिंग दे कर पीठेसँ उसके पास यथाविधिसें आलोचना लेवे, तथा पार्श्वस्थादिकके अनावें जहां राजगृहादि गुणशील चैत्यादिकमें जहां श्री अर्हत गणधरादिकोंने बहुत बार प्रायश्चित्त लोकोंको दीया है, सो तहां रहनेवाले देवतानें देखा है, वास्ते तिस देवताको अष्टमादि तपसें आराधकें तिसके आगे आलोचे, कदाचित् वो देवता चव गया होवे, अरु उसकी जगे और उत्पन्न हुआ होवे, तदा वो देवता महाविवेहके अर्ह तको पूढके प्रायश्चित्त देवे, तिसके अनावें अर्हत प्रतिमाके आगे आलोचे, आप प्रायश्चित्त लेवे, तिसके अनावें पूर्वोत्तर मुख करकें अर्हति धोंके समक्ष आलोवे, परंतु शक्य न रस्के, आलोचना करनेवाला पुरुष, मायारहित बालककी तरें सरल हो कर आलोवे, जो कोइ किसी कारण से आलोचना न करे, वो आराधक नहीं है

आलोचना करनेवाला दश दोष वर्जके आलोचना करे, सो दश दोषका नाम लिखते हैं : १ गुरुको वैयावृतादिकसें खुशी करकें पीछें आलोवे, जिस्से वो गुरु थोड़ा प्रायश्चित्त देवे, २ यह गुरु थोड़ा दम देता है, ऐसे अनुमान करकें आलोवे, ३ जे दूसरोंने देखा होवे, सो आलोवे, परंतु जो अपणा कीया अपराध दूसरा कोइने न देखा होवे, उसको न आलोवे, ४ बादर दोषको आलोवे, परंतु सूक्ष्म दोषको न आलोवे, ५ सूक्ष्म दोष आलोवे, परंतु बादर दोष न आलोवे, ६ अव्यक्त स्वरसें आलोवे, ७ जैसे गुरु समझे नहीं, ऐसे रौला करकें आलोवे, ८ आलोचा हुआ बहुतांको सुणावे, ९ अव्यक्त अगीतार्थके पास आलोवे, १० अपराध जो गुरुने कहा होवे, तिसही अपने अपराधको आलोवे, यह दश दोष हैं

आलोचना करनेसे जो गुण होता है, सो कहते हैं. जैसे बोणा घटाने वाला नारके दूर दूर हलका होता है, तैसा पापसे वो हलका हो जाता है, तथा पापरूप शक्य दूर हो जाता है, प्रमोद उत्पन्न होता है, आत्मपरके दोषोंसे निवृत्ति तिसको देखके औरजी आलोचना करेंगे, सरलता होती है, शुद्ध हो जाता है, वो झुंकर कामके करने वाला है, क्योंकि दोषको सेवना तो झुंकर नहीं है, किंतु आलोचना प्रकाश करना, यह झुंकर है, तथा श्री तीर्थंकरकी आज्ञाका आराधक होता है, नि शक्य होता है, आलोचनावालेको ये गुण होते हैं यह आलोचना विधि आर्द्धजितकल्पसूत्रवृत्तिके अनुसारें लीखा है, आलोचना करनेसे बाल, स्त्री, यति हत्यादि पाप तथा देवादिइच्छान्क्षण पाप, तथा राजपत्नी गमनादि महापापजी सम्यक्करीतिसे आलोवे, गुरुवत्त प्रायश्चित्त करे, तो दूर हो जाते हैं, नहीं तो हठपरिहारि प्रमुख वृत्ती जवमें मोक्ष कैसे जाते ? इसी वास्ते वर्ष वर्ष प्रति चौमासे चौमासे आलोचना छेवे ॥ इति आर्द्धविध्यनुसारे वर्षकृत्यं सपूर्णम् ॥

अथ जन्मकृत्य, अचारद्वारों करके लिखते हैं १ तिसमें प्रथम उचित द्वार है, सो पड़िजां तो उचित योग्य वसनेका स्थान करे, जहां रहनेसे धर्म, अर्थ अरु काम, तीनोंकी सिद्धि होवे, तहां आवकको वास करना चाहिये क्योंकि और जगे वसनेसे दोनों जव बिगड़ जाते हैं, नीह्नपल्लीमें, चोरोंके गाममें, पर्वतके किनारे, दिसक लोकोमें, छुष्ट लोकोमें, धर्मिलोकोके निवकोमें, इत्यादि स्थानमें वास न करे, परंतु जहां जिन चैत्य होवे, जहां मुनि आते होवें, जहां आवक वसते होवें, जहां बुद्धिमान् लोक स्वभावसेही शीलवान् होवें, जहां प्रजा धर्मशील होवें, बहुत जल, श्थन, होवे, तहां वास करे जैसा अजमेरके पास द्वर्पपुर नगर था, ऐसे नगरमें रहनेसे धनवत्, गुणवत् अरु धर्मवत्की सगतिसे विनय, विचार, आचार, उदारता, गनीरता, धैर्य, प्रतिष्ठा आदि गुणकी प्राप्ति होती है, धर्मकृत्यमें कुशलता प्रगट होती है, इस वास्ते बुरे गामोंमें चाहो धन प्राप्ति होवे, तोनी वास न करे ॥ उक्त च ॥ यदि वांछति मूर्खत्वं, ग्रामे वस दिनत्रयं ॥ अपूर्वस्यागमोनास्ति, पूर्वाधीतं च नश्यति ॥१॥

उचितस्थानजी स्वचक्र, परचक्र, परस्पर विरोध, झर्झिझ, मारी, (द्वैजा)

प्रजाविरोधः, अन्नादि वस्तुक्षयः, इत्यादि कारण हो जावे, तो तत्काल  
 । ढोढ जाना चाहिये, नहीं तो त्रिवर्गकी हानी हो जावेगी, जैसे आगे  
 कोंके नयसे लोक विधिको, ढोढके गुजरात विदेशोंमें जातेसे सुखी  
 धनी हुए हैं, तथा द्दितिप्रतिष्ठित, चनकपुर, कपनपुर, प्रमुखके उजड़नेकी  
 व्यवस्था जान लेनी, सो इस रीतिसे है कि - द्दितिप्रतिष्ठित उजड़के च  
 नकपुर वसा, अरु चनकपुर उजड़के कपनपुर वसा, अरु कपनपुर उज  
 डके राजगृह वसा, तथा राजगृह उजड़के चपा वसी, अरु चपा उजड़के  
 पद्मजीपुत्र अर्थात् पटना वसा ऐसे आवकनी पूर्वोक्त हानी जाने तो  
 नगरकों ढोढके और जगें जा कर वसे

तथा रहनेका घरनी अन्ने पढोसीयोंके पास करे, परतु वेश्या, ति  
 र्यैच, निह्वाचर, अमण, वौरु, तापसादि ब्राह्मण, मशाण, कोटवाल, माढी,  
 जूआरी, चोर, नट, नचानेवाला, जाट, कुकुर्मी, इत्यादिकोंके पढोसमें घर  
 डाट न लेवे, न वसे, जे कर बेहरेके पास रहे, तो हानी होवे, तथा चौ  
 कमें, धूर्तके अरु प्रधानके पास रहे, तो धन अरु पुत्र दोनोंका क्षय  
 होवे तथा सुख, अधर्मा, पाखन्दी, पतित, चोर, रोगी, क्रोधी, चमाल,  
 मवोन्मत्त, गुरुतल्पग, वैरी, स्वामीवचन, लोनी, तथा क्षपि, स्त्री, अरु बा  
 लहत्या करनेवाला; इतने लोक जे कर अपना जला चाहे, तोनी इनके  
 पढोसमें न रहे, क्योंकि इनकी सगतिसे गुणहानी प्रमुख अनेक उपद्रव  
 होते हैं, इस वास्ते इनके पढोसमें न रहे

तथा जला स्थान वो होता है, कि जहां दहलीका शय्य न होवे, राख  
 न होवे, जहां मान ठगती होवे, जला बणै, गधवाली मिट्टी होवे, मीठा  
 जल होवे, खोदता धन निकले, वो जगा छुन है तथा जो जूमि, शीत  
 कालमें उष्ण स्पर्शवाली होवे, अरु उष्ण कालमें शीतस्पर्शवाली होवे,  
 वो जगा बहुत छुन है एक हाथमात्र जूमि पहिजा खोदके फेर तिस  
 मट्टी करके पीठें वो खाड नरे, जे कर मट्टी अधिक रहे, तो अष्टनूमि जा  
 ननी, अरु जो मट्टी बराबर रहे, तो समाननूमि जाननी, अरु मट्टी उगी  
 हो जावे तो नेष्टनूमि जाननी, तथा सौ पग चाले इतने काजमें जिस नूमि  
 कामें पाणी न शूके, सो उत्तम नूमि जाननी, अरु जे कर सौ पग चाले,  
 इतने कालमें एक अंगुली जर पाणी शोष होवे, तो मध्यम नूमि जाननी,

अरु एक अगुलीकेनी उपरांत पाणी शूके, तो अधम नूमि जाननी, तथा पक्षांतरमें जिस नूमिके खातमें फुल गेरे, वो फूल जे कर शूके नहीं, तो उत्तम नूमि जाननी, अर्द्ध शूके, तो मध्यम नूमि जाननी, अरु सर्व शूक जावे, तो अधम नूमि जाननी, तथा जिस नूमिमें ब्रीहि बोई हुई तीन दिन पीछे उगे, तो उत्तम, पाच दिन पीछे उगे तो मध्यम, अरु सात दिन पीछे उगे, तो हीन नूमि जाननी.

सर्पकी बची उपर घर बनावे, तो रोग होवे, पोली नूमि उपर घर बनावे, तो निर्धन होवे, शल्ययुक्त नूमि उपर घर बनावे, तो मरण पावे, मनुष्यका हाड अरु केशका शल्य होवे, तो मनुष्योंकी हानी करे खरका शल्य होवे, तो राजा प्रमुखका नष्ट होवे, श्वानका हाड होवे, तो बालक मरण पावे, बालकका हाड होवे, तो गृहस्वामी परदेशमें उड़द जावे, गौका शल्य होवे, तो गौरूप धनकी हानी होवे, मनुष्यके केश तथा क पाज अरु नस्म होवे, तो मरण देवे.

तथा प्रथमप्रहर अरु पश्चिम प्रहर वर्जके शेष प्रहरमें चूहकी अरु ध्वजाकी बाया घर ऊपर पड़े, तो दुःखदायी है, अर्द्धतके मंदिरके पीछे न वसे, ब्रह्मा और रुणके पास न रहे, चमिका और सूर्यके सममुख रहे नहीं, महादेवके तो किसी पासैनी न रहे, रुणके वामे पासै अरु ब्रह्माके बाहिणे पासै न रहे, निर्मादय (स्नानका पाणी) ध्वजकी बाया, विलेपन वर्जे, जिनमंदिरके शिखरकी बाया अरु अर्द्धतकी दृष्टि होवे, तहां न वसे तथा नगर अथवा ग्रामके ईशान कोणमें घर न बनावे, बनावे, तो कष्ट जातिवालेकों दुःखदायी है.

घर बनावे, तो पूरा मोल देवे, पड़ोसीकों दुःख न देवे, घर लेती व खत किसीकों दुःख न देवे, ऐसेही ईंट, काष्ठ, पाषाण प्रमुख वस्तु निर्वोप, दृढ, बलवान्, अरु जो नवीन होवे, सो योग्य मोल दे कर लेवे, सो विक्रय होती होवे, तिसका योग्य मोल दे कर लेवे, परंतु थाप ईंट पचावा न लगावे, तथा जिनप्रासादादिककी ईंटानि ग्राहण करे, क्योंकि शास्त्रमें जो कहा है, जो देहरा, कूवा, वावडी, मसाण, मग, अरु राजाके मंदिर, इनके पाषाण, ईंट, काष्ठकों, सरसों सात्रनो वर्जे, क्योंकि इनका

प्रजाविरोध, अनादि, वस्तुक्षय, इत्यादि कारण हो जावे, तो तत्त्वज्ञ  
 गेह, जल, चादियें नई, तो, त्रिवर्गकी हानी हो जावेगी, जैसे आमों  
 कोंके नयसैं लोक विद्विक्तों, गेहके गुजरात, विदेशोंमें जानेसे सुखी  
 धनी हुए हैं, तथा कृतिप्रतिष्ठित, चनकपुर, रूपनपुर, प्रमुखके उजड़नेके  
 व्यवस्था जान लेनी, सो इस रीतिसे है कि - कृतिप्रतिष्ठित उजड़के  
 नकपुर वसा, अरु चनकपुर उजड़के रूपनपुर वसा, अरु रूपनपुर उजड़के  
 राजगृह वसा, तथा राजगृह उजड़के चपा वसी, अरु चपा उजड़के  
 पाम्पलीपुत्र अर्थात् पटना वसा ऐसे आवकनी पूर्वोक्त हानी जाने तो  
 नगरकों गेहके और जगें जा कर वसे

तथा रहनेका घरनी अष्ट-पड़ोसीयोंके पास करे, परंतु वैश्या, ति  
 र्थिच, निह्वाचर, श्रमण, बौद्ध, तापसादि ब्राह्मण, मशाण, कोटवाल, माढी,  
 जूथारी, चोर, नट, नचानेवाला, जाट, कुकुर्मी, इत्यादिकोंके पड़ोसमें घर  
 हाट न लेवे, न वसे, जे कर देहरेके पास रहे, तो हानी होवे, तथा चौं  
 कमें, धूर्तके अरु प्रधानके पास रहे, तो धन-अरु पुत्र दोनोंका क्षय  
 होवे तथा मुख, अधर्मी, पाखन्दी, पतित, चोर, रोगी, क्रोधी, चमाल,  
 मदनमत्त, गुरुतत्पण, वैरी, स्वामीवचन, लोनी, तथा रुषि, स्त्री, अरु बा  
 लइत्या करनेवाला, इतने लोक जे कर-अपणां जला चाहे, तोनी इनके  
 पड़ोसमें न रहे, क्योंकि इनकी सगतिसे गुणहानी प्रमुख अनेक उपद्ब  
 होते हैं, इस वास्ते इनके पड़ोसमें न रहे

तथा जला स्थान वो होता है, कि जहां हनीका शय्य न होवे, राख  
 न होवे, जहां माज उगती होवे, जला वण, गंधवाली मिट्टी होवे, मीठा  
 जल होवे, खोदती धन निकले, वो जगा-छुन है तथा जो जूमि, शीत  
 कालमें उष्ण स्पर्शवाली होवे, अरु उष्ण कालमें शीतस्पर्शवाली होवे,  
 वो जगा बहुत छुन है एक हाथमात्र जूमि पहिजां खोदके फेर तिस  
 मट्टी करके पीछें वो खाड जरे, जे कर मट्टी अधिक रहे, तो श्रेष्ठजूमि जा  
 ननी, अरु जो मट्टी बराबर रहे, तो समानजूमि जाननी, अरु मट्टी उठी  
 हो जावे तो नेष्टजूमि जाननी, तथा सौ पग चाले इतने काजमें जिस जूमि  
 कामें पाणी न शूके, सो उत्तम जूमि जाननी, अरु जे कर सौ पग चाले,  
 इतने कालमें एक अंगुली जर पाणी शोष दावे, तो मध्यम जूमि जाननी,

खनेका स्थान करे, ईशानकोणमें देवगृह करे, तथा दक्षिणपासे अग्नि, पाणो, गाय, वायु, दीवेकी नूमि बनावे, तथा वामे पासें नोजन, धान्य, इव्य, वाहन, देवताकी नूमि करे, यह पूर्वादि विंशा सो घरके दरवाजेकी अपेक्षासँ जाननी. ठीकवत् नतु सूर्यापेक्षा

तथा घर बनानेवाले सूत्रधार मञ्जर प्रमुखको बोले प्रमाणसे कहुक अधिक मञ्जरी वेवे, इसमें शोना है, गृहस्थको चाहियें वैसा घर बनावे परतु व्यर्थ बड़ा घर न बनावे, क्योंकि उसमें व्यर्थ धन खर्चना है, घरका द्वार, मर्यादासे योग्य जाणकें रखे क्योंकि बहुत दरवाजे बनानेसँ डष्ट जनोके ध्याने जानेसँ स्त्री अरु धनका नाश हो जाता है, तथा दरवाजेका किंवाड दृढ बनावे, सांकल अर्गलाविसे सुरक्षित करे, किंवाडनी सुखे खुन जावे, ऐसे बनावे, जीतमें नोगल रखनेसँ पचेडिय जीवकी विराधना होती है, किंवाड नेडे, तब यन्नसे नेडे ऐसे प्रणाला खालादि कानी यथाशक्तिसँ उद्यम करे, इसी तरें देश, काल, स्वविनव उचित स्वजाति उचित घर बनाकें विग्रि सहित स्नात्रपूजा, साधार्मिकवात्सल्य, सधपूजा करकें नले मुहूर्तमें नले शकुनमें प्रवेश करे, तो बहुत सुखदायी होवे, त्रिवर्गकी सिद्धिका हेतु होवे ॥ इति प्रथम उचित द्वार ॥ १ ॥

२ दूसरा विद्या द्वार कहते है विद्या सो लिखित, पठित, बाणिल्यादि कलाका ग्रहण करे, अर्थात् अध्ययन करे, क्योंकि जो विद्या नहीं शीखता है, सो मूर्ख रहता है, पग पगमें परानव पाता है, अरु विद्यावान् परदे शर्मन्नी माननीय होता है, इस वास्ते सर्व प्रकारकी कला शीखनी चाहियें क्या जाने क्षेत्र कालके विशेषसँ किस कलासँ आजीविका करणी पड़े ? जिसने सर्वकला शीखी होवे, उसनेनी पूर्वोक्त सात प्रकारकी आजीविकामेंसँ जिस करकें सुखें निर्वाह होवे, सो आजीविका करणी जे कर सर्वकला शीखने समर्थ न होवे, तब जिस कलासँ अपना सुखें निर्वाह होवे, अरु परलोकमें अच्छी गति होवे, सो कला शीखे, पुरुषकों दो बातें अवश्य शीखनी चाहियें, उसमें एक तो जिस्से सुखें निर्वाह होवे सो, अरु दूसरी जिस्से मरकें अच्छी गतिमें जावे, यह दो बातें अवश्य शीखनी २

३ तीसरा विवाह द्वार सो विवाहनी त्रिवर्गसिद्धिका हेतु होनेसे उचित ही करणा चाहियें, विवाह अन्यगोत्रवालेसँ करना चाहियें, तथा समान

पापाणके, स्तंज, पीठ, पट्टा, द्वार, शाखा, ये सर्व गृहस्थके घरमें, बिरोधकारी हैं, अरु धर्मके स्थानमें सुखदायी हैं.

तथा पापाणमय घरमें काष्ठके स्तंज, अरु काष्ठमय घरमें, पापाणके स्तंज, मक्षिरमें तथा घरमें बनानां वर्जे, तथा हलका काष्ठ, कोठुका काष्ठ, गाढेका काष्ठ, अर्द्धटका काष्ठ, चरखेका काष्ठ, कांटेवाले वृक्षका काष्ठ, पंच खबरका काष्ठ, थोहरका काष्ठ, ये काष्ठ घरमें न लगावे, तथा बीजोरा, केला, दाहिम, बेरी, जंबीरी, हलद्, आंबलीकी कर अरु धतूरा, इतनेका काष्ठ वर्जे, तथा इन वृक्षोंकी जड़ पड़ोससें घरमें प्रवेश करे, अथवा इनकी ढाया घरमें पड़े, तो कुलका नाश करे, तथा पूर्वदिशिकी तरफ घर ठंचा होवे, तो धनका नाश करे, तथा दक्षिणदिशें उंचा होवे, तो धनकी वृद्धि करे, पश्चिमदिशें ठंचा होवे, तो धनाविकी वृद्धि करे, उत्तर दिशमें होवे, तो उजड़ जावे, तथा जो गोल घर होवे, बहुत कूपे वाला होवे, अथवा एक कूणा दो कूणा तीन कूणा होवे अरु दक्षिण वामी तरफ लंबा होवे, ऐसे घरमें न बसे तथा जिस घरके कवाड़ स्वयमेव उघड़े अरु जिसे वो घर सुखकारी नहीं

तथा घरके द्वार आगे कलशादि चित्राम होवे, तो शुभ है, तथा रं गनी, नाटारंज, जारत रामायणका शुद्ध, राजाओंका शुद्ध, ऋषियोंका चरित्र, देवचरित्र, ये चित्राम करानां, घरमें शुभ नहीं, तथा फलवृक्ष, फूली वेज, सरस्वती, नवनिधान, यज्ञस्तंज, लक्ष्मीदेवी, कलश, वर्द्धमान, चौ बड़ स्वप्नावलि, ये चित्राम करानां शुभ है

तथा खजूर, दाहिम, केला, कोदला, बीजोरा, ये जिसघरमें लगे, उस घरका नाश करते हैं, बटवृक्ष लगे तो लक्ष्मीका नाश करे, कांटावाला वृक्ष लगे, तो शत्रुका जय करे, बड़े फल वाला वृक्ष लगे, तो संतानका नाश करे, इन वृक्षका काष्ठनी वर्जे, तथा कोइ शास्त्र अज्ञात कहता है कि:- घरके पूर्व बड़वृक्ष होवे, तो अज्ञा है, दक्षिणपासें खड्गवृक्ष शुभ है, पश्चिमनागे पीपल, उत्तरपासें डीङ्गलवृक्ष अज्ञा है

तथा घरमें पूर्वदिशमें लक्ष्मीका घर करे, अग्निकोणमें रसोइ करे, दक्षिणदिशमें शयनको जगा करे, नैऋतकोणमें शस्त्रशाला करे, पश्चिम दिशें जोजनक्रिया करे, वायुकोणमें अन्न समझ करे, उत्तर पासें जल र



देवे, सो आसुरविवाह है, सातमा जो जोरावरीसे कन्याको ग्रहण करे, सो राक्षस विवाह है, आठमा सूती, मदोन्मत्त, बावरी, प्रमादवत्, कन्याको ग्रहण करे, सो पिशाच विवाह है, इन चारोंको अधर्म विवाह कहते हैं, जेकर बधूवरकी परस्पर रुचि होवे तदा अधर्मविवाहकोनी धर्मविवाह जानने अष्टी स्त्रीका लाज होना, यह विवाहका फल है, अरु स्त्री मिलनेका फल यह है कि—अष्टा पुत्र उत्पन्न होवे, चित्तकी वृत्ति अनुपहत रहे, शुद्धाचार, देवगुरु, अतिथि, बधवाविका सत्कार होवे

तथा विवाहमें जो धन खरचे, सो अपणो कुल वैजवकी अपेक्षा जो कमें जैसे अष्टा लगे, तितना खरच करै, परतु अधिक अधिक खरचनेकी ध्यान न बढावे, क्योंकि अधिक अधिक खरच तो धर्मपुण्यकी जगेही करना ठीक है, विवाहाविके अनुसारें स्नात्रमदोत्सव, बड़ी पूजा, आदर सहित करे, रसवती ठोकन अरु चतुर्विधसपका सत्कारादि करे, क्योंकि विवाहादि जो हैं, सो सब ससारके कारण है, इसमेंसें जितना धर्ममें लग जावे, सो सफल है ॥ इति तृतीयः द्वारः ॥ ३ ॥

४ अथ चौथा मित्र द्वार कहते हैं मित्र बनावे उसको गुमास्ता रके, उसको जो सहायक होवे, उत्तमप्रकृतिवाला, साधमी, धैर्यवत्, गजीर, चतुर, बुद्धिमान्, प्रतीतकारी, सत्यवादी, इत्यादि गुणगुण युक्त होवे, उसको मित्र बनावे ॥

५ पांचमा द्वार जगवानका मंदिर बनावे सो बड़ा ऊचा, तोरण शिखर मण्डपादि मण्डित, जर्तचक्रवर्त्याविवत् बनावे सुवर्ण, मणि, रत्नमय तथा विशिष्टपाषाणमय, अथवा विशिष्ट काष्ठ इटमय मंदिर बनावे, जेकर शक्ति न होवे, तो तृणकी कुटीनी न्यायार्जित धनसें बना कर उसमें मट्टीकी प्रतिमा बना करके पूजे, न्यायोपार्जित धनसेंही जिनमंदिर बनाना चाहिये, जिसने जिनजवन नहीं कराया, जिनप्रतिमा नहीं बनवाइ, जिनप्रतिमाकी पूजा नहीं करी, अरु साधुपणा नहीं लीया, उस पुरुषने अपणा जन्म द्वार दीया है जो पुरुष, शक्तिके अभावसें एक फूलसेंनी पूजा करे, तोनी वो परमपुण्य उपार्जन करता है, तो फेर जिसने दृढ, निविद, सुदर शिजासें श्रीजिनजवन मानरहित हो करके बनवाया है, तिसके पुण्यका क्या कहना है ? उसका तो जन्मदो सफल है

जिनमंदिर बनानेकी जो विधि है, सो लिखते हैं.—नूनि अरु काष्ठादि

कुल, सदाचारादि, शील, रूप, वय, विद्या, धन, वेष, जापा, प्रतिष्ठादि गुणों करके जो आप समान होवे, तिसके साथ विवाह करे, अन्यथा अ वहेलना, कुटुब, कलहादि अनेक कलक उत्पन्न होने है, श्रीमतीवत् सामुद्रिक शास्त्रोक्त शरीरके लक्षण अरु जन्मपत्रिका देखके वर कन्याकी परीक्षा करके विवाह करे, तदुक्त ॥ श्लोक ॥ इवज्जावृत्त ॥ कुल च शील च सनाथता च, विद्या च वित्त च वपुर्वयश्च ॥ वरे गुणा सप्त विलोकनी या, स्तत पर जाग्यवशा हि कन्या ॥ १ ॥ तथा जो मूर्ख होवे, निर्धन होवे, दूर होवे, सूरमा होवे, मोहान्जिलापी वैरागवत होवे, वयमें क न्यासे त्रिगुणा अधिक होवे, इनको कन्या न देनी, तथा अतिधनवान्, अ तिशीतल, अतिक्रोधी, विकलांग, अरु रोगी, इनकोनी कन्या न देनी, तथा जो कुल जातिसे हीन होवे, माता पिता रहित होवे, स्त्री पुत्रसहित जिसके होवे, इनकोनी कन्या न देनी, तथा जिसका बहुतोंसे वैर होवे, जो नित्य कमाके खावे, अरु जो आजसी होवे, इनकोनी कन्या न देनी, तथा गोत्रीयकों, जूआरीकों, कुब्यसनीकों, विदेशीकों, इनकोनी कन्या न देनी, जो स्त्री, कपट रहित नर्तारके साथ वर्ते, देवरके साथनी कपट रहित वर्त्ते, सासुकी नक्का होवे, स्वजनकी वस्सल होवे, जाइयोमें स्नेहवाली होवे, कमलकी तरें विकसित बदन वाली होवे, सो कुलवद्, सुलक्षणी है

अग्नि देवताकी साखसे पाणीग्रहण करना, तिसका नाम विवाह कहते हैं, सो विवाह लोकमें आठ प्रकारका है, एक अलंकार करके कन्या देवे, तिसका नाम ब्राह्मविवाह है, दूसरा कन्याके पिताको धन देके जो कन्या विवाहे, तिसका नाम प्राजापत्य विवाह है, इन दोनों विवाहकी विधि आ चारदिनकर शास्त्रसे जान लेनी, तीसरा बढे सहित गोदान पूर्वक, सो ऋषिविवाह, चौथा जो यज्ञके वास्ते दीक्षा लेवे, उसको जो कन्या देवे, सोऽ दक्षिणा है, सो देवविवाह है, ये दोनों विवाह, लौकिकवेद सम्मत है, परंतु जैनवेदमें सम्मत नहीं हैं क्योंकि इन दोनों विवाहोंके मंत्र, जैनवेदमें नहीं हैं, अरु ये दोनों विवाह जैनमतवालोंके मतमें करने योग्य नहीं हैं, इन पूर्वोक्त चारों विवाहोंको लोक नीतिमें धर्मविवाह कहते हैं, पांचमा मातापिताकी आज्ञा बिना परस्पर स्त्री पुरुषके रागसे जो विवाह होवे, तिसको गांधर्व विवाह कहते हैं, उष्ठा किसी कामकी प्रतिज्ञा कराके कन्या

कलश, उरसा, प्रदीप, चंदार, बाग, वाडी, गाम, नगर प्रमुख राजा देवे, जैसे सिद्धराजराजाने, श्रीवताचल उपर श्रीनेमिनाथके चैत्य वास्ते बारा गाम दीये थे, तथा जैसे कुमारपालराजाने वीतजय पाटनके खुदानेसे त्रावापत्रमें श्रीवदयन राजाके दीये गाम निकले, सो कबूल करके दीये, तैसें देवे, श्रीजिनमठिरके बनानेका फल यह है कि— जो यथाशक्तिसे अपने धनके अनुसार श्रीजिनवरका जवन करावे, सो देवता जिसकी स्तुति करे, बहुत काल लग आनंद रूप, अथवा देवविमानादिका परम सुख पावे ॥५॥

६ अथ पष्ठ प्रतिमाद्वार सो श्रीअर्हंतका विंब, मणि, सुवर्ण, धातु, चंद नादि काष्ठ अरु पाषाण, माटी प्रमुखका पांच सौ धनुष प्रमाण यावत् अगुष्ट प्रमाण यथाशक्तिसे बनावे, श्रीजिनप्रतिमा बनानेवालेको फल होता है, सो कहते हैं ॥ श्लोक ॥ वसततिलकावृत्त ॥ सन्मृत्तिकामलशिला तलदतरौप्य, सौवर्णरत्नमणिचदनचारुविंबम् ॥ कुर्वति जैनमिहये स्वधना नुरूप, ते प्राप्नुवति नृसुरेषु महासुखानि ॥ १ ॥ आर्या ॥ दारिद्र्य दोहङ्ग, कुजाइ कुसरीर कुङ्गइ कुमईउ ॥ अवसाण रोग सोगा, न द्रुति जिणविंब कारीण ॥ १ ॥ अर्थ— जो जिनविंबका कराने वाला है, सो दारिद्र्य, दौर्भाग्य, कुजाति, विरूप शरीर, नरक तिर्यचकी गति, बुरी बुद्धि, परवशपणा, रोगी, अरु शोकी पणाको न पावे

तथा प्रतिमाजी वास्तु शास्त्रमें कही विधिपूर्वक बनावे, सुलक्षणा सत तिकी वृद्धि करनेवाली बनावे, तथा जो प्रतिमा अन्यायोपार्जित इव्यसें बने, दोरगादि रंगवाले पाषाणकी बने, जिसका अंग हीनाधिक होवे, सो प्रतिमा स्वपरकी वन्नतिकी नाश करने वाली है, तथा जिस प्रतिमाका मुख, नाक, नेत्र, नाभि, कटि, इतने अंग, जग होवे, तो वो प्रतिमाको मूल नायक न करना चाहिये, अरु आनरण सहित, वस्त्रसहित, परिकर सहित, लबन सहित पूजे, तथा जिस प्रतिमाको सौ वर्षसे अधिक वर्ष हो गया होवे, अरु आगे जो प्राजापिक पुरुषकी प्रतिष्ठी हुई होवे, वो प्रतिमा जे कर खम्बित होवे, तोनी पूजने योग्य है तथा विंबके परिवारमें पाषाणमयमें, जेकर दूसरा रंग होवे, तो वो विंब, सुखकारी नहीं, जो विंब, सम अगुल प्रमाण होवे, सो शुभ नहीं, तथा एक अगुलसे ले कर इग्यारह अगुल प्रमाण विंब घरमें पजना चाहिये इस्ते उपरांत प्रमा

शुद्ध होवे, मज्जुरोंसे ठज न करे, सूत्रधार कारीगरोंको सम्मान देवे, तथा पूर्वे जो घर बनानेकी विधि कही, वो सर्व इहां विशेष करके जाननी. काष्ठादि जो व्यावे, सोनी देवाधिष्ठातावनादिसे सूका व्यावे, परंतु अविधिसे न व्यावे, तथा थाप, ईट पकावे, तो अज्ञा नहों, नौकरोको काम करने वालोंको उहारावसेनी कलुक महीना अधिक देवे, क्योकि वे लोक तुष्ट मान होके अज्ञा पक्का काम करे, अरु मदिरादि करानेमें शुच परिणामके वास्ते गुरु सय समझ ऐसे कहे, कि जो इहां अविधिसे पारका धन मेरे पास आया होवे, तिसका पुण्य तिसको होवे, इसी तरें जिनमदिर बनावे, परंतु नूमि खोदनी, पूरणी, पापाणदलसे कपाट जाने, शिला फोडनी, बि नने प्रमुखमें महा आरज होता है, इस वास्ते जिनमदिर न बनाना चाहि ये ? ऐसी आशका न करनी, क्योकि यत्नसे करके प्रवृत्त होनेसे निर्देश है, अरु नाना प्रतिमास्थापन, पूजन, सयसमागम, धर्मदेशना करणी, दर्शन व्रतादिककी प्रतिपत्ति, शासनप्रजावना, अनुमोदनादि, अनत पुण्यका हेतु होनेसे तथा शुचोदयका हेतु होनेसे कूपके दृष्टांतसे महालाजका कारन है

अरु जीर्णोद्धारमें ऐसी रीति है यत् ॥ नवीनजिनगेहस्य, विधाने यत्फल नवेत् ॥ तस्मादष्टगुण पुण्य, जीर्णोद्दारेण जायते ॥ १ ॥ जीर्णे समुद्धृते याव, तावत्पुण्य न नूतने ॥ उपमर्दोमहास्तत्र, स्वचैत्यख्यातिधी रपि ॥ २ ॥ तथा ॥ राय अमञ्च सेष्ठी, कोटंबीएवि देसेण काउ ॥ जिसे पुत्रायणे, जिणकप्पीवावि कारवई ॥ १ ॥ अर्थ — राजा, मंत्री, भ्रेष्ठी, कोटंबीकोको उपदेश दे कर जीर्ण जिनमदिरका उद्धार जिनकल्पी साधुनी करावे, जो जिनजवनका उद्धार करे, तिसनें नयंकर ससारसे अपणी आत्माका उद्धार करा है, ऐसा जान लेना जीर्णचैत्योद्धारकरणपूर्वकही न वीन चैत्य कराना योग्य है, इसी वास्ते सप्रति राजाने नवासी हजार जीर्णोद्धार कराये हैं, अरु नवीन जिनमदिर तो बत्तीस हजारही बनवाये हैं, ऐसेही कुमारपाल राजा तथा वस्तुपालादिकोनेनी नवीन जिनमदिरों बनानेसे जीर्णोद्धार बहुत कराये हैं

तथा जब चैत्य बन जावे, तब शीघ्रही प्रतिमा बिराजमान करनी चाहिये ॥ यदाह श्रीहरिज्ञप्सूरि ॥ जिनजवने जिनविंव कारयितव्यं द्रुतं तु बुद्धिमता ॥ साधिष्ठानं होव, तन्नवनं वृद्धिमन्नवति ॥ १ ॥ देहरेमें कुमी,

राये, ठानवे क्रोड रूपइये खरचकें त्रिभुवनविहार नामा -जिनमदिर बन वाया, उसमें एक सौ पचवीश अगुल प्रमाण अरिष्टरत्नमयी प्रतिमा बह चर देहरी सयुक्त अरु चौबीस प्रतिमा रत्नकी, चौबीस सोनेकी, चौबीस रूपेकी स्थापन करी, अरु चौबह नार प्रमाण एकेक चौबीसी बनवाई, तथा मंत्री वस्तुपालने तेरां सौ तेरां नवीन जिनमदिर बनवाये, औ बाइ सौ जीर्णोद्धार कराये, सवा लाख प्रतिमा, अरु सवा लाख रत्नसुवर्ण जडे जैसे आनूपण, प्रतिमाजीके बनवाये तथा साह पेथडने चौरासी जिनमदिर बनवाये, मांघाता अरु उकार नगरमे तथा देवगिरिमें क्रोडो रूपक खरचके बीरमदे राजाके राज्यमें चौरासी जिनमदिर बनवाये, तीन लाख रूपइया दानमें दीना, तथा तिसहो पेथडशाहने श्रीशत्रुंजय तीर्थमें श्रीरूपन देवजीके मदिरको सुवर्णपत्रसे मढाके मेरुके शृंगवत् कर दीया था, ये सर्व पूर्वोक्त मदिर, राजा अजयपालने अरु मुसलमानोंने गारत कर दीये, शेष जो बचे बचाये रहे हैं, वे आजनी आवु तारगादि पर्वतों उपर विद्यमान हैं

४ सातमा प्रतिमाकी प्रतिष्ठाका द्वार सो प्रतिमाकी प्रतिष्ठा शीघ्र करनी चाहिये, षोडशकग्रथमें लिखा है, कि मदिर तयार हुआं पीठें दश दिनके अन्यतरही प्रतिष्ठा करानी चाहिये, यह प्रतिष्ठाकी विधि प्रतिष्ठाकल्प प्रमुख ग्रंथोंसे जान लेनी ॥ इति सप्तमद्वार ॥ ४ ॥

७ आठमा दीक्षा द्वार सो बडे महोत्सवसे पुत्र, पुत्री, नाइ, नज्जीजा, खजन, मित्र, परिजन प्रमुखकों दीक्षा दिलावे, उपस्थापना करावे, तथा और दीक्षा लेनेवालोंका महोत्सव करे, ये महापुण्यका कारण है, जिसके कुलमें चारित्र धारक पुरुष होवे, सौ बडा पुण्यवान् कुल है, लौकिक शास्त्रमेंनी लिखा है कि ॥ श्लाोक ॥ तावद्भ्रमति ससारे, पितर पित्रकां हिण ॥ यावत्कुले विद्युद्वात्मा, यतिपुत्रो न जायते ॥१॥ इति अष्टमद्वार ॥

९ नवमा तत्पदस्थापना द्वार सो गणि, वाचनाचार्य, वाचक, आचार्यादि पदप्रतिष्ठाको शासनकी उन्नति वास्ते बडे महोत्सवसे करे, जैसे पहिला गणधरोंको शक्र (इड) ने करी है, तथा मंत्री वस्तुपालने एकवीश आचार्योंको पदस्थापना करी ॥ इति नवमद्वार ॥ ९ ॥

१० दशमा पुस्तक लिखावनेका द्वार सो पुस्तक जो आचारांगादि कल्प सूत्र, अरु जिनचरित्रादिकों न्यायार्जित धनसे लिखावे, अहे पत्र (कागज)

एवाला बिंब होवे, तो प्रासादमें पूजना चाहिये. यह कथन पूर्वाचार्यों का है, तथा निर्यावलिखुत्रमें कहा है, कि लेपकी, पायाणकी, काष्ठकी, वांतकी, लोहकी प्रतिमा, परिवार अरु प्रमाण रहित होवे, तो घरमें न पूजे, तथा घरप्रतिमाके आगे नैवेद्यका विस्तार न करे, तीन कालमें निश्चय अन्तिम करे, पूजा, जावसें करे, प्रतिमा मुख्यवृत्तिसे परिकर सहित तिलक सहित आचरण सहित करावे, उसमें मूल नाथक तो विशेष करके शोचनीक बनाना चाहिये. क्योंकि जिनप्रतिमाकी अधिक शोभा देखनेसे परिणाम अधिक उच्चासमान होनेसे अधिक निर्जरा होती है, जिनमदिर अरु जिन प्रतिमा बनानेवालेको अतुल्य पुण्य फल होता है, जहां तक वो मंदिर अरु प्रतिमा रहेंगे, वहां तक पुण्य फल होवे, जैसे अष्टापद वपर नरत राजाका कराया चैत्य तथा रेवतगिरि वपर ब्रह्मण्डका कराया कांचन बलानकावि चैत्यप्रतिमा, अरु नरतचक्रीकी अंगूठीमें माणककी प्रतिमा, तथा कुल्पाक तीर्थमें माणिक्यस्वामीकी प्रतिमा कहलाती है, तथा श्री हर्तननक पार्श्वनाथकी प्रतिमा आज लग पूजते हैं, इसी वास्ते इस चौबीसीमें पहिजां नरतचक्रीनें श्रीशत्रुजय तीर्थमें रत्नमय चौमुख चौरासी मरुप सयुक्त श्रीकृष्णदेवका मदिर बनवाया, पांच कोड़ी मुनियोंसे पुमरीक गणधर मोक्ष पाये, ज्ञाननिर्वाणके ठिकाणेजी बनवाये, ऐसेही बाहुबली, मरुदेवी शृगमें तथा रेवतगिरि, अर्बुदगिरि, वेजारगिरि अरु समेत शिखरमेंजी जिनमदिर बनवाये, प्रतिमाजी सुवर्णादिककी बनवाइ, तथा नरतराजाकी आवमी पीढीमें ( पुस्तमें ) दम्भीवीर राजानें तथा दूसरा सगरचक्रवर्त्यादिकोंनें तिनका उद्धार कराया, तथा हरिषेण नामक दशमे चक्रीनें श्रीजिनमदिरमन्त्रि पृथ्वी करी, तथा सप्रतिराजाने सवा लाख जिनमदिर तथा सवा क्रोड जिनप्रतिमा बनवाइ, तथा आमराजा आवकने गोपालगिरि अर्थात् गवालियरके राजानें श्रीमहावीर अर्द्धतका मदिर एक सौ एक दास कचा बनवाया, तिसमें साढे तीन क्रोड सोना मोहोर खरचके सात दास प्रमाण उची श्रीमहावीर अर्द्धतकी प्रतिमा विराजमान करी, वहां मूलमरुपमें सवा लाख सोनइया लगाया, अरु प्रेक्षामरुपमें एकवीश लाख सोनइया खरच कखा, तथा कुमारपाल राजाने चौदह सौ चौतालीस ( १४४४ ) नवीन जिनमदिर कराये, अरु साजां सौ मदिर, जीर्णोद्धार क

कों प्रादुष्टे समान समुजे, क्योंकि जावश्रावकके लक्षण सत्तरे प्रकारें कहे हैं, तिनका नाम कहते हैं

१ स्त्रीसैं वैराग्य, २ इन्द्रियवैराग्य, ३ धनसैं वैराग्य, ४ संसारसैं वैराग्य, ५ विषयसैं वैराग्य, ६ आरंज स्वरूप जाणे, ७ घरकों डु खरूप जाणे, ८ दर्शनधारी, ९ गहरीप्रवाह ठोडे, १० धर्ममें आगें हो कर प्रवर्त्ते, आगमानुसारें धर्ममें प्रवर्त्ते, ११ दानादिकमें यथाशक्ति प्रवर्त्ते, १२ विधिमागीमें प्रवर्त्ते, १३ मध्यस्थ रहें, १४ अरक्तद्विष्ट, १५ अस्वबन्ध, १६ परहित वास्ते अर्थ कामका जोगी न होवे, १७ वेश्याकी तरें घरवास पाजे, ए सत्तरे पद सयुक्त जावश्रावक होता है तिनमें १ प्रथम स्त्री जो है, सो अनर्थका नवन है, चपलचित्तवाली है, नरककी वाट तरीखी है, जाणता दूया कामी, इसके वशवर्त्ती न होवे, २ दूसरी इन्द्रियों जो हैं, सो चपल घोडे समान हैं, खोटी गतिकी तरफ नित्य दौडती हैं, उसकों नव्य जीव, संसारका स्वरूप जानकें सत्ज्ञानरूप रन्तु (दोरडी) सैं रोके, ३ तीसरा धन जो है, सो सर्व अनर्थका औ क्लेशका कारण है, इस वास्ते धनमें लुब्ध न होवे, ४ चौथा संसारकों डु खरूप डु खफल डु खानुबधी विडबनारूप जानकें प्रीति न करे, ५ पाचमा विषयका झणमात्र सुख है, विषय विषफल समान है, ऐसे जानकें कदापि विषयमें मृदित्व न करे, ६ ठछ तीव्रारज सदा वर्जे, जे कर निर्वाह न होवे, तोजी स्वल्परज करे, अरु आरज रहि तोंकी स्तुति करे, सर्व जीवों ठपर दयावत होवे, ७ सातवा गृहवासकों डु ख रूप, फांसी मानकें गृहवासमें वसे, अरु चारित्रमोदनीय कर्मके जीतनेमें थयम करे, ८ आठमा आस्तिक्य जाव सयुक्त जिनशासनकी प्रजावना गुरुजक्ति करे, ऐसे सम्यग्दर्शन निर्मल धरे, ९ नवमा जिस तरें बहुत मूर्ख लोक जेह (गहरी) प्रवाहवत् चलते होवे, तैसैं न चले, परंतु जो काम करे, सो विचारके करे, १० दशमा श्रीजिनागम विना और कोइ परलोकका यथार्थ मार्ग कहनेवाला शास्त्र नहीं, इस वास्ते जो काम करे, सो जिनागमानुसारें करे, ११ इग्यारहवा आपणी शक्तिके बिना गोप्यां चार प्रकारका दानादि धर्म करे, १२ बारहवा हितकारी, अनवय, धर्मक्रियाकों चितामणि रत्नकी तरें डुर्लेन जानकें करता दूया किसी मूर्खके हसनेसैं लज्जा न करे, १३ तेरहवा शरीरके रखने वास्ते धन, स्वजन, आधार, घरप्रमुखमें वसे,

ऊपर बहुत छद्म सुंदर अक्षरोंसे लिखावे, तथा आप वांचे, सवेगी नीताई पासों वचावे, तथा प्रौढ प्रारजादि महोत्सवसें दिनप्रत्ये पुस्तककी पूजा बहुमान पूर्वक व्याख्यान करावे, तिनके पढ़ने वालों वस्त्र अन्नादिसे उपपन्न करे, शास्त्र जो होते, सो दु खम कालके प्रजावसें बारा वर्षके ५ निरुद्ध कालमें बहुत विच्छेद गये, अरु जो शेष रहे, सो जगवान् नागार्जुन स्कंदिलाचार्य प्रमुखोंने पुस्तकोंमें लिखे, तवसें लिखे दूए शास्त्रोंका बहुमान करने लगे, तिस वास्ते पुस्तक जरूर लिखाने चाहिये क्योंकि जो यह विच्छेद हो जायगे, तो फेर इस क्षेत्रके अनाथ जीवोंको कौन ज्ञान देवेगा ? इस वास्ते पुस्तकोंके ऊपर डकुलादि वस्त्र बांधके यत्नासे पूजने रखने चाहिये, शाह पेण्डने सात कोठ, अरु मंत्री वस्तुपालने अ छारह कोठ रूपये खरचके तीन ज्ञानके जमर बनाये, तथा थिरापडिय सधपति आचूने अपनी माताके नामके रूपये तीन कोठसे सर्वांगमाकी प्रति सोनेके अक्षरोंसे लिखावे, शेषमथ स्यादीके अक्षरोंसे लिखावे॥१॥

११ इग्यारहवा पौषधशाला बनानेका द्वार सो आवक प्रमुखोंके पौषध करने वास्ते साधारण स्थानमें पूर्वोक्त घर बनानेकी विधिके अनुसार ब नानी चाहिये वो शाला समराके अवसरमें सुसाधुके रहनेकोनी देवे, ति सका महाफल है, श्रीवस्तुपालने नौ सौ चौरासी ( ९८४ ) पौषधशाला करावे, सिद्धराज जयसिद्ध राजाके प्रधान, सांतूने अपने रहने वास्ते बहुत सुंदर आवास कराके श्रीवादिवेवसुरिजीको दिखलाया, अरु मंत्रीजीने पूछा कि - कैसा आवास है ? तब चेले माणिक्यने कहा कि पौषधशाला होवे तो वर्णन करिये, तब मंत्रीने कहा कि - यह पौषधशालाही होवे ॥

१२-१३ तथा बारहवा अरु तेरहवा द्वारमें आजन्म वाक्य अवस्थासें छे करजावजीव लगे सम्यक्त्वदर्शन यथाशक्तिसे पाले, यह बारहमा द्वार॥१२॥ १३ अरु यथाशक्तिसे व्रतादि पाले, यह तेरहवा द्वार ॥ १३ ॥

१४ चौदहवा दीक्षा ग्रहणका द्वार सो आवक अवसर जानके दीक्षा ग्रहण करे, तात्पर्य यह है कि - आवक जो है, सा निश्चय बालावस्थामें दीक्षा न लेवे, तो अपने मनमें उगाया हुआ माने, जैसे जगत्में अति वध्व न वस्तुको लोक स्मरण करते हैं, तैसें आवकजी नित्य सर्वविरति लेनेकी चिंता करे, जे कर गृहवासजी पाले, तोनी औदासीन्य अजितपणे अपने



चार मास तक चार पर्वोंमें पूर्वजो तीन प्रतिमा सहित अर्चनित परिपूर्ण पौषध करे, पांचमी पाच मास तक स्नान न करे, रात्रिकों चार आहार वर्ज, दिनमें ब्रह्मचर्य धरे, कञ्च बांधे नहीं, चार पर्वोंमें घरमें तथा चौकमें नि-प्रकप होके सकलरात्रि कायोत्सर्ग करे, यह सर्व पूर्वजो प्रतिमा सहित करे. यह बात, आर्गेजी सर्व प्रतिमामें जान लेनी उछी है मास तक ब्रह्मचारी होवे, सातमी सात मास तक सञ्चित आहार वर्ज, आठमी आठ मास तक आप आरज न करे, नवमी नव मास तक आरज करावे नहीं, दशमी दश मास तक कुरमुंनित रहे अथवा अल्प चोटी राखे, घरमें गढा दूआ धन होवे, जब घरके पूछे तब कहे जानता दू, औ जो न गढा होवे, तो कहे में नहीं जानता, शेष घरका कृत्य सर्व वर्ज, तिसके निमित्त जो घरमें आहार कछा होय, तोजी न खावे इग्यारहवीं इग्यारां मास तक घरका सग त्यागे, लोच करे, वा कुरमुंनित होवे, रजोहरण पात्रे प्रमुख छेके मुनिका वैप धारी हो कर स्वकुलमें निष्ठा लेवे, मुखसें ऐसा कहे कि “प्रतिमाप्रतिपन्नाय श्रमणोपासकाय जिह्वां वेद्मितीति वचन कहे,” धर्मज्ञान शब्द न कहे, सर्वरीतिसें साधुकी तरें प्रवर्त्त ॥ इति आर्यप्रतिमा सप्तदशधारम् ॥ १७ ॥

१८ अष्टारहवां द्वार, आराधनाका कहते हैं, आवक अतकालमें आराधना जो आर्गे कहेंगे सो अरु सल्लेपनादिकों विधिसें करे आवक जब सर्वधर्म कृत्यमें अशक्त हो जावे, तब मरण निकट जानके इव्य अरु जावें दो प्रकारें सल्लेपना करे. तहां इव्यसल्लेपना तो अनुक्रमसें आहार त्यागे, अरु नावसल्लेपना सो क्रोधादि कपाय त्यागे, मरण निकट, इन लक्ष्णोसे जान लेवे, सो लक्षण कहते हैं १ बुरे स्वप्न आवे, २ प्रकृति स्व नाव और तरेंका होवे, ३ दुर्निमित्त मले, ४ खोटे ग्रह आवे, ५ आत्माका आचरण फिर जावे, अथवा कोई देवता कह जावे तो मरण निकट जान जावे, जो इव्ये जावें सल्लेपना न करे, अरु अनशन कर देवे, उसको प्रायें इध्यानि दोनेसें कुगति होती है, इस वास्ते सल्लेपना अवश्य करे, पीछे आचकोके धर्मके उद्यापन करने वास्ते सयम अंगीकार करे, क्योंकि एक दिनकीजी दीक्षा स्वर्गलोककी दाता है, जैसें नलराजाके नार्सकुवेरके पुत्र सिद्धकेसरी, पांच दिनकी दीक्षासे केवलज्ञान पाके मोक्ष गया, तथा हरिवाहन राजाने नव प्रहरका शेष आधु मुनके दीक्षा लीनी

जोग रहे, परंतु राग, द्वेष, किसी वस्तुमें न करे, १४ चौदहवा अपज्ञांतवृत्ति सार है, जैसे विचारसे जो राग द्वेषमें लेपायमान न होवे, खोटा आग्रह न करे, हितका अनिलाषी मध्यस्थ रहे, १५ पंद्रहवा सर्ववस्तुको दृष्टि न गुर पणा निरंतर विचारे, धनादिके साथ प्रतिबध तजे, १६ शोलहवा स सारसें विरक्त मन होवे, क्योंकि जोग जोगनेसें आज तक कोइ तृप्त नहीं हुआ है, परंतु स्त्रीआदिके आग्रहसे जे कर जोगोमें प्रवर्त्ते, तोनी विरक्तमन रहे, १७ सत्तरहवा वेश्याकी तरे अनिलाषा रहित वर्त्ते, ऐसा विचारे की आज काल ये अनित्यसुख मुझकों ढोढने पड़ेंगे, इस वास्ते घरवासमें स्थिर जाव न रके, यह सत्तरे गुण समुक्त श्रीजिनागममें जाव श्रावक कहा है ॥ इति धर्मरत्नशास्त्रे कथितं ॥

ऐसें गुजजावना वासित प्रागुक्त दिनकृत्यादिमें रक्त “इणमेव निग्गये पवयणे अठे परमठे सेसे अणठे” ऐसी सिद्धांतोक्त रीतिसें वर्त्तमान सर्व व्यापारोंमें सर्वप्रयत्नसें वर्त्तता हुआ सर्वत्राऽप्रतिबद्ध चित्त करके क्रमसें मोह जीतने समर्थ होके पुत्र, जाइ, नत्रीजाविककों गृहजार सौंपके अपणी शक्तिको देखके अर्द्धत चैत्यमें अष्टाइ महोत्सव करके सघकी पूजा करके दीन अनार्थोंको यथाशक्ति दान वेके परिचित जनोसें स्वामणां करके सुदर्शन श्रेष्ठीवत् विधिसे सर्वविरति अंगीकार करे ॥ १४ ॥

१५ पंद्रहवा द्वारमें जे कर वीक्षा लेनेकी शक्ति न होवे, तदा आरजका त्याग करे, जे कर निर्वाह न होवे, तोनी सर्व सचित्ताहारादिक कितनाक आरंज वर्जे ॥ इति पंचदश द्वारं ॥ १५ ॥

१६ शोलमे द्वारमें ब्रह्मचर्य, जावझीव तक अंगीकार करे, यथा शाह पेयडनें बत्तीस वर्षकी अवस्थामें ब्रह्मचर्य धारण कीया ॥ इति षोडश द्वारं ॥

१७ सत्तरहवे द्वारमें प्रतिमादि तप विशेष करे, आदि शब्दसे ससार तारणादि तप करे, तहां इग्यारह प्रतिमाका स्वरूप इस तरें है, प्रथम राया निर्वणेषादि वै आगार रहित, तथा सतशत बोल श्रद्धादि सहित सम्यक् दर्शन नय लक्षाविसें अतिचार रहित त्रिकाल देवपूजादिमें तत्पर एक मास तक सम्यक्त्व पाले, यह प्रथम प्रतिमा, दूसरी दो मास तक अखण्डित पांच अणुव्रत पाले, सोनी पीठली प्रतिमा सहित वर्त्ते, तीसरी तीन मास तक उजय काल अग्रमत्त पूर्वोक्त दो प्रतिमा सहित सामायिक करे, चौथी

चार मास तक चार पर्वोंमें पूर्वोत्ती तीन प्रतिमा सहित श्रावणमिति परिपूर्ण पौषध करे, पाचमी पाच मास तक स्नान न करे, रात्रिकों चार आहार वर्ज, दिनमें ब्रह्मचर्य धरे, कष्ट वाधे नहीं, चार पर्वोंमें घरमें तथा चौकमें निः प्रकष होके सकलरात्रि कायोत्सर्ग करे, यह सर्व पूर्वोत्ती प्रतिमा सहित करे यह बात, आर्गेजी सर्व प्रतिमामें जान लेनी ठीकी है मास तक ब्रह्मचारी होवे, सातमी सात मास तक सञ्चित आहार वर्ज, आठमी आठ मास तक आप आरज न करे, नवमी नव मास तक आरज करावे नहीं, दशमी दश मास तक कुरमुंमिति रहे अथवा अल्प चोटी राखे, घरमें गड़ा हुआ धन होवे, जब घरके पूछे तब कहे जानता हूँ, औ जो न गड़ा होवे, तो कहे मैं नहीं जानता, शेष घरका कृत्य सर्व वर्ज, तिसके निमित्त जो घरमें आहार कष्टा होय, तोनी न खावे इग्यारहवीं इग्यारां मास तक घरका सग त्यागे, लोच करे, वा कुरमुंमिति होवे, रजोहरण पात्रे प्रमुख छेके मुनिका वेष धारी हो कर स्वकुलमें निष्ठा लेवे, मुखसें ऐसा कहे कि “प्रतिमाप्रतिपन्नाय श्रमणोपासकाय निष्ठां देहीति वचन कहे,” धर्मलान शब्द न कहे, सर्वरीतिसें साधुकी तरें प्रवर्त्त ॥ इति श्राद्धप्रतिमा सप्तदश वारम् ॥ १४ ॥

१५ अष्टारहवा वार, श्राधनाका कहते हैं, आवक अतकालमें श्राधना जो आर्गे कहेंगे सो अरु सलेपनादिकों विधिसें करे आवक जब सर्वधर्म कृत्यमें अशक्त हो जावे, तब मरण निकट जानके इव्य अरु जावें दो प्रकारें सलेपना करे तहां इव्यसलेपना तो अनुक्रमसें आहार त्यागे, अरु नावसलेपना सो क्रोधादि कषाय त्यागे, मरण निकट, इन लक्ष्णोंसे जान लेवे, सो लक्ष्ण कहते हैं १ बुरे स्वप्न आवे, २ प्रकृति स्व जाव और तरेंका होवे, ३ दुर्निमित्त मले, ४ खोटे ग्रह आवे, ५ आत्माका आचरण फिर जावे, अथवा कोई देवता कह जावे तो मरण निकट जान जावे, जो इव्य जावें सलेपना न करे, अरु अनशन कर देवे, उसको प्रायें डुर्ध्यान होनेसें कुगति होती है, इस वास्ते सलेपना अवश्य करे, पीछें आवकोंके धर्मके उद्यापन करने वास्ते समय अगीकार करे, क्योंकि एक दिनकीनी दीक्षा स्वर्गलोककी दाता है, जैसें नलराजाके नार्ज कुवेरके पुत्र सिद्धकेसरी, पाच दिनकी दीक्षासें केवलज्ञान पाके मोक्ष गया, तथा हरिवाहन राजाने नव प्रहरका शेष थायु मुनके दीक्षा लीनी

सर्वार्थसिद्धि विमानमें गया, संथारा और दीक्षाके अवसरमें प्रजावना वास्ते यथाशक्ति धन खरचे, जैसे सात क्षेत्रोंमें ते अवसरमें विरापड़ीय सधपति आचूने सात क्रोड धन खरच्या तथा जिसको सयमका योग न होवे, सो सत्प्रेषना करके शत्रुजयादि तीर्थ सुस्थानमें जा कर निर्दोष स्थानमें विधि से चार आहार त्यागरूप अनशनको आणद कामदेवादि आवर्कोवत् करे, तिस पीछे सर्वातिचारका परिहार चार सरणादि रूप आराधना करे

आराधना दश प्रकारसें होती है, सो कहते हैं १ पहिला सर्वातिचार आलोवे, २ व्रत वच्चारण करे, ३ सर्व जीवोसे क्षमावे, ४ अपनी आत्मा को अछारद पापस्थानक करनेसे व्युत्सर्जन करे, ५ चार सरणां लेवे, ६ गमनागमन ड रुतकी गर्हणा करे, ७ जो किसीने जिनमदिरादि सुकृत करा होवे, तिसकी अनुमोदना करे, ८ मुजजावना जावे, ९ अनशन करे, अर्थात् चार आहार तीन आहारका त्याग करे, १० पच नमस्कारका स्मरण करे, औसी आराधना करणसें जे कर तिस नवसें मुक्ति न होवे, तोनी सुदेव अथवा सुमनुष्यके आव नव करके तो अवश्यमेव मोक्षरूप हो जावेगा ॥ १७ ॥ इति अष्टादश धारं समाप्तम् ॥

इस गृहस्थके धर्म करनेसे निरंतर गृहस्थ लोक इस लोक, परलोकमें सुखको प्राप्त होवे हैं, अरु परंपरासें मोक्षको प्राप्त होते हैं ॥ इति श्रीश्राद्ध विधि ग्रन्थानुसार आवकस्य जन्मकृत्यं संपूर्णम् ॥

इति श्री तपगङ्गायमुनि श्रीमणिविजयगणि तद्विष्य मुनिश्रीबुद्धिविजय तद्विष्य मुनिश्री मुक्तिविजयगणि तस्य लघुगुरुव्रात मुनि आत्मराम आनंद विजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे गृहस्थधर्मनिरूपणनामा दशम परिच्छेद ॥ १० ॥

॥ इति श्री जैनतत्त्वादर्शे दशम  
परिच्छेद समाप्त ॥

## ॥ अथ एकादश परिच्छेद प्रारंभः ॥

इस परिच्छेदमें रूपनादि महावीर पर्यंत जैनमतादि शास्त्रोंके अनुसार पूर्व वृत्तांत इतिहास रूप लिखते हैं, क्योंकि इस ग्रंथके पढ़ने वाले यह तो जान जायगे कि जैनी इस तरें मानते हैं, परंतु वर्तमान समयमें कितनेक जन्म जीवोंकी जिज्ञासा है, कि—जैनमत कबसे यहा प्रचलित हुआ है? फिर कितनेक जीवोंको ऐसी घ्रांति है कि—जैनमत बौद्धमतकी शाखा है, और कितनेक कहते हैं कि बौद्धमत जैनमतकी शाखा है, क्योंकि यह दोनों मत किसी कालमें एक थे, परंतु आचार्योंके मत भेद होनेसे एक मतके जैन और बौद्ध यह दो मत हो गये है, तथा कोइ कहते हैं कि—सबत् ठै सौके ६०० लग जग जैनमत हुआ है, तथा कोइ कहते हैं कि विष्णु जगवान्ने दैत्यके धर्मघट करनेकों अर्द्धतका अवतार लीया, तथा कोइ कहते हैं कि मज्जदर नायके वेदोंमें जैनमत चलाया है, इत्यादि अनेक विकल्प करते हैं, परंतु ये सर्व कहने दतकथा, अरु जैनमतके न जाननेका सूचक है, जैसे चर्मकार अर्थात् चमार कहते हैं, कि बानी और चामो दो बहिनां थो, तिनमें बानीकी और लाद, अग्रवालावि सर्व बनिये हैं, और चामोकी औरलाद, हम चमार हैं इस वास्ते बनीयें और चमार एक वशके हैं, अब शोचना चाहियें कि चमारोंकी यह कही हुई कथा सुनके बुद्धिमान सांच मान लेवेंगे? इसी तरें जो कोइ अपणी बलीजसे वा दतकथा सुनके जैनमतकी उत्पत्ति मानेगा, वोनी जैनीयोंके आगे हसनेका स्थान बनेगा, क्योंकि प्रथम तो कोइनी मतवाला जैनमतके असली तत्त्वकों नहीं जानता है, जैसे शकर द्विग्विजयमें शकर स्वामीने जो जैनमतका खमन लिखा है, उसकों देखके हमकों हांसी आती है, जब शकर स्वामीने जैनमतकोंही नहीं जाना, तो फेर जो उनका जैनमतका खमन है, सोनी ऐसा जानना कि जैसे पुरुषकी ठायाकों पुरुष जानके तिसकों लागीसे पीटनां, जब शकरस्वामी कोही जैनमतकी खबर नहीं थी, तो अबके वर्तमान कालके गाल ब जाने वालोंका क्या कहना है? इस वास्ते हम बहुत नम्र हो कर ग्रंथ पढ़ने वालोंसे विनति करते हैं कि अष्टी तरेंसे जैनमतकों जान कर फिर

तुमनें जैनमतका खंमन मंमन करनां, नहीं तो शकरस्वामी अरु रामातु जाचार्यादिककी तरें तुमजी हसने योग्य हो जावेंगे ?

अब सज्जनोके जानने वास्ते प्रथम इस जगत्का थोडासा स्वरूप लिखते हैं यह जगत्को जैनी, इव्यार्थिक नयके मतसे शाश्वत अर्थात् हमे शां प्रवादसे ऐसाही मानते हैं, और इस जगत्में ठे तरेका काल वर्तता है, तिनहीको जैनी लोक, ठे आरे कहते है एक अवसर्पिणी काल, अर्थात् सर्व अन्ही वस्तुका क्रमसे नाश करता चला जाता है, तिसके ठे दिस्से हैं तथा दूसरा उत्सर्पिणी काल, अर्थात् सर्व अन्ही वस्तुको क्रमसे वृद्धिमान् करता चला जाता है, दश कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण एक अवसर्पिणी काल, और इतनेही सागरोपम प्रमाण एक उत्सर्पिणी काल है, एक सागरोपम असख्याता वर्षका होता है, इसका स्वरूप जैनशास्त्रसे जान लेनां यह एक अवसर्पिणी अरु एक उत्सर्पिणी मिल कर दोनोंका एक कालचक्र, बीस कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण होता है, ऐसे कालचक्र अनन्त पीछे व्यतीत हो गये हैं, और आगेको व्यतीत होवेंगे, अवसर्पिणी के पूरे हुये उत्सर्पिणी कालका प्रारंज होता है, और उत्सर्पिणीके पूरे हुये अवसर्पिणी कालका प्रारंज होता है. इती तरें अनादि अनन्त काल तक यही व्यवस्था रहेगी अब ठेहो आरोंके स्वरूप लिखते हैं

अवसर्पिणीका प्रथम आरा जिसका नाम सूखम सूखम कहते है सो चार कोटाकोटी सागरोपम प्रमाण है तिस कालमें जरतदेवकी नूमिका बड्ड त सुंदर रमणीय मार्दलके तले समान सम (बराबर) थी, उस कालके मनुष्य, जड्क, सरलस्वभाव, अल्प राग, द्वेष, मोह, काम, क्रोधादि वाले थे, सुंदर रूपवान्, नीरोग शरीर वाले थे, वश जातिके कल्पवृक्षोंसे अपने खाने पीने पहनने सोने आदिकका सर्व व्यवहार कर लेते थे, एक लडका एक लडकी दोनोंका युगल जन्मते थे, जब यौवनवत होते थे, तब दोनों बहिन और नाइ, स्त्री जरतारका सवध कर लेते थे, उनोंके आगे ऐसेही फेर युगल होते रहे, सो पूर्वोक्त सर्व व्यवहार करते थे, जैन मतके मापेसें ती न गाक ( कोश ) प्रमाण उनका शरीर उचा था, और तीन पल्योपम प्रमाण आधु था, तथा दो सौ ठप्पन पृष्ठ करंरुके दाढ थे, धर्म करनां, और जीवहिंसा, चूत, चोरी प्रमुख पापजी विशेष नहीं था, वृक्षोंहीमें सो रह

ते थे, जुगल जोड़ेनी गिणतीमें थोड़े थे, बाकी (शेष) चवपाय, पक्षी, पंचें  
 दिय सर्व जातिके जीव थे, परंतु वो जड़क थे, कुड़क नहीं थे, शालिप्रमुख  
 सर्व अन्न तथा इन्तु प्रमुख चीजें सब जंगलोंमें स्वयमेवही उत्पन्न हो जाते  
 थे, परंतु वो कुछ मनुष्योंके खानेमें नहीं आते थे, क्योंकि मनुष्य तो नि के  
 वल फल फूलोंकाही आहार करते थे, वस्त्रकी जगें वृक्षोंके पत्ते वा छि  
 ल्यक उढते थे, इत्यादि प्रथम आरेका स्वरूप, जबू द्वीपप्रकृति प्रमुख शास्त्रों  
 से जान लेना ॥ इति प्रथम आराका किंचित्स्वरूप कहा ॥ १ ॥

दूसरा आरा, तीन कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण, तिसमें दो गाऊ (कोश)  
 देहमान, दो पत्न्योपमायु, एक सौ अछाई छठ करमक हाड थे, शेष व्यव  
 हार प्रथम आरावत् जानना ॥ इति दूसरा आरक ॥ २ ॥

तीसरा आरा, दो कोड़ाकोड़ी सागरोपम प्रमाण, एक गाऊ (कोश)  
 देहमान एक पत्न्योपमायु, चौसठ छठ करमकी पसलीया, शेष व्यवहार प्र  
 थम आरेवत् जानना, इन सर्व आरोंमें सर्ववस्तु क्रमसें घटती घटती ठेढ़े  
 अगले आरे तुल्य रह जाती है परंतु एक बारगी सर्व स्तु नहीं घटती है

इस तीसरे आरेके ठेढ़े एक वशमें सात कुलकर उत्पन्न हुए, कुल  
 कर उसको कहते हैं कि जिनोंने तिस तिस कालके मनुष्योंके वास्ते कबु  
 क मर्यादा बांधी है, इनही सात कुलकरोंको लौकिकमें सप्त मनु कहते हैं,  
 दूसरे वंशोंके कुलकर गिनीयें, तब श्रीरूपनदेवको वर्जके चौदह कुलकर  
 होता है अरु रूपननाथ पदरहवा कुलकर होता है

पूर्वोक्त सात कुलकरोंके नाम लिखते हैं प्रथम विमलवाहन, दूसरा  
 चक्रुष्मान्, तीसरा यशस्वान्, चौथा अजिचङ्, पांचमा प्रभ्रेणि, छठा मरु  
 देव, सातमा नानि इन सातोंकी जार्याका नाम क्रमसें कहते हैं, १ चङ्ग  
 शा, २ चङ्काता, ३ सुरूपा, ४ प्रतिरूपा, ५ चक्रु कांता, ६ श्रीकांता, ७ मरु  
 देवी, ये सर्व कुलकर, गंगा अरु सिंधु नदीके मध्यके खंभमें जुये हैं

यह कुल कर होनेका कारण कहते हैं तीसरे आरेके चतरता वश  
 जातिके कल्पवृक्ष, कालके दोपसें थोड़े हो गये, तब युगलक लोकोंने अ  
 पने अपने वृक्षोंका ममत्व कर लीया, पीछे जब दूसरे युगलोंके रस्के हुए  
 वृक्षोंसे फल लेने लगे, तब ममत्व वाले युगल उनसे द्वेष करने लगे,  
 तब युगलक पुरुषोंको ऐसा विचार आया कि कोइ ऐसा होवे, जो द

मारे क्लेशका निवेदा करे, तब तिन युगलियोंमेंसे एक युगलकों एक बनेके श्वेत दाथीनें देख कर प्रेमसें अपने स्कंध पर चढा लीया, जब वो युगल पुरुष एकला दाथी ऊपर चढके फिरने लगा, तब और युगलोंनें बिचार किया कि यह युगल, हमसें बढा है, क्योंकि यह, दाथी ऊपर चढा फिर ता है, और हम तो पगोंसें चलते हैं, इस वास्ते इसकों न्यायाधीश बना ठ अर्थात् जो यह कहे, सो मानो, तब तिनोंने उसकों न्यायाधीश बनाया जिस कारनसें दाथीनें युगलकों अपने वपर चढाया है, सो कारण, और इनोंके पूर्वजकी कथा आवश्यक सूत्र तथा प्रथमानुयो गसें जान लेनी

तब तिस विमलवाहननें सर्व युगलियोंकों कल्पवृक्ष वांटके दे दीये, कितनेक युगलीये अपने कल्पवृक्षोंसें सतोप न करके औरोंके कल्पवृक्षोंसें फल लेने लगे, तब उस वृक्षके मालक क्लेश करने लगे पीठें तिस नि सतोषी युगलीयेकों पकडके विमलवाहनके पास लाते हुए, तब विमलवाहननें उनकों कहा कि हा तुमने यह क्या करा ? तबसें विमलवाहननें ऐसी दमनीति प्रवर्त्ताइ, तिस द्वाकार दमनीतिसें फेर वे ऐसा काम नहीं करते थे पीठें तिस विमलवाहनका पुत्र चक्रुष्मान् हुआ, अपने बापके पीठें वो राजा अर्थात् कुलकर बना, तिसके बखतमेंनी द्वाकारही दम रदा, तिसके यशस्वान् नामा पुत्र हुआ, तिसके अनिचड पुत्र हुआ, इन दोनोंके समयमें थोडे अपराध वालेकों द्वाकार दम और बहुत टीठकों मकार दम जो यह काम मत करनां, ये वो दमनीति हुआ, तिसके पुत्र प्रश्नेणि हुआ, प्रश्नेणिके पुत्र मरुदेव हुआ, मरुदेवका पुत्र नानि हुआ, ये तीनों कुल करोंके समयमें द्वाकार, मकार अरु धिक्कार, ये तीन दमनीति हो गइ, तिसमें थोडे अपराधीकों द्वाकार, अरु मध्यम अपराधीकों मकार, तथा वस्क्रुष्ट अपराधीकों धिक्कार दम करते हुए, तिस नानिकुल करके मरुदेवी नामा जार्या थी, यह नानिकुलकर बहुलतासें इदवाकु जूमि अर्थात् त्रि नता नगरीकी जूमिमें निवास करता था, यह जूमि, कश्मीर देशके परे थी, क्योंकि त्रिनता नगरीके चारों दिशामें चार पर्वत थे, तिसमें पूर्वदिशिमें अष्टापद अर्थात् कैलासगिरि थे, दक्षिणदिशिमें महाशैल्य थे, पश्चिमदिशिमें सुर शैल्य, तथा उत्तरदिशिमें उदयाचल पर्वत दोते.



तिस नाजिकुलकरकी मरुदेवी नामक नार्याकी कूखमें आपाठवदि चौथकी रात्रिकों सर्वार्थसिद्ध देवलोकसे च्यवकें रूपनदेवका जीव, गर्भमें पुत्र पणे उत्पन्न हुआ, मरुदेवीने चौदह स्वप्न देखे, इन्द्रमहाराजने स्वप्न फल कहा, चैत्रवदि अष्टमीकों रूपनदेवजीका जन्म हुआ, ऋष्यनदिगुमारी और चौशठ इन्द्रने मिलकें जन्ममहोत्सव करा, मरुदेवीने चौदह स्वप्नकी आदिमें बैलका स्वप्न देखा था, तथा पुत्रके दोनो साथलोमें बैलका चिन्ह था, इस वास्ते पुत्रका नाम रूपन दीया

बाल अवस्थामें श्रीरूपनदेवकों जब नूख लगती थी, तब अपने हाथका अंगूठा मुखमें छेकें चूस लेते थे उस अंगूठेमें इन्द्रने अमृत संचार कर दीया था, जब रूपनदेवजी बड़े हुए, तब देवता उनको कल्पवृक्षोंके फल व्या कर देते थे, वे फल खा लेते थे, जब रूपनदेव कूठ न्यून एकवर्षके हुए, तब इन्द्र आया, हाथमें इक्षुदम व्याया, क्योंकि रीते हाथसे स्वामीके समीप न जाना चाहिये, इस वास्ते इक्षुदम व्याया, उस वखतमें श्रीरूपनदेवजी नाजिकुलकरकी गोदीमें बैठे थे, तब रूपनदेवकी दृष्टि, इक्षुदम पर पड़ी, तब इन्द्रने कहा के हे नगवन् ! इक्षु अक्षु अर्थात् इक्षु नक्षुण क रोगे ? तब रूपनदेवजीने हाथ पसाया, तब इन्द्रने रूपनदेवजीका इक्षु कुवश स्थापन करा, तथा श्रीरूपनदेवजीके वशवालोंने काशकार पीया, इस वास्ते गोत्रका नाम काश्यप हुआ, श्रीरूपनदेवजीके जिस जिस वयमें जो जो काम उचित था, सो सो शक्र (इन्द्र)ने करा, यह अनादिसें जो जो शक्र (इन्द्र) होते हैं, तिनका जीतकल्प है, जो प्रथम नगवान्के व उचित सर्वकाम करने

इस अवसरमें एक लडकी लडका बहिन और नाइ बालावस्थामें ता दृष्टके बैठ खेलते थे, उहां ताडके फल गिरनेसे लडका मर गया, तब लडकीकों नाजिकुलकरने यह रूपनदेवजीकी नार्या होवेगी ? ऐसा विचार करके अपने पास रख लीनी, तिसका नाम सुनदा था, और दूसरी जो रूपनदेवजीके साथ जन्मी थी, तिसका नाम सुमगला था, इन दोनोंके साथ रूपनदेव बालावस्थामें खेलते हुए यौवनके प्राप्त हुए, तब इन्द्रने विवाहका प्रारंभ करा, आगे युगलके समयमें विवाहविधि नहीं थी, इस वास्ते यह विवाहमें पुरुषके कृत्य तो सर्व इन्द्रने करे, और स्त्री

योंकी तर्फसें सर्वकृत्य इंशाणीयोंनें करे, तहांसें विवाहविधि जगत्में प्र-  
लित हुई, तब श्रीरूपनदेव दोनो जायोंके साथ सांसारिक विषयसुख-  
गता, जब छै लाख पूर्व, वर्ष व्यतीत हुए, तब सुमगला राणीके ज-  
और ब्राह्मी यह युगल जन्मे, तथा सुनदाके बाहुबली और सुं-  
यह युगल जन्मे, पीछेसे सुनदाके तो और कोइ पुत्र पुत्री नहीं जन्मे,  
रंतु सुमगला देवीके उणपचास (४९) अर्थात् एक कम पंचास जोड़े पु-  
द्दीके जन्मे यह सब मिल कर सौ पुत्र और दो पुत्रीयों, श्रीरूपनदेवके।  
पत्य अर्थात् पुत्र पुत्री हुए हैं

तिन सौ पुत्रके नाम लिखते हैं १ जरत, २ बाहुबली, ३ श्रीमस्त-  
४ श्रीपुत्रांगारक, ५ श्रीमस्त्रिदेव, ६ अगज्योति, ७ मलयदेव, ८ नार्गी-  
तार्थ, ९ बंगदेव, १० वसुदेव, ११ मगधनाथ, १२ मानवार्त्तिक, १३ म-  
नयुक्ति, १४ वैदर्जदेव, १५ बनवासनाथ, १६ महीपक, १७ धर्मराष्ट्र-  
१८ मायकदेव, १९ आस्मक, २० दमक, २१ कर्लिंग, २२ ईषकदेव, २३  
पुरुषदेव, २४ अकल, २५ जोगदेव, २६ वीर्यजोग, २७ गणनाथ, २८  
तीर्थनाथ, २९ अबुदपति, ३० आयुवीर्य, ३१ नायक, ३२ काक्षिक, ३३  
आनर्त्तिक, ३४ सारिक, ३५ ग्रहपति, ३६ करदेव, ३७ कञ्चनाथ, ३८ रु-  
राष्ट्र, ३९ नर्मद, ४० सारस्वत, ४१ तापसदेव, ४२ कुरु, ४३ जंगल, ४४  
पंचाल, ४५ शूरसेन, ४६ पुट, ४७ कालगदेव, ४८ काशीकुमार, ४९ कौ-  
शक्य, ५० जडकाश, ५१ विकाशक, ५२ त्रिगर्त्त, ५३ आवर्ष, ५४ साजु,  
५५ मस्त्यदेव, ५६ कुलियक, ५७ सुषकदेव, ५८ वाड्ढीक, ५९ काञ्चोज,  
६० मञ्जनाथ, ६१ सांझक, ६२ आत्रेय, ६३ यवन, ६४ आनीर, ६५  
वानदेव, ६६ बानस, ६७ कैकेय, ६८ सिधु, ६९ सौवीर, ७० गधार, ७१  
काष्ठदेव, ७२ तोषक, ७३ शौरक, ७४ नारदाज, ७५ शूरदेव, ७६ प्रस्थान,  
७७ कर्णक, ७८ त्रिपुरनाथ, ७९ अवतिनाथ, ८० चेदिपति, ८१ विष्कंन,  
८२ नैषध, ८३ दशार्थनाथ, ८४ कुसुमवर्ण, ८५ जूपालदेव, ८६ पालप्रभु,  
८७ कुशल, ८८ पद्म, ८९ महापद्म, ९० विनिष्, ९१ विकेश, ९२ वैवेद, ९३  
कक्षपति, ९४ जडदेव, ९५ वज्रदेव, ९६ सांझज, ९७ सेतज, ९८ बस्त-  
नाथ, ९९ अगदेव, १०० नरोत्तम, यह रूपन देवके सौ पुत्रोंका नाम जानना  
इस अवसरमें जीवोंके कपायों प्रबल हो जानेसें पूर्वोक्त हकारादि तीनों

दमका लोक नय नहीं करने लगे, इस अवसरमें लोकोने सर्वसे अधिक ज्ञानवानादि गुणों करके सयुक्त श्रीरूपनदेवको जानके युगलक लोक, श्रीरूपनदेवको कहते हुए कि अबके सब लोक दमका नय नहीं करते हैं ? श्री रूपनदेवजी गर्नमेंनी मति, श्रुत, अरु अवधि, यह तीन ज्ञानों करके सयुक्त थे, यह श्रीरूपनदेवजीके पूर्वजनोंका वृत्तांत आवश्यक तथा प्रथमानुयोगसे जान लेना, तब श्रीरूपनदेव वो युगलक पुरुषोंको कहते जये कि जो राजा होता है, सो दम करता है, और राजा जो होता है, सो मंत्री कोटवालादि सेना सयुक्त होता है, अरु कृतानिषेक होता है, फेर उसकी आज्ञा अनतिक्रमणीय होती है, ऐसा वचन सुन कर, वे मिथुनक बोले कि ऐसा राजा हमाराजी हो जावे ? तब रूपनदेवजी बोले जो तुमारी मनसा ऐसी है, तो नानिकुलकरसे याचना करो, पीछे तिनोने नानिकुलकरसे विनति करी, तब नानिकुलकरने कहा, जाउ रूपनदेवजी तुमारा राजा हुआ, तब वे मिथुनक, रूपनदेवको राज्यानिषेक करने वास्ते पद्मिनी सरोवरमें गये, इस अवसरमें इसका आसन कपमान हुआ, तब अवधिज्ञानसे राज्यानिषेकका अवसर जानके यहाँ आ कर श्रीरूपनदेवको राज्यानिषेक करा, मुकुटादि सर्व अलंकार जो कुछ राजाके योग्य थे, सो पहिराये, इस अवसरमें मिथुनक लोक पद्मसरोवरसे नलिनीकमलोंमें पाणी व्याये, उनोने आ कर जब श्रीरूपनदेवजीको अलंकृत देखा, तब सजनोंने चरणों वपर जल गेर दीया, तब इन्ने मनमें चिता करी कि ये बड़े विनीत पुरुष हैं, ऐसा जान कर वैश्रमणको आज्ञा दीनी कि इन विनीतोंके रहने वास्ते विनीता नामा नगरी बसाउ, तब विनीता नगरी वैश्रमणने बसाइ, इसका स्वरूप, शत्रुजयमहात्म्यसे जान लेना

अथ सम्रद्धके वास्ते दायी, घोड़े, गौ प्रमुख श्रीरूपनदेवके राज्यमें वनोंसे पकड़े गये, तब श्रीरूपनदेवने चार प्रकारका सम्रद्ध करा १ वग्रा, २ जोगा, ३ राजन्या, ४ क्षत्रिया, उसमें जिनको कोटवालकी पदवी दीनी, सो दमके करनेसे वग्रावश कहलाया, तथा जिनको श्रीरूपनदेवजीने गुरु अर्थात् उचे बड़े करके माने, तिनोका जोगवश कहलाया, तथा जो श्रीरूपनदेवजीके मित्र थे उनोका राजन्यवश नाम रक्का गया, तथा शेष जो रहे, तिनका क्षत्रियवश हुआ

अथ आहारकी विधि कहते हैं, जब कम्पट्टुहोंके फलोंका अन्न दूथा, तब पकाहारका खाना किस तरसे दूथा ? सो लिखते हैं काजके प्रच वसे कम्पट्टु फल देनेसे रह गये, तब लोह, थोर वृद्धोंके कद्, मूल, पत्र, फूल, फल, खाने लगे, केइर इहुका रस पीने लगे, तथा सत्तरे जातका कच्चा अन्न खाने लगे, परतु कितनेक दिनो पीठें कच्चा अन्न उनको जीर्ण न होनेसे रूपनदेवजीने उनको कहा कि तुम हाथोंसे मसलकें तूतहा दूर करकें खाउ फेर कितनेक दिनो पीठें वेसेचो पाचन न होने लगा, तो फेर दूसरी तरें कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ, ऐसे बहुत तरसे कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ, तोचो काजदोपसे अन्न पाचन न होने लगा, इस अवसरमें जगलोमें वासादिके घसनेसे अग्नि उत्पन्न दूथा

प्रश्न - तुम कहते हो कि रूपनदेवजीको जातिस्मरण और अवधि ज्ञान था, तो फेर रूपनदेवजीने प्रथमसेही अग्नि बनाना उस अग्निसे अन्न रांधके खाना क्युं न बतलाया ?

उत्तर - हे जन्म ! एकांत सिग्ध कालमें और एकांत रुद्धकालमें अग्नि किसी वस्तुसेंजी उत्पन्न नहीं हो सक्ति, कदाचित् कोइ देवता विदेहके त्रसें अग्निको लेनी आवे, तोचो यहा तत्काल बूज जाती थी, इस वास्ते अग्निसे पकाकें खानेका उपदेश नहीं दीया, पीठें तिस अग्निको टूणावि दाह करता देखकें अपूर्व रत्न जानकें पकड़ने लगे, जब हाथ जले, तब मर खा कर दौडकें श्रीरूपनदेवजीसें सर्व वृत्तांत कहा, तब श्रीरूपनदेवने अग्नि ले आनेकी विधि बताइ, तिस विधिसें अग्नि घरमें ले आये, तब हस्ती उपर बैठे दूये रूपनदेवने हाथीके शिर उपरही मिट्टिका एक कूमासा बना कर उनको पास अग्निमें पका कर उसमें अन्न रांध कर खाना बताया, पीठें जिसके हाथसें वो कूमा पकड़ाया वो कुनार नामसें प्रसिद्ध दूथा, इसी वास्ते कुनारको प्रजापति पर्यापति कहते हैं, फेर तो शनै शनै सर्वतरेंका आहार पकाकें खानेकी विधि प्रवृत्त हो गइ, सर्वविधि श्रीरूपनदेवजीनेही बताइ है

अथ शिष्य षार कहते हैं श्रीरूपनदेवजीके उपदेशसें पांच मूल शिष्य अर्थात् कारीगर बने, तिसका नाम लिखते हैं १ कुनकार, २ लोहकार, ३ चित्रकार, ४ वस्त्र बुनने वाले, ५ नापित अर्थात् नाइ, ये पांच शिष्य

वने. यह एकेक शिल्पके अर्वांतर जेव वीश वीश हैं, इस वास्ते सर्व मिल कर एक सौ शिल्प उत्पन्न हुए.

अथ कर्मद्वार लिखते हैं कर्मद्वारमें १ खेती करणी, वाणिज्य करणां, धनका समत्व करणां, इत्यादि कर्म बताये प्रथम मट्टीके सचयोंमें नरके, अहरण, दथोड़ी प्रमुख बनाये, पीछें उनसे सर्व वस्तु काम लायक बनाइ गइ.

तथा नरतादि पर्यालोकोकों बहत्तर कला सिखलाइ, तथा स्त्रीयोंकों चौशष्ठ कला सिखलाइ इन, सनोंका नाम मात्र ऐसे हैं - १ लिखनेकी कला, २ पढ़नेकी कला, ३ गणितकला, ४ गीतकला, ५ नृत्यकला, ६ ताल बजानां, ७ पटह बजानां, ८ मृदंग बजानां, ९ वीणा बजानां, १० वशपरीक्षा, ११ जेरीपरीक्षा, १२ गजशिक्षा, १३ तुरंगशिक्षा, १४ धातु वाद, १५ दृष्टिवाद, १६ मन्त्रवाद, १७ बलिपलितविनाश, १८ रत्नपरीक्षा, १९ नारीपरीक्षा, २० नरपरीक्षा, २१ तद्वधन, २२ तर्कजल्पन, २३ नीतिविचार, २४ तत्त्वविचार, २५ कविशक्ति, २६ ज्योतिषशास्त्रका ज्ञान, २७ वैद्यक, २८ पद्मनापा, २९ योगान्यास, ३० रसायणविधि, ३१ अजनविधि, ३२ अक्षरह प्रकारकी लिपि, ३३ स्वप्नलक्षण, ३४ इन्द्र जालदर्शन, ३५ खेती करणी, ३६ वाणिज्य करणां, ३७ राजाकी सेवा, ३८ शकुनविचार, ३९ वायुस्तंजन, ४० अग्निस्तंजन, ४१ मेघवृष्टि, ४२ विलेपनविधि, ४३ मर्दनविधि, ४४ कर्ध्वगमन, ४५ घटवधन, ४६ घट म्रमन, ४७ पत्रहेवन, ४८ मर्महेवन, ४९ फलाकर्षण, ५० जलाकर्षण, ५१ लोकाचार, ५२ लोकरंजन, ५३ अफलवृक्षोंको सफल करणां, ५४ खड्गवधन, ५५ बुरी वधन, ५६ मुद्राविधि, ५७ लोहज्ञान, ५८ दांत स मारणे, ५९ कालजक्षण, ६० चित्रकरण, ६१ बाहुयुद्ध, ६२ मुष्टियुद्ध, ६३ दमयुद्ध, ६४ दृष्टियुद्ध, ६५ खड्गयुद्ध, ६६ वायुयुद्ध, ६७ गारुड विद्या, ६८ सर्पवसन, ६९ नूतमर्दन, ७० योग सो इध्यानयोग, अक्षरा नुयोग, व्याकरण, औपधानुयोग, ७१ वर्षज्ञान, ७२ नाममाला यह पु रुपोंको बहत्तर कला सिखलाइ, तिसका नाम कहा

अथ स्त्रीयोंकों चौशष्ठ कला सिखलाइ, तिसका नाम कहते हैं, १ नृत्य कला, २ औचित्यकला, ३ चित्रकला, ४ वादित्र, ५ मन्त्र, ६ तंत्र, ७ ज्ञान,

८ विज्ञान, ९ दण, १० जलस्तन, ११ गीतगान, १२ तालमान, १३ मेघ  
 वृष्टि, १४ फलवृष्टि, १५ आरामारोपण, १६ आकार गोपन, १७ धर्मविचार,  
 १८ शकुनविचार, १९ क्रियाकल्पन, २० सस्कृतजल्पन, २१ प्रसादनीति,  
 २२ धर्मेनोति, २३ वर्णिकावृद्धि, २४ स्वर्णसिद्धि, २५ तैलसुरजीकरण,  
 २६ लीलासचरण, २७ गजतुरंगपरीक्षा, २८ स्त्री पुरुषके लक्षण, २९  
 कामक्रिया, ३० अष्टादश लिपि परिधेय, ३१ तत्कालशुद्धि, ३२ वस्तुशुद्धि,  
 ३३ वैद्यक्रिया, ३४ सुवर्ण रत्ननेय, ३५ घटत्रय, ३६ सारपरिश्रम, ३७  
 अजनयोग, ३८ चूर्णयोग, ३९ हस्तलाघव, ४० वचनपाठव, ४१ जोष्य  
 विधि, ४२ वाणिज्यविधि, ४३ काव्यशक्ति, ४४ व्याकरण, ४५ शालिखंनन,  
 ४६ मुखमनन, ४७ कथाकथन, ४८ कुसुमगुथन, ४९ वरवेप, ५० सकलजा  
 पाविशेष, ५१ अग्निधानपरिज्ञान, ५२ आचरण पहनने, ५३ नृत्योपचार,  
 ५४ गृह्याचार, ५५ शातघकरण, ५६ परनिराकरण, ५७ धान्यरंधन, ५८  
 केशवधन, ५९ वीणादि नाद, ६० वित्तमावाद, ६१ अकविचार, ६२ लोक  
 व्यवहार, ६३ अत्याह्निका, ६४ प्रश्नप्रदेहिका यद् स्त्रीकी चौशत कला कही

अवकी सर्व सांसारिक कला पूर्वोक्त कलायोका प्रकरनूत है, इस वास्ते  
 सर्व कला इनहीके अतर्जव है, जैसे प्रथम लिपि कलाके अष्टारह जेद  
 दक्षिण हाथसे ब्राह्मीपुत्रीको सिखाइ, तिसके नाम कहते हैं १ हंसलिपि,  
 २ नूतलिपि, ३ यक्षलिपि, ४ राक्षसलिपि, ५ यावनी लिपि, ६ तुरकीलिपि,  
 ७ कीरीलिपि, ८ छावडीलिपि, ९ सैंधवीलिपि, १० मालवीलिपि, ११ नडी  
 लिपि, १२ नागरीलिपि, १३ लाटीलिपि, १४ पारसीलिपि, १५ अनिमिली  
 लिपि, १६ चाणक्यलिपि, १७ मूलदेवी, १८ ठड्डीलिपि, यह अष्टारह प्रकार  
 की ब्राह्मीलिपि, देशविशेषके जेदसे अनेक तरकी हो गई, जैसेकी १ ला  
 टी, २ चौडी, ३ माहली, ४ कानडी, ५ गौर्जरी, ६ सोरती, ७ मरदती, ८ कोंक  
 णी, ९ खुरासाणी, १० मागधी, ११ सिद्धली, १२ दाडी, १३ कीरी, १४  
 हम्मीरी, १५ परतीरी, १६ मसी, १७ मालवी १८ महायोधी, इत्यादि लिपि  
 सिखाइ, तथा सुदरी पुत्रिकों वाम हाथसे अकविद्या सिखाइ, जो जगतमें  
 प्रचलित कला है, जिनोसे अनेक कार्य सिद्ध होते हैं, वे सर्व श्रीकृष्णदेवने  
 प्रवर्त्ताइ हैं तिसमें कितनीक कला कह वार जुस होजाती हैं, फिर सामग्री  
 पा कर प्रगटनी हो जाती हैं, परंतु नवीन विद्या वा कला कोइनी नहीं व

त्पन्न होती है, जो कलाव्यवहार, श्रीरूपनदेवजीनें चलाया है, वो सर्व आवश्यक सूत्रमें देख लेना

ब्राह्मी जो जरतके साथ जन्मी थी, तिसका विवाह बाहुबलीके साथ कर दीया, और बाहुबलीके साथ जो सुदरी पुत्री जन्मी थी तिसका विवाह जरतके साथ कर दीया, तबसें माता पिताकी दीनी कन्याका व्यवहार प्रचलित हुआ।

श्रीरूपनदेवजीने युगल अर्थात् एक उदरके उत्पन्न हुए बहिन जाइका विवाह दूर किया, श्रीरूपनदेवकों देखके लोकनी इसी तरें विवाह करने लगे, श्रीरूपनदेवने बहुत काल तांड़ राज्य करा, प्रजाके वास्ते सर्वतरेके सुख उत्पन्न हुए, इस हेतुसें श्रीरूपनदेवकों जैनीलोक, जगत्का कर्ता मानते हैं, दूसरे मतवाले जो ईश्वरकी करी सृष्टि कहते हैं, वेनी ईश्वर, आदीश्वर, जगदीश्वर, योगेश्वर, जगत्का कर्ता ब्रह्मा आदि विष्णु आदि योगी आदि जगवान् आदि, अर्हंतआदि, तीर्थंकर, प्रथम बुद्ध, सर्वसें बड़ा, इत्यादि जो नाम, और महिमा गाते हैं, वे सर्व श्रीरूपनदेवजीकेही गुणानुवाद है, और कोइ सृष्टिका कर्ता नहीं है।

मूर्ख और आह्वानीयोंने स्वकपोलकल्पित शास्त्रोंमें ईश्वरविषयमें मन मानी कल्पना कर लीनी है, इस कल्पनाकों बहुत जीव आज तांड़ सच्ची मानते चले आये हैं, क्योंकि सर्वमत जैनके बिना ब्राह्मणोंनेही प्रायः चलाये हैं, इस वास्ते ब्राह्मणोंकी मतोंके विश्वकर्मा हैं, अरु लौकिक शास्त्रोंमें जो कुछ है, सो ब्राह्मणोंकी वास्ते है ब्राह्मणनी लौकिक शास्त्रोंने तार दीये, क्योंकि शास्त्र बनाने वालोंके सतानादि, खूब खाते, पीते, और आनंद करते हैं, इन ब्राह्मणोंकी तथा वेदोंकी उत्पत्तिजैसें आवश्यक आदिक शास्त्रोंमें लिखी है, तैसें जन्म जीवोंके जानने वास्ते यहां मैनी लिखुंगा।

निदान सर्व जगत्का व्यवहार चला कर, जरत पुत्रकों विनीता नगरीका राज्य दीया, अरु बाहुबली पुत्रकों तक्षिलाका राज्य दीया, शेष पुत्रोंको और और देशोंका राज्य दीया, उनही पुत्रोंके नामसें बहुत देशोंका नाम मनी तैसाही पढ़ गया, जैसें अगदेश, वगदेश, मगधदेश, इत्यादि नाम देशोंकानी पुत्रोंके नामसें पढ़ गया।

पीठें श्रीरूपनदेवने स्वयमेव वीक्षा लीनी, उनके साथ कन्न, महाकन्न, सामंतादिक चार हजार पुरुषोंन वीक्षा लीनी.

श्रीरूपनदेवजीकों एक वर्ष तक निष्ठा न मिली, तब चार हजार पुरुष तो चूखें मरते जटाधारी, कव, मूल, फज, फुज, पत्रादि आहारी हो करके गंगाके दोनों किनारा वपर तापस बनकर रहने लगे, अरु श्रीरूपनदेवजीका ध्यान, जप आदि ब्रह्मादि शब्दोंसे करने लगे

तब एक वर्ष पीठें वैशाख शुदी तीजको हस्तिनापुरमें आये, तहां श्रीरूपनदेवका पड़पोता श्रेयांस कुमारने जातिस्मरण ज्ञानक बजसं श्रीरूपनदेवको निष्ठा वास्ते फिरते देखक इक्षुरससे पारणां कराया, क्योंकि उस समयमें लोकोंने कोइ निष्ठाचर देखा नहैं था, अरु न वो निष्ठाजी के जानते थे, तिस कारणसे श्रीरूपनदेवजीको हाथी, घोड़े, आनूपण, कन्यादि तो बहुत चेट करे, परंतु वे तो उस समयमें त्यागी थे, इस वास्ते जीने नहैं तब लोकोंने श्रेयांसकुमारको पूठा कि तुमने श्रीरूपनदेवजीको निष्ठार्थी कैसे जाने? तब श्रेयांसकुमारने अपने और श्रीरूपनदेवजीके आठ नवोंका सबध कइया, सो सर्व अधिकार, आवश्यक शास्त्रमें लिखा है तद् पीठें सर्व लोक निष्ठा देनेकी रीति जान गये

श्रीरूपनदेवजी एक हजार वर्ष तक देशोंमें ठहरस्थ पणे विचरते रहे, तिस अवस्थामें कन्न अरु महाकन्नके बेटे नमि और विनमोने आकर प्रभुकी बहुत सेवा नकि करी, तब धरणीने प्रह्लप्रस्थादि अठतालसे हजार विद्या (४००००) उनको दे कर वैताडगिरिकी दक्षिण, अरु उत्तर, यह दोनों श्रेणिका राज्य दीया, वे सर्व विद्याधर कहलाये, इनही विद्याधरोंके संतानोंमें रावण, कुंजकर्णादि तथा वाली सुग्रीवादि और पवन हनुमानादि सर्व विद्याधर हुए हैं

एकदा ठहरस्थ अवस्थामें श्रीरूपनदेवजी विहार करते हुए, बाहुबलीकी तक्षिला नगरीमें गये, वहां बाहिर बागमें कायोत्सर्ग करके खड़े रहे यह खबर जब बाहुबलीको पहुंची तब बाहुबलीने मनमें विचार करा कि कलकों बड़े आम्बरसे पिताको बचना करनेको जाऊंगा, प्रजात हूये जब आम्बरसे गया, तब श्रीरूपनदेवजी तो तहांसे और कहीं चले गये, तब बाहुबल बहुत उदास हुआ, तब श्रीरूपनदेवजीके चरणोंकी ज



गोकै ऊपर धर्मचक्रतीर्थ स्थापन कराये, वो धर्मचक्र तीर्थ, विक्रमराजा तक तो रहा, पीछे जब पश्चिमदेशमें, नवे मतमतांतर खड़े हुए, तबसे वो तीर्थ नष्ट हो गया

तदपीछे श्रीरूपनदेवजी वाल्हीक, जोनक, अमंभ, इक्ष्वाक, सुवर्णजूमि, पञ्चवकादि देशोंमें विचरने लगे तहां जिनोंने श्रीरूपनदेवजीका दर्शन करा, वो तो सब नष्टक स्वभाव वाले हो गये, अरु शेष जो रहा, वो सब म्लेच्छ, निर्दयी अनार्य हो गये, अनेक कल्पनाके मत मानने लगे, उनका व्यवहार और तरेंका बन गया

जब श्रीरूपनदेवकों एक हजार वर्ष व्यतीत हुए तब विहार करके विनीता नगरीके पुरिमताल नामा वागमें आये, तब बड़ वृद्धके देव, फागुन वदि एकादशके दिन, तीन दिनके उपवासी थे, तहां पहिले प्रहरमें केवलज्ञान अर्थात् नूत, नविष्यत् वर्तमानमें सर्व पदार्थोंके जानने देखने वाला आत्म स्वरूप रूप केवलज्ञान प्रगट हुआ, तब चौशठ ५५ आये, देवताओंने समवसरण बनाया, तीन गठ वारों दरवाजे इत्यादि समवसरणकी रचना करी, एकैक दिशामें तीन तीन दरवाजे बनाये, मध्यजागमें मणिपीठिका अर्थात् चौतरा बनाया, तिसके मध्यजागमें अशोकवृद्ध रचा, तिसके देव दरवाजोंके सन्मुख चारों दिशोंमें चार सिंहासन रचे, तिसमें पूर्वके सिंहासन ऊपर श्रीरूपनदेव अर्हंत विराजमान हुए, अरु शेष तीनों सिंहासनो ऊपर श्रीरूपनदेव सरीखे तीन बींभ स्थापन करे, तब जिस दरवाजेसे कोई आवे, वो तिस पासेही श्रीरूपनदेवजीकों देखते थे, इसी वास्ते जगत्में चार मुख वाला श्रीजगवान् रूपनदेवजी ब्रह्माके नामसे प्रसिद्ध हुआ, धनजयकोशमें श्रीरूपनदेवजीका नाम ब्रह्मा लिखा है

जब श्रीरूपन देवजीकों केवलज्ञान उत्पन्न हुआ, तब जरत राजा श्रीरूपनदेवजीकों केवली सुन कर सकल परिवार संयुक्त समवसरणमें बंधना करनेकों अरु उपवेश सुननेकों आया, उहां श्रीरूपनदेवजीका उपवेश सुन कर जरत राजाके पांच सौ पुत्र अरु सात सौ पोते तथा ब्राह्मी रूपनदेवजीकी बेटी औरजी अनेक स्त्रीयोंने दीक्षा लीनी, मरुदेवीजी तो जगवान्के ब्रह्मादि देखके तथा बानी सुनके केवली हो कर मोक्ष हो गई, तथा जरतके बड़े पुत्रका नाम रूपनसेन पुमरीक था, वो सोरठदेशमें

शत्रुजय तीर्थे ऊपर वेद त्यागकर, मोक्ष गया, इस वास्ते कर्त्रजबका नाम पुनरीकगिरिरक्षा गया।

जरतके पांच सो पुत्रोंने जो दीक्षा लीनी थी, तिनमें एकका, नाम मरीची था, वो मरीचीने जैन दीक्षाका पाठानां कठिन जान कर अपनी आजीविकाके चलाने वास्ते नवीन मन कल्पित उपाय खड़ा कीया, क्योंकि उसने गृहवास करनेमें तो बड़ी हीनता जाणी, तब एक कुलिन बनानां चाहा, सो इसी रीतिसे बनाया कि साधु तो मनवर्धन, बचनवर्धन, अरु काय वर्धन, इन तीनों वर्णोंसे रहित है, और मैं तो इन तीनों वर्णों करके सयुक्त हूँ, इस वास्ते मुझको त्रिदम रखनां चाहिये, दूसरा साधु तो इष्य अरु जाव करके मुनित है, सो लोच करते है, अरु मैं तो इष्य मुनित हूँ, इस वास्ते मुझे उस्तरे पाठनेसे मस्तक मुंदवानां चाहिये, सिखाजी रखनी चाहिये, तीसरा साधु तो पांच महाव्रत पालते है, अरु मेरे तो सदा स्थूल जीवकी हिसाका त्याग रहो चौथा साधु तो नि कचन है, अर्थात् परिग्रह रहित है, अरु मुझको एक पवित्रकादि रखनी चाहिये, पांचमा साधु तो शीलसें सुगधित है, अरु मैं ऐसा नहीं हूँ इस वास्ते मुझे चवनादि सुगंधी लेनी ठीक है, छठा साधु तो मोह रहित है, अरु मैं तो मोह सयुक्त हूँ, इस वास्ते मुझे मोहाद्यावित्तकों ठत्री रखनी चाहिये सातमा साधु जूते रहित है, मुझको पगोंमें कुठ उपानह ( छुती ) प्रमुख चाहिये आठमा साधु तो निर्मल है, इस वास्ते उनके गुह्यावर वस्त्र है, अरु मैं तो क्रोध, मान, माया, अरु लोभ, इन चारों कषायों करके मैला हूँ इस वास्ते मुझे कषाय वस्त्र अर्थात् गेरुके रंगे ( जगवे ) वस्त्र रखने चाहिये, नवमा साधु तो सचित्त जलके त्यागी हैं, इस वास्ते मैं उनके सचित्त पाणी पीउंगा, स्नानजी करुंगा, इस तरें स्थूलमृषावादाविसंज्ञा निवृत्त हूँआ, इस प्रकारके मरीचीने स्वमतिसें अपनी आजीविकाके वास्ते लिंग बनाया, पढ़ी लिंग, परिव्राजकोंका उत्पन्न हुआ।

मरीची जगयान्के साधुही विचरता रहा, तब साधुओंसें विसदृश लिंग देखके लोक पूढते हुए, तब मरीची साधुका यथार्थ धर्म कहता था, अरु अपना पाखंडवेष पूर्वोक्त रीतिसें प्रगट कद देता था, जो पुरुष, इसके पास धर्म सुन कर दीक्षा लेनी चाहता था, तिसको जगवान्के सा

धुआँकों वे देता था, एकदा समय मरीची माँदा ( रोग ग्रस्त ) हुआ, तब विचार किया कि मैं तो असयती हूँ, इस वास्ते साधु मैरी वैयावृत्त नहीं करते हैं, अरु मुझे करानीजी युक्त नहीं है, तो कोइ चेलाजी मुझे वैयावृत्त वास्ते करना चाहिये, तिस कालमें श्रीकृष्णदेवजी निर्वाण हो गये थे, पीछे एक कपिलनामक राजाका पुत्र था, सो मरीचीके पास धर्म सुननेको आया, तब मरीचीने उसको यथार्थ साधुका लिंग आचार कहा, तब कपिलने कहा तो तेरा लिंग विलक्षण क्यों कर है ? तब मरीचीने कहा कि मैं साधुपणा पालने समर्थ नहीं हूँ, इस वास्ते मैं यह लिंग निर्वाहके वास्ते स्वकपोलकल्पित बनाया है, तब कपिलने कहा कि मुझे श्रीकृष्णदेवके साधुओंका धर्म रुचता नहीं है, तुम कदो तेरे पासजी कुछ धर्म है, या नहीं है, ? तब मरीचीने जाना, यह नारीकर्म जीव है, मैं राही शिष्य होने योग्य है, इस लोचसे मरीचीने कह दिया कि वहाँजी धर्म है, अरु मेरे पासजी बहुत धर्म है, यह सुन कर कपिल मरीचिका शिष्य हो गया, यह कपिल मुनिकी उत्पत्ति है उस बखत मरीचीके पास तथा कपिलके पास कोइनी पुस्तक नहीं था, नि केवल जो कुछ आचार मरीचीने कपिलको बता दिया सोइ आचार कपिल करता रहा, मरीचीने उत्सुत्र जापण करनेसे एक कोटाकोटी सागरोपम जग संसारमें जन्म मरणकी वृद्धि करी, मरीचि तो काल कर गया अरु पीछेसे कपिल यथार्थ ज्ञान शून्य मरीचीकी बताइ हूइ रीति कपर चलता रहा, उस कपिलका आसुरीनामा शिष्य हुआ, कपिलने आसुरीकोनी आचार मात्रही मार्ग बतलाया, कपिलने औरनी बहुत शिष्य बनाये, उनके प्रेममें तत्पर था, मरके ब्रह्मनामक पांचमे देवलोकमें देवता हुआ, तब उत्पत्तिके अनंतर अवधिज्ञानसे देखा, कि मैंने क्या बानावि अनुष्ठान करा है ? जिस्से मैं देवता हुआ, हूँ, तब अवधिज्ञानसे मथज्ञानशून्य अपणे आसुरीनामा शिष्यको देखा, तब विचार करा कि मेरा शिष्य कुछ नहीं जानता ? इसको कुछ तत्त्व उपदेश करुं ? औसा विचार कर, कपिल देवता आकाशमें पंचवर्णके ममलमें रह कर तत्त्वज्ञानका उपदेश करता गया, कि अव्यक्तसे व्यक्त प्रगट होता है, तिस अवसरमें पष्ठितंत्र शास्त्र, आसुरीने बनाया, तिसमें औसा कथन करा कि प्रकृतिसें महान होता है, अरु महा

नसे श्रद्धाकार होता है, श्रद्धाकारसे गण पोउश होता है, तिस गणसे उशमेंसू पंचतन्मात्रोसे पांच नूत इत्यादि स्वरूप पूर्ण यही ग्रन्थ सांख्य मतविषे लिख आये हैं, वहांसे जान लेना पोउं इनकी संप्रदायमें नामी सख नामा आचार्य दूथा, तबसे इस मतका नाम सांख्यमत प्रसिद्ध दूथा, वास्तवमें सर्वपारिव्राजक सन्यासीयोके लिंग आचारादि धर्मका मूल मरीचि दूथा, इन सांख्यमतका तत्त्व अबनी जगद जीता तथा जागवतादि ग्रंथोंमें तथा सांख्यमतके शास्त्रोंमें प्रचलित है, एक जैनमतके बिना सर्वमतोंकी जड़, इस्से समझनी चाहिये

जब श्रीरूपनदेवजीकों केवलज्ञान उत्पन्न दूथा था, वसीदिन नरत राजाकी आयु-दशालामें चक्ररत्न उत्पन्न दूथा, तब नरतने नरत क्षेत्रके वहाँ खमोमें राज बनाया, अपनी आज्ञा मनाइ, इसी वास्ते इसका नाम नरत खम प्रसिद्ध दूथा

जब नरतने अपने ठोटे नाइयोको आज्ञा मनाने वास्ते दूत भेजा, तब तिनोंने विचार करा कि राज तो हमकों हमारा पिता दे गया है, तो फेर हम नरतकी आज्ञा क्यों कर माने? चलो पितासे कहें, जे कर अपना पिता श्री रूपनदेवजी कहेंगे, कि तुम नरतकी आज्ञा मानो, तब तो हम आज्ञा मान लेंगे, जे कर हमारा पिता कहेगा लडो, तो हम लडेंगे, ऐसा विचार करके कैलास पर्वतके ऊपर श्री रूपनदेवजीके पास गये, तब रूपनदेवजीने उनके मनका अनिप्राय जान कर उनकों उपदेश करा जो उपदेश करा था, सो श्रीसूत्ररुतांग सूत्रके दूसरे वैतालीय अध्यायनमें लिखा है, तब तो उपदेश सुन कर अज्ञानवे (९८) पुत्रोंने बीका ले लीनी, सर्व जगडे ठोड बीये, इस वार्त्तामें नरतकी अपकीर्षि दूइ, तब नरत चक्रवर्त्ती पांच सौ गाडे पक्कानके ले कर समवसरणमें आया, और कहने लगा कि मैं अपने नाइयोकों नोजन करावंगा, और मेरा अपराध क्षमा करावगा, तब श्री रूपनदेवजीने कहा कि ऐसा आहार साधुओंकों लेना योग्य नहीं, तब नरत मनमें बड़ा खवास दूथा, नरतने कहा अब मैं यह आहार, कि सकों देख? तब शक्र (इन्दु) कहा कि जो तेरेसें गुणोंमें अधिक होवे, तिनकों यह नोजन देवो, तब नरतने मनमें विचार करा कि मेरेसें गुणाधिक तो आवक हैं, तब नरतने बहुत गुणवान् आवकोंको वो नोजन

जिमाया, और उन श्रावकोंको जरतजीने कह दीया कि तुम सर्व मिल कर प्रतिदिन अर्थात् रोजकी रोज मेराही जोजन करा करो खेति बाणि ज्यदि कुछ काम मत करा करो, नि केवल स्वाध्याय करनेमें त त्पर रहो, जोजन करके मेरे मदिलोंके दरवाजे आगे निकट बैठके तुमने ऐसे कहना कि “ जितो नवान् वर्द्धते नयं तस्मान्माह्न माह्ने ति” तब वे श्रावक ऐसेही करते दूये, अरु जरत राजा तो जोगविलासों में मग्न रहता था, परंतु जब तिनका शब्द सुनता था, तब मनमें विचार ता था, कि किसने मुझे जीता है? तब विचार करा कि क्रोध, मान, माया अरु लोभ, इन चार कषायोंने मुझे जीता है तिनोसेही नयकी वृद्धि हो ती है, ऐसा विचार करनेसे जरतको बड़ा चारी वैराग्य उत्पन्न होता था, इस अवसरमें रसोइ जीमणे वाले श्रावक बहुत हो गये, जब रसोइदार र सोइ करने समर्थ न रहा, तब जरत महाराजको निवेदन करा कि मैं नहीं जान सका, जो इनमें श्रावक कौन है, और कौन नहीं है? तब जरतने कहा तुम पूछके उनको जोजन दिया करो, तब रसोइ करनेवाले उनको पूछने लगे कि तुम कौन हो? वे केहने लगे, हम श्रावक हैं फेर तिनोको पूछा कि श्रावकोंके कितने व्रत हैं? तब तिनोने कहा हमारे पांच अणुव्रत हैं, अरु सात शिक्षा व्रत हैं, इस तरसे जब जाना कि यह श्रा वक ठीक है तब उनको जरत महाराजके पास ध्याये, जरतने उनके श रीरमें काकणी रत्नसे तीन तीन रेखाका चिन्ह कर दीया, अरु बड़े महि ने अनुयोग परीक्षा करते रहे, वे सर्व श्रावक ब्राह्मणके नामसे प्रसिद्ध दूये, क्योंकि जब जरत महाराजके दरवाजे आगे वे माह्न माह्न शब्द वार वार उच्चारन करते थे, तब लोक उनको माह्न कहने लग गया, जैनमतके शास्त्रोंमें प्राकृत भाषामें अवनी ब्राह्मणोंको माह्न करके लिखा है अरु जो संस्कृती ब्राह्मण शब्द है, वो प्राकृत व्याकरणमें वंज ण और माह्णके स्वरूपसे सिद्ध होता है, श्री अनुयोगद्वार सूत्रमें ब्रा ह्मणोंका नाम “ बुहुसावया ” अर्थात् बड़े श्रावक ऐसा लिखा है यह सर्व ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति है, अरु सो ब्राह्मण अपणे बेटोंको साधुओंको देते दूये, जिनोने प्रव्रजा न लीनी वे श्रावक व्रतधारी हुए यह रीति तो जरतके राज्यमें रही

पीठें नरतका वेटा आबिल्यपश दूथा, अर्थात् सूर्ययश जिसके सतान वाले नरत क्षेत्रमें सूर्ययशी कहे जाते हैं, अरु यादुवलीका बड़ा पुत्र चंदयश या तिसके सतानवाले चंद्रयशी कहे जाते हैं श्री कृष्णदेवजीके कुरु नाम पुत्रके सतान सब कुरुयशी कहे जाते हैं जिनमें कौरव पांडव दूये हैं

जब नरतका बड़ा वेटा सूर्ययश सिंहासन पर बैठा, तब तिसके पास कणी रत्न नहीं था, क्योंकि काकणी रत्न, चक्रवर्त्तीके शिवाय और किसी पास नहीं होता है, इस वास्ते सूर्ययश राजाने ब्राह्मण श्रावकोंके गलेमें सुवर्णमय यज्ञोपवीत करवा दीये जन्नेव इतिजापा तथा जोजन प्रमुख सर्व नरत महाराजकी तरे देता रहा, जब सूर्ययशका वेटा महायश गद्दी पर बैठा, तब तिसने रूपेके यज्ञोपवीत बनवा दीये, आगे तिनोकी सतानोंमें पंचरत्ने रेदमी पटसूत्र मय यज्ञोपवीत बनाते रहे, आगे सादे सूतके बनाये गये, यह यज्ञोपवीतकी उत्पत्ति है.

नरतके आठ पाठ तक तो ब्राह्मणोंकी जक्ति नरतकी तरें करते रहे पीठें प्रजाजी ब्राह्मणोंको जोजन कराने लगे, तब सर्व जगे ब्राह्मणपूजनीक स मजे गये, आठमां तीर्थंकर श्रीचंद्रन स्वामीके बखत तक सर्व ब्राह्मणत्र तधारी, जैनधर्मी श्रावक रहे, अरु श्रीचंद्रन जगवानके पीठें कितनाकि काल व्यतीत नये, इस नरत खममें जैनमत अर्थात् चतुर्विधसब और सर्व शास्त्र विधेद हो गये, तब तिन ब्राह्मणानासोंको लोक पूढने लगे कि धर्मका स्वरूप हमको बतलाउ, तब तिनोने जो मनमें माना, और अ पणा जिसमें जान देखा सो धर्म बतलाया, अनेक तरेंके ग्रंथ बनाते रहे

जब नवमे श्रीसुविधिनाथ पुष्पदंत अखिंदत हुए, तिनोने जब फेर जैन धर्म प्रगट करा, तब कितनेक ब्राह्मणानासोंने न माना, स्वकपोलकल्पित मतहीका कवामद रक्का, साधुओंके देशी बन गये, चारों वेदोंका नामजी बवल दीया, अरु खन वेदोंमें मतलबजी औरका और लिख दीया

अब चारोंवेदोंकी उत्पत्ति लिखते हैं जब नरतराजाने ब्राह्मणोंको पूजा, तब दूसरा लोकजी ब्राह्मणोंको बहुत तरेका दान देने लग गये, तब नरत चक्रवर्त्तीने श्रीकृष्णदेवजीके उपदेशानुसार तिन ब्राह्मणोंके स्वाध्याय करने वास्ते श्रीआदीश्वर कृष्णदेवजीकी स्तुति और श्रावकोंके धर्मका स्वरूपगर्जित ऐसे चार आर्यवेद रचे, तिनके यह नाम रक्के :

संसारदर्शन वेद, २ संस्थापनपरामर्शन वेद, ३ तत्त्वावबोध वेद, ४ विद्या प्रबोध वेद, इन चारोंमें सर्वनय, वस्तुके कथन संयुक्त तिन ब्राह्मणोंको पठाये, तब वे ब्राह्मण, अरु पूर्वोक्त चार वेद, आवमे तीर्थकर तक यथार्थ चले आये, परंतु जब आवमे तीर्थकरका तीर्थ विच्छेद हुआ, तब पीछे, तिन ब्राह्मणाजासोने धनके लोनसे तिन वेदोंमें जीवहिंसा आदिकी प्ररूपणा करके छलट पुलट कर माले, जैनधर्मका नामनी वेदोंमेंसे निकाल दीया, बलकि अन्योक्ति करके “वैत्यवस्तुवेदबाह्य” इत्यादि नामोंसे साधुर्थोंकी निंदा गर्जित १ ऋग, २ यजु, ३ साम, ४ अथर्व, ये चार नाम कल्पन कर दीये तिन ब्राह्मणोंमेंसुं जिनोने तीर्थकरोंका उपवेश मान्या, उनोने पूर्ववेदोंके मंत्र न त्यागे, सो आज तक दक्षिण करणाटक देशमें जैन ब्राह्मणोंके कंठ है ऐसा सुना और देखानी है, तथा उन प्राचीन वेदोंके कितनेक मंत्र मेरे पासजी हैं यत वक्त आगमे ॥ सिरिजरह चक्रवट्टी, आयरिय वेयाणविस्सु ठप्पन्ती ॥ माहण पढणडमिण, कहिय सुद्धाण विवहारं ॥ १ ॥ जिणतिष्ठे बुद्धिचे, मिह्मचे मादणेहिं तेव विया ॥ अस्सज्जयाण पूआ, अप्पाण काहिया तेहि ॥ २ ॥ इत्यादि यहाँसे आगे तिनवेदोंकी रचना हिंसा संयुक्त याज्ञवल्क्य, सुजसा, पीपलाद, अरु पर्वत प्रमुखोने विशेष कर रचना रच दइ, तिसकानी स्वरूप किंचित् मात्र यहाँ लिख देते है

वृद्धवारण्यक उपनिषद्की जाण्यमें लिखा है, कि जो यज्ञोंका कढ़ने वाला सो यज्ञवल्क्य तिसका पुत्र याज्ञवल्क्य इत कढ़नेसेंजी यही प्रतीत होता है, जो यज्ञोंकी रीति प्राय याज्ञवल्क्यसेंही चली है, तथा ब्राह्मण लोकोंके शास्त्रोंमें लिखा है, कि याज्ञवल्क्यने पूर्वजो ब्रह्मविद्या वमके सूर्य पासों नवीन ब्रह्मविद्या सोखके प्रचलित करी, इस्सेंजी यही अनुमान निकलता है, जो याज्ञवल्क्यने प्राचीन वेद ठोड दीये, और नवीन बनाये

तथा श्रीत्रिशठ सजाका पुरुष चरित्र ग्रंथमें आवमे पर्वके दूसरे सर्गमें ऐसा लिखा है, कि काशपुरीमें दो संन्यासिणीया रहती थी, तिसमें एकका नाम सुजसा था, अरु दूसरीका नाम सुनदा था, यह दोनोही वेद अरु वेदांगोंकी जानकारथी तिन दोनो बहिनोंने बहुवादियोंको वादमें जीता, इत अवसरमें याज्ञवल्क्य परिव्राजक तिनके साथ वाद करनेको

आया, आपसमें ऐसी प्रतिज्ञा करी कि जो हार जावे, वो जीतने वाले की सेवा करे, तब याज्ञवल्क्यने सुजसाको वादमें जीतके अपनी सेवा करने वाली बनाई, सुजसाकी रात दिन याज्ञवल्क्यकी सेवा करने लगी, याज्ञवल्क्य थरु सुजसा यह दोनों यौवनवत (तरुण) थे, इस वास्ते दोनों कामातुर हो के जोगविलास करने लग गये, सचतो है कि अग्नि और फुस मिलके अग्नि क्यों कर प्रज्ज्वलित न होवे? निदान दोनों काम क्रीडामें मग्न होकर काशपुरीके निकट कुटीमें वास करते थे, तब याज्ञवल्क्य सुजसासे पुत्र उत्पन्न हुआ पीछे लोकोंके उपहासके नयसे उस लड़केको पीपलके वृक्षके देठ ठोड कर दोनों नरके कहींको चले गये, यह वृक्ष सुजसा जो सुजसाकी बहिनथी उसने सुना, तब तिस बालकके पास आई, जब बालकों देखा, तो पीपलका फल स्वयमेव मुखमें पड़ेको चबोल रहा है, तब तिसका नामजी पिप्पलाद रखा, और तिसको अपने स्थानमें ले जाके यत्नसे पाला, थरु वेदादि शास्त्र पढाये, तब पिप्पलाद बड़ा बुद्धिमान हुआ, बहुत वादीयोंका अजिमान दूर करा, पीछे, तिस पिप्पलादके साथ सुजसा और याज्ञवल्क्य यह दोनों वाद करनेको आए, तिस पिप्पलादने दोनोंको वादमें जीत लिया, और सुजसा मासीके कदनेसे जान गया कि, यह दोनों मेरे माता पिता हैं और मुझे जन्म तेको निर्दय हो कर ठोड गये थे, जब बहुत क्रोधमें आया तब याज्ञवल्क्य थरु सुजसाके आगे मातृमेघ पितृमेघ यहाँको युक्तिसँ सम्यक् रीतिसँ स्थापन करके पितृमेघमें याज्ञवल्क्यको और मातृमेघमें सुजसाको मारके होम करा, मीमांसक मतका यह पिप्पलाद मुख्य आचार्य हुआ, इसका घातली नामा शिष्य हुआ, तबसे जीवर्हिंसा सयुक्त यह प्रचलित हुए

याज्ञवल्क्यके वेद बनानेमें कुठनी शका नहीं, क्योंकि वेदमें लिखा है “याज्ञवल्केति होवाच” अर्थात् याज्ञवल्क्य ऐसे कदता हुआ, तथा वेदमें जो शाखा है, वे वेदकर्ता मुनियोंकेही सबबसे हैं, इस वास्ते जो आवश्यक शास्त्रमें लिखा है, कि जीवर्हिंसा सयुक्त जो वेद हैं, वे सुजसा और याज्ञवल्कादिकोंने बनाये हैं, सो सत्य है क्योंकि कितनीक उपनिषदोंमें पिप्पलादकाजी नाम है, तथा और मुनियोंकाजी कितनेक जगमें नाम है



जमदग्नि कश्यप तो वेदोंमें खुद नामसे लिखे हैं, तो फेर वेदोंके नवीन होनेमें क्या शंका रहती है ?

तथा लकाका राजा रावण जब दिग्विजय करनेके वास्ते देशोंमें चतुरंग दल ले कर राजाओंको अपेणी आज्ञा मना रहा था, इस अवसरमें नारद मुनि, जागी, सोटे, और, जात, घूसयोंका पीठा दूआ पुकार करता दूआ रावणके पास आया, तब रावणने नारदको पूछा कि तुझको कि सने पीठा है ? तब नारदने कहा कि राजपुर नगरमें मरुत नामा राजा है, सो मिथ्यादृष्टि है, वो ब्राह्मणानासोंके उपदेशसे यज्ञ करने लगा, हो मके वास्ते सौनिकोंकी तरें वे ब्राह्मणानास अरराट शब्द करते हुए, ऐसे विचारे पशुओंको यज्ञमें मारते हुए मैंने देखा, तब मैं आकाशसे उतरके जहां मरुतराजा ब्राह्मणोंके साथमें बैठा था, तहां आ कर मरुत राजाको कहा कि यह तुम क्या करने लग रहे हो ? तब मरुतराजाने कहा ब्राह्मणोंके उपदेशसे देवताओंकी तृप्ति वास्ते और स्वर्ग वास्ते यह यज्ञ मैं पशुओंकी बलिदानसे करता हूँ यह महाधर्म है, तब नारद कहता है, कि मैं वो मरुतराजाको कहा कि हे राजा जो चारोंवेदोंमें यज्ञ करना कहा है, वो यज्ञ में तुमकु सुनाता हूँ, आत्मा तो यज्ञका यष्टा अर्थात् करनेवाला है, तथा तप रूप अग्नि है, ज्ञान रूप धृत है, कर्म रूपी ईधन है, क्रोध, मान, माया, अरु लोभादि पशु है, सत्य बोलने रूप यूप अर्थात् यज्ञस्तन है, तथा सर्व जीवोंकी रक्षा करणी यह दक्षिणा है, तथा ज्ञान, दर्शन, अरु चरित्र, यह रत्नत्रयी रूप त्रिवेदी है यह यज्ञ वेदका कहा दूआ है ऐसा यज्ञ जो योगान्यास सयुक्त करे, तो करनेवाला मुक्त रूप हो जाता है, और जो राक्षस तुल्य होके ढागादि मारके यज्ञ करता है, सो मरके घोर नरकमें चिरकाल तक महादुःख जोगता है, हे राजा ! तू उत्तमवशमें उत्पन्न दूआ है, बुद्धिमान् और धनवान् है, इस वास्ते हे राजन् तू इस व्याधोचित पापसे निवर्त्तन हो जा, जेकर प्राणीवधसेही जीवोंको स्वर्ग मिलता होवे तब तो थोड़ेही दिनोंमें यह जीवलोक खाली हो जावेगा, यह मेरा वचन सुनके यज्ञकी अग्निकी तरें प्रचरु हुए होये ब्राह्मण हाथमें जागी, सोटे, ले कर सर्व मेरेको पीटने लगे, तब जैसे कोई पुरुष नदीके पूरसे मरकर दीपमें चला आता है तैसें मैं दौड़ता दूआ

तेरे पास पहुँचा हूँ दे राखण राजा! प्रियारे निगराधि पशु मारे जाते  
 हैं, तू तिनकी रक्षा करणमें तनपर द्या, जैसे मैं तेरे शरणस बचा हूँ जैसे  
 तू पशुओंकी वचा तब राखण प्रिमानसे उतरक मरुत राजाके पास  
 गया मरुत राजाने राखणकी बहुत पूजा, नक्ति आदर, सम्मान करा तब  
 राखण कोपमें हो कर, मरुत राजाका ध्येमें कहता हुआ - थरे! तू नरक  
 का देने वाला यह यज्ञ क्या कर रहा है? क्योंकि धर्म तो अहिंसारूपसर्वक  
 तीर्थकरने कहा है, सोइ जगत्के हितका करनेवाला है, जब तुमने पशु  
 थोको मारके धर्म समजा, तब तुमको हितकारक क्योंकर होवेगा? इस  
 वास्ते यह यज्ञ तुमको वोनो लोकमें अहितकारक है, इसें ठोड यो, नहीं  
 तो इस यज्ञका फल तेरेको इस लोकमें तो मैं देता हूँ, और परलोकमें तु  
 मारा नरकमें वास होवेगा, यह सुन कर मरुत राजाने यज्ञ करना ठोड बीया,  
 क्योंकि राखणकी आज्ञा उस वखत ऐसी नपकरथी, कि कोइ उसको  
 उल्लघन नहीं कर सका था, इस कथानकसे यहनी मालुम हो जाता है,  
 कि जो ब्राह्मण लोक कहते हैं कि आगे राक्षस यज्ञ विध्वंस कर देते थे,  
 सो क्या जाने राखणदि जबरदस्त जैनधर्मी राजाथो पशुवध रूप यज्ञका  
 करणों बुढा देते थे, तबसेंदी ब्राह्मणोंने पुराणादि शास्त्रोंमें उन जबरदस्त  
 जैनराजाओंको राक्षसोंके नामसे लिखा है? तथा यहनी सुननेमें आया  
 है, कि नारदजीनेनी मायाके वशसें जैनमत धारकें वेदोंकी निंदा करी थी  
 तो क्या जाने? इस कथानकका यही तात्पर्य लोकोने लिख लीया हो?

पीछें राखणने नारदको पूछा कि ऐसा पापकारी पशुवधात्मक यह यज्ञ  
 कहासें चला है तब नारदजीनें कहा कि - शुक्तिमती नदीके किनारे उपर  
 एक शुक्तिमती नगरी है सो वीशमें श्रीसुनिसुवत स्वामी हरिवंश तीर्थकरकी  
 औजावमें जब कितनेक राजा व्यतीत होगये, तब अजिचङ्गनामा राजा  
 हुआ, तिस अजिचङ्गराजाका वसुनामा बेटा हुआ, वो वसु मदाबुद्धि  
 मान, सत्यवादी, लोकोमें प्रसिद्ध हुआ, तिस नगरीमें खीरकदंबक  
 उपाध्याय रहता था तिसके पर्वत नाम पुत्र था, उर्दा एक तो राजाका बेटा  
 वसु दूसरा पर्वत और तीसरा मैं (नारद) दम तीनो खीरकदंबक उपा  
 ध्यायके पास पठते थे, एकदा समय दमतो तीनो जन पाठ करनेके श्र  
 मसें रात्रिकों सो गये थे और उपाध्याय जागता था दम उत ऊपर सूते

ये तब दो चारण साधु ज्ञानवान्, आकाशमें परस्पर वार्ता करते चले जाते थे, कि यह खीर कदवक उपाध्यायके तीन ठात्रोमेंसुं दो नरकमें जायेंगे अरु एक स्वर्गमें जायेगा, यह मुनियोंका कहनां सुन करके उपाध्यायजी चिता करने लगा कि जब मेरे पढाये दूयें नरकमें जायगे, तब यह मुझको बहुत डर है, परंतु इन तीनोंमेंसुं नरक कौन जायगे ? और स्वर्ग कौन जायगा ? इस बातके जानने वास्ते तीनोंको एक साथ बुलाया, पीछे दो गुरुने हम तीनोंको एकेक पीठिका कुकड़ दीया और कह दीयाकि इनको ऐसी जगमें मारो जहां कोइनी न देखता होवे । पीछे वसु और पर्वत यह दोनो तो शून्य जगथोमें जाकर दोनो पीठके बनाये कुकड़ोंको मार ब्याये और मैं उस पीठके कुकड़को ले कर बहुत दूर नगरसें बाहिर चला गया, जहां कोइनी नहीं था, तहां जा कर खड़ा हुआ, चारों ओर देखनें लगा और मनमें यह तर्क उत्पन्न हुआ, कि गुरु महाराजने तो यह आज्ञा दीनी है, कि हे वरस यह कुकड़ तू तहां मारी, जहां कोइ न देखता न होवे, तो यह कुकड़ देखता है, अरु मैंनी देखता हूँ, खेचर देखते हैं, लोकपाल देखते हैं, ज्ञानी देखते हैं, ऐसा तो जगत्में कोइनी स्थान नहीं जहां कोइनी न देखता होवे, इस वास्ते गुरुके कहनेका यही तात्पर्य है, कि इस कुकड़का बध न करना क्योंकि गुरुपूज्य तो सदा ब्यावत और हिंसासें पराडमुख हैं, नि केवल हमारी परीक्षा लेने वास्ते यह आदेश दीया है, तब मैंनें ऐसा विचार करके बिनाही मारे कुकड़ेकों लेके गुरुके पास चला आया, और कुकड़ेके न मारनेका सबब सर्व गुरुकों कह दीया, तब गुरुने मनमें निश्चय कर लीया कि यह नारद ऐसे विवेकवाला है, सो स्वर्ग जायगा तब गुरुजीने मुझकों ठातसें लगाया, और बहुत सा धुकार कहा, तथा वसु और पर्वतजी मेरेसे पीछे गुरुके पास आयें, और गुरुकों कहते दूये कि हम कुकड़ाकों ऐसी जगे मारके आये हैं, कि जहां कोइनी देखता नहीं था तब गुरुने कहा तुम तो देखते थे, तथा खेचर देखते थे, तब हे पापियो ! तुमने कुकड़ क्यों मारे ? ऐसे कह कर गुरुने शोचा कि पर्वत, और वसुके पढानेकी मेहनत मैंने व्यर्थही करी, मैं क्या करू ? पानी, जैसे पात्रमें जाता है, वैसाही वन जाता है, पिढाकानी यही स्वभाव है जब प्राणोंसें प्यारा पर्वतपुत्र और पुत्रसें प्यारा वसु

यह दोनो नरकमें जायगे तो मुझे फेर परमें रह कर क्या करवा है !  
 ऐसे निर्वदसे क्षीरकवक उपाध्यायने दीक्षा ग्रहण करी, तापु हो नक.  
 तिसके पद उपर पर्वत वैठा क्योंकि व्याख्या करणेमें पर्वत बड़ा बिचहूष  
 था और भै ( नारद ) गुरुके प्रसादसे सर्वशास्त्रोंमें पंडित हो कर अपणे  
 स्थानमें चला आया, तथा अग्निचंद्राजाने तो समय लीया, और वसु  
 राजा राजसिंहासन कपर बैठा, वसुराजा जगत्में सत्यवादी प्रसिद्ध हो  
 गया अर्थात् वसुराजा कूठ नहीं बोलता है, ऐसा प्रसिद्ध हो गया, वसु  
 राजानेजी अपणी प्रसिद्धिको कायम रखने वास्ते सत्य बोलनाही अनी  
 कार कीया, वसुराजाकों एक स्फटिकका सिंहासन गुप्त पणे ऐसा मिला  
 कि - सूर्यके चादणेंमें जब वसुराजा उसके कपर बैठताथा, तब सिंहासन  
 जोकोको मिलकुज नहीं दीख पडताथा, इसी तरें वसुराजा आकाशमें अ  
 धर बैठा दीख पडताथा, तब लोकोंमें यह प्रसिद्धी होगइ, कि सत्यके प्रभावसे  
 वसुराजाका सिंहासन देवता आकाशमें थाजे रक्ते हैं, तब सब राजा म  
 रके वसुराजाकी आज्ञा मानने लग गये, क्योंकि चादो सबी हो चादो  
 कूठो हो तोनी प्रसिद्धि जो है सो पुरुषके जयकारी होती है

तब एकदा प्रस्तावमें ( नारद ) वो सूक्तिमतीनगरीमें गया, उहां जा  
 कर पर्वतकों देखा तो वो अपणे शिष्योंको ऋग्वेद पढा रहा है, और व  
 सकी व्याख्या करता है, तब ऋग्वेदमें एक ऐसी श्रुति आई "अजैर्यष्ट्य  
 मिति" तब पर्वतने इस श्रुतिकी ऐसी व्याख्या करी जो अजानाम बागका  
 ( बकरीका ) है तिनोंसे यह करनां तिनकों मारके तिनके मांसका होम क  
 रनां, तब मैंने पर्वतकों कहा हे भ्राता ? यह व्याख्या तू क्या भ्रातिसें क  
 रता है ? क्योंकि गुरु श्रीक्षीरकवकने इस श्रुतिकी ऐसैं व्याख्या नहीं करी  
 है, गुरुजीने तो तीन वर्षका धान्य पुराणें जौंका ऐसा अर्थ यह श्रुतिका  
 करा है, "न जायंत इत्यजा" जो बोनैसें न उत्पन्न होवे, सो अजा, ऐसा  
 अर्थ श्रीगुरुजीने तुमकों और हमकों शिखलाया था वो अर्थ, तुमने किस  
 हेतुसे जूझा दीया ? तब पर्वतने कहा कि तुमने जो अर्थ करा है, यह  
 अर्थ गुरुजीने नहीं कहा था, किंतु जो अर्थ मैंने करा है, यही अर्थ गुरु  
 रुनें कहा था क्योंकि निघटमेंजी अजा नाम बकरीका ही लिखा है, तब  
 मैंने ( नारदने ) पर्वतकों कहा कि शब्दोंका अर्थ दो तरेंके होते हैं, एक

मुख्यार्थ दूसरा गौणार्थ तो यहां श्रीगुरुने गौणार्थ करा था गुरु धर्मोप  
 देष्टाका वचन और यथार्थ श्रुतिका अर्थ, दोनोंको अन्यथा करके हे मित्र  
 तू महापाप उपार्जन मत कर तब फेर पर्वतने कहा कि अजा शब्दका  
 अर्थ श्रीगुरुजीने मेवेका करा है, निघटमेंनी ऐसेही अर्थ है, इनको उद्घ  
 घन करके तू अधर्म उपार्जन करता है ? इस वास्ते वसुराजा आपणा स  
 दाध्यायी है, तिसको मध्यस्थ करके इस अर्थका निर्णय करो, जो फूग  
 होवे तिसकी जीव्दाष्टेव करणी, ऐसी प्रतिज्ञा कही, तब मैंनेनी पर्वतका  
 कहना मान लीया क्योंकि सांचको क्या आंच है ? तब पर्वतकी माताने  
 पर्वतको बाना कहा कि हे पुत्र ! तू ऐसा फूग कदाग्रह मत कर क्योंकि  
 मैंनेनी इस श्रुतिका अर्थ तीन वर्षका धान्यही सुना है, इस वास्ते तूने  
 जो जीव्दाष्टेवकी प्रतिज्ञा करी है, सो अह्नी नहीं करी, क्योंकि जो बिना  
 विचारें काम करता है, वो अवश्य आपवामें पड़ता है, तब पर्वत कहने  
 लगा कि हे माताजी ! जो मैं प्रतिज्ञा करी है, वो अबमें किसीतरेंसेंनी  
 दूर नहीं कर सका हूं, तब माता अपने पर्वत पुत्रके डखकी पीड़ी हूइ  
 डु खिनी हो कर वसुराजाके पास पडुची क्योंकि पुत्रके जीवतव्य वास्ते  
 कौन ऐसो है, जो उपाय न करे ? जब वसुराजाने अपनी गुरुकी पत्नीको  
 आता देखा तब सिंहासनसें उठके खड़ा हुआ, और कहने लगा कि मैंने  
 आज क्षीरकद्वकका दर्शन करा जो माता तुझको देखा, अब हे माता !  
 कहो ( आज्ञा करो ) मैं क्या करूं ? और क्या देऊ ? तब ब्राह्मणी कदपो  
 लगी कि तू मुझे पुत्रकी निष्ठा दे क्योंकि बिना पुत्रके मैंने हे पुत्र ! धन  
 धान्य क्या करणा है ? तब वसुराजा कहने लगा हे माता ! मेरेकोतो प  
 र्वत पूजने और पालने योग्य है, क्योंकि गुरुकी तरें गुरुके पुत्रके सा  
 यनी वर्तना चाहिये, यह श्रुतिका वाक्य है, तो फेर आज किसको का  
 लने क्रोधमें आकर पत्र नेजा है, जो मेरे नाइ पर्वतको मारा चाहता  
 है ? इस वास्ते हे माता ? तू मुझे सर्व वृक्षांत कह दे, तब ब्राह्मणीने अ  
 पणे पुत्रका अज व्याख्यान और जीव्दाष्टेवनेकी प्रतिज्ञा कह सुनाइ,  
 और कहा कि जो तैने अपने नाइकी रक्षा करनी है, तो अजा शब्दका  
 अर्थ मेप अर्थात् वकरी वकरा कराना क्योंकि महात्मा जन परोपकारके  
 वास्ते अपने प्राणनी दे देते हैं, तो वचनसें परोपकार करनेमें तो क्या क

दनां है ? तत्र वसु राजाने कहा कि हे माताजीमे मिथ्यावचन क्यों कर  
 बोलु ? क्योंकि सत्यबोलनेवाले गुरुज जेकर अपणे प्राणजी आते ते  
 तोनी असत्य नही बोलते है, तो फेर गुरुका वचन अन्यथा करणा और  
 फूली साक्षी वेणी, इसका तो क्याही कहना है ? तत्र ब्राह्मणीने कहा  
 यातो गुरुके पुत्रकी जान बचेगी, या तेरा सत्यव्रतका आग्रहही रहेगा,  
 और मेनी तुजे अपणे प्राणही हत्या वेकगी तब वसुराजाने जाचार हो  
 कर ब्राह्मणीका वचन माना, पीछे क्षीरकद्वरुकी जाया प्रसूतित हो कर  
 अपने घरको गई, इतनेहीमें मैं (नारद) और पर्वत दोनों जने वसुराजाकी  
 सनामें गये, तत्र तहां बड़े बड़े विद्वान् एहिठे सनामें मिले, और स्फटि  
 कके सिंहासन ऊपर बैठके वसुराजा सनाके विचमें सनापति बन कर बैठा,  
 तब पर्वतने और मैने अपणी अपणी व्याख्याका पद वसुराजाको सुनाया,  
 और ऐसानी कहाकि हे राजन् तू । सत्य कह दे कि गुरुने इन दो अर्थोंमेंसे  
 कौनसा अर्थ कहा था ? तब वृद्ध ब्राह्मणोंने कहा हे राजा तू सत्य सत्य  
 जो होवे सो कह दे क्योंकि सत्यसेही मेघ वर्षता है, और सत्यसेही देवता  
 सिद्ध होते हैं, सत्यके प्रभावसेही यह लोक खड़ा है, और तू पृथ्वीमें सत्य  
 वादी सूर्यकी तरें प्रकाशक है, इस वास्ते सत्यही कहनां तुमको उचित  
 है, और हम इस्से अधिक क्या कहें ? यह वचन सुनकरनी वसुराजाने अ  
 पने सत्य बोलनेकी प्रतिज्ञाको जलाजली वे कर “अजान्मेपान्गुरुर्वा  
 ख्यविति” अर्थात् अजाका अर्थ गुरुने मेघ (वकरे) कहे थे, ऐसी साखी व  
 सुराजाने कही, तब इस असत्यके प्रभावसे अंतर देवताने वसुराजाके  
 सिंहासनको तोड़के वसुराजाको पृथ्वीके उपर पटकके मारा, तब तो वसु  
 राजा मरके सातमें नरकमें गया, पीछे वसुराजाके राज सिंहासन उपर वसु  
 राजाके आठपुत्र १ पृथुवसु, २ चित्रवसु, ३ वासव, ४ शक्र, ५ विनावसु,  
 ६ विश्वावसु, ७ सूर, ८ महासूर, ये आठो अनुक्रमसे गद्दी ऊपर बैठे  
 वो आठोंहीको अंतर देवताओंने मार दीये, तब सुवसुनामा नवमा पुत्र त  
 हांसे जाग कर नागपुरमें चला गया और वसुमा बृहध्वज नामा पुत्र जाग  
 कर मथुरांमें चला गया, और मथुरांमें राज करणे लगा इस बृहध्वजकी  
 सतानोंमें यडुनामा राजा बहुत प्रसिद्ध हुआ, इस वास्ते हरिवंशका नाम  
 बूट गया और यडुवंशी प्रसिद्ध हो गये

यह राजाके सूर नामक पुत्र हुआ, तिस सूर राजाके दो पुत्र हुये, एक बड़ा शौरि और दूसरा छोटा सुवीर हुआ, शौरि राजा पिताके पीछे बना, शौरिने मधुराका राज्यतो अपने छोटे जाइ सुवीरको दे दिया, और आप कुशावर्त्त देशमें जा कर अपने नामका शौरिपुर नगर वसा के राजधानी बनाइ, शौरिका बेटा अंधकविष्णु, आवि पुत्र हुआ, और अंधकविष्णुके दश बेटे हुये १ समुद्रविजय, २ अक्षोन्य, ३ स्तिमित, ४ सागर, ५ हिमवान्, ६ अचल, ७ धरण, ८ पूर्ण, ९ अनिचड, १० वसुदेव, तिनमें समुद्रविजयका बड़ा बेटा अरिष्टनेमि जो जैनमतका बावीशमा तीर्थकर हुआ, और वसुदेवके बेटे प्रतापी कृष्णवासुदेव, अरु वलनडजी हुये, तथा सुवीरका बेटा नोजवृष्णि और नोजवृष्णिका उग्रसेन और उग्रसेनका कस बेटा हुआ, और वसुराजाका दूसरा बेटा सुवसु जो जागके नागपुर गया था, तिसका बृहस्प नामा पुत्र हुआ तिसने राजगृहमें आ कर राज करा, तिसका बेटा जरासिधु हुआ, यह मैंने यहां प्रसंगसें लिख दीयाहै.

तब उहांतो नगरके लोक और पंडितोंने पर्वतका बहुत उपहास करा, सबने पर्वतको कहा कि तू फूटा है, क्योंकि तेरे साखी वसुको फूटा जान कर देवताने मार दीया, इस वास्ते तेरेसे अधिक पापी कौन है ? ऐसे कह कर लोकोनें मिलके पर्वतको नगरसें बाहर निकाल दीया, तब महाकाज, असुर, उस पर्वतका साहायक हुआ

यहां रावणने नारवको पूछाकि वो महाकाज असुर कौन था ? नारवने कहा यहां चरणा युगल नामा नगर है, तिसमें अयोधन नामा राजा था, तिसकी दिति नामा नायाथी, तिन दोनोकी सुलसा नामक बहुत रु पवान् बेटी थी, तिस सुलसाका स्वयंवर उसके पिताने करा वहां और सर्व राजे बुलवाये, तिन सर्व राजाओंमेंसू सगर राजा अधिक था तिस सगरराजाकी मवोदरी नामा रणवासकी दरवाजेदार सगरकी आइयासें प्रति दिन अयोधनराजाके आवासमें जाती हुई, एकदिन दिति घरके बागके क वलीधरमें गई, और सुलसाके साथ मवोदरीजी तहां आ गई, तब मवोदरी, सुलसा और दिति इन दोनोकी बातें सुननेके वास्ते तहां ठिप गई, तब दिति सुलसाको कहने लगी, हे बेटा ! मेरे मनमें इस तेरे स्वयंवरमें बड़ा शक्य है, तिसका उद्धार करना तेरे अधीन है, इस वास्ते तू सुनले मूलसें

श्रीरूपनदेव स्वामीके नरत अरु बाहुव्रजी यह दो पुत्र हूये, फेर तिनके दो पुत्र हूये तिनमें नरतका स्वयंयश और बाहुवलीका चड्यश जिनोसे स्वयंयश और चड्यश चले हे चड्यशमें मेरा नाइ तृणविडनामा हुआ, तथा सूर्यवशमें तेरा पिता राजा थापोधन हुआ, और थापोधन राजाकी बहिन सत्ययशा नामा तृणविडकी जायी हुई, तिसका बेटा मधुपिंगल नामा मेरा नन्नीजा है, तो हे सुवरी ! मैं तेरेको तिस मधुपिंगलको दीया चाहती हूँ, और तूतो क्या जाने स्वयंवरमें किसको वेइ जावेगी ? मेरे मनमें यह शक्य है इस वास्ते तूने स्वयंवरमें सर्वराजाओंको ठोडकें मेरे नन्नीजे मधुपिंगलको वरनां, तब सुजसाने माताका कहनां स्वीकार कर लीया, और मवोवरीने यह सर्ववृत्तांत सुन कर सगर राजाको कह दीया, तब सगर राजाने अपने विश्वनूतिनामा पुरोहितको आदेश दीया, वो विश्वनूति बड़ा कवि था उसने तत्काल राजाके लक्ष्णोंकी संहिता बनायी तिस संहितामें ऐसे जित्ना कि सगर तो छुनलक्ष्ण वाला बन जावे और मधुपिंगल लक्ष्ण हीन सिद्ध हो जावे, तिस पुस्तकको सद्रुकमें बंद करकें रख ठोडा जब सब राजा आ कर स्वयंवरमें एकठे बैठे, तब सगरकी आज्ञासे विश्वनूतिने वो पुस्तक काठा अरु सगरने कहा कि जो लक्ष्ण हीन होवे, तिसको यातो मार देनां, अथवा स्वयंवरसे बाहिर निकाल देनां, यह कहनां सबोंने मान लीया, तब तो पुरोहित यथायथा पुस्तक वांचता जाता है, तथा तथा मधुपिंगल अपनेको अपलक्ष्ण वाला मान कर लज्जावान् होता जाता है, और स्वयंवरसे आपही निकल गया, तब सुजसाने सगरको वर लीया, दूसरे सर्व राजा अपो अपो स्थानोंको चले गये, अरु मधुपिंगल तो उस अपमानसे बाल तप करकें साठ हजार वर्षकी आयुवाला कालनामा असुर परमधार्मिक देव हुआ, तब अवधिज्ञानसे सगरका कपट जो उसने सुजसाके स्वयंवरमें फूटा पुस्तक बनाया था, और अपना जो अपमान हुआ था, सो देखा जाना, तब विचार करा कि सगर राजाविकोंको मैं मारु ? तब तिनके ठिड़ देखने लगा, जब छक्तिमती नगरीके पास पर्वतको देखी, तब ब्राह्मणका रूप करकें पर्वतको कहने लगा कि हे पर्वत ! मैं तेरे पिताका मित्र हूँ, मेरा नाम शान्तिव्य है, मैं और तेरा पिता इस दोनो साथ होकर गौतम उपाध्यायके पास पढ़े थे, मैंने सुना था कि नारवने और दूसरे लोकोंने ठुके



बहुत ड खी करा, अब मैं तेरा पक्ष पुरुषा, और मंत्रों कर कें लोकोंको विमोहित करुगा, यह कह कर पर्वतके साथ मिलके लोकोंको नरकमें मालने वास्ते तिस असुरने बहुत व्यामोह करा, व्याधि जूतावि दोष लोकोको कर दीये, पीछे उहां जो लोक पर्वतका वचन मान लेता था, तिसको अज्ञा कर वेताया, शान्तिव्यकी आज्ञासे पर्वतजी लोकोंको अज्ञा करने लगा, उपकार करके लोकोको अपने मतमें मिलाता जाता था, तब तिस असुरने सगर राजाको तथा तिसकी राणीयाँको बहुत ज़ारी रोगादिकका उपद्रव करा, तब तो राजाजी पर्वतका सेवक बना, अरु पर्वतने शान्तिमिलके तिसका रोग शांति करा, तब पर्वतने राजाको उपदेश करा कि हे राजा ! सौत्रामणि नामा यज्ञ करके, मधुपान अर्थात् सराव पीनेमें दोष नहीं, तथा गोसव नामा यज्ञमें अगम्य स्त्री ( चामाजी ) आदि तथा माता वधिन, बेटी आदिसें विषय सेवन करना चाहियें, मातृमेधमें माताका और पितृमेधमें पिताका वध अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिकमें करे, तो दोष नहीं, तथा कबुकी पीठ ऊपर अग्नि स्थापन करके तर्पण करे, कदाचित् कबु न मिले तो छु-छ ब्राह्मणके मस्तककी टटरी ऊपर अग्नि स्थापन करके होम करे, क्योंकि टटरीजी कबुकी तरें होती है इस बातमें हिंसा नहीं है, क्योंकि वेदोमें लिखा है, श्लोक ॥ सर्वपुरुषैववेद, यद्भूतयज्ञविश्यति ॥ इशानोर्यमृ तत्वस्य, यदन्नेनातिरोदति ॥१॥ इसका नावार्थ यह है, कि जो कुछ है, सो सब ब्रह्मरूपही है, जब एकही ब्रह्म हुआ, तब कौन किसिको मारता है ? इस वास्ते यथारुचिसें यज्ञोमें जीवहिंसा करो, और तिन जीवोंका मांस नक्षण करो, इसमें कुछ दोष नहीं क्योंकि देवोद्देश करनेसे मांस पवित्र हो जाता है, इत्यादि उपदेश देकर सगरराजाको अपने मतमें स्थापन करके अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिमें वो पर्वत यज्ञ कराता हुआ तब कालासुरने अब सर पा करके राजसूयादिक यज्ञजी कराता हुआ, और जो जीव यज्ञमें मारे जाते थे, तिनको विमानोंमें बैठाके देवमायासे दिखाता हुआ, तब लोकोंको प्रतीत था गइ पीछे वो नि गक होकर जीवहिसारूप यज्ञ करने लगे और पर्वतका मत मानने लगे, सगरराजाजी यज्ञ करनेमें बड़ा तत्पर हुआ, सुजसा और सगर दोनों मरके नरकम गये, तब माहाकालासुरने सगर राजाको नरकमें मार पीटादि मद्दाड ख देके अपना वैर लीया, इस वास्ते

श्रीरूपनदेव स्वामीके नरत अरु बाहुवती यह दो पुत्र हूये, फेर लिखे  
 वो पुत्र हूये तिनमें नरतरा सूर्यवश और बाहुवतीका चंद्रवश जिनोसे सूर्य  
 वश और चंद्रवश चले हे चंद्रवशमें मेरा नाइ टुणबिडनामा हुआ, तब  
 सूर्यवशमें तेरा पिता राजा आयोधन हुआ, और आयोधन राजाकी बहिन  
 सत्यवशा नामा टुणबिडकी नाया हुआ, तिसका बेटा मधुपिंगल नामा मेरा  
 नज्जीजा है, तो हे सुदरी ! मैं तेरेको तिस मधुपिंगलको दीया चाहती हूँ, और  
 तूतो क्या जाने स्वयंवरमें किसको वेइ जावेगी ? मेरे मनमें यह शक्य है  
 इस वास्ते तूने स्वयंवरमें सर्वराजाओंको ठोडक मेरे नज्जीजे मधुपिंगलको  
 वरना, तब सुलसाने माताका कहना स्वीकार कर लीया, और मंदोदरीने  
 यह सर्ववृत्तांत सुन कर सगर राजाको कह दीया, तब सगर राजाने अपने  
 विश्वनूतिनामा पुरोहितको आदेश दीया, वो विश्वनूति बड़ा कवि था उसने  
 तत्काल राजाके लक्ष्णोकी सहिता बनायी तिस सहितामें ऐसे लिखा कि  
 सगर तो शुनलक्ष्ण वाला बन जावे और मधुपिंगल लक्ष्ण हीन सिद्ध  
 हो जावे, तिस पुस्तकको सद्रुकमें बंध करके रख ठोडा जब सब राजा आ  
 कर स्वयंवरमें एकिके बैठे, तब सगरकी आज्ञासे विश्वनूतिने वो पुस्तक काढा  
 अरु सगरने कहा कि जो लक्ष्ण हीन होवे, तिसको या तो मार देना, अ  
 थवा स्वयंवरसे बाहिर निकाल देना, यह कहना सबोंने मान लीया, तब  
 तो पुरोहित यथायथा पुस्तक वांचता जाता है, तथा तथा मधुपिंगल अप  
 नेको अपलक्ष्ण वाला मान कर लज्जावान् होता जाता है, और स्वयंवरसे  
 आपही निकल गया, तब सुलसाने सगरको वर लीया, दूसरे सर्व राजा अ  
 पणे अपणे स्थानोंको चले गये, अरु मधुपिंगल तो उस अपमानसे बाल  
 तप करके साठ हजार वर्षकी आयुवाला कालनामा असुर परमधार्मिक देव  
 हुआ, तब अवधिज्ञानसे सगरका कपट जो उसने सुलसाके स्वयंवरमें  
 जुटा पुस्तक बनाया था, और अपना जो अपमान हुआ था, सो देखा  
 जाना, तब विचार करा कि सगर राजाविकोंको मैं मारु ? तब तिनके  
 बिड़ देखने लगा, जब शुक्तिमती नगरीके पास पर्वतको देखी, तब ब्राह्मणका  
 रूप करके पर्वतको कहने लगा कि हे पर्वत ! मैं तेरे पिताका मित्र हूँ, मेरा  
 नाम शान्तिव्य है, मैं और तेरा पिता हम दोनों साथ होकर गौतम ठपा  
 व्यासके पास पढ़े थे, मैंने सुना था कि नारदने और दूसरे लोकोंने तुझे

बहुत डुखी करा, अब मैं तेरा पक्ष पुरुगा, और मंत्रों कर के लोकोंको विमोहित करुगा, यह कह कर पर्वतके साथ मिलके लोकोंको नरकमें मालने वास्ते तिस असुरने बहुत व्यामोह करा, व्याधि चूतावि दोष लोकोंको कर दीये, पीछे वहां जो लोक पर्वतका वचन मान लेता था, तिसको अज्ञा कर देताथा, शान्तिव्यकी आज्ञासे पर्वतजी लोकोंको अज्ञा करने लगा, उपकार करके लोकोंको अपने मतमें मिलाता जाता था, तब तिस असुरने सगर राजाको तथा तिसकी राणीयाँको बहुत नारी रोगादिकका उपद्रव करा, तब तो राजाजी पर्वतका सेवक बना, अरु पर्वतने शान्तिमिलके साथ मिलके तिसका रोग शांति करा, तब पर्वतने राजाको उपदेश करा कि हे राजा ! सौत्रामणि नामा यज्ञ करके, मद्यपान अर्थात् सराव पीनेमें दोष नहीं, तथा गोसव नामा यज्ञमें अग्न्य स्त्री ( चामाली ) आदि तथा माता वद्दिन, बेटी आदिसें विषय सेवन करनां चाहिये, मातृमेधमें माताका और पितृमेधमें पिताका वध अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिकमें करे, तो दोष नहीं, तथा कङ्गुकी पीठ ऊपर अग्नि स्थापन करके तर्पण करे, कदाचित् कङ्गु न मिले तो गृध्र ब्राह्मणके मस्तककी टटरी उपर अग्नि स्थापन करके होम करे, क्योंकि टटरीजी कङ्गुकी तरें होती है इस बातमें हिंसा नहीं है, क्योंकि वेदोंमें लिखा है, श्लोक ॥ सर्वपुरुषैववेद, यन्नृतयन्नविश्यति ॥ इशानोयं सृ तत्वस्य, यदन्नेनातिरोदति ॥१॥ इसका जावार्थ यह है, कि जो कुब है, तो सब ब्रह्मरूपही है, जब एकही ब्रह्म दूया, तब कौन किसिको मारता है ? इस वास्ते यथारुचिसे यज्ञोंमें जीवहिंसा करो, और तिन जीवोंका मांस नक्षण करो, इसमें कुब दोष नहीं क्योंकि देवोद्देश करनेसे मांस पवित्र हो जाता है, इत्यादि उपदेश देकर सगरराजाको अपने मतमें स्थापन करके अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिमें वो पर्वत यज्ञ कराता दूया तब कालासुरने अब सर पा करके राजसूयादिक यज्ञजी कराता दूया, और जो जीव यज्ञमें मारे जाते थे, तिनको विमानोंमें बैठाके देवमायासे दिखाता दूया, तब लोकोंको प्रतीत था गइ पीछे वो नि शक होकर जीवहिंसारूप यज्ञ करने लगे और पर्वतका मत मानने लगे, सगरराजाजी यज्ञ करनेमें बड़ा तत्पर दूया सुजसा और सगर दोनों मरके नरकमें गये, तब माहाकालासुरने—सगर राजाको नरकमें मार पीटादि मद्दाइ ख देके अपणा बैर लीया, इस वास्ते

श्रीरूपनदेव स्वामीके जगत अरु बाहुवज्री यह दो पुत्र हुये, फेर तिनके दो पुत्र हुये तिनमें जगतका सूर्यवश और बाहुवज्रीका चन्द्रवश जिनमेंसे सूर्य वश और चन्द्रवश चले हे चन्द्रवशमें मेरा जाइ तृणविडुनामा हुआ, तब सूर्यवशमें तेरा पिता राजा आयोधन हुआ, और आयोधन राजाकी बहिन सत्यवश नामा तृणविडुकी जाया हुआ, तिसका बेटा मधुपिंगल नामा मेरा जन्मीजा है, तो हे सुवरी ! मैं तेरेको तिस मधुपिंगलको दीया चाहती हूँ, और तुम क्या जाने स्वयंवरमें किसको देइ जावेगी ? मेरे मनमें यह श्रव्य है इस वास्ते तुने स्वयंवरमें सर्वराजाओंको ठोडके मेरे जन्मीजे मधुपिंगलको वरना, तब सुलसाने माताका कहना स्वीकार कर लीया, और मन्वोदरीने यह सर्ववृत्तांत सुन कर सगर राजाको कह दीया, तब सगर राजाने अपने विश्वनूतिनामा पुरोहितको आदेश दीया, वो विश्वनूति बड़ा कवि था उसने तत्काल राजाके लक्षणोंकी सहिता बनायी तिस सहितामें अैसें लिखा कि सगर तो छुनलक्षण वाला बन जावे और मधुपिंगल लक्षण हीन सिद्ध हो जावे, तिस पुस्तकको सद्रुकमें बंद करके रख ठोडा जब सब राजा आ कर स्वयंवरमें एकिके बैठे, तब सगरकी आज्ञासें विश्वनूतिने वो पुस्तक काढा अरु सगरने कहा कि जो लक्षण हीन होवे, तिसको या तो मार देना, अथवा स्वयंवरसें बाहिर निकाल देना, यह कहना सबोंने मान लीया, तब तो पुरोहित यथायथा पुस्तक वांचता जाता है, तथा तथा मधुपिंगल अपनेको अपलक्षण वाला मान कर लज्जावान् होता जाता है, और स्वयंवरसें आपदी निकल गया, तब सुलसाने सगरको वर लीया, दूसरे सर्व राजा अपने अपने स्थानोंको चले गये, अरु मधुपिंगल तो उस अपमानसें बाज तप करके सात हजार वर्षकी आयुवाला कालनामा अक्षुर परमधार्मिक देव हुआ, तब अवधिज्ञानसें सगरका कपट जो उसने सुलसाके स्वयंवरमें फूटा पुस्तक बनाया था, और अपना जो अपमान हुआ था, सो देखना जाना, तब विचार करा कि सगर राजादिकोंको मैं मारु ? तब तिनके विष देखने लगा, जब शुक्तिमती नगरीके पास पर्वतकों देखा, तब ब्राह्मणका रूप करके पर्वतकों कहने लगा कि हे पर्वत ! मैं तेरे पिताका मित्र हूँ, मेरा नाम शान्तिव्य है, मैं और तेरा पिता हम दोनों साथ होकर गौतम तथा ध्यायके पास पढ़े थे, मैंने सुना था कि नारदने और दूसरे लोकोंने तुने

अहो याचका ! अहो याचका तबहीसें ब्राह्मणोंको याचक कहने लगे, तब ब्राह्मणोंने श्रीरूपनदेवकी चितामेंसे अग्नि ले कर अपने अपने घरोंमें स्थापन करते दूये, तिस कारणसें ब्राह्मणकों आदिताग्रय कहने लगे

श्री रूपनदेवकी चिता जले पीछे बाढाविक सर्व तो देवता ले गये, शेष नरुम अर्थात् राखा रहगयी सो ब्राह्मणोंने थोड़ी थोड़ी सर्व लोकोंको दीनी, तिस राखकों लोकोंने अपने मस्तक कपर त्रिपुमाकारसें लगायी, तबसें त्रिपुमलगाना, शुरु हुआ इत्यादि बहुत व्यवहार तबसेंही चला है

जब नरतने कैलास पर्वतके उपर सिद्धनिषया नामा मंदिर बनाया, उसमें आगे होनेवाले त्रेवीश तीर्थकरोंके और श्री रूपनदेवजीकी मिलकर चोवीश प्रतिमाकी स्थापना करी, और मन्दिरमें पर्वतकों ऐसे बोला कि जिस उपर कोई पुरुष पगोंसें न चढ सके उसमें आठ पद ( पगथीए ) रके इसी वास्ते इन कैलास पर्वतका दूसरा नाम अष्टा पद कहते हैं, तब सेंही कैलास महादेवका पर्वत कहलाया महादेव अर्थात् बडेदेव सो रूपनदेव तिसका स्थान कैलास पर्वत जानना

नरत अरु बाहुबलि यह दोनी दीक्षा लेके मोक्ष गये, तब नरतके पीछे सूर्ययश गद्दी कपर बैठा, तिसकी औलाद सूर्यवशी कहलाये, तिसके पीछे सूर्ययशका बेटा महायश गद्दी उपर बैठा, ऐसेंही अतिबल, महाबल, ते जवीर्य, कीर्त्तिवीर्य अरु दमवीर्य, ये आठ अनुक्रमसे अपने अपने बापकी गद्दी उपर बैठे, अपने अपने राजका प्रबध करते रहे, परंतु नरतके राजसें इनोंने आधा ( तीन खंमका ) राज्य करा, और अर्धे नरतकी तरें राज्य बोट कर मोक्षमें गये, इनके पीछे गद्दी कपर असख पाट दूये, तिनकी व्यवस्था चित्तांतरगनिकासें जान लेनी यावत् जितशत्रुराजा दूये ॥ इति सङ्केपत श्रीरूपनाधिकार संपूर्ण ॥

अब अजितनाथ स्वामीके वखतका स्वरूप लिखते हैं अयोध्या नगरीमें श्रीनरतके पीछे जब असख्य राजा हो चुके, तब इन्द्राकुवशमें जित शत्रु राजा हुआ, विनीता नगरीकाही दूसरा नाम अयोध्या है, परंतु अब जो अयोध्या है सो वो अयोध्या नहीं वो तो कैलास पर्वतके पास थी, और यह तो नवीन अयोध्या उसके नामसें बसी है, जितशत्रु राजाका बेटा नाइ सुमित्र युवराज था, जितशत्रुकी विजया देवी राणी थी,

हे रावण ! परंतु पापीसं यद् जीवद्विसारूपं यद् निगोष करकं प्रवर्तं दूषे  
हे हे राजा रावण ! सो यद् यद् तेन निषेधं करा यद् कथा सुनके रावण  
रावणने प्रणाम करके नारवक्रों गिवा करा, इस तरसे जैन मतके शास्त्रोंमें  
वेदोंकी उत्पत्ति लिखी है सो आश्वरूपसूत्र, आचारविनकर, ब्रह्म  
लाका पुरुष चरित्रमें सर्व लिखा है, तांहासे देख लेना।

और इस वर्तमान कालमें जो चारों वेद हैं इनकी उत्पत्ति मात्र मो  
क्रमूलर साहित्य अपने बनाये सस्कृत साहित्य ग्रन्थमें तो ऐसा लिखते  
हैं, कि वेदोंमें दो जाग है, एक उदोनाग, दूसरा मत्र जाग है, तिनमें ३  
दोनागमें इस प्रकारका कथन है, जैसे थड़ानीके मुखसे अकरमात् वषन  
निकला हो, तैसे इसकी उत्पत्ति एकतीससौ वर्षसे दूई है, और मत्रजागको  
वने दूये वनतीससौ वर्षे दूये है, इस लिखनेसे क्या आश्चर्य है ? जो कि  
सीने उलट पुलटके फेर नवीन वेद बना दीये हों इन वेदों ऊपर अबट,  
सायण, रावण, महीधर, थरु शकराचार्यादिकोंने जाप्य बनाये हैं, टीका,  
दीपिका, रची हैं, फेर अब वन प्राचीन जाप्य दीपिकाको अयथार्थ जा  
नके दयानंदसरस्वती स्वामि अपने मतके अनुसार नवीन जाप्य बना  
रहे है, परंतु पण्डित ब्राह्मण लोक, दयानंद सरस्वतीके जाप्यको प्रामा  
णिक नहीं मानते हैं अब देखा चाहिये क्या होता है ? और जैनमत  
वालोंनेतो जबसे उनके शास्त्रोंके लिखने मुजब आर्य वेद, बिगाड़े गये  
वसीदिनसे वेदोंको मानने छोड़ दीये हैं ॥ इतिवेदोत्पत्ति ॥

जब श्रीरूपनदेवजीका फैलास पर्वतके उपर निर्वाण हुआ, तब सर्व  
देवता निर्वाण महिमा करनेको आये, तिन सर्व देवताओंमेंसे अग्नि कुमार  
देवतानें श्रीरूपनदेवकी चितामें अग्नि जगाई, तबसेही यह श्रुति लोकमें प्र  
सिद्ध हुई है “अग्निमुखावैदेवा” अर्थात् अग्नि कुमार देवता सर्वदेवताओंमें  
मुख्य है, और अल्पबुद्धियोंनेतो यह श्रुतिका अर्थ ऐसा बनालीया है कि  
अग्निजो है, सो तेतीसकोड़ देवताओंका मुख है यह प्रष्टके निर्वाणका  
स्वरूप सर्व आवश्यक सूत्रसे जान लेना।

जब देवताओंने श्रीरूपनदेवकी दाढ़ा वगैरे लीनी, तब आवक ब्राह्मण  
मिलकर देवतार्योंको अतिजक्तिसें याचना करते दूये, तब वे देवता तिनको  
बहुत जान करके बड़े यत्नसे याचनेके पीछे दूये देव कर कहते दूये कि

कर मोक्ष पदूंचे, और अजितनाथ स्वामीजी समेतशिखर पर्वतके ऊपर शरीर ठोडकें मोक्ष गये, श्रीरूपनदेव स्वामीके निर्वाणसे पंचाश लाख कोड़ी सागरोपमके व्यतीत हुआ श्रीअजितनाथ तीर्थकरका निर्वाण हुआ तिनोंके पीछे तीस लाख कोड़ी सागरोपम व्यतीत हूये, श्रीसनवनाथजी तीसरे तीर्थकर हूये, राज्य सर्व सूर्यवशी, चन्द्रवशी, और कुरुवशी, आदिक राजाओंके धरानेमें रहा ॥ इति श्रीअजितनाथ और सगरचक्रवर्तीका अधिकार संपूर्ण ॥

अब आवस्ती नगरीमें इक्ष्वाकुवशी जितारिराजा राज्य करता था, ति सकी सेना नामें पटराणी थी, तिनोंका सनव नामा पुत्र तीसरा तीर्थकर हुआ, यह चौबीसही तीर्थकरोंका वर्णन प्रथम परिच्छेदमें यंत्र और वातातमें लिख आये हैं इस वास्ते यहां सक्षेपसे लिखेगे और तीर्थकरोंके आपसमें जो अंतरकाल हैं सोनी यंत्रोंमें देख लेना इति तृतीय तीर्थकरवृत्तांत

इनके पीछे अयोध्यानगरीमें इक्ष्वाकुवशी सवरराजाकी सिद्धार्था नामक राणी तिनोंका पुत्र अजिनदन नामक चौथा तीर्थकर हुआ पीछे अयोध्यानगरीमें इक्ष्वाकुवशी मेघराजाकी सुमगला राणी तिनोंका पुत्र सुमतिनाथ नामक पांचवां तीर्थकर हुआ, पीछे कौसवी नगरीमें इक्ष्वाकुवशी श्रीधरराजाकी सुसीमा राणी तिनोंका पुत्र पद्मप्रजनामक षष्ठा तीर्थकर हुआ, पीछे वाणारसी नगरीमें इक्ष्वाकुवशी प्रतिष्ठराजाकी पृथ्वी नामाराणी तिनोंका पुत्र श्रीसुपार्श्वनाथ नामा सातमा तीर्थकर हुआ, पीछे चण्डपुरी नगरीमें इक्ष्वाकुवशी महासेन राजाकी लक्ष्मणा नामें राणी तिनोंका पुत्र श्रीचण्डप्रजनामा आठवां तीर्थकर हुआ, पीछे काकमी नगरीमें इक्ष्वाकुवशी सुग्रीवराजा की रामा नामक राणी तिनोंका पुत्र श्रीसुविधिनाथ अष्टमनाम पुष्पदत्त नामक नवमा तीर्थकर हुआ

यहां तक तो सर्व ब्राह्मण जैनधर्मी आवक और आर्य चारों वेदोंके पढ़ने वाले बने रहे, जब नवमें तीर्थकरका तीर्थ व्यवच्छेद हो गया, तबसे ब्राह्मण मिथ्यादृष्टि और जैनधर्मके द्वेषी और सर्व जगत्के पूज्य कन्या, जूमि, गोदानादिकके लेने वाले, सर्व जगत्में उत्तम और सर्वके हर्ता कर्ता मतोंके मालक बन गये क्योंकि शूना घर देखकें कुत्तानि आटा खा जाता है, और जो जगत्में पाखन तथा तुरे तुरे देवतादिकोंकी पूजा

तिसके चौदह सप्त पूर्वक यजितनाथ नामा पुत्र दूआ, और सुमित्रकी राणी यशोमतीकींजी चौदह सप्त देखने पूर्वक सगरनामा पुत्र दूआ अब दोनो यौवनवत हुए तब जितशत्रु और सुमित्रतां दीक्षा लेकें मोक्ष रूप हो गये तब श्रीयजितनाथ राजा दूये थरु सगर सुवराजा दूये कितनेक काल राज करक श्री यजितनाथजीने तो स्वयमेव दीक्षा ले कर तप करा, और केवलज्ञान पा कर दूसरा तीर्थकर दूआ पीछे स गर राजा दूआ, सो सगर दूसरा चक्रवर्ति दूआ है, यह सगर राजाने नरतकी तर पट् खमका राज्य करा, यह सगर राजाके जन्हु कु मार प्रमुख शाठ हजार बेटे दूये, तिनोनें दन रत्नसे गंगा नदीकीं अपने अस्तो प्रवाहसे फेरके और कैलासके गिरदनवाह खाइ खोदके उस खा इमें गंगाको लाकें गेरा, क्योकि उनोने विचार करा था कि हमारे बडे न रतने जो इस पर्वत कपर सुवर्णरत्नमय श्रीरूपनादि तीर्थकरोंका मंदिर बनाया है, तिसकी रक्षा वास्ते इस पर्वतके चारो उर खाइ खोद कर उ समें गंगा फेर देवं, जिससे तीर्थकी विशेष रक्षा हो जावेगी, तिन शाठ ह जारकीं नाग देवताने मार दीया, क्योकि खाइ खोदने और जल नरनेसे उनको तकलीफ पडुची थी, तब गंगाके जलनें देशमे बडा उपडव करा, तब सगरराजाका पोता जन्हुका बेटा जगीरथने सगरकी आज्ञासे दन र त्नसे चूमि खोदके गंगाकीं समुद्रमें मिलाया, इसी वास्ते गंगाका नाम जा न्दवी और जागीरथी कहा जाता है, सगरराजाने श्रीशत्रुंजय तीर्थ ऊपर श्रीनरतके बनाये रूपनदेवजीके मंदिरका वरार करा, तथा और जैनती थींकाजी वरार करा, तथा यह समुद्रजी नरतकेत्रमें सगरही देवताके सदा ग्यसे लाया, लकाके टापूमें वैताठ पर्वतसे सगरकी आज्ञासे घनवाहन प हिला राजा दूआ, और लंकाके टापूका नाम राक्षस द्वीप है, तिसका यह हेतु हैकि घनवाहन राजाके बसके राक्षस कहलाये, इसी बसमें राजा रा वण और बिभीषणादि दूये हैं इत्यादि सगरचक्रवर्तीके समयका हाल त्रेशठ शलाका पुरुष चरित्रसे जान लेना, क्योकि तिस चरित्रके तेचीस ह जार काव्य हैं इस वास्ते मैं सारा हाल उसका इस ग्रंथमें नहीं लिख सका हूं, परंतु संक्षेप मात्र वृत्तांत लिखुंगा सगरचक्रवर्ति राज्य करके पीछे श्री यजितनाथजीके पास दीक्षा ले कर, समय तप करके केवलज्ञान पा



तर्हें पंवरहवें तीर्थकर तक सात तीर्थकरोंका शासन विभेद होता रहा, और मिथ्याधर्म बढ गये

तिस पीछें सिद्धपुरी नगरीमें इक्ष्वाकु वशी विष्णुराजा दूथा तिसकी विष्णु श्रीराणी तिनोका पुत्र श्रीश्रेयांसनाथ नामा इग्यारमां तीर्थकर दूथा, तिनके समयमें वैताढ्यपर्वतसें श्रीकठ नामा विद्याधरके पुत्रने वद्योत्तर विद्याधरकी बेटीको हरके अपने बदनोइ राक्षसवशी लकाका राजा कीर्त्ति धवलकी शरण गया, तब कीर्त्तिधवलने तीनसौ योजन परिमाण बानर द्वीप उनके रहनेको बीया, तिनोके सतानोंमेंसें चित्र विचित्र विद्याधरने विद्यासें बदरका रूप बनाया, तब बानर द्वीपके रहनेसें और बानरका रूप बनानेसे बानरवशी प्रसिद्ध हूये, तिनोर्हीकी औलादमें बाली और सुग्रीवादिक हूये हैं

तथा श्रेयांसनाथके समयमें पहिला त्रिष्टु नामा वासुदेव हरिवशमें दूथा, तिसकी उत्पत्ति ऐसे है - पोटनपुर नगरमें हरिवशी जितशत्रु नामा राजा दूथा, तिसकी धारणी नामा राणी थी, तिसका अचल नामा पुत्र और मृगावती नामा बेटीथी, तो अत्यंत रूपवान् औ यौवनवती थी, उसको देखके उसके पिता जितशत्रुने अपनी राणी बना लीनी तब जो कौने जितशत्रु राजाका नाम प्रजापति रक्का, अर्थात् अपनी बेटीका पति ऐसा नाम रक्का, तबहीसें वेदोंमें यह श्रुति लिखी गई 'प्रजापतिर्वैत्वा इदितरमन्य ध्यायद्विनित्यन्यथाद्गुपुरसमित्यन्येतामृश्योन्नत्वा तदसावादि स्योनवत्' इसका जावार्थ यह है कि - प्रजापतिब्रह्मा अपनी बेटीसे विषय सेवनेको प्राप्ति होता दूथा, हमारे जैनमतवालोंकी तो इस अर्थसें कुछ हानी नहीं, परंतु जिनजोकोने ब्रह्माजीको वेदकर्त्ता हिरण्यगर्भके नामसें इश्वर माना हैं, औ इस कथाको पुराणोंमें लिखा है, उनका फजीता तो जरूर दूसरे मतवाले करेंगे ? इसमें हम क्या करे ? क्योंकि जो पुरुष अपने हाथोंसेंही अपना मुह फाला करे, तब उसको देखने वाले क्योंकर हांसी न करेंगे ? यद्यपि मीमांसाके वार्त्तिककार कुमारिलने इस श्रुतिके अर्थके कलक दूर करणेको मनमानी कल्पना करी है, तथा इस कालमें दयानंद सरस्वतीनेजी वेदश्रुतियोंके कलक दूर करनेको अपनी बनाइ जायमें खूब अर्थोंके जोड तोड लगाये हैं, परंतु जो पुराणवालेने कथानक

है, तथा औरजी जो जो कुमार्ग प्रचलित हुआ है, वे सर्व जनोद्दिने फलदा  
हैं, मानो आदीश्वर जगदानकी रची हुई सृष्टिरूप अमृतम जहर मानने  
वाले हूये, क्योंकि आगे तो जैनमतके और कपिलके मतके बिना और को  
इसी मत नहीं था कपिलके मतवालेनी श्रीआदीश्वर अर्थात् रूपनरेवकोही  
देव मानते थे, निदान यह इस दुना अवसर्पणिमे आश्रय गिना जाता है

तीस पीढ़ें चन्द्रजपुरनगरमे इन्द्राकुवशी दृढरथराजाकी नदा नामा गछी  
तिनोका पुत्र श्री शीतलनाथनामा दशमा तीर्थंकर हुआ, इनही तीर्थंकरके  
शासनमें हरिवंश उत्पन्न हुआ है, तिसकी कथा लिखते हैं

कौशाग्निकरीमें वीरा नामा कोली रहताथा, तिसकी वनमाला नामा  
स्त्री उत्पन्न रूपवती थी सो नगरके राजाने ठीनके अपनी राणी बना लेई,  
वीरा कोली स्त्रीके विरहसे बावला हो गया हा वनमाला हा वनमाला ऐसे  
कहता हुआ नगरमे फिरने लगा एकदा वर्षाकालमें राजा वनमालाके सा  
थ महुलके जरोखेमे बैठा था, तब राजा राणीने वीरेको तिस हालमें वे  
खके बड़ा पश्चात्ताप करा, अरु विचार करने लगे कि हमने यह बहुत बुरा  
काम करा, उसी वखत बीजली गिरनेसे राजा राणी दोनों मरके हरिवासे  
त्रमें युगल स्त्री पुरुष हो गये, तब वीरा कोली राजा राणीका मरण सुनके  
राजी हो गया पीछे तापस बनके तप करा, अज्ञान तपके प्रभावसे किंविष  
देवता हुआ तब अधिज्ञानसे राजा राणिकों युगलीये हूये देख कर वि  
चार करा कि यह नष्ट परिणामी और अल्पारजी है, इस वास्ते मरके दे  
वता होवेंगे, तो फेर में अपना वैर किससे लेऊंगा ? इस वास्ते ऐसा क  
रु कि - जिससे ये दोनों मरके नरकमें जावे, ऐसा विचार के तिन दो  
नोंको तहांसे उठा करके नरक क्षेत्रमें चपा नगरीके इन्द्राकुवशी चमकीर्ण  
राजा अपुत्रिया मरा था, लोक सब चितामें बैठे थे कि कौन यहांका राजा  
होवेगा ? पीछे तिस देवतानें ये दोनों उनको सोंपे, और कहाकि यह तु  
मारा हरिनामा राजा हुआ, इसकी यह वरणी नामा राणी है, इनके  
खाने वास्ते तुमने फलमिश्रित मांस देना और इनसे शिकारजी कराना  
तब लोकोंने तैसेही करा वे दोनों पापके प्रभावसे मरके नरकमें गये,  
और उनकी औलाद सब हरिवंशकी कहजाये इसी वंशमें वसुराजा हुआ  
इति हरिवंशोत्पत्ति ॥ इनही शीतलनाथजीकानी शासन विधेव गया, इसी

तिस पीठें हस्तिना पुर नगरमें कुरुवशी सूरनामा राजा हुआ, तिसकी श्रीराणी तिनोका पुत्र श्रीकुशुनाथ हुआ, सो प्रथम गृहस्थावस्थामें ठछा चक्रवर्ती था, अरु दीक्षा लीया पीठें सत्तरहवां तीर्थकर हुआ

तिस पीठे हस्तिनापुरनगरीमें कुरुवशी सुवर्शन नामा राजा, हुआ तिसकी देवी राणी, तिनोका पुत्र श्रीअरुनाथ हुआ, सो गृहस्थावासमें तो सातवां चक्रवर्ति था और दीक्षा लीया पीठें अष्टारहवां तीर्थकर हुआ.

अष्टारहवें और वन्नीसवें तीर्थकरके अतरेमें आठवां कुरुवशी सुजून नामा चक्रवर्ती हुआ यह अनुमके वखतमेंही परशुराम हुआ इन दोनों का संबंध जैनमतके शास्त्रोंमें जैसे लिखा है तैसेमेंनी यहां लिख देता हूं.

यह कथा योग शास्त्रमें ऐसे लिखी है कि, वसंत पुर नामा नगरमें वृहन्नवश नामा अर्थात् जिसका कोईनी सवधी नहीं था ऐसा अग्निक नामा एक लडका था सो अग्निक एकदा समये किली साथवाराके साथ देशांतरको जाता हुआ मार्गमें साथसें जूलके जगलमें एक तापसके आश्रममें गया, तब कुलपति तापसने तिसको अपना पुत्र बनाके रखलीया, पीठें तहां अग्निकने बढानारी घोर तप करा और बडा तेजस्वी हुआ, जगत्में यमदग्नि तापसके नामसें प्रसिद्ध हुआ इत अवसरमें एक जैनमति विश्वानर नामा देव और दूसरा तापसोका जक्त ध्वनतरि नामा देव, यह दोनो देव परस्पर विवाद करने लगे तिसमें विश्वानर तो ऐसा कहने लगाकि - श्रीअर्द्धतका कहा धर्म प्रामाणिक है? और दूसरा कहने लगा कि तापसोका धर्म सच्चा है, तब विश्वानरने कहाकि दोनो धर्मके गुरुओं की परीक्षा कर लो तिसमेंनी अर्द्धतधर्मके तो जघन्य गुरुजो होवे तिसकी और तापस धर्मके वरूष्ट गुरु जो होवे, तिसका धैर्य देख लो, तब मिथिल नगरीका पद्मरथ राजा नवाही जिन धर्मो हो कर जावयति हुआथा सो घपानगरीमें गुरुओंके पास दीक्षा लेने वास्ते जाताथा, तिसको पंथमें तिन दोनो देवताओंने देखा, तब रस्तेमें झुख देनेवाले बहुत कने ककरे बना दीये, तथा रस्तेके सिवाय दूसरे स्थानमें बहुत कीड़े आदि जीव हरजगें बना दीये तब राजा जावयतिके जावोंसें कमल समान कोमल, नगे पगोंसें उन कटे ककरोके उपर चला जाता है, पगोमसु रुधिरको ततीरी यां बूटती हैं, तोनी जीवों सयुक्त चूमि ऊपर नहीं चलता है, तब देवता

लिखा है, तिसको क्योकर त्रिपा सकगे ? इसमें यह मसज मझादूर है कि - ब्रह्मकी बात तो त्रिजायत गई अथ क्यो पड़े रुढ़ाते हो ब्रह्मा हमारे मतमें तो वेदश्रुति और ब्रह्मा (प्रजापति) का अर्थ यथार्थ ही करावे. अरु जब त्रिष्टय और अचल दोनो योगनयत हूये तब तिनोर्न त्रिसंनय राजा अश्वमेधीको मारक तीन खमका राज्य करा

तिस पीठें चपा पुरीका इक्ष्वाकुवशी वसुपूज्य नामा राजा हुआ, तिसकी जया नामा राणी तिनोका पुत्र श्रीवासुपूज्यनाथ नामा बारहवां तीर्थकर हुआ, तिनोके वारें दूसरा विष्टय वासुदेव और अचल बलदेव हूये और इनका प्रतिशत्रु रावण समान तारक नामा दूसरा प्रतिवासुदेव हुआ, इन सर्व वासुदेव और चक्रवर्ती आदिकोका सपूर्ण वरनन त्रेशवशलाका पुरुष चरित्रसे जान लेना

तिस पीठें कपिलपुर नगरमें इक्ष्वाकुवशी छतवर्मा नामा राजा हुआ, तिसकी जयामा नामा राणी, तिनोका पुत्र श्री विमलनाथ नामा तरेहवां तीर्थकर हुआ, तिनोके वारें तिसरा स्वयंछु वासुदेव और नइनामा बलदेव तथा मैरक नामा प्रतिवासुदेव हूये

तिस पीठें अयोध्या नगरीमें इक्ष्वाकुवशी सिद्धसेन राजा हुआ तिसकी सुयशाराणी तिनोका पुत्र श्रीअनन्ताथ नामा चौदहवां तीर्थकर हुआ, तिनके वारें चौथा पुरुषोत्तम नामा वासुदेव और सुप्रजनामा बलदेव तथा मधुकैटज नामा प्रतिवासुदेव हूये

तिस पीठें रत्नपुरी नगरीमें इक्ष्वाकुवशी जानुनामा राजा हुआ, तिसकी सुव्रतानामा राणी तिनोका पुत्र श्रीधर्मनाथ नामा पंदरहवां तीर्थकर हुआ, तिनके वारे पांचवां पुरुषसिद्ध नामा वासुदेव और सुदर्शन नामा बलदेव तथा निष्ठान नामा प्रतिवासुदेव हुआ, यहांतक पांच वासुदेव हूये सो पांचोही, अरिदंतोके सेवक अर्थात् जैनधर्मी हूये

तिस पीठें पंदरहवे धर्मनाथ और शोलवें श्रीशान्तिनाथजीके अंतरमें तिसरा मधवा नामा चक्रवर्ती और चौथा सनत्कुमार नामा चक्रवर्ती हूये

तिस पीठें हस्तिनापुरी नगरीमें कुरुवंशी विश्वसेन राजा हुआ तिसकी अचिरा राणी तिनका पुत्र श्रीशान्तिनाथ नामा हुआ सो पहिला एदवासमें तो पांचवां चक्रवर्त्तिया पीठे वीक्षा लेके केवली दोकर शोलवां तीर्थकर हुआ

अधिक और पापी कौन है ? तब जमदग्निने शोचा कि हमारे शास्त्रमें तो जैसे चिढ़ेने कहा है, तैसेही है तब मनमें विचारा जब मेरे स्त्री, और पुत्र नहीं, तब मेरा सर्व तप ऐसा है, जैसा पाणीके प्रवाहमें मृतनां, तैसा है, पीछे जमदग्निके मनमें स्त्रीकी चाहना उत्पन्न हुई, यह देखके ध्वनतरि देवता श्रावक जैनधर्मो हो गया अरु वहांसे दोनो देवता अदृश्य हो गये और जमदग्नि तहांसे उसके नेमिक को एक नगरमें पड़ुचा तिस नगरमें जितशत्रुराजा था, तिसके बहुत बेटीयां थी तिस राजा पासों एक कन्या मांगु ? ऐसा विचार किया ? राजानी आसनसे उठके और हाथ जोड़के कदता हूया कि आप किस वास्ते आये हो ? और मुझे आदेश देयो क्या करु ? तब जमदग्निने कहा मैं तेरे पास तेरी एक कन्या मांगने आया हू तब राजाने कहा मैरी सौ (१००) पुत्री है तिनमेंसू जौ नसी तुमकों बांटे सो तुम लेख्यो, तब जमदग्नि कन्यायोंके मद्दिजमें गया और कहने लगा कि तुममेंसे जिसने मेरी धर्मपत्नी ( स्त्री ) बनना है, सो कह देवे कि मैं तुमारी स्त्री बनूगी, तब तिन राजपुत्रीयोंने जटाला और पजित धौलेकेशोंवाला कुर्वल और जीख मांगके खानेवाला जब देखा और उसका पूर्वोक्त वचन सुना तब सजोंने झुका और कहा कि ऐसी बात कहते हूये तुजकों लज्जा नहीं आती है ? यह बात सुनकर जमदग्निकों बड़ा क्रोध चढ़ा, तब विद्याके प्रजावसे उन राजपुत्रीयोंकों कूवड़ी और महाकुरूपवान् बना दीया, अरु आप तहांसे निकलके मद्दिजोके अंगनमें आया, तहां एक ठोटी राजाकी बेटी रेणु पुजमें ( मट्टीके ढेरमें ) खेल रही थी, तिसकों हाथमें बिजोरेका फल ले कर कहने लगा दे रेणुका ! तु मुजकों बांढती है ? तब तिस बालिकाने बिजोरेकों देखके हाथ पसा रा तब मुनिने कहा मुजकों यह बांढती है ऐसे कहकर मुनिने उसकों ले लीया पीछे राजाने कितनीक गौथां और धन देकर लड़कीका विवाह उसके साथ विधिसें कर दीया तब जमदग्निने शालीयोंके स्नेहसें सर्व कन्यायोंकों अज्ञा कर दीया, और तिस रेणुका जार्याकों लेकर अपने आश्रममें आया पीछे तिस सुग्धा, मधुर आरुति, हरणीतमान लोलाक्षीकों प्रेमसें वृद्धि करता गया, जब जमदग्निको अगुलियो ऊपर दिन गिणतेकों वो रेणुका सुंदर यौवन कामके लीजा वनकों प्राप्त हुई, तब जमदग्निने

थोने गीत नाटकका बड़ा प्रारंभ करा तोजी वो राजा होजायमान नष्ट  
 था तब दोनों देवता सिद्धपुत्रोंका रूप करके राजाको कहने लगे हे महा  
 नाग तेरी आयु अजि बहुत है, तु स्वयं जोगविज्ञास कर क्योंकि यौवनमें  
 तप करना ठीक नहीं इस वास्ते जब तू वृद्ध हो जावेगा, तब हीना से  
 लीजो यह बात सुन कर राजा कहने लगा यदि मेरा बहुत आयु है, त  
 व मैं बहुत धर्म करुंगा क्योंकि जितना कमा पाणी होता है, तितनीही कम  
 लकी नालिनी बढ जाती है और यौवनमें जो इंसियोंको जीतना है, सोइ अ  
 सली तप होता है तब तिन देवताथोने जानां यह तो कदापि घलायमान  
 न होगा, पीछे वो दोनों देवता मिल कर सर्वसे उत्कृष्ट जमदग्नि तापसके पास  
 परीक्षा करणको गये, तब तिनोनें जिसकी बड़वृद्धकी जटाकी तरें तो धरतीसे  
 जटा लग रही है, और पगोमें सर्पोंको विवीयां बन गई है, ऐसे हालमें  
 जमदग्निकों देखा, तब वो दोनों देवताने देव मायासे जमदग्निकी बाडीमें  
 घोंसला बनाकर चिड़ा और चिड़ी बनकर घोंसलेमें दोनों बैठ गये पीछे  
 चिड़ा चिड़ीसे कहने लगा मैं हिमवत पर्वतमें जाउगा तब चिड़ी कहने  
 लगी मैं तुजे कजी न जाने देखगी, क्योंकि तू तहा जाके किसी और चि  
 डीसे आसक्त हो जावेगा, फेर मेरा क्या हाल होवेगा ? तब चिड़ा कहने  
 लगा कि जो मैं फिर कर न आउ, तो मुजे गौ घातका पाप लगे, तब  
 चिड़ी कहने लगी मैं तेरी शपथको नहीं मानती हों, जो मैं सपथ ( सौ  
 गढ़ ) कहू वो तू करे, तो मैं जाने देखगी, तब चिड़ेने कहा तू कह वे तब  
 चिड़ी कहने लगी कि जो तू किसी चिड़ीसे गारो करे तो इस जमदग्नि  
 का जो पाप है, सो तुजको लगे चिड़ाचिड़ीका ऐसा वचन सुणके जम  
 दग्निकों क्रोधोत्पन्न हुआ तब दोनों दायोंसे चिड़ा चिड़ीको पकड लीया  
 और कहता हुआ कि मैं तो बड़ा डुष्कर तप जो पापोंका नाश करने वाला  
 है, सो कर रहा हों तो फेर मेरेमें ऐसा कौनसा पाप शेष रह गया है जिस्से  
 तुम मुजे पापी बतजाते हो ? तब चिड़ा जमदग्निकों कहता है, हे ऋषि !  
 तू हमारे उपर कोप मत कर क्योंकि हमने फूट नहीं कहा है, और जो  
 तेरेको अपने तपका घमण है, सो तप तेरा निष्फल है, क्योंकि तुमारे  
 शास्त्रोमें लिखा है, जो “अपुत्रस्य गतिर्नास्ति” अर्थात् पुत्र रहितकी गति  
 नहीं यह तुमने शास्त्रमें नहीं सुना ? तो जिसकी पुत्रगति न हुई तिस्से

केका दोनोंका शिर काट माला, जब यह वृत्तांत अनंतवीर्य राजाने सुना, तब क्रोधमें नर कर और फौज ले कर जमदग्नि का आश्रम जाल फूक तोड़ फोक गेरा और सर्व तापसोंको त्रास मान करा, तब तापसोंने दौ डते दूयां जो रौला करा तिसको परशुरामने सुना और सारा वृत्तांत सुनके परशु लेके राजाकी सेना कपर दोड़ा, परशुरामने परशुसे राजा और राजाकी सेना सुनडोंको काटकी तरे फाड़के गेर दीया, आप पीछे आश्रममें चला गया, उधर प्रधान राजपुरुषोंने अनंतवीर्यके बेटे रुतवीर्यको राजसिंहासन कपर बैठाया, परंतु वो उमरमें बड़ा था, एकदिन अपनी माताके मुखसे अपने पिताके मरणका वृत्तांत सुनके सर्पके मसे दूयेकी तरें आ कर जमदग्नि को मार दीया, तब परशुराम अपना पिताका वध देखके क्रोधमें जाज्वल मान हो कर हस्तिनापुरमें आके रुतवीर्यको मारके आप राजसिंहासन कपर बैठ गया, क्योंकि राज्य जो है, सो पराक्रमके आधीन है, तब रुतवीर्यकी तारा नामा गर्जवती राणी परशुरामके जयसे दौडकर किसी जगलमें तापसोंके आश्रममें गई, तब तिन तापसोंने क्या करके तिस राणीको अपने मछके नौदरेमें निधानकी तरें ढिपाके ररका, तहां तिस राणीके चौदह स्वप्न सूचित पुत्र जन्मा तिसका नाम तिसकी माताने सूचूम ररका, कृत्रिय जो जहां मिलता है, तहांही परशुरामका कुदाहा जाज्वलमान होजाता है, तब परशुराम परशुसे कृत्रियोंका शिर काट देता है, अन्यदा परशुराम जिहां ढिपी दूई राणी पुत्रसे रहती थी तिस आश्रममें आया तहां परशुरामका परशु जाज्वलमान दूआ, तब परशुरामने तापसोंको पूठा, क्या यहां कोई कृत्रिय है, तब तापसोने कहा हम रुद्रस्थावासमें कृत्रिय थे, तब परशुरामनेजी कृत्रियोंको गोडके सात बार नि कृत्रिय पृथ्वी करी, अर्थात् सात बार चढ़ाई करके अपनी जाणमें कोईनी कृत्रिय बाकी नहीं छोड़ा, जैसे अग्नि, पर्वत कपर घांसको नहीं छोडती है, तैसे परशुरामनेजी जो जो कृत्रिय राजादि प्रसिद्ध थे, तिनोको मारके तिनोकी दाढासे एक थाल जरा, और परशुरामने ठाना निमित्तियेका पूठा कि मेरामरणा किसके हाथसे होगा ? तब निमित्तियेने कहा कि जो तैने दाढासे थाल जरा है, सो थाल जिसके देखनेसे दाढाकी क्षीर बन जायेगी, और इस सिंहासन कपर बैठके जो तिस क्षीरको खा

अग्निकी साक्षी करके रेणुकासे फिर विवाह करा, जब रेणुका शतकुलको प्राप्ति हुई, तब जमदग्नि कहने लगा कि मैं तेरे वास्ते चरु साधता हूँ, वह “होममें मालनेकी वस्तुओंको रुढ़ते है” जिस्से सर्व ब्राह्मणोंमें उत्तम प्रताप वाला तेरेको पुत्र दोगेगा, तब रेणुकाने कहा हस्तिना पुरमें कुरुवर्षी अनन्तवीर्य राजाको मेरी बहिन व्याही है तिसके वास्ते तू ह्वित्रिष चरुनी साध्य, अर्थात् मंत्रोंसे सस्कार करके सिद्ध कर पीछे जमदग्निने ब्राह्मण चरु तो अपनी जाया वास्ते और ह्वित्रिष चरु तिस जायाकी बहिन वास्ते सिद्ध करा तब रेणुकाने मनमें विचार करा कि मैं जैसे अटवीम हरिणीकी तरें रहती हूँ, तो मेरा पुत्रनी वैसेही जगलोमें रहेगा, इस वास्तेमें ह्वित्रिष चरु नक्षत्र कर, जिस्से मेरा पुत्र राजा होकर इस जगल वाससें बूट जावे, ऐसा विचारके ह्वित्रिष चरु खा लीया और ब्राह्मण चरु अपनी बहिनको नक्षत्र कराया, तब तिन दोनोंके दो पुत्र दूये तिसमें रेणुकाके तो राम नामक पुत्र दुये, और रेणुकाकी बहिनके कृतवीर्य पुत्र दूये, क्रमसें दोनों बड़े दूये, राम तो आश्रममें पला, और कृतवीर्य राज महेलोंमें पला, राम तो ह्वत्रीतेज अर्थात् ह्वित्रिष पण्येकी तेजी देखाने लगा अन्यथा एक विद्याधर अतिसार राग वाला तिस आश्रममें आ गया, अतिसारके प्रजा वसें आकाशगामिनी विद्या नूल गया, तब तिस मावे विद्याधरकी रामने औषध पथ्यादि करके जाइकी तरें सेवा करी, पीछे तिस विद्याधरने तुष्ट मान होके रामको परशुविद्या दीनी, तब रामनी सरकड़ेके वनमें जाकर तिस विद्याको सिद्ध करता दूया, तिस विद्याके प्रजावसें राम परशुराम नाम करके जगत्में प्रसिद्ध दूया, एकदा अवसरमें अपना जमदग्नि पतिको पूछके रेणुका बड़ी उत्कण्ठसें अपनी बहिनके मिलने वास्ते हस्तिना पुरमें गई, तहां रेणुकाको अपनी शालि जान कर अनन्तवीर्य राजा इंसी मशकरी करने लाग़ा, और रेणुकाका बहुत सुंदर रूप देख कर कामासुर होके उसके साथ निरंकुश हो कर विषय सेवन करने लगा, तब अनन्तवीर्यके जोगसें रेणुकाके एक पुत्र जन्मा, पीछे जमदग्नि पुत्र सहित रेणुकाको आश्रममें व्याया क्योंकि पुरुष जब स्त्रीयोंका लुब्ध हो जाता है तब बहुत ताइसें कोइनी दोष नहीं देखता है, जब परशुरामने अपनी माताको पुत्र सहित देखा, तब क्रोधमें आकर परशुसें अपनी माताका और तिस लड़



विद्या देवी जो थी, सो सुजूमके पुण्य प्रजावसें परछकों ठोड के जाग गइ तब सुजूमनें शस्त्रके अजावसें थालही उठाके परछरामकों मारा तिस थालका चक्र बन गया, तिस चक्रने परछरामका मस्तक काट गेरा तिस चक्रसेही सुजूम आठवां चक्रवर्त्ति हूआ

इस कथा उपर लोकोंनें जो यह कथा बना रखी, सो ठीक नहीं है, सो कथा कहते है जैसे कि परछराम परछसें कृत्रियोंकों काटता हूआ राम चड्डीके पास पहुँचा और परछसें रामचड्डीकों मारने लगा, तब राम चड्डीने नरमाइसें पग चपी करके उसका तेज दूर लीया, तब परछरामका परछ हाथसे गिर पडा, और फिर न उठा सका यह श्रीरामचड्डी नहीं था, परंतु यह तो सुजूम नामा आठवां चक्रवर्त्ति था, जिसनें परछरामका काम तमाम कीया, इस कथाके बनाने वालोंनें परछरामकी हीनता दूर कनेरकों श्रीरामचड्डीका संबंध लिख दीया है, असली सुजूमचक्रवर्त्ति लिखने वालोंनें यहनी शोचा होगा एक अवतारनें दूसरे अवतारका अस्त खींच लीया, इसमें परछरामकी लघुता न होवेगी, परंतु यह नहीं शोचा होगा कि दोनों अवतार अज्ञानी बन जायेंगे जब परछराम आपही अपने अशकों कोदाहेसें काटने लगा, तब तिसमें और अधिक अज्ञानी कौन बनेगा ? जब सुजूम चक्रवर्त्ति आठवां हूआ, तब जैसे परछरामने सात बार नि कृत्रिया पृथ्वी करी थी, तैसें सुजूमनें पिछले वैरसें इक बीस बार निब्राह्मण पृथ्वी करी अपणी जाएमें कोइनी ब्राह्मण जीता नहीं ठोडा, इसी वास्ते इन राजायोंकों ब्राह्मणोंनें दैत्य, राक्षसके नामसें पुस्तकोंमें लिख दीया है, यह दोनो मरके अधोगतिमें गये ॥ इति परछराम और सुजूमचक्रवर्त्तिका संबंध संपूर्ण ॥

यह सुजूमचक्रवर्त्तिसे पहिला इसी अतरेमें ब्रह्मा पुरुषपुंमरीक वासुदेव तथा आनंद नामा बलदेव और बलि नामा प्रतिवासुदेव हूये, तथा सुजूमके पीछे इस अतरेमें दत्त नामा सातमा वासुदेव तथा नंद नामा बलदेव और प्रल्हाद नामा प्रतिवासुदेव हूये

तिस पीछे मिथुला नगरीमें इक्ष्वाकुवशी कुच राजा हूआ, तिसकी प्रजावती राणी तिनकी पुत्री मल्लिनाथ नामा एगुणवोसमा तीर्थकर हूआ, तिस पीछे राजगृह नगरीमें हरिवंशी सुमित्र राजा हूआ, तिसकी

यगा, तिसके हाथसे तेरा मरणा होवेगा, यह सुन कर परशुरामने वान  
 शाला बनाई, और वानशालाके आगे एक सिंहासन रखाया, तिस ऊपर  
 कृत्रियोकी दाढ़वाला स्याल रखवाया, अब धर तापसोंके आश्रममें प्र  
 तिदिन तापस सन्तुम बालकों को लाठ लाते, खिलाते, अंगणके वृक्षकी  
 तरे वृद्धि करते दूधे रहते है, इस अवसरमें मेघ नामा विद्याधर कोइ निमि  
 त्तियेको पूठने लगा कि मेरी जो पद्मश्री कन्या है, तिसका वर कौन होवेगा?  
 तब तिस निमित्तियेने सन्तुम वर वतलाया, और उसका सर्व वृक्षांतनी सुना  
 दीया, तब मेघ विद्याधरने अपनी बेटी सन्तुमको व्याही, और तिसकाही  
 सेवक बन गया एकदा कूपके मैमकको तर और कही जानमें रहित हुआ  
 होया सन्तुम अपनी माताको पूठने लगा कि हे माता! इतनाही लोक  
 है, कि जिसमें हम रहते है, क्या इस्से अधिकनी है? तब माता कहने  
 लगी हे पुत्र! लोक तो अनंत है, तिसमें मनुके पग जितनी जगामें  
 यह आश्रम है, इस लोकमें बहुत प्रसिद्ध हस्तिना पुर नगर है, तिस न  
 गरीका राजा तेरा पिता कृतवीर्य था, परंतु परशुराम तेरे पिताको मारके  
 हस्तिना पुरका राजा बन गया है, और तिस परशुरामने नि कृत्रिय  
 पृथ्वी कर दई है, तिस परशुरामके जयसे हम यहां आश्रममें ठिपे दूधे  
 बैठे हैं अपनी माताका यह कहना सुनके सन्तुम नौमकी तरें अर्थात् मग  
 लके तारेकी तरें लाज हुआ, और तहांसे निकलके सीधा हस्तिना पुरमें  
 आया, तब लोकोंने पूछा कि तू ऐसा अत्युन्नत सुंदर किसका बेटा है?  
 तब कदा मैं कृत्रियका पुत्र हू तब लोकोंने कदा तू यहां ज्वलती आगमें  
 क्यों आया? तब तिसने कदा मैं परशुरामको मारनेके वास्ते आया हू,  
 तब लोकोंने बालक जानके उसकी बात ठपर कुछ ख्याल न करा अब  
 सन्तुम सिद्धकी तरें उस पूर्वोक्त सिंहासन ठपर जाके बैठा, और तहां से  
 वताके विनियोगसे दाढ़ाकी क्षीर बन गई, तिसको सन्तुम खाने लग गया  
 तब तहां जो रखवाले ब्राह्मण थे, वे सर्व सन्तुमको मारणोंको ठठे, तब  
 मेघनाद विद्याधरने सब ब्राह्मणोंको मार दीया तब कपता हुआ और दो  
 ठोंको चाबता हुआ, क्रोधमें जरा हुआ, ऐसा परशुराम कोदादा (परशु)  
 लेके सन्तुमको मारने आया परशुरामने सन्तुमके मारणोंको परशु चलाया  
 वो परशु सन्तुमको पट्टेचर्नेसे पहिलाही आगके अगारेकी तरें बुझ गया,

विद्या देवी जो थी, सो सुनूमके पुण्य प्रजावसें परछकों ठोड के जाग गइ तब सुनूमनें शस्त्रके अनावसें थालही ठगके परछरामकों मारा तिस थालका चक्र बन गया, तिस चक्रने परछरामका मस्तक काट गेरा तिस चक्रसेही सुनूम आठवां चक्रवर्त्ति हूआ

इस कथा उपर लोकोंने जो यह कथा बना रक्की, सो ठीक नहीं है, सो कथा कहते हैं जैसे कि परछराम परछसें कृत्रियोंकों काटता हूआ राम चड्डीके पास पहुँचा और परछसें रामचड्डीको मारने लगा, तब राम चड्डीने नरमाइसें पग चपी करके उसका तेज दूर लीया, तब परछुरा मका परछु हाथसें गिर पड़ा, और फिर न उठा सका यह श्रीरामचड्डी नहीं था, परंतु यह तो सुनूम नामा आठवां चक्रवर्त्ति था, जिसने परछुरा मका काम तमाम कीया, इस कथाके बनाने वालोंने परछुरामकी हीनता दूर कनेरको श्रीरामचड्डीका संबंध लिख दीया है, असली सुनूमचक्रवर्त्ति लिखने वालोंने यहनी शोचा होगा एक अवतारनें दूसरे अवतारका अस खींच लीया, इसमें परछुरामकी लघुता न होवेगी, परंतु यह नहीं शोचा होगा कि दोनो अवतार अहानी बन जायेंगे जब परछुराम आपही अपने अशकों कोहाड़ेसें काटने लगा, तब तिसमें और अधिक अज्ञानी कौन बनेगा ? जब सुनूम चक्रवर्त्ति आठवां हूआ, तब जैसे परछुरा मने सात बार नि कृत्रिया पृथ्वी करी थी, तैसें सुनूमनें पिठले बैरसें इक वीश बार निर्बाहण पृथ्वी करी अपनी जाणमें कोइनी ब्राह्मण जीता नहीं ठोडा, इसी वास्ते इन राजायोंकों ब्राह्मणोंने वैद्य, राक्षसके नामसें पुस्तकोंमें लिख दीया है, यह दोनो मरके अधोगतिमें गये ॥ इति परछुराम और सुनूमचक्रवर्त्तिका संवध संपूर्ण ॥

यह सुनूमचक्रवर्त्तिसें पहिला इसी अतरेमें ब्रह्मा पुरुषपुंरुरीक वासुदेव तथा आनंद नामा बलदेव और बलि नामा प्रतिवासुदेव हूये, तथा सुनूमके पीठें इस अतरेमें वत्त नामा सातमा वासुदेव तथा नंद नामा बलदेव और प्रह्लाद नामा प्रतिवासुदेव हूये

तिस पीठें मिथुला नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी कुन राजा हूआ, तिसकी प्रजावती राणी तिनकी पुत्री मल्लिनाथ नामा एगुणवोसमा तीर्थकर हूआ, तिस पीठें राजगृह नगरीमें हरिवंशी सुमित्र राजा हूआ, तिसकी

यगा, तिसके हाथसे तेरा मरणा होवेगा, यह सुन कर परशुरामने सब शाला बनाइ, और वानशालाके आगे एक सिंहासन रचाया, तिस ऊपर ऋत्रियोंकी दाढ़ावाला स्थाल रखवाया, अत्र धर तापसोंके आश्रममें प्रतिदिन तापस सज्जम बालकों काठ काटते, खिलाते, अंगणके वृक्षों तरे वृद्ध करते दूधे रहते है, इस अवसरमें मेघ नामा विद्याधर कोई निमित्तियेको पूठने लगा कि मेरी जो पद्मश्रीकन्या है, तिसका वर कौन होवेगा? तब तिस निमित्तियेने सज्जम वर बतलाया, और उसका सर्व वृत्तांतनी सुना दीया, तब मेघ विद्याधरने अपनी बेटी सज्जमकों व्याही, और तिसकाही सेवक बन गया एकदा कूपके मैमककी तर और कही जानेमें रहित हुआ होया सज्जम अपनी माताको पूठने लगा कि हे माता! इतनाही लोक है, कि जिसमें हम रहते है, क्या इस्से अधिकनी है? तब माता कहने लगी हे पुत्र! लोक तो अनंत है, तिसमें महिके पग जितनी जगामें यह आश्रम है, इस लोकमें बहुत प्रसिद्ध दस्तिना पुर नगर है, तिस न गरीका राजा तेरा पिता कृतवीर्य था, परंतु परशुराम तेरे पिताको मारके दस्तिना पुरका राजा बन गया है, और तिस परशुरामने निऋत्रिय पृथ्वी कर दइ है, तिस परशुरामके नयसे हम यहां आश्रममें ठिपे दूधे बैठे हैं अपनी माताका यह कहना सुनके सज्जम जौमकी तरें अर्थात् मग लके तारेकी तरें लाल हुआ, और तहांसे निकलके सीधा दस्तिना पुरमें आया, तब लोकोंने पूछा कि तू ऐसा अत्युत्त सुवर किसका बेटा है? तब कहा मैं ऋत्रियका पुत्र हू तब लोकोंने कहा तू यहां ज्वलती आगमें क्यों आया? तब तिसने कहा मैं परशुरामको मारनेके वास्ते आया हूं, तब लोकोंने बालक जानके उसकी बात उपर कुछ ख्याल न करा अब सज्जम सिंहाकी तरें उस पूर्वोक्त सिंहासन उपर जाके बैठा, और तहां वे वताके विनियोगसे दाढ़ाकी श्मीर बन गइ, तिसको सज्जम खाने लग गया तब तहां जो रखवाले ब्राह्मण थे, वे सर्व सज्जमको मारणों छे, तब मेघनाद विद्याधरने सब ब्राह्मणों मार दीया तब कपता हुआ और दो ठोंकों चाबता हुआ, क्रोधमें जरा हुआ, ऐसा परशुराम कोड़ाडा (परशु) लेके सज्जमको मारने आया परशुरामने सज्जमके मारणों परशु चलाया वो परशु सज्जम तक पहुँचनेसे पहिलाही आगके अंगारेकी तरें बुझ गया,

नां चाहियें, क्योंकि राजासें उपरांत ऐसे अनाथ लिंगियोंकी रक्षा करने वाला कौन है ? तथा मेरा तुम कुछ करने समर्थ नहीं और बड़े अग्नि मानी हो, तथा हमारे धर्मके निन्दक हो इस वास्ते मेरे राजसें बाहिर हो जाऊ, जो रहेगा, उसको मैं मार मालूंगा इसमें मुझे पापनी नहीं होगा, तब गुरुने आ कर सीठे वचनसें कहा कि हमारा यह कल्प नहीं जो गृहस्थके कार्यमें जाना, परंतु हम अग्निमानसेही नहीं आये ऐसा मत समजना क्योंकि साधु समजावसें अपने धर्मरुत्यमें लगे रहते हैं, तब नमुचिबल अति शांतिवृत्तिवाले मुनियोंको कठोर हो कर कहने लगा कि सात दिनके अंदर मेरे राजसें बाहिर हो जाऊ जो रहेगा, सो मारा जायगा, यह सुनके सब साधु अपने तपोवनमें आये, और शोचने लगे कि अब क्या उपाय करीयें ? तब एक साधु कहने लगा कि महापद्म चक्रवर्तिका बड़ा नाइ विष्णुमुनि लब्धिपात्र है, अर्थात् बड़ी शक्तिवाला मेरु पर्वत ऊपर है, तिसके कहनेसें यह नमुचिबल प्रशांत हो जावेगा, इस वास्ते कोइ चारण साधु उसको यहां बोला व्यावे तो ठीक है तब एक साधु बोला कि मैरी उहां मेरु पर्वत पर जानेकी तो शक्ति है, परंतु पीठें आवेनेकी शक्ति नहीं है तब गुरु कहने लगे कि तुमको पीठा विष्णु मुनिही यहां ले आवेंगे, तुम जाऊ तब वो साधु लब्धिसे एक क्षणमें तहां गया, और सर्व वृत्तांत सुनाया, तब विष्णु मुनि उस साधुकोनी साथ ले कर तत्काल गुरुके पास आके बटना करी, पीठें गुरुकी आज्ञासें एकिलाही राज सनामें आया उहां एक नमुचिबलके बिना और सर्व सनाके लोकोनें उसके बटना करी तब विष्णु मुनिने धर्मोपदेश देकर कहा कि नि सगी साधुओंसे वैर करणा, यह महा नरकका कारण है, क्योंकि साधु किसीका कुछ बिगाडते नहीं, और जगत् तो और बड़े पुरुषोंको नमस्कार करते हैं, किसी शास्त्रमें मुनि निंदे नहीं है, तो फेर यह आश्चर्य है, कि - तुष्ट, कृष्णिक राजके पानेसे अधे अधम पुरुष अपणोंको साधुओंसें नमस्कार कराया चाहते हैं, और नमुचिबलको कदा तू इस बुरे कामको जानेदे जिस्सें साधु सब सुखसे रहे, और तू क्युं मत्सरमें मगन होके अपना विगाडा चाहता है ? साधु चौमासेमें विहार करते नहीं क्योंकि चौमासेमें जीवोंकी बहुत उत्पत्ति हो जाती है और सर्व जगे तेराही राज्य

पद्मावती राणी तिनका पुत्र मुनिसुव्रतनामा वीगमा तीर्थकर हुआ, १  
नोक समयमें महापद्म नामा नवमा चक्रवर्ती हुआ, तिसका संबंध त्रेख  
शलाका पुरुष चरित्रसे जान लेना परतु तिसके नाइ विष्णु कुमारका जो  
डासा संबंध यहां लिखते हैं

हस्तिना पुर नगरमें पद्मोत्तर नामा राजा तिसकी ज्वालादेवी राणी  
तिनका बड़ा पुत्र विष्णुकुमार, और ठोठा नाइ महापद्म हुआ, तिस अब  
सरमें थवती नगरीमें श्रीधर्मनामा राजेके मन्त्रि नमुचि अपर नाम बल  
यह नामके मिथ्यादृष्टि ब्राह्मणने श्रीमुनिसुव्रत तीर्थकरका शिष्य श्री  
सुव्रताचार्यके साथ अपनी मतका विवाद करा, वादमें हार गया तब रा  
त्रिको तजवार लेके आचार्यको मारने चला, रस्तेमें पग थनये यह स  
रूप राजानें सुनके अपने राज्यसे बाहिर निकाल दीया तब नमुचि बल  
तहासे चलके हस्तिना पुरमें युवराज महापद्मकी सेवा करने लगा किसी  
काममें तुष्ट मान होके महापद्मने तिसको यथेष्टा वर दीया पीछें पद्मोत्तर  
राजा और विष्णु कुमार दोनोंने सुव्रत गुरुके पास दीक्षा ले के पद्मोत्तर मोह  
गया, और विष्णु कुमार तपके प्रजावसे महालब्धिमान हुआ इस अवस  
रमें सुव्रताचार्य फेर हस्तिना पुरमें आये, तब नमुचिवलने विचारा कि यह  
वैर लेनेका अवसर है, तब महापद्म चक्रवर्तीसे विनति करी कि - मैंने जैसे  
वेदोंमें कहा है, तैसे एक महायज्ञ करना है इस वास्ते मैं पूर्वोक्त वर मांगना  
चाहाता हूँ, तब महापद्मने कहा मांग तब नमुचिने कहा मुझे कितनेक  
दिन तक आपना सर्व राज दे देवो, यह सुनकर महापद्मने उसके कहे  
दिन तक सर्व राज उसे दे कर आप अपने अतेघरोमें चला गया, तब  
नमुचिवलने नगरसे निकलके यह वास्ते यह पाडा बनाया, उसमें दी  
क्षा ले के आसन उपर बैठा तब जैनमतके साधु ढोडके दूसरे सर्व पार्ष  
नो जिह्नु और गृहस्थ जेटना ले के आये जेट दे के सर्वोंने नमस्कार  
करा, तब नमुचिवलने पूछा कि नहीं आया होये, औसा तो कोइ रहा  
नहीं ? तब लोकोने कहा कि जैनमती सुव्रताचार्य वर्जके सर्व दर्शनी आ  
गये हैं, तब नमुचिवलने यह ढिड़ प्रगट करके और क्रोधमें जरके सिपा  
ही बोलानेको जेजे, और कहजा जेजा कि राजा चाहो कैसाही हो, तो  
जी सर्वको मानने योग्य है, उसमेंनो साधुओको तो विशेष करके मान

नां चाहियें, क्योंकि राजासें उपरांत ऐसे अनाथ जिगीयोंकी रक्षा करने वाला कौन है ? तथा मेरा तुम कुछ करने समर्थ नहीं और बड़े अति मानी हो, तथा हमारे धर्मके निन्दक हो इस वास्ते मेरे राजसें बाहिर हो जाऊ, जो रहेगा, उसको मैं मार मालूंगा इसमें मुझे पापनी नहीं होगा, तब गुरुने आ कर सीते वचनसें कहा कि हमारा यह कल्प नहीं जो गृहस्थके कार्यमें जाना, परंतु हम अजिमानसेंही नहीं आये असा मत समझना क्योंकि साधु समझावसें अपने धर्मरुत्यमें लगे रहते हैं, तब नमुचिबल अति शातिवृत्तिवाले मुनियोंको कठोर हो कर कहने लगा कि सात दिनके अंदर मेरे राजसें बाहिर हो जाऊ जो रहेगा, तो मारा जायगा, यह सुनके सब साधु अपने तपोवनमें आये, और शोचने लगे कि अब क्या उपाय करीयें ? तब एक साधु कहने लगा कि महापद्म चक्रवर्त्तिका बड़ा जाइ विष्णुमुनि लब्धिपात्र है, अर्थात् बड़ी शक्तिवाला मेरु पर्वत कपर है, तिसके कहनेसे यह नमुचिबल प्रशांत हो जावेगा, इस वास्ते कोइ चारण साधु उसको यहां बोला ल्यावे तो ठीक है तब एक साधु बोला कि मैरी वहां मेरु पर्वत पर जानेकी तो शक्ति है, परंतु पीछे आवेनेकी शक्ति नहीं है तब गुरु कहने लगे कि तुमको पीछा विष्णु मुनिही यहां ले आवेंगे, तुम जाऊ तब वो साधु लब्धिसें एक क्षणमें तहां गया, और सर्व वृत्तांत सुनाया, तब विष्णु मुनि उस साधुकोनी साथ ले कर तत्काल गुरुके पास आके बदना करी, पीछे गुरुकी आज्ञासें एकिलाही राज सनामें आया वहां एक नमुचिबलके विना और सर्व सनाके लोकोनें उसके बदना करी तब विष्णु मुनिने धर्मोपदेश देकर कहाकि नि सगी साधुओंसें वैर करणा, यह महा नरकका कारण है, क्योंकि साधु किसीका कुछ बिगाडते नहीं, और जगत तो और बड़े पुरुषोंको नमस्कार करते हैं, किसी शास्त्रमें मुनि निंदे नहीं है, तो फेर यह आश्चर्य है, कि - तुष्ट, एक एक राजके पानेसें अबे अधम पुरुष अपणोंको साधुओंसें नमस्कार कराया चाहते हैं, और नमुचिबलको कहा तू इस बुरे कामको जानेदे जिस्से साधु सब सुखसें रहे, और तू क्षु भस्तरमें भगन होके अपना आप बिगाडा चाहता है ? साधु चौमासेमें विहार करते नहीं क्योंकि चौ मासेमें जीवोंकी बहुत उत्पत्ति हो जाती है और सर्व जगें तेराही राज्य

है, तो सर्व साधु सात दिनमें कदा चले जाय? तब नमुचि बल कुम्हारजी तरे दोकर बोला कि बहुत कहनेसे क्या है? पांच दिनसे उपरांत जो कहे तुमारा साधु मेरे राज्यमें रहेगा, तो मैं उसको चोरकी तरे बंध करूँगा, और तू हमारे मानने योग्य है, वसी वास्ते तू जाकर साधुओंको कहे जो कि जीवनां चाहते हो तो नमुचिके राज्यसे बाहिर चले जाठ क्योंकि राज्य ब्राह्मणका है, और तेरे मान्यके रहने वास्ते तीन कवम अर्थात् तीन मिंग जगा वेता हूँ, तिससे बाहिर किसी साधुको देखूँगा तिसका शिरछेव करुंगा, तब विष्णुमुनिने विचारा कि यह साम अर्थात् मीठे वचनोंके बोम्ब नहीं यह तो बड़ा पापी साधुओंका घातक है, इसकी जड़ही उखाड़नी चाहिये तब विष्णुमुनिने कोपमें आ कर वैक्रिय लब्धिसे लाख योजनकी वेह बनाइ, एक मिंगसेतो जरतकेत्रादि मापा और दूसरी मिंग पूर्वापर त मुइ उपर धरी और तीसरी मिंग नमुचिबलके शिर ऊपर रखके सिंहास नसे देव गेरके धरतीमें घसोड दीया नमुचि मरके नरकमें पहुँच गया और विष्णुमुनिकों देवताओंने कानोमे मधुर गीत सुनाकर श्रांत करा, तब शरीरको सकोचके गुरोंके पास जाकर थालोचना करी, पापका प्रा यश्चित्त लेकर विहार कर गया, जप, तप, कर समय पालके मोहगया

इस कथासे ऐसा मालूम होता है कि ब्राह्मणोंने पुराणोंमें जो लिखा है, कि विष्णु जगवान्ने वामन रूप करके यह करते बलिराजाको उला, सो यही विष्णुमुनि अरु नमुचिकी कथाको विगाडके अपने मतके अनुसार औरकी और कथा बना लीनी है, क्योंकि श्रीजगवान्को क्या गरज थी, कि जो धर्मी बलिराजा यह करने वालेके साथ उल करता? यह तो नि केवल बुद्धि हीनोका काम है, जो अपनी बेटीयोंसे तथा परस्त्रीयोंसे विषय सेवन करा कहना, तथा जगवान्ने फूठ बोला, औरोंसे बोलाया, चोरी करी, औरोंसे कुशील जगवान्ने सेवन करा, उलसे मारा, कपट करा, इत्यादि कामतो नीचजनोंके करनेके हैं, श्री वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर यह काम कजीनी नहीं करता तो और करने वालेको परमेश्वर नूलकेजी न मानना चाहिये ॥ इति विष्णुमुनि तथा नमुचिबलका सबध समाप्त ॥

वीसमें और इक्कीसमें तीर्थकरके अंतरमें श्री अयोध्या नगरीके दक्षर थराजाकी कौशल्या राणीका पद्म (रामचंद्र) नामा पुत्र हुआ, सो आ



तमां बलदेव और दशरथराजाकी सुमित्रा राणीका पुत्र नारायण अ नाम लक्ष्मण सो आवमां वासुदेव दूथा जिनोका प्रतिशत्रु रावण तिवसुदेव लंकाका राजा दूथा सो जगतमें प्रसिद्ध है इन तीनोंका थार्थ स्वरूप पद्मचरित्रसें जान लेना, परंतु लौकिक रामायणमें जो रावण दश शिर लिखे है, सो ठीक नहीं है, क्योंकि मनुष्यके स्वभाविकही दश शिर कदापि नहीं हो शक्ते हैं, पद्मचरित प्रथमानुयोग शास्त्रमें लिखा है कि वणके बड़े बड़ेरोंकी परंपरायसें एक बड़ा नव माणिकका द्वार चला आया, सो रावणने बालावस्थासें अपने गलेमें पहिर लीये थे और वे नौ माणिक बद्धत बड़े थे, सो चार माणिक एक पासें स्कंधके ऊपर द्वार जड़े दूये थे, और पांच माणिक दूसरे पासें जड़े थे, दोनों स्कंधो व नव माणिकमें नवमुख दीखते थे, और एक रावणका असली मुख इस वास्ते दशमुख वाला रावण कहा जाता है, तथा रावणके सम सेही हिमालयके पहाडमें बडीनाथका तीर्थ उत्पन्न दूथा है, तिसके उत्पत्ति जैनमतके शास्त्रोंसे ऐसे जानी जाती है कि - यह असली पा नाथकी मूर्तिथी, तिसकाही नाम बडीनाथ रखा गया है इसका पूरा रूप गद्यबद पार्श्वपुरानसें जान लेना

तिस पीछे मिथुलानगरीमें इक्ष्वाकुवशी विजयसेनराजाकी विप्रा राणी तिनका पुत्र श्रीनमिनाथ नामा इक्ष्वीतमा तीर्थकर दूथा तिनोके वारें हरिपेणनामा दशमां चक्रवर्त्ति दूथा है, तथा यह इक्ष्वीतमें और बावीसमें तीर्थकरके अंतरेमें इग्यारहमां जयनामा चक्रवर्त्ती दूथा

तिस पीछे सौरीपुर नगरमें हरिवशी समुद्रविजय राजा तिसकी शिवा देव राणी तिनका पुत्र श्रीअरिष्ट नेमिनामा बावीसमा तीर्थकर दूथा तिनोके वार तिनोके चाचेके बेटे नवमे कृष्णवासुदेव और राम बलदेव ( बलव्रदबल देव) इनका प्रतिशत्रु जरासिधू प्रतिवासुदेव दूथा, तिसमें कृष्ण अरु बल नष्ट तो जगतमें बहुत प्रसिद्ध हैं क्योंकि लोक श्रीकृष्ण वासुदेवको साक्षात् ईश्वर तथा ईश्वरका अवतार जगत्काकर्त्ता मानते हैं, यह बात कृष्ण वासुदेवके जीते दूयें नहीं दूइ, किंतु उनके मरे पीछे लोक कृष्ण वासुदेवको ईश्वरावतार मानने लगे हैं, तिसका हेतु त्रेसठ सलाका पुरुष चरित्रमें ऐसे लिखा है कि - जब कृष्ण वासुदेवनें कुसवी वनमें शरीर छोडा तब काल क

है, तो सर्व साधु सात दिनमें कहां चले जाय ? तब नमुचि बल कुकाष्टकी तरें होकर बोला कि बहुत कहनेसे क्या है ? पांच दिनसे उपरांत जो कोई तुमारा साधु मेरे राज्यमें रहेगा, तो मैं उसको चोरकी तरे बद्ध करुंगा, और तू हमारे मानने योग्य है, उसी वास्ते तू जाकर साधुओंको कहदे जो कि जीवनां चाहते हो तो नमुचिके राज्यसे बाहिर चले जाउ क्योंकि राज्य ब्राह्मणका है, और तेरे मान्यके रहने वास्ते तीन कदम अर्थात् तीन मिंग जगा देता हूँ, तिससे बाहिर किसी साधुको देखूंगा तिसका शिरछेद करुंगा, तब विष्णुमुनिने विचारा कि यह साम अर्थात् मीठे वचनोंके योग्य नहीं यह तो बड़ा पापी साधुओंका घातक है, इसकी जड़ही उखाडनी चाहिये तब विष्णुमुनिने कोपमें आ कर वैक्रिय लब्धिसे लाख योजनकी देह बनाई, एक मिंगसेतो जरतकेत्रादि मापा और दूसरी मिंग पूर्वापर स मुद्द उपर धरी और तीसरी मिंग नमुचिबलके शिर कपर रखके सिंहास नसें देव गेरके धरतीमें घसोड दीया नमुचि मरके नरकमें पडुच गया और विष्णुमुनिकों देवताओंनें कानोमें मधुर गीत सुनाकर शांत करा, तब शरीरको सकोचके गुरोंके पास जाकर आलोचना करी, पापका प्रा यश्चित्त लेकर विहार कर गया, जप, तप, कर सयम पालके मोहगया

इस कथासें ऐसा माजूम होता है कि ब्राह्मणोंने पुराणोंमें जो लिखा है, कि विष्णु जगवान्नें वामन रूप करके यह्न करते बलिराजाको बला, सो यही विष्णुमुनि अरु नमुचिकी कथाको बिगाडके अपने मतके अनु सार औरकी और कथा बना लीनी है, क्योंकि श्रीजगवान्को क्या गरज थी, कि जो धर्मी बलिराजा यह्न करने वालेके साथ बल करता ? यह तो नि केवल बुद्धि दीनोका काम है, जो अपनी बेटियोंसें तथा परस्त्रीयोंसें विषय सेवन करा कहनां, तथा जगवान्ने पूछ बोला, औरोंसे बोलाया, चोरी करी, औरोंसें कुशील जगवान्ने सेवन करा, बलसें मारा, कपट करा, इत्यादि कामतो नीचजनोंके करनेके हैं, श्री वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर यह्न काम कजीजी नहीं करता तो और करने वालेको परमेश्वर जूलकेनी न माननां चाहिये ॥ इति विष्णुमुनि तथा नमुचिबलका संबध समाप्त ॥

वीसमें और इक्कीसमें तीर्थकरके अंतरमें श्री अयोध्या नगरीके दशर थराजाकी कौशल्या राणीका पद्म ( रामचन्द ) नामा पुत्र हुआ, सो आ

वमा बलदेव और दशरथराजाकी सुमित्रा राणीका पुत्र नारायण अपर नाम लक्ष्मण सो आठमां वासुदेव हुआ जिनोंका प्रतिशत्रु रावण प्र तिवसुदेव लंकाका राजा हुआ सो जगतमें प्रसिद्ध है इन तीनोंका य थार्थ स्वरूप पद्मचरित्रसे जान लेना, परंतु लौकिक रामायणमें जो रावणके दश शिर लिखे हैं, सो ठीक नहीं हैं, क्योंकि मनुष्यके स्वाभाविकही दश शिर कदापि नहीं हो सके हैं, पद्मचरित प्रथमानुयोग शास्त्रमें लिखा है कि रा वणके बड़े बड़ेरोंकी परंपरायसे एक बड़ा नव माणिकका हार चला आता था, सो रावणने बालावस्थासे अपने गलेमें पहिर लीये थे और वे नौही माणक बहुत बड़े थे, सो चार माणक एक पासें स्कंधके ऊपर हारमें जड़े दूये थे, और पांच माणक दूसरे पासें जड़े थे, दोनों स्कंधो ऊपर नव माणकमें नवमुख दीखते थे, और एक रावणका असली मुख था इस वास्ते दशमुख वाला रावण कहा जाता है, तथा रावणके समय सेंही हिमालयके पहाड़में बड़ीनाथका तीर्थ उत्पन्न हुआ है, तिसकी उत्पत्ति जैनमतके शास्त्रोंसे ऐसे जानी जाती है कि - यह असली पार्श्व नाथकी मूर्तिथी, तिसकाही नाम बड़ीनाथ रखा गया है इसका पूरा स्वरूप गद्यबद्ध पार्श्वपुरानसे जान लेना

तिस पीछें मिथुलानगरीमें इक्ष्वाकुवंशी विजयसेनराजाकी विप्रा राणी तिनका पुत्र श्रीनमिनाथ नामा इक्ष्वासीमा तीर्थंकर हुआ तिनोके वारें हरिप्रेमनामा दशमां चक्रवर्त्ति हुआ है, तथा यह इक्ष्वासीमें और बावीसमें तीर्थंकरके अंतरेमें अग्यारहमां जयनामा चक्रवर्त्ति हुआ

तिस पीछें सौरीपुर नगरमें हरिवंशी समुद्रविजय राजा तिसकी शिवा देवी राणी तिनका पुत्र श्रीअरिष्ट नेमिनामा बावीसमा तीर्थंकर हुआ तिनोके वारें तिनोके चाचेके बेटे नवमे कृष्णवासुदेव और राम बलदेव ( बलभद्रबल देव) इनका प्रतिशत्रु जरासिधु प्रतिवासुदेव हुआ, तिसमें कृष्ण अरु बल नष्ट तो जगतमें बहुत प्रसिद्ध हैं क्योंकि लोक श्रीकृष्ण वासुदेवकों साक्षात् ईश्वर तथा ईश्वरका अवतार जगत्काकर्ता मानते हैं, यह बात कृष्ण वा सुदेवके जीते दूयें नहीं दूइ, किंतु उनके मरे पीछें लोक कृष्ण वासुदेवकों ईश्वरावतार मानने लगे हैं, तिसका हेतु त्रेसठ सलाका पुरुष चरित्रमें ऐसे लिखा है कि - जब कृष्ण वासुदेवनें कुसवी वनमें शरीर छोड़ा तब काल क

रकें बालुप्रजा पृथ्वी (पातालमें) गये और बलनइजी एक सौ वर्षे जैनदीक्षा पालके पाचमें ब्रह्मदेवलोकमें गये वहा अवधिज्ञान से अपने जाइ श्रीकृष्ण को पातालमें तीसरी पृथ्वीमें देखा, तब जाइके स्नेहसे वैक्रिय शरीर बनाकर श्रीकृष्णके पास पहुँचा और श्रीकृष्णसे आलिंगन करके कहा कि मैं बलन इनामा तेरे पिछले जन्मका जाई हूँ, मैं काल करके पाचमें ब्रह्मदेवलोकमें उत्पन्न हुआ हूँ, और तेरे स्नेहसे यहा तेरे पास मिलनेको आया हूँ तो मैं तेरे सुख वास्ते क्या काम करूँ ? इतना कह कर जब बलनइजीने आपने हाथों ऊपर कृष्णजीको लीया, तब कृष्णका शरीर पारेकी तरें हाथसे करके जूमि ऊपर गिर पडा, और मिलकर फेर सपूर्ण शरीर पूर्ववत् हो गया इसीतरें प्रथम आलिंगन करनेसे फेर विरतात कहनेसे और हाथों ऊपर उठानेसे कृष्णनेजी जान लीयाकि यह मेरे पूर्वजन्मका अति वध्वन बलनइ जाई है तब कृष्णजीने सन्नमसे उसके नमस्कार करा तब बलनइजीने कहा दे प्राता ! जो श्रीनेमिनाथने कहायाकि यह विषय सुख मदाइ खदाई है तो प्रत्यक्ष तुमको प्राप्ति हुआ और तुजकर्मनियंत्रितको मैं स्वर्गमेंनी नही लेजा सका हूँ परंतु तेरे स्नेहसे तेरे पासमें रहा चाहता हूँ तब कृष्णने कहा दे प्राता ! तेरे रहनेसेनी तो मैंने करे दूये कर्मका फल अवश्यमेव नोगनाही है परंतु मुजको इस दुखसे वो दुख बहुत अधिक है जो मैं दारिका और सकल परिवारके वध्व होजानेसे एकला कुसंबी वनमें जरा कुमारके तरिसे मरा और मेरे शत्रुओंको सुख तथा मेरे मित्रोंको दुख हुआ जगतमें सर्व यइवशी बदनाम दूये इस वास्ते दे प्राता ! तू जरतखन्म जा कर चक्र, शारंग, शख, गदाका धरने वाला और पीत ( पीले ) वस्त्र वाला, तथा गुरुद ध्वजा वाला, ऐसा मेरा रूप बना कर विमानमें बैठ कर लोकोंको दिखजा तथा नीलवस्त्र और तालध्वज अरु हल, मूशज, शस्त्रका धरनेवाला ऐसा तू विमानमें बैठके अपना रूप सर्वजगे दिखलाकर लोकोंको कहोकि राम कृष्ण दोनो हम अविनाशी पुरुष है, और स्वेच्छा विद्वारी हैं, जब लोकोंको यह सत्य प्रतीत हो जावेगा तब हमारा सर्व अपयश बूर हो जावेगा यह श्रीकृष्णजीका कहना सर्व श्रीबलनइजीने स्वीकार कर लीया, और जरतखन्ममें आकर कृष्ण व लनइ दोनोका रूप करके सर्व जगे विमानारूढ दिख लाया और ऐसे क

हने लागा कि जो लोको । तुम कृष्ण बलनङ्ग अर्थात् हमारे दोनोकी सुंदर प्रतिमा बनाकर ईश्वरकी बुद्धिसे बड़े आदरसे पूजा क्योंकि हमही जगतके रचनेवाले और स्थिति संहारके कर्त्ता हैं और हम अपनी इच्छासे स्वर्ग ( वैकुण्ठसे ) यहा चले आते हैं, और पीछे स्वर्गमें अर्थात् वैकुण्ठमें अपनी इच्छासे चले जाता हैं और द्वारका हमनेही रची थी तथा हमनेही कसका संहार करा है, क्यों कि जब हम, वैकुण्ठमें जानेकी इच्छा करते हैं, तब सर्व अपना वश द्वारिका सहित वृद्ध करके चले जाते हैं, हमारे उपरात और कोई अन्य कर्त्ता, कर्त्ता नहीं है ऐसा बलनङ्गजीका कहना सुननेसे सर्व ग्राम ( नगर ) के लोकोंने कृष्ण बलनङ्गजीकी प्रतिमा सर्व जगे बना कर पूजा तब प्रतिमा पूजनेवालोंको बहुत सुख धनादिसे बलनङ्गने आनंदित करा, इस वास्ते बहुत लोक हरिजन्तु हो गये, जबसे जन्तु दूये तबसे पुस्तकमें कृष्णजीको पूर्णब्रह्म परमात्मा ईश्वरादि नामोंसे लिखा, क्याजाने जबसे बलनङ्गजीने कृष्णकी पूजा कराई, तबसेही लोकोंने कृष्णकोही ईश्वरावतार माना हो ? और उस समयको पांच हजार वर्ष दूये हों, जिसे लौकीकमें कृष्ण दूयेको पांच हजार वर्ष कहते हैं

वास्तमें अरु तेस्तमें तीर्थकरके अतरेमें बारमा ब्रह्मदत्तनामा चक्रवर्ती दूआ, तिस पीछे वाणारसी नगरीमें इन्द्राकुवशी अश्वसेन राजा दूआ तिसकी वामादेवी राणी तिनका पुत्र श्रीपार्श्वनाथ नामा तेस्तमा तीर्थकर दूआ तिस पीछे कृत्रियकुम नामा नगरमें इन्द्राकुवशी दूसरा नाम सूर्यवशी सिद्धार्थ नामा राजा दूआ तिसकी त्रिसला नामा राणी तिनका पुत्र श्रीवर्द्धमान महावीरनामा चौबीसमा चरम ठेला तीर्थकर दूआ, आज काल जो जैनमत जरत खममें प्रचलित है, सो इसही श्रीमहावीरका शासन अर्थात् उनहीके कहे उपदेशसे चलता है, और जो जैनमतके शास्त्र हैं, वे सर्व इसही श्रीमहावीर जगवत के उपदेशानुसार रचे गये हैं यह श्रीमहावीर जगवतका संपूर्ण वृत्तांत देखना होवे, तदा आवश्यक सूत्रवृत्ति कल्पसूत्र वृत्ति तथा श्रीमहावीर चरितादि ग्रंथोंसे जान लेना

इति श्रीतपगङ्गीय मुनिश्रीगणि मणिविजय तच्चिष्य मुनिबुद्धिविजय तच्चिष्य मुनि आत्माराम आनंदविजय विरचिते जैनतत्त्वादर्थे श्रीरूपजादि महावीर पर्यंत पूर्ववृत्तांत निरूपण नाम एकादश परिच्छेद संपूर्ण ॥ १ ॥

अथ द्वादशः परिच्छेद प्रारज्ज. ॥

यह परिच्छेदमें श्रीमहावीर जगवानसे लेकर आजकाल पर्यंत कितनाक वृत्तांत लिखते हैं श्रीमहावीर जगवतके इग्यारह शिष्य मुख्य, और सर्व साधुओंसें बड़े दूये, तिनका नाम कहते हैं १ इड्जिनुति, अर्थात् गौतम स्वामी, २ अग्निनुति, ३ वायुनुति, ४ व्यक्तस्वामी, ५ सुधर्मस्वामी, ६ मणिकपुत्र, ७ मौर्यपुत्र, ८ अवकपित, ९ अचलव्राता, १० मैतार्य, ११ प्रजास, यह इग्यारह बड़े शिष्य श्रीमहावीर जगवतके दूए और सर्व शिष्य तो चौदह हजार साधु दूये, परंतु चौदह हजारसें कदेनी अधिक नहीं दूये, और साध्वी ठीसी हजार दूइ, तथा श्रेणिक, उदायन, कोणक, उदायी, वत्सदेशका उदायन, चेटक, नवमल्लिक कृत्रियजातिके, नवजेठिक कृत्रिय जातिके, उवयनका राजा चडप्रद्योत, अमलकम्पा नगरीका स्वेत नामे राजा, पोलासपुरका विजय राजा, कृत्रिय कुम्का न दिवर्द्धन राजा, वीतजय पट्टनका उदायनराजा, वशार्णपुरका वशार्णजड राजा, पावापुरीका हस्तिपाल राजा, इत्यादि अनेक राजे श्रीमहावीर जगवतके सेवक थे अर्थात् श्रावक थे, और आनव, कामदेव, सख पुष्कली प्रमुख श्रावक, और जयंती, रेवती, सुलसा प्रमुख श्राविका तो लाखोंही थे, तिन श्रावकोंमें एक सत्यकी नामा अविरति, सम्यग्दृष्टि श्रावक हुआ है, तिसका संबध आवश्यक शास्त्रमें इसी तरें लिखा है सो कहते हैं -

विशालानगरीके चेटक राजाकी ठही पुत्री सुज्येष्ठानामा कुमारी कन्यानें दीक्षा लीनी थी अर्थात् जैनमतकी साध्वी हो गई थी, वो किसी अवसरमें उपाश्रयके अंदर सूर्यके सन्मुख आतापना लेती थी, इस अवसरमें पेठाल नामा परिव्राजक अर्थात् सन्यासी विद्या सिद्ध था, सो आपनी विद्यादेनेके वास्ते पात्र पुरुषकों देखता था, और उसका विचार औसाथा कि - यदि ब्रह्मचारणीका पुत्र होवे, तो सुनाथ होवेगा तब तिस सन्यासीने रात्रिमें सुज्येष्ठाकों नग्न पणे शीतकी आतापना लेतीकों देखा, तब धुध विद्यासे अधिकारमें विमोह अर्थात् अचेत करके उसकी योनिमें अपने वीर्य का संचार करा, तिस अवसरमें सुज्येष्ठाको कृतुधर्म आ गया था, इस वास्ते गर्ज रद्द गया तब साथकी साध्वीयोंमें गर्जकी चर्चा होने लगी, पीछें अति

शय ज्ञानीने कहा कि सुज्येष्ठानें विषयजोग किसीसें नहीं करा, अरु तिस विद्याधरका सर्ववृत्तांत कहा, तब सर्वकी शंका दूर हो गई पीछें समयमें सुज्येष्ठाके पुत्र जन्मा, तब तिस लडकेको श्रावकने अपने घरमें ले जाके पाला, तिसका नाम सत्यकी रखा, एकदा समय सत्यकी साध्वीयोंके साथ श्रीमहावीर जगवानके समवसरणमें गया, तिस अवसरमें एक कालसदीपक नामा विद्याधर, श्रीमहावीरको वदना करके पूछने लगा कि मुझको किससें जय है, तब जगवत श्रीमहावीर स्वामीने कहा कि, यह जो सत्यकी नामा लडका है, इससें तुझको जय है तब कालसदीपक सत्यकीके पास गया, अ वझासें कहने लगा कि अरे तू मुझको मारेगा ? अैसें कह कर जोरावरीसे सत्यकीको अपने पगोमे गेरा तब तिसके पिता पेढाजने सत्यकीका पालन करा, और अपनी सर्व विद्यायोंको सत्यकीको दे दई, सत्यकी महारोहिणी विद्याका साधन कर रहा था, इस सत्यकीका यह सातमा नव रोहिणी विद्या साधनमें लग रहा था, रोहिणी विद्याने इस सत्यकीके जीवको पांच नवमें तो जानसे मार गेरा और ठेके नवमें बै महीने शेष आयुके रदनसें सत्य कीके जीवने विद्याकी इच्छा न करी परंतु इस सातमें नवमें तो तिस रोहिणी विद्याको साधनेका आरंभ करा तिसकी विधि लिखते है

अनाथ मृतक मनुष्यको चितामें जलावे और गीले ( आले ) चमड़ेको शरीर उपर लपेटके पगके वामें अगूठसें खड़ा होकर जहां लग वो चिता का काष्ठ जले तहां लग जाप करे इस विधिसें सत्यकी विद्या साध रहा था, उहां काल सदीपक विद्याधरजी आ गया, और चितामें काष्ठ प्रक्षेप करके सात दिन रात्री तक अग्नि बुझने न देनी, तब सत्यकीका सत्य देखके रोहिणी देवी आप प्रगट हो कर कालसदीपकको कहने लगी कि मत विघ्न कर - क्योंकि मैं इस सत्यकीके सिद्ध होने वाली हूँ, इस वास्ते मैं सिद्ध हो गई हूँ, तब रोहिणी देवीने सत्यकीको कहा, कि मैं तेरे शरीरमें किधरसें प्रवेश करु ? सत्यकीने कहा मेरे मस्तकमें हो कर प्रवेश कर, तब रोहिणीने मस्तकमें हो कर प्रवेश करा, तिस्से मस्तकमें खड़ा पड़ गया तब देवीने तुष्टमान हो कर तिस मस्तककी जगों तीसरे नेत्रका आकार बना दीया तबतो सत्यकी तीन नेत्रवाला प्रसिद्ध हुआ पीछें सत्यकीने शोचा कि पेढाजने मेरी माता राजाकी कुमारी बटीको बिगड़ा है, अैसा

शोच कर अपने पिता पेढालकों मार दीया, तब लोकोंने सत्यकीका नाम रुड़ (जयानक) रख दीया, क्योंकि जिसने अपना पिता मार दीया उससे और जयानक कौन है ? पीछे सत्यकीने विचारा कि कालसदीपक मेरा वैरी कहां है ? जब सुना कि कालसदीपक अमुक जगामें है, तब सत्यकी तिसके पास पहुँचा, फेर कालसदीपक विद्याधर तहांसे जाग निकला तोजी सत्यकी तिसके पीछे लगा, तब कालसदीपक देठ ऊपर जागता रहा, परंतु सत्यकीने तिसका पीछा न छोड़ा, फेर कालसदीपकने सत्यकीके छुलाने वास्ते तीन नगर बनाये, तब सत्यकीने विद्यासें तीनो नगरजी जलादीये तब कालसदीपक दौड़के जवणसमुद्रके पाताल कलशमें चला गया, सत्यकीने तहां जा कर कालसदीपकको मार मारा, तिस पीछे सत्यकी विद्याधर चक्रवर्त्ति दूध्या, तीन सध्यामें सर्व तीर्थंकरोंको वदना करके नाटक करता दूध्या, तब इधने सत्यकीका नाम मद्देश्वर दीया, तिस मद्देश्वरके दो शिष्य दूये, एक नदीश्वर, दूसरा नादीया, तिनमें नादीया तो विद्यासें बैलका रूप बना लेता था, और तिस ऊपर चढ़के मद्देश्वर अनेक क्रीड़ा कुतूबल करता था, मद्देश्वर श्रीमद्दावीर जगवतका अविरति सम्यग्दृष्टि श्रावक था, परंतु बड़ा जारी कामीया और ब्राह्मणोंके साथ उसका बड़ा जारी वैर हो गया, तब विद्याके बलसें सैकड़ों ब्राह्मणोंकी कुमारी कन्या योंकों विषय सेवन करके बिगाड़ा, और लोक तथा राजा प्रमुखकी बहु बेटीयोंसें काम क्रीड़ा करने लगा, परंतु उसकी विद्यायोंके जयसें उसे कोई कुछ कहता नहीं था, जेकर कोई मनाजी करता था, सो मारा जाताथा, मद्देश्वरने विद्यासें एक पुष्पक नामा विमान बनाया तिसमें बैठके जहां इच्छा होती तहां चला जाता था, ऐसे उसका काल व्यतीत होता था, एकदा प्रस्तावे मद्देश्वर उल्लयन नगरमें गया, तहां चढ़ प्रद्योतकी एक शिवा नामा राणीको ढोढ़के दूसरी सर्व राणीयोंके साथ विषय जोग करा, और रजी सर्वलोकोंके बहु बेटीयोंको बिगाड़ना छुरु करा, तब चढ़प्रद्योतको बड़ी चिंता दूइ, अरु विचाराकी कोई ऐसा उपाय करीये कि जिसें इस मद्देश्वरका विनाश (मरणा) हो जावे — परंतु तिसकी विद्याके आगे किसीका कोई उपाय नहीं चलताथा, पीछे तिस उल्लयन नगरमें एक उमा नामा वेश्या बड़ी रूपवत, रदतीथी, उसका यह कौलथा कि जो कोई इतना धन



मुझे देवे, सो मेरेसें जोग करे, जो कोइ उसके कहे मूजब धन देता था सो उसके पास जाता था, एक दिन महेश्वर उस वेश्याके घर गया, तब तिस उमावेश्याने महेश्वरके सन्मुख दो फूल करे एकविकशा दूथा दूसरा मिचा दूथा, तब महेश्वरने विकशो फूल ( खिड़े फूलकी ) तर्फ हाथ पसारा तब उमावेश्याने मिचा दूथा कमल महेश्वरके हाथमे दीया, और कहा कि यह कमल तेरे योग्य है, तब महेश्वरने कहा क्यों यह कमल मेरे योग्य है ? तब उमाने कहा इस मिचे दूए कमल समान कुमारी कन्या है, सो तुजको जोग करने वास्ते बहजन है, और मैं खिछे दूए फूल समान हौं, तब महेश्वरने कहा तुजी मेरेको बहृत बहजन है, ऐसा कह कर महेश्वर उसके साथ जोग जोगने लगा, और तिसकेही घरमें रहने लगा, तिस उमाने महेश्वरको अपने वशमें कर लीया उमाका कहनां महेश्वर बहजन नहीं कर सकता था, ऐसें जब कितनाकि काल व्यतीत दूथा तब चंडप्रद्योतने उमाको बुलायके उसको बहृत धन, और आदर सन्मान देकर कहा कि तू महेश्वरसें यह पूछेकि — ऐसानी कोइ काल है कि जिस कालमें तुमारे पास कोइनी विद्या नहीं रहती ? तब उमाने महेश्वरको पूर्वोक्त रीतिसें पूछा, तब महेश्वरने कहा कि जबमै मैथुन सेवता हू तब मेरे पास कोइनी विद्या नही रहती, अर्थात् कोइ विद्या चलती नहीं तब उमाने चंडप्रद्योतराजाको सर्वकथन सुना दीया, तब राजाने उमासे कहा कि जब महेश्वर तेरेसें जोग करेगा, तब हम उसको मारेंगे तब उमाने कहा कि मुजको मत मारना तब चंडप्रद्योतने कहा कि तुजको नहीं मारेंगे ? पीछे चंडप्रद्योतने अपने सुजटोंको गुप्त ( ठाना ) उमाके घरमें छिपा रखा, जब महेश्वर उमाके साथ विषय सेवनमें मग्न होके दोनोका शरीर परस्पर मिलके एक शरीरवत् हो गया, तब राजाके सुजटोंने दोनों हीको काट माला, और अपने नगरका उपड्व दूर करा, पीछे महेश्वरकी सर्व विद्यायोंने उसके नदीश्वर शिष्यको अपना अधिष्ठाता बनाया जब नदीश्वरने अपने गुरुको इस विटबनासें मारा सुना, तब विद्यासें बहजनके उपर शिला बनाइ, और कहने लगा कि हे मेरे दासो ! अब तुम कहां जा उगे ? मैं सबको मारुगा क्योंकि मैं सर्वशक्तिमान् ईश्वर हू किसीका मारा मैं मरता नहीं हू, मैं सदा अविनाशी हू, यह सुनकर बहुत लोक मरे औ

र सर्वलोक विनती करके पगोंमें पड़े, अरु कहने लगेकि, हमारा अपराध क्षमा करो, तब नदीश्वरने कहा कि जे कर तुम उसी अवस्थामें अर्थात् उ माफी जगमें मद्देश्वरका लिंग स्थापन करके पूजा, तो मै तुमको जीता छोड़ेगा, तब लोकोने तैसेही बना कर पूजा करी, पीछे नदीश्वरनेजी ऐसे ही गाम गाममें नगर नगरमें लोकोको मरा मरा करके मंदिर बनवाये ति नमें पूर्वोक्त आकारे जगमें लिंगस्थापन कराके पूजा कराई, यह श्रीमद्दा वीरके अविरतिसम्यग्दृष्टि श्रावक मद्देश्वरकी उत्पत्ति है

तथा श्रीमद्दावीर स्वामीके विद्यमान होते राजगृह नगरमें श्रेणिकरा जाकी चेजणा राणीके कोणिक नामा पुत्र दूआ, परंतु कोणिकका श्रेणिक के साथ पूर्व जन्मका वैर था, इस वास्ते कोणिक राजाने श्रेणिक राजा को पकड़के पिंजरेमें दे दीया, और राज सिंहासन ऊपर आप बैठा, जब अपनी माता चेजनाके मुखसे सुना कि श्रेणिकको जैसा तू वध्नन था, ऐसा कोइनी पुत्र वध्नन नहीं था, क्योंकि जब तू बाजक था तब तेरी अगुली पक गइ थी, तिससें तुझे रात्रिमें निंद नहीं आती थी, और तू सर्व रात्रिमें रोता था, तब तेरा पिता तेरी अगुलीको अपने मुखमें छे कर चू सके उसकी राध रुधिरको थुकता था, इत्यादि तेरे पिताने तेरे साथ राग (स्नेह) करा है, और तुमने उस उपकारके बदले अपने पिताको पिंजरेमें बंद कीया, बाढ़ रे पुत्र ! तेरी लायकी ! यह सुनके कोणिक राजा बड़ा डखी दूआ, और रोता दूआ आप कुदाड़ा लेकर दौड़ा कि मैं अपने हाथसे पिताका पिंजरा काटके बाहिर निकालूंगा और राजसिंहासन उपर बैठाउंगा परंतु जब श्रेणिकराजाने देखा कि कोणिक कुदाड़ा लेकर दौड़ा आता है, तब विचार करा कि क्याजाने मुझे किस क्रमोत्तसें मारेगा ? तब श्रेणिक राजा कुछ खाके मर गया, जब कोणिकने आकर देखा कि पिता तो मर गया तब बहुत रोया पीटा, महाशोकसें दाढ़ लग गया, जब राजगृहके अंदर बाहिर श्रेणिकके मकान मंदिर सिंहासनादि देखता है, तब बड़ा क्लिगीर (शोकवत) होता है, इस डखसें राजगृह नगरको छोड़के चपा नगरी अपनी राजधानी बनाके रहने लगा, तोही पिताके वियोगसे सेवा न करनेसें डखी रहने लगा, तब प्रधान (मन्त्रीयोंने) मता करके एक ठाना पुस्तक बनवाया, उसमें ऐसा कथन लिखवाया कि - जो पुत्र अपने

मरे दूये पिताकों पिंम प्रदान वस्त्र जोड़े, आजूपण, शय्या प्रमुख ब्राह्मणोंको देता है, वो सर्व आदि सामग्री उसकें पिताकों प्राप्ति होते हैं, तिस पुस्तककों धुयेके मकानमें रखकें धुयेसँ पुराने पुस्तकवत् बना दीया, तब कोणिक राजाको सुनाया कोणिकनेजी पिताकी जक्तिवास्ते पिंम प्रदानादि बहुत धन लगा करके करा, तबहीसँ मृतकोंकों पिंम प्रदान आदि प्रवृत्त दूये है क्योंकि जगत्में प्रसिद्ध है कि कर्ण राजाने आदि चलाये हैं, सो इसी कोणिक राजाका नाम लोकोने कर्ण राजा करकें लिखा है

तथा अन्निका सुत जैनाचार्य अत्यंत वृद्ध गंगा नदी उतरतेको केवल ज्ञान दूया, और जहा प्रयाग है तहां शरीर ढोडके मोक्ष दूया, तिस जगे देवताओंने तिस मुनिकी भद्रिमा करी तबसे प्रयाग तीर्थकी मानता चली, अर्थात् प्रयाग तीर्थकी उत्पत्ति हुई, महावीर स्वामीके बख्तमें जो स्वरूप राजादि व्यवहारोकाया तथा जैनमतका जहां तक विस्तारथा सो आवश्यकसूत्र वीरचरित्र तथा वृद्धकल्पादि शास्त्रोंसँ जान लेना

तथा श्रीमहावीरके समयमें राजगृह नगरीका राजा श्रेणिक तिसके पीठें कोणिक दूया जिसने श्रेणिकके मरनेसँ पीठें चपानगरीकों अपनी राजधानी बनाई तिसका बेटा उदायी दूया जिनके कोणिककें मरे पीठें उदासीसँ चपाकों ढोडके पामली पुत्र नगर (पटना) बसाके अपनी राजधानी बनाया

श्रीमहावीर जगवत् विक्रम सवतसे ( ४४४ ) वर्ष पहिला पावापुरी नगरीमें हस्तपाल राजाकी पुराणी राजसजामें बहत्तर वर्षकी आयु जोगके कार्तिक वदि अमावास्याकी रात्रिके पीठले प्रहरमें पद्मासन अर्थात् चौकड़ी मारे दूये, शरीरादि चार कर्मकी सर्व उपाधी ढोडकें निर्वाण दूये ( मोक्ष पहुँचे ) तिस समयमें गौतमस्वामी और सुधर्म स्वामी यह दो बड़े शिष्य जीतेथे, शेष नव बड़े शिष्य तो श्रीमहावीरजीके जीते दूयेही एक मासका अनशन करकें केवलज्ञान पाके मोक्ष चले गये थे, यह इग्यारहवीं बड़े शिष्य जातिके तो ब्राह्मण थे, चार वेद और छे वेदांगादि सर्वशास्त्रोंके जानकार थे, इन इग्यारहोके चौतालीससँ ( ४४०० ) विद्यार्थीथे

इनोंका सवध ऐसे है, कि - जब जगवत् श्रीमहावीरजीकों केवलज्ञान दूया, तिस अवसरमें मध्यपापा नगरीमें सोमल नामा ब्राह्मणने यज्ञ करनेका आरंभ करा था, और सर्व ब्राह्मणोंमें श्रेष्ठ निजान जात था -

वोक्त गौतमादि श्रमणरादी आचार्योंको बुलायाया तिस समय तिस यज्ञ पाडाके ईशान कूणमें महासेन नामा उद्यानमें श्रीमहावीर जगवतका स मवसरण रत्न सुवर्ण रौप्यमय क्रमसे तीन गठ सयुक्त देवोंने बनाया तिसके बीचमें बैठकें जगवत श्रीमहावीरस्वामी उपदेश करने लगे, तब आकाश मार्गके रस्ते सैंकड़ो विमनोमें बैठे दूधे चार प्रकारके देवता जगवत श्रीमहावीरके दर्शनकों और उपदेश सुननेको आते थे, तब तिनों यज्ञ करने वाले ब्राह्मणोंने जाना कि यह देव सब हमारे करे दूधे यज्ञकी आहुतीयों लेने आये हैं, इतनेमें देवता तो यज्ञ पाडेकों ढोडके जगवानके चरणोंमें जाकर हाजर दूधे, तथा और लोकजी श्रीमहावीर जगवतका दर्शन करकें और उपदेश सुनकें गौतमादि पंथितोंके आगे कहने लगे, कि - आज इस नगरके बाहिर सर्वज्ञ सर्वदर्शी जगवान् आया है, नतो उसके रूपकी कोई तारीफ कर सका हैं, अरु न कोई उसके उपदेशसें सशय रहता है, और लाखों देवता जिनोके चरणोंकी सेवा करते हैं, ताते हमारे बड़ेना म्योदय हैं, जो ऐसे सर्वज्ञ अरिहत जगवतका हमने दर्शन पाया ऐसा जब गौतमजीने सुना कि सर्वज्ञ आया तब मनमें ईर्ष्याकी अग्नि जडकी अरु ऐसे कहने लगाकि - मरेसें अधिक और सर्वज्ञ कौन है ? मैं आज इसका सर्वज्ञ पणा उढा देता हू ? इत्यादि गर्व सयुक्त जगवान् श्रीमहावीरके पास पहुचा, और जगवान्को चौत्तीश अतिशय संयुक्त देखा, तथा देवता, इन्द्र, मनुष्योंसे परिवृत देखा, तब बोलनेकी शक्तिसें हीन दुवा जगवतके सन्मुख जाके खडा हो गया तब जगवतने कहा कि - हे गौतम इन्द्र जूति ! तू आया ? तब गौतमजीने मनमें बिचाराकि जो मेरा नामजी ये जानते हैं, तोजी मैं सर्व जगे प्रसिद्ध हूं मुझे कौन नहीं जानता ? तो इन्हे मेरा नाम लीया, इस बातमे कुछ आश्चर्य और सर्वज्ञ इसकों नहीं मानता हू, किंतु मेरे मनमें जो शशय है तिसकों दूर कर देवे तोमें इसकों सर्वज्ञ मानु, तब जगवतने कहा, हे गौतम ! तेरे मनमें यह शशय है - जो जीवहै कि नही ? और यह शशय तेरेकों वेदोंकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोसें हूआ है, वो श्रुतियों यह हैं सो कहते हैं

“विज्ञानघनएवेतेन्योजूतेन्य समुद्याय तान्येवानुविनश्यति न प्रेत्य स ज्ञास्तोतीत्यादि” इस्सें विरुद्ध यह श्रुति हैं - सवै अथमात्मा ज्ञानमय

इत्यादि इन श्रुतियोंका अर्थ जैसा तेरे मनमें जासन होता है तैसाही प्रथम श्रुतिका अर्थ कहते हैं नीलादि रूप होनेसे विज्ञानही चैतन्य है, चैतन्य विशिष्ट जो नीलादि तिससे जो घन सो विज्ञानघन सोविज्ञानघन इन प्रत्यक्ष परिच्छिद्यमान रूप पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, इन पांच जूतोंसे उत्पन्न हो कर फेर तिनके साथही नाश हो जाता है अर्थात् जूतोंके नाश होनेसे उनके साथ विज्ञानघनकाही नाश हो जाता है, इस हेतुसे प्रेत्यसङ्गा नहीं अर्थात् मरके फेर परलोकमें और कोई नर नारकका जन्म नहीं होता, इस श्रुतिमें जीवकी नास्ती सिद्ध होती है, और दूसरी श्रुति कहती है कि - यह आत्मा ज्ञान मय अर्थात् ज्ञान स्वरूप है, इससे आत्माकी सिद्धी होती है, अब ये दोनों श्रुतियों परस्पर विरोधी होनेसे प्रमाण नहीं हो सकती हैं, और बद्धत परस्पर आत्माके स्वरूपमें विरोधी मत है, कोई कहता है कि - एतावानेवपुरुषो,यावानिन्द्रियगोचर ॥ नष्टे लृकपद पश्य,यद्वदत्यबद्धश्रुता ॥ १ ॥ इस श्लोकका अर्थ चार्वाकमतमें लिख आये हैं यद्वन्नी एक आगम कहता है, तथा “न रूपं निह्वं पुञ्ज” अर्थात् आत्मा अमूर्ति है, यद्वन्नी एक आगम कहता है, तथा “अकर्त्तानिर्गुणोजोक्ताआत्मा” अर्थ - अकर्त्ता सत्त्व, रज, अरु तम, इन तीनों गुणोंसे रहित सुख दुःखका जोगने वाला आत्मा है, यद्वन्नी एक आगम कहता है अब इनमेंसे कितकों सच्चा और कितकों झूठा माने ? परस्पर विरोधी होनेसे सर्व तो कुछ संझे दोही नहीं शक्ते हैं, तथा युक्ति प्रमाणसेही मरके परलोक जाने वाली आत्मा सिद्ध नहीं होती है, ताते हे गौतम ! यह तेरे मनमें सशय है, अब इसका उत्तर कहता हू कि तू वेद पदोंका अर्थ नहीं जानता है इत्यादि श्रीगौतमजीके सशयकों दूर करा, ये सर्व अधिकार मूलावश्यक और श्रीविशेषावश्यकसे जान लेना, मैंने ग्रन्थके जारी और गढ़न हो जानेके सबबसे यहां नहीं लिखा क्योंकि सब इग्यारह गणधरोंके सशय दूर करनेका कथनके चार हजार श्लोक हैं पीछे जब गौतमजीका सशय दूर हो गया, तब गौतमजी पांचसौ अपने विद्यार्थियोंके साथ वीक्षा लेके श्रीमहाबीर जगवतका प्रथम शिष्य हुआ इसीतरहे १५जूनतियों वीक्षित सुनके दूसरा जाई अग्निजुति बड़े अग्निमानमें नर कर चला और कहने लगा कि - मेरे जाईकों १५जालीयेने बजसे

जीतके अपना शिष्य बना लीया, तो मैं अभी उस इंद्रजालीयेको जीतके अपने नार्इको पीठा लाता हूँ, इस विचारसे जगवत श्रीमहावीरजीके पास पहुँचा, जब जगवानको देखा, तब सर्व आश्चर्य हुआ कि ऐसा स्वर्ण रूप न उसने कभी सुनाथा और न कभी देखा था, तब जगवानने उसका नाम लीया, अग्निज्जतिने विचारा कि यह मेरा नामजी जानते हैं, अथवा मैं प्रतिष्ठा हूँ, मुझे कौन नहीं जानता है ? परंतु मेरे मनका सशय दूर करे तो मैं इसको सर्वज्ञ मानूँ, तब जगवतने कहा दे अग्निज्जति ! तेरे मनमें यह सशय है कि - कर्म है किंवा नहीं ? यह सशय तेरेको विरुद्ध वेदपदोंसे हुआ है, क्योंकि तू वेद पदोंका अर्थ नहीं जानता है, वे वेदपद यह हैं - “पुरुषएवेदमिसर्वयज्ञूतं यच्च जाव्य उतामृतत्वस्येशानोयदन्नेनाऽतिरोहति यवेजति यन्नैजति यदूरेयद्युतिके पवतरस्य यद्युत सर्वस्यास्य बाह्यतश्चैव” इस्सें विरुद्ध यह श्रुति है - “पुण्य पुण्येनेत्यादि” और इनका अर्थ तेरे मनमें ऐसा जासन होता है कि - पुरुष अर्थात् आत्मा एव शब्द अवधारणके वास्ते है, सो अवधारण कर्म और प्रधानादिकोंके व्यवबोध वास्ते है, “इदं सर्वं” अर्थात् यह सर्व प्रत्यक्ष वर्तमान चेतन अचेतन वस्तु “मि” यह वाक्यालंकारमें है, यदज्ञूत अर्थात् जो पीछे हुआ है और आगेको होवेगा जो मुक्ति तथा ससार सो सर्व पुरुष आत्मा ब्रह्मही हैं, तथा उतशब्द अतिशब्दके अर्थ में है और अपि शब्द समुच्चय अर्थमें है अमृतत्वस्य अमरणजावका अर्थात् मोक्षका स्थान प्रभु अर्थात् स्वामी (मालक) है, “यदिति यच्चेति” च शब्दके लोप होनेसे यदिति बना इसका अर्थ जो अन्न करके वृद्धिको प्राप्त होता है, “यवेजति” जो चलता है ऐसे पशुआदिक और जो नहीं चलता है ऐसे पर्वतादिक और जो दूर हैं मेरे आदिक “यत्त्वयतिके” उ शब्दअवधारणार्थमें है, जो समीप अर्थात् नेहे है, सो सर्व पूर्वोक्त पदार्थ पुरुष अर्थात् ब्रह्मही है, इस श्रुतिसे कर्मका अज्ञाव होता है अथवा दूसरी श्रुतिसे तथा शास्त्रांतरोंसे कर्मसिद्ध होते हैं, तथा युक्तिसे कर्मसिद्ध होते नहीं क्योंकि अमूर्ति आत्माको मूर्ति कर्म लगते नहीं, इस वास्ते मैं नहीं जानता कि कर्म है वा नहीं यह सशय तेरे मनमें है, ऐसा कह कर जगवानने वेदश्रुतियोंका अर्थ

बराबर करके तिसका पूर्वपक्ष खंमन करा, सो विस्तारसें मूलावश्यक तथा विशेषावश्यकसें जानलेनां अग्निभूतिनेजी गौतमवत् दीक्षा लीनी ॥ १ ॥

अग्निभूतिकी दीक्षा सुनके तीसरा वायुभूति आया परंतु आगे दोनो जाईयोके दीक्षा ले लेनेसें इसको विद्याका अजिमान कुठनी न रहा, मनमें विचार कराकि मैं जा कर जगवानको वंदना (नमस्कार) करुगा ऐसा विचारके आया था कर जगवतको वंदना (नमस्कार) करी तब जगवतने कहा तेरे मनमें सशयतो है परंतु क्षोनसें तू पूछ नही शक्ता है सशय यह हैकि - जो जीव है सो देहही है और यह सशय तेरेको विरुद्ध वेदपदभ्रुतिसे दूआ है, और तू तिन वेदपदोंका अर्थ नहीं जानता है वे वेद पद ये हैं - “विज्ञानयनइत्यादि” पहिले गणधरकी भ्रुति जाननी इस्सें देहसें न्यारा जीव (आत्मा) सिद्ध नहीं होता है, और इस भ्रुतिसें विरुद्ध यह भ्रुति है, “सत्येन लज्यस्तपसा ह्येवब्रह्मचर्येण नित्यज्योतिर्मयो हिद्युक्षोर्षं पश्यंति धीरायतय सयतात्मानइत्यादि” इस भ्रुतिसें देहसें निज आत्मा सिद्ध होती है, इस वास्ते तुंफको सशय है, पीछे जगवानने यह सर्व सशय दूर करे, तब तीसरा वायुभूतिनेजी अपने पांच सौ विद्यार्थीयोके साथ दीक्षा लीनी ॥ ३ ॥

वायुभूतिकी तरें श्रेष्ठ आठ गणधर क्रमसें आये, तिसमें चौथा अव्यक्तजी आया तिनके मनमें यह सशयथा कि - पांचभूत हैं कि नही ? यह सशय विरुद्ध भ्रुतियोंसे दूआ वे परस्पर विरुद्ध भ्रुतियों यह है - “स्वप्नो पम वै सकलमित्येव ब्रह्मविधिर्जसाविज्ञेयइत्यादीनि” तथा इससें विरुद्ध यह भ्रुति है “द्यावापृथिवी जनयनदेवइत्यादि” तथा पृथिवीदेवता, अपो देवता, इत्यादीनि इनका अर्थ तेरे मनमें ऐसा जासन होता है - अर्थ स्वप्न सरीखा वैनिपात अवधारणार्थे सपूर्ण जगत है “एष ब्रह्मविधि” अर्थात् यह परमार्थ प्रकार है, अंजसा सीधेन्यायसें जानना योग्य है, यह भ्रुति पांचभूतका अज्ञाव कहती हैं, और भ्रुतियों पांचभूतकी सत्ताको कहतीयां हैं, इस वास्ते तेरेको सशय है, तेरे मनमें यहजी हैकि - युक्तिसें पांचभूतसिद्ध नहीं होते हैं पीछे जगवानने इसका पूर्वपक्ष खंमन करा वेद पदोंका यथार्थ अर्थ कराये, यह अधिकार उक्त ग्रंथोंसें जान लेना यह सुन कर चौथा वायुभूतिनेजी अपने पांचसौ शिष्योंके साथ दीक्षा लीनी ॥ ४ ॥

तब पांचमां सुधर्म नामा गणधर आया इसकानी उसी तरें सर्वाधि कार जानलेनां, यावत् तेरे मनमें यह सशय है कि - मनुष्यादि सर्व जैसैं इस जवमें हैं तैसेही अगले जन्ममें दोते हैं ? कि मनुष्य कुछ और पशुआ विनी बन जाते हैं ? यह सशय तेरेको परस्पर विरुद्ध वेद श्रुतियोंसे दूआ है सो वेद श्रुतियों यह हैं - "पुरुषोवैपुरुषत्वमश्रुते पशव पशुत्व इत्यादीनि" यह श्रुति जैसा इस जन्ममें पुरुष स्त्री आदि हैं वे पर जन्ममेंनी ऐसेही हो वेंगे इस्से विरुद्ध यह श्रुति हैं "अगालोवैएपजादते य सपुरीपोदह्यत इत्यादि इन सर्व श्रुतियोंका जगवानने अर्थ करके सशय दूर करा, तब अपने पांच शिष्यके साथ बीक्षा लीनी ॥ ५ ॥

तिस पीछें ब्रह्म मन्त्रिक पुत्र आया, तिसके मनमें यह सशय था, कि बंध मोक्ष है, वा नही है ? यह सशयनी विरुद्ध श्रुतियोंसे दूआ है, सो श्रुतियों यह हैं - "स एष विगुणोविशुर्न बध्यते, सत्तरति वा न मुच्यते मोचयति वा ॥ एष बाह्यमन्यतरं वा वेदइत्यादीनि" इस श्रुतिका ऐसा अर्थ तेरे मनमें जासन होता है, "एषअधिकृतजीव" अर्थात् यह जीव जिसका अधिकार है "विगुण" अर्थात् सत्त्वादि गुण रहित सर्वगत सर्वव्यापक पुण्य पाप करके इसको बंध नहीं होता है, और सत्तारमें ब्रमणनी नहीं करता है, और कर्मोंसे बूटतानी नहीं है, बंधके अज्ञाव होनेसे दूसरोंको कर्मबंधसे बूढातानी नहीं है, इस कहनेसे आत्मा अकर्ता है, सोई कहता है - यह पुरुष अपनी आत्मासे बाहिर महत् अहंकारादि और अन्यंतर स्वरूप अपना जानता नही क्योंकि जानना ज्ञानसे होता है, और ज्ञानजो है, सो प्रकृतिका धर्म है, और प्रकृति अचेतन है, बंध मोक्ष नही इस श्रुतिसे बंध मोक्षका अज्ञाव सिद्ध होता है, अब इस्से विरुद्ध श्रुति यह है सो कहते हैं - "नही वैसशरीरस्य, प्रिया प्रिययोरपहतिरस्ति अशरीरं वा वसते प्रिया प्रिये नस्पृशत इत्यादीनि" इसका अर्थ कहते हैं - सशरीरस्य अर्थात् शरीर सहितको सुख दुःखका अज्ञाव कदापि नहीं होता है, तात्पर्य यह है कि - ससारी जीव सुख दुःखसे रहित नहीं होता है, और अमूर्त आत्माको कारणके अज्ञावसे सुख दुःख स्पर्श नहीं कर शक्ते हैं, इस श्रुतिसे बंध मोक्ष सिद्ध दोते हैं, तथा तेरे मनमें यहनी बात है - कि - युक्तिसेनी बंध मोक्ष सिद्ध नहीं दोते हैं इत्यादि सशय कह कर जग



वान्ने तिसके पूर्वपक्षोंको खमन करके संशय दूर करा, तब मन्दितपुत्र साढे तीनसौ विद्यार्थियोंके साथ दीक्षित जया ॥ ६ ॥

४ तिस पीछे सातवां मोर्यपुत्र आया तिसके मनमें यह संशय था कि — देवता हैं किंवा नही है ? यह संशय परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसे हुआ वो श्रुतियो यह हैं — सएषयद्वायुधीयजमानोज सास्वर्गलोकं गच्छति इत्यादि श्रुतियों स्वर्ग तथा देवताओंकी सिद्धि करतीयाँ हैं, इस्से विरुद्ध श्रुति यह है — अपामसोम अमृता अन्नम, अगमामद्योतिर्विदामदेवान् ॥ किन्नूनम रमान्तृणवदराति किमुधूर्ति रमृतमर्त्यस्येत्यादीनि “तथा कोजानाति मा योपमान् गीर्वाणानि इयमवरुणकुबेरादीन् इत्यादि” इनका ऐसा अर्थ तेरे मनमें जासन होता है कि — पाणीको पीते दूये एतावता सोमजताका रस पीते दूये अमृत (अमरण) धर्मवाले हम दूये हैं, ज्योति स्वर्ग और देवताको हम नही जानते हैं तथा देवता हम दूये हैं, यहजी नही जानते देवता तृणकी तरें हमारा क्या कर शक्ते है ? यह श्रुति अनाव प्रतिपादन करती है, और यह जावकी प्रतिपादक है, “धूर्तिजराअमृतमर्त्यस्य” अमृतत्व प्राप्त पुरुषको क्या कर सक्ती है ? इन श्रुतियोंका यथार्थ अर्थ करके और तिसका पूर्वपक्ष खमन करके जगवतने इनका संशय दूर करा, तब यहजी साढे तीनसौ ऋत्तोंके साथ दीक्षित जया ॥ ७ ॥

५ तिस पीछे आठवां अकपिक आया उसके मनमेंजी वेदकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंके पदोंसे नरकवासी है कि नही ? यह संशय उत्पन्न हुआ था, वो परस्पर विरुद्ध श्रुतियों लिखते हैं — “नारको वै एष जायतेय शुशान्न मश्नाति इत्यादि” इसका अर्थ — यह ब्राह्मण मारक होवेगा जो शूद्रका अन्न खाता है, इस श्रुतिसे नरक सिद्ध होता है, तथा “नद वैप्रेत्यनरके नारका संतीत्यादि सुगमार्थे इसश्रुतिसे नरकका अभाव सिद्ध होता है इनका अर्थ करके और पूर्वपक्ष खमन करके जगवान्ने तिसका संशय दूर करा तब अक पिकनेजी तीन सौ ऋत्तोंके साथ दीक्षांतीनी ॥ ८ ॥

६ तिस पीछे नवमा अचलघ्राता आया तिसकोजी परस्पर वेदकी विरुद्ध श्रुतियोंके पदोंसे पुण्य पाप है, कि नही ? यह संशय था, सो वेद पद यह हैं — “पुरुषएवेदमिसर्वेत्यादि दूसरे गणधर वत् इस्से विरुद्धपद यह है — “पुण्य पुण्येन कर्मणा जवति, पाप पापेन कर्मणा जवति इत्यादि” इस्से

पुण्यपाप सिद्ध होते हैं, यह सशयजी जगवानने बूर करा, तब यहजी तीन सौ ढात्रोंके साथ वीह्ता नया ॥ ९ ॥

१० तिस पीछे दशमा मेतार्य आया उसकोजीवेदकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसे यह सशयदूआ था, कि - परलोक है किंवा नहीं है ? वो श्रुतियाँ यह हैं - “विज्ञानघन इत्यादि प्रथम गणधरवत् अजाव कथक श्रुति जाननी ” तथा “ स वैश्वर्य आत्मा ज्ञानमयइत्यादि ” परलोक जाव प्रतिपादक श्रुति जाननी इनका तात्पर्य जगवानने कहा तब मेतार्यजीनेबी निशक होकें तीन सौ ढात्रोंके साथ वीह्ता लीनी ॥ १० ॥

११ तिस पीछे इग्यारहवा प्रजास नामा गणधर आया, तिसके मनमेंजी वेद श्रुतियोंके परस्पर विरुद्ध होनेसे यह सशयथा कि निर्वाण है कि नही है ? वो श्रुतियों यह हैं - “ जरामर्य वा एतत्सर्वं यदग्नि दोत्र ” इस्से विरुद्ध श्रुति यह है - “ देवद्व्याणी वेदितव्ये परमपरं च तत्र परं सत्यं ज्ञानमनन्तब्रह्मेति ” इनका यह अर्थ तेरी बुद्धिमें जासन होता है कि - अग्निदोत्र जो है, सो जीव हिंसा सयुक्त है, और जरा मरणका कारण है, अरु वेदमें अग्नि दोत्र निरंतर करणां कहा है, तब ऐसा कौनसा काल है, कि जिसमें मोक्ष जानेका कर्म करीयें ? इस वास्ते आत्माको मोक्ष ( निर्वाण ) कदापि नहीं हो शक्ता है, अरु दूसरी श्रुति मोक्ष प्राप्तिजी कहती है, इस वास्ते सशय दूआ है इसका जब जगवानने उत्तरदे के निशक करा तब तीनसौ ढात्रोंके साथ वीह्ता लीनी यह श्रीमद्दावीर जगवतके वैशाखछदि दशमीके दिन मध्यपापानगरीके महासेन वनमें (४४००) शिष्य दूये तिस पीछे राजपुत्र श्रेष्ठिपुत्रादि तथा राजपुत्री श्रेष्ठिपुत्री राजाकी राणीयों आदिकने वीह्ता लीनी तथा जब जगवत श्रीमद्दावीरजी पावापुरीमें मोक्ष गये, तिसही रात्रिमें इन्द्रजित् अर्थात् गौतमगणधरको केवल ज्ञान दूआ, तब इन्द्रोंने निर्वाण महोत्सव करा, और सुधर्मास्वामी जीको श्रीमद्दावीर स्वामीजीकी गद्दी कपर बैठाया श्रीगौतमजीको गद्दी इस वास्ते न दूइ की केवलज्ञानी पुरुष कोइ पाट कपरनहीं बैवता है, क्योंकि केवली तो जो पूछे उसका उत्तर अपने ज्ञानसेही देता है, परंतु ऐसा नहीं कहता है कि - मैं अमुक तीर्थकरके कहनेसे कहता हूँ, इस वास्ते केवलज्ञानी पाट कपर नहीं बैवता है, जेकर बैठे तो तीर्थकरका

शासन दूर हो जावे, यह कजी हो न शक्ती जो अनादि रीतिकों के वली जंग करे, इस वास्ते श्रीगौतमजी केवल ज्ञानी था सो गद्दी कपर नही बैठे और सुधर्म स्वामी बैठे

१ श्रीसुधर्म स्वामी पचास वर्ष तो गृहस्थावास्त (घरमें) रहे, और तीस वर्ष श्रीमहावीर जगवतकी शरण सेवा करी, जब श्रीमहावीर निर्वाण हुआ, तिस पीढ़ें बारां वर्ष तक उद्गस्थ रहे, और आठ वर्ष केवली रहे, क्योंकि श्रीमहावीर अर्द्धतके पीढ़ें केवली हो कर बारां वर्ष श्रीगौतमजी जीते रहे, और श्रीगौतमजीके निर्वाण पीढ़ें श्रीसुधर्म स्वामीजीकों के वल ज्ञान हुआ, केवली हो कर आठ वर्ष जीते रहे, श्रीसुधर्म स्वामी जीकी सर्वायु एक सौ (१००) वर्षकी थी, सो श्रीमहावीरजीके पीढ़ें वीश वर्ष मोक्ष गये २ श्रीसुधर्म स्वामी के पाट उपर श्रीजंबूस्वामी बैठे सो राजगृहनगरका वासी श्रीरूपनदत्तश्रेष्ठकी धारिणी नामा स्त्रीसें जन्मेये नि नानवे क्रोड सोनइये और आठ स्त्रीयोंकों बोट कर दीक्षा जेता जया, सो जांवर्ष गृहस्थ वासमें रहे, वीश वर्ष व्रतपर्याय, और चौतालीस वर्ष केवलपर्याय पालके श्रीमहावीरके निर्वाण पीढ़ें चौश्रवमें वर्ष मोक्ष गये

यह श्रीजंबूस्वामीके पीढ़ें नरतक्षेत्रमें दश बातें विच्छेद हो गइ तिसका नाम लिखते हैं - १ मन पर्यायज्ञान, २ परमावधि ज्ञान, ३ पुलाक लब्धि, ४ आहारकशरीर, ५ कृपकश्रेणि, ६ उपशमश्रेणि, ७ जिनकल्पमु निकी रीति, ८ परिहारविशुद्धिचारित्र, तथा सूक्ष्मसपराय, और यथाख्यात, यह तीन तरेंके सयम, ९ केवलज्ञान, १० मोक्ष होनां, यह दश वस्तु वि छेद हो गइ, श्रीमहावीर जगवतके केवली हुये, पीढ़ें जब चौदह वर्ष बीते थे, तब जमाली नामा, प्रथम निन्दव हुआ, और सोलां वर्ष पीढ़ें तिष्य गुप्त नामा दूसरा निन्दव हुआ श्री जंबूस्वामीकी आयु एसी वर्षकी थी

३ जंबूस्वामीके पाट कपर प्रजवा स्वामी बैठे, तिनकी उत्पत्ति ऐसें हैं - विंध्याचल पर्वतके पास जयपुर नामा पत्तन था, तिसका विंध्य नामा राजा था तिसके दो पुत्र थे एक बड़ा प्रजव दूसरा बेटा प्रभु, विं ध्यराजाने किसी कारणसें बेटे पुत्र प्रभुकों राज तिलक दे दीया, तब बड़ा बेटा प्रजव छुस्सें हो कर जयपुर पत्तनसे निकल कर विंध्याचलकी विषम जगामें गाम बसा कर रहने लगा, और खात्रखनन, बदिग्रहण,

पुण्यपाप सिद्ध होते हैं, यह सशयजी जगवानने दूर करा, तब यद्दीनी तीन सौ ढात्रोंके साथ दीक्षित जया ॥ ९ ॥

१० तिस पीठें वशमा मेतार्य आया उसकोंजीवेदकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसें यह सशयदूआ था, कि - परलोक है किंवा नहीं है ? वो श्रुतियों यह हैं - “विज्ञानघन इत्यादि प्रथम गणधरवत् अनाव कथक श्रुति आनी” तथा “स वैश्वर्य आत्मा ज्ञानमयइत्यादि” परलोक नाव प्रति पादक श्रुति जाननी इनका तात्पर्य जगवानने कहा तब मेतार्यजीनेबी निशक होके तीन सौ ढात्रोंके साथ दीक्षा लीनी ॥ १० ॥

११ तिस पीठें इग्यारहवा प्रजास नामा गणधर आया, तिसके मनमेंजी वेद श्रुतियोंके परस्पर विरुद्ध होनेसे यह सशयथा कि निर्वाण है कि नहीं है ? वो श्रुतियों यह हैं - “जरामर्य वा एतत्सर्वं यदग्नि होत्र” इस्सें विरुद्ध श्रुति यह है - “देवद्व्याणी वेदितव्ये परमपरं च तत्र परं सत्यं ज्ञानमनर्तब्रह्मेति” इनका यह अर्थ तेरी बुद्धिमें जासन होता है कि - अग्निहोत्र जो है, सो जीव हिंसा सयुक्त है, और जरा मरणका कारण है, अरु वेदमें अग्नि होत्र निरंतर करणां कहा है, तब ऐसा कौनसा काल है, कि जिसमें मोक्ष जानेका कर्म करीये ? इस वास्ते आत्माको मोक्ष (निर्वाण) कदापि नहीं हो सका है, अरु दूसरी श्रुति मोक्ष प्राप्तिजी कहती है, इस वास्ते सशय दूआ है इसका जब जगवानने उत्तरदे के निशक करा तब तीनसौ ढात्रोंके साथ दीक्षा लीनी यह श्रीमदावीर जगवतके वैशाखशुद्धि वशमीके दिन मध्यपापानगरीके महासेन वनमें (४४००) शिष्य दूये तिस पीठें राजपुत्र श्रेष्ठिपुत्रादि तथा राजपुत्री श्रेष्ठिपुत्री राजाकी राणीयों आविकने दीक्षा लीनी तथा जब जगवत श्रीमदावीरजी पावापुरीमें मोक्ष गये, तिसही रात्रिमें इन्द्रजित् अर्थात् गौतमगणधरकों केवल ज्ञान दूआ, तब इन्होंने निर्वाण महोत्सव करा, और सुधर्मास्वामी जीकों श्रीमदावीर स्वामीजीकी गद्दी ऊपर बैठाया श्रीगौतमजीकों गद्दी इस वास्ते न दूई की केवलज्ञानी पुरुष कोइ पाट ऊपरनहीं बैवता है, क्योंकि केवली तो जो पूछे उसका उत्तर अपने ज्ञानसेही देता है, परंतु ऐसा नहीं कहता है कि - मैं अमुक तीर्थकरके कहनेसे कहता हूँ, इस वास्ते केवलज्ञानी पाट ऊपर नहीं बैवता है, जेकर बैठे तो तीर्थकरका

तत्त्व कह दे ? नहीं तो तलवारसें तेरा शिर छेद करुंगा ऐसें कहके जब मियानसें तलवार काढी तब उपाध्यायने प्राणांत कष्ट देखके कहा हमारे वेदोंमेंनी ऐसें लिखा है और हमारी आम्नायनी यही है, जब हमारा कोइ शिर छेदे, तब तत्त्व कहना, नहीं तो नहीं कहना तिस वास्तेमें तु मकों तत्त्व कह देता हूकि इस यज्ञ स्थनके हेतु अर्हतकी प्रतिमा स्थापन करी है, और नीचेही तिसकों प्रह्वन्न हो कर पूजते हैं, तिसके प्रनावसें यज्ञके सर्व विघ्न दूर हो जाते है, जेकर यज्ञस्थनके नीचे अर्हतकी प्रतिमा न राखें तो महातपा सिद्ध पुत्र और नारद ये दोनो यज्ञको विध्वंस कर देते है, पीछें उपाध्यायने यज्ञ स्थन उखाडके अर्हतकी प्रतिमा दिखाइ और कहा कि यह प्रतिमा जिस देवकी है, तिस अर्हतका कहा हूआ धर्म जीवदया रूप तत्त्व है, और यह जो वेद प्रतिपाद्य यज्ञ है, वे सर्व हिसात्मक रूप होनेसें विडवना रूप हैं, परंतु क्याकरें ? जेकर हम ऐसें न करें तो हमारी आजीविका नहीं चलती है, अब तू तत्त्व जानले और मुजकों ढोड दे अरु तू परमार्हत होजा क्योंकि मैंने अपने पेटके वास्ते तुजकों बहुत दिन बहकाया है, तब शिष्यनवने नमस्कार करके कहा तू यथार्थ तत्त्वके प्रकाश करनेसें सच्चा उपाध्याय है, ऐसा कह कर शिष्यनवने तुष्टमान हो कर यज्ञकी सामग्री जो सुवर्णपात्रादिये, वे सर्व उपाध्यायकों दे दइ, और प्रनवस्वामीके पास जा कर तत्त्वका स्वरूप पूछ कर दीक्षा ले ली नी, शेष इनका वृत्तांत परिशिष्टपर्व ग्रंथसें जान लेना शिष्यनवस्वामी अष्टाश्व वर्ष गृहस्थावासासमें रहे, इग्यारह वर्ष सामान्य साधु व्रतमें रहे, और तेइस वर्ष युगप्रधानाचार्य पदवीमें रहे, इसीतिरें सर्वायु वांशठ वर्ष जो गके श्रीमहावीर जगवतके अठानवे वर्ष पीछें स्वर्ग गये

७ श्रीशिष्यनवस्वामीके पाट उपर यशोज्ञ स्वामी बैठे, सो बावीश वर्ष गृहस्थावासासमें रहे, और चौदह वर्ष व्रत पर्यायमें रहे अरु पंचास वर्ष तक युगप्रधान पदवीमें रहे, इसीतिरें सर्वायु ष्ठासी वर्षकी नोगके श्रीमहावीरसें ( १४८ ) वर्ष पीछें स्वर्गमें गये

८ श्रीयशोज्ञस्वामीके पाट उपर एक सनूतविजय और दूसरे श्रीजज्ञ बाहु, यह दोनो बैठे, तिनमें सनूतविजय तो बैतालीस वर्ष तक गृहस्थ रहे, और चालीश वर्ष व्रत पर्याय तथा आठ वर्ष युग प्रधान पदवी स

रस्ते लूटनादि, अनेक तरेंकी चोरीयोंसे अपने परिवारकी आजीविका करता था, एक दिन पांच सौ चोरोको ले कर राजगृह नगरमें जंबूजीके प रकों लूटने आया, तहां जंबूस्वामीने तिसकों प्रतिबोध करा, तब तिसने पांच सौ चोरोंके साथ वीक्षा श्रीजंबूजीके साथ लीनी इत्यादि जंबूजीका और प्रजवजीका अधिकार जंबूचरित्र तथा परिशिष्ट पर्वादि ग्रंथोंसे जान लेना प्रजव स्वामी तीस वर्ष गृहस्थ पर्याय, चौतालीश वर्ष व्रतपर्याय, तथा एकादश वर्ष युगप्रधान पदवी, सर्व पंचाशी वर्षकी आयु पूरी करके श्री महावीरसे पंचदत्तर वर्ष पीठे स्वर्ग गया

४ श्रीप्रजवस्वामीके पाट ऊपर श्रीशिष्यप्रजव स्वामी बैठे, जिनोने मनक साधुके वास्ते दशवैकालिक सूत्र बनाया, तिनकी उत्पत्ति ऐसे है - एकदा प्रस्तावे प्रजवस्वामीने रात्रिमें विचार कराकि मैरे पाट ऊपर कौन बैठेगा ? पीठे ज्ञान बलसे अपने सर्वसभमें पाट योग्य कोइ न देखा, तब परदर्शनीयोंको ज्ञान बलसे देखने लगा तब राजग्रह नगरमें शिष्यप्रजव न ट्ठकों यज्ञ करते दूयेको अपने पाट योग्य देखा, पीठे प्रजव स्वामी वि दार करके सपरिवार राजगृह नगरमें आये वहां वो साधुओंको आदेश दीयाकि तुम यज्ञ पाठमें जाकर निष्ठाके वास्ते धर्म जान कदो, और यज्ञ करने वालोंको ऐसे कहो - “अदो कष्ट महो कष्ट तत्त्व विज्ञायते नहि” तब तिन साधुओंने पूर्वोक्त गुरुका कहना सर्व कीया, जब ब्राह्म णोंने “अदो कष्ट” इत्यादि सुना और तिस यज्ञ पाठमें शिष्यप्रजव ब्रा ह्मणने यज्ञ वीक्षा लीनी थी, तिसने यज्ञ पाठके दरवाजेमें खड़ेने अदो कष्ट इत्यादि मुनियोंका कहना सुनके विचार करने लगा कि ऐसा उप शम प्रधान साधु होते हैं, इस वास्ते यह असत्य ( जूठ ) नहीं बोलते हैं, इस्से मनमें सशय होगया, तब उपाध्यायको पूछा कि तत्त्व क्या है ? तब उपाध्यायने कहा कि चार वेदमें जो कथन करा है, सो तत्त्व है, क्योंकि वेदोंके शिवाय और कोइ तत्त्व नहीं है ? तब शिष्यप्रजवने कहा कि तू दक्षिणाके लोभसे मुझको तत्त्व नहीं बतलाता है, क्योंकि राग द्वेष रहित, निर्मम, नि परिग्रह, शांत, दांत, महांत मुनियोंका कहना जूठा नहीं होता है, और तू मेरा गुरु नहीं तैने तो जन्मसे इस जगत्को उग नाही सीखा है, इस वास्ते तू शिक्षाके योग्य है इस वास्ते यातो मुझे

श्री स्थूलजङ्गस्वामीके पीठें उपर से चार पूर्व, प्रथम सहनन, प्रथम सस्थान, व्यवच्छेद हो गये, तथा श्रीमहावीरसे दोसौ बीस ( ११० ) वर्ष पीठे अश्वमित्र नामा चौथा कृणिकवादि निन्दव दूथा, और श्री स्थूलजङ्गीके समयमें बारां वर्षका दुर्जिह् ( काल ) पड़ा उस समयमें चङ्गुसका राज था तथा श्री महावीरके पीठें ( ११८ ) वर्ष व्यतीत हुए गग नामा पांचमां निन्दव दूथा

८ श्री स्थूलजङ्गके पीठे श्री स्थूलजङ्गीके दो शिष्य एक आर्यमहा गिरि, और दूसरा सुहस्ति सूरि, आठमें पाट उपर बैठे, तिसमें आर्यमहा गिरिके शिष्य १ वहुज, १ बलिस्तह, फेर बलिस्तहका शिष्य श्री उमा स्वातीजी जिसने तत्त्वार्थादि सूत्र रचे हैं, और उमास्वातीका शिष्य श्या माचार्य जिसने प्रज्ञापना ( पञ्चवणासूत्र ) बनाया, यह श्यामाचार्य श्रीमहावीरसें तीन सौ षड्वत्तर वर्ष पीठें स्वर्ग गया, और आर्य महागिरिजी तीस वर्ष षड्वासमें रहे, चालीस वर्ष व्रत पर्याय अरु तीस वर्ष युगप्र धान पदवी सर्वायु एक सौ वर्षकी जोगके स्वर्ग गया

और दूसरा आठमें पाटवाला सुहस्तिसूरि, जिसने एक निखारीकों की क्हा दीनी वो निखारी काल करके चङ्गुसका बेटा विंडुसार और विंडुसार का बेटा अशोक और अशोकका बेटा कुणाल तिस कुणालका बेटा स प्रति राजा दूथा, तिस सप्रति राजाने जैनधर्मकी बहुत वृद्धि करी, क्योंकि कल्प सूत्रके प्रथम ठेसेमें श्रीमहावीरके समयमें अवकी निसवत वहुत थोड़े देशोंमें जैनधर्म लिखा है, मारवाड, गुजरात, दक्षिण, पंजाब व गैरे देशोंमें जो जैनधर्म है, सो सप्रति राजाहीसें फैला है, यद्यपि इस कालमें जैनी राजाके न होनेसे जैनधर्म सर्व जगें नही, परंतु संप्रतिराजाके समयमें बहुत उत्थति पर था, क्योंकि सप्रति राजाका राज्य मध्यखंड और गंगापार और सिंधु पारके सर्व देशोंमें था, सप्रति राजाने अपने नौकरोंको जैनके साधुओंका वेप बना कर अपने सेवक राजाओंके जो शक, यवन फारसादि देशों थे, तिन देशोंमें भेजे, तिनोने तिन राजाओंको जैनके साधुओंका आहार विहार आचारादि सर्व बताया और समजाया पीठेसें साधुओंका विहार तिन देशोंमें कराकर लोकोंको जैन धर्मी करा, और संप्रति राजाने ( ९९००० ) निनानवें हजार जीर्ण ( पु

वायु नवे वर्षे जोगके स्वर्गमें गये, और जडबाहुस्वामीने १ आचार्यक नियुक्ति २ दशवैकालिकनियुक्ति ३ उत्तराध्ययन नियुक्ति ४ आचार्यकी नियुक्ति, ५ सूत्ररुदंग नियुक्ति, ६ सूर्यप्रज्ञप्ति नियुक्ति, ७ श्वेतिनामित नियुक्ति, ८ कल्प नियुक्ति, ९ व्यवहार नियुक्ति, १० दशा नियुक्ति, ये दश नियुक्तियों और १ कल्प, २ व्यवहार, ३ दशाश्रुतस्केध, यह नवमे पूर्वसे वक्षार करके बनाये और एक बहुत बड़ा जडबाहु नामे सहिता जो तिष शास्त्र बनाया, उपसर्गद्वर स्तोत्र बनाया, जैनमतीयों उपर बहुत उपकार करा इनही जडबाहुजीका सगा नाइ वराहमेहर हुआ, वो पहिले तो जैनमतका साधु हुआ था, फेर साधुपणां ठोडके वराही सहिता बनाइ और जो वराह मिहर विक्रमादित्यकी सजाका पन्ति था, वो दूसरा वराह मिहर था, सहिता कारक वो नहीं हुआ, इसका संपूर्ण वृत्तांत परिशिष्ट पर्वसे जान लेना श्रीजडबाहुस्वामी गृहस्थावासमें पैतालीस वर्ष रहे, सत्तारे वर्ष व्रतपर्याय, अरु चौदह वर्ष युगप्रधान, सब मिल कर बहत्तर वर्षकी आयु जोगके श्रीमहावीरसें एकसौ सत्तर ( १७० ) वर्ष पीछे स्वर्ग गये

४ यह श्रीसन्नतविजय अरु जडबाहुस्वामीके पाटुऊपर श्रीस्थूलजडस्वामी बैठे इनका बहुत वृत्तांत है, सो परिशिष्टपर्वमथसें जान लेना, १ प्रनवस्वामी, २ शिर्यंजवस्वामी, ३ यशोजडस्वामी, ४ सन्नतविजय, ५ जडबाहुस्वामी, ६ स्थूलजड, यह बढों आचार्य चौदह पूर्वके वेसा थे, श्री स्थूलजडस्वामी तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे, चौबीस वर्ष व्रतपर्याय, अरु पैतालीस वर्षयुगप्रधान पक्की, सर्वायु निनानवे वर्षकी जोगके श्रीमहावीरके पीछे ( ११५ ) वर्षे स्वर्ग गये श्रीमहावीरसें दोसौ चौदह वर्ष पीछे आपाठा चार्धके शिष्य तीसरे निन्दव हूये

स्थूलजडके वखतमें नवनवोंका एक सौ पंचावन ( १५५ ) वर्षका राज्य छेद करके चाणाक्ष्य ब्राह्मणने चङ्गुसराजाको राजसिद्धासन उपर बैठाया, और चङ्गुसके सत्तानोंने एक सौ आठ वर्ष तक राज्य कीया चङ्गुस मोरपालका बेटा था, इस वास्ते चङ्गुसका मौर्यवश कहते हैं यह चङ्गुस जैनमतका धारक आवक राजा था, यह चङ्गुस तथा नवनवका वृत्तांत देखनां होवे, तदा परिशिष्ट पर्व, उत्तराध्ययनवृत्ति तथा आवश्य क वृत्तिसें देख लेना.



नहीं, तब सिद्धसेनजीने कहा कि यह जो गौ चरानेवाले गोप है, येही मेरे तुमारे साक्षी रहे, ये जिसको कहदेंगे हारा सो हारा, तब वृद्धवादीने कहा बहुत अच्छा, येही साक्षी रहे, अब तुम बोलो तब सिद्धसेनजीने बहुतसंस्कृत जापा बोली और चुप करी तब गोपोंने कहा यह तो कुठजी नहीं जानता, केवल कचा बोलके हमारे कानोंको पीडा देता है, तब गोप कहने लगे हे वृद्ध ! तू बोल ? पीछे वृद्धवादी अवसर देख के कछा बांध कर तिन गोपोंकी जाषामें कहने लगे, और थोड़े थोड़े कूदनेजी लगे, जो ठंड उच्चारण सो कहते हैं “ नविमारिये नविचोरियें, परदारागमणनिवारिये ॥ थोवाथोवदाइयें, सगिमष्टेमष्टेजाइयें ॥ १ ॥ फेरजी बोलें और ना चने लगे ॥ ठंड ॥ कालो कबल नीचोवट्ट, ठाठें जरिठ बीवडो थट्ट ॥ ए वड पडीउनीले जाड, अवरकिसोठे सग निजाड ॥ २ ॥ यह सुनकर गोप बहुत खुशी हुये और कहने लगेकि वृद्धवादी सर्वज्ञ है, इसने कैसा मीठा कानोंको सुखदायी हमारे योग्य उपदेश कहा, और सिद्धसेन तो कुठ नहीं जानता तब सिद्धसेनजीने वृद्धवादीको कहा कि हे नगवन् ! तुम मुझको दीक्षा देके अपना शिष्य बनाउ क्योंकि मेरी प्रतिज्ञा थी के जो गोप मुझे हाराकहेंगे, तो मैं हारा, और तुमारा शिष्य बनूंगा यह सुन कर वृद्धवादीने कहा कि नृगुपुरमें राजसजाके बीच तेरा मेरा वाद होवेगा, परंतु यह गोपोंकी सजामें वादही क्या है ? तब सिद्धसेनने कहा मैं अवसर नहीं जानता, तुम अवसरके ज्ञाता हो, इस वास्ते मैं हारा पीछे वृद्धवादीने राजसजामें उसको पराजय करा, तब सिद्धसेनने दीक्षा लीनी. गुरुने वनका नाम कुमुदचंडजी दीया, पीछे जब आचार्य पदवी दीनी, तब फिर सिद्धसेन दिवाकर नाम रक्का पीछे वृद्धवादी तो और कहीको विहार कर गये, और सिद्धसेन दिवाकर अवती (यज्ञयनमें) गये, तब यज्ञयनका संघ सन्मुख आया, और सिद्धसेन दिवाकरको सर्वज्ञ पुत्र ऐसा बिरुद दीया, ऐसा बिरुद बोलते हुए अवती नगरीके चौकमें लाये, तिस अवसरमें राजाविक्रमादित्य हाथी उपर चढा हुआ सन्मुख मिला तब राजाने सर्वज्ञ पुत्र ऐसा बिरुद सुनके तिनकी परीक्षा वास्ते हाथी उपर बैठेहीनें मनसें नमस्कार करा तब आचार्यने धर्मज्ञान कहा, तब राजाने पूछाकि विनाही वचना करे, आप मेरेको धर्मज्ञान क्यों कर कहा ? क्या यह

राने) जिनमदिरोंका उद्धार कराया अर्थात् पुराने टूटोफूटोंको नवा बनाया, और ठवीस हजार (२६०००) नवीन जिनमदिर बनवाये, और सोने, चाँदी पीतल, पाषाण, प्रमुखकी सवा कौड़ प्रतिमा बनवाइ, तिसके बनवाये मदिर नमौल, गिरनार. शत्रुजय, रतलाम, प्रमुख अनेक स्थानोंमें खड़े हमने अपनी आखोंसे देखे है, और सप्रतिकी बनवाइ जिनप्रतिमा तो हमने सैंकड़ों देखी हैं, इस सप्रति राजाका वृत्तांत परिशिष्ट पर्वादि ग्रंथोंसे समग्र जान लेनां

तिसही सुहस्ती सूरि आचार्यने उज्जयनकी रहने वाली नइसेठानीका पुत्र अवती सुकुमालको दीक्षा दीनी और जहा उस अवती सुकुमालने काल करा था, तिस जगे तिस अवती सुकुमालके महाकाल नाम पुत्रने जिनमदिर बनवाया, और तिस मदिरमें अपने पिताके नामसे अवति पार्श्वनाथकी मूर्ति स्थापन करी, कालांतरमें ब्राह्मणोंने अपना जोर पा कर तिस मदिरमें मूर्तिकों देव दाब कर उपर महादेवका लिंग स्थापन करके महाकाल ( महादेवका ) मदिर प्रसिद्ध कर दीया, पीछे जब राजा विक्रम उज्जयनमें राजा हुआ, तिस अवसरमें कुमुदचड अर्थात् सिद्धसेन दिवाकर नामा जैनाचार्यने कल्याणमदिर स्तोत्र बनाया, तब शिवका लिंग फटकर बीचमेंसे पूर्वोक्त पार्श्वनाथकी मूर्ति फिर प्रगट हुई

इसका सबध ऐसा हैकि:- विद्याधर गह्वमें स्कंदिल्लाचार्य तिनका शिष्य वृद्धवादि आचार्य था, तिस अवसरमें उज्जयनका राजा विक्रमादित्य था, तिसका मंत्री कात्यायन गोत्री देवक्षिनामा ब्राह्मण तिसकी वैवसिका नामा स्त्री, तिनका पुत्र सिद्धसेन सो विद्याके अजिमानसे सारे जगतके लोकोंको ठणवत् ( घासफूसशमान ) समज्ता था, और ऐसा जानता था कि - मेरे समान बुद्धिमान कोइनी नहीं, और जो मुझको वादमें जीत लेवे, तो मैं उसकाही शिष्य बन जाऊंगा पीछे तिसने वृद्धवादीकी बहुत कीर्ति सुनी उनके सन्मुख जाने वास्ते सुखासन ऊपर बैठके नृग कष्ट ( नहोंच ) कीतरफ चला जाता था, तिस अवसरमें वृद्धवादीनी र स्तेमें सन्मुख आता हुआ मिला, तब आपसमें दोनोंका आलाप सलाप हुआ पीछे सिद्धसेनजीने कहा कि मेरे साथ तुम वाद करो, तब वृद्धवादीने कहा कि वाद तो करूँ, परंतु इस जगलमें जीते दारेका कहनेवाला कोइ शास्त्री

स्थान मिल गया सर्व पुस्तक बीचमें रह गये और आकाशसें देव वाणी  
 दूइ कि तू इन पुस्तकोंके वाचने योग्य नहीं आगे मत वांचना, वांचेगा  
 तो तत्काल मर जायगा तब सिद्धसेनने मरके विचार करा कि दो विद्यामि  
 ली दोही सही. पीछे चित्रोदसें विहार करके पूर्वदेशमें कुमार पुरमें गये,  
 तहां देवपाल राजा था तिसको प्रतिबोधके पक्का जैनधर्मा करा, तहां वो  
 राजा सिद्धांत श्रवण करता है, जब ऐसे कितनाक काल व्यतीत हुआ,  
 तब एकदा समय राजा ठाना आया, और आसुसें नेत्र जर कर कहने  
 लगा कि—हे जगवन् हम बड़े पापी हैं, क्योंकि आपकी ऐसी उत्तम गो  
 ष्टिका रस नहीं पीसके हैं ? कारण कि हम बड़े सकटमें पड़े हैं, तब आ  
 चार्यने कहा तुमको क्या सकट हुआ ? राजा कहने लगा कि बहुत मेरे  
 वैरीराजे एकिते दो कर मेरा राज्य छीना चाहते हैं, तब फेर आचार्यने  
 कहा कि हे राजन् ! तू आकुल व्याकुल मत हो, जब मैं तेरा साहायक हों  
 तो फेर तुझे क्या चिंता है ? यह बात सुन कर राजा बहुत राजी हुआ,  
 पीछे आचार्यने राजाको पूर्वोक्त दोनो विद्याओंसें समर्थ कर दीया, तिन  
 विद्याओंसें परदल जग हो गया, तिनका मेरा रुमा सर्व राजानें छूट ली  
 या, तब राजा आचार्यका अत्यंत जक्त हो गया वस्सें आचार्य सुखोंमें पडके  
 शिषिलाचारी हो गया यह स्वरूप वृद्धवादीजीने सुना, पीछे क्या करके  
 तिनका वद्वार करने वास्ते तहां आये, दरवाजे आगे खड़े हो कर कह  
 ला जेजा कि एक बूढ़ा वादी आया है, तब सिद्धसेनने बुला कर अपने  
 आगे बैठाया वृद्धवादी, सर्व अपना शरीर वस्त्रसें ढांक कर बोले—“अण  
 फुल्लियफुल्लमतोडहिं, मारोवामोडिहिंमणुकुसुमेहिं ॥ अच्चिनिंरंजणजिण, हिं  
 म्हिकाइवणेणवणु ॥१॥ इस गाथाको सुणकर सिद्धसेनने विचारजी करा  
 परंतु अर्थ न पाया तब विचार करा कि क्या यह मेरे गुरु वृद्धवादी है ? जिनके  
 कहेका मैं अर्थ नहीं जानता हू पीछे जब बार बार देखने लगा तब जाना  
 कि यह मेरा गुरु है पीछे नमस्कार करके कृमापन मांगा, और पूर्वोक्त श्रुति  
 कका अर्थ पूछा, तब वृद्धवादी कहने लगे “अणफुल्लियेत्यादि” अणफुल्लिय  
 फुल्ल प्राकृतके अनतहोनेसें अप्राप्त फूल फलोंको मत तोड़, जावार्थ यह  
 है कि योग जो है, सो कल्पवृक्ष है, किस तरें कि जिस योग रूप वृक्षमें यम नि  
 यम तो मूल है, और ध्यान रूप बड़ा स्कंध है, तथा समता पणां कवि

धर्मज्ञान बहुत सस्ता है ? तब आचार्यने कहा यह धर्मज्ञान क्रोडधिता मणि रत्नोंसेजी अधिक है, जो कोई हमको वदना करता है, उसको हम धर्मज्ञान कहते हैं और ऐसेजी नहीं, जो तुमने हमको वदना नहीं करी ? तुमनेजी अपने मनसे वदना करी, तो मनही सर्व कार्योमें प्रधान है, इस वास्ते हमने धर्म ज्ञान कहा है, और तुमनेजी मेरी परीक्षा वास्तेही मनमें नमस्कार करा है, तब विक्रमराजा तुष्टमान हो कर हाथीसे नीचे उतर कर सर्वसयकी समझ वदना करी, और एक क्रोड अशर्फी बीनी परंतु आचार्यने अशर्फीयों नही लीनी क्योंकि वे त्यागी थे, और राजाजी पीडा नहीं लेता, तब आचार्यकी आज्ञासे सघपुरुषोंने जीर्णोद्धारमें लगा बीनी, राजाके दफतरमें तो ऐसा लिखा है ॥श्लोक॥ धर्मज्ञाने इतिप्रोक्ते, दूरा डष्टि तपाण्ये ॥ सूरये सिद्धसेनाय, ददौकोटि धराधिप ॥१॥ श्रीविक्रमराजाके आगे सिद्धसेन दिवाकरने ऐसेजी कहा था कि ॥गाथा॥ पुष्पे वास तदस्ते, सयंमि वरिस्ताण नवनवश्कलि ए ॥ दोइ कुमार नरिंदो, तुहविक्रम राय सारिङो ॥ १ ॥ अन्यथा सिद्धसेन चित्रकूटमें गये तहां बहुत पुराने जिनमंदिरमें एक बड़ा मोटा स्थंन देखा, तब किसीको पूछा कि यह स्थंन किसतराका है ? एह सुन कर किसीने कहा कि यह स्थंन औषध इष्यमय जलादि करके अनेय वज्रवत् है इस स्थंनमें पूर्वाचार्योंने बहुत रहस्य विद्याके पुस्तक स्थापन करे हैं, परंतु किसीसें यह स्थंन खुलता नहीं यह सुन कर सिद्धसेन आचार्यने तिस स्थंनको सूधा तिसकी गंधसे तिसकी प्रतिपद्ही औषधीयोंका रस बांटा तिससें वो स्थंन कमजकी तरें खिड़ गया, तब तिसमें पुस्तक देखा तिनमें सु एक पुस्तक छे कर बांचा, तिसके प्रथम पत्रमें वो विद्या लिखी पाइ, एक स रसों विद्या और दूसरी सुवर्णविद्या, तिसमें सरसों विद्या उसको कहते हैं, कि जो काम पड़े तब मंत्रवादी जितने सरसोंके दाने जपके जलाशयमें गेरे उतनेही अश्वार वैतालीश प्रकारके आशुधों सहित बाहिर निकलके मैदानमें खड़े हो जाते हैं, तिनोंसें शत्रुकी सेना नग हो जाती है, पीठें जब वो कार्य पूरा हो जाता है, तब अश्वार अदृश्य हो जाते हैं, और दूसरी देमविद्यासें विनामेदनतके जितना चाहे, उतना सुवर्ण हो जाता है, ये दो विद्या सिद्धसेनने लेलीनी, पीछे जब आगे बांचने लगा तब

व्याहृत विश्वलोक, मनादिमध्यातमपुण्यपापं ॥१॥ इत्यादि प्रथमही श्लोक पढ़नेसे लिंगमेंसे धूआं निकला तबलोक कहने लगे शिवजीका तीसरा नेत्र खुला है, अब इस जिह्मकों अग्निनेत्रसें जस्म करेगा तबतो विजलीके तेजकी तरें तड़तड़ाट करता प्रथम अग्नि निकला पीछें श्रीपार्श्वनाथजीका बिंब प्रगट हुआ, तब बाढ़ी सिद्धसेननें कल्याण मंदिरादि स्तवनों करी स्तवन करके हुमापन मांगा, तब राजा विक्रमादित्य कहने लगाकि हे जगवन् ! यह क्या अदृश्यपूर्व देखनेमें आया ? यह कौनसा नवीन देव है ? और यह प्रगट क्यों कर हुआ ? तब सिद्धसेनजीनें आवतीसुकुमाल और तिसके पुत्र महाकालने पिताके नामसें आवती पार्श्वनाथका मंदिर और मूर्ति बनाइ स्थापन करी, तिसकी कितनेक वर्ष लोकोंने पूजा करी अवसर पाकर ब्राह्मणोंने जिनप्रतिमाकों देव दाबके ऊपर यह शिवलिंग स्थापन करा इत्यादि सर्व वृत्तांत कहा, और हे राजन् ! इस मेरी स्तुतिसें शासनदेवताने शिवलिंग फाड़के बीचमेंसें यह प्रतिमा प्रगट कर दीनी, अब तूं सत्यासत्यका निर्णय कर ले तब विक्रमादित्यने एक सौ गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये, और देवके समक्ष गुरु मुखसें बारां व्रत ग्रहण करे, और सिद्धसेनकी बहुत महिमा करी, अपने स्थानमें गया और बाढ़ीइ ( सिद्धसेनदिवाकरकों ) सधने जिनधर्मकी प्रजावनासें तुष्टमान हो कर सधमें लीया अरु पूर्ववत् आचार्य बनाया

एकदा प्रस्तावे सिद्धसेन दिवाकर विहार करते दूये मालवेके देशमें जो 'उ' कारनामें नगर है, तहां गये, तिसनगरके जक्त श्रावकोनें आचार्यकों विनती करी, जैसे हे जगवन् ! इसी नगरके समीप एक गाम था, तिसमें सुंदर नामा राजपुत्र ग्रामणी था, तिसकी दो स्त्रीयां थी, एक स्त्रीके प्रथम पुत्री जन्मी वो स्त्री मनमें स्त्रीजी तिस अवसरमें उसकी सौकनजी प्रसूत होने वाली थी, तब तिस बेटावालीनें विचारा कि इसके पुत्र न होवे, तो ठीक है, क्योंकि नहीं तो यह पतिकों बहजन हो जावेगी, तब दाइसें मिलके वस्सें पैदा हुआ पुत्रकों बाहिर गिरा दीया, और तत्कालका मरा हुआ लड़का उसके आंगें रख दीया पीछें जौनसा लड़का बाहिर गेरा गया था, उसकों कुलदेवीनें गौका रूप करकें पाता जब आठ वर्षका हुआ-तब इस 'उ'कार नगरके शिवचक्र नके अधिकारी जरदनें देखा और अपना चेला बना लीया, एकदा प्रस्तावे

पणां, वक्तापणां, यश, प्रताप, मारण, यथाटन, स्तनन, वक्तापणादि सिद्धियों कि जो सामर्थ्य सो फूल है, अरु केवलज्ञान फल है, अजी तो योगकल्पवृक्षके फूलही लगे हैं सो केवल ज्ञानरूप फल करके आगे फलेंगे इस वास्ते तिन अग्राप्त फल पुष्पोंको क्यों तोड़ता है ? अर्थात् मत तोड़ ऐसा जावार्थ है, तथा “मारोवा मोडिहि” जहाँ पाँच महाव्रत आरोपा है तिनको मत मरोड “मणुकुसुमेत्यादि” मनरूप फूलें करी निरंजन जिन पूजय (निरंजन जिनको पूज) “वनात् वनकिंकिणसे” राजसेवादि बुरे नीरस फल क्यों करता है ? इतिपयार्थ तब सिद्धसेनसूरिने गुरु शिष्याको अपने शिर उपर धरके और राजाको पूछके वृद्धवादी गुरुके साथ विद्वार करा, और निबिड चारित्र धारण करा, अनेक आचार्योंसें पूर्वोक्ता ज्ञान सीखा, वृद्धवादी स्वर्गवासी हुए पीछे एकदा सिद्धसेनजीने सर्वस्य एकिष्ठा करके कदा कि जेकर तुम कहोतो सर्वांगमोको मैं संस्कृतनापामें करदेउ तब श्रीसयने कदा क्या तीर्थकर गणधर संस्कृत नही जानते थे ? जो तिनहोंने अर्द्धमागधीनापामें आगम करे ? ऐसी बात कहनेसे तुमको पारांचिक नाम प्रायश्चित्त आवेगा हम तुमसें क्या कहें ? तुम आपही जानते हो, तब सिद्धसेनने विचार करके कदा कि, मैं मौन करके बारावर्षका पारांचिक नाम प्रायश्चित्त लेके गुप्त मुख वस्त्रिका, रजोहरणादि लिंग करके और अवधूत रूप धारके फिरुगा, ऐसे कह कर गङ्गाको छोड़के नगरादिकोंमें पर्यटन करने लगे बारा वर्षके पर्यंतमें यक्षयन नगरी में महाकालके मंदिरमें शोफालिकाके फूलों करके वस्त्ररंगे पहने हुए सिद्धसेनजी जाके बैठा तब पूजारी प्रमुख लोकोंने कदा तुम महादेवको नमस्कार क्यों नही करता ? सिद्धसेन तो बोलतेही नहीं हैं ? ऐसे लोकों को परंपरासें सुन कर विक्रमादीत्यनेनी तहां आ कर कदा “क्षीरजिजि श्लोनिश्लोकिमितित्वयावेवोनवद्यते” तब सिद्धसेनने कदा मेरे नमस्कारसें तुमारे देवका लिंग फट जायगा फेर तुमको महाछ ख होवेगा मैं इस वास्ते नमस्कार नही करता हू तब राजाने कदा लिंग फटे तो फट जानेयो परंतु तुम नमस्कार करो, पीछे सिद्धसेनजी पद्मासन बैठके कहने लगा, सुनो तत्र द्वात्रिंशका करके देवका स्तवन करने लगा, तथा हि ॥ श्लोक ॥

इवज्जवृत्तम् ॥ स्वपञ्चव नूतसहस्रनेत्र, मनेकमेकाक्षरजावलिङ्ग ॥ अष्टम

सेनकी गङ्गा पास खबर करनेकों जेजा, तिस नट्टने सूरियोंकी सजामे आधा श्लोक पढा और बार बार पढताही रहता है, वो आधा श्लोक यह है — स्फुरन्ति वादिखद्योता, सांप्रतं दक्षिणापथे ॥ जब बार बार यह अर्ध श्लोक सुना तब सिद्धसेनकी बहिन साधवीनें सिद्ध सारस्वत मंत्रसें अर्ध श्लोक पूरा करा नूनमस्तगतोवादी, सिद्धसेनोदिवाकर ॥ १ ॥ पीछे तिस नट्टने सर्ववृत्तांत सुनाया तब संघकों बड़ा शोक हुआ ॥ इति सिद्धसेन दिवाकरका प्रसंगसे संबंध कथन करा ॥

यह सुदृष्टि आचार्य तीस वर्ष गृहस्थावाप्तमें रहे और चौबीसवर्ष व्रत पर्याय, तथा बैतालेश वर्ष युगप्रधान पदवी सब मिलकर एक सौ वर्षकी आधु नोगके श्रीमहावीरसे पीछे दोसौ एकानवे ( १९१ ) वर्ष पीछे स्वर्ग गये, ये आवमें पाट आर्यमहागिरि और सुदृष्टि आचार्य हुए.

ए श्रीसुदृष्टिसूरिके पाट उपर श्रीसुस्थित और सुप्रतिबद्ध नामा दो शिष्य बैठे, तिनोने क्रोड़ों बार सूरिमंत्रका जाप करा, इतवास्ते गङ्गाका कोटिक ऐसा दूसरा नाम श्रीसयने रक्ता, क्योंकि सुधर्मस्वामीसें ले कर आवपाट तक तो अथनगर निर्गमगङ्गा नाम था पीछे दूसरा कोटिक नाम हुआ.

१० श्रीसुस्थितसूरिके पाट उपर श्रीइन्द्रिसूरि हुआ इस अवसरमें श्री महावीरसें चारसौ त्रेपन ( ४५३ ) वर्ष पीछे गर्दनिज्जराजाके उद्घेद क रणोंवाला दूसरा कालिकाचार्य हुआ, इसकी कथा कल्पसूत्रमें प्रसिद्ध है, और श्रीमहावीरसें ( ४५३ ) वर्ष पीछे नृगुकुल ( जडौंचमें ) श्रीआर्य ख पुटाचार्य विद्याचक्रवर्ती हुआ, इनका प्रबध श्रीप्रबधचिंतामणिग्रंथ तथा हारिजडी आवश्यककी टीकासें जान लेना और प्रजावक चरित्रमें ऐसा लिखा है कि — श्रीमहावीरसें ( ४८४ ) वर्ष पीछे खपुटाचार्य और ( ४६४ ) ( ४६७ ) वर्ष पीछे आर्यमगु, लुद्धवादि, पावलित तथा कल्याण मविरका कर्ता उपर जिसका प्रबध लिख आये सो सिद्धसेन दिवाकर हुआ जिनोने विक्रमादित्यको जैनधर्मी करा सो विक्रमादित्य श्रीमहावीरसें ( ४७० ) वर्ष पीछे हुआ सो ( ४७० ) वर्ष ऐसे हुएहैं,— जिस रात्रिमें श्रीमहावीरजी निर्वाण हुए उस दिन अवति नगरीमें पालक नामा राजेकों राज्याजियेक हुआ, यह पालक चक्षुप्रद्योतका पोता था तिसका राज्य ( ६० ) वर्ष रहा, तिसके पीछे श्रेणिकका बेटा कोणिक और कोणिकका बेटा उदायी जब वि

कन्य कुब्ज देशका राजा आंखोंसे आंधाने विग् विजय कार्यसें तहां पठाव  
करा तब रात्रिमें उस ठोटे चेलेको शिवजन्त व्यतर देवतानें कहा कि शेष  
जोगराजाकों देना, उसकी आंख अच्छी हो जायेंगी, तैसेही करा तिससें राजाकी  
आंख अच्छी हो गई तब राजाने सौ गाम मंदिरके खरब वास्ते दीये और यह  
बड़ा कंचा जो शिवका मंदिर है सोजी उसीनें बनवाया, और हम इस न  
गरमें रहते हैं परंतु मिथ्यादृष्टियोंके बलवान् दोनोंसे हम जिनमंदिर बनाने  
नहीं पाते हैं, इस वास्ते आपसें विनति करते हैं, कि इस मंदिरसें अधिक हम  
मारा मंदिर यहां बने तो ठीक है, और आप सर्वतरसें सामर्थ्य हों तिनका  
वचन सुनकर वार्दिने आवतीमें आकर चार श्लोक हाथमें ले कर विक्र  
मादित्यके द्वार पास आये दरवाजे द्वारके मुखसें राजाकों कहाया “ विदुः  
जिहुरायातस्तिष्ठति द्वारवारित हस्तन्यस्तचतु श्लोक उतागच्छतुगच्छतु ॥ १ ॥  
तिस श्लोककों सुनकर विक्रमादित्यनें बदलेंका श्लोक लिखकर जेजा ”  
दत्तानिदशजङ्घाणि, शासनानिचतुर्वश ॥ हस्तन्यस्तचतु श्लोक उतागच्छतु  
गच्छतु ॥ २ ॥ तिस श्लोककों सुनकर आचार्यने कहा जेजा कि जिह्वा तु  
मकों मिला चाहता है, परंतु धन नहीं लेता तब राजाने सन्मुख बुजवाये  
और पिढानके कहने लगा कि गुरुजी बहुत दिनों पीठें दर्शन दीया तब आ  
चार्य कहने लगे धर्मकार्यके करनेसें बहुत दिन हूये धिरसें आना हुआ अब  
चार श्लोक तुम सुनो ॥ अपूर्वेय धनुर्विद्या, नवताशिक्षिता कुत ॥ मार्गणौघ  
समन्येति, गुणोयातिविगतर ॥ १ ॥ सरस्वतीस्थितावक्रे, लक्ष्मीकरसरो  
रुहे ॥ कीर्त्ति किंकुपित राजन्, येन देशांतरंगता ॥ २ ॥ कीर्त्तिस्तेजांतजा  
ह्येव, चतुरंजोधिमङ्गनात्, ॥ आतपायधरानाथ, गतामार्त्तममल ॥ ३ ॥  
सर्वदासर्वदोसीति, मिथ्या सस्तूयसे जनै ॥ नारयोलेजिरे पृष्ठ, नवहूपर  
योषित ॥ ४ ॥ यह चारों श्लोक सुनके राजा बहुत खुश हुआ, और  
आचार्यकों कहने लगा जो मेरा राज्यमें सार है, सो मांगो तो देवत तब  
आचार्यनें कहा मुझेतो कुछनी नही चाहिता, परंतु “ उकार नगरमें चतु  
र्द्वार जैनमंदिर शिवमंदिरसें उचा बनाऊ और प्रतिष्ठाजी कराऊ तब रा  
जानें वैसेंदी करा तब जिनमत प्रजावना देखके सघ तुष्टमान हुआ, इ  
त्यादि प्रकारसें जैनधर्मकी प्रजावना करते हुए दक्षिणदेशमें प्रतिष्ठानपुरमें  
जा कर थनशन करके देवलोक गये, तब तहांसे सपने एक नष्टकों लिख



प्रधान आचार्य हूये तथा श्रीमहावीरसे पांचसौ तेतीस ( ५३३ ) वर्ष पीछे श्रीआर्चरक्षितसूरिने सर्व शास्त्रोंका अनुयोग पृथग् पृथग् कर दीये, ये प्रत्येक आवश्यक वृत्तिसें जान लेना. तथा श्रीमहावीरसे ( ५४० ) में वर्ष त्रैराशिके जीतने वाले श्रीगुप्त सूरि हूये, तिनका प्रबध उत्तराध्यनकी वृत्ति तथा श्रीविशेषावश्यकसे जान लेना, जिसने त्रैराशिक मत निकाला तिसका नाम रोहगुप्त था, वो श्रीगुप्तसूरिका चेलाथा, जिसका उद्भूत गोत्र था जब रोहगुप्त गुरुके आगे द्वारा, और मत कदाग्रह न ठोडा, तब अंतरजिका नगरीके बलश्रीराजाने अपने राज्यसे बाहिर निकाल दीया, तब तिस रोहगुप्तने कणाद नाम शिष्यकरा, उसको १ इन्द्र, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, इन षट् पदार्थोंका स्वरूप बतलाया, तब तिस कणादने वैशेषिक सूत्र बनाये, तहांसे वैशेषिक मत चला

१४ श्रीवज्र स्वामीके पाठ ऊपर चौदवे श्रीवज्रसेन सूरि बैठे, वे इन्द्रिक्में श्रीवज्र स्वामीके वचनसे सोपारक पत्तनमें गये तहां जिनदत्तके घरमें ईश्वरी नामा तिसकी चार्याने लाख रूपकके खरचनेसे एक हामी अन्नकी रांधी, जिसमें विष ( जहर ) मालने लगी, क्योंकि उनोंने विचाराथा कि अन्न तो मिलता नहीं तिस वास्ते जहर खाके सर्व घरके आदमी मर जायेंगे, तिस अवसरमें श्रीवज्रसेन सूरि तहां आये, वो उनको कहने लगे कि तुम जहर मत खाउ कलको सुगाल हो जावेगा तैसेही हूआ तब तिन शेवके चार पुत्रोंने दीक्षा लीनी, तिनके नाम लिखते हैं - १ नागेन्द्र, २ चंद्र, ३ निवृत्त, ४ विद्याधर, तिन चारोंसे स्व स्व नामके चार कुल बने यह वज्रसेन सूरि नव वर्ष तक गृहस्थावासमें रहे और ( ११५ ) वर्ष समान साधुव्रतमें रहे तथा तीन वर्ष युग प्रधान पदवीमें रहे सर्वांगु ( ११० ) वर्षकी जोगके श्री महावीरसे ( ६१० ) वर्ष पीछे स्वर्ग गये, यहां श्रीवज्रस्वामी और वज्रसेन सूरिके बीचमें आर्य रक्षित सूरि तथा श्री उर्वजिका पुष्यसूरि, यह दोनो युग प्रधान हूये, श्रीमहावीरसे ( ५०४ ) वर्ष पीछे सातवा निन्दव हूआ, तथा श्रीमहावीरसे ( ६०९ ) वर्ष पीछे श्री कृष्ण सूरिका शिष्य शिवभूति नामे था तिनने दिगंबर मत प्रवृत्त करा, सो अधिकार विशेषावश्यकदिकोंसे जान लेना

१५ श्रीवज्रसेन सूरिके पाठ ऊपर श्रीचंद्रसूरि बैठा, तिनके नामसे गद्य

ना पुत्रके मरा तब तिसकी गद्दी उपर नंद नामा नाइ बैठा, तिनकी का  
में सर्व नंदनामा नव राजे दूए तिनका राज्य ( १५५ ) वर्ष तक रहा ।  
वमें नदकी गद्दी उपर मौर्यवशी चङ्गुप्त राजा हुआ तिसका बेटा बिं  
सार तिसका बेटा अशोक तिसका बेटा कुणाल तिसका बेटा संप्रति महार  
जादि दूए, इन मौर्यवशीयोका सर्व राज ( १०८ ) वर्ष तक रहा यह ।  
वोक्त सर्वराजे प्रायें जैनमत वाले थे तिनके पीढे तीस वर्ष तक पुष्पमि  
राजाका राज्य रहा, तिस पीढे बलमित्र, जालुमित्र, यह दोनो राजाक  
राज्य ( ६० ) वर्ष तक रहा, तिस पीढे ननवाहन राजाका राज्य ( ४०  
वर्ष तक रहा, तिस पीढे तेरा वर्ष गर्दनिध्रीका राज्य रहा, और चार व  
शकोका राज्य रहा, पीढे विक्रमादित्यने शकोको जीतके अपना राज  
जमाया यह सर्व ( ४४० ) वर्ष दूए

११ श्रीइन्द्रविज्र सूरिके पाट ऊपर श्रीविज्रसूरि दूये १२ विज्र सूरिके पाट  
उपर श्रीसिद्धगिरि सूरि दूये, १३ श्रीसिद्धगिरिजीके पाट ऊपर श्रीवज्र  
स्वामी दूये, जिनको बाल्यावस्थासे जातिस्मरण ज्ञान था, जिनको आका  
शगमन विद्याजी थी, जिनोने दूसरे बारा वर्षी कालमें सघकी रक्षा करी  
तथा जिनोने दक्षिणपथमें बौधोके राज्यमें श्रीजिनेद्विपूजा वास्ते फूल लाके  
दीये, बौद्धराजाको जैनमती करा, यह आचार्य पीढिजा वंशपूर्वका पाठक  
हुआ, जिनोसे हमारी वज्री शाखा उत्पन्न हुई, इनका प्रबंध आवश्यक वृ  
त्तिसें जान लेना सो वज्रस्वामी श्रीमद्दाबीरसे पीढे चार सौ ढानवे और  
विक्रमादित्यके सवत ढवीसमें जन्मे, और आठ वर्ष घरमें रहे चौताजीस  
वर्ष समान साधुव्रतमें रहे और ढवीस वर्ष युगप्रधान पदवीमें रहे, सर्वांश  
अष्टाशी वर्षकी जोगी, तथा इन आचार्यके समयमें जावडशाह सेठने श्री  
शत्रुजय तीर्थका सवत् ( १०८ ) में तेरहवा बड़ा ठकार करा, तिसकी श्री  
वज्र स्वामीने प्रतिष्ठा करी यह श्रीवज्र स्वामी श्रीमद्दाबीरसे ( ५०४ ) वर्ष  
पीढे स्वर्ग गये, इन श्रीवज्र स्वामीके समयमें वंशमा पूर्व और चौथा सं  
दनन और चौथा सस्थान व्यवहरेद होगये, यहां श्रीसुद्धस्ती सूरि आठमें  
और श्रीवज्र, स्वामी तेरहवे पाटके बीचमें अपर पटावलिषोमें १ श्रीगुण  
सुंदरसूरि, २, श्रीकालिकाचार्य, ३ श्रीस्कंधिलाचार्य, ४ श्रीरेवतमित्रसूरि,  
५, श्रीधर्मसूरि, ६ श्रीनङ्गुसाचार्य, ७ श्रीगुसाचार्य, यह सात क्रमसे युग

नमिजवन, प्रतिष्ठयामहितपाणिसौभाग्य ॥ अनवधीराचार्य, स्त्रिनि. शतै  
साधिकै राज्ञ ॥ १ ॥

११ श्रीवीरसूरिके पाट कपर श्रीजयदेवसूरि बैठे, १३) श्रीजयदेवसूरि  
रिके पाट कपर श्रीदेवानवसूरि बैठे इस अवसरमें श्रीमहावीरसे ( ७४५ )  
वर्ष पीछे बलनी नगरी जग हूइ, तथा ( ७७१ ) वर्ष पीछे चैत्यस्थिति  
तथा ( ७७६ ) वर्ष पीछे ब्रह्मद्विपिका १४ ) श्रीदेवानवसूरिके पाट कपर  
श्रीविक्रमसूरि बैठे, १५) श्रीविक्रमसूरिके पाट कपर श्रीनरसिंहसूरि बैठे  
यत ॥ नरसिंहसूरिरासी, दतोऽखिलग्रथपारगोयेन ॥ यद्गोनरसिंहपुरे, मांस  
रतिस्त्रयाजितास्वगिरा ॥ १ ॥ १६ ) श्रीनरसिंहसूरिके पाट कपर श्रीतमुड  
सूरि बैठा ॥ श्लोक ॥ वसततिजकावृत्तम् ॥ खोमीणराजकुजजोपि समुडसूरि,  
गङ्गा शशास किल य प्रवण प्रमाणी ॥ जित्वातदाक्षपनकान् स्ववश वि  
तेने, नागछुदेसुजगनाथनमस्यतीर्थम् ॥ १ ॥ १७ ) श्रीतमुडसूरिके पाट कपर  
श्रीमानदेव सूरि हुए ॥ श्लोक ॥ वसततिलकावृत्तम् ॥ विद्यासमुडहरिजडमुनी  
डमित्रं, सूरिर्विजुव पुनरेव हि मानदेव ॥ मांघात्प्रयातमपियोनघसूरिमित्रं,  
लेनेबिकामुखगिरा तप सोऽक्षयते ॥ १ ॥ श्री महावीरसे एक हजार वर्ष  
पीछे सत्यमित्र आचार्यके साथ पूर्वाका व्यवहारे हुआ, यहां १ श्रीनाग  
हस्ति, २ रेवतीमित्र, ३ ब्रह्मदीप, ४ नागार्जुन, ५ नूतद्विज, ६ श्रीकाल  
कसूरि, ये है युगप्रधान यथाक्रमसे श्रीवज्रसेनसूरि और सत्यमित्रके  
बीचमें हुए, इन पूर्वोक्त है युगप्रधानोंमेंसे शक्तानिबधित और प्रथमानु  
योग सूत्रोंका सूत्रधार कठप श्रीकालिकाचार्य श्रीमहावीरसे ( ७७३ ) वर्ष  
पीछे पंचमीसे चौथकी सवत्सरी करी तथा श्रीमहावीरात् ( १०५५ )  
वर्ष पीछे और विक्रमादित्यसे ( ५७५ ) वर्ष पीछे यकनी साधवीका धर्म  
पुत्र श्रीहरिजड सूरि स्वर्गवास हुए, तथा ( १११५ ) वर्षपीछे श्रीजिनज  
ङ्गणि युगप्रधान हुआ और यह जिनजङ्गीय ध्यानशतकका कर्ता होने  
से और हरिजडसूरिके टीका करनेसे दूसरा जिनजड है, यह कथन पट्टा  
बलिमें है, परंतु श्रीजिनजङ्गणिहृमाश्रमणकी आयु ( १०४ ) वर्षकी थी,  
इस वास्ते जे कर हरिजडसूरिके बखतमें जीते होवें तोनी विरोध नहीं।

१८ श्रीमानदेवसूरिके पाट कपर श्रीविबुधप्रजसूरि हुआ, १९) श्रीवि  
बुधप्रजसूरिके पाट कपर श्रीजयानवसूरि हुआ, २०) श्रीजयानवसूरिके पा

का तीसरा नाम चङ्गल दूथा, ( १६ ) श्री चङ्गलूरिके पाट ऊपर श्री मतनङ्गलूरि दूथे, वे पूर्वगत श्रुतके जानकार थे, वैरागके रंगसे निर्मल हुए जगज्जोमें रहते थे, तब लोकोने चङ्गलका नाम बनवासी गङ्गा रक्ता, श्रीसामतनङ्गलूरिके पाट ऊपर श्रीवृद्धदेव लूरि दूथे, तथा श्रीमहावीर ( ५९५ ) वर्ष पीछे कोरंट नगरमें नाहड नामा मन्त्रीने तथा सत्यपुर नाहडमन्त्रीने मन्दिर बनवाया, प्रतिमाकी प्रतिष्ठा जङ्गल लूरिने करी, तिसा श्री महावीरकी स्थापन करी जिसको “जयज्वीरसच्चरिमण” दते हैं ( १७ ) श्रीवृद्धदेव लूरिके पाट ऊपर श्री प्रद्योतन लूरि दूथे

१९ श्री प्रद्योतन लूरिके पाटऊपर श्रीमानदेव लूरि दूथे, इनके लूरि स्थापनावसरमें दोनो स्कंधोंपर सरस्वती और लक्ष्मी साक्षात् देखके चारित्रसे ब्रह्म हों जावेगा ? ऐसे विचार करके खिन्नचित्त गुरुको जान गुरुके आगे ऐसा नियम करा कि — नक्तिवाले घरकी निष्ठा और दूध दही, घृत, मीठा, तेल, अरु सर्व पक्वान्नका, त्याग कीया, तब तिनके पके प्रजावसे नमोल पुर जो पालीके पास है तिसमें १ पद्मा, २ जया, विजया, ४ अपराजिता, ९ चार नामकी चार देवी सेवा करती देखी, को मुख कदने लगाकि ए आचार्य स्त्रीयोंका सग क्यों करता है? तब तिन के योंने तिसको सिद्धा दीनी, तथा तिसके समयमें तिहिला ( गजनी ) नरीमें बहुत श्रावक थे तिनमें मरीका उपड्व दूथा तिसकी शांतिके बाद श्री मानदेव लूरिने नमोल नगरीसे शांतिस्तोत्र बना कर जेजा

२० श्री मानदेव लूरिके पाट ऊपर श्रीमानतुग लूरि दूथे जिनोने जत मर स्तवन करके बाण अरु मयूर पंक्तिोंकी विद्या करके चमत्कृत दूथ जो वृद्ध जोजराजा तिनको प्रतिबोधा, और जयहर स्तवन करके नागर जा वश करा तथा नत्तिनरेत्थादि स्तवन जिनोने करे हैं प्रजावरु चरित्र प्रथम श्री मानतुग लूरिका चरित्र कहा और पीछे देवलूरिका शिष्य श्री प्रद्योतनलूरि तिनका शिष्य श्रीमानदेव लूरिका प्रबध कहा परंतु तहां सका न कनी चाहिये क्योंकि प्रजावरु चरित्रमें औरजी कई प्रबंध आगे पीछे कहे हैं

२१ श्रीमानतुगलूरिके पाट ऊपर श्रीवीरलूरि बैठा, सा वीरलूरिने श्री महावीरसे ( ४७० ) वर्षमें तथा विक्रम सबतके तीन सौ वर्ष पीछे नागपुरमें श्रीनमि श्रद्धतकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करी, यदुक्त ॥ आर्या ॥ नागपुर

वर्ष पीठें श्रीचत्तराध्ययनकी टीका करने वाला थिरापड़ीयगङ्गमें वादी वैताल श्री शान्ति सूरि हूये

४७ श्री सर्व देवसूरिके पाट ऊपर श्री देवसूरिके रूपश्री औसा राजानें विरुद दीया, (३७) श्री देवसूरिके पाट ऊपर फिर श्री सर्व देवसूरिनामा हूये जिसने यशोजङ् नेमिचङ्गादि आठ आचार्योंको आचार्य पदवी दीनी, तथा श्री महावीरसें (१४९६) वर्ष पीठें तहिलाका नाम गजनी रक्का गया, (३९) श्री सर्व देवसूरिके पाट ऊपर श्री यशोजङ् अरु नेमिचङ् ये दो गुरु जाइ आचार्य हूये, तथा विक्रमसे (११३५) वर्ष पीठें कोइ कहता है, (११३९) वर्ष पीठें नवांगीवृत्ति करने वाला श्री अजयदेवसूरि स्वर्ग वास हूये, तथा कूर्चपुरगङ्गीय चैत्यवासि जिनेश्वरसूरि शिष्य श्री जिनवल्लभसूरिने चित्रकूटमें श्री महावीरके पद कल्याणक प्ररूपे

४८ श्री यशोजङ्सूरि तथा श्री नेमिचङ्सूरिके पाट ऊपर श्री मुनिचंड्सूरि हूये, जिनोने जावल्लीव एकसौवीर पाणो पीना रक्का, और सर्व विगयका त्याग करा तथा जिनोने श्रीहरिजङ्सूरिकृत अनेकांत जयपता कादि अनेक ग्रंथोंकी पजिका करी, उपदेशपदकी वृत्ति, योगबिंडकी वृत्ति, इत्यादिकोंके करनेसे तार्क्षिक शिरोमणि जगत्में प्रसिद्ध हुआ, और यह आचार्य बड़ा त्यागी निस्पृह हुआ यहां विक्रम राजासें (११५९) वर्ष पीठें चङ्प्रजसे पौर्णिमीपक मतोत्पत्ति दुइ तिस चङ्प्रजके प्रतिबोधने वास्ते श्री मुनिचंड्सूरिजीने पाक्षिक सप्ततिका करी, है तथा श्री मुनिचंड्सूरिका शिष्य श्री अजितदेव सूरि वादी अरु श्री देवसूरि प्रमुख हूये तहां वादी श्री अजितदेव सूरिजीने अणहल पुरपाटणमें श्रीजयसिद्ध देवराजाकी सनामें अनेक विद्वज्जन सयुक्त चोराशीवाद वादियोंसें जीते, विगवरमतका चक्रवर्त्ती कुमुदचङ् आचार्योंको जिनोने वादमें जीता, और विगवरोंका पट्टनमें प्रवेश करना बंद कराया, सो आज तक प्रसिद्ध है तथा विक्रमसें (१२०४) वर्ष पीठें फलवर्द्धिग्राममें चैत्यबिंबकी प्रतिष्ठा करी, सो तीर्थ आजनी प्रसिद्ध है तथा आरासपोमें श्री नेमिनाथकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोने (७४०००) चोरासी हजार श्लोक प्रमाण स्यादवरत्नाकर नामा ग्रंथ बनाया, तथा जिनोसें बड़े नामावर चौबीस आचार्योंकी शाखा हुई, इनोका जन्म सबत् (११३४) में हुआ, (११५२) में बीछा लीनी, (११७४) में सूरिपद

ट कपर श्रीरविप्रजसूरि दूथा, सो महावीरसे पीठें ( ११४० ) वर्ष और विक्रमसंवत्से ( ७०० ) वर्ष पीठें नमोल नगरमें श्रीनेमिनाथका प्रासाद ( मंदिरकी ) प्रतिष्ठा करी तथा श्रीवीरात् ( ११५० ) वर्ष पीठें उमास्वाति युगप्रधान दूथा, ३१ श्रीरविप्रजसूरिके पाट कपर श्रीयशोदेव सूरि बैठे, यहाँ श्रीमहावीरसे ( १२७२ ) वर्ष पीठें और विक्रम संवत्से ( ८०१ ) के सालमें अणहल पुर पट्टन वनराज राजेने वसाया वनराज जैनी राजा था, तथा श्रीवीरात् ( १२७० ) और विक्रमादित्यके संवत् ८०० के सालमें जाडपद शुक्ल तीजके दिन वप जट्ट आचार्यका जन्म दूथा, जिसने गवालियरके आम नाम राजाको जैनी बनाया इनका विशेष चरित्र प्रबधचितामणि ग्रंथसे जान लेना।

३२ श्रीयशोदेवसूरिके पाट कपर श्रीप्रद्युम्नसूरि दूथा, ३३ ) श्रीप्रद्युम्नसूरिके पाट कपर श्रीमानदेव, सूरि उपधानवाज्यग्रथका कर्ता दूथा, ३४ ) श्रीमानदेवसूरिके पाट कपर श्रीविमलचंद्र सूरि दूथा, ३५ ) श्रीविमलचंद्रसूरिके पाट कपर श्रीउद्योतनसूरि दूथा, सो उद्योतनसूरि अर्बुदाचले ( आबू ) के पहाड कपर यात्रा करणे आये थे, वहाँ टेजी गामके पास बड़ी बड़वृद्धकी डायामें बैठेने अपने पाटकी वृद्धि वास्ते अष्टा मुहूर्त देख करके श्रीमहावीरसे ( १४६४ ) वर्ष और विक्रमसे ( ९९४ ) वर्ष पीठें अपने पाट कपर श्रीसर्वदेवप्रमुख आठ आचार्य स्थापे कोइ एकले सर्वदेव सूरिकोही कहते हैं, बड़े बड़े हेतु सूरि पदवी देनेसे तहांसे वनवासी गह्वका पांचमा नाम बडगह्व दूथा, “ प्रधानशिष्यसतत्या, ज्ञानादिगुणै प्रधानचरितैश्चरुत्वा दृढजज्ञइत्यपि ”

३६ ) श्रीउद्योतनसूरिके पाट कपर श्रीसर्वदेवसूरि हुए, यहाँ कोइक तो श्रीप्रद्युम्नसूरि और उपधान ग्रंथका कर्ता श्रीमानदेवसूरि इन दोनोंको पट्टधर नहीं मानते हैं, तिनके अजिप्रायसे सर्वदेवसूरि चौतीसमें पाट हुआ, सो सर्वदेवसूरि श्रीगौतमस्वामीकी तरें सुशिष्य जन्मिमान विक्रमसंवत्से ( १०१० ) वर्ष पीठें रामसैन्य पुरमें श्रीकृपणचैत्य तथा चंद्रप्रजचैत्यकी प्रतिष्ठा करी, तथा चंडावतीमें कुरुणमत्रिकों प्रतिबोधके दीक्षा दीनी, तिसनेही चंडावतीमें जैनमंदिर बनवाया था, तथा विक्रमसे ( १०२९ ) वर्ष पीठें धनपाल पंथितने देशी नाला बनाइ तथा विक्रमसे ( १०५६ )

हे - १ श्री सुधर्मस्वामी, २ सुस्थित सूरि, ३ श्रीचंड सूरि, ४ सामतजड सूरि, ५ श्रीसर्वदेव सूरि, ६ श्रीजगच्चंड सूरि

४५ श्री जगच्चंड सूरि पट्टे श्री देवेंड सूरि दूये, सो मालवेकी उक्तय नी नगरीमें जिनचंड नामा वहे शेतका वीरधवल नामा पुत्र तिसके विवाह निमित्त महोत्सव हो रहा था, तब वीरधवल कुमारको प्रतिबोध करके सवत् ( १३०१ ) वर्षमें दीक्षा दीनी, तिस पीठें तिसके जाइकोजी दीक्षा देकर चिरकाल तक मालव देशमें विचरे, तिस पीठें गुर्जर देशमें देवेंड सूरि श्री स्तन स्तीर्थमें आये, तहां पहिलां श्री विजयचंड सूरि गीतार्थको पृथक् पृथक् वस्त्रकं पोढे देता है, और नित्य विगय खानेकी आज्ञा देता है, और वस्त्र धोनेकी तथा फल, शाक लेनेकी और निर्वृत्त तके प्रत्याख्यानमें विगयगतका लेना कहता है और आर्याका व्याया आहार साधु खावे, यह आज्ञा देता है, और दिनप्रत्ये द्विविध प्रत्याख्यान और गृहस्थोके अवर्जने वास्ते प्रतिक्रमण करणेकी आज्ञा देता है, और सविज्ञाके दिनमें तिसके घरमें गीतार्थ जावे, लेपकी सनिग्रि रखनी, तत्कालोष्णोदका ग्रहण करणा इत्यादि काम करनेसे कितनेक साधु शिषि लाचार्योंको साथ लेकर सद्यो पौषधशालामें रहा

इन विजयचंडाचार्यकी उत्पत्ति ऐसे हैं मंत्री वस्तुपालके घरमें विजयचंडनामा दफतरीया, वो किसी अपराधसे जेदल खानेमें कैद हुआ, तब श्री देवचंड उपाध्यायने दीक्षा देनेकी प्रतिज्ञा करवा कर बुडा दीया, पीठें तिसने दीक्षा लीनी, सो बुद्धिबलसे बहुश्रुत हो गया, तब मंत्री वस्तुपाल ने कहाकि ये अजिमांजी हैं, इस वास्ते सूरिपदके योग्य नहीं हैं इस तरें मने करते हुए तोजी श्री जगच्चंड सूरिजीने श्री देवचंड उपाध्यायके कहनेसे सूरिपद दे दीया, क्योंकि यह देवेंड सूरिका साहायक होवेगा ऐसा जान कर सूरिपद दीया, पीठें वो विजयचंड बहुत काल तक श्री देवेंड सूरिके साथ विनयवान् शिष्यकी तरें वर्त्तता रहा परंतु जब मालव देशसे श्री देवेंड सूरि आये, तब वदना करनेकोजी नहीं आया, तब देवेंड सूरि जोने कहा कि एक वस्तिमें तुम बारा वर्ष कैसे रहे ? तब विजयचंडने कहाकि शांत दांतको बारा वर्ष एक जगम रदनेसे कुछ बोध नहीं सविग्रसाधु सर्व देवेंड सूरिके साथ रहे, और देवेंड सूरिजी तो अनेक स

मिला, ( १२२० ) की श्रावणकृष्णसप्तमी गुरुवारे स्वर्गकों प्राप्त हूये, ति  
नोंके समयमें श्री देवचन्द्रसूरिका शिष्य तीन क्रोड ग्रंथका कर्ता, कलिका  
जमें सर्वज्ञ विरुदका धारक, पाटणके राजा कुमारपालका प्रतिबोधक,  
सवा लक्ष श्लोक प्रमाण पचांग व्याकरणका कर्ता, श्री हेमचन्द्रसूरि विद्या  
समुद्ग दूआ, तिनका विक्रमसंवत् ( ११४५ ) में जन्म ( ११५० ) में  
दोहा ( ११६६ ) में सूरिपद अरु ( १२२९ ) में स्वर्गवास दूआ, इनोका  
संपूर्ण प्रबन्ध देखनां होवे, तदा श्री प्रबन्ध चिंतामणि तथा कुमारपाल  
चरित्रसे देख लेनां ४१ श्री मुनिचन्द्रसूरिके पाट कपर श्री अजितदेव सूरि  
दूये, तिनोके समयमें संवत् ( १२०४ ) में खरतरोत्पत्ति, संवत् ( १२२३ )  
वर्ष आंचलिकमतोत्पत्ति, संवत् ( १२३६ ) वर्ष सार्द्धपौर्णिमीयक मतो  
त्पत्ति, संवत् ( १२५० ) वर्ष आगमिक मतोत्पत्ति, दूइ, तथा श्री वीरजगवा  
नसे ( १६९२ ) वर्षे वागजट मन्त्रीने शत्रुजयका चौदहमा उद्धार कराया,  
साढे तीन क्रोड रूपक लगाया

४२ श्री अजितदेव सूरिपट्टे श्री विजयसिंह सूरि दूये, जिनोने विवेकम  
जरी छुट करी, जिनोका बडा शिष्य श्री सोमप्रज सूरि शतार्थतया अर्थात् ज  
नोके बनाये एकेक श्लोकोंके सौ सौ तरेंके अर्थ निकलें और दूसरा मणिरत्न  
सूरिया, ( ४३ ) श्री विजयसिंह सूरिपट्टे श्री सोमप्रज सूरि और मणिरत्नसूरि  
दूये ४४ श्री सोमप्रज तथा श्री मणिरत्न सूरिके पाट कपर श्री जगज्ज  
सूरि दूये, जिनोने अपणें गङ्गकों शिथिल देखकें और गुरुकी आज्ञासे  
वैराग्य रसका समुद्ग चैत्रवालगङ्गीय श्री देवचन्द्र उपाध्यायके सहायसे  
क्रिया उद्धार कीया, और हीरलाजगज्ज सूरि विरुद पाया, क्योंकि जि  
नोने चितोडके राजाकी राजधानी अघाट अर्थात् ( अहडमें ) बत्तीस दि  
ग्वराचार्योंके साथ वाद करता दूआ, हीरेकी तरें अजेय रहा, तब रा  
जाने हीरलाजगज्ज सूरि ऐसा विरुद दीया तथा जिनोने यावत्कीव  
आचार्यतपका अजिग्रह करा तब वारा वर्ष तप करता दूआ तब चितो  
डके रानाने तपा विरुद दीया संवत् ( १२०५ ) के वर्षमें वडगङ्गका  
नाम तप गङ्ग दूआ, यह उष्ठा नाम दूआ १ निर्मथ, २ कोटिक, ३  
चन्द्र, ४ वनवासी, ५ वडगङ्ग, ६ तपागङ्ग, इन उद्दो नामोके प्रवृत्त  
होनेके वै आचार्य हेतुरूप दूये हैं, तिसका नाम अनुक्रममें लिखते



आचार्यनै ज्ञानसे जाना कि यह पुरुषके व्रत जंग होजावेगा ? इस जयसे निषेध करा, पीछे वो पृथ्वीधर, मन्पाचलके राजाका मंत्री हुआ, और धन करके तो धनद समान हो गया, पीछे तिसने चौरासी जिनम विर और सात ज्ञानके पुस्तकोंके चंदारे बनाये और श्री शत्रुजयमें इकी स धडी प्रमाण सोना खरचके रूपे मय श्री कृष्णदेवजीका मंदिर बनवाया, कोइ कहते हैं कि छप्पन धडी सुवर्ण खरचके इडमाजा पहिर तथा धरती नगरमें किसी साधर्मिने ब्रह्मचारीका वेप देनेके अवसरमें पृथ्वीधरको महाधनाढ्य जानके तिसकी नेट करा, तब पृथ्वीधरने वोही वेप लेकर तिस दिनसे बत्तीस वर्षकी उमरमें ब्रह्मचर्य व्रत धारण करा, तिसके एकही जांजण नाम पुत्र था, जिसने श्री शत्रुजय, उक्लयतगिरिके शिखर उपर बारह योजन प्रमाण सुवर्ण रूप्यमय एकही ध्वज चढाई, जिसने सारंगदेव राजासे कर्पूरका महसूज बुढाया, तथा जिसने मन्पाचलमें बहत्तर हजार ( ४१००० ) रूपक गुरुके प्रवेशके उत्सवमें खरच करे

तथा श्री धर्मघोष सूरिने देवपत्तनमें शिष्योंके कहनेसे मन्त्रमय स्तुति बनाई तथा देवपत्तनमें जिनोके स्वध्यानके बलसे नवीनोत्पन्न हुये कपर्दी यक्षने वज्र स्वामीके महात्मसे पुराने कपर्दी मिथ्यादृष्टिको निकालाया, इनो ने उसको प्रतिबोधके श्री जैनबिंबोका अधिष्ठाता करा, तथा जिनो आगे समुद्रके अधिष्ठाताने अपने समुद्रके तरंगोसे रत्न ढोकन करे, एकदा समय किसी डुष्टस्त्रीने कार्मेण सयुक्त बडे बनाकर साधुओंको दीए परं श्री धर्मघोष सूरिजीने वे बडे धरती उपर गिराए, और उस स्त्रीको मन्त्रसे पकडा पीछे जब बडु डुखी हुई, तब क्या करके गोड बीनी, तथा विद्यापुरमें पक्षांतरीयोकी स्त्रीयोने धर्मघोषजीके व्याख्यान रसके जग करने वास्ते कठमें मन्त्रसे केश गुच्छक कर दीया पीछे श्री धर्मघोष सूरिजीने जब जाना, तब तिन स्त्रीयोको स्तंजन कर दीया, तब तिन स्त्रीयोने विनति करी कि आज पीछे हम तुमारे गच्छको उपडव न करेंगे, तब गुरुजीने श्री सधके बहुत आग्रहसे गोडी, तथा उक्लयनीमें एक योगी जैनके साधुओंको रहने नही देता था जब श्री धर्मघोष सूरि तहां आये तब उस योगीने साधुओंको कहा कि अब तुम इहां आये हो सो तकडे हो कर रहनां तब साधुओंने कहा हमजी देखेंगे कि तू क्या करेगा ? पीछे उसने साधु

विग्र साधुकेँ समुदाय साथ उपाश्रयमेंही रहे, तब लोकोंने बड़ीशालामें रहनेसेँ विजयचड्सूरिके समुदायका नाम लृक्षपौशालिक रक्का और देवेंड्सूरिजीके समुदायका लघुपौशालिक नाम दीया, और स्थानतीर्थके चौकमें कुमारपालके विहारमें धर्मदेशा नामे मन्नि वस्तुपालने चारोवेदोंका निर्णय दायक स्वसमय परसमयके जानकार श्रीदेवेंड्सूरिजीकोँ बढना देकेँ बढुमान दीया, और श्रीदेवेंड्सूरिजी विजयचडकी उपेक्षा करकेँ विचरते दूए क्रमसेँ पाण्डनपुरमें आये, तहां चौरासी इन्धसेठ अनेक पुरुषोंकेँ साथ परिवरे, सुखासन उपर बैठे दूए शास्त्रके बडेँ श्रोता व्याख्यान सुनने आते थे, और पाण्डनपुरके विहारमें रोजकी रोज एक मूढक प्रमाण अद्भुत और सोजाँ मण सोपारी दर्शन करनेवाले आवकोँकि चढाइ चढती होती थी, इत्यादि बडेँ धर्मी लोकोंने गुरुकोँ विनति करी कि हे जगवन् । यहां आप किसीकोँ आचार्य पदवी देखो हमारा मनोरथ पूरा तब गुरुने उचित जानके पाण्डन पुरमें विक्रम सवत् १३५३ ) में वर्ष श्रीविद्यानव सूरि नाम देकेँ वीरधवलकोँ सूरिपद दीनां, और तिसके अनुज जीमसि दकोँ धर्मकीर्त्ति उपाध्यायकी पदवी दीनी, तिस अवसरमें प्रह्लादनविहारके सौवर्ण कपिशिर्ष मनुषसे कुंकुमकी वर्षा दूइ, तब सर्वे लोकोंकोँ बडाँ आश्चर्य दूआ - श्री विद्यानव सूरिजीने विद्यानव नाम नवीन व्याकरण बनाया यद्युक्त ॥ विद्यानवानिध येन, कृतं व्याकरण नव ॥ जाति सर्वोत्तम स्वल्प, सूत्र वन्द्यस्तग्रहं ॥ १ ॥ पीछे श्री देवेंड्सूरिजी फेर मालवेकोँ गये श्री देवेंड्सूरिजीके करे दूये मर्थोंका नाम लिखते हैं । आ-इतिन कृत्यसूत्रवृत्ती, १ नव्यकर्मग्रन्थपंचकसूत्रवृत्ती, २ सिद्धपंचाशिकासूत्रवृत्ती, ४ धर्मरत्नवृत्ती, ५ सुदर्शनचरित्र, ६ तीनजाप्य, ७ वृद्धारवृत्ती, ८ सिरि यस्तदवदमाण प्रमुख स्तवन, कोइ कहते हैं कि आ-इतिनकृत्यसूत्रतो विरंतन आचार्योंका करा है विक्रम सवत् (१३५४)में वर्ष मालवदेशमें देवेंड्सूरि स्वर्गवास दूये वैवयोगसेँ विद्यापुरमें तेरह दिनो पीछे श्रीविद्यानव सूरिजी स्वर्गवास दूये, तब है मास पीछे सगोत्र सूरिने श्रीविद्यानव सूरिके जाइ श्री धर्मकीर्त्ति उपाध्यायको सूरिपद देके श्री धर्मघोष सूरि नाम दीया

४६ श्री देवेंड्सूरिपट्टे श्री धर्मघोष सूरि दूये, जिनोंने मनुपाचलमें शा० श्री पृथ्वीधरको पंचमानुव्रत जेतकेँ ज्ञानसे निषेध करा, क्योकि

फायकें विराधनाकें नयसैं और मरुदेशमें छु-जजकी दुर्जनतासे साधुओं का विहार निषेध करा तथा नीमपल्लीमें दोकार्तिक मास दूये तब सोमप्रजजी प्रथम कार्तिककी एकादशीकों विहार कर गए क्योंकि उनोंने जाना कि नीमपल्लीका जग होगा अरु जग हुए पीरें जो रहे वो, दुखी हुए, सोमप्रज सूरिके करे ग्रथ नितकल्पसूत्र, यत्राखिलेत्यादि स्तुतीयां, जितेन येनेतिस्तुतीया, श्री मन्त्रमैत्यादि, तिनके करे बड़े शिष्य विमलप्रज सूरि, श्री परमानंद सूरि, श्री पद्मतिलक सूरि, अरु श्री सोमविमल सूरि थे, जिस दिन पूर्वोक्त श्री धर्मघोष सूरि, देवगत हुए तिस दिनही (१३५७) वर्षे श्री सोमप्रज सूरिजीने श्री विमलप्रज सूरिकों सूरिपद दीया क्योंकि तिनोंने अपना स्वल्पही आयु जानां श्री सोमप्रजजी (१३७३) वर्षे देवलोक गए

४७ श्रीसोमप्रजसूरि पढ़े श्रीसोमतिलकसूरि हुए, तिनोका (१३५५) में वर्षे माघे जन्म, (१३६९) वर्षे दीक्षा, (१३७३) वर्षे सूरिपद, (१४३४) वर्षे स्वर्गगमन, सर्वायु ६९) वर्षकी जाननी, तिनके करे ग्रथ लखते है - १ वृहन्नव्यह्वेत्रसमाप्त सूत्र, सत्तग्निसयगण, यत्राखिलजयवृषनस्तथाशर्म० प्रमुखकी वृत्ति, श्रीतीर्थराज०, चतुरशीस्तुतित वृत्ति, छज्जनावानत० श्रीमद्दीरस्तुवेदित्यादिकमलबधस्तव शिवशिरसि श्रीनानिसत्तव० श्रीशैवेय० इत्यादि स्तवन श्रीसोमतिलकसूरिक्रम करके १ श्रीपद्मतिलकसूरि, २ श्रीचङ्गेश्वरसूरि, ३ जयानंदसूरि, ४ श्रीदेवसुंदरसूरियोंकों सूरि पद दीया, तिनमें श्रीपद्मतिलक सूरि, सोमतिलक सूरिसैं पर्यायमें बड़े थे, सो एक वर्ष जीते रहे, और बड़े वैरागी थे तथा श्रीचङ्गेश्वर सूरि, विक्रम सवत् (१३७३) में जन्मे (१३७५) में दीक्षा, (१३९३) में सूरिपद, इनके करे ग्रथ - १ उषितनोजनकथा, यवराजकृषिकथा, श्रीमत्स्तनकहारवधादिस्तवन है, जिनोंके मंत्रों सों मंत्री रजहो वे तिनसैंजी उपश्रव करनेवाले गृह, हरिका, दुर्गर मृगराज, श्वान, छुरिति दूर हो जाते थे तथा श्रीजयानंदसूरिका विक्रम सवत् (१३७०) वर्षे जन्म, (१३९१) वर्षे आपाठ सुविज्ञातम सुक्रवारकेदिन धारानगरीमें व्रतग्रहण, (१४३०) में सूरिपद (१४४१) में स्वर्ग गये तिनके करे ग्रथ १ श्री धूलजन्म चरित्र, २ देवा प्रजोयं प्रमुख स्तवन है

४९ श्री सोमतिलक सूरि पढ़े श्री देवसुंदर सूरि हुए, तिनका (१३९६) वर्षे जन्म, (१४०४) वर्षे दीक्षा (१४३०) वर्षे अणदलपत्तनमें सूरिपद,

थोकोँ वात दिखलाये, तब साधुओंने कफोणि ( कूहनी ) दिखलाइ पी। साधुओंने जा कर यह सर्व समाचार अपने गुरुको कहा, उहाँ योग नैनी धर्मशाजामें विद्याके बजसैं बहुत चूहे बनादीये, तब साधु बहुत मरे पीछे गुरुजीनें घड़ेका मुख, वस्त्रसैं ढांककें ऐसा मंत्र जपा कि जिस योगी आराटि करता दूथा आकें पाऊमें पड़ा, और अपने अपराधक क्षमापना मांगा, तथा किसी नगरमें शाकनोर्योके जयसैं मंत्रके कपा दीये जाते थे, एक दिन बिना मंत्रे कपाट दीये गये, तब रात्रिकों शाकनोर्योनें उपद्रव करा, गुरुने उनको विद्यासैं स्तनित करा, एकदा रात्रिमें गुरुको सर्पके काटनेसैं जब जहूर चढ़ा, तब गुरुने सघको विधुर देख वें कहा कि दरवाजेमें किसी पुरुषके मस्तकोपरिकाष्ठकी नरीमें विषापहार एवं वेजड़ी आवेगी वो वेजड़ी घसके मकमें देदेनी उससैं जहूर उतर जायगा सघनें तैसेही करा गुरुराजी हो गये, पीछे तिस दिनसे जावज्जीव है विद्याका त्याग करा, और सदा जुवारकी रोटी नीरस जानके खाते रहे, श्री धर्मघोष सूरिजीके करे ये ग्रंथहैं — सो कहते हैं — १ संघाचारजाण्यवृत्ती २ सुअधम्ममितिस्तव, ३ कायस्थिति जवस्थिति, ४ चौवीश तीर्थंकरोंके चौवीश स्तवन, तथा ५ स्वस्ताशमेंत्यादिस्तोत्रं, ६ देवेंडैरनिशइति श्लेषस्तोत्र, ७ यूपं युवात्वमिति श्लेषस्तुतीया, ८ जयवृषजेत्यादि स्तुति, यह जयवृषजेत्यादि स्तुति करणेका यह निमित्त था कि — एक मंत्रीने आठ यमक काव्य कह करकें कहा, कि ऐसे काव्य अब कोइ नहीं बना सका तब गरुने कहा कि नास्ति नहीं तब तिसने कहा तो हमको कर दिखलाव तब गुरुजीनें जयवृषजेत्यादि है स्तुति एक रात्रिमें बना कर नीतोपर लिखकें दिखाइ तब तिसने बड़ा चमत्कार पाया, गुरुजीने तिसको प्रतिबोधके जैनी करा, ये श्री धर्मघोष सूरि विक्रम संवत् ( १३५७ ) में स्वर्ग गये

४४ श्री धर्मघोष सूरि पढ़ें श्री सोमप्रज्ञ सूरि दूये, जिनोनें नमि कण जणइएवमित्यादि आराधना सूत्र करा, तिनका संवत् ( १३१० ) में जन्म, ( १३५१ ) में दीक्षा, ( १३३२ ) में सूरिपद, जिनोके इग्यारह अंग सूत्रार्थ कव थे, तथा “गुरुनिर्गीयमानायां मंत्रपुस्तकायां यद्यतचरित्र मंत्रपुस्तिकां च” ऐसा कह कर तिसमंत्र पुस्तकाको ग्रहण करा, क्योंकि थपर कोइ योग्य नहीं था यह श्री सोमप्रज्ञ सूरिने जलकुण्डदेशमें अ

राणक पुरमें श्री धनरुत चौमुखविहारेमें रूपनादि अनेक शत विंव प्रतष्ठित करी, ये विक्रम संवत् ( १४९९ ) में स्वर्ग गये

५१ श्री सोमसुंदर सूरि पट्टे श्री मुनिसुंदर सूरि दूये, जिनोंने अनेक प्रसाद, पद्मचक्र, पट्कारक, क्रियागुप्तक, अर्द्धप्रम, सर्वतोन्मज्ज, मुरज, सिंहासन, अशोक, चेरी, समवसरण, सरोवर, अष्टमहाप्रातिहार्यादि नवीन त्रिशतिबध तर्क प्रयोगादि अनेक चित्राक्षर, द्धक्षर, पंचवर्ग परिहारादि अनेक स्तवमय द्विदशतरंगिणीनामा एक सौ आठ हाथ लंबी पत्रिका लिखकें श्री गुरुकों जेजी तथा चातुर्वेद्यविशारद निधि, उपवेश रत्नाकर प्रमुख अनेक ग्रंथोका कर्ता, तथा जिनकों श्री स्तंजतीर्थमें बफर खाननें वादी गोकुलसप्त, ऐसा नाम कहा, तथा जिनोंने बह्मिणसे कालसरस्वती ऐसा विरुद पाया, आठ वर्ष गणनायक, पीछे तीन वर्ष युगप्रधान पद, लोकोंने प्रसिद्ध करा एक सौ आठ वर्तुलिकानादौपलक्षक, बाल्यावस्था मेंजी एक शब्दस्व श्लोक नवीन कठ कर लेते थे तथा सतिकर नामा सप्तमहिम स्तवन करनेसे योगिनी रुत मरोका उपड्व दूर करा चौबीस वार विधिसे सूरि मंत्रकों आराधा, तिनमेंजी चौदह वार जिनके उपदेशसे धारादि नगरीयोंके स्वामी पांच राजाओंने अपने अपने देशोंमें अमारिका दमोरा फिराया, तथा सिरोही देशमें सहस्रमहाराजानेंजी प्रमार प्रवृत्त करी तीहका उपड्व टाला, इनका विक्रम संवत् ( १४३६ ) में जन्म ( १४४३ ) में दीक्षा ( १४६६ ) में वाचक पद, ( १४७७ ) में वत्तीत सहस्र रूपक खरचके वृद्धनगरीके शाह देवराजने सूरिपदका महोत्सव करा, ( १५०३ ) वर्षे कार्तिकशुद्धि पडिवाके दिन स्वर्गवास हुआ

५२ श्री मुनिसुंदर सूरि पट्टे श्री रत्नशेखर सूरि दूए, तिनका ( १४५७ ) वर्षे जन्म, ( १४६३ ) वर्षे दीक्षा, ( १४७३ ) वर्षे पण्डितपद, ( १४९३ ) वर्षे वाचकपद ( १५०३ ) वर्षे सूरिपद, ( १५१७ ) वर्षे पोषवविष्ठ दिनें स्वर्गवास हुआ, जिसका स्तंजतीर्थमें बांवी नामा जट्टनें बाल सरस्वती नाम दीया, तिनके करे ग्रंथ —आर्यप्रतिक्रमणवृत्ति, आर्यविधिसूत्रवृत्ति, लघुक्षेत्र समास, तथा आचारप्रदीपादि अनेक ग्रंथ जान लेना तथा जिनोंके समयमें लुका नामक लिखारीने संवत् ( १५०७ ) में जिनप्रतिमाका उद्घापक लुका नामा मत चलाया और तिसके मतमें वेपका धर

यह देवसुंदर सूरि बड़ा योगान्यासी और मंत्र तंत्रकी श्रद्धा, मंदिर, स्थावर जंगमविषापहारी, जनानल, व्याल अरु हरि, जयका तोड़नेवाला अतीतानागत निमित्तका वेत्ता, राजमंत्रि प्रमुखोंका पूज्यनीक, यह श्री देव सुंदर सूरिके शिष्य १ श्रीज्ञानसागरसूरि, २ श्रीकुलममन सूरि, ३ श्रीगुणरत्न सूरि, ४ श्रीसोमसुंदर सूरि, ५ श्रीसाधुरत्न सूरि, यह पांच बड़े शिष्य थे, तिनमें श्रीज्ञानसागरजीका (१४०५) में वयें जन्म (१४१७) में दीक्षा, (१४४१) में सूरिपद, (१४६०) में स्वर्गगमन, तिनके करे ग्रंथ श्रीआवश्यक, उगनिर्युक्त्वादि अनेक ग्रंथावचूरी, श्रीमुनिसुव्रत स्तवन, घनौघनखंम पार्श्वनाथादि स्तवन, दूसरा श्रीकुलममन सूरिजीका (१४०५) में जन्म, (१४१७) में दीक्षा, (१४४२) में सूरिपद (१४५५) में स्वर्गगमन, जिनोंके करे ग्रंथ सिद्धांतालापकोदार, विश्वश्रीधरेत्यादि, अष्टादशारचक्रस्तव, गरीयो और द्वारस्तवादय है, तीसरा श्रीगुणरत्न सूरि तिनके करे ग्रंथ १ क्रियारत्न समुच्चय, २ षट्दर्शनसमुच्चय बृहद्भक्ति है, चौथा श्रीसाधुरत्न सूरिजीके करे ग्रंथ — १ यतिजीतकल्पवृत्ति है.

५० श्रीदेवसुंदर सूरि पट्टे श्रीसोमसुंदर सूरि दूए तिनका (१४३०) में जन्म, (१४३७) में दीक्षा, (१४५०) में वाचक पद, (१४५७) में सूरिपद, जिसके (१०००) अठारहसौ साधु क्रिया पात्र परिवार देखकें कितनेक लिंगी पार्श्वमीयोंनें पांचसौ (५००) रूपक देके एक स हस्त पुरुषोंको उनके वध करने वास्ते भेजे, तब वे जिस मकानमें गुरु थे तिस मकानमें रातको ठीप रहे, जब मारनेको उद्यत दूए तब चढ़ माके उद्योतमें श्रीगुरुजीनें रजोहरणसें पूजके जब पासा पलटा, तब देखके तिनके मनमें ऐसा विचार आया कि — ए नींदमेंजी कुछ प्राणि योंकी दया करते हैं, और हम इनको मारने आए हैं, यह कितना अंतर है? तब मनमें मरे और गुरुके पायोंमें पड़के अपराध क्षमा कराया, इनोंके करे ग्रंथ — योगशास्त्र, उपदेशमाला, पञ्चावश्यक, नवतत्त्वादि बा लावबोध, जाप्यावचूर्णी, कव्याणिकस्तोत्रादि जिनोंके शिष्य श्रीमुनिसुंदर सूरि कृष्णसरस्वती विरुध धारक श्रीजयसुंदर सूरि, और महाविद्या विडम्बन टिप्पनक कारक श्रीसुवन सुंदर सूरि, जिनके कठ एकादशांगी सूत्रा ये थे, और चौथा जिनसुंदर सूरि ये चार जिनके प्रतापी शिष्य दूए, जिनोंने

पञ्चीश वर्ष तक करो, परंतु लुकेके उपदेशसे साधु कोइनी न दूया, जब सवत् (१५३३) का शाल आया तब, एक जाणा नामा वनीयके बेटेने लुकेके उपदेशसे वेप पहना, उसको रूपिजूणा नाम दीना, तिसका शिष्य सवत् (१५६८) में रूपजी दूया, तिसका शिष्य सवत् (१५७८) में जी वाजीरूपि दूया, तिसका शिष्य (१५८७) में वृद्धवरसिद्धजी दूए, तिसका शिष्य सवत् (१६०६) में वरसिद्धजी दूया, तिसका शिष्य सवत् (१६४९) में लसवतजी दूया, इस लुपक मतके तीन नाम दूए, १ गुजराती, २ नागोरी, ३ उतराधी, ॥ इति लुपक मतोत्पत्ति ॥

५३ श्रीरत्नशेखरसूरि पढ़े श्रीलक्ष्मीसागरसूरि दूए, तिनका (१४६४) में वर्षे जन्म (१४९०) में वर्षे दीक्षा, (१५०१) वर्षे वाचक पद, (१५०८) में सूरिपद, ५४ श्रीलक्ष्मीसागरसूरिपढ़े श्रीसुमतिताधुसूरि दूया, ५५ श्रीसुमतिताधुसूरिपढ़े श्रीहेमविमलसूरि दूए, शिष्यलताधुओंके बीचमेंनी रहे, तोनी जिनोंने साधुका आचार वद्वधन न करा, तब कितनेक दिन पीछे बहुत साधुओंने शिष्यलपणां छोडा, तथा रूपिहरगिरि, रूपिअपति, रूपिगणपति, प्रमुख बहुत जनोंने लुपक मत छोड के श्रीहेमविमलसूरिके पास दीक्षा लीनी, तिस अवसरमें सवत् (१५६१) में कडुये नामक एक वणिगने कडुयामत निकाला और तीन थूड मानी अरु इस कालमें साधु कोइनी नहीं दीखता, ऐसा पंथ निकाला, परंतु इसग्रंथके लिखनेवालेके समयमें ये मत नहीं है, व्यवहारेद दो गया है, तथा सवत् (१५७०) में लुका मतसे निकलके बीजा नामा वेपधरने बीजामत चलाया, जिसको लोक विजय गड्ड कहते हैं तथा सवत् (१५७१) वर्षे नागपुरीया तपगड्डसे निकलके उपाध्याय पार्श्वचड्डने अपने नामका मत अर्थात् पासचंदीया मत चलाया

५६ श्रीहेमविमलसूरि पढ़े श्रीसुविदितमुनि चूडामणि कुमत तमके मथनेको सूर्यसमान श्रीआनंदविमलसूरि दूया तिसका विक्रम सवत् (१५४७) में जन्म (१५५१) में दीक्षा (१५७०) में सूरिपद तथा आनंदविमलसूरिके साधु शिष्यजाचारीनी थे, तोनी तिनके वैरागरगका जग नहीं दूया और जब उनोंने देखाकि जिनप्रतिमाके निषेधने वाले बहुत बडे और छुट्ट साधु तुष्टमात्र रह गए अरु उत्सृज प्ररूपण रूप जलमें नव्यजन वह चले तब मनमें दयादृष्टि लाके और अपने गुरुकी आत्मासे

ने वाला संवत् (१५३३) में जाणा नामा प्रथम साधु हुआ, इस मतकी उत्पत्ति अैसें हुई है, सो लिखते हैं -

गुजरात देशमें अहमदाबादमें जातिका दशाश्रोमालि लुका नामें लिखारी वसता था, सो ज्ञानजी जतीके कपाश्रयमें पुस्तक लिख कर उसकी आभवनीसें गुजारा करताथा, एक दिन एक पुस्तकको लिख रहा था, तिसमेंसे सात पत्रे बिना लिखे ढोड दीये, जब पुस्तक वालेने पुस्तक देखा तब पूछाकि इस पुस्तकके सात पत्रे क्यों ढोड दीये ? तब लुका उसके साथ लडने लगा तिस वखत लोकोंने मार पीटके कपाश्रयसें बाहिर नि काज दीया, और नगरमें कह दीयाकि इस्से कोइ जननी पुस्तक न लिखावे, तब लुका लाचार और क्रोधमें जरकर अहमदाबादसें बैतालीस को सके जग जग नीबडी गाममें चला गया, उस गाममें लुकेकी बिरादरीका एक लखमसी नामा बणिया राजमें कारनारी था, तिसके आगे बहुत रोया, पीटा, जब तिसने पूछा क्या हुआ ? तब लुकेने कहाकि मैं जगवानका सच्चा मत कहने लगा था, तब तपगह्वके श्रावकोने मुझे पीटा, अब मैं तेरे पास आया हू, जेकर तू मेरा मददकार बने, तो मैं सच्चा मत प्रगट करू, तब तिस लखमसीने कहाकि नीबडीके राज्यमें तू बेशक अपणे सच्चे मतको प्रगट कर, मैं तेरा मददगार हू, खाने पीनेकोजी देउगा, और तेरा शास्त्रजी सुनुगा, तब लुकातो श्रीमहावीरके साधुओंकी और श्रीजिनप्रतिमाकी वडापना करने लगा, अरु कहने लगा कि यह साधु नहीं हैं, ब्रह्मचारी हैं निर्दयी हैं, बलटाज्ञान सुनाते हैं, इत्यादि जो आपके मनमानी सो निदा करी, और शास्त्रोंमेंसेजी जिन जिन शास्त्रोंमें जिनप्रतिमाका जिकर नहीं था वो शास्त्रको सच्चे माने, और जिनोमें थोडासा जिनप्रतिमाका कथन था, तिन पाठोंके अर्थ कुयुक्तिसैं औरके और सुनाने लगा, अरु कहने लगा कि एकतीस शास्त्र सच्चे हैं, तिनमेंजी आवश्यकसूत्रको तो बिलकुल बिगाडके लोकोंने स्वकपोलकल्पित औरका और बना दीया है, क्योंकि श्रीआवश्यकमें बहुत जगें जिनप्रतिमाका अधिकार चजता है, पीछें एक दिन तिस लुकेको कि सीने कहा कि बिना जैनदीक्षाके लीए शास्त्र पढनेका तो व्यवहारसूत्रमें निषेध करे हैं, तो फेर तुम गृहस्थ हो कर शास्त्र क्यों कर पढते हो ? तब लुकेने कहा मैं व्यवहारसूत्रकोही सच्चा नहीं मानता हूँ ? इत्यादि प्ररूपणा



महमदका मान्य मंत्री गजराजा दूसरा नाम मलिक श्रीनगदत्तने श्रीशत्रुंजयका बड़ा सघ निकाला तथा जिनोंके उपदेशसे गांधार नगरके श्रावक रामजीने तथा अहमदावादी साह कुथरजी प्रमुखोंने श्रीशत्रुंजय चौमुख अष्टापदादि जिनमंदिर बनवाए, गिरनार ऊपर जीर्ण प्रसादोद्धार करा तथा जिनके सूर्यकी तरें उदय होनेसे वादी रूपीये तारे अदृश्य हो गये, श्रीविजयदान सूरि सर्व सिद्धांतका पारंगामी, अखण्डित प्रताप वाला तथा अप्रमत्त पणै रूप करके श्रीगौतममुनिवत् था, तथा गूँऊर मालवक, कन्न, मरुस्थली, कुकणादि देशोंमें अप्रतिवद्ध विहार करता हुआ, महातपस्वी, ज्ञावजीव एक धृतविगय विना सर्व विगयका त्यागीया, जिनोंने एकादशांग सूत्र अनेक बार श्रुद्ध करे, और जिनोंने बहुत जीवोंको धर्मप्राप्त करा, तिनका सवत् (१५५३) वर्षे जामलामें जन्म, (१५६३) वर्षे वीक्षा (१५८७) में, सूरिपद (१६३३) वर्षे, वटपल्लीमें अनशनें स्वर्ग प्राप्त हुआ

५८ श्री विजयदान सूरि पढ़ें श्री हीरविजय सूरि हुआ, जिनका संवत् (१५८३) वर्षे मार्गशीर्षशुद्धि नवमी दिनें प्रह्लादन पुरका वात्सी लके जाती सांक्रा जाया नाथी अर्द्धे जन्म हुआ, (१५९६) वर्षे कान्तिकवदि दूज दिनें पत्तन नगरे वीक्षा, (१६०७) वर्षे नारदपुरी में श्रीक्ष्मन् देवके मंदिरमें पण्डित पद, (१६०८) माघशुक्लपंचमीदिने नारदपुरीमें श्री वरकाणक पार्श्वनाथसनाथ नेमिजिन प्रसादे वाचकपद, (१६१०) वर्षे सिरोही नगरे सूरिपद, तथा जिनका सौभाग्य वैराग्य निस्पृहतादि गुणोंको वचन गोचर करनेको बृहस्पतिजी चतुर नर्हीया तथा श्री स्तंजतीर्थमें जिनोंके रहनेसे श्रद्धावानोंने एक क्रोड रूपक प्रजावनादि धर्मकृत्योंमें खरच करा, तथा जिनोंके चरण विन्यासके प्रतिपदमें वो मोहर थरु एक रूपक मोचन करा, और जिनोंके आगे श्रद्धालुओंने मोतीयोंसे साथीये करे, तथा जिनोंने सिरोही नगरमें श्री कुशुनाथ बिंबोंकी प्रतिष्ठा करी तथा नारदपुरीमें अनेक सद्धर्षिओंकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोंके विहारादिमें युगप्रधान अतिशय देखनेमें आती थी, तथा अहमदावादमें लुके मतका पूज्य ऋषि मेघजी नामा था तिसने अपने लुके मतको दुर्गातिका हेतु जान कर रजकी तरें आचार्य पद छोड़के पञ्चीश यतिथोंके साथ सकल राजा धिराज बादशाह श्रीअकबर राजाकी आज्ञा पूर्वक बादशाही बाजत्रे व

कितनेक सविग्र साधुओंको साथ ले कर सवत् (१५८५) में शिखिला चार परिहार रूप क्रिया उद्धार करा, देशमें विचरके बहुत जन्मजनकोंका उद्धार करा, और अनेक इन्तोंके पुत्रोंको धन कुटुम्बका मोह त्याग कराके दीक्षा दीनी, और सोरठके राजा पासो खत लिखवाया कि जो जीते सो मेरे देशमें रहे अरु जो हारें सो निकाला जावे, तूणसिंह नामा श्रावक जिसको बादशाहने बैठने वास्ते पालकी दीनी दूइथी, और बादशाहने जिसको मलिक श्रीनगद लविरुद दीयाथा अइसा तूणसिंह श्रावकने गुरुको बिनति करी कि साधुओंको सोरठदेशमें विहार कराउ, तब श्रीगुरुजीने गणि जगपिकों साधुओंके साथ सो रठदेशमें विहार कराया, तथा जेसलमेरादि मरवाड देशमें जल कुर्तन मि लता है, इत वास्ते पूर्वे श्रीसोमप्रन सूरिने साधुओंको मने कर दीया था कि मारवाडमें न जाना, सो विहार कुमतिध्यात न हो जावें, तिन जीवोंकी अनुकपा कर के और लाज जान कर साधुओंको आज्ञा दीनी कि तुम मारवाडमें जा कर कुमतिमतको खंमन करो, तब लघु वयमें शक्ति करके श्रीशुलिनइसमान वैराग्यनिधि निस्पृहावधि जावळीव जघन्यसें जघन्यनी षष्ठ अर्थात् दोदिनका उपवास करणां अरु पारणेके दिन आचमन करणां अइसे अजिग्रहधारी महोपाध्याय श्रीविद्यासागरगणिनें मारवाडदेशमें विहार करा, तिनोंने जेसलमेरादिकोंमें खरतरांको और मेवात देशमें बीजामति योंको और मोखी आबिकमें लुकामतीयोंको प्रबोधके श्रावक बनाए सो आजतक प्रसिद्ध है, तथा पार्श्वचङ्के व्युदग्रादे वीरमगाममें पार्श्वचङ्के साथ वाद करके पार्श्वचङ्को निरुत्तर करा, तब बहुत जिनोंने जैनधर्म अगीकार करा, अइसेही मालवेमें अरु ठळयनी प्रमुख देशोंमें फिरके ध र्मकी प्रवृत्ति करी, यह श्रीविद्यासागर उपाध्यायजीने तपगच्छको फिरवृद्धि करी, और क्रियाउद्धार करा पीछे श्रीआनदविमलसूरिजी चौदह वर्ष तक जघन्यसेंनी नियत तप वर्जके वेलेसें कम तप नहीं करा, तथा जिनोंने चतुर्थ, षष्ठ तप करके वीश स्थानकी आराधना करी, यह सवत् (१५८६) वर्षे नवदिनका अनशन करिके स्वर्ग गए

५९ श्रीआनदविमलसूरि पछे श्रीविजयदानसूरि दूआ, जिनोंने स्तन तीर्थ, थहुमदावापत्तन, महीशानकगाम, गवार वदिरादिमे महा महोत्सव पूर्वक थनक जिनविंवोंकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोंके उपदेशसें बादशाह

गरमें श्री नेमिजिनकी पात्रा वास्ते गये, तदा श्री कृपणदेव और नेमिनाथजीकी बड़ी और बहुत पुरानी दोनो प्रतिमा और उस तत्कालके बनाए श्री नेमिनाथके चरणोंकी प्रतिष्ठा करी, फिर आगरेमें शा० गानसिंह कल्याणमहलका कराया (बनवाया) श्री चिंतामणि पार्श्वनाथदि विंवोकी प्रतिष्ठा करी, सो आज तक आगरेमें श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ प्रसिद्ध है, पीछे श्री गुरुजी फेर फतेपुर नगरमें गए और अकबर बादशाहसे मिले तहां एक प्रहर धर्मगोष्ठि धर्मोपदेश करा, तब बादशाह कहने लगा कि - मैंने आपको दर्शनके उत्कृष्टित हो कर दूरदेशसे बुलाए है, और आप हमसे कुछनी नहीं लेते हो, इस वास्ते आपको जो रुचे सो मेरेसे मांगना चाहिये, जिस्से मेरे मनका मनोरथ सफल होवे, तब सम्यग् विचार करक गुरुजीने कहा कि तेरे सर्वराज्यमें पर्युपणोंके आठ दिनोंमें कोई जनावर न मारा जाय और बदिजन ठोड़े जाय मैं यह मांगा चाहता हूँ, तब बादशाहने गुरुकों निर्जोनी, शांत, दात, जान करके कहा कि आठ दिन तुमारी तर्फसे और चारदिन मेरी तर्फसे सर्व मिलकर बारहदिन तक अर्थात् जाइवावदि दशमोसे ले कर जाइवावदि ठठ तक कोई जनावर न मारा जायगा, पीछे बादशाहने सोनेके हफ्तेसे लिखवा कर ठै फूरमान श्री गुरुजीको दीए, ठै फूरमानकी व्यक्ति ये है - प्रथम श्री गुरूदेवशका, दूसरा भालवेवशका, तीसरा अजमेरवशका, चौथा दिल्लीफतेपुरके वशका, पांचमा लाहौर मुजतान ममलका, और ठछा श्री गुरुके पास रखनेका पूर्वोक्त पांचोदेशका साधारण फूरमान पांच, तो तिन तिन देशोंमें जेजके अमारि पटह बजवा बीया, तब तो बादशाहकी आज्ञासे जो नहींनी जानते थे ऐसे सर्व आर्य अनार्य कुल मनुष्यमें क्यारूपिणी बेजडी विस्तारवान् हो गई, और बहिवान जननी बादशाहने गुरुपाससे उठ कर तत्काल ठोड़ दीए, और एक कोशका फीज अर्थात् तज्ञावमें आप जाकर बादशाहने अपने हाथसे नानाजातिके नानादेशवालोंने जो जो जनावर बादशाहको जेट कर दूए थे, वे सर्व ठोड़ दीए, बादशाहसे गुरुजी अनेकवार मिले और अनेक जिनमदिर थरु उपाश्रयोंके उपश्रव दूर करे, और जब श्री हीरविजय खुरि थपर देशको जाने लगे, तब बादशाहसे ऐसा फूरमान लिखवा ले गए, तिसकी नफजमें इस पुस्तकमें लिखता हूँ.

जते दूये, महामहोत्सवसे श्री दीरविजय सूरिजीके पास दीक्षा लीनी, ऐसा किसी आचार्यके समयमें नहीं हुआ था, तथा जिनके उपदेशसे अकब्बर बादशाहने अपने सर्व राज्यमें एक वर्ष में छै महिने तक जीव हिंसा बंद करी, जिजय छोड़ाया, इसका विशेष स्वरूप देखना होवे, तो दीरसौजाग्यकाव्यमेंसे देख लेना।

और सङ्क्षेपसे यहाँजी लिखते हैं - एकदा कदाचित् प्रधान पुरुषोंके मुखसे अकब्बरशाहने श्री दीरविजय सूरिके निरुपम शम दम सवेग वैराग्यादि गुणो सुणके बादशाह श्री अकब्बरने अपने नामांकित फुरमान जेज के बहुमान पुरस्सर गधार बदिरसे आगरेके पास फतेपुर नगरमें दर्शन करनेको बुलाया, तब गुरुजी अनेक जयजीवोंको उपदेश देते दूये, क्रमसे विहार करते दूये विक्रम शवत् ( १६३९ ) वर्षे ज्यैष्ठवदि त्रयोदशी दिनें तहां आए तिसमें बादशाहका शिरोमणी प्रधान अबुल फजल नाम द्वारा उपाध्याय श्री विमलदर्भगणि प्रमुख अनेक मुनियोंसे परिवरे हुए बादशाहको मिले तिस अवसरमें बादशाहने बड़ी खातरसे अपनी सजामें बैठाए, और परमेश्वरका स्वरूप गुरुका स्वरूप अरु धर्मका स्वरूप पूछा, और परमेश्वर कैसे प्राप्त होवे ? इत्यादि धर्मविचार पूछा, तब श्री गुरुने मधुर वाणीसे कहा कि जिसमे अछारह दूषण न होवें, सो परमेश्वर है, तथा पंचमहाव्रतादि धारक गुरु है, और आत्माका शुद्धस्वभाव जो ज्ञान दर्शन, चारित्ररूप है, सो धर्म है तब अकब्बरशाहने ऐसा धर्मोपदेश सुनके आगरासे अजमेर तक प्रतिकोश कूवा मनार सहित बनाए, और जीवहिंसा छोड़के दयावान् हो गया, तब अकब्बरशाह अतीव तुष्टमान होके कहने लगा कि हे प्रभु ! आप पुत्र, कलत्र, धन, स्वजन, वेदादिमेंजी ममत्व रहित हो, इस वास्ते आपको सोना, चांदी, वेनां, तो ठीक नहीं, परंतु मेरे मकानमे जैनमतके पुराने पुस्तक बहुत हैं, सो आप जीजीये, और मेरे ऊपर अनुग्रह करीये जब बादशाहका बहुत आग्रह देखा, तब श्री गुरुजीनें सर्व पुस्तक ले के श्री आगरा नगरके ज्ञानचमारमे स्थापन कर दीए, तब एक प्रहर तक गुरुजी धर्मगोष्टि करके बादशाहकी आज्ञा लेके वडे आश्वरसे कपाश्रयमे आए, उस वखतमे लोकीमें जैनमतकी उन्नति स्फीती हुई, तिस वर्षमें आगरे नगरमे चौमासा करक सोरीपुर न

करी अथ ये बहुत दूरसे हमारे पास आयें है, और इनकी अरज वाजवी (सच्ची) है यद्यपि यह अरज मुसलमानानी महजबसे (मतसे) विरुद्ध मालुम होती है, तोनी परमेश्वरके पिठानने वाले आदमियोंका यह दस्तूर होता है, कि - कोइ किसीके धर्ममें दखल न देवे, और तिनोके रेवाज बहाल रखे इस वास्ते यह अरज मेरी समझमें सच्ची मालुम दुइ, जे सर्व पहाड तथा पूजाकी जगा बहुत अरसेसे जैनश्वेतांवरी धर्मवालोकी है, तिस वास्ते इनकी अरज कबुल करी गइकि, सिन्हाचलका पहाड, तथा गिरनारका पहाड, तथा तारंगाजीका पहाड, तथा केशरीयाजीका पहाड तथा थायुका पहाड जो गुजरातके मुजकमें है तथा राजगृहके पांच पहाड तथा समेतशिखर वरफे पार्श्वनाथका पहाड, जो बंगालके मुलकमें है, ये सर्व पूजायोकी जगायो तथा पहाड नीचे तीर्थकी जगायो जो मेरे राज्यमें है, चाहो किसी ठिकाने जैनश्वेतांवरी धर्मकी जगायो होवे, सो हीरविजय जैनश्वेतांवरी आचार्यकों वेनेमें आइ है, और इनोनें अष्टीतरेसे परमेश्वरकी नक्ति करनी चाहिये

और एक बात यहनी याद रखनी चाहिये जो कि ये जैनश्वेतांवरी धर्मकी पहाड तथा पूजाकी जगा तथा तीर्थकी जगा, जे मैने श्रीहीरविजय सूरि आचार्यको दीनी हैं, परंतु इकीकतमें ये पूर्वोक्त सर्व जगायो जैन श्वेतांवर धर्मवालोंकीही हैं, और जहांतक सूर्यसे दिन रौशन रहे, तथा जहांतक चंद्रमासे रात रोशन रहे, तहां तक इस फुरमानका हुकम जैन श्वेतांवरी धर्मके लोकोमें सूर्य तथा चंद्रमाकी तरे प्रकाशित रहे, और कोइ आदमी तिनको हरकत न करे, और किसी आदमीने तिन पहाडों वपर तथा तिनके नीचे तथा तिनकी आस पास पूजाकी जगायोंमें तथा तीर्थकी जगायोमें जानवर नहीं मारना, और इस हुकम कपर अमल करना, इस हुकमसे फिरना नहीं, तथा नवीन सणद मांगनी नहीं लिखा तारीक ३ मी माह उरदी बहेस सुतावेक माह रबीयुल अवल सन् ३३ छुजसो यह अफज्जर बावशाहके वीये फुरमानकी नकल है

तथा थानसिधकी कराइ अपर साह दूजणमछकी कराइ श्रीफतेपुरमें अनेक लाख रुपइये लगाके बडे महोत्सवसे श्री जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठा करी प्रथम चातुर्मास आगरेमें करा दूसरा फतेपुरमें करा तीसरा जिराम नाम नगरमें करा, चौथा फेर आगरेमें करा, फेर वहां बावशाहकी गोष्ट वास्ते

जलालुद्दीन बादशाह  
अकबर बादशाह  
गाजीकाफुरमान

अकबरमोहरकी बंशावली  
जलालुद्दीनअकबर बादशाह  
हुमायुन बादशाहका बेटा  
बाबरशाहका वीन बेटा  
उमरशेख मीरजाका बेटा  
मुलतान अबुस इक्का बेटा  
मुलतान महम्मदशाहका बेटा  
मीर शाहका बेटा  
अमीर तैमुरसाहि किरानका बेटा.

सूवे मालवा तथा अकबराबाद,  
लाहोर, मुलतान, अहमदाबाद, अज  
मेर, मीरत, गुजरात, बंगाला, तथा  
और जो हाल मेरे तावेके मुलक हैं  
तथा आंयदा, मुतसद्दी, सूबा, करोरी

तथा जगीरदार इन सबोंको मालुम रहे, कि जो हमारा पूरा इरादा यह  
है कि सर्व रइयतका मन राजी रखना, क्योंकि रइयतका जो मन है सो  
परमेश्वरकी एक बड़ी अनामत है, और विशेष करके वृद्ध अवस्थामें मे  
रा यही इरादा है, कि — मेरा नज़ा बांठने वाली रइयत सुखी रहे तिस  
वास्ते दरेक धर्मके लोंकोंमेंसे जो अच्छे विचार वाले परमेश्वरकी नक्ति क  
रनेमें अपनी ठमर पूरी करते हैं, तिनको दूर दूर देशोंसे मैंने अपने पास  
बुलवाये, और तिनकी परीक्षा करके अपनी सोबतमें रखता हूँ, और  
तिनकी बातें सुनके मैं बहुत खुश होता हूँ, तिस वास्ते हमारे सुननेमें  
आया है कि श्रीदीरविजय सूरि जैन स्वतांबरमतका आचार्य गुजरातके बंब  
रोमें परमेश्वरकी नक्ति करता है, मैंने तिनको अपने पास बुलवाया, और  
तिनकी मुलाकात करके हम बहुत खुश हुए, कितनेक दिन पीछे जब ति  
नोंने अपने वतन जानेकी रजा मांगी, तब अरज करो कि जो गरीबपरव  
रकी मरजीसे ऐसा दुकुम होना चाहिये कि — सिद्धाचलजी, गिरना  
रजी, तारंगजी, केसरीथानाथजी, तथा आबुजीका पढ़ाव, जो गुजरातमें  
है, तथा राजशुद्धके पांच पढ़ाव तथा समेतशिखर चरफे पार्श्वनाथजी जे  
बगालके मुलकमें हैं, तथा पढ़ाव देवली सर्व मदिरोंकी कोठीयों तथा सर्व  
नक्ति करनेकी जगायोंमें, तथा तीर्थकी जगायोंमें जो जैनस्वतांबरी धर्मकी  
जगायों सर्व मेरे तावेके मुलकमें जिस ठिकाने द्रोवे, ऊन पढ़ावों तथा म  
दिरोंकी आस पास कोइनी आदमी, कोइ जानवरको न मारे, यह अरज

करी अब ये बहुत दूरसें हमारे पास आयें हैं, और इनकी अरज वाजवी (सच्ची) है यद्यपि यह अरज मुसलमानानी महजबसें (मतसें) विरुद्ध मालुम होती है, तोनी परमेश्वरके पिढाननें वाले आदमियोंका यह वस्तूर होता है, कि - कोइ किसीके धर्ममें दखल न देवे, और तिनके रेवाज बढ़ाज रखे इस वास्ते यह अरज मेरी समझमें सच्ची मालुम दुइ, जे सर्व पहाड तथा पूजाकी जगा बहुत अरसेंसे जैनश्वेतांबरी धर्मवालोकी है, तिस वास्ते इनकी अरज कबुल करी गइकि, सिद्धाचलका पहाड, तथा गिरनारका पहाड, तथा तारंगाजीका पहाड, तथा केशरीयाजीका पहाड तथा आबुका पहाड जो गुजरातके मुलकमें है तथा राजगृहके पांच पहाड तथा समेतशिखर वरफे पार्श्वनाथका पहाड, जो वगालके मुलकमें है, ये सर्व पूजायोंकी जगायों तथा पहाड नीचें तीर्थकी जगायों जो मेरे राज्यमें है, चाहो किसी ठिकाने जैनश्वेतांबरी धर्मकी जगायो होवे, सो हीरविजय जैनश्वेतांबरी आचार्यों देनेमें आइ है, और इनोंनें अहीतरसें परमेश्वरकी जक्ति करनी चाहिये

और एक बात यहनी याद रखनी चाहियें जो कि ये जैनश्वेतांबरी धर्मकी पहाड तथा पूजाकी जगा तथा तीर्थकी जगा, जे मैनें श्रीहीरविजय सूरि आचार्यों दीनी हैं, परंतु हकीकतमें ये पूर्वोक्त सर्व जगायों जैनश्वेतांबर धर्मवालोंकीही हैं, और जहांतक सूर्यसें दिन रौशन रहे, तथा जहांतक चंद्रमासें रात रोशन रहे, तहां तक इस फुरमानका हुकम जैनश्वेतांबरी धर्मके लोकोंमें सूर्य तथा चंद्रमाकी तरें प्रकाशित रहे, और कोइ आदमी तिनकों हरकत न करे, और किसी आदमीने तिन पहाडों वपर तथा तिनके नीचे तथा तिनकी आस पास पूजाकी जगायोंमें तथा तीर्थकी जगायोंमें जानवर नहीं मारना, और इस हुकम कपर अमल करना, इस हुकमसें फिरना नहीं, तथा नवीन सणद मांगनी नहीं लिखा तारीक ७ मी माह उरबी बहेस मुतावेक माह रबीयुल अबल सन् ३७ छजसी यह अकब्बर बावशाहके वीये फुरमानकी नकल है

तथा थानसिधकी कराइ अपर साहू दूजणमछकी कराइ श्रीफतेपुरमें अनेक लाख रुपइये लगाके बड़े महोत्सवसें श्री जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठा करी प्रथम चातुर्मास आगरेमें करा दूसरा फतेपुरमें करा तीसरा जिराम नाम नगरमें करा, चौथा फेर आगरेमें करा, फेर वहां बावशाहकी गोष्ट वास्ते

जलालुद्दीन बादशाह  
अकबर बादशाह  
गाजीकाफुरमान

सूबे मालवा तथा अकबराबाद,  
लाहोर, मुलतान, अहमदाबाद, अज  
मेर, मीरत, गुजरात, बंगाला, तथा  
और जो हाल मेरे ताबेके मुलक हैं  
तथा आंयदा, मुतसद्दी, सूबा, करोरी

अकबरमोहरकी बंशावली.  
जलालुद्दीनअकबर बादशाह  
हुमायुन बादशाहका बेटा  
बाबरशाहका वीन बेटा  
अमरसोख मीरजाका बेटा  
मुलतान अबुस इवका बेटा  
मुलतान महम्मदशाहका बेटा  
मीर शाहका बेटा  
अमीर तैमुरसाहि किरानका बेटा

तथा जगीरदार इन सबोंको मालुम रहे, कि जो हमारा पूरा इरादा यह  
है कि सर्व रइयतका मन राजी रखनां, क्योंकि रइयतका जो मन है सो  
परमेश्वरकी एक बड़ी अनामत है, और विशेष करके वृद्ध अवस्थामें मे  
रा यही इरादा है, कि - मेरा जला बांठने वाली रइयत सुखी रहे तिस  
वास्ते दरेक धर्मके लोकोमेंसे जो अच्छे विचार वाले परमेश्वरकी नक्ति क  
रनेमें अपनी अमर पूरी करते हैं, तिनको दूर दूर देशोंसे मैंने अपने पास  
बुलवाये, और तिनकी परीक्षा करके अपनी सोबतमें रखता हू, और  
तिनकी बातें सुनके मैं बहुत खुश होता हू, तिस वास्ते हमारे सुननमें  
आया है कि श्रीहीरविजय सूरि जैन स्वतांबरमतका आचार्य गुजरातके बंध  
रोमें परमेश्वरकी नक्ति करता है, मैंने तिनको अपने पास बुलवाया, और  
तिनकी मुलाकात करके दम बहुत खुश हुए, कितनेक दिन पीछे जब ति  
नोंने अपने वतन जानेकी रजा मांगी, तब अरज करी कि जो गरीबपरव  
रकी मरजीसे ऐसा दुकुम होना चाहिये कि - सिद्धाचलजी, गिरना  
रजी, तारंगाजी, केसरिआनाथजी, तथा आबुजीका पहाड, जो गुजरातमें  
है, तथा राजगृहके पांच पहाड तथा समेतशिखर उरफे पार्श्वनाथजी जे  
बगालके मुलकमें हैं, तथा पहाड देवजी सर्व मंदिरोंकी कोठीयां तथा सर्व  
नक्ति करनेकी जगायोंमें, तथा तीर्थकी जगायोंमें जो जैनस्वतांबरी धर्मकी  
जगायों सर्व मेरे ताबेके मुलकोमें जिस ठिकाने दोवे, उन पहाडों तथा म  
ंदिरोंकी आस पास कोइनी आदमी, कोइ जानवरको न मारे, यह अरज



करी अथ ये बहुत दूरसे हमारे पास आयें हैं, और इनकी अरज वाजवी (सच्ची) है यद्यपि यह अरज मुसलमानानी महजबसे (मतसैं) विरुद्ध मालुम होती है, तोजी परमेश्वरके पिठाननें वाले आदमियोंका यह दस्तूर होता है, कि - कोइ किसीके धर्ममें दखल न देवे, और तिनोके रेवाज बहाल रखे इस वास्ते यह अरज मेरी समझमें सच्ची मालुम हुई, जे सर्व पहाड तथा पूजाकी जगा बहुत अरसेसे जैनश्वेतांवरी धर्मवालोकी है, तिस वास्ते इनकी अरज कबुल करी गइकि, सिद्धाचलका पहाड, तथा गिरनारका पहाड, तथा तारंगाजीका पहाड, तथा केशरीयाजीका पहाड तथा आबुका पहाड जो गुजरातके मुलकमें है तथा राजगृहके पांच पहाड तथा समेतशिखर चरफे पार्श्वनाथका पहाड, जो वगालके मुलकमें है, ये सर्व पूजायोंकी जगायों तथा पहाड नीचें तीर्थकी जगायों जो मेरे राज्यमें है, चाहो किसी ठिकाने जैनश्वेतांवरी धर्मकी जगायो होवे, सो हीरविजय जैनश्वेतांवरी आचार्यकों वेनेमें आइ है, और इनोंनें अञ्जीतरेंसें परमेश्वरकी नक्ति करनी चाहिये

और एक बात यहनी याद रखनी चाहियें जो कि ये जैनश्वेतांवरी धर्मकी पहाड तथा पूजाकी जगा तथा तीर्थकी जगा, जे मैनें श्रीहीरविजय सूरि आचार्यको दीनी हैं, परंतु इकीकतमें ये पूर्वोक्त सर्व जगायों जैनश्वेतांवर धर्मवालोंकीही हैं, और जहांतक सूर्यसे दिन रोशन रहे, तथा जहांतक चंद्रमासें रात रोशन रहे, तहां तक इस फुरमानका हुकम जैनश्वेतांवरी धर्मके लोकोंमें सूर्य तथा चंद्रमाकी तरें प्रकाशित रहे, और कोइ आदमी तिनकों हरकत न करे, और किसी आदमीने तिन पहाडो वपर तथा तिनके नीचे तथा तिनकी आस पास पूजाकी जगायोंमें तथा तीर्थकी जगायोंमें जानवर नहीं मारनां, और इस हुकम ऊपर अमल करनां, इस हुकमसें फिरनां नहीं, तथा नवीन सणद मांगनी नहीं लिखा तारीक ७ मी माह चरबी बहेस सुतावेक माह रबीयुल अवल सन् ३४ छुजसी यह अक्बर बावशादके वीये फुरमानकी नकल है

तथा थानसिंघकी कराइ अथर साद्व दूजणमछकी कराइ श्रीफतेपुरमें अनेक लाख रुपइये लगाके बडे महोत्सवसें श्री जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठा करी प्रथम चातुर्मास आगरेमें करा दूसरा फतेपुरमें करा तीसरा जिराम नाम नगरमें करा, चौथा फेर आगरेमे करा, फेर वहां बावशादकी गोष्ट वास्ते

श्रीशान्तिचङ्ग षष्ठाध्यायकों ढोड गये, और आप गुरुजी मेहडते, नागपुर चौमासा करके सिरौंदी नगरमें गये, तहां नवीन चतुर्मुख प्रासादमें श्री आदिनाथके बिंब तथा श्री अजितनाथके प्रासादमें श्री अजितनाथके बिंबोकी प्रतिष्ठा करके अर्घुदाचलमें यात्रा करनेको गये, और पीछे श्री शान्तिचङ्ग षष्ठाध्यायने नवीन कृपारस कोश नामा ग्रंथ बनाके अकब्बर बादशाहको सुनाया, तिसके सुननेसे बादशाहने दयाकी बहुत वृद्धि करी, तिसका स्वरूप यह है कि - बादशाहके जन्मके दिनसे एक मास अरु पर्युषणके बारा दिन, तथा सर्व रविवार, तथा सर्वसंक्रांतिके दिन, नवरोजकामास, सर्व शुद्ध के दिन, सर्व मिहूर वासरा, सर्व सोफी अनादिन इत्यादि सब मिलकर एक वर्षदिनमें है महीने तक जीवदिसा बंद कराइ, तिसके फुरमान लिखवाए सो फुरमान अबतक हमारे लोकोंके पास है, इसमें कुछ शका नहीं कि श्री हीरविजय सूरिजीने जैनमतकी वृद्धि और वृद्धि बहुत करी? सुसज्जमानोंकोनी जिनोंने दयावान् करा तथा स्थजस्तीर्थे सवत् ( १६४६ ) में स्थजतीर्थेवासी शा० तेजपाजके बनवाये मंदिरकी प्रतिष्ठा करी

५९ श्री हीरविजय सूरि पढे श्री विजयसेन सूरि दूए इनका ( १६०४ ) वर्षे जन्म ( १६१३ ) वर्षे मातापिता सहित वीक्षा, ( १६२६ ) वर्षे पंक्ति पद, ( १६३८ ) वर्षे षष्ठाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, ( १६५३ ) वर्षे जट्टारक पद, ( १६४१ ) वर्षे स्थजस्तीर्थे स्वर्गवास जिनके देखहरख, अरु परमानंद येवोशिष्योंने अकब्बर बादशाहके बेटे जाहांगीरको धर्म सुनाके प्रतिबोधा, और जाहांगीर बादशाहसे फुरमान कराया तिसकी नकल यह है

उरुदीन मद्दम्मद  
जहांगीर बादशाह  
गाजीका फुर  
मान

जहांगीरकी मोहरमें बशावलि  
नुरदीनमद्दम्म जहांगीर बादशाह  
अकब्बर बादशाह  
हुमायुन बादशाह  
बाबर बादशाह  
मीरजा उमरशेव  
सुलतानअबुसइस  
सुलतान मीरजामोद्दम्मशाह मीराशाह  
अमीरतैमूर साहिब किरान

मेरे सर्वराजके विशेष करके गुजरातके सूवे, मोटे हाकिम तथा कीफायत करने वाले थामीन तथा जागीरदार तथा करोरी तथा सर्व खातोके कार कुनोंको मालुम होवे कि जो परमेश्वरके पिठानने वाले लोक हैं, तिनका यह दस्तूर है, कि हरेक मत तथा कोमके लोक इतनाही नही बलकि सर्व जीव सुखी रहें, और अथ वेखहरख, तथा परमानन्द यतीयोंनें डुनी यांकी रक्षा करने वालोंकी दरवारमें आकर तखतके पास खड़ेरहनें वालोंसे अरज करी कि विजयसेन सूरि तथा विजयदेव सूरि और जे अष्टी बुद्धि वाले लोक है, तिनकी हरेक जगे तथा हरेक सदरोमें देहरा अर्थात् जिन मंदिर तथा धर्मशाला है, तिनमें ये लोक ईश्वरकी नक्ति करते है और प्रार्थना करते हैं, और वेखहरख तथा परमानन्द यतीकी परमेश्वरकों राजी रखनेंकी हकीगत हमने अष्टी तरेंसे जान लीनी है, तिस वास्ते डुनीयाकों तावे करने वाला हुकम दूया कि -कोइ आदमीने इन जैनलोकोके मंदिर तथा धर्मशालामें उतरना नही तथा कारन विना अडचल नही करनी और जेकर ये लोक फिरकर नवा बनाया चाहेंतो तिनको किसीतरेंकी मनाई तथा हरकत नही करणी और तिनके साधुओंके उपाश्रयोंमें कोइनेजी उतरणां नही, और जो ये लोक सोरठके मुलकमें शत्रुजय तीर्थकी यात्रा करने वास्ते जावे तो कोइनी आदमी तिन यात्रालुओंसे कुछ न मांगे ला लचन करे, और पूर्वोक्त वेखहरख अरु परमानन्दयतिकि अरज तथा खादि स कपर हुकम बडा जारी दूया कि दर अथवाडेमें रविवार तथा गुरुवार तथा दर महिनेमें शुद्ध पडिवाका रोज तथा इक्के दिन तथा दर वर्षमें न वरोज तथा माहशहरगुरमा जे हमारा सुवारफ दिन है तिनमें एक एक वर्षके हिसाव प्रमाण मेरे सर्व राज्यमें कोइ जीवकी हिसा न होवे, तथा श कार करना तथा पक्षीयोंका पकडना, मारना, तथा मछलीयोंका मारना, ये बंद कीया जावे तथा इस तरेके औरनी काम इन पूर्वोक्त दिनोंमें न होने चाहियें, ये बात जरूर है, जे पूर्वोक्त हुकम प्रमाण हमेशा चलानेकी को शिक करके मेरे फुरमानके हुकमसे कोइ फिरे नही, विरुद्ध चले नही लि खा ता० माह सदर गुरमें सन् ३ जुलसी यह फुरमान खाजांदांनके चौ पानीयां तथा सेवक अली तकीके वर्तमान पत्रमें दाखल दूया तरछुमा करनेवाला मुनशी सइयद अथबुलामीयां सादिव छरैजी

६० श्री विजयसेन सूरि पट्टे श्री विजयदेव सूरि दूये तिनका (१६३४) वर्षे जन्म (१६४३) वर्षे दीक्षा, (१६५५) वर्षे पंमित पद, (१६५६) वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, (१६७१) वर्षे स्वर्ग, ६१ श्री विजयदेव सूरि पट्टे श्री विजयसिद्ध सूरि दूये तिनका (१६४४) वर्षे जन्म, (१६५४) में वर्षे दीक्षा, (१६७३) वर्षे वाचक पद, (१६७३) वर्षे सूरि पद, (१७०७) वर्षे स्वर्गगत, ६३ श्री विजयसिद्ध तथा श्री विजयदेव सूरि पट्टे श्री विजयग्रन्थ सूरि दूये, तिनका (१६७५) वर्षे जन्म, (१६७९) वर्षे दीक्षा, (१७०१) वर्षे पंमित पद, (१७१०) वर्षे उपाध्याय पद, (१७१३) वर्षे जट्टारक पद, (१७४९) वर्षे स्वर्गगमन, इनोके समयमें छ हवधे ढूढीयोका पंथ निकला तिसकी उत्पत्ति ऐसे हैं -

सुरत नगरमें वोहरा वीरजी साधुकार बशाश्रीमालि वसता था, तिसकी फूजां नामें बालविधवा एक बेटीथी, तिसने एक लवजी नामा लहका गोबी लीया, तिस लवजीको लुंकेके उपाश्रयमें पढने वास्ते नेजा, तदां यतीयोकी संगतसे वैराग्य उत्पन्न हुआ, और लुंकेके यती बजरंग जीका शिष्य हुआ, तब दो वर्षे पीछे अपने गुरुको कहने लगा कि जैसा शास्त्रोंमें साधुका आचार है वैसा तुम क्यों नही पालते हो ? तब गुरुने कहा पंचमकालमें शास्त्रोंक्त सर्व क्रिया नहीं हो सकति है, तब लवजीने कहा तुम ब्रह्मचारी मेरे गुरु नहीं मैतो आपही सयम फेरकें लेजंगा इस तरेंका क्लेश करके कृपि लवजीने लुंके मतकी गुरु शिक्षा ठोढके अपने साथ दो यति और लीए तिसमें एकका नाम जूणा, दूसराका नाम सुखजी इन तीनोंहीने अपने आपहीको दीक्षित करा, और मुंहके ऊपर कपड़ेकी पट्टी बांधी, तब इनका नवीन वेष देखकें गामोंमें किसी आवकने इनके रहनेको जगा न दीनी, तब ये उजड़े दूये मकानोंमें जा रहें गुजरात देशमें फूटे टूटे मकानको ढूढ कहते हैं, इस वास्ते लोकोंने इनका नाम कुंडियें ररका, इन तीनोंको नवे मत चलानेमें बड़े बड़े क्लेश जोगने पड़े परंतु इनके त्यागको देखकें कितनेक लुंकेमति इनको माननेजी लगे, क्योंकि यह नेहचा ल जगत्तमें प्रसिद्ध है, और जोले लोक तो ऊपरली ठूठा फूटा देखकें रागी हो जाते हैं, और गुजरातके बहुत लोक ऐसे दूव ग्राही हैकि - जो घात पकड सेवे उस वातको बहुत मुसकलसे ठोढते है, इसी वास्ते जैनमतमें

केइ फिरके गुजरात देशसेही निकले है पीछे तिस लवजीका शिष्य अहम दावादके कालुपुरेका वासी उतवाल सोमजी हुआ, तिसने सूर्यकी आत पना बहुत करी, तिमके चेजोंका नाम १ हरिदासजी, २ प्रेमजी, ३ गिरधरजी, ४ कान्हजी, प्रमुख और लुकेमति कुवरजीके चेलेजी इनके शिष्य बने तिनके नाम १ श्रीपाल, २ अमीपाल, ३ धर्मसी, ४ हरजी, ५ जीवाजी, ६ समरथ, ७ तोडुजी, ८ मोहनजी, ९ सदानदजी, १० गोधाजी, ये एक गुजरातका वासी धर्मदास ठीपीने मुंममुंभाके मुख ऊपर पढी बाधके अपने आपको दूढिया साधु मशाहूर किया, तिनमें हरिदासका चेला वृदावन हुआ, और वृदावनका चेला खुवानीदास हुआ, और खुवानीदासका चेला लाहोरका वासी मलूकचंद हुआ, मलूकचंदका महासिध, और महासिधका कुशालराय और कुशालरायका ठजमल, और ठजमलका रामलाल, और रामलालके शिष्य रामरत्न, और अमरसिंह, ये दोनो मैनें देखे हैं अब इन दोनोंके चेले वसंतराय, और रामबकस वगैरे जीते हैं ये पंजाब देशमें आज काल पड़े फिरते हैं

और जीवाजीका चेला लालचंद हुआ, लालचंदका अमरसिंह हुआ तो मारवाड देशमें आया तिसके परिवारमें नानकजी जिनोके चेले अब अजमेर अरु कृष्णगढके जिल्लेमें बहुत रहते हैं, और श्यामिदास जिनोके परिवारके कन्हीराम, खेखराज, तखतमल, प्रमुख अब मारवाडमें रहते हैं और जो कोटेवूदीमें तथा मानवेमें लालचंद, गणेशजी, गोविंदरामजी, हुये, तथा अमीचंद, डुकमचंद, उदयचंद, फतेचंद ग्यानजी ठगन, मगन, देवकरण, अरु पन्नालाल प्रमुख फिरते हैं येजी हरिदास केही चेले हैं तथा अमरसिधका चेला दीपचंद, दीपचंदका, चेला धर्मदास, धर्मदासका जोगराज, जोगराजका हजारीमल्ल, हजारीमल्लका लालजीराम, लालजीरामका गगाराम, गगारामका जीवणमल्ल, जो इस वखत दिह्लीके आसपासके गामोंमें फिरते हैं, तथा अमरसिधके परिवारमें धनजी, मनजी, नाथुराम, अरु ताराचदावि हुये, हैं, जिनोके चेले रत्तीराम, नदलाल, हुये नदलालका चेला रूपचंद, रूपचंदका बिहारी, जोकि पंजाबमें कोट जगरावांकि गामोमे रहिते हैं तथा कानजी और धर्मदास ठीपीके चेलेयोमेंसे दीपचंद, गुपालजी प्रमुख ये तीसही, बढ

६० श्री विजयसेन सूरि पट्टे श्री विजयदेव सूरि दूये तिनका (१६३४) वर्षे जन्म (१६४३) वर्षे दीक्षा, (१६५५) वर्षे पंथित पद, (१६५६) वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, (१६७१) वर्षे स्वर्ग, ६१ श्री विजयदेव सूरि पट्टे श्री विजयसिद्ध सूरि दूये तिनका (१६४४) वर्षे जन्म, (१६५४) में वर्षे दीक्षा, (१६७३) वर्षे वाचक पद, (१६७९) वर्षे सूरि पद, (१७०७) वर्षे स्वर्गगत, ६२ श्री विजयसिद्ध तथा श्री विजयदेव सूरि पट्टे श्री विजयप्रज सूरि दूये, तिनका (१६७५) वर्षे जन्म, (१६७९) वर्षे दीक्षा, (१७०१) वर्षे पंथित पद, (१७१०) वर्षे उपाध्याय पद, (१७१३) वर्षे जट्टारक पद, (१७४९) वर्षे स्वर्गगमन, इनोके समयमें सुदबधे ढूढीयोका पंथ निकला तिसकी उत्पत्ति ऐसे हैं -

सुरत नगरमें वोहरा वीरजी साढुकार दशाश्रीमालि बसता था, तिसकी फूलां नामें बालविधवा एक बेटीथी, तिसने एक लवजी नामा लडका गोदी लीया, तिस लवजीको लुंकेके उपाश्रयमें पढने वास्ते चेजा, तहां यतीयोकी संगतसे वैराग्य उत्पन्न हुआ, और लुंकेके यती बजरंगजीका शिष्य हुआ, तब दो वर्षे पीछे अपने गुरुको कहने लगा कि जैसा शास्त्रोंमें साधुका आचार है वैसा तुम क्यों नही पालते हो ? तब गुरुने कहा पंचमकालमें शास्त्रोक्त सर्व क्रिया नहीं हो सक्ति है, तब लवजीने कहा तुम ब्रह्मचारी मेरे गुरु नहीं मैतो आपही सयम फेरकें लेकंगा इस तरका क्लेश करके कृषि लवजीने लुके मतकी गुरु शिक्षा ठोडके अपने साथ दो यति और लीए तिसमें एकका नाम नूणा, दूसराका नाम सुखजी इन तीनोंहीने अपने आपहीको दीक्षित करा, और मुंदके ऊपर कपड़ेकी पट्टी बांधी, तब इनका नवीन वेष देखकें गामोंमें किसी आचकने इनके रहनेको जगा न दीनी, तब ये उजडे दूये मकानोंमें जा रहें गुजरात देशमें फूटे टूटे मकानको ढूढ फदते हैं, इस वास्ते लोकोंने इनका नाम ढूंढियें रक्ता, इन तीनोंको नवे मत चलानेमें बडे बडे क्लेश जोगने पडे परंतु इनके त्यागको देखकें कितनेक लुकेमति इनको माननेची लगे, क्योंकि यह नेडचा ल जगतमें प्रसिद्ध है, और जोले लोक तो ऊपरली ठूठां फूफां देखकें रागी हो जाते हैं, और गुजरातके बहुत लोक ऐसे दूत ग्राही हैंकि - जो बात पकड लेवे उस बातको बहुत मुसकलसे गोडते हैं, इसी वास्ते जैनमतमें

यशोविजयगणि इनदोनोंने श्रीविजयसिंहसूरिकी आज्ञा लेकें गङ्गमेक्रियाशियिल साधुओंको देखकें और दूढरुमतके पाखन अधिकारके दूर करणे वास्ते क्रिया उद्धार करा, और जिनोंने काशीके पन्तितोंसे जयपताकाका जना पाया, और गुजरात प्रमुख देशोसे प्रतिमा उद्यापक कुलिगीयोके मतरूप अधिकारको दूर करा, और जिनोके रचे हुए (१००) ग्रंथ अध्यात्मसार, स्यादादकल्पलता, शास्त्रसमुच्चयकीवृत्ति, मन्त्रवादी सूरिरुतनयचक्र उद्धारादि, अनेक बडेबडे एक सौ ग्रंथ है

श्रीगणिसत्यविजयजी क्रिया उद्धार करके श्रीआनदधनजीके साथ बहुत वर्ष जग वनवासमे रहे, और बड़ी तपस्या योगान्यासादि करा, जब बहुत वृद्ध हो गए, जंघामे चलनेका बज्र न रहा, तब अणहज पट्टनमे जा रहे तिनके उपदेशसे तिनके दो शिष्य हुए, एक गणिकपूरविजयपंथित, और दूसरा पंथित कुशलविजयजी, तिनमे गणिकपूरविजयजीनें तो अनेक अर्हंत विंवोंकी प्रतिष्ठा करी, और अनेक ग्राम नगरोंमें धर्मकी वृद्धि करी, बडे प्रभावक हुए, श्रीगणिकपूरविजयजीके दो शिष्य हुए, एक पंथित वृद्धिविजय गणि, दूसरा पंथित क्षमाविजयगणि, श्रीपंथित क्षमाविजयगणिके शिष्य पंथित श्रीजिनविजय गणि, तिनका शिष्य पंथित उत्तमविजयगणि, तिनका शिष्य पंथित पद्मविजयगणि, तिनका शिष्य पंथित रूपविजयगणि, तिनका शिष्य पंथित कीर्त्तिविजयगणी तिनका शिष्य पंथित कस्तूरविजयगणी तिनका शिष्य मुनिमणिविजयगणि, तिनका शिष्य मुनि बुद्धिविजय गणि, तिनका शिष्य पंथित मुक्तिविजय गणि, तिनोके हाथका दीक्षित जघु गुरु ब्राह्मण जैनतत्त्वादर्शग्रंथके लिखनेवाला मुनि आत्माराम आनदविजय नामक हू इतिगुरावलिसंपूर्ण ॥

अब इस ग्रंथके लिखनेवालेके समयमें इतने नवीनपथ निकले हैं सो लिखते हैं - गुजरातदेशमें स्वामी नाराणकापंथ, और बंगालदेशमें ब्रह्म समाजीयोका पंथ, और पंजाबदेशमें लोदीहानेसें वश कोशके अतरे एक नयणीनामा गाम है तिसमें रहनेवाला जातिका ब्रह्माणसिक्क तिसके उपदेशसें कूका नामे पंथ, और कोइलमे मौलबी, अहमदशाहका नवीन फिरका, तथा दयानंदसरस्वतीस्वामीका निकाला आर्यसमाजका पंथ इत्यादि अनेकमत पुराने मतोंको छोडके निकाले है, क्योंकि इनोंने अ

वाण, मोरबी, गौमल, जैतपुर, राजकोट, अमरेली, धांगधरा, प्रमुख जा लावाड, काठियावाड, महुकांवा प्रमुख देशोंके गामोंमें फिरते रहते हैं और धर्मदास ठीपिका चेला धनाजी, धनाजीका नूदरजी, नूदरजीका रघुनाथजी, जैमलजी, गुमानचव, डुर्गादास, कन्दोराम, रत्नचद्र, हमीरमल्ल, कचौडीमल्ल प्रमुख जो अब मारवाडदेशमें रहते हैं सो प्रतिव है

और रघुनाथजीका चेला जीवमजी सवत् (१७१७) में हुआ, जिसने तेराहपंथ निकाला तिसके चेजे नारमल, हेमजी, रायचद्र, जीतमल्ल, जीतमल्लकी गद्दी वपर अब मेघजी है, ये पट्टीबध-जितने साधु हैं इनका पथ सवत् (१७०९) के सालसे चला है, और इनका मत जबसे निकला है, तबसे ले कर आजपर्यंत इनके मतमें कोईनी विद्वान् नहीं हुआ है, क्योंकि ये लोक कहते हैं कि.— व्याकरण, कोश, काव्य, षड, अलंकार, पठनेसे तथा तर्कशास्त्र पठनेसे बुद्धि मारी जाती है इस बे इलमीकेही सबबसे ये लोक परस्पर बड़ा द्वेष रखते हैं, केइ मनमानी कठिपत बाते बना लेते हैं, एक दूसरेके पग नहीं जमने देते, मनमें जानते हैं कि — मेरे गृहस्थ चेलोंको वह लेवेगा ? इत्यादि मेरे लिखनेमें किसीको शका होवे तो मारवाडमें जाकर प्रत्यक्ष देख लेवे, इनका आचार, व्यवहार, वेष, श्रद्धा, प्ररूपणा, प्रमुख है सो जैनमतके शास्त्रानुसार नहीं है, और दूसरे मतोंवालेजी जो बहुत जैनमतको बुरा जानते हैं, वो इन बूढीयोंके दोषोंके आधार व्यवहारके देखनेसे जानते हैं परंतु यह लोक तो सर्व जैन मतसे विपरीत चलने वाले हैं, इति दुष्टकमतोत्पत्ति ॥

६३) श्रीविजयप्रज्ञसूरिपट्टे श्रीविजयरत्न सूरि हुए, ६४ श्रीविजय रत्नसूरिपट्टे श्रीविजयकुमासूरि हुए, ६५ श्रीविजयकुमा सूरिपट्टे श्रीविजयदयासूरि, ६६ श्रीविजयदयासूरिपट्टे श्रीविजयधर्मसूरि, ६७ श्रीविजयधर्मसूरिपट्टे, श्रीजिनेंद्रसूरि, ६८ श्रीजिनेंद्रसूरिपट्टे श्रीदेवेन्द्रसूरि, ६९ श्रीदेवेन्द्रसूरिपट्टे श्रीविजयधरणेंद्रसूरि, जोकि इस वर्तमान कालमें विद्यमान विचरते हैं

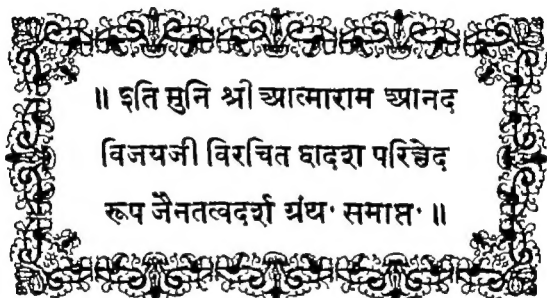
तथा एकसमये पाटें जो श्रीविजयसिद्ध सूरिये तिनका शिष्य श्रीसत्य विजयगणि हुए और महोपाध्याय पट्टशास्त्रवेत्ता, न्यायविशारद, विरुद्धा रक महावैय्याकरण, तात्त्विकशिरोमणि, बुद्धिका समुद्र महोपाध्याय श्री





पनी बुद्धि समान प्राचीनोंके करे पुस्तक तथा वेदार्थोंको नही समझा जेकर इसीतरें नवीन नवीन मत निकलते रहेतो कोइकदिनमे ब्राह्मणादि मताधिकारीयोंकी रोजी मारी जायगी, और धर्म अरु नियम किसिकि सिका कायम रहेगा ?

इति श्रीतपगङ्गीय मुनिगणेश्वरी मणिविजय तद्विष्य मुनि श्रीबुद्धिविजय द्विष्य मुनि आत्मारामआनन्दविजय विरचिते जैनतत्त्वादर्थे गुरुआवलि कथन रूप द्वादश परिच्छेद संपूर्ण ॥ १२ ॥



॥ इति मुनि श्री आत्माराम आनन्द  
विजयजी विरचित द्वादश परिच्छेद  
रूप जैनतत्त्वदर्श ग्रंथ समाप्त ॥

